A STUDY OF

TDITIONAL ELEMENTS

IN

GRANTH

(THESIS)

।दि ग्रंथ में परंपरागत तत्त्वों का अध्ययन
(शोध-प्रबंध)

Subm. to the Panjab University, Chandigarh for the award of Degree of Ph.D. in the Facu. of Languages.

PANJAB UNIVERSITY LIBRARY

16th SEPT. 1968

निर्देशक:—
डा० धर्म पाल मैनी एम० ए० । ०० डी,
हिन्दी विभाग, पंजाब विश्व वि य,
चंडीगढ़ – 14

शोधकार:—
प्रो० सुरैण सिंह विलख़ू एम० ए० (हिन्दी-पंजाबी)
पंजाबी विभाग, गवर्नमैंट कालिज,
गुरदासपुर (पंजाब)

श्री ग्रंथ साहब में परम्परागत तत्वों का अध्ययन

(शोध-प्रबंध)

प्रबन्ध में प्रयुक्त संकेत चिन्हों का विवरण:-

आ० ग्रं० ------ आदि (गुरु) ग्रंथ ।

'म:' ----- 'महला' (गुरु प गद्दी).

निर्देशक: डा० धर्म पाल मैनी एम०ए०, पी-एच०डी०,
हिंदी विभाग, पंजाब विश्व विद्यालय,
चंडीगढ़-१४

शोधकार: प्रो सिंह,
पंजाबी , गवर्नमेंट
कालिज (पंजाब)

(प्राक्कथन)

आज मुझे [illegible]होता है कि मानव मन के संस्कार बड़े प्रबल होते हैं। प्रारम्भ से ही जीवन के निर्माण में वातावरण एवं संगीतिक प्रभाव होता है। मैं बहुत छोटा था जब पिता जी से अनायास ही गुरुबाणी सुनता रहता था। वे पाठ में तल्लीन होते [illegible] मैं भी कई बार उनकी तल्लीनता में तल्लीन होता था। भक्ति उनकी आस्था और [illegible] ने मुझमें भी वैसे ही भाव पैदा कर दिए हैं। उस गुरुबाणी को मुझे समझ [illegible]—संभवतः समझ तो अब भी बहुत कम है—जो समता है, मेरे अवचेतन में [illegible]-परक बाणी के संस्कार बनते गये। गत 40 वर्षों अध्ययन अध्यापन क्रम में यह [illegible] बाणी मुझे अधिकाधिक प्रभावित करती रही। मेरे [illegible] पर इसका इतना [illegible]भाव हो गया, कि यह मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गयी।

[illegible]ति दिसहि चंदु न तारा। सूरज किरणि न बिजुलि
[illegible] बिहनु नहीं कोई पूर रहिआ मनि भावता।
[illegible]करणि जोति उजिआरा। करि करि देखै आपि रजआरा।
[illegible]गंभीर धीरगुरि गोआ। अचरु न जाना धुना तीआ।

मारू म॰1, आ॰ ग्रं॰ पृ॰ 1033-34

गुरु नानक [illegible] पद ने ब्रह्म के व्यापक और विराट रूप का जो चित्र मेरे मानस पर अंकित [illegible], वह बना रहा। जब मेरा संस्कृत से परिचय बढ़ा और तब पढ़ते-पढ़ाते [illegible] मेरी निगाह इस पर पड़ी :-

न सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

कठो॰ 2-2-15, श्वे॰ 6-14, मुण्ड॰ 2-2-10

इतना ही [illegible]—

भै विचि पवन वहै सद वाउ। भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि अगनि कढै वेगारि। भै विचि धरती दबी भारि।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु। कोह करोड़ी चलत न अंतु।
भै विचि जोध महाबल सूर। भै विचि आवहि जावहि पूर।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु।

आसा म॰ 1, आ॰ ग्रं॰ पृ॰ 464

दर्शन होते हैं । इससे स्पष्ट है' कि गुरु साहब की अनुभूति भी उच्चकोटि की भारतीय परम्परागत अनुभूति से साम्य रखती थी ।

चौथे अध्याय में श्री गुरु-ग्रन्थ साहब के साधना पक्ष में विविध-स्था-भक्ति का व्यापक एवं शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करने के बाद' उसके स्वरूप में भारतीयता के ही दर्शन होते हैं । सत्संगति' गुरु और नाम' इन सब का महत्व भगवत्कृपा होने पर ही प्रतिपादित होता है । 'नदरि' (भगवत्कृपा) साधनों में सब से बड़ा साधन है । गीता के निष्काम-कर्म-जीवन के सन्देश को गुरुओं की वाणी के माध्यम से एक बार फिर शक्ति मिली तथा नाम-जप की साधना में उनकी भक्ति साकार हुई । उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा में नामदेव जी का नाम उस आलोक-स्तंभ के समान है, जहां से गीता के इस संदेश की ज्योति को कबीर, गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने ग्रहण किया । जिस 'गुरमति भक्ति' की प्रतिष्ठा आदि-ग्रन्थ को 'गुरु स्वरूप' मानने वालों द्वारा प्रतिपादित की गई, उस 'गुरमति भक्ति' के गीता के आधार पर प्रथम प्रतिष्ठापक सन्त नामदेव जी ही थे :-

'गुरमति राम नाम गहु मीता । प्रणवै नामा इउ कहै गीता ।'

(आ0 ग्र0 पृ0) 884

गीता आदि व्यास रचित ग्रन्थों का नामदेव के घर पर कितना पठन-पाठन था, इसका गुरु-ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है:-

' जा कै भगवत लेखीऐ अवरु नही पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा ।
बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ नाम की नामना सपत दीपा ।

(मलार रविदास - आ0 ग्र0 पृ0 1293)

पांचवें अध्याय में गुरुओं की वाणी के माध्यम से भारतीय समाज के परम्परागत विश्वास का अध्ययन किया गया है । उनके संस्कारों, धार्मिक आडम्बरों, रीति-रिवाजों, पर्वों- त्योहारों तथा अन्य सामाजिक एवं व्यवहारिक मूल्यों का बोध होता है । इतना ही नहीं, इन मूल्यों में विकार उत्पन्न होने के कारण समाज की जो दुरावस्था हुई, उसका चित्रण भी इनकी वाणी में बहुतायत से दृष्टिगत होता है ।कबीर आदि की वाणी आक्रामक है, लेकिन रविदास तथा गुरु नानक देव आदि की वाणी में विनयिता पूर्वक इसका विरोध किया गया है ।

छटे अध्याय में गुरु-ग्रन्थ साहब के रचयिताओं की वाणी में ब्रह्म में विश्वास तथा आस्तिकता की भवना के साथ-साथ भगवान् के भक्तवत्सल स्वरूप का चित्र प्रस्तुत करने के लिए पौराणिक आख्यानों का सप्रसंग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन तत्वों की किसी

रूप अथवा विनियुक्त रूप में नहीं अपितु समय स्थान के अनुकूल दृष्टान्त एवं उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। अवतारवाद में विश्वास न भी रखते हुए गुरु ग्रन्थ के रचयिताओं को भगवान् को अवतारी कार्यों में भक्तों के उद्धारशील कार्य करते हुए मान लेने में कोई आपत्ति नहीं। पौराणिक साहित्य साम्प्रदायिक होता हुआ भी, अलग-अलग पुराणों में प्रतिष्ठित भगवान् के अवतारों का एक समान समादर करने निमित्त में है। इसी समन्वयवादी प्रवृत्ति के आधार पर गुरुग्रन्थ में भिन्न-भिन्न अवतारों को विष्णु स्वरूप मानकर ब्रह्म-ऐक्य की सुदृढ़ भावना का प्रतिपादन हुआ है। भक्तों के उद्धार हित भगवान् के अवतारी चमत्कारिक - चमत्कार-पूर्ण कार्य करते हुए भी दिखाया गया है। बाह्याचार, वर्ण- व्यवस्था तथा जाति-पांति के भेदभाव का गुरु ग्रन्थ में दृढ़ता पूर्वक विरोध किया गया है।

सातवें अध्याय में गुरु ग्रन्थ के शैली पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसके सम्पादन का प्रयोजन बताया गया है। गुरु ग्रन्थ का सम्पादन भी ऋग्वेद के सम्पादन की भांति इसकी वाणी के पाठ को प्रामाणिक एवं अखण्ड निर्बाध स्वरूप में सुरक्षित रखना था। गुरु ग्रन्थ की रचना शैली पर गोरख वाणी अर्थात नाथ योगियों की सबदियों-वाणियों की पदावली एवं गीतात्मकता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित करते हुए, गुरु ग्रन्थ की शैली की विलक्षणता का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। योगियों की प्रतीक-योजना, लोक-सुलभ-उपमानों तथा प्रतीकरूपकों (उलटबांसियों) का गुरु ग्रन्थ काव्य पर प्रभाव दर्शाते हुए आदि ग्रन्थ काव्य में उनके संशोधित एवं परिमार्जित स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। भगवान् के सर्वशक्तिमान् (पातशाह) तथा पारब्रह्म (तैहरी) स्वरूपों सम्बन्धी प्रतीक रूपकों का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। भारतीय राष्ट्रीय संगीत परम्परा के आधार पर नव-रागों की निष्पत्ति वाणी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आठवें अध्याय को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में लोकजीवन में प्रचलित काव्य-रूपों के आधार पर गुरु ग्रन्थ के रचयिताओं द्वारा पूर्ववर्ती परम्परा के अनुसरण पर इन काव्य-रूपों में ब्रह्म, गुरु, ज्ञान, नाम-सुमिरन आदि को आरोपित कर जिस काव्य-साहित्य की रचना की गई है उसका परम्परा के संदर्भ में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। डा. रवीन्द्र भ्रमर ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भक्ति काव्य में लोकतत्व' में इस ओर ध्यान दिया था, परन्तु पता नहीं उन्होंने अपने उपर्युक्त प्रबन्ध में गुरु-ग्रन्थ-काव्य को सम्मिलित क्यों नहीं किया, यद्यपि उनके प्रबन्ध में जिन लोक-काव्य-रूपों का उल्लेख है, उनसे भी अधिक काव्य-रूप आदि ग्रन्थ में उपलब्ध हैं जिनका अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। आदि ग्रन्थ के पहरे, दिन-रैन, सुचज्जी-कुचज्जी, गुणवंती, बणजारा, करहले, बारहमाहे, थिती, - आलाहणियां, वार, छन्द, अंजुलि, घोड़ियां, आदि लोक-काव्य-रूप अभिव्यंजना के अन्य ग्रन्थों

में कहीं नहीं मिलती। परन्तु 'गोष्टि-काव्य' में इनकी परम्परा उपलब्ध है। संभवतः यह सब गुरु ग्रन्थ काव्य से सम्पर्क न स्थापित होने के कारण ही हुआ है। इसका प्रमाण डॉ. धर्मवीर भारती के इस कथन से भी मिलता है, जो उन्होंने गोष्टी-काव्य की परम्परा के बारे में लिखा है। 'दोहों-चौपाईयों का एक अन्य काव्य रूप भी नाथ-पंथी बानियों तथा कबीर पंथी ग्रन्थों में मिलता है, वह है प्रश्नोत्तरी। गुरु और शिष्य दो समान प्रतिष्ठा के आचार्यों में तत्व-दर्शन, साधना-पद्धति आदि के गहन-तत्वों पर जो बातें हों, उन्हें प्रश्नोत्तरी के रूप में दोहा-चौपाइयों में प्रस्तुत किया जाता है। मछीन्द्र-गोरख-बोध तथा गोरख-दत्त-गुष्टी (गोरख बाणी में संगृहित) इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। सन्तों के अभी तक उपलब्ध साहित्य में यह प्रश्नोत्तरी शैली नहीं मिलती, किन्तु पश्चिमी तथा पूर्वी लौकिक अपभ्रंश साहित्य में यह शैली बहुत प्रचलित थी।'' (सिद्ध साहित्य -पृ. 471-72) यदि डॉ. भारती जिस प्रकार अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्ध स्थापित कर सके, उसी प्रकार गुरु-ग्रन्थ-काव्य में भी संधि बना सकते तो गोरख-बाणी की रचना 'गोरख-मछीन्द्र-बोध' की शैली एवं पदावली पर आधारित गुरु नानक की *सिध-गोसटि के रूप में प्रश्नोत्तरी की शैली संत-साहित्य में भी प्राप्त हो जाती।

आठवें अध्याय के दूसरे भाग में शास्त्रीय छन्दों के परम्परागत स्वरूप के आधार पर दोहा-चौपाई, सोरठा, छप्पय, कवित्त, सवैया, सारादि, 33 के लगभग छन्दों का अध्ययन आदि ग्रन्थ से प्रस्तुत किया गया है।

नवम अध्याय में भक्ति में राग तत्व के स्थान का स्वरूप निर्धारित करते हुए, रागों के आधार पर भक्ति-ग्रन्थों के संपादन की परंपरा को ढूंढने का प्रयत्न किया गया है। भक्ति-काव्य में प्रयुक्त होनेवाला राग-रागिनियों की परम्परा का सिद्धों-नाथों से लेकर अध्ययन प्रस्तुत करते हुए, गुरु-ग्रन्थ-काव्य में उनके स्वरूप एवं विकास का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। गुरु-ग्रन्थ की बाणी की रागों के आधार पर सम्पादन योजना एवं राग-क्रम पर विचार करते हुए ''सिरी-राग'' को इसमें प्रथम स्थान देने और रागमाला में ''भैरोराग'' के प्रथम लिए जाने पर भी विचार किया गया है। ''रागमाला'' की प्रामाणिकता पर भी विचार किया गया है और कहा गया है कि रागमाला गुरुबाणी तो नहीं परन्तु इसके प्रक्षिप्त होने का सन्देह भी भ्रमपूर्ण एवं निराधार है, क्योंकि यह रचना जायसी की पद्मावत में आने वाली रागमाला की शब्दावली से पर्याप्त साम्य रखती है, जिससे यह दोनों रचनाएं किसी पूर्ववर्ती रचना से प्रेरित प्रतीत होती है, संभवतः जिस पूर्ववर्ती रचना का अधिक प्रामाणिक स्वरूप आदिग्रन्थ में सुरक्षित है, जो गुरु नानक देव जी द्वारा अपने पर्यटन काल में भक्तबाणी के साथ ही एकत्रित किया गया प्रतीत होता है।

---

* राग राम कली में गुरु नानक देव की सिध गोसटि आदि ग्रन्थ पृष्ठ 938 से 946 पर है।

दसवें अध्याय में गुरु ग्रन्थ की भाषा के स्वरूप एवं परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। बाबा फरीद, जयदेव, नामदेव, कबीर, गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों की भाषा के स्वरूप का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गुरु नानक के पश्चात् उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ता जाता है। पंचम गुरु तक पहुंच कर पंजाबी और मिश्रित भाषा शैली की अपेक्षा हिन्दी भाषा शैली का प्रयोग स्पष्टतः अधिक हो जाता है। इस अध्याय में गुरुवाणी की भाषा का लोक-भाषा के स्वरूप परिवर्तन की परम्परा के आधार पर वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है।

ग्यारहवें अध्याय में गुरु-ग्रन्थ साहब से लगभग 57 अलंकारों का शास्त्रीय परम्परा के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अलंकार इन सन्तों तथा गुरु कवियों ने खोज कर नहीं बैठाए। उन्हों ने अपने सहज भावों को विचारों की बौद्धिकता तथा कल्पना की रंगीनी से रंजित कर ऐसी संगीतात्मकता प्रदान की है जो अनायास ही काव्य-प्रकार, भाषा-छन्द-अलंकार आदि के अनुरूप बन गई है। यह अन्विति ही भारतीय साहित्य की परम्परागत दायाद्य है।

बारहवें अध्याय में उपर्युक्त विवेचन के आधार पर परम्परागत तत्वों की उपलब्धियों का स्वरूप निर्धारित करते हुए इन तत्वों द्वारा गुरु ग्रन्थ काव्य के सार्वभौमिक सन्देश का स्वरूप दर्शन किया गया है। 'यह संसार एक कृषि है— यहां जो बोता वही काटता है'— अतः 'सुकृत-धर्म' ही आदि-ग्रन्थ के भक्ति-काव्य का केन्द्रीय-सन्देश है। सत्य-मार्ग पर चलते हुए निष्कपट भाव से किए गए कार्यों द्वारा ही संसार की समस्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। केवल इसी प्रकार ही विश्व-शान्ति का स्वप्न साकार होते देखा जा सकता है।'

गुरु-ग्रन्थ-काव्य की परंपरा के जिन तत्वों के स्वरूप का विवेचन आगामी पृष्ठों पर प्रस्तुत किया गया है तथा जिस की संक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रस्तावना में दी गई है, यह उस चिंगारी का परिणाम है जो वर्षों से मेरे अन्तस् में सुलग रही थी, परन्तु वह तभी जाकर प्रदीप्त हुई, जब मुझे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मार्ग-निर्देशन प्राप्त हुआ तथा डा० इन्द्र नाथ मदान ने उसे व्यवस्थित रूप दिया, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

डा० धर्म पाल मैनी जी का भी मैं ऋणी हूं, जिन्हों ने अपने प्रौढ़ अनुभव एवं सन्त-साहित्य के विस्तृत-अध्ययन के प्रकाश द्वारा न केवल इस प्रबन्ध को प्रस्तुत रूप देने के लिए मेरे मार्ग को आलोकित किया, अपितु मुझ जैसे पारिवारिक उलझनों में उलझे हुए व्यक्ति को समय-समय पर अपने हस्तगत-कार्य को करने का प्रोत्साहन देते रहे, तब जा कर कहीं पूरे पांच वर्षों में यह क्रम पूरा हुआ।

मैं अपने कालिज के पुस्तकालय के स्टाफ का हार्दिक धन्यवाद करता हूं, जिन्हों ने

इस प्रबन्ध को संपूर्ण करने में यथेष्ट योग प्रदान किया।

आज का भारतीय समाज मात्र सम्प्रदाय में आबद्ध न रह गुरुवाणी को यदि भारतीय परम्परा के आलोक में देखना आरम्भ करदे तो मुझे अपने कार्य से विशेष संतुष्टि प्राप्त होगी।

विनीत,

पंजाबी विभाग,
गवर्नमेंट कालिज, गुरदासपुर (पंजाब)
सितम्बर 15, 1968

सुरेन्द्र सिंह बिलखू
सुरेन्द्र सिंह बिलखू
15.9.68

श्री गुरु ग्रंथ साहब में परंपरागत तत्वों का अध्ययन

१- परंपरागत तत्व- श्री गुरु ग्रंथ साहब में उनका स्वरूप परंपरा क्या है? साहित्य में परंपरागत-तत्व तथा उनका स्वरूप आदि ग्रंथ से पूर्ववर्ती संत-साहित्य की सामान्य विशेषताएं- दर्शन पक्ष- साधना पक्ष- सामाजिक पक्ष- पौराणिक पक्ष- राग पक्ष- छन्द तथा काव्य-प्रकार- शृंगार- लोक-भाषा-अलंकार पृ- 1 से 11

२- श्री गुरु ग्रंथ साहब से पूर्व के संत-साहित्य की सामान्य विशेषताएं

संत गुरु श्री अर्जुनदेव- द्वारा ग्रंथ-संपादित दृ-[illegible]। जैन साहित्य (अपभ्रंश-साहित्य-१) आध्यात्मिक रचनाएं- दर्शन: ब्रह्म-आत्मा-माया। साधना पक्ष: नाम सुमिरन- सत्संग-ज्ञान-शील-शुद्धि-विनय- त्याग-दुष्कर्मों का त्याग-दया धर्म-वैराग्य। काव्य पक्ष-रूप पक्ष-अलंकार। बौद्ध सिद्धों का साहित्य (अपभ्रंश साहित्य-२) बौद्ध धर्म- [illegible]-हीनयान- [illegible]-वज्रयान-सहजयान। दर्शन: [illegible]-आत्मा- साधना पक्ष: [illegible] बाह्याचारों का विरोध- [illegible]। काव्य पक्ष-भाव पक्ष-[illegible] राग पक्ष- अलंकार। नाथ-योगी साहित्य- नाथ पंथ- सिद्ध तथा नाथ पंथ में? दर्शन: [illegible] रचना-[illegible]। साधना पक्ष: [illegible]- [illegible]-पाखण्ड का विरोध- [illegible] विरोध। काव्य पक्ष- रूप पक्ष। नाथ साहित्य में संत साहित्य की झलक: [illegible]- [illegible] रूप-गुण [illegible]- अलंकार। पूर्व मध्यकालीन संत साहित्य- दर्शन: ब्रह्म की स्थिति एवं स्वरूप- जीवात्मा-[illegible]-माया- [illegible]। साधना पक्ष: भगवान् की [illegible]-[illegible]-[illegible] [illegible]-[illegible] कर्म- मनुष्य जन्म [illegible]- [illegible] विरोध। [illegible] पक्ष-[illegible]- अलंकार एवं प्रतीक [illegible]- [illegible]- आदि ग्रंथ के [illegible] का परस्पर आदान प्रदान- उपसंहार। पृ० 12 से 99

३- श्री गुरु ग्रंथ साहब का दर्शन पक्ष:

दर्शन: ब्रह्म-विचारधारा का [illegible]-परंपरागत स्वरूप- [illegible] ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य देव छूटे हैं- आदि ग्रंथ से पूर्ववर्ती संत-साहित्य में ब्रह्म का स्वरूप एवं स्थिति- आदि ग्रंथ में ब्रह्म का स्वरूप एवं स्थिति-निर्गुण की सगुण स्थिति- गीता तथा भगवान् के गुण- जीव [illegible]-आत्मा- गीता और [illegible]-[illegible] [illegible] इनकाँ द्वारा आत्मा का प्रतिपादित स्वरूप- प्रकृति ([illegible]) परंपरागत स्वरूप-

B)

आदि ग्रंथ और प्रकृति- माया (त्रिगुणात्मक रचना) परंपरागत स्वरूप- आदि ग्रंथ और प्रकृति। हउमैं अहंकार- परंपरागत स्वरूप-नाथ साहित्य में हउमैं-आदि ग्रंथ और हउमैं- मन- परंपरागत स्वरूप-जैन तथा नाथ साहित्य में मन का स्वरूप-आदि ग्रंथ में मन का स्वरूप। आवागमन- परंपरागत स्वरूप-सिद्ध तथा नाथयोगी साहित्य में आवागमन- आदि ग्रंथ में संत तथा गुरु कवि और आवागमन।

पृ० 100 से 165

४- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साधना पक्ष:

साधना के प्रकार-सात्त्विकी साधना-राजसी भक्ति-तामसी भक्ति-निर्गुण भक्ति। वैदिक साधना-भक्ति का [illegible] स्वरूप-उत्तरवैदिक कालीन भक्ति-षट दर्शन और भारतीय साधना-पुराणों में भक्ति- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र तथा नारद भक्ति सूत्र- गीता में भक्ति- योग-ज्ञान-कर्म-भक्ति- धर्म तथा ज्ञान का समन्वय-वैष्णव भक्ति का विकास- [illegible]।

गुरमति साधना मार्ग- परंपरागत [illegible]- वैदिक साधना पद्धति से [illegible]-वेदों का प्रतिपाद्य विषय और आदि ग्रंथ-साधना मार्ग साधना और आदि ग्रंथ-भगवान् को प्राप्त करने का एक मात्र साधन भक्ति-आदि ग्रंथ और भक्ति-परंपरागत प्रेम मार्ग और आदि ग्रंथ का भक्ति मार्ग-परंपरागत नवधा भक्ति और आदि ग्रंथ में उसका स्वरूप-नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के ग्यारह प्रकार- नवधा भक्ति के अतिरिक्त- [illegible]-भक्ति परंपरा में अन्य मुख्य अंग- श्रीमद् भागवत के अंग- नारद भक्ति सूत्र के अंग-शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अंग-भक्ति-रसामृत-सिंधु के अंग- इन चारों ग्रंथों में भक्ति तत्त्वों का संक्षिप्त स्वरूप-भक्ति का १० [illegible] साधक [illegible] तत्त्व। उनका आदि ग्रंथ में स्वरूप। [illegible]: नित्य नैमित्तिक कर्मों का आत्म-समर्पण प्राणियों में भगवान् की भावना, [illegible]-धर्म और [illegible] का [illegible]- [illegible] का [illegible]- [illegible]- [illegible] निवृत्ति का पालन, गुरु कृपा- [illegible]-नाम जाप। [illegible]: [illegible], विषयासक्ति-चिंता-दुष्टों का संग, [illegible], [illegible], आडंबर-[illegible]। गुरमति साधना और योग साधना-राज योग- [illegible]- प्राणायाम-ध्यान-धारणा-समाधि [illegible]-कुंडलिनी योग, [illegible] योग- गुरमति साधना-[illegible]- [illegible]। [illegible]।

पृ० 166 से 267

५-श्री गुरु ग्रंथ साहब और समाज:

समाज के मुख्य तत्त्व- उनका स्वरूप। राजनीतिक स्थिति- बाबर का आक्रमण- बाबर के आक्रमण के समय भारत की अवस्था- बाबर का अत्याचार- गुरु नानक और सिख गुरु- गुरु ग्रंथ की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया। धार्मिक स्थिति वैष्णव धारा- निर्गुण मत की ज्ञानाश्रयी धारा- हठयोग की धारा- सूफी प्रेममार्गी धारा- इस्लाम की एकेश्वरवादी धारा- आदि ग्रंथ द्वारा कलि युग के रूप में भागवत धर्म की पुनर्स्थापना। पारिवारिक स्थिति- संस्कार परक जीवन- स्वर्ग नरक- स्त्री का समाज में स्थान। नैतिक स्थिति- सत्य का लोप- झूठ का साम्राज्य- नैतिक पतन- आदि ग्रंथ में नैतिकता का स्वरूप। आर्थिक स्थिति- पूंजीवादी समाज की बुराइयाँ- अमीर गरीब का अंतर- निर्धन का अनादर- वर्ग समाज में श्रमिक का शोषण- आर्थिकता का आदि ग्रंथ में स्वरूप। व्यवहारिक स्थिति- दिनचर्या- हिन्दुओं तथा मुसलमानों का नित्य का जीवन- रीति रिवाज- वस्त्र-भवन- व्यापार- खान पान। संख्यापरक पद्धति (सांस्कृतिक परंपरा) १- परमात्मा २- गुरु- शीश [illegible] चांद- सूरज सभी आदि ३- तीन क्रियाएं योगियों की- ताप- पद- लोक- देव- नदियां ४- वेद- युग- अवस्थाएं- वर्णाश्रम- पदार्थ- त्रिविध- दिशाएं- प्राणियां- मुक्तियां- सूफी मत के मार्ग ५- ज्ञानेंद्रियां- कर्मेन्द्रियां- तत्त्व- प्राण- तन्मात्र- विकार- सभाएं। ६- दर्शन- धर्म- चक्र- दिशाएं- यती- भेष- राग- ऋतुएं। ७- वार- धातु- [illegible]- पाताल- द्वीप- पुरियां- सुर। ८- धातु- सिद्धियां- रागपुत्र- पहर। ९- गृह- द्वार- ध्वनियां- नवधा भक्ति- द्रव्य- [illegible]- नाथ। १०- अवतार- इन्द्रियां- दशाएं पुरुष की- दिशाएं- पर्व- सन्यासियों के मार्ग- वायु। १२- योगियों के पंथ- सोने की कान्तियां- योजन- महीने- सूर्य- चक्र। १३- [illegible]। १४- रत्न- लोक। १५- तिथि। १६- चक्र- श्रृंगार- कलाएं। १७- आदि ग्रंथ के भाट कवि। १८- पुराण- भार वनस्पति- सिद्धियां सांपों के कुल। २०- [illegible]। २१- [illegible]- कुल (गोत्र) २४- एकादशियां वर्ण भर में। २५- प्रकृतियां। ३०- मास के दिन। ३१- गुरु ग्रंथ के राग। ३२- लक्षण- स्त्री- पुरुष- राजा के। ३३- तैंतीस कोटि देवता। ३४- [illegible]। ३६- भोजन के प्रकार- [illegible] के युग। ५२- [illegible]- कोटि रोमावली। ६०- शारीरिक [illegible]- संवत। ६४- [illegible]- कलाएं। ६८- तीर्थ। ७०- [illegible]- के [illegible]। ७२- शरीर के कोष्ठ। ८४- सिद्ध- लाख योनियां- नरक। आदि ग्रंथ के रचयिताओं का इन संख्याओं के प्रति प्रतिक्रिया।

ऐतिहासिक विवरण- बाबर का आक्रमण- [illegible] दूरी को और [illegible]- नामदेव, [illegible] खाना की तत्कालीन मुसलमानों द्वारा यातनाएं- बाबर द्वारा गुरु नानक को बन्दी बनाना, राजे [illegible]- [illegible] चाटुकार- प्रजा [illegible] तथा [illegible] करने वाली- रिश्वत तथा अन्याय- आदि ग्रंथ की तत्कालीन ऐतिहासिक दशा के प्रति प्रतिक्रिया। सुधार तथा क्रान्ति- गुरु नानक का क्रान्ति [illegible]।

भौगोलिक चित्रण- संसार की उत्पत्ति विषयक- सूर्य चांद-तारा। [illegible]
स्थिति के संबंध में विचार- ऋतुएँ तथा दिन रात का चित्रण। [illegible]
स्थिति- रात दिन- [illegible]- आकाश- पाताल- पृथ्वी [illegible]- वायु [illegible]
आदि गुरु विधान। उपसंहार। पृ० 268 से 336

६- श्री गुरु ग्रंथ साहब में पौराणिक तत्व:

आदि ग्रंथ और पुराण- पौराणिक तत्वों का स्वरूप तथा उनकी विवेचना-
आस्तिकता- अवतारवाद- [illegible]- [illegible] भावना- चरित्र चित्रण
[illegible]- चमत्कारवाद और चरित्र विचित्रता- वर्णाश्रम विधान- [illegible]
और पूजाचार-उपासनात्मकता- परंपरा का [illegible]- उपसंहार।

पृ० 337 से 381

७- श्री गुरु ग्रंथ साहब का शैली पक्ष?

गुरु ग्रंथ का संपादन- संपादन का प्रयोजन- [illegible] विश्लेषणात्मक-
शब्दावली तथा पदावली की परंपरा- तथा उसका विकास- और [illegible]
प्रतीक योजना (क) साधारण प्रतीक (ख) [illegible] प्रधान प्रतीक- [illegible] उपमानों
के रूपक- [illegible] तथा प्रतीक रूपक- उलटबांसियों की परंपरा- आदि ग्रंथ में
उलटबांसियों का स्वरूप- [illegible] चित्र योजना- [illegible]
[illegible]-व्यापार परक रूपक- [illegible]
रस संयोजना- आदि ग्रंथ के रचनाकारों का भाव निरूपण- रस निष्पत्ति-शृंगार-
(विप्रलंभ- संयोग) हास्य- रौद्र- करुण- वीर- वात्सल्य- भयानक- अद्भुत तथा
शांत। उपसंहार- शैली की [illegible] एवं प्रभाव।

पृ० 382 से 451

८- श्री गुरु ग्रंथ साहब के लोक काव्य प्रकार एवं छन्द योजना:

लोक काव्य प्रकार- लोक काव्य तथा छन्द का पारस्परिक संबंध- गुरुबाणी में
छन्द का स्थान। (क) लोक काव्य प्रकार- वर्णमाला [illegible] काव्य: [illegible]
पट्टी। [illegible] काव्य: बारामाह- [illegible]- थिती-दिन-[illegible]- सतवार- [illegible]-
[illegible]- गुणवंती। [illegible]- [illegible]। [illegible] काव्य: [illegible]-
[illegible]- [illegible]- [illegible]- [illegible]। [illegible] पर [illegible]
काव्य: [illegible]- [illegible]- [illegible]- [illegible]। छन्द प्रकार के [illegible]:

ओंकार- गोष्टि- गाथा- फुनहे- सद्-मुंदावणी-निरबै-वारां। लोक काव्य तथा संत-काव्य- मूल भेद।

गुरु ग्रंथ का छन्द योजना: १-दोहा २-चौपाई ३- सोरठा ४-छप्पय ५-सवैया ६-सवैया ७- सार ८- झूलना ९-रड्ड १०-गाथा ११-उल्लाला १२- अष्टपदी १३-हरिगीता १४- गीता १५- चनकला १६- चौबोला १७-हालाणा १८- छन्त १९-ताटंक २०- तोमर २१- मालिनि २२- मरहठी २३- हंसगति २४-कुण्डला २५- भुजाव्य २६-निशानी २७- पौड़ी २८- पुन: २९-पंचानन ३०-प्रमाणिका अथवा नगस्वरूपिणी ३१-राधिका ३२-उपमान ३३- रेखता ।

पृ० 452 से 576

९- श्री गुरु ग्रंथ साहिब का राग पक्ष:

भक्ति में राग तत्व का स्थान- रागों पर आधारित ग्रंथ संपादन की प्राचीन परंपरा- भक्ति काव्य की राग रागिनियों की परंपरा- संत काव्य में प्रयुक्त राग रागिनियों के प्रकार तथा उनकी विकास परंपरा- सिखों नागों का योगदान- आदि ग्रंथ और राग। गुरु ग्रंथ की वाणी तथा उसका राग तत्व संबंध। गुरु ग्रंथ में राग क्रम तथा उसका रागमाला से संबंध। आदि ग्रंथ की रागमाला पर विचार- उपसंहार। पृ० 577 से 605

१०- श्री गुरु ग्रंथ की भाषा:

भाषा का स्वरूप- भाषा की परंपरा- भाषा की विविधता- गुरु ग्रंथ की भाषा का परंपरागत विकास- बाबा फरीद की भाषा- जयदेव की भाषा- नामदेव की भाषा- कबीर की भाषा- गुरु ग्रंथ की भाषा का स्वरूप। वज्रयानी गुरुओं की परंपरा- कृष्ण- काम-कान्ह-गुरु आदि गुरुओं का वज्रयानी तथा परवर्ती संत-साहित्य में स्वरूप। आदि ग्रंथ की भाषा का वैज्ञानिक विवेचन। मात्रा भेद: दीर्घ से ह्रस्व होना- ह्रस्व से दीर्घ होना। विपर्यय: स्वर विपर्यय- व्यंजन विपर्यय। लोप: स्वरलोप: आदि स्वरलोप- मध्य स्वरलोप- अंत स्वरलोप। व्यंजन लोप: आदि व्यंजन लोप- मध्य व्यंजन लोप- अंत व्यंजन लोप। आगम: स्वरागम- आदि स्वरागम- मध्य स्वरागम- अंत स्वरागम। व्यंजनागम: आदि व्यंजनागम- मध्य व्यंजनागम- अंत व्यंजनागम। मनोभावों के आधार पर विकृत होने वाले शब्दों के रूप- लघु बहुलता एवं विशेष रूपता। आदि ग्रंथ में विभिन्न भाषाओं के शब्द तत्सम- तद्भव भाषा के शब्द- अर्धतत्सम- उक्त गुरुमुख- मध्यम

पुरुष- अन्य पुरुष- संबंध वाचक- निश्चय वाचक- प्रश्नवाचक- [illegible] कालवाचक- [illegible]वाचक- प्रकारवाचक- परिमाणवाचक तथा संख्यावाचक- [illegible]वाचक। [illegible] तथा अन्य भाषाओं का प्रभाव- उपसंहार।

पृ० 606 से 643

११- श्री गुरु ग्रंथ साहब का अलंकार विधान:

अलंकार की परंपरा- अर्थालंकार: १- अतद्गुण २- [illegible] ३- [illegible] ४- अनुज्ञा ५- अर्थान्तरन्यास ६- [illegible] ७- अवज्ञा ८- असंगति ९- [illegible] १०- उदार ११- उत्प्रेक्षा १२- उदात्त १३- उपमा १४- उल्लास १५- उल्लेख १६- कारणमाला १७- काव्यलिंग १८- [illegible] १९- तुल्ययोगिता २०- दीपक- कारक दीपक- माला दीपक- आवृत्ति दीपक २१- दृष्टांत २२- निदर्शना- २३- परिकर २४- परिकरांकुर २५- परिणाम २६- परिवृत्ति २७- परिसंख्या २८- [illegible] २९- उदाहरण ३०- प्रस्तुतांकुर ३१- प्रहर्षण ३२- प्रतिषेध ३३- [illegible] ३४- [illegible] ३५- [illegible] ३६- युक्ति ३७- रत्नावली ३८- रूपक ३९- रूपकातिशयोक्ति ४०- [illegible] ४१- [illegible] ४२- लोकोक्ति ४३- [illegible] ४४- विचित्र ४५- विभावना ४६- [illegible] ४७- [illegible] ४८- विशेष ४९- [illegible] अथवा [illegible] ५०- विरोधाभास ५१- [illegible] ५२- [illegible] शब्दालंकार: ५३- [illegible] ५४- अनुप्रास ५४- यमक ५५- [illegible] ५६- श्लेष ५७- [illegible] - उपसंहार।

पृ० 644 से 687

१२- उपसंहार:

सामान्य पृष्ठभूमि- उपलब्धियां- [illegible] सद्गुरु का [illegible] क्या है? सद्गुरु द्वारा [illegible] नाम [illegible] का स्वरूप। [illegible]- अलंकार- [illegible] राग [illegible] उपर्युक्त [illegible] आदि ग्रंथ का [illegible] है [illegible] सार्वभौमिक [illegible]ता।

पृ० 688 से 701

13- Bibliography- page 702 to 710.

[illegible]

१- परम्परागत तत्व- श्री गुरु ग्रंथ साहब में उनका स्वरूप

धुर की बाणी आई जिनि सगली चिंत मिटाई ।।
दइआल पुरख मिहरवाना। हरि नानक साचु वखाना।।सोरठ म:५
आदि ग्रंथ पृष्ठ: 628.

गुरु ग्रंथ साहब अपने आप में एक वेद है। वेद ग्रंथ के विषय में परंपरागत ज्ञान है।... जब तक कोई मनुष्य भारतीय चिंतन संबंधी पुस्तकों के परंपरागत ज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उस के लिये श्री गुरु ग्रंथ-रूप -वेद को समझना कठिन है।

डा० तारन सिंह

१-[illegible] पृ० १६

२-श्री गुरु ग्रंथ साहिब दा साहित्यिक इतिहास पृ०३१

श्री गुरु ग्रंथ साहब में परंपरागत तत्त्वों का अध्ययन

परंपरा किसे कहते हैं: परंपरा का अर्थ स्पष्ट करते हुए डा० [illegible] विवेचन [illegible] ने लिखा है, 'परंपरा का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है: वे रीति [illegible], संस्कारगत रूढ़ियां, धार्मिक मान्यताएं, और अभिव्यंजना की प्रणालियां, जो एक [illegible] को [illegible] से प्राप्त होती हैं।'[1]

परंपरा साहित्य की विकास प्रक्रिया का मूलाधार है। जिस प्रकार कोई भूमि कितनी ही शक्ति-सम्पन्न क्यों न हो, फिर भी वह बीज के अभाव में पौधे का सृजन व विकास नहीं कर सकती, उसी प्रकार कोई भी साहित्यकार अपनी अपार सृजन क्षमता के होते हुए भी परंपरा से कुछ ग्रहण किए बिना साहित्य के विकास में योग नहीं दे सकता।[2] परंपरा को स्रोत के रूप में स्वीकार करते हुए डा० [illegible] ने लिखा है, जब हम कहते हैं कि अमुक पुस्तक किसी अन्य पुस्तक की रचना का स्रोत है तो वह पुस्तक उस रचना के लिये किसी प्रकार की प्रेरणा दे रही होती। साहित्यिक रूप तथा शैली की प्रेरणा के भाव तो स्पष्ट होते हैं, परन्तु विचार की प्रेरणा से दोनों का भिन्न तथा भिन्न रूप में व्यवहार करते हैं।[3]

श्री गुरु ग्रंथ साहब में परंपरागत तत्त्वों के संबंधित जिन मुख्य प्रश्नों का अध्ययन हमारे इस प्रबंध का प्रतिपाद्य विषय है, उन को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) दर्शन पक्ष, (२) भाव पक्ष, (३) काव्य पक्ष। किसी रचना का केन्द्रीय विषय वस्तु, उसका भाव पक्ष विधान, उसकी शैली तथा अन्य तत्त्वों का संकलन-विकल्प परंपरा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। परंपराओं के केन्द्रीय विषय, प्रकृति, नारी, [illegible] पुरुष, समाज, विविध विचार, घटनाएं आदि- समय समय पर बदलते रहते हैं, जिन से अनेक भाव रूप एवं उनकी शैली में भी परिवर्तन आ जाता है। जब परंपराएं सूक्ष्म तत्त्वों पर केन्द्रित होती हैं तो उनके आधार रूप भी तदनुकूल होते हैं, परन्तु स्थूल एवं विस्तृत विषयों पर केन्द्रित होने पर उनके आकार में भी विस्तार आ जाता है। विभिन्न काव्य रूप मुक्तक, गीति, प्रबन्ध आदि इसी सूक्ष्मता एवं स्थूलता के द्योतक हैं। इसी प्रकार उन्हीं शैलियों में भी मूल प्रवृत्ति एवं विचार की व्याख्या करते समय भी उनकी मूलभूत चेतना

१- साहित्य का इतिहास दर्शन पृ० [illegible], [illegible] शर्मा [illegible] का वैज्ञानिक विवेचन पृ० [illegible] पर उद्धृत।

एवं तत्संबंधी प्रवृत्तियाँ, उनके आधारभूत पक्ष, उनके केन्द्रीय विषय, उनकी रूपगत विशिष्टता एवं उनकी शैली संबंधी प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना चाहिए। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिक चेतना, उसके बाह्य स्वरूप एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों में अपनी विशिष्टता होती है, वैसे ही प्रत्येक परंपरा की भी अपनी विशेषता होती है, जो उसके विभिन्न पक्षों, विभिन्न रूपों एवं विभिन्न प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त होती है।[४]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम साहित्यिक परंपरा के तत्वों को निम्नलिखित अंगों में विभक्त कर सकते हैं:-

१- विचार पक्ष, जिसमें चिन्तन और मनन दोनों सम्मिलित हैं।

२- भाव पक्ष। ३- शैली पक्ष। ४- रूप पक्ष। ५- उपलब्धियां।

इन तत्वों में विषय-वस्तु, विचार, तथा भाव, साहित्य का आन्तरिक स्वरूप है तथा शैली एवं रूप पक्ष बाह्य स्वरूप है। इन दोनों स्वरूपों के सम्मिलित प्रभाव को उपलब्धियों के अन्तर्गत रखा जायेगा। डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने अपने ग्रंथ साहित्य के तत्व में वस्तु तत्व, भाव तत्व, विचार तत्व, कल्पना तत्व इन चार भागों में साहित्य के तत्वों का विभाजन किया है। वस्तु तत्व के अंतर्गत उस उपादान सामग्री का विवेचन होता है, जिससे साहित्य का निर्माण होता है। यह जिसका स्थानान्तरित एवं व्यवस्थित रूप साहित्य है।[५] भावतत्व के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की ऐसी अनुभूतियों एवं मानसिक दशाओं का समावेश किया जाता है, जिनमें भाव का अस्तित्व किसी न किसी मात्रा में होता है।[६] मनुष्य मन के सभी भावों को मूलत: आकर्षण-विकर्षण से ही विकसित माना गया है।[७] इस प्रकार आकर्षण विकर्षण से मूलत: नौ भावों की सृष्टि मानी जा सकती है।[८] विचार तत्व का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त लिखते हैं, 'विचार का सदा किसी न किसी समस्या, लक्ष्य या उद्देश्य से संबंध रहता है। समस्या-समाधान लक्ष्य-प्राप्ति या उद्देश्य-पूर्ति के निमित्त किया गया चिंतन ही, वस्तुत: विचार होता है। अन्यथा वह कल्पना मात्र रह जाता है।'[९] कल्पना तत्व को साहित्य विवेचकों ने मूल-सर्जन-शक्ति, व्यक्ति की चेतना से प्रेरित क्रिया, आत्म-चैतन्य युक्त, आत्मानुभव की क्षमता से परिपूर्ण, चेतन और अचेतन की संयोजक, व्यक्ति और विषय में संपर्क-स्थापक आदि रूपों में स्वीकार किया है।[१०]

२- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- पृ० ३६

३- डा० तारन सिंह- पंजाबी साहित ते साहितकार- पृ० २०

४- डा० गणपति चन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ०४२-४३।

आदि ग्रंथ के साहित्यिक अध्ययन के लिये साहित्य के तत्वों के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर, परंपरागत तत्वों को निम्नांकित रूप में स्वीकार किया जा सकता है:-

विचार पक्ष अथवा दर्शन : डा० त्रिलोकी प्रसाद दीक्षित ने अपने ग्रंथ मध्यकालीन हिन्दी सन्त-विचार और साधना में सन्त साहित्य की विचारधारा के जिन तत्वों का उल्लेख किया है, उनमें, ब्रह्म, जीवात्मा, जगत्, प्रकृति, माया, आदि का समावेश किया है।[११] सन्त साहित्य की विवेचना में मन, कर्म, तथा आवागमन की समस्याओं के समाधान विशेष रूप से व्यक्त किए गए हैं, अतः उन को भी विचार पक्ष में ही लेना ठीक होगा। साधना पक्ष भी समस्याओं का समाधान ही है, अतः भक्ति का स्वरूप भी विचार तत्व के ही अंतर्गत है।

भाव तत्व: विचार और भाव में सब से पहला अन्तर दोनों से संबंधित मानसिक प्रक्रियाओं का अंतर है। हमारी समस्त मानसिक प्रक्रियाओं को मनोविज्ञान के अनुसार ज्ञानात्मक,वेदनात्मक तथा चेष्टात्मक इन तीन स्थूल पक्षों में विभाजित किया जाता है इनमें से विचार का संबंध हमारी चेतना के ज्ञानात्मक पक्ष से है जबकि भाव का वेदनात्मक पक्ष से।[१२] मानसिक प्रक्रिया के इस वेदनात्मक पक्ष में मांसेलिक बिम्बों एवं प्रतीकों के अप्रत्यक्ष स्वरूप, तथा वस्तुओं के रूपगुणों को समग्र रूप में ग्रहण किया जाता है।[१३] इस प्रकार भाव पक्ष के इस वेदनात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति सन्त साहित्य में एक विशेष प्रकार की विलक्षण शैली में हुई है। इस शैली की शब्दावली, पदावली, प्रतीक योजना, बिम्ब-चित्र-योजना, अलंकार विधान, रस-संयोजन तथा राग-तत्व की भी एक विशिष्ट परंपरा है। जिसने आदि ग्रंथ-पाठ के भाव-पक्ष को प्रभावित किया है।

वस्तु तत्व: वस्तु तत्व का संबंध विशेषतः उन परिस्थितियों से होता है, जिनसे किसी साहित्य का जन्म होता है। इन परिस्थितियों को वातावरण भी कहा जा सकता है। इस संबंध में विद्वानों का विचार है, परंपरा रूपी बीज सर्जनात्मक व्यक्तित्व की उर्वर भूमि में वपित होकर नये पौधों के रूप में विकसित होता है, किन्तु उसके लिये उसे कुछ तत्वों की और अपेक्षा होती है: वे तत्व हैं- जल-वायु, प्रकाश आदि। इन्हीं के समूह को हम यहां वातावरण की संज्ञा दे सकते हैं। कोई भी परंपरा वातावरण से प्रेरणा पाए बिना उद्दीप्त एवं सक्रिय नहीं हो सकती, इतना ही नहीं उसकी भावी प्रगति एवं उसके सम्यक् विकास के लिये भी संबंधित वातावरण के चार पक्ष निर्धारित किये जा सकते हैं (१) युग विशेष की सामान्य परिस्थितियां (२) साहित्यकार की विशेष परिस्थितियां (३) साहित्यकार

के पाठकों पर विशेष वर्ग (४) विशिष्ट रचना से संबंधित विशेष प्रेरणा स्रोत।[14]

वस्तु रचना के उपर्युक्त कारणों के अनुसार हम आदि ग्रंथ के निम्नलिखित प्रकारों को ले सकते हैं:-

(१) युगविशेष की सामान्य परिस्थितियां:- (क) राजनीतिक (ख) धार्मिक (ग) सांस्कृतिक (घ) पारिवारिक (ङ) आर्थिक, (च) नैतिक (छ) व्यावहारिक (ज) वैज्ञानिक।

(२) साहित्यकार की विशेष परिस्थितियां। आदि ग्रंथ के साहित्यकारों की विशेष परिस्थितियां विशेषतः धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक तथा राजनीतिक अवस्थाओं से संबद्ध हैं, परन्तु युग विशेष की सामान्य सभी परिस्थितियों ने आदि-ग्रंथ के साहित्य को प्रभावित किया है।

(३) वर्ग विशेष के पाठकों पर विशेष वर्ग: आदि ग्रंथ एक संप्रदाय का शास्त्र का गुरु ग्रंथ है। सम्प्रदाय का पूज्य विशाल ग्रंथ में विश्वास तथा उसके साथ सम्बन्धित का एक विशिष्ट व्यावहारिक रूप है। इसलिये गुरु ग्रंथ केवल सिक्खों का ही ग्रंथ नहीं जो इसे गुरु तुल्य मानते हैं, अपितु यह ग्रंथ उन सब के लिये पूज्य एवं श्रद्धेय है, जो गुरु में विश्वास रखते हैं।

(४) आदि ग्रंथ के प्रेरणा स्रोत: आदि ग्रंथ एक निर्गुण संत साधना का ग्रंथ है। यदि यह कहा जावे कि आदि ग्रंथ में वैदिक काल से लेकर १६वीं सदी ई० तक के धार्मिक विचार एवं भावना के परंपरागत विकास की सब रंग अंकित है, तो यह बिल्कुल ठीक है। आदि ग्रंथ महाभारत, वेद, उपनिषद्, वेदांत दर्शन, श्रीमद्-भागवत, गीता, पुराण-साहित्य, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र आदि से प्रभावित है। इस संबंध में डा० तारन सिंह लिखते हैं: सिक्ख धर्म अपनी धर्म पुस्तक में ही कुलभारतीय है, और राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखता है। गुरु ग्रंथ साहब अपने आप में एक वेद है।[15] वेद के विषय में डा० भनोदय कहते हैं, वेद गुरु के सिवाय में परंपरागत ज्ञान है। जब तक कोई मनुष्य भारतीय विज्ञान संबंधी पुस्तकों के परंपरागत ज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे भी गुरु ग्रंथ या वेद को समझना कठिन है। यह महान् ग्रंथ का अभिव्यक्ति पुरातन सनातन ज्ञान में से हुआ है, फिर यह ग्रंथ नयी परंपरा को विकास प्रदान करता है। इस प्रकार यह रचना नवीन भी है, परन्तु सर्वथा नवीन नहीं है, क्योंकि इसका मूल तो वेद में है। भारतीय गुरु-विद्या का

५- साहित्य के तत्त्व- पृ० १०५   ६- वही पृ० १०६

७- वही पृ० १४२   ८- वही पृ० [illegible]४

सम्यक् ज्ञान ही किसी मनुष्य को श्री गुरु ग्रंथ साहब की वाणी का बोध कराने में सहायक सिद्ध होगा। इस ज्ञान के बिना श्री भगवान् ग्रंथ के रहस्य को जानना कठिन है।[16] इस के साथ ही सिद्धों, नाथों आदि के कवियों तथा सूफियों ने सन्त काव्य को बहुत प्रभावित किया। उन्हीं की शैली तथा शब्दावली में परंपरागत विचारों को नवीनरूप में प्रस्तुत करते हुए सन्त कवि इन योगियों के मुक्त रूप से ऋणी हैं।

५- रूपक पक्ष: डा० कुन्दनलाल दुग्गल ने लिखा है, 'काव्यरूप मानव-अनुभूति की उस अभिव्यंजना का द्योतक है, जो शब्द के माध्यम से किसी विशिष्ट रूप को ग्रहण करती है। कवि की विशिष्ट अनुभूति जब शब्दों के माध्यम से विशिष्ट शैली में प्रकट होकर, विशिष्ट रूप में अभिव्यंजित होती है, तो उस अभिव्यंजित रूप-विशेष को काव्य रूप की संज्ञा प्राप्त होती है। यह काव्य रूप यद्यपि काव्य का बाह्य रूप ही है, तथापि उसकी आलोचना का मुख्य विषय वह आन्तरिक अनुभूति ही होती है, जिसने उस बाह्य रूप में अपने आप को अभिव्यक्त किया है।'[17]

आदि ग्रंथ काव्य मुख्यतः गीति-काव्य है। गीति काव्य के बीज वेद में ही पड़ चुके थे तथा उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सिद्धों के पदों में प्रेरणा का वह बीज मिला जो क्रमशः क्षेमेन्द्र, जयदेव के पदों में अंकुरित होता हुआ मध्यकाल में आकर पल्लवित हुआ।[18] छन्दों के माध्यम से जब मानवीय अनुभूतियां अभिव्यक्त होती हैं, तो उनमें एक विशेष प्रकार की प्रभविष्णुता आ जाती है, जो पाठक के चित्त को अनायास प्रभावित करती है।[19] साधारण व्यवहार में जो काव्य शब्द का प्रयोग पद्यबद्ध रचना के लिये होता है, वह कारण नहीं है। जीवन की बिखरी हुई अनुभूतियों को समेट कर जब कवि उन्हें शब्द और अर्थ के माध्यम से एक कलापूर्ण रूप देता है, तभी काव्य का जन्म होता है। ऐसा तभी होता है, जब कवि

९- मनोविज्ञान, जदुनाथ सिन्हा १९६०-पृ० २१३ पर से साहित्य के तत्त्व पृ०१५६ पर

१०- साहित्य के तत्त्व पृ० १८७

११- मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना- पृ० ६३-७६

१२- साहित्य के तत्त्व पृ० १६१   १३- वही पृ० १६१

१४- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- पृ० ४३

१५- प्यासी है धरती- डा० तारन सिंह पृ० १६

१६- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्यक इतिहास- डा० तारन सिंह पृ०३१-

१७- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उन का विकास-पृ० ३ -प्राक्कथन।

अभिव्यक्ति के लिये व्यग्र हो उठता है। अनुभूत सुख या आनंद उसके हृदय में अंटाए नहीं अंटता, वह कहने के लिये आतुर हो उठता है। उसकी इस आतुरता में अपनी अनुभूतियों को केवल कागज भर पर देने की आकांक्षा नहीं होती, प्रत्युत पाठक तक उन्हें पहुंचा देने की, उन्हें एक सार्वभौम रूप देने की भावना भी उसके पीछे छिपी रहती है। छन्द उसे इस कार्य में बहुत अधिक सहायता करते हैं। इसीलिये इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि लोक में भी छन्दोबद्ध रचना को ही काव्य कहा जाता है।[20] जिस मानसिक प्रक्रिया के द्वारा भावुक होकर कवि अपनी अनुभूति को प्रकट करता है उसे प्रेरणा कहते हैं। जो अभिव्यक्ति जितनी ही सहज प्रेरित होगी उसके स्वरूप में कवि के हृदय-कमल को खोलने की उतनी ही अधिक क्षमता होगी। यह अनुभूति और अभिव्यक्ति का अविच्छेद्य संबंध आदि कालीन कविता में अधिक दिखाई पड़ता है। कारण यह कि आदि काल में न तो कोई परंपरा रहती है, न छन्द होते हैं, और न तो काव्य के कोई रूप। केवल भाषा का माध्यम लेकर कवि का अनुभूत सत्य स्वतः किसी एक रूप में जिसका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, अभिव्यक्त हो पड़ता है। यही अभिव्यक्ति अनुभूति की सच्ची प्रतिमूर्ति होती है। इन्हीं से एक परंपरा बन जाती है, और आगे आने वाले कवियों के लिये अभिव्यक्ति का एक मार्ग बन जाता है।[21]

६- छन्द रूप: इस संबंध में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखे हैं, 'संस्कृत प्राकृत में तुक मिलाने की प्रथा नहीं थी। दोहा, वह पहला छन्द है, जिसमें तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ और आगे चलकर एक भी ऐसी अपभ्रंश कविता नहीं लिखी गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा केवल नवीन छंद लेकर ही नहीं आई, बिल्कुल नवीन साहित्यिक कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई।'[22] चौपाई दोहे का अधिक प्रयोग जायसी में सर्वप्रथम मिलता है। कबीर और गुरु नानक ने भी इनका प्रयोग किया है। परन्तु बीज रूप में यह प्रथा बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में मिल जाती है। संभवतः चौपाई दोहे का सब से पुराना प्रयोग यही है।'[23] सोरठा का भी अपभ्रंश में प्रयोग हुआ।[24] हिन्दी

१८- वही पृ० ५ (प्राक्कथन)
१९- वही पृ० ३ अध्याय-१।
२०- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास-पृ० ३
२१- वही पृ० ४
२२- हिन्दी साहित्य का आदि काल-१००
२३- वही पृ० १०३
२४- अपभ्रंश साहित्य पृ ४०५

साहित्य में बारहमासा काव्य की विषय-वस्तु का छप्पय भी अपभ्रंश में प्रयुक्त हुआ है। छप्पय, अपभ्रंश का संकीर्ण वृत्त है। छप्पय का प्रयोग १०वीं शताब्दी से आरम्भ हुआ।[25] चंदबरदाई छप्पयों का राजा था। रासो ग्रन्थ में छप्पयों की ही प्रधानता है। कविराज श्यामलदास तो रासो में छप्पय और दूहा के अतिरिक्त और किसी छन्द का अस्तित्व ही नहीं मानते, जैसे तो इस कथानक के भंडार में चंदबरदाई तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं, पर अन्त तक वे छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।[26] कवित्त-सवैया का प्रचलन कब से हुआ कहना भी कठिन है। ये ब्रजभाषा के अपने छन्द हैं।[27]

इन परंपरागत छन्दों में से दोहा-चौपाई, छप्पय तथा कवित्त-सवैया छन्दों का आदि ग्रंथ में मुख्यत: प्रयोग हुआ है।

७- काव्य प्रकार: हिन्दी भक्ति साहित्य के काव्य प्रकारों के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का विचार है कि उत्तर मध्यकाल का हिन्दी साहित्य प्रधान रूप से लोक-साहित्य है। उसके अध्ययन के लिये लोक-प्रचलित काव्य-रूपों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अभी तक इस काल के काव्य रूपों के अध्ययन के लिये कहीं भी संस्कृत के अलंकार शास्त्र की आलोचना करने वाले आलंकारिक आचार्यों को लाया जाता है। यह प्रवृत्ति अवश्य बंद होनी चाहिए। जब तक मध्यकाल के साहित्य के लौकिक रूप को नहीं समझा जाता। तब तक हम पूरी साहित्यिक साधना को ठीक से नहीं समझ पा सकेंगे।[28] द्विवेदी जी के उपरलिखित कथन के प्रकाश में आदि ग्रंथ काव्य का अनुशीलन करने से पता चलता है, कि आदि ग्रंथ काव्य लौकिक काव्य प्रकारों से अधिकतर प्रभावित है। इस ग्रंथ में बावन अखरी, आरती, पहरे, दिन-रैन, थिति, सतवारा, बारहमाह, सोलहे, छंत, फाग, घोड़ियाँ, अलाहुणियाँ, डखणे, पुन्हे, चउबोले, रुती, गुणवंती, पट्टी, ओंकार, सिध-गोसटि, आनंद, सद, सहसकृती, करहले, बिरहड़े, सुखमणी, अंजुली, गाथा, आदि काव्य प्रकार भी मिलते हैं, जिनकी ओर द्विवेदी जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

२५- वही पृ० ४०६
२६- हिन्दी साहित्य का आदि काल-१०४
२७- वही पृ० ११०
२८- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-विचार और वितर्क-इलाहाबाद-१९४९ ई० पृ० २२४

न- राग तत्त्व: प्राकृत रूप में गाया जाना, [illegible] है [illegible] किन्हीं [illegible] [illegible], परन्तु रागों के आधार पर [illegible] ग्रंथ निर्माण [illegible] [illegible] संगीत-रचना के रूप में [illegible] [illegible] विशेष [illegible] जाता है। ऋग्वेद के [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं, किन्तु उनका विस्तार [illegible] [illegible] संगीता-त्मक हैं।[29] सामवेद में आधार पाठ और संगीत का सुन्दर समन्वय हो गया है। [illegible] जीवन और [illegible] के [illegible] [illegible] की प्रतिष्ठा है। [illegible] कारण है, [illegible] सामवेद [illegible] भी [illegible] किया गया और [illegible] कृष्ण ने [illegible] उसकी विभूतिना 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कह कर पुष्ट की।[30]

वैदिक काल के अनंतर रामायण और महाभारत में काव्य [illegible] के माध्यम से [illegible] प्रचार करने लगा। वाल्मीकि [illegible] के प्रथम [illegible] माने जाते हैं। [illegible] से संगीत का [illegible] विकास होने लगा। वाल्मीकि का रामायण भी गाये जाने के लिये [illegible] गया था, लव कुश ने [illegible] राम को सुनाया था।[31] भरत मुनि ने जब अपने नाट्यशास्त्र की रचना की तब संगीत के [illegible] की भी योजना की गई थी। [illegible] अलौकिक [illegible] वैदिक संगीत [illegible] [illegible] प्राप्त था।[32] लौकिक संस्कृत में [illegible] के लक्षण [illegible] के ग्रंथों में मिलते हैं।

आदि ग्रंथ के [illegible] से संस्कृत [illegible] संगीत [illegible] है, [illegible] में संगीत [illegible] के प्रमाण [illegible] हैं। शास्त्रीयता के आधार पर लौकिक गान के दो भेद हैं- मार्ग और देशी। [illegible] परंपरा [illegible] में होता है, जिसके लिये नाट्यशास्त्र कार भरत ने भी प्रमाण माना गया है। [illegible] अतः उसमें [illegible] लक्षण विधान है। विभिन्न भू-भागों के निवासियों की रुचि और रीति के [illegible] से गीत के [illegible] की भिन्न भिन्न परिणतियां हैं, और उनकी संज्ञा देशी है। [illegible] में [illegible] विशेष रूप में देशी [illegible] है। [illegible] कारण नहीं, [illegible] संगीत-तत्त्वों के कारण है। लोक-गानों का परिष्कृत रूप [illegible] गान है, और [illegible] में [illegible] का प्रारंभिक रूप [illegible] प्रथम भेद है। [illegible] में [illegible] शास्त्रीय संगीत के विधान को [illegible] प्राप्त है, वहां गानों में देशी संगीत [illegible] का [illegible] है। लौकिक [illegible] संगीत का [illegible] है। आदि ग्रंथ में जो गीत संगृहीत हैं, उनमें [illegible] और [illegible] के गानों की

स्वाभाविक प्रवाह पाया जा सकता है।[33]

परन्तु आदि ग्रंथ के गेय-पदों की परंपरा और भी पुरानी है। नाथों के अतुकांत निर्गुणों के साथ पद लिखने की प्रथा स्वीं- १४वीं शताब्दी ई० में भी वर्तमान था। जैसे सिद्धों और नाथों के कतिपय पद प्राचीन राग-रागिनियों से युक्त मिलते हैं। रामकलाद, भुकुमादा, गुनाद और कण्वपाद आदि के पद विभिन्न राग रागिनियों के आधार पर लिखे गये हैं। इन पदों के साथ राग गूजरी, राग भैरवी, राग आभोग, राग पटमंजरी, राग गौड़ आदि रागों का निर्देश है।[34] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी विद्वानों का विचार है, गीत गोविन्द नामक के प्रणेता जयदेव के भी दो पद सिक्खों के आदि ग्रंथ में संगृहीत हैं।[35] 'गीत गोविंद' नामक ग्रंथ भी जयदेव की कृति पारम्परिक-गान-नाट्य-गान की अनुपम निधि है। इसमें गीतात्मक काव्य रचना की दृष्टि से यह कृति सर्वथा मौलिक है। विद्वानों का अनुमान है, कि जयदेव ने इस की रचना करते समय बंगाल के लोक जीवन में प्रचलित लोक प्रिय यात्रा गानों से प्रेरणा ग्रहण की थी। किन्तु कोश मतवेद के अनुसार इस कृति की मौलिकता अक्षुण्ण है।[36] गीत गोविंद के ललित पदों ने हिन्दी की परवर्ती हिन्दी गीति काव्य को प्रभावित किया है। विद्यापति, जयदेव के अनुगामी माने जा सकते हैं। विद्यापति के पद गेय पदों की परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी हैं। यहां, जहाँ सातवीं ई० में गेय-विधाओं के गानों की प्रथा आरंभ हुई, बारहवीं शताब्दी ई० में जिसे जयदेव जैसे भाषा गीतकार कवि का अवलंब मिला, वह १४वीं शताब्दी ई० में विद्यापति के पदावली में आकर एक निश्चित दिशा ग्रहण कर लेती है। यह बात भी सच है कि इसी कालों में हिन्दी गेय पदों का युग विद्यापति से ही आरंभ होता है। इनकी पदावलियां परवर्ती गेय पदों के सर्वथा अनुरूप हैं। सूर, नंद, व्यास, हित आदि सभी कृष्णभक्तों ने विद्यापति के पदों ने परवर्ती सन्त काव्य और कृष्ण काव्य के पदों का पथ प्रशस्त किया है।[37] आदि ग्रंथ काव्य इसी काव्य परंपरा का वैविध्यपूर्ण विकास है। जिसमें इस परंपरा के समस्त रूप भी दर्शन होते हैं।

२९- नाट्य रागों के मूल स्रोत और उनका विकास पृ० १५४

३०- वही पृ० १५६

३१- वही पृ० १५७

३२- वही पृ० १५७-१५८

३३- हिन्दी साहित्य कोश पृ०२६०

३४- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १०६

६- साधना तत्व: काव्य के साथ-साथ में साधना तत्व का भी विशेष महत्व है। इस तत्व का संबंध है सिद्धों, गुरु ग्रंथ की परंपरा से नाथ-योगी साहित्य में साधना-भाव के रूप में ढूंढा जा सकता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं: कबीर दास आदि साधकों के नाम पंक्तियों और शब्दबानियों के रूप में प्राप्त, पद और दोहे आदि के रूप में स्वीकार कर लिये हैं। जहाँ तक इन नाम आदि की परिणति हो है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि कबीर आदि ने अनेक ऐसी पूर्ववर्ती साधनाओं से ग्रहण की थीं, जिनका कि स्वीकार की साधना वहाँ नहीं था, जो इन योगियों या शब्दबानियों का था। कबीर आदि के योगियों और शब्दबानियों के पारिभाषिक शब्दों को अपने ढंग पर अपनाया गया है। जिस प्रकार वैष्णव साधकों के गृहीत भक्ति को अपने राम, दशरथ-सुत नहीं थे, ठीक उसी प्रकार इनका शब्द सुन्न नाद, बुद्ध, समाधि, गुरु, पिंगला आदि भी शब्द-बानियों और योगियों के अपने अर्थों से भिन्न हो गये हैं।[38]

उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर आदि-ग्रंथ के निम्नांकित परंपरागत तत्वों का अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा:-

१- आदि ग्रंथ के पूर्ववर्ती अन्य काव्यों का सामान्य विवेचन-परंपरागत तत्वों के आधार पर।

२- दार्शनिक पक्ष — ब्रह्म-जीव- जगत्-माया- कर्म-मन- आवागमन।

३- साधना पक्ष — साधना-भेद, परंपरागत भक्ति का स्वरूप एवं विकास- आदि ग्रंथ की भक्ति का स्वरूप।

४- सामाजिक पक्ष — राजनीतिक- ऐतिहासिक- धार्मिक-पारिवारिक-नैतिक-आर्थिक सांस्कृतिक-व्यवहारिक-मनोवैज्ञानिक आदि तत्व।

५- पौराणिक तत्व — एक ब्रह्म- अवतार वाद- पौराणिक आख्यान-पौराणिक देव आदि।

६- गेय तत्व — शास्त्रीय पद्धति-मार्ग-देशी- लौकिक गीति काव्य-शिव-आनंद-शास्त्र गीत गोविंद काव्य- विद्यापति का गीति काव्य-पूर्ववर्ती अन्य काव्य- आदि ग्रंथ का गुरुवाणी काव्य।

३७- सन्त काव्य पृ० १३४-१३५

३८- To conceive of writing such a poem was a remarkable piece of originality, for it was an immense step from the popular songs of 'yatras' to produce so remarkably beautiful and finished a work".

A.B. Keith- A History of Sanskrit Literature-Lond Page-192.

७- छन्द तत्व — छन्दों की शास्त्रीय परंपरा- तथा आदि ग्रंथ काव्य।

८- नायक प्रकार — लोक नायक परंपरा तथा आदि ग्रंथ के नायक प्रकार।

९- अलंकार तत्व — शास्त्रीय परंपरा तथा आदि ग्रंथ में उनका प्रयोग।

१०- शैली पक्ष — शैली की विलक्षणता- शैली की परंपरा- भाव पक्ष- रस निष्पत्ति- शैली दुरूहता तथा सुगमता- आदिग्रंथ की विशिष्ट शैली।

११- भाषा तत्व — गुरु ग्रंथ की भाषा- परंपरा विवेचन- भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण- अन्य भाषाओं के प्रभाव का सांकेतिक अध्ययन।

१२- उपसंहार — आधुनिक तत्वों के आधार पर आदि ग्रंथ रचना की उपलब्धियों का वैशिष्ट्य विवरण। इन तत्वों का आदि ग्रंथ के संदेश को व्यापक बनाने के लिये योगदान। आदि ग्रंथ का सार्वभौमिक संदेश।

ooo

३७- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १८०

३८- हिन्दी साहित्य की भूमिका- पृ० ३७

२- श्री गुरु ग्रंथ साहब से पूर्व के सन्त साहित्य की सामान्य विशेषताएं:

अप्पा अप्पहं देउलि वाहि णावि णिवसेइ।

सो णिरंजणु अत्थि णवि णिम्मलु होइ गवेसु ॥६४॥

पाहुड़ दोहा: मुनि राम सिंह

(आत्मा जिन माया देवों रूप देवालय में रहो। क्यों नहीं देखो?
हे योगी! निरंजन वहां जाता किं-किं मुक्त में होके देखो।)

गुरु ग्रंथ से पूर्व के सन्त साहित्य की सामान्य विशेषताएं

सन्त साहित्य

सन्त: सन्तों के विराट-व्यक्तित्व की भांति सन्त शब्द भी बहुत व्यापक है[1]। सन्त शब्द से क्या तात्पर्य है? सन्त साहित्य के अन्तर्गत हमें किन किन कवियों को लेना चाहिए? आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने संत शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में खोजा है। सन्त शब्द का प्रयोग प्राय: बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी वा सदाचारी व्यक्ति के लिये किया गया मिलता है और कभी कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु वा महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझ लिया जाता है। कुछ लोग इसे शान्ति शब्द (शान्त - निवृत्ति मार्गी या विरागी) अथवा सत् का बहुवचन अथवा एक मात्र सत्य पर विश्वास करने वाला, या उसका पूर्ण अनुभव करने वाला मानते हैं। अतएव संत शब्द इस विचार से उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत् रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो।[2] जो सत्य स्वरूप नित्य सिद्ध-वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वही संत है।[3] बाह्य के साथ संतों के आंतरिक रूपों को देखते हुए डा० रांगेय राघव सन्तों को तीन श्रेणियों में रखते हुए कहते हैं, वैदिककाल में एक ओर ऋषि, मुनि तथा तपस्वी हैं, तो दूसरी ओर व्रात्य। उत्तर वैदिक काल - बुद्ध काल में हमें दो स्वरूपों के संत मिलते हैं। एक वे जो आर्य सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण थे, दूसरे वे जो ब्राह्मण धर्म से दूर रहते थे। तीसरे वे संत जो आगे चलकर कबीर रूप में परिणत हो गये।[4] इस प्रकार सन्त शब्द को विस्तृत अर्थों में लेकर निर्गुणिया संतों के पूर्ववर्ती साहित्य की उन सामान्य विशेषताओं का अध्ययन अभीष्ट होगा, जिन में आदि ग्रंथ साहब के परंपरागत तत्वों के बीज विद्यमान हैं। इस दृष्टि से पूर्ववर्ती संत साहित्य को इस प्रकार काल क्रम के अनुसार रखा जा सकता है:-

---

१- मध्यकालीन हिन्दी संत विचार और साधना- डा० केशनी प्रसाद चौरसिया पृ० ७

२- डा० केशनी प्रसाद द्वारा उत्तरी भारत की संत परंपरा पृ०३-५ से मध्य कालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना पृ०७ पर उद्धृत।

(१) वैदिक कालीन ऋषियों की रचनाएं।

(२) उत्तरवैदिक कालीन सन्तों का साहित्य।

(३) महाकाव्य कालीन संतों का साहित्य।

(४) जैन मुनियों तथा बौद्ध सिद्धों का युग- ७६०-१००० ई० तक।

(५) नाथ- योगी साहित्य १०००-१२०० ई० तक।

(६) पूर्वनानक-कालीन संत साहित्य १२००-१४६० ई०

वैदिककाल-श्रुति ग्रंथ

भारत की समस्त विचार धाराओं का मूल स्रोत श्रुति ग्रंथ हैं। इनमें प्रतिपादित विचार धारा श्रौत दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। सन्त लोग श्रौत दर्शन से प्रभावित थे या नहीं इस संबंध में दो मत हो सकते हैं। कुछ लोग इन्हें वेद-विरोधी मानते हैं, और कुछ वेदानुयायी। इस मत-वैषम्य का कारण सन्तों में पाई जाने वाली उक्तियां हैं।[5] इन उक्तियों में मूलतः कोई वैषम्य नहीं है। बात केवल सही अर्थ निकालने की है। जहां पर सन्तों ने वेद-शास्त्रों की निंदा की है, वहां पर उनका अभिप्राय वेद-शास्त्र के कोरे पाठ को बिना बूझे पूजा रूप में स्वीकार करने की निंदा करना है।

वेद पढ़हि हरि नामु न बूझहि। माया कारणि पढ़ि- पढ़ि
लूझहि। म:३

परन्तु समझ बूझ कर पाठ करने को उत्तम माना गया है।
दाता हरि कीरत गाई।
वेद पाठ मति पापा खाई। म:१[7]

३- उत्तरी भारत की सन्त परंपरा- पृ० ५ (द्वितीय संस्करण- सं० २०२१)

४- भारतीय संत परंपरा और समाज- डा० रांगेय राघव पृ० ७

५- हिन्दी निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-डा० त्रिगुणायत।

६- आ०ग्रं० पृ० १०५०

७- आ०ग्रं० पृ० ७९१ म:१

सन्तों ने वेदों में वर्णित विषय के परिणाम को उपाधि से विभूषित किया है:-

वेदा भेद नाम उपम को सुणाहि नाम्हं फिरहि जिउ बेताहिआ।[८]

सन्तों ने वेदों के प्रति श्रद्धा को दुहाई देकर व्यक्त करते हुए कहा, कि वेद-शोध झूठे नहीं है, किन्तु झूठा वह है, जो उन्हें समझ बूझ कर नहीं पढ़ता।

वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारे। कबीर[९]

वेदों में जिस उत्तम नाम का उल्लेख सन्त साहित्य में मिलता है, वह ब्रह्म का एक होता है। उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं। सब देव उस में एक हो जाते हैं, और वे सब उसी के अंग स्वरूप हैं:

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते, न पंचमो न षष्ठ:

सप्तमो नाप्युच्यते, नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। स

सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणिति यच्च न तमिदं निगतं सह: स

[illegible] एष एक एकवृदेक एव। सर्वे अस्मिन् देवा एक वृतो भवन्ति।

अथर्ववेद- १३-५[१०]

उपनिषद् का मुख्य विषय

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आत्मा है। संहिता से लेकर आरण्यक पर्यन्त जो ब्रह्म आत्मा से भिन्न रूप में प्रतिपादित है, वह उपनिषद् में उसे अभिन्न माना गया है।[११] उपनिषद् में आत्मा के अतिरिक्त विश्व में और कोई पदार्थ नहीं माना गया। उस आत्मा के जानने से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[१२] परन्तु उस आत्मा का ज्ञान, स्वाध्याय, बुद्धि तथा श्रुति ज्ञान से प्राप्त नहीं हो सकता। उस आत्मा का ज्ञान अन्त:करण की परिशुद्धि के द्वारा प्राप्त होता है।[१३] इस समस्त संसार को उपनिषद् में ओंकार रूप माना गया है।[१४]

८- आ०ग्रं०पृ० ९९ - रामकली म:३

९- आ०ग्रं०पृ०१३५०- प्रभाती कबीर जी।

१०- वह दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां, आठवां, नवां तथा दसवां नहीं कहलाता। वह सब पर दृष्टि रखता है, जो सांस लेते हैं अथवा नहीं लेते हैं, वह सर्वशक्तिमान् है। वह एक है। एक है, एक मात्र और एक होते हुए सब देवता उसमें आकर एक हो जाते हैं।

भगवद् गीता का मुख्य विषय:

गीता का उपदेश देने वाले कृष्ण को विष्णु से जोड़ा, जो कि ऋग्वेद का प्राचीन देवता है और नारायण से, जो ब्राह्मणकाल का प्राचीन देवता है, और देवताओं और मनुष्यों का अन्त का विश्रामस्थान है, एक रूप कर दिया गया है।[15] जहां तक भगवद्-गीता की शिक्षा का प्रश्न है, इस बात का कोई महत्व नहीं कि उपदेश देने वाला कृष्ण कोई ऐतिहासिक व्यक्ति है या नहीं। महत्वपूर्ण बात भगवान् का सनातन अवतार है, जो इस विश्व में और मनुष्य की आत्मा में पूर्ण और दिव्य-जीवन को लाने की सनातन प्रक्रिया है।[16] गीता में कृष्ण को उस परब्रह्म के साथ तद्रूप माना गया है, जो इस दृश्यमान परिवर्तनशील विश्व के पीछे विद्यमान रहता है, जो सब दृश्य वस्तुओं के पीछे विद्यमान अपरिवर्तनशील सत्य है, जो सबसे ऊपर है और सर्वान्तर्व्यापी है।[17] ब्रह्म, विष्णु, और शिव मूलतः एक हैं, भले ही उनका अलग-अलग तीन अलग अलग रूपों में ही वर्णन हो। गीता की रुचि संसार को सुरक्षित दिखाने की प्रक्रिया में है, इस लिये विष्णु-रूप पर अधिक बल दिया गया है। कृष्ण, भगवान् के विष्णु रूप का प्रतिनिधि हैं।[18] गीता में वैयक्तिक परमात्मा के रूप में भगवान् पर बल दिया गया है, जो अपनी प्रकृति से इस अनुभवगम्य संसार का सृजन करता है।

११- बृहदारण्यक- २-५ ११ भारतीय दर्शन- डॉ० राधाकृष्णन- पृ० ४९

११- आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः। बृहदारण्यक- २-४-५।

१२- नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

१३- उपवेशन कृष्णो येन अव्यक्तमूर्तिना आत्मा विष्णुो वहुं व्याप्य।

कठोपनिषद्- १-२-२३।

भारतीय दर्शन पृ० ४६ पर उद्धृत।

१४- ओंकार एवेदं सर्वम्- छांदोग्य- २-२३-३

१५- भगवद्गीता- राधाकृष्णन-परिचयात्मक निबंध पृ० ३०

१६- वही पृ० ३१

१७- वही पृ० ३३

१८- वही पृ० २६

वह प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है।[19] गीता का मुख्य ज्ञान : कर्त्तव्य पालन, आत्मा का अमरत्व, निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान की महिमा, भगवान् का स्मरण और मोह की निवृत्ति, निष्काम कर्म की महिमा, आत्मा भगवान् का दर्शन, अद्वैत तत्त्व, वासुदेव तत्त्व, तथा धर्म-परायणता है।[20] गीता के इन सब तत्त्वों ने आदि ग्रंथ साहब पर अधिक छाप छोड़ी है। आदि ग्रंथ में भगवान् का जो स्वरूप वर्णित है वह गीता का ज्ञान ही है। गीता के ज्ञान की गुरमति ज्ञान पर छाप को स्वीकार करते हुए नामदेव जी कहते हैं:-

गुरमति राम नाम गहु मीता।
प्रणवै नामा इउ कहै गीता।[21]

जैन मुनियों का साहित्य (अपभ्रंश साहित्य)

जैन धर्म संबंधी रचनाएं दो रूपों में मिलती हैं। आध्यात्मिक और आधिभौतिक। आध्यात्मिक रचनाओं में लेखक का लक्ष्य जीव, आत्मा, परमात्मा का चिंतन आदि धार्मिक तत्त्व विश्लेषण या धर्म के अंगों का प्रतिपादन रहा है। आधिभौतिक रचनाओं में नीति, सदाचार, आदि सर्वसाधारण के योग्य लौकिक जीवन को उन्नत करने वाले उपदेशों का प्रतिपादन मिलता है।[22] जैन कवियों के विषय में डा० हरिवंश कोछड़ लिखते हैं, "इन कवियों का लक्ष्य मनुष्य को सदाचारी बना कर उसके जीवन स्तर को ऊंचा उठाना था। इनका हृदय उदार था। इनके हृदय की तंत्री चिर प्राचीन करुणा की तारों से झंकृत रहती थी। इन लेखकों ने बाह्याचार, कर्म काण्ड, तीर्थ यात्रा, व्रत आदि को गौण बताया और सदाचार एवं आन्तरिक शुद्धि को प्रधानता दी। उन्होंने बताया कि परमात्मा भी शरीर मन्दिर में प्राप्य है और उसी की उपासना से मानव आत्मा सुख को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार इन कवियों का जीवन स्वयं धर्म प्रवण था। ये लोग पहिले संत थे पीछे कवि।"[23]

१९- गीता- १८-६१

२०- भारतीय दर्शन- उमेश मिश्र- पृ० ७८-८१

२१- गोंड नामदेव आ०ग्रं० पृ० ८७४

२२- अपभ्रंश साहित्य - डा० हरिवंश कोछड़ पृ० २६६

२३- वही पृ० २६७

आध्यात्मिक रचनाएं

ब्रह्म: यह परमात्मा देह-भिन्न है किन्तु उसी देह में स्थित है। उसकी अनुभूति से पूर्व कर्मों का नाश होता है। मुनि योगीन्द्राचार्य अपने परमात्म प्रकाश में लिखते हैं:-

देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम समाहि परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ।।[२४]

मुनि राम सिंह कहते हैं, यह साढ़े तीन हाथ का छोटा सा शरीर रूपी मन्दिर है। मूर्ख लोग इसमें प्रवेश नहीं कर सकते। इसी में निरंजन वास करता है। निर्मल होकर उसकी खोज की जा सकती है।

हत्थ अहुट्ठहं देवली बालहं णा हि पवेसु।
संतु णिरंजणु तहिं वसइ णिम्मलु होइ गवेसु।। (९४)[२५]

आदि ग्रंथ का ब्रह्म भी इसी 'अउहठि हथ मड़ी' (साढ़े तीन हाथ देही) में निवास करता हुआ समस्त धरती और आकाश में सर्वव्यापक है।[२६]

जीवात्मा: शरीर नश्वर है परन्तु आत्मा अमर है। जिस मूर्ख ने इस तत्व को नहीं जाना वह अंधा दूसरे अंधों को क्या मार्ग दिखा सकता है:

भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु। (२८)[२७]

आत्मा तथा आत्म-ज्ञान संबंधी इस विचार की परंपरा आदि ग्रंथ में इसी स्वरूप में विद्यमान है। परमात्मा प्रत्येक शरीर में निवास करता है। वह आत्मा से अभिन्न है, परन्तु शरीर से भिन्न है।

ब्रह्म घट घट में: १- घटि घटि मैं हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।[२८] म:६

२४- परमप्पयासु (परमात्म प्रकाश) मुनि योगिन्द्राचार्य- १-१४ अपभ्रंश साहित्य पृ० २६८

२५- पाहुड दोहा-मुनि राम सिंह- अपभ्रंश साहित्य- पृ० २७५

२६- अउहठि हथ मड़ी घरु छाइआ धरणि गगन कल धारी
राम कली म:१ आ०ग्रं० पृ० ९०७

२७- पाहुड दोहा-मुनि राम सिंह- अपभ्रंश साहित्य-पृ० २७५

२८- आ०ग्रं० पृ० १४२६

२- [illegible] न [illegible]।
[illegible] सो [illegible]। [२९] म: १
[illegible] गुरु [illegible] आत्म ज्ञान [illegible] प्रदान नहीं कर सकता।
[illegible] गुरु [illegible] न [illegible]।
[illegible] म:३ [३०]

साधना पक्ष

नाम सुमिरन महत्व : यदि [illegible] परमात्म-[illegible] अनुराग कर ले तो [illegible] पाप इसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार आग की चिंगारी [illegible] लकड़ियों का [illegible]-

जइ णिविसद्ध वि कुवि [illegible] परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि कणी जिम [illegible] डहइ असेसु वि पाउ।। (१-११४) [३१]

इसी विचार को आदि ग्रंथ में एक [illegible] में कहा गया है:-
[illegible] पाए।
[illegible] हरि के गुन गाए। म: ५ [३२]

आत्म ज्ञान : [illegible] ज्ञान के लिये आत्म ज्ञान प्रथम सोपान है। जिसे आत्म ज्ञान हो जाता है वह जीवन-मुक्त हो जाता है [illegible] कि उसे देह [illegible] कोई [illegible] नहीं रहता। मुनि राम सिंह कहते हैं।

[illegible] णिच्चु [illegible] णाण [illegible]।
[illegible] तणु [illegible] ।।(२२) [३३]

आदि ग्रंथ में भी आत्म ज्ञान [illegible] कहा गया है, कि आत्म ज्ञान से जीवन-मरण का सब दुख-[illegible] समाप्त हो जाते हैं और आत्म ज्योति परमात्म-ज्योति में विलय प्राप्त कर लेती है। [३४]

२९- आ०ग्र० पृ० ९५२
३०- आ०ग्र० पृ० [illegible]
३१- परमात्म प्रकाश- योगीन्दु- अपभ्रंश साहित्य पृ० २६६
३२- आ०ग्र० पृ० [illegible]
३३- पाहुड़ दोहा- मुनि राम सिंह- अपभ्रंश साहित्य- पृ० २७५
३४-

चित्त शुद्धि : मुनि योगीन्द्राचार्य कहते हैं कि जहां जी चाहे वहीं जाओ और जो मन चाहे कर लो, किसी उपाय से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक चित्त शुद्धि नहीं होती:-

जहिं भावइ तहिं जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।
केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहं सुद्धि ण जंजि।। (२-७०)[35]

जैन धर्म में दिगंबर, और श्वेतांबर दो संप्रदाय हैं। दिगंबर नंगे रहते थे। श्वेतांबर, श्वेत वस्त्र धारण करते थे।[36] गुरु अमरदास दिगंबर के नग्न रहने और जोगी के जटा धारण के आचार को तब तक निष्फल मानते हैं, जब तक ~~~ मन को इन्द्रिय-विषयों से निवृत्त कर दशम दुआर (ब्रह्म लोक) में स्थित न किया जाये, तब तक आवागमन नहीं छूटता:-

नगन फिरहि दिगंबर जोगु।
जटा धारि किआ कमावै जोगु।
मनु निरमलु नही दसवै दुआर।
भ्रमि भ्रमि आवै मूआ वारो वार।[37]

विषय त्याग

मुनि योगीन्द्राचार्य ऐसे मनुष्य पर बलिहारी जाते हैं, जो विषयों का त्याग करता है।

सन्तां विसय जु परिहरइ, बलि किज्जउं हउं तासु। - २-१३९[38]

मुनि रामसिंह भी विषय-त्याग के बिना आत्मानुभूति का होना नहीं मानते। विषय-त्यागी ही परम सुख पाता है।

३४- आपु पछाणहि प्रीतमु मिलै वुठा छुटकारा।
सूक पुकारि न होवई, जोती जोति मिलाइ।।
सलोक म:३ आ०ग्रं० १४२०

३५- परमात्म प्रकाश- पृ० २६६ (अपभ्रंश साहित्य)

३६- उत्तरी भारत की संत परंपरा- पृ० ४७

३७- आ०ग्रं० बसंतु महला ३ पृ० ११६९

३८- परमात्म प्रकाश से अपभ्रंश साहित्य पृ० २९० पर।

जं सुहु विसय परमुहउ णिय अप्पाभायंतु।
तं सुह इंदु वि णउलहइ देविहिं कोडि रमंतु।।३।। [39]

इसी विचार को आदि ग्रंथ में व्यक्त करते हुए कहा गया है कि विषयासक्त होकर किसी की तृप्ति नहीं हुई जिस प्रकार अग्नि की ईंधन से तृप्ति नहीं होती। हरिनाम के बिना तृप्ति अथवा सुख नहीं प्राप्त हो सकता:-

त्रिसिना अगि बिनसी तृपति न पाई।
जिउ पावकु ईंधनि नहीं ध्रापै बिनु हरि कहा अघाई। म:५ [40]

दुष्कर्मों का त्याग

जैन सन्त दुराचारों को कहते हैं, जिन विषयों के कारण तू प्रपंच से धन एकत्रित करता है, उन पाप कर्मों के पश्चात् दिन प्रतिदिन शरीर गलता है। [41]

इस विचार की परंपरा का आदि ग्रंथ में तथा अन्य सन्तों रचनाओं में उल्लेख मिलता है। कबीर जी कहते हैं बहुत प्रपंच कर परधन का हरण कर स्नेही लोगों तथा स्त्री पुत्रों पर लुटाता है। परन्तु वह भूला कपटी यह नहीं जानता कि अंत में दुष्कर्म का फल उसे स्वयं भुगतना होगा। जब बुढ़ापे के कारण शरीर गलता है, तो उस कपटी को ओक में भी कोई पानी नहीं पिलाता:

बहु परपंच करि परधनु लिआवै। सुत दारा पहि आनि लुटावै।
मन मेरे भूले कपटु न कीजै। अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै।रहाउ।।
छिन छिन, तनु छीजै जरा जनावै। तब तेरी ओक कोई पानी न पावै। [42]
कबीर

---

[39]- पाहुड़- दोहा-मुनि राम सिंह से अपभ्रंश साहित्य-पृ० २७५

[40]- आ०ग्र०पृ० ६७२

[41]- जसु कारणि धणु संचइ पाव करेवि गहीरु।
तं पिच्छु सुप्पइ भणई, दिणि दिणि गलइ सरीरु।
वैराग्य सार- से अपभ्रंश साहित्य पृ० २८० पर

[42]- आ०ग्र० पृ० ६५६

दया धर्म : सुप्रभाचार्य दान की महत्ता स्वीकार करते हैं और दान का उपदेश देते हैं। जो दोनों को धन देता है और जिसका मन धर्म में लीन है, विधि भी उस की आज्ञा स्वीकार करता है।

धण दीणाहं गुण कज्जाणहं मणु धम्महं जो देइ।
तहं पुरिसहं सुप्पउ भणइ विहि दासत्तु करेइ।।३८।।[43]

गुरुमत में आवश्यकता ग्रस्त की आवश्यकता को भगवान-धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। परन्तु इस के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को श्रम द्वारा उपजीविका प्राप्त करने का भी निर्देश दिया है।

घालि खाइ किछु हथहु देइ।
नानक राहु पछाणहि सेइ।

सलोक म:१[44]

वैराग्य : सुप्रभाचार्य ने घर गृहिणी आदि, बंधु-बांधव को रंग स्थली बताया है, जिसमें मोह नट मनुष्यों को नाना रूप में नचाता है:-

घरु घरि घरि बहु मणिउ, बहु बंधउ मिलि रंग।
मोह नडावउ माणुसहं नच्चावइ बहुभंगि।। (७६)।।[45]

कवि घर गृहस्थी की चिंता निर्मल धर्म से बड़ा समझता है।[46] इसी कारण यौवन से विरक्त हो, घर छोड़, धर्म में दीक्षा लेने का आदेश देता है। वह घर परिजनादि के लिये भी धर्म त्याग उचित नहीं समझता और धर्माचरण को ही सब से प्रमुख वस्तु समझता है।[47]

इस विचार की छाप आदि ग्रंथ में कबीर की रचना में मिलती है। वे कहते हैं:यदि कोई घर गृहस्थी के भार को संभालता है, तो उसे धर्म का पालन करना चाहिए नहीं तो उसे वैराग्य धारण करना चाहिये और वैरागी का धर्म है, संसार के बंधन से मुक्त रहना। यदि कोई वैरागी बंधन में फंसता है तो वह उसका मन्द भाग्य ही जानो।

४३- वैराग्य सार से अपभ्रंश साहित्य पृ० २८० पर
४४- आ०ग्रं० पृ० १२४५
४५- वैराग्य सार से अपभ्रंश साहित्य पृ० २८१ पर
४६- वैराग्य सार- पद -७५- अपभ्रंश साहित्य पृ० २८०
४७- रे जीव सुणि सुप्पउ भणइ, मणु, जोवणहं म भज्जि।
घरि घरि घर, तं सिरि ठिवी, भण णिव्वाणहं सज्जि। (५०)

कबीर जब गृह, कहिं तपस्यु ह्यु नाहीं त क्यू बैराग।
बैरागी बंधन करै ताको बड़ो अभाग।। (२३)[४८]

परन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि आदि ग्रंथ में गृहस्थ जीवन का त्याग, विरक्त जीवन बिताने का संदेश है। संसार त्याग कर की जाने वाली साधना, आदि ग्रंथ का विषय नहीं। स्वयं कबीर की रचना में इस बात की पुष्टि होती है:-

गृह तजि बन खंड जाईए, चुनि खाईए कंदा।
अजहु बिकार न छोडइ पापी मनु मंदा। कबीर।[४९]

जिस निर्वाण को संतों में तप करके ढूंढा जाता था उसकी प्राप्ति के लिये आदि ग्रंथ में गृहस्थ जीवन के त्याग पर नहीं, अपितु रात दिन के निरंतर हरि-कीर्तन पर बल दिया गया है, जिस से गृहस्थ में ही निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु। गृहसत महि सोई निरबानु। ५०

काव्य पक्ष

हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश साहित्य की प्राय: पूरी परंपराएं ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं।[५१]

भाषा

जैन काव्य में सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा के सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर भाव की ओर दृष्टि रखी गई है।[५२] जैन कवियों की जो भाषा उनके ग्रंथों में मिलती है उसकी छाप आदि ग्रंथ काव्य पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है:-

---

जीव वध धम्मह हाणि करि, धरपरियण- कज्जेण।
कि न पिक्खि सुणयमणाहं णणु अज्जेणु परेरा ।। (५१)
वैराग्य सार से अपभ्रंश साहित्य पृ० २८० पर

४८- आ०ग्रं० पृ० १३७७
४९- आ० ग्रं० पृ० ८५५
५०- आ०ग्रं०पृ० २८१
५१- हिन्दी साहित्य- हजारी प्रसाद जी द्विवेदी पृ० १५
५२- अपभ्रंश साहित्य- पृ० २६८

जैन काव्य	आदि ग्रंथ
१- जे दिट्ठे (१-२७ परमात्म प्रकाश	१- जुग दिठे को पातिसाह- आ०ग्रं० पृ०६८७
२-अक्खणिरंजणु (परमात्म प्रकाश) अपभ्रंश सा: २६६	२- अलख निरंजन (अलख्य निरंजन) आ०ग्रं०५४-५०७
३- अप्पा बुज्झिउ (पाहुड दोहा-२)	३- आपि बुझावा (२५०,७६७,८४१, आ०ग्रं०)
४- जइ लद्धउ माणिक्कउ (पाहुड़दोहा-२१६)	४- हरि लाल रतन पायर गो (५:५-पृ०४५० माणक मोती नाम प्रभु-पृ.१३४, आ०ग्रं०

इस प्रकार के प्रभाव का विस्तार पूर्वक विवेचन भी प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यहां उसका संक्षिप्त रूप प्रकट किया गया है।

रूपक पक्ष: इस काव्य में जिन दृष्टान्तों द्वारा भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है वे इस प्रकार के हैं कि जिनका सर्वसाधारण के जीवन के साथ घनिष्ट संबंध है। इस प्रकार के दृष्टांतों के प्रयोग के द्वारा कृतिकारों ने अपने भावों को सुबोध और हृदयंगम बनाने का प्रयत्न किया है।[53] छन्दों में दोहा- चौपाई ही मुख्य हैं।

उपसंहार : परन्तु मध्य युग तक आते आते जैन मत पर भी तंत्र साधना का प्रभाव पड़ गया था, तथा उसके अनेक संप्रदायों ने उसे किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लिया था।[54] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि सातवीं नवीं शताब्दी में जो प्रसिद्ध जैन मार्गी संत हो गए हैं, उन की अपभ्रंश की रचनाओं में वे सभी विशेषताएं पायी जाती हैं जो इस युग के बौद्ध, शैव, शाक्त आदि योगियों और तांत्रिकों के ग्रंथों में प्राप्त होती है। बाह्याचार का विरोध, चित्त-शुद्धि पर जोर देना, शरीर को ही समस्त साधना का आधार समझना और सम रसता भाव से स्वसंवेदन आनन्द का उपभोग जिससे जीवन निरंकुश होकर जिया जाता है, उस युग की साधना की विशेषताएं है। अत्यंत कट्टर जैन साधक भिन्न मार्ग से चलते हुए भी उसी परम सत्य तक पहुंचे थे।

जैन मत ने जिन मतों में तत्कालिक परिस्थितियों को प्रभावित किया होगा, उसी प्रकार जैन मत भी अनेक मतों में प्रभावित हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि मध्य युग के जैन, शाक्त मत के सारस्वत कल्प को मानते हैं, तथा षोडश विद्याव्यूह की मान्यता जैन धर्म में है, तांत्रिक दिगंबरों की कल्पना

53- अपभ्रंश साहित्य पृ० २६८
54.- नाथ पंथ और निर्गुण संप्रदाय- डा० कोमल । कौ: पृ०९६

कापालिकों के साथ जोड़ दी गई है।[56] डा० कोमल सिंह सोलंकी लिखते हैं, 'अनात्मवाद को स्वीकार करते हुए भी जैन धर्म का अनात्मवाद विश्व प्रेम से अनुप्राणित है। जैन दर्शन स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद पर टिका हुआ है।'[57] परन्तु डा० वासुदेव सिंह लिखते हैं, 'जैन मत में परमात्मा के अस्तित्व की कल्पना प्रारंभ में ही कर ली गई थी, भले ही उसकी संख्या एक न होकर अनेक हो, भले ही वह नियामक और भिन्न वस्तु न स्वीकृत होकर, आत्मा का ही विकसित और शुद्ध निर्विकार रूप माना गया हो।'[58] डा० राधा कृष्णन तो यहां तक कहते हैं, मेरे विचार में जैन तर्क-वाद अद्वैतवादी आदर्शवाद की ओर ले जाता है और जहां तक जैन इसे अस्वीकार करते हैं, वे अपने तर्क के प्रति स्वयं झूठे बन जाते हैं।[59]

जैनमत में पौराणिक युग में मूर्तियों के पूजनार्चन की प्रथा चल पड़ी। बहुत एवं सुन्दर मन्दिरों का निर्माण होने लगा तथा भक्ति तंत्रोपचारों के प्रभाव में भी आ गई तथा कई अन्य आराध्य देवों तथा देवियों तक के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित किया जाने लगा। प्रसिद्ध है कि ऐसी मूर्तियों के श्रृंगारादि के संबंध में ही मत भेद होने के कारण सर्व प्रथम इस धर्म के अनुयायी श्वेतांबर तथा दिगंबर नामक दो दलों में विभक्त हो गए। इन में श्वेतांबर सम्प्रदाय वाले जैन धर्म के प्राचीन ग्रंथों के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं, किंतु दिगंबर संप्रदाय के अनुयायी अपने २४ पुराणों में कथित धर्म को ही अधिक महत्व देते हैं। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर संप्रदाय के लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कछ व लंगोटे पहना कर पूजते हैं, किंतु दिगंबरों के यहां वे प्राय: नंगी ही रखी जाती हैं। दिगंबर स्त्री का मोक्ष होना नहीं मानते, किन्तु श्वेतांबर मानते हैं। दिगंबर साधु नग्न रहा करते हैं और श्वेतांबर वाले श्वेत वस्त्र पहनते हैं। [60 दोनों सम्प्रदायों में मूलभूत सिद्धान्तों में कोई विशेष अंतर नहीं है।] फिर भी इस धर्म की विशेषता मानव

55- मध्य युगीन धर्म साधना- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ०४४

56- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- प्रथम खंड पृ०४४५

57- अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद-१२

58- नाथ पंथ और निर्गुण- संत काव्य- पृ० ८८

59- In our opinion the Jain logic leads us to a monistic idealism and so far as the Jains shrink from it, they are untrue to their logic. Dr. S. Radhakrishnan- Indian Philosophy-p-305

60- उत्तरी भारत की संत परंपरा- पृ० ४७

61. The differences are only in some minor details of faith and practice). - A critical Survey of Indian Philosophy-P-68.

जीवन में इनमें आत्मसंयम, सदाचार, तथा अहिंसा के नियमों को महत्वपूर्ण स्थान देता है। किन्तु पौराणिक युग के प्रभाव में आकर उनके अनुयायी भी पुराणों की रचना, तीर्थों की स्थापना, और व्रतों के अनुष्ठान, तीर्थंकरों की भक्ति तथा विविध तर्क वितर्क के फेर में पड़ गए। उनका प्राचीन मुख्य ध्येय पूर्ववत स्थिर न रह सका और विक्रम की ६वीं-१०वीं शताब्दियों तक आकर उनकी साधना के अंतर्गत विविध बाह्याचारों का समावेश हो गया। तत्कालीन हिन्दू तथा बौद्ध पद्धतियों से वे बहुत कुछ प्रभावित हो गए और इन धर्मों के साधारण अनुयायियों में बहुत कम अंतर दीख पड़ने लगा।[62] महाकवि दण्डी ने जैनों की दिनचर्या का मज़ाक उड़ाया है कि वे हाथों से सिर के तथा आंख के बाल नोंच डालते हैं।[63] गुरु नानक के समय ऐसे बाह्याचारों का ज़ोर होगा, तभी उन्होंने जैनियों की दिनचर्या के इस रूप का वर्णन करते हुए उनकी इस भूल पर सहानुभूति प्रकट करते हुए इस अंधविश्वास को त्याग देने का मत दिया है, तथा एक ओंकार, ------ का नाम सुमरिन करने को कहा है:-

१- सिर खोहाए, पीअहि मलवाणी, जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति, मुहि लैनि भड़ासा, पाणी, देखि सगाही।
भेडा वागी सिरु खोहाइनि, भरीअनि हथ सुआही।
कुड़ा जीअ दिआ नहि लोवै आ सिर पाइनी पाणी।
नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी। माझ की वार म:१[64]

२-इकि जैनी उझड़ पाइ सुरूं खुआइ आ।
तिन मुखि नाही नामु न तीरथि न्हावा आ।
हथी सिर खोहाइ न भदु कराइआ।
कुचिल रहहि दिन राति सबदु न भाइआ।
तिन जाति न पति न करमु जनमु गवाइआ।
मनि जूठै वेजाति जूठा खाइआ।
बिनु सबदै आचारु न किन ही पाइआ।
गुरमुखि ओअंकारि सचि समाइआ। मलार की वार म:१[65]

---

[62]- उत्तरी भारत की संत परंपरा पृ० ४७

[63]- डा० रांगेयराघव- भारतीय संत परंपरा और समाज- पृ० ३५

[64]- आ०ग्रं० पृ० १४६

बौद्ध सिद्धों का साहित्य: (अपभ्रंश साहित्य -२)

बौद्ध-धर्म की महायान शाखा तंत्र, मंत्र व अन्य गुह्य पद्धतियों को अपनाती हुई ईसा की आठवीं-९वीं शताब्दी में एक नये संप्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गई जिसे वज्रयान कहा जाता है। इसी संप्रदाय के साधक सिद्ध कहलाते हैं,[६६] जिन की संख्या ८४ बतायी जाती है। श्री वियोगी हरि लिखते हैं, वज्रयानी चौरासी सिद्धों में सरहपाद को आदिम सिद्ध माना गया है।[६७] डा० तारा नाथ ने पुराने बौद्ध ग्रंथों का आश्रय लेकर सरहपा को आदि-सिद्ध माना है।[६८] परन्तु ग्रन्थ विहार[६९] की ८४ सिद्धों की सूची में लुईपा को आदि सिद्ध माना गया।

सिद्धों ने सहज साधना पर बल देते हुए भोग में भी निर्वाण ढूंढने का प्रयास किया। प्रत्येक साधक विभिन्न जाति की साधिकाओं से शारीरिक संसर्ग करना अपना सांप्रदायिक कर्तव्य मानता था, इसी संसर्ग को इन्होंने कमल-कुलिश-साधना का भी नाम दिया। सिद्ध सरहपाद ने इस साधना की प्रशंसा करते हुए लिखा है-

कमल कुलिश बे मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ विलास।
को न रमइ णाह विहुअणहि, कस्स ण पुरइ आस।[७०]

अर्थात कमल और कुलिश को मध्य में स्थित करके सुरति का जो आनंद लिया जाता है, त्रिभुवन में कौन उससे वंचित रह सकता है और किसकी आशा वह पूरी नहीं करता।

हीनयान और महायान : बौद्ध धर्म क्रमशः हीनयान और महायान इन दो धाराओं में विभक्त हो गया। नागार्जुन महायान का प्रबल पोषक था। नागार्जुन के बाद मैत्रेयनाथ, आर्य देव, असंग, इत्यादि विद्वानों ने इसकी प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया। इन्होंने अपने अपने मत और सिद्धान्तों का प्रचार किया। असंग ने ईसा की पांचवीं शताब्दी के लगभग महायान में तन्त्र का आविर्भाव किया। धीरे धीरे महायान में तन्त्र

६५- आ०ग्रं० पृ० १२८५

६६- डा० गणपति चन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-पृ०१७३

६७- संत सुधार-सार-वियोगी हरि-पृ०(१)१९५८

६८- सिद्ध साहित्य- डा० धर्मवीर भारती पृ० ४८

६९- वही।

मन्त्र, बीजमन्त्र, धारणी, मण्डल आदि का प्रवेश होता गया। तन्त्र के साथ साथ शक्ति पूजा का भी आविर्भाव हो गया।[71]

हीनयान और महायान में मुख्य भेद हैं- बुद्ध और निर्वाण के स्वरूप के विषय में। हीनयान बुद्ध धर्म और संघ के त्रित्व में विश्वास करते हुए बुद्ध को धर्म का उत्पादक एक महापुरुष मानता है। महायान उन्हें अलौकिक पुरुष से ऊपर देव-रूप में मानता है तथा बुद्ध, धर्म और संघ के स्थान पर धर्म, बुद्ध और संघ इस क्रम को उपयुक्त मानकर धर्म या प्रज्ञा को प्रधानता देता है। उसके अनुसार धर्म-प्रज्ञा-नित्य है, यही सर्वोच्च लक्ष्य है। उस धर्म-प्रज्ञा को प्राप्त करने का उपाय बुद्ध है। इसी प्रकार महायान में संघ का अर्थ बोधि सत्व- बोधि- ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करने वाला जीव हो गया।[72]

इस के अतिरिक्त हीनयान संसार के दुःखों से जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पा जाने में ही संतुष्ट है। यही उसका निर्वाण है। उसका यह निर्वाण उसके लिये ही है। महायान लोक मंगल के लिये एक चित्तवृत्ति को धारण करता है, जिसे बोधि चित्त कहा गया है और जिसे प्राप्त कर जीव उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।[73]

महायान मत अपने मूल रूप में अत्यंत उच्च एवं सात्विक था। इस को हम बौद्ध धर्म का परिष्कृत एवं शुद्ध रूप कह सकते हैं।[74] महायान को शासकों का भी समर्थन प्राप्त हुआ।[75] महायान में जगत् कल्याण के पश्चात् अपने कल्याण की दिशा में बढ़ने लगे। महायान में पूजा, भक्ति, गुरु-अर्चना आदि सम्मिलित हो गये और ज्ञानयान कल्याणकारी होते हुए भी महायान के प्रचार में दृष्टि-गोचर होने लगा। दक्षिण भारत में प्रचलित भक्ति-भावना ने और पकड़ा और पूरे उत्तर भारत में उस का समादर हुआ, फलतः महायान के लिये मार्ग प्रशस्त होता गया। अनेकों क्रियायें जनता के लिये कल्याणकारी प्रतीत हुईं, जिससे समाज महायान धर्म स्वीकार करता गया।[76]

70- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-पृ० २७४

71- अपभ्रंश साहित्य- हा०हरिवंश कोछड़ पृ० ३००

72- वही पृ० ३०१

73- वही पृ० ३०१

74- कबीर की विचार धारा-डा० त्रिगुणायत- २८

मंत्रयान- तंत्रयान: महायान में योगी [illegible] के साथ साथ अलौकिक बातों एवं मन्त्रों से युक्त ग्रंथों की रचनाएं हुईं। इन मंत्रों के साथ मैत्रेय, वैरोचन, अक्षोभ्य आदि ध्यानी बुद्धों के नाम जुड़ गए। मंत्र-साधना के लिये मंत्र-तंत्र के भी विधान बन गये। इस प्रकार मंत्रयान का अभ्युदय हुआ। जिसके कारण तांत्रिक प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ। मंत्रयान में भी बुद्धों की मूर्तियां निर्मित होने लगीं। मंत्रयान ही वज्रयान का परिकल्पित स्वरूप था, इस प्रकार महायान का मंत्रयानी रूप और धर्म के उस स्वरूप से दक्षिण पर्वत (धान्यकटक) के सिद्धों से प्रभावित होकर उनके द्वारा प्रचारित धारणियों मंत्रों, यन्त्रों को भी अंगीकृत कर पूर्ण तांत्रिक हो गया। धीरे धीरे मंत्रयान का स्वरूप तंत्रयान में परिवर्तित होता हुआ और वज्रयान का स्वरूप ग्रहण कर गया।[७७]

वज्रयान : वज्रयान में मद्य, मत्स्य, हठयोग और स्त्री, विशेष रूप से सम्मिलित हो गये।[७८] वज्रयान में सिद्धि प्राप्त करने के लिये जहां अनेक देवी-देवताओं बुद्धों आदि की कल्पना की गयी, वहां शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण आदि षट् अभिचारों का विधान बनाया गया। एक ओर वज्रसिद्धि के अनुसार सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति का लक्ष्य था, तो दूसरी ओर [illegible] आचारात्मक, दुश्शील एवं उच्छृंखल अनैतिक बातें मुख्य रूप से सम्मिलित हो गईं। महायान की लोकोपकारी भावना को वज्रयान ने विनाश सा कर दिया। कहां करुणा प्रेरित होकर जन-उद्धार के संकल्प और कहां यह अनैतिक आचरण। वह भी सम्यक् सम्बुद्ध के पवित्र धर्म के नाम पर। इतना कह दें कि ये सभी नाम [illegible] बातें यौगिक चमत्कारों की सिद्धि की सहायक मानकर उनके अंग स्वरूप विभिन्न नामों से अभिहित हुईं, जैसा कि पहले कहा गया है। इस प्रकार वज्रयान ने विमुक्ति गामी न होकर प्रवृत्तिगामी रूप धारण कर लिया। तांत्रिक प्रवृत्तियों से वज्रयान का उदय हुआ और घोर तांत्रिकता में पड़ कर बुद्ध की मूल शिक्षाओं से वह बहुत दूर जा पड़ा। वज्रयानी अपने को अनुत्तर सिद्धि तथा सहज भाव का ज्ञानी समझने लगे।[७९]

७५- वही पृ० २२७

७६- हिंदी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव- डा० [illegible] मालविका-पृ० ६७

७७- बौद्ध धर्म का मध्य युगीन सन्त साहित्य पर प्रभाव- डा० [illegible] मालविका- पृ० १०१-१०२

सहजयान: वज्रयानियों ने सहज भावना पर बल दिया और अपनी गुह्य अभिचारों का प्रयोग लोक-उद्धार के लिये करने का संकल्प कर सहज साधना के मार्ग को अपनाया। वज्रयान का अन्तिम रूप ही सहजयान है।[80] डा० गोविंद त्रिगुणायत लिखते हैं कि सहजयान का प्रादुर्भाव विधि विधान प्रधान ब्राह्मण और बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया रूप में समझना चाहिए। यही कारण है कि इसमें दोनों के प्रति विरोध भावना पाई जाती है। सहजयान अपने मूल रूप में सात्विक ही था। प्रसिद्ध सहजयानी सिद्ध सरहपा के संबंध में किंवदन्ती है कि वे पहले नालंदा विश्व विद्यालय के प्रतिष्ठित पंडित थे। किन्तु बौद्ध और ब्राह्मण धर्म की पाखंड पूर्णता को देखकर उनकी आस्था कांप उठी और वे उसका मूलोच्छेदन करने में लग गये। इस के लिये उन्होंने सब कुछ त्याग कर सहजयान के रूप में अपनी विचारधारा का प्रचार किया। वे जीवन की स्वाभाविक गति में विश्वास करते थे। बौद्ध विहारों का अस्वाभाविक जीवन उन्हें पसन्द न था।[81]

यहां हम सरहपाद से लेकर सिद्धों की सहज-साधना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं:-

दर्शन : सरहपाद ने परमपद को सहज निर्वाण माना है। इस परमपद अथवा सहज निर्वाण स्थान की अपरोक्ष झलक उन्होंने प्रस्तुत की है। जहां मन पवन की पहुंच नहीं, जहां रवि-शशि का प्रवेश नहीं, वहां तक बढ़ कर सरहपा (सरहपा) ने चित्त का विश्राम कर आदेश किया है।[82] इस अवस्था को सहज शून्यावस्था का नाम देते हुए वे कहते हैं, 'सहज शून्यावस्था का न तो आदि है, न अन्त और न मध्य, न यहां जन्म है, न निर्वाण। यह अलौकिक महासुख है। न यहां अपना ज्ञान रहता है, न पराये का।[83] सिद्ध तिलोपाद कहते हैं,

---

७८- पुरातत्व निबंधावली-पृ० १४३ से बौद्ध धर्म का मध्ययुगीन संत साहित्य पर प्रभाव - पृ० १०३ पर उद्धृत।

७९- वही- पृ० १०४

८०- वही- पृ० १०४

८१- कबीर की विचारधारा पृ० १२६

८२- जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस।
तहिं बढ़! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस। [illegible] साहित्य-३०७

वह परमतत्व न कहीं से आता है, न कहीं जाता, न किसी स्थान पर ठहरता है।[८४] आदि ग्रंथ के सन्तों के [illegible] का भी यही स्वरूप है; वे भी [illegible] न आवै न जावै सदा निरञ्जण आरो।[८५] इस सहज शून्यावस्था को डा० चन्द्रधर शर्मा ने 'अवाच्य' अथवा 'अनभिलाप्य' एवं 'चतुष्कोटि विनिर्मुक्तः' से अभिहित किया है, और कहा है कि शून्यावस्था का अर्थ 'अभाव' अथवा 'कुछ नहीं' या 'रिक्त मंडल' नहीं है।[८६] परंपरा की इस सहजावस्था पर उपनिषद तथा गीता का प्रभाव है। कठोपनिषद में लिखा है:

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।। (२।५)[८७]

गीता में भी इसी प्रकार कहा गया है:-

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।[८८]

आदि ग्रंथ के संतों ने भी इस विचार को इसी रूप में स्वीकार किया है:-

झिलि मिलि झिलकै चंदु न तारा।
सूरज किरणि न बिजुलि गैणारा।
अकथी कथउ चिहनु नही कोई पूरि रहिआ मनि भाइदा।
पसरी किरणि जोति उजिआला।
करि करि देखै आपि दइआला।।
अनहद रुणझुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा। मारू म:१[८९]

बौद्ध सिद्धों का शून्य भावना तथा शून्य सन्तों तक पहुंच कर स्पष्ट रूप में परब्रह्म का पर्याय बन चुका था:-

---

८३- [illegible] ण अंत ण [illegible], णा[illegible] [illegible] णउ णिव्वाण।
[illegible] परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण।। [illegible]-पृ०३

८४- [illegible] जाइ कतहि णा जाइ । सन्त सुधार सार- पृ० ७

८५- सिरि राग म० १, आ०ग्रं०पृ० २४

८६- [illegible], according to the [illegible], does not mean '[illegible]' or 'an empty void', or 'negative [illegible]'. [illegible] as '[illegible] ([illegible] or [illegible])' as it is beyond the four categories of intellect (Chatushkoti vinirmukta).- [illegible] Survey of Indian Philosophy- [illegible]

सुन्न कला [illegible] पारी। [illegible] निरालंबु अपार अपारी।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दै [illegible] [illegible] उपाइआ।
[illegible] [illegible] [illegible] गैणारे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] अपार निरालंबु [illegible] ताड़ी [illegible]। मारू ५:१ [90]

जीवात्मा : डा० त्रिगुणायत लिखते हैं, बौद्ध लोग निरीश्वरवादी ही नहीं, अनात्मवादी भी थे। भगवान् बुद्ध ने अस्तित्व का [illegible] [illegible] भी वे नहीं मानते थे। उनका कहना था कि आत्मा के अस्तित्व की भावना ही अहंकार को जननी है।[91] परन्तु [illegible] सिद्धों का [illegible] [illegible] का स्वरूप ईश्वरवादी निर्गुणवादी संतों से भिन्न नहीं। संतों ने इस शून्य को सर्व सृष्टि का मूल माना है। अपने अस्तित्व का संबंध इस शून्य से स्थापित करते हुए सिद्ध सिंहनाद करते हैं, मैं भी शून्य हूं, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। धर्माधर्म निर्मल अकल शून्यस्वरूप है, न वहां पाप है न पुण्य।[92] अपना संबंध निरंजन से स्थापित करते हुए सिद्ध सिंहनाद करते हैं, मैं ज्ञान हूं, मैं बुद्ध हूं, और मैं ही निरंजन हूं। मैं ही भावनिक [illegible] हूं और भव का भंजन करने वाला भी मैं ही हूं।[93] इस कथन में वेदांत के अहं ब्रह्मास्मि की ध्वनि झंकृत होती है।

८७- कठोपनिषद- २-२-१५

८८- गीता - ६-१५

८९- भा०का० पृ० १०३३

९०- भा०का० पृ० १०३७

९१- हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि।। पृ०२५७

९२- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] ण [illegible] [illegible] पुण ।। (६) संत सुधार सार पृ०७

९३- हउं जाणु हउं बुद्ध हउं णिरंजण।
हउं अमण सिआर भव भंजण।। ४ ।। वही पृ०६

डा० त्रिगुणायत लिखते हैं, बौद्ध दर्शन में यद्यपि आत्मवाद का खंडन किया गया है किन्तु अनात्मवाद की प्रतिष्ठा की गयी है। इस विरोधात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन 'मिलिन्द प्रश्न' नामक ग्रंथ में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।[६४] परन्तु सिद्ध सरहपाद तथा सिद्ध तिलोपाद के सहज शून्य अथवा निरंजण और उसके जगत और जीव से संबंध का जो विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है, वह निर्गुणवादी संतों के परब्रह्म या निरंजण (सुन्न भुवन नाथु, निरंजन काआ या आकाश)[६५] से जीवात्मा तथा जगत् के संबंध से बहुत कुछ मिलता है। अतः बौद्ध सिद्धों का अनात्मवाद में विश्वास विरोधात्मक नहीं। बौद्धों का शून्य कालान्तर में परमात्मा का रूप ले कर जगत् में सर्वव्यापक और जीव में आत्म-स्वरूप माना जाने लगा था। यह दोनों तत्व अंतर्गत भाव के कारण अनादि एवं अमर प्रतिष्ठित हो गये थे। इसी लिये बौद्ध सिद्धों ने अपनी आत्मा के अन्तर की बात की है।

साधना पक्ष ।

सद्गुरु कृपा - सिद्धों ने परम तत्व की प्राप्ति के लिये सद्गुरु कृपा को प्राथमिकता दी है। सहज साधना गुरु के बिना सम्भव नहीं मानी है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'बौद्ध सिद्धों के दोहों में गुरु को बुद्ध से भी बड़ा बताया गया है और यह गुरु शब्द सहजयानियों, वज्रयानियों, तांत्रिकों, नाथ पंथियों, में समान भाव से समादृत है।[६६] जिस योग का वर्णन इन सिद्धों तथा परवर्ती नाथों ने किया है, वह पोथी पढ़ कर नहीं हो सकता, श्रवण, मनन, चिन्तन और निदिध्यासन से भी नहीं हो सकता। उसे तो करके दिखाना पड़ता है, इसलिये इस जटिल कर्म-पद्धति के लिये सद्गुरु की बड़ी जबर्दस्त आवश्यकता होती है। नाथ पंथी योगियों, सहजयानियों और वज्रयानियों, तांत्रिकों और परवर्ती सन्तों में इसी लिए सद्गुरु की महिमा इतनी अधिक गाई गई है। सद्गुरु के बिना बाहरी और भीतरी व्यापार हो सकते हैं पर यह जटिल साधना पद्धति नहीं हो सकती।[६७]

६४- हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-पृ०१५८

६५- भारत नाथ धारा, डा० पृ० ४..

६६- हिन्दी साहित्य की भूमिका- पृ० ३१

६७- वही- पृ० ६५

सिद्ध निरंजनपाद लिखते हैं "जो तत्त्व, जो सत्य मूढ़ जनों के लिए अगोचर है वह पण्डितों के लिए भी अगम्य है, (क्योंकि वे शास्त्रार्थ में ही उलझे रहते हैं) सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है, जिस पर कि सद्गुरु प्रसन्न होते हैं।"[९८] इस परम तत्त्व को उन्होंने विचार से भी परे बताया है। 'जितने सब आकार व्यवहार हैं, वे या तो सकल हैं या निष्कल। किन्तु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिए, विचार से वह परे है।'[९९] वह परम तत्त्व न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है। तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है।[१००] वह सन्तों के '[illegible] गुरपति [illegible]'[१०१] तथा '[illegible] न देखिया, [illegible] देखिआ'[१०२] के समानान्तर है। गुरु को अपूर्व आनन्द का भेद हो जाता है जिससे क्षण मात्र में ही सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[१०३]

<u>बाह्याचारों का विरोध</u> : सिद्ध निरंजनपाद कहते हैं, 'न देव प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थ यात्रा, देवाराधना से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं।'[१०४] सिद्ध सरहपाद ने समाधि, पूजा, होम, तंत्र-मंत्र आदि को मुक्ति का साधन नहीं माना, तथा तीर्थ-सेवन, तपोवन-गमन और जल स्नान से भी मोक्ष के मिलने का खण्डन किया है।[१०५] उन्होंने तो यहां तक कहा है कि यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति होती तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए, और यदि कन्द मूल खाकर भोजन से मुक्ति होती हो, तो हाथी घोड़े मुक्ति के पहले अधिकारी हैं।[१०६]

९८- मूढ़ जणं लोअण गोअर तं पण्डिअ लोअ अगम्म।
जो गुरुपाअ पसण्ण तेहि कि चित्त अगम्म।। (सन्त सुधा सार पृ० ६)

९९- सअल णिकल जो सअलाआर।
सुण णिरंजण मण क वि आर।। वही

१००- आवइ जाइ ण कत्थ वि ण ठाइ।
गुरु उवएसें चित्त हि माइ।। (संत सुधासार- ७)

१०१- भा:१, क०ग्रं० पृ० १२३३

१०२- भा:१, क०ग्रं०पृ० ८३८

१०३- परम आणन्द भेउ ते जाणइ। खणहि जोइ [illegible] सुणहि।
(सिद्धनाद- संत सुधासार -पृ०६)

चित्त शुद्धि : सहज साधना का एक भाव उपाय चित्त शुद्धि है। चित्त शुद्धि की प्राप्ति ही सहज साधना है, गुरु-कृपा से ही यह प्राप्त हो जाता है।[१०७] सिद्ध गुरु प्रसाद कहते हैं कि जिस क्षण मन की दुविधा भरम का विनाश हो जाती है और चित्त शुद्ध हो जाता है, उसी समय सारे बंधन टूट जाते हैं। उस अवस्था में सहज साधक को गुरु तथा ब्रह्म का कुछ भी भेद नहीं रहता।[१०८] यह अवस्था संतों की आदि अनादि पुरातन सत्य है...........[१०९] .... जाता है।

सिद्धों ने आत्म ज्ञान को साधना का आधार माना है, और कहा है कि जब तक अपने आपको नहीं जान लिया, तब तक किसी को शिष्य नहीं करना चाहिए। ऐसा करना दूसरे को भी .... है। दोनों डूबते हैं।[११०] सिद्धों का यह विचार संतों ने निम्नलिखित विचार का समर्थन किया है:

१- ऐसा गाडू .... आणे।
आपि डुबे .... पराणी।[१११]

२- गुरु जाति मुकाम जाते। नानक ऐसा आगू जापै। सलोक म:१[११२]

संक्षेप में सिद्धों की साधना, जिसे उन्होंने ने सहज साधना का नाम दिया है, गुरु के मार्ग-निर्देशन में चित्त शुद्धि की प्राप्ति है। गुरु-सात्विक .... जीवन्मुक्त है। बाह्याचार का सिद्धों ने जबरदस्त विरोध किया है। इस सहज साधना को .... संतों ने स्वीकार कर लिया है:-

१- जीवत्दु निरख .... निरखा।
.... निरख जीवत्दु निरखत .... क्षाणी।
.... पहुंचे .... प्रमाणी।
जनमु .... दिखा .... ।[११३]

२- गुर परसादी सहजु को पाए।
दुविधा मारे .... लाए।
गुरपरसादी सहज ....।
पूरन गुरि रहिता सभ जाये दुरमति ....।
म: ३[११४]

१०७- .... गुरु .... जाना। .... पावा
वही: ....

कला पक्ष :

भाषा : डा० हरिवंश कोछड़ लिखते हैं 'सिद्धों की रचनाओं की भाषा पूर्वी अपभ्रंश है। पूर्व की प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव के कारण कुछ विद्वानों ने इस भाषा को भिन्न भिन्न पूर्वी देशों की भाषा समझ लिया। श्री विनय तोष भट्टाचार्य इन की भाषा को उड़िया, श्री हर प्रसाद शास्त्री बंगला, राहुल जी मगही कहते हैं। किन्तु डा० प्रबोध चन्द्र बागची इन की भाषा को अपभ्रंश मानते हैं। डा० सुनीति कुमार चैटर्जी का भी यही विचार है कि सिद्धों की भाषा अपभ्रंश ही है।'[११५]

भाव पक्ष: सिद्धों की कविता काव्य दृष्टि से चाहे उत्कृष्ट कोटि की कविता न कही जा सके, तथापि इनकी कविता की अपनी विशेषता है। हृदय के भावों की सरिता चाहे रूढ़िबद्ध प्रणालियों में बहती हुई प्रतीत न होती हो तथापि उस सरिता में वेग है एक अनुपम सौंदर्य है और अद्भुत प्रभावोत्पादकता है, जिस के कारण इन कविताओं को पढ़ कर पाठक को आत्मा तृप्ति का अनुभव करती है।[११६] सिद्ध-काव्य की पृष्ठभूमि मूलत: सामान्य लोक-वृत्ति परक रही है। इसी कारण सिद्धों ने अपनी बात सीधे सादे ढंग से लोक भाषा में कही है।

१०५- पोसह किं लहुमक्कणाण पविट्ठो।
किन्तह दीवे किन्तह णिवेज्जं।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेवं। किन्तह किं तपोवण जाइ।
मोक्ख किं लब्भइ झाणन्तराइ। वही पृ०४

१०६- पिण्डी सरण् दिट्ठि मोक्ख ता भीरह कम्मरह।
उंहु मोक्खणौ लोउ जाण ता करिह दुरंगह।।
संत सुधासार -पृ० ३

१०७- सहज वि चित्त विसोहु करि । सहजम्मि चित्तिम्मि ठिक्ख भंग।
संत सुधा सार - पृ०६

१०८- जबुबे मण अत्थमण जाइ तणु, तुट्टइ बंधण।
तबु बे समरस सहजे वज्जइ णाउ सुद्दन बम्हम्ण। वही पृ० ४

१०९- भा: सा० पृ० १३३०

<u>गाथा रूप</u> : सिद्ध साहित्य के दोहे एवं गाति लोक का अपनी संपत्ति था। इन सिद्धों के अतिरिक्त जैन साहित्य में भी रूप में कुछ ने भी अन्य लोक भूमि को सुस्पष्ट करते हैं।[११८] सिद्धों की उलटबासियों की प्रतीक-योजना का पर्याप्त रूप भी लोक-मानस से गहरा संबंध रखता है।[११९] सिद्धों ने रूपकों में ऐसे ही पदार्थ चुने हैं जिनका मानव जीवन से गहरा संबंध है।[१२०]

<u>राग पक्ष</u>: सिद्धों की रचनाएं कुछ तो दोहों में मिलती हैं और कुछ भिन्न भिन्न गेय पदों के रूप में। चर्यापद में संगृहीत सिद्धों के प्रत्येक पद के प्रारंभ में किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है। इन गेय पदों में कहीं कहीं पादाकुलक, अडिल्ला, पज्झटिका, रोला आदि छन्द भी मिल जाते हैं।[१२१] डा० रामेन्द्र प्रसाद लिखते हैं, रागों के समुचित निर्देश के साथ पद लिखने की प्रथा नवीं, दसवीं शताब्दी ई० में भी वर्तमान था। जैन सिद्धों और नाथों के चर्या पद तथा प्राचीन राग-रागिनियों में गुंथे मिलते हैं। चरणपाद, कुकुरीपाद, गुण्डरीपाद और लूहिपाद आदि के पद विभिन्न राग-रागिनियों के आधार पर लिखे गये हैं। इन पदों के साथ राग गुंजरी, राग भैरवी। राग कामोद, राग धनश्री, राग गौड़ आदि रागों का निर्देश है।"[१२२] डा० धर्मवीर भारती ने सिद्धों द्वारा प्रयुक्त रागों की कुल संख्या १८ बतायी है, गारु, कामोद, मल्लार, गुंजरी, गुजरी, देशाख, देवक्री, धनश्री, पटमंजरी, बंगाल भैरवी, मल्लारी, मालसी (श्री ?) मालसी गउड़ा, रामक्री, वराड़ि, वराड़ी, शबरी। भारतीय संगीत का जो परंपरा आज उत्तर भारत में प्रचलित है, शास्त्रीय पद्धति में उसका संगठन प्राकृत-अपभ्रंश काल में हुआ है, और विभिन्न जातियों और प्रान्तों के लोक-संगीत को अपना कर उनको स्वरग्रामों के एक नियम में आबद्ध कर दिया गया है। पुरातन वैदिक संगीत पद्धति को 'मार्ग' या 'गन्धर्व प्रणाली' का नाम देकर उसे देशोचित संगीत का एक नये मानदण्डों में 'देशी संगीत' की प्रतिष्ठा दी गयी। उसका 'देशी' नाम संगीत शास्त्र के सभी ग्रंथों में मिलता है।"[१२३]

१२०- जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अंधैं अंध कढ़ाव तिम बेण्णवि कूव पड़ेइ।
'सरहपा-दोहा कोश'-पृ०।

१२१- सूरी ५:१ भा०का० पृ० ७४७

१२२- भा०का० पृ० ३४०

उपसंहार : कालान्तर में सिद्धों की शुद्ध सात्विक साधना भी विकृत रूप धारण करने लगी। सिद्ध लोग तांत्रिक और अलौकिक चमत्कारों के धनी समझे जाने लगे। ये जहां अपने तर्क-बल से दूसरे मतों का खण्डन करते थे, वहां कभी कुछ चमत्कारों का भी प्रदर्शन किया करते थे। जिस से जनता उनके पीछे लगी रहती थी।[124] ये अधिकतर जन भाषा आदि में रचना पसन्द करते थे और लोगों को फटकारा करते थे। ये जितनी भी फटकार सुनाते थे, जनता इनके पीछे दौड़ती थी। उन्होंने पूर्व के हीनयान और महायान का भी दोष दिखाया और गुह्यवादी होकर भैरवी चक्र के शराब, स्त्री समागम तथा तंत्र मंत्र से धर्म को गलत अनुष्ठान बतलाया। प्रारंभ में भैरवी चक्र की सभी क्रियाएँ गुप्त रखी जाती थीं और जब साधक उस में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर लेता था तब उसे पूर्ण दीक्षा दी जाती थी। इसका प्रभाव यह हुआ कि इनमें अनेक प्रकार के दुराचारों ने घर कर लिया।[125] सिद्धों के धर्म विचारों से संबंधित तथा उनकी साधना पर प्रकाश

११३- आ०गु० पृ० २-० ६१६

११४- आ० गु० पृ० ११६

११५- आ०गु० पृ० ३०५

११६- डा० हरिवंश कोछड़- अपभ्रंश साहित्य पृ० ३०५

११७- डा० सत्यदेव -मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ० ६१

११८- वही पृ० ६३

११९- वही पृ० ६४

१२०- अपभ्रंश साहित्य- ३१७

१२१- वही पृ० ३१८

१२२- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १७६

१२३- सिद्ध साहित्य पृ० २६६

१२४- बुद्ध चर्या की भूमिका- पृ० १० बौद्ध धर्म का मध्ययुगीन सन्त साहित्य पर प्रभाव- डा० विद्यावती मालविका - पृ० ११०

१२५- बौद्ध धर्म का मध्ययुगीन सन्त साहित्य पर प्रभाव- डा० विद्यावती मालविका- पृ० ११०

लाने वाले [illegible] ग्रंथ में गुरु नानक [illegible] सिद्धि [illegible] है।[126] [illegible] में [illegible] साधना [illegible] का [illegible] प्रयुक्त करते हुए, [illegible] है [illegible], चमत्कारों, तथा सिद्धि प्राप्ति [illegible] जाता है। [illegible] में [illegible] टिप्पणियां उपलब्ध हैं:-

[illegible] नानक [illegible] सिद्धि [illegible] नाद।[127] म:१

गुरु नानक देव जी ने इस प्रकार रिद्धि-सिद्धि [illegible] हुए, [illegible] में गौण माना है। [illegible] चमत्कार पूर्ण रिद्धि-सिद्धि [illegible] प्राप्त [illegible], तो [illegible] नाम [illegible] गुरु [illegible]:-

सिधु [illegible] सिधि [illegible] रिधि [illegible]।

[illegible] परगटु [illegible]।

मतु देखि भूला [illegible] तेरा [illegible] नाउ। म: १[128]

[illegible] ग्रंथ [illegible] में [illegible] प्रयोग [illegible] है, [illegible] विद्यमान है:-

[illegible] धरि [illegible], [illegible] सिरि [illegible]।

[illegible] धरि [illegible], [illegible] सिरि [illegible]। म:५[129]

डा० [illegible] है, [illegible] हैं [illegible] के संबंध में। [illegible] संबंध में [illegible] प्रचलित [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible] दारिद्र्य, अनावृष्टि, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] से [illegible] रक्षा [illegible]। [illegible] [illegible] है कि [illegible] सिद्ध [illegible] करते हैं। राजा [illegible] हैं।[130] [illegible] इनके [illegible] सिद्धुआ।[131]

126- [illegible] पृ० ६३८

127- [illegible] पृ० ६

128- [illegible] पृ० १४

129- [illegible] पृ० ५०८

130- [illegible] from [illegible]

x Budh Dharam ka.

131- [illegible]

[illegible]

गुप्त काल में जब बौद्ध धर्म का ह्रास प्रारंभ हो गया था और वैदिक ब्राह्मणधर्म का पुनः उत्थान हो गया। तान्त्रिक बौद्ध सिद्धों ने जनताओं में स्थान पा लिया। सिद्धों ने भी निर्गुण निरंजन, शून्य का उपदेश दिया था, और गुरु को विशेष महत्त्व दी। नाथपन्थ का और उस पन्थ का जिस ब्रह्म-भावना से निरंजन तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है, सिद्धों, नाथों के उपदेशों से प्रभावित होकर सगुण में निर्गुण भक्ति की भावनाएं पुष्ट हुई।[232] निर्गुणवादी सन्तों में बौद्धों का निर्वाण, योग भावना का प्रचार किया गया है।[233] डा० धर्मवीर भारती नाथों और सन्तों के हिन्दी साहित्य पर नाथ सिद्धों का अधिक प्रभाव प्रकट करते हुए योग संप्रदाय रूप में मानते हैं।[234] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्धों के सन्तों तथा नाथों पर प्रभाव को परिष्कृत रूप में स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि उपनिषद की भावना, नाथ सिद्धों का खंडन, गुरु का महत्त्व, गुरु पूजा, आदि की प्रवृत्तियां दोनों में समान रूप से मिलती हैं। सन्त के दोनों का एक प्रकार पूरक हैं, इस प्रकार सिद्धों से।[235] आदि ग्रंथ के कवियों पर इस प्रकार की परिस्थिति होती है, परन्तु सम्पूर्ण रूप के लिये भी उन कवियों ने नहीं अपनाया। कबीर का प्रभाव आदि ग्रंथ के कवियों पर है, पर उनमें भी उस प्रकार की कट्टरता नहीं, जिसकी कबीर का गुरु ग्रंथ में आदि का संकलित रचनाओं में है।

२३३- डा० गोविंद त्रिगुणायत- हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि- पृ० १९८

२३४- सिद्ध साहित्य- प्रस्तावना पृ० ९

२३५- नाथ-साहित्य- पृ० ३४८

नाथ-योगी- साहित्य

नाथ पंथ: नाथ-पंथ वज्रयान और सहजयान की ही प्रतिक्रिया था। कुछ विद्वानों का मत है कि नाथ पंथ सहजयान और वज्रयान का ही परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप है।[136] राहुल जी ने भी नाथ पंथ के प्रधान आचार्य गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य माना है।[137]

नाथयोगी साहित्य : गोरखनाथ के नाम पर बहुत सारी हिन्दी में अनेक ग्रंथ मिलते हैं, किन्तु उनमें से अनेक तो निश्चित रूप से परवर्ती काल के हैं।[138] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, गोरखनाथ के नाम पर जो पद मिलते हैं, वे कितने पुराने हैं, यह कहना कठिन है। इन पदों में से कई पद दादू दयाल के नाम पर, कई कबीर के नाम पर और कई नानक देव के नाम पर पाये जाते हैं।[139] डा० पी०एन० बड़थ्वाल ने गोरखबानी की भूमिका में लिखा है कि नाथ परंपरा में उनके कहीं प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। मैं अधिक सम्भव समझता हूं कि गोरखनाथ विक्रम की दसवीं शताब्दी में हुए। वे रचनाएं जैसी इस समय उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु उनमें की प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिनसे कहा जा सकता है कि संभवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ हो।[140] विद्वानों ने डा० बड़थ्वाल का मत स्वीकार करते हुए गोरखनाथ का समय १०५० संवत् के आस पास रखा है।[141]

सिद्ध अथवा नाथ कौन थे? डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'ब्रह्मानंद ने स्वकीय प्रबोधिनी में नाथों के समुदाय को 'नाथ संप्रदाय' कहा है। परन्तु संप्रदाय में अधिक प्रचलित शब्द है, 'सिद्ध मत' (गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह- पृ०१२) 'सिद्ध मार्ग' (योग बीज) योग-मार्ग (गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पृ० ५,१२) 'योग संप्रदाय' (वही० पृ० ५८) 'अवधूत मत' (वही पृ० १८) 'अवधूत संप्रदाय' (पृ० १९) इत्यादि। इसमें मार्ग से ये लोग 'सिद्ध मत' या 'सिद्ध-मार्ग' के लिये

१३६- कबीर का विवेचन (डा० सरनाम सिंह) पृ० ६४

१३७- गंगा पुरातत्वांक पृ० २१८ पर से कबीर का विवेचन पृ० ६४ पर

१३८- डा० कोमल सिंह सोलंकी- नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य पृ० १०६

१३९- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- नाथ संप्रदाय - पृ० ११२

१४०- गोरखबानी भूमिका - पृ० २०

करते हैं, कि उनके मत में 'नाथों' को 'सिद्ध' है। इनके मत का सम्बन्ध प्रामाणिक ग्रंथ 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' है।[252] गुरु नानक जी के काल में नाथ योगियों की [illegible] फैली हुई था।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी [illegible] का [illegible] ऐतिहासिक तथा साम्प्रदायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सिद्धों में मत्स्येन्द्र नाथ ढुईपा आदि सिद्ध माने जाते हैं।[253] कहीं नाथों ने मत्स्येन्द्र नाथ को आदि नाथ माना है।[254] और गोरख ने गुरु [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] अनुयायियों में उन्हें आदि शिव माना है।[255] गुरु नानक ने गोरख [illegible] विष्णु [illegible] बराबर है। [illegible] कारण, आदि ग्रंथ में भगवान विष्णु रूप की प्रतिष्ठा है।[256] क्योंकि नाथ पंथ में गोरख की प्रतिष्ठा [illegible] बढ़ गई थी कि लोग गोरख-गोरख के नाम [illegible] मानने लगे थे,[257] अतः गोरख [illegible] गुरु नानक [illegible] रूप में [illegible] प्रस्तुत [illegible] और उन्होंने [illegible] गोरख का [illegible] किया।[258] डा० [illegible] लिखते हैं, नाथों और सिद्धों में नाथों [illegible] : है कि [illegible] आर्य नाम [illegible] नहीं [illegible]। उनके [illegible] नाथों में [illegible], [illegible] नाथ [illegible] सामाजिक [illegible] और [illegible] गुरु का नाम [illegible] प्राप्त कर लेता था।[259] नाथों [illegible], परन्तु [illegible] है कि नाथों में [illegible] में [illegible] नाथ सम्प्रदाय में [illegible] पड़ता था। डा० रांगेय राघव ने [illegible] के आधार पर लिखा है, [illegible] गोरख ने [illegible] था, [illegible] और [illegible] की माता के नाम से अभिहित करते।[260] [illegible] सिद्ध होता है कि सांप्रदा

२५२- डा० [illegible] - नाथ पंथ और निर्गुण [illegible] पृ० १०७

(२) हिन्दी साहित्य का [illegible] (डा० [illegible]) पृ० १५०

(३) [illegible] पृ० ५६

(४) गोरख नाथ और उनका युग - (डा० रांगेय राघव) पृ० [illegible] - ६

२५३- नाथ संप्रदाय (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी) पृ० २

२५४- हिन्दी साहित्य (डा० भारती) पृ० ४८

२५५- आदिनाथादि [illegible] (गोरख [illegible] - पृ० २४२

आदि नाथ [illegible] है, परन्तु [illegible] आदि नाथ [illegible]। [illegible]

[illegible] है। आदि नाथ [illegible] नाथ [illegible] (पृ० [illegible] -

है कि नाभोतर कुलपति द्वारा अक्खर का अप्रामाणिक माना गया है,[151] जिन्हों ने नाथ-योगी के नाते पर गया था, जिसने गुरु परंपरा के रूप में अपना नाथ गोरख का धारण किया हुआ था। ... 'गोरख' नाम के कई ... लोकों 'गोरख टीला', 'गोरख मण्डल', 'गोरख ...' आदि प्रसिद्ध भी ... हैं, कथा ... का प्रधान नाथ-सिद्ध ... 'गोरख' ... धारण कर लेता होगा। ... कारण है कि नाथ-संप्रदाय में भी गुरु नानक ... गोरख गुरु ... पाते हैं।[152]

१- जहाँ गोरख ... नाम ... कुंभ ... जो ।

निरंजन निरधारी बैठे गोरख ... - ... १६५

२- नाथ ... नाथ ... , गोरख ... जोगी । ...- ...

नाथ ... तथा गुरु गोरख ... इसलिये प्रस्तुत किया गया है, कि आदि ग्रंथ की ... रचनाओं पर गोरख बानी का प्रत्यक्ष प्रभाव है। यहाँ से यह आदि ग्रंथ में गुरु नानक, नाम देव, कबीर ... रूप में स्वीकार ... किये हैं, ... गोरख बानी में है। ... अंतर है, जो ... कालों के ... दृष्टिकोण के कारण है। ... निर्णय कर देना ठीक होगा कि गोरख बानी ... आदि ग्रंथ के तुलनात्मक अध्ययन से यह ... स्पष्ट है, कि गोरख बानी ... आदि ग्रंथ की वाणी की भूमिका है। ... प्रमाण आदि ग्रंथ के ... से ... मिल जाता है, क्योंकि आदि ग्रंथ में गोरख बानी ... यहाँ ... विचार प्रस्तुत किये गये हैं, गोरख बानी की

१४५- सिद्ध साहित्य (डा० ...) पृ० ४५

१४६- गुरु ... - गुरु गोरख ... गुरु ... पृ० २

१४७- ... गोरख गोरख ... । (कबीर- ... पृ० ११६०

१४८- ... गोरख ... । ... ,

... । ... १:१ ... पृ० ...

१४९- सिद्ध-साहित्य पृ० ४८

१५०- गोरख नाथ और उनका युग-पाद-टिप्पणी न० २ पृ० ५६

१५१- नाथ ... । ...

... दामोदर में ... ।

की तुलना में आदि ग्रंथ में इन विचारों का [illegible] परिष्कृत रूप मिलता है। इस मार्ग का विशेष प्रतिक्रिया के रूप में संपन्न हुआ था, जिस की परंपरा बहुत पुरानी है। जिस प्रकार महायान से वज्रयान, वज्रयान से सहज-यान और सहजयान की विकृत प्रतिक्रिया में नाथ-पंथ का आविर्भाव हुआ, उसी प्रकार नाथ-पंथियों के सांसारिक जीवन के तिरस्कार की प्रतिक्रिया के स्वरूप में संत मत का आविर्भाव हुआ था। आदि ग्रंथ का [illegible] जिसे गुरमति भी कहते हैं, सन्तमत के व्यावहारिक रूप की पराकाष्ठा था। इसलिये नाथों के विचारों पर आदि ग्रंथ में टिप्पणियों द्वारा साधकों का योग्य मार्ग निर्देशन किया गया। गुरुओं द्वारा की टिप्पणियाँ आदि ग्रंथ में फरीद [illegible] कबीर [illegible] की दूसरी रचनाएँ, जो इस ग्रंथ में सम्मिलित हैं, [illegible] मिलती हैं। इस दृष्टिकोण से गोरखबाणी अथवा नाथ साहित्य गुरु ग्रंथ के परंपरागत स्वरूपों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण कृति है। गोरख नाथ के नाम से [illegible] नाम से पुकारते हैं। रामानन्द के नाम से भी [illegible] नाम की पुस्तक मिलती है। जिस में नाथ पंथ और राम संप्रदाय, संत परंपरा में संयुक्त की गयी थी।[१३]

गोरखनाथ के नाम से भी ४० ग्रंथ मिलते हैं।[१४] किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने केवल इन चौदह रचनाओं को ही गोरख रचित माना है।

१- सबदी

२- पद

३- शिष्या दरसन

४- प्राण संकली

५- नरवै बोध

६- आत्म बोध

७- अभै मात्रा जोग

८- पंद्रह तिथि

९- सप्तवार

१०- मछींद्र गोरख बोध

११- रोमावली

१२- ग्यान तिलक

१३- ग्यान चौंतीसा

१४- पंच मात्रा।

इन रचनाओं में मुख्यतः गुरु महिमा, वैराग्य, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना, मन साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य-समाधि आदि सांप्रदायिक विषयों का ही प्रतिपादन किया गया है।[१५१]

दर्शन : गोरखनाथ जी के दार्शनिक सिद्धान्तों के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डा० राम कुमार वर्मा उनके सम्प्रदाय को शैव दर्शन से प्रभावित मानते हैं।[१५२] डा० मोहन सिंह ने उनके दर्शन पर उपनिषदों का प्रभाव माना है।[१५३] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी गुरु गोरखनाथ के दार्शनिक सिद्धान्तों को वेदांत परक मानने के पक्ष में हैं। उनका विचार है कि उनकी गोरख-पंथी रचनाओं से भी अद्वैत सिद्धान्त का ही प्रतिपादन लक्षित होता है। वेदान्त तथा नाथ पद्धतियों में अन्तर है।[१५४]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि संस्कृत में योगियों के जो भी ग्रंथ उपलब्ध हैं, वे साधना और पर साधना की ही अधिक व्याख्या करते हैं। उनसे योगियों के दार्शनिक और नैतिक सिद्धांतों का आभास बहुत कम होता है। परन्तु हिन्दी में गोरखनाथ के नाम से जो अनेक पद और श्लोक आदि प्रचलित हैं उनमें यद्यपि साधना मार्ग की व्याख्या ही अधिक है, पर उनमें योगियों के धार्मिक विश्वास, दार्शनिक-मत और नैतिक व्यवस्था विशेष मालूम है।[१५५] अतः हम इसी वक्तव्य को गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं पर भी आश्रित करते हैं। जहाँ तक गोरखनाथ जी के दार्शनिक मत का संबंध है, हमारा विचार है कि डा० मोहन सिंह तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतों में सच्चाई अधिक है, और भी गोरखनाथ के सिद्धान्तों में वेदान्त का ही फलक दिखाई पड़ता है। [illegible] गोरखनाथ की रचनाओं का [illegible] ढंग से संबंध स्थापित करने के लिये विवेचन आवश्यक है। इस लिये

१५२- गोरख बानी- डा० पी० डी० बड़थ्वाल भूमिका पृ० २१, २२

१५३- गोरखनाथ और उनका युग- पृ० १६६

१५४- वही- पृ० १६४

१५५- डा० गणपति चन्द्र गुप्त- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० १८०

गुरु गोरखनाथ की रचनाओं एवं उनके विचारों के आधार पर प्रस्तुत करना अभीष्ट होगा। आदि ग्रंथ में नाथ योगियों से प्राप्त परंपरा या शब्दों का भी यथास्थान उल्लेख किया जायेगा।

ब्रह्म : गोरखनाथ ब्रह्म के विषय में वेदांत की अद्वैतवादी विचारधारा से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। वह ब्रह्म को अजन्मा मानते हैं, और प्रत्येक घट में निवास करता है। यह संसार उसका खेल तथा बाजीगरी है। जैसे तिल में तेल विद्यमान है, उसी प्रकार अंजन में निरंजन का वास है।[160] [illegible] गोरख ने [illegible] है और अंजन में निरंजन से भेंट करने तथा संसार में रहकर ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश दिया है। गुरु नानक देव जी ने भी इसी स्वर में ऐसा योग की चर्चा करते हुए 'अंजन माहि निरंजन' रहने का उपदेश दिया है।[161] कबीर तथा गुरु अमरदास ने भी गोरखनाथ के इस विचार को उसी रूप में ही स्वीकार किया है।[162] यह सिद्धान्त ब्रह्म को संसार में रहकर प्राप्त करने के पक्ष में है।

१५६- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० १४३

१५७- डा० मोहन सिंह- गोरखनाथ एंड मेडिवल हिन्दू मिस्टिसिज़्म में से हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि- पृ० [illegible] पर उद्धृत।

१५८- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- उत्तरी भारत की संत परंपरा- पृ० [illegible]

१५९- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- नाथ संप्रदाय पृ० २२१

१६०- अंजन माहि निरंजन भेट्या तिल मुख भेट्या तेलं।
मूरति माहिं अमूरति परस्या, भया निरंतरि खेलं। (४१)
ग्यान तिलक-गोरखबानी पृ० २१७

१६१- जोगु न खिंथा जोगु न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ, जोगु न सिंङी वाईऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ। सूही म: १, आ०ग्र० पृ०
730

परमात्मा को ढूंढने के लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। वह इस प्रकार घट घट में है, जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब। [163] इसी विचार को और भी फेर कहते है साथ गुरु तेग बहादुर ने बताया है। [164]

गोरख नाथ कहते हैं कि जैसे प्रकाश कुण्ड में आ जाता होता है, जैसे चकमक के अन्दर से चिंगारियां फूटती हैं, उस के करने से प्राप्त होता है। परन्तु वह गुरु कृपा से ही होता है। [165] गुरु अर्जुन देव ने इस विचार को इस प्रकार से वर्णन किया है। [166]

<u>सृष्टि रचना:</u> गोरख नाथ ने सृष्टि रचना के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये हैं, जो आदि ग्रंथ में पाये जाते हैं। वे कहते हैं, कोई भी जोगी अथवा ज्ञानी नहीं जानता कि सृष्टि रचना कैसे हुई। किसी को यह नहीं पता कि पहले कौन सी रचना हुई अथवा तारा था। पहले पवन न था, न नीर और न अग्नि ने ... दय किया ... सभी को सिरजा किया। इस रचना के ... इस रचना में क्या था। [167] इसी विचार को प्रकट करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं, सृष्टि रचना कब हुई? उस दिन कौन सी तिथि क्या वार था? जब सृष्टि का आकार हुआ उस समय कौन सा ऋतु और मास था? इन प्रश्नों का उत्तर यदि पुराण में होता तो उस समय को पण्डित नहीं ढूंढ सके, यदि कुरआन में लिखा होता, तो काज़ी उस समय को नहीं बता सके। उस तिथि और वार को जोगी भी नहीं जान सके और यह नहीं बता सके कि कौन सा महीना था और कौन सा ऋतु था। [168] इस रहस्य को तो केवल वही प्रभु जानता है, जिसने सृष्टि रचना की है।

१६२- कबीर: अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, बहुड़ि न भवजलि पाइआ। आ०ग्र० पृ० ३३२

गुरु अमरदास: अंजन माहि निरंजनु पाइआ, जोती जोति मिलावणिआ। आ०ग्र० पृ० ११२

१६३- दरपन माहि दरसन देख्या, नार निरंतरि काई।

आपा मांहे आपा प्रकास्या, तौ ही दूर न जाई।

गोरख बानी पृ० २०८

१६४- काहे रे बनि खोजनि जाई।

सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई। (contd.)

गोरख नाथ ने 'मछिन्द्र गोरख-बोध' लिखा है, इस में उन्होंने प्रश्नोत्तर शैली में स्वयं को शिष्य रूप में प्रश्न करते हुए और गुरु मछन्दर नाथ को उत्तर देने वाले के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने अपने ज्ञान को गुरु ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया है। आध्यात्मिक साहित्य में इस शैली की परंपरा औपनिषदिक है। गुरु नानक ने भी नाथ-सिद्धों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए 'सिध गोसटि' की रचना की है। विचार पक्ष की दृष्टि से 'गोरख मछिन्द्र बोध' तथा गुरु नानक की 'सिध गोसटि' का बड़ा महत्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोरख नाथ के कतिपय विचारों एवं शब्दों को ज्यों का त्यों स्वीकार करते हुए और उनको परिभाषित रूप में प्रस्तुत करते हुए, गुरु नानक देव जी ने मछिन्द्र गोरख-बोध को सामने रख कर 'सिध गोसटि' की रचना की है।

सृष्टि-रचना के पूर्व की अवस्था का वर्णन करते हुए गोरख नाथ जी कहते हैं, जब हृदय नहीं था, तब मन शून्यावस्था में लीन था। जब नाभि का आधार नहीं हुआ था, तब पवन निराधार था। जब नाम रूप नहीं था, तब अकुल अनुमान होकर रहता था। जब गगन नहीं था, शशि अंधकार में रहता था। अर्थात सृष्टि रचना के पूर्व की अवस्था शून्यावस्था थी।[166]

पुहप मधि जिउ बासु बसत है। मुकुर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतरि घट ही खोजहु भाई।
धनासरी म: ९ पृ० ६८४

१६५- जल कै हरकै कानि करै जूं, दधि मथि घृत करि लीया।
आपा मांहि आपा प्रगट्या, तब गुरु सन्देस दीया।
गोरखबानी प्र पृ० २०८

१६६- गगन अगम्पारि भवि पैसारु, गगन दूध भवि बीणा।
ऊंच नीच भवि जोति समाणी घटि घटि माधव जीना।
म: ५ आ०ग्रं० पृ० ६२९

१६७- जाणा नै चौगी चौरी नै बिचारी,
पवना सुरति ले मारी जी।
जाई नहीं तहंवा आदल नाहीं तिन धाम्यां पाते मंडप रचीया।
तिहां वाण लगांवत मारी जी। गोरखबानी - पृ० ८७

आदि ग्रंथ में गुरु नानक देव ने इन विचारों को गोरख नाथ के शब्दों में भी प्रकट किया है। कहीं अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है, गुरु नानक ने इन विचारों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। इन में कुछ परिष्करण भी किया है।[१९८]

मन : गुरु गोरख नाथ ने मन की योग साधना-परक स्थिति का स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है, कि अवधूत! मन का निवास हृदय में है। पवन का स्थान नाभि है। शून्य का निवास [illegible] में है। और चन्द्र का निवास गगन में है। उन्मनावस्था में वह मन रहता है, ऐसा विचार गोरख को मछिन्द्र ने बताया है।[१९९] क्योंकि गुरु गोरख नाथ की यह मानसिक व्याख्या साधना-परक है, अतः गुरु नानक देव की मन की व्याख्या इस स्थिति में साधना-परक होते हुए भी गोरख नाथ की व्याख्या से भिन्न है। गुरु नानक जी कहते हैं, मन का भोजन पवन है, परन्तु वह कौन सा स्थान रखता है? ज्ञान की मुद्रा कौन सी है? किस की साधना कैसे हो? इस का उत्तर देते हुए

१९८- आखणु सु [illegible] आखणु आखणि [illegible] आखणु सारु।
[illegible] [illegible] आखणु [illegible] [illegible] ।
[illegible] न पाईआ पड़ंता [illegible] [illegible] पुराणु ।
[illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुराणु।
[illegible] सारु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ना [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाणै [illegible] ।।
[illegible] । [illegible] : १, [illegible] पृ० ४

१९९- मछिन्द्र: [illegible] [illegible] न होता तब सुंनि रहता मन।
नाभी न होता तब निराधार रहिता पवन।
रूप न होता तब [illegible] रहिता [illegible]।
गगन न होता तब [illegible] रहिता चंद।२८।।
मछिन्द्र गोरख बोध- गोरखबानी।

२००- [illegible] [illegible] न होता [illegible] [illegible] [illegible] सुनि [illegible] बैरागी।
नाभि [illegible] [illegible] न होता [illegible] निरधारि [illegible] [illegible] [illegible]।
रूपु न रेखिआ [illegible] न होती [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न होता त्रिभवण [illegible] [illegible] निरंकारु।
(contd)

वे कहते हैं बिना गुरु-साधना (नाम सुमिरन) के रसास्वादन (अमृतपान) नहीं होता, तथा अहंकार की वासना नहीं जाती। गुरु-साधना से नाम-रस प्राप्त होता है, और उस सत्य स्वरूप में लीन होने से तृप्ति होती है। गुरु नानक देव ने और प्रश्न उठाते हुए कहा है कि कैसी बुद्धि स्थिरता प्रदान करती है, और किस भोजन से तृप्ति होती है? उत्तर में वे कहते हैं, सतिगुरु की कृपा से दु:ख तथा सुख में समभाव रखने से काल नहीं ग्रसता।[१९२]

मन की अवस्था का वर्णन करते हुए गोरख नाथ जी कहते हैं, यह मन शक्ति है, यह मन शिव है। यह मन पांच तत्वों का जीव है। यदि इस मन को लेकर उन्मनि अवस्था में रखा जाए तो तीन लोक की सूझ प्राप्त हो जाती है।[१९३] आदि ग्रंथ में यह विचार कबीर द्वारा गोरखबानी के शब्दों में गृहीत हुआ है।[१९४] मन की अवस्था का एक विशिष्ट शैली में वर्णन करते हुए गुरु अमर दास कहते हैं, यह मन अति चंचल है। किसी उपाय के कारण यह विषयों का त्याग नहीं करता। इस प्रकार यह दुर्मति में फंसा दु:खों को सहन करता है। इन दु:खों से छूटने का एक मात्र उपाय नाम-सुमिरन है।[१९५]

कवनु भेखु सरूपु न दिसै कवनु रसि रहे विडाणी।
ज्ञान बिना सुरत को भावै नानक कथा कहाणी।

सिध गोसटि आ०ग्रं०पृ० ९४५

१९१- सबदु हिरदे बसै मन, नासिका बसै पवन।
रूप बसै नाद, गगन बसै चंद।।
इहां स्थाने ए मन रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।।२६।।

मछिन्द्र गोरख बोध- गोरख बानी।

१९२- मन का जीउ पवन कथीअले पवन कहा रसु खाई ?
गिआन की मुद्रा कवन अउधू सिध की कवन कमाई?
बिनु सबदै रसु न आवै अउधू हउमै पिआस न जाई।
सबदि रते अम्रित रसु पाइआ साचे रहे अघाई।
कवन बुधि जितु असथिरु रहीऐ कितु भोजनि त्रिपतासै।
नानक दुखु सुखु सम करि जापै सतिगुर ते कालु न ग्रासै।

सिध गोसटि -म: १ पृ० ९४५

माया : गोरखनाथ का कहना है, माया ने त्रिभुवन को खा लिया है। इस बलवान सर्पिणी रूप माया ने ब्रह्मा-विष्णु तथा महादेव को खा लिया। गोरखनाथ महाप्रभु ने प्राणायाम साधना से सर्पिणी (कुंडलिनी) को जगा कर जैसे माया को वश में कर लिया है, जैसे गारुड़ी सर्प को वश में कर लेता है। इस प्रकार मन ने ध्यान को ब्रह्मरंध्र में स्थिर किया है और जब [illegible] से जो अमृतपान होता है, उस [illegible] (अमृत) में सर्पिणी [illegible] किया हुआ को नहीं कर पाता। मैं ने सर्पिणी को मार लिया होता, तब जम मेरा क्या बिगाड़ सकता है? [१९६] आदि ग्रंथ में कबीर जी ने गोरख नाथ के इस विचार एवं मत को लेकर साथ परिष्करण करते हुए, इस सर्पिणी को मारने को नहीं कहा क्योंकि यह माया तो बलवान है, जितना इसे त्यागो अकाल पुरुष। इसके शरीर में रहने से शरीर नाश हुआ है। गुरु की कृपा से इसे जीता जा सकता है। कबीर जी ने इसके लिये प्राण साधना नहीं शब्द साधना का उपाय बताया है, जिसका साधना पक्ष में वर्णन किया जायेगा। जो सत्य स्वरूप को जान लेता है उसे सर्पिणी क्या कर सकती है? सर्पिणी तो उसकी चेरी (दासी) हो जाती है।

१९३- यह मन सक्ती यह मन सीव।
यह मन पांच तत्त का जीव।
यह मन ले जे उनमन रहै।
तो तीनि लोक की बातां कहै। गोरखबानी पृ० ४८

१९४- कहु मनु सकती कहु मनु सीउ।
कहु मनु पंच तत का जीउ।
कहु मन ले जउ उनमनि रहै।
तउ तीनि लोक की बातै कहै। गउड़ी [illegible]।
कबीर- गु०ग्रं० पृ० ३४२

१९५- एहु [illegible] है जो न [illegible]।
[illegible] दुजा [illegible], [illegible] देह [illegible]।
नानक नामि [illegible] में [illegible] सादि [illegible]।।
म: ३ गु०ग्रं० पृ० ३३

१९६- मारी मारी स्रपणी निरमल जल पैठी।
त्रिभुवन डसती गोरख नाथ दीठी (टे०) । (Conto.)

गोरख नाथ ने देह के त्रिगुण में आत्मा को त्रिगुणात्मक माना है। इस का रूप निर्दिष्ट किया है जिनमें कहीं गुण है कहीं नहीं; हनुमान के सर सांचो है, और कबीर के सर सांठिला। कृष्ण के सर सांस है, यह तीनों मिल कर सांस, सांठा, सांचो को भी साधा के सर सेर (भाला) है, अंत में सेर से और सेला के सर सेर है- इस प्रकार कर सेर-सेर-सेल का सिध को ध्या। कबीर के सर सेर (सांस साला) है, बालक में सिंग है, हुनान में सांस है। सातों मिलकर सांस, सांस और सांस हुआ। इस मूल्य रूप में कृष्ण ने इनका त्रिगुणात्मक आत्मा को नाना नाम रूप में व्याख्यान किया है; गोरख नाथ का कहते हैं, वह कृष्ण-ने त्रिगुण तथा का ज्ञान केवल गाविन्द का है ... प्राप्त हो सकता है।[१०५] अन्य कवियों ने इसे पूर्व कहीं नाथ-योग-मन्त्रों की साम्य भाव से लेकर इन कवियों ने नीति मानते हुए उसका सहज मान से ग्रहण कर लिया। सन्त नामदेव ने गोरखनाथ के इस पद को भी रूप में स्वीकार कर लिया। उन्होंने इस पद में हुए और जोड़ त्रिगुणात्मक आत्मा को एक रूप कर दिया है, क्योंकि वह उसी भगवान् का अंश है, अतः सन्तों ने उस भगवान् को मन में जाना है। जैसे यह बात गोरख ने भी कहा है, कि माया भगवान् की शक्ति है। किन्तु गोरख की साधना प्राण-साधना है, और सन्तों की साधना नाम-साधना।[१०६] नामदेव ने जगत के विभिन्न रूपों में एक भगवान् का रूप जान, भगवान् के विभिन्न नामों (राम-श्याम-गोविंद) को उस एक को पर्याय माना है।

मारी कृपणी मा केसी धीरा।
जिनि मारा कृपणी जाणी मन की पीरा।।
कृपणी की मे अकला, अगिया।
ब्रह्म ति धण अवादेस अगिया।।
मारा माता कृपणी दसौं दिसि धावे।
गोरख नाथ पारसी पकरि लेगि ल्यावे।।
आदि नाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता।
कृपणी मारि ने गोरख अवधूता।। ४-४८

गोरख बानी २३६-२४०

आवागमन : आवागमन [illegible] और [illegible] मे प्र[illegible] [illegible] है।[180]

माया के [illegible] में फ[illegible]र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] है।[181] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] हैं, कि [illegible], पर[illegible], [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तब [illegible] आवागमन [illegible] [illegible] और [illegible] निरंकार [illegible] [illegible] है और किस प्रकार [illegible] [illegible]।[182] [illegible] नानक देव जी [illegible] [illegible] [illegible] आवागमन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है, [illegible] [illegible] [illegible] ने [illegible] का [illegible] [illegible] किया है।[183]

१८७- सरप[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]।।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जमरा।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

आ०ग्रं० पृ०५४पृ०-८१

१८८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।
[illegible] [illegible] नानक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (पंजाबी रूप- [illegible] [illegible])

साधना पक्ष

नाथों ने बौद्ध धर्म की परंपरागत साधना, धर्म, चिन्तन संयम, विरक्ति, प्राणायाम आदि को अपने रूप में अंगीकार किया। उन्होंने काया-शोधन, मनोमारण और ध्यान योग पर विशेष जोर दिया। ये सारी प्रवृत्तियां बौद्ध धर्मावलम्बी सिद्धों में विद्यमान थीं। कालान्तर के सन्त भी धीरे धीरे इन प्रवृत्तियों का विकास करते रहे थे और कालान्तर में इन साधना का रूप बदल गया, यद्यपि मूल-भावना वही रही। नाथों ने

१७९- रागिनी टोडी बेटु पाडे।। ।। रागटोडी।।
डूंगार मैं हरि भांजि आदि राजा मैं हरि पांजी रो।
जाधन मैं हरि रांक आदि रांक कांम मांग रो।
मारणार मैं हरि रांत आदि, पैसन माणि पांडु रो।
बेल भवे मैं हरि बेटु आदि, संकर भये केल रो।
माला मैं हरि के आदि के के के रो।
गंगा भये गोविंदु आदि के के केल रो।
नामे भये रघु आदि, राम-निवास, गोविंद रो।
टोडी नामदेव, रा०ग्रं०पृ० ७२८

१८०- आसा आसन परम तत्त नारायण पुरवान गंगा बालसा।
सबद गीत गावन्द गौरी, बांरि गैल वखाना।
गोरखबानी पृ० २१६

१८१- ऊंकार वाजे धातु पूजा बंध तार।
ऊंकार जाया है सकल संसार। गोरखबानी- ६८

१८२- पवन परम परसा लिंगा पर आसारु न छुटै।
आसानारु नेहु मैं फुनि फुनि दुसरेउ न छुटै।
रामकली -- ग्रं०पृ० ९९१

१८३- आसाराणु निरतिका सु धिर करणेकारो।
भणु नरण मा तनका आपिनु मान बिचारो।
भूडडे नाम बिसारिया छूटे तिना तिनु पारो।।
म: १ ग्रं०ग्रं० पृ० ५८०

आनापान, भक्ति भावना को इस प्रकार से [illegible] कर दिया। शरीर के नवों द्वारों को बन्द करके वायु के आने जाने का मार्ग बाद बन्द कर लिया जाय तो उसका व्यापार ६४ सन्धियों में होने लगेगा। इससे निश्चय ही काया नष्ट होगी और साधक एक ऐसे सिद्ध में परिणत हो जायेगा जिसकी छाया नहीं पड़ेगी।[१८४] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि गोरखनाथ की साधना का पूरा जोर शील, संयम और शुद्धा-चारी था और उन्होंने तान्त्रिक उच्छृंखलताओं का विरोध कर निर्मम रूप से साधु और गृहस्थ दोनों का दुराचारियों को चूर्ण कर दिया।[१८५]

काया शोधन :

गोरखनाथ की योग साधना में काया शोधन अथवा काया साधना [illegible] अधिक लाभकर होगा। इस काया में नौ द्वार हैं। सब द्वार खुले हैं, परन्तु दसवाँ द्वार ताले-कुंजी बंद है। इसकी ताली गुरु के पास है। गुरु की कृपा से दसवाँ द्वार खुलता है। इसी दसवें द्वार में परम-शिव अथवा परब्रह्म का स्थान है। इस साधना से सहज स्वभाव से ही अविनाशी के दर्शन होते हैं। गोरखनाथ कहते हैं, कि कोई विरला ही काया गढ़ को जीत सकता है।[१८६] इसके अन्दर से यदि काम क्रोधादि को समाप्त कर दिया जाये तो सत्य और सन्तोष का राज्य इस गढ़ में स्थापित होता है और आत्मा और शक्ति से आदेश का संचार होता है।[१८७] यह साधना प्राण-साधना है।

१८४- बौद्ध धर्म का मध्ययुगीन सन्त साहित्य पर प्रभाव पृ० ११५

१८५- नाथ संप्रदाय से बौद्ध धर्म का मध्य युगीन संत साहित्य पर प्रभाव में पृ० ११५ पर।

१८६- काया गढ़ भीतरि नव लाख खाई।
दसवें द्वारि अवधू ताली लाई।
काया गढ़ भीतरि देव देहुरा कासी।
सहज सुभाइ मिले अविनासी।
बदंत गोरख नाथ सुणौं नर लोई।
काया गढ़ जीतै का विरला कोई।। 3-83
गोरखबानी पृ० ११६

आदि ग्रंथ में भी गोरखनाथ की प्राण-साधना की परंपरा प्राप्त होती है। इन वैष्णवों की साधना बहुत कुछ गोरख नाथ वाली ही है। वे कहते हैं, 'दशम द्वार [illegible] अपार परम पुरुष की [illegible] है।' इस स्थान पर गुरु के निर्देशन में ध्यान को स्थिर करना चाहिए।[188] परन्तु यह साधना सर्वांग वही नहीं जिसे प्राण-साधना कहा जाये। इस में प्राण-साधना के केवल अवशेषमात्र हैं। वैष्णवों के नाथों में भी यह साधना नामदेव की भांति प्राण साधना न रहकर भक्ति-परक साधना का रूप धारण कर चुकी थी। [illegible] आकर नाथ ने विष्णु रूप [illegible] सम्मिलित हो चुका था, आगे चलकर भी मन को दशम द्वार में टिकाकर योगियों का [illegible] में सहस्रार से अमृत चूने का पान करते थे।[189] फिर भी आदि ग्रंथ के साधकों की साधना इन नाथ योगियों से सर्वथा भिन्न है जिसका साधना पक्ष में विचार किया गया है। आदि ग्रंथ के साधकों को इन उत्तम आचरण वाले नाथों की तो बात [illegible] सभी [illegible] में ग्रहण कर ली, परन्तु उनकी हठयोग साधना नहीं जंची। हठयोग साधना के विरुद्ध नाथों में भी एक धारा प्रवाहित हो चुकी थी।[190] जिन रिद्धियों सिद्धियों के त्याग की गुरु नानक ने बात की है,[191] उनके त्याग की बात गोरखबाणी में भी मिलती है।[192]

१८७- जब सुन्न ऊपरि [illegible] मिलै, तब [illegible] लिया न जाई।
अनहद [illegible] [illegible] दीपक लाई।
काम क्रोध दोऊ [illegible] मारिलै, [illegible] आतम [illegible]
[illegible] जोगी [illegible], [illegible] जाई।
आदि नाथ नाती मछिन्द्र नाथ पूता, [illegible]।
गोरखबानी पृ० १२१

१८८- दशम दुआरा [illegible] पारा परम पुरख की [illegible]।
ऊपरि [illegible] पर [illegible] भीतरि [illegible]।
[illegible] न [illegible]। तीन तिलोक समाधि [illegible]।
[illegible] मंडु के [illegible]। [illegible] सुंन [illegible]।
[illegible] न [illegible]। [illegible] सिर [illegible]।
गुर [illegible]। [illegible] परतेखि(?) [illegible]।
[illegible] हो। [illegible] न [illegible]।

[illegible]धारण :

गोरख [illegible] मन [illegible] [illegible] [illegible] मानते [illegible] [illegible] उतना [illegible] मानते हैं।[१६३] [illegible] [illegible] मन [illegible] विचार [illegible] करने में प्रमाण [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उन्मनि [illegible] [illegible] है, [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] होती है।[१६४] [illegible] ग्रंथ में [illegible] [illegible] ने मन [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] गोरख नाथ ने '[illegible] मन [illegible] [illegible] मन [illegible]' का अनुसरण किया है।[१६५] [illegible] ग्रंथ में मनों-[illegible] का [illegible] मनो-[illegible] है। मनो-[illegible] में मन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है किन्तु [illegible] नहीं

१८८-(१) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जावउगा।

[illegible] [illegible] [illegible] गो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गो।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गो।

गो०बा०पृ० ६७३

(२) [illegible] [illegible] गुफा [illegible] राखि कै,

[illegible] [illegible] [illegible] गा।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] गा।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] गा। गो०बा०पृ० ६२२

(३) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]...... गो०बा०पृ० ३३६

१९० [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], निर [illegible] निर [illegible] [illegible] [illegible]।

(१) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। नाथ संप्रदाय-1966 पृ:173.

(२) [illegible] न [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] गोरख [illegible]।

गोरख बानी पृ० १२

१९१- (३) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] गो०बा० पृ० ६

जा सकता।[१९६] सन्तों ने मन [illegible] [illegible] [illegible] किया है, क्योंकि योगियों ने मन को मारने की बात [illegible] की है।[१९७] सन्तों ने मन को मारने [illegible] मन [illegible] [illegible] है और बताया है कि [illegible] मन [illegible] प्रेम में गुरु देव, [illegible] नाम देव ने माना है, और [illegible] प्रकार मन में लीन हुए हैं।[१९८]

१९२- सिधि [illegible] सिधि [illegible], सिधि संकर [illegible]।
[illegible], गुरु हूं [illegible] गोरखनाथ।।
गोरख बानी- पृ० २३८

१९३- [illegible] मन [illegible] मन [illegible]।
यह मन पांच [illegible]।
[illegible] मन [illegible] उनमन रहै। [illegible] त्रिलोक [illegible] कहै।
गोरखबानी- पृ० १८

१९४- मन [illegible] गोरख [illegible],
[illegible] निरन्तर [illegible] बाणी।
गोरखबानी पृ० २४२

१९५- ना०प्र० पृ० ३४२

१९६- (१) [illegible] है, [illegible] न [illegible] उपाय।
[illegible]: ३ पृ० ३३
(२) [illegible] मन [illegible]। [illegible] मन [illegible]
[illegible] नाम [illegible]
[illegible] पृ० २८

१९७- [illegible] मन [illegible], [illegible] नहीं [illegible]।
[illegible] देव [illegible], [illegible] मन [illegible] गुरु ज्ञान बाण।
गोरख बानी पृ० १२६

१९८- [illegible] मन [illegible]।
[illegible] मन [illegible] समाई।
गुरु परसाद [illegible] नामा।
[illegible] प्रेम [illegible] जाना।
[illegible] मनि [illegible]।
[illegible] मनि [illegible] देखा। (Contd).

पाषाण पूजा विरोध

पाषाण पूजा को गोरख नाथ ने पूजा नहीं माना। पत्थर की प्रतिमा में प्रेम से फूल चढ़ाना फिर उस निर्जीव मूर्ति के सम्मुख सजीव फूल-पत्तियों को क्यों अर्पण किया जाय।[199] कबीर जी ने गुरु गोरख नाथ की ही शैली में इसी विचार को प्रस्तुत किया है, जो आदि ग्रंथ में संगृहीत है। कुछ मुद्रों का ही फेर पड़ता है, विचार को नहीं बदला। क्यों कि यदि सन्तों की साधना पद्धति के विषय में यह कह दिया जाय कि प्राण साधना तथा आजीवन, यहाँ भी गोरख अन्य आचारपरक साधनायें नाथ योगियों से कुछ भिन्न नहीं हो सकती हैं।[200]

जीउ जन्तु अरु सकल पसारा।
रहु मन अब रवि रहे कबीरा। आ०ग्र०पृ० 330

१९९- कैसे बोलौं पंडिता देव कौनें ठाईं।
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नाहीं।
पषांणची देवला पषांणचा देव।
पाषाण पूजिला कैसे फटीला सनेह।
सरजीव तोड़िया निरजीवीं पूजिला।
पाप चा करणी कैसे दूतर तिरीला।
गोरख बानी पृ० १३२

२००- गोरख बानी के १३२ पृष्ठ पर दूसरे पद का आदि ग्रंथ के 'पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ' (आ०ग्र०पृ० ४७९) से तुलनात्मक अध्ययन विचारणीय है।

बाह्याचार विरोध

गोरखनाथ ने तंत्र-मंत्र-जंत्र आदि के पाखंड को त्याग देने को कहा है और बताया है कि जड़ी बूटी का नाम न लो तथा राजद्वार पर पांव तक न रखो। [illegible] में दूधने का [illegible]। क्षुधा-निवारण छोड़ कर [illegible] करने का कोई लाभ नहीं। [illegible] व्यर्थ हैं। गिरि पर्वत पर चढ़ कर [illegible] करने का क्या लाभ? गुफा में बैठे [illegible] कर [illegible] रखाने का क्या लाभ? तर्क वितर्क अथवा भूत-भक्षण का निवारण कर [illegible] अष्टांग समाधि छोड़ कर ध्यान-[illegible] [illegible] निद्रा रहो। रिद्धियों का त्याग ही सिद्धि है। शराब [illegible] भंग का प्रयोग छोड़ो। नारी-[illegible]-कौंगुरा, इन तीनों को छोड़ कर गुरु की शरण में रहो।[201] सन्तों ने इन सब बातों को अपनी साधना में स्वीकार किया है, केवल 'गूंगा [illegible] [illegible] अजाण, भिक्षा भोजन परम उदास'[202] आदि की अपनी व्याख्या की है। [illegible] ने उन्हों ने 'सहज [illegible]' के रूप में स्वीकार करते हुए गृहस्थ जीवन को ही उत्तम माना है।

२०१- [illegible] [illegible] [illegible] कहंत। [illegible] [illegible] [illegible] पाषंड।
जड़ी बूटी का नांव [illegible] लेहु। राज दुवार पाव जिनि देहु।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। क्षुधा निवारण छोड़ जिनि मरो।
[illegible] [illegible] जिनि [illegible]। गिर परबतां चढ़ि प्रान [illegible] [illegible]।
[illegible] बैठ [illegible] निवारि। उपाधि [illegible] वाद [illegible] हारि।
[illegible] ध्यान [illegible] जिनि रहौ, ध्यान [illegible] [illegible] निद्रा [illegible]।
[illegible] रसायन [illegible] निवारि। रिधि [illegible] सिधि देहु [illegible]।
[illegible] [illegible] सुरापान अरु भंग। [illegible] उपजै नाना रंग।
नारी [illegible] कौंगुरी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

गोरख बानी : १९२-१७३

२०२- गोरखबानी - १७३

काव्य पक्ष :

डा० रांगेय राघव लिखते हैं, 'पूर्ववर्तियों और परवर्तियों के बीच में गोरखनाथ एक ऐसे विश्राम स्थल बन कर मिलते हैं कि वस्तुतः उन्हें छोड़ कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। कितनी बड़ी विरासत को कितनी बड़ी विरासत गोरखनाथ ने छोड़ी थी।[203] इस दृष्टि से यदि देखा जाए सिद्धों की रचना शैली एवं अभिव्यंजना पद्धति को संतों तक पहुँचाने में नाथ पंथियों ने गहरा योग दिया है। जहाँ इन तीनों सम्प्रदायों के साहित्य में विचार एवं भाव की दृष्टि से गहरा वैषम्य मिलता है, वहाँ शैलीगत वस्तुओं की दृष्टि से उनमें उतना ही साम्य भी दृष्टिगोचर होता है। फिर भी इन में प्रायः वासना, साधना, एवं भावना की प्रमुखता होने के कारण उनकी रचनाओं में काव्यात्मकता भी उसी के अनुरूप आ पाई है। दूसरे शब्दों में सिद्ध-साहित्य वासना[204] प्रधान, नाथ पंथी साहित्य साधना प्रधान एवं संत साहित्य भावना प्रधान है, तथा इसीलिए संत साहित्य का महत्त्व इन में सर्वाधिक है।[205]

रूपक पक्ष :

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'नाथ संप्रदाय की बहुत सी हिन्दी रचनाएं संवाद रूप में मिलती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दो महात्माओं के संवाद के रूप में अपने दार्शनिक मत और धार्मिक विश्वास को प्रकट करने की यह पद्धति नाथ पंथियों का अपना आविष्कार है। इस पद्धति ने परवर्ती सन्त साहित्य को खूब प्रभावित किया था और संवाद रूप में अनेक ऐसे ग्रंथ लिखे गए जिनका उद्देश्य संप्रदाय के सिद्धान्त और मत का प्रचार है। मछेन्द्र गोरख बोध जिसे संक्षेप में गोरख बोध कहा जाता है, ऐसा ही संवाद ग्रंथ है।'[206] इस संवाद रचना के कलेवर, विचार एवं काव्य शैली ने गुरु नानक की सिद्ध गोष्टि (जो आदि ग्रंथ में ९३८ से ९४६ पृष्ठों पर है) के लिये प्रेरणा एवं सामग्री प्रस्तुत की है। दोनों रचनाओं में विचार एवं शैली की दृष्टि से आश्चर्यजनक साम्य है। केवल साधना पक्ष का गुरु नानक देव की रचना में सन्त साधना परक परिष्कृत रूप मिलता है।

२०३- गोरखनाथ और उनका युग- पृ० २५६

२०४- ऊभा ऊभा पाताल नहीं [illegible] बाणी।

[illegible] पिण्डि परिचिण द्वारा गगन गुंजारि बाणी। (Contd).

[illegible] प्रकार गोरखबानी [illegible] [207] [illegible] पन्द्रह तिथि [208] [illegible] [illegible] वार [illegible] [209] --- [illegible] तिथि [illegible] [illegible] [illegible] है। गोरख [illegible] आरती [210] ने [illegible] आरती तथा [illegible] [211] [illegible] इन [illegible] रचनाओं को [illegible] किया है। [illegible] [212] [illegible] आरती [illegible] गोरख [illegible] आरती [illegible] है। गोरख नाथ [illegible] ने [illegible] [illegible] को प्रचलित किया है। [213]

[illegible] संत [illegible] है [illegible] नाथ [illegible] [illegible] आरंभ [illegible] है।

है वार [illegible] : [illegible] ने [illegible] [illegible] वार [illegible] है। [214]
गोरख नाथ ने [illegible] वार [illegible] है। [215] [illegible] को [illegible] वार [illegible] प्रावधान है। [216]

उभा [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]। [illegible]

[illegible] विकास-पृ०१९५

२०५- [illegible] पृ० १८३

२०६- नाथ संप्रदाय (१९६६) पृ० [illegible]

२०७- गोरखबानी पृ० १६[illegible]

२०८- [illegible] पृ० १९८

२०९- [illegible] पृ० ३५३

२१०- गोरखबानी पृ० १५[illegible]

२११- (१) [illegible] पृ० ६९५

(२) [illegible] पृ० ६९५

(३) [illegible] पृ० ६९५

(४) [illegible] पृ० [illegible]

२१२- [illegible] पृ० १३५०

२१३- (१) [illegible]।

[illegible] [illegible]। गोरखबानी पृ०२५

(२) [illegible]।

[illegible]। [illegible]पृ० [illegible]

उत्पत्ति: इस [illegible] के [illegible] उत्पत्ति [illegible] सकता है। [illegible] को [illegible] योगियों[२१७] तथा [illegible] में[२१८] [illegible] एक स्वर से [illegible] है।

दोड़ें आप: योगियों[२१९] के दोड़ें आप को [illegible] में[२२०] भी [illegible] अपनाया है। [illegible] नैमित्तिक [illegible] में [illegible] जाता है। [illegible] जाता है [illegible] आदि [illegible] में २१६०० [illegible] होता है।[२२१] [illegible] के [illegible] उत्पत्ति [illegible] में [illegible] योगियों के [illegible] उत्पत्ति [illegible] है।[२२२]

२१४- (१) [illegible] पृ० १६४ [illegible]

(२) [illegible] भाषा।

[illegible] पृ० ६१८

२१५- (१) [illegible] संख्या [illegible] (कलकत्ता)

(२) [illegible] (कलकत्ता)

[illegible]

२१६- [illegible]

[illegible]। [illegible]। १-१-२४

२१७- [illegible] ([illegible]) [illegible] २३१

[illegible]

२१८- [illegible]।

[illegible] पृ० ६०७

२१९- [illegible]।

[illegible] पृ० २३४

२२०- [illegible] पृ० १५६

(२) [illegible] पृ० ६६०

(३) [illegible] पृ० ८४०

(४) [illegible] पृ० १२६१

२२१- [illegible]।

[illegible] पृ० १२४

२२२- (१) [illegible] पृ० ७८५

(२) [illegible] में [illegible]।

[illegible] पृ० ६८०

<u>सुषम [illegible] मार्ग</u> : [illegible] न [illegible] ने [illegible] में गोरख [illegible] में [illegible] गया था।[223] [illegible] नानक ने [illegible] प्रकार किया।[224] [illegible] के स्थान पर सुषम-[illegible] मार्ग का निर्देश गोरखनाथ ने दे दिया था। उन्होंने [illegible] प्राणायाम [illegible], [illegible] बिना [illegible] में [illegible] पीने को ही [illegible] बताया। [illegible] के [illegible] से [illegible] स्थिर-चित्त [illegible] ध्यान है। [illegible][225] [illegible] ने [illegible] में योग-युक्ति [illegible] ठाई [illegible] कि [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] के [illegible] युक्ति हो सकती है।[226]

223- [illegible] न [illegible] न [illegible] गोरख [illegible]।

गोरख [illegible], पृ० १२

224- [illegible] पावै [illegible] कहु [illegible]।

गउड़ी म:१, ग्र०ग्रं० पृ० २२६

225- (२) [illegible] न [illegible] मेखै। म:१, ग्र०ग्रं० पृ० ६८६

(३) [illegible], निरु [illegible] गा [illegible]। म: १, १-५, ग्र०ग्रं०पृ०६०५

(४) [illegible] [illegible] पावै। म:१, [illegible], ग्र०ग्रं० पृ० ६०५

(५) [illegible] [illegible] मेवा। [illegible], [illegible]। ग्र०ग्रं०पृ०६०६

(६) [illegible] [illegible] न [illegible]।

[illegible] [illegible] है।। म:१, -१२, पृ० १०२४

(७) [illegible] [illegible] लंगा।

[illegible] पृ०१३०५

226- [illegible]।

[illegible] न [illegible]।

[illegible]।

[illegible]।

[illegible]।

[illegible]।

[illegible]।

गोरख [illegible]- पृ० ३-४

227- नानक [illegible] सुखिया।

[illegible]

उपसंहार : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'गोरख नाथ ने साधना मार्ग में कठोर ब्रह्मचर्य, वाक् संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आडम्बरों के प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि और मद्य मांसादि के पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया था है। हिन्दी में पाए जाने वाले (गोरख के) पदों में यह बात स्पष्ट दिखायी देती है। इस प्रकार ने परवर्ती सन्तों के लिये आचरण-शुद्धि-प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। सन्त मत में से बहुत कुछ बना बनाया भूमि मिली थी। इस..... (नाथ-योगी) मार्ग की सब से बड़ी कमी उसकी शुष्कता और गृहस्थ के प्रति अनादर का भाव है। इन सम्प्रदायों ने इस मार्ग को नीरस, लोक-विशिष्ट और असहिष्णु बना दिया था। फिर भी अपना कुछ ढंग प्रकार, उत्तर भारत के धार्मिक वातावरण को शुद्ध और उदात्त बनाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। इस दृढ़ कंठ स्वर ने सन्तों की धार्मिक भावना में भी भाव का लक्ष्य साधुता और लुकछुपाव नहीं आने दिया। उत्तर भारत के साहित्य में भी इनके कारण शुद्धता और आचरण शुद्धि शुरू से नहीं आ सकी है।'[१२] हिन्दी बोली तथा पंजाबी के आध्यात्मिक काव्य के लिये गोरखबानी ने एक सम्पूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी थी। हिन्दी तथा पंजाबी के साथ साथ ब्रज और राजस्थानी भाषाओं को भी नाथ-योगियों के साहित्य की पृष्ठभूमि में अपना मानने वालों को स्वीकार करने का योग्य अधिकार है। फिर भी पंजाबीपन की नाथ-साहित्य में अधिक पुट रहा है। केवल उदाहरण के लिये एक सबदी का भाषा-मूलक अध्ययन प्रस्तुत है।

१२- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-नाथ- सम्प्रदाय- १९६६, पृ० १२७

१३- सुणि गुणवंतां सुणि बुधिवंतां अनंत सिधां की बाणी।
सीस नवावत सतगुर मिलिआ, जागत रैणि बिहाणी। सबदी-१०७
गोरख बानी पृ० ३६

मूल	पंजाबी	हिन्दी
सुणि	सुण	सुन
गुणवंता	गुणवंता	गुणवंत
बुधिवंता	बुधवंता	बुधिवंत
सिधां	सिधां	सिद्धों
की	की	की

केवल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible], [illegible] विचार परंपरा को उपस्थित करने की दृष्टि से भी गोरखनाथ का अत्यंत विशेष महत्व है। डा० रांगेय राघव लिखते हैं, 'नाथ सिद्धान्त है कि यह रहस्य की भावना भारत में ब्राह्मणवाद को [illegible] करने के लिये [illegible] है। [illegible] कुछ फूल [illegible] शरीर में ही ब्रह्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मानव [illegible] संस्कृति पुरुष और [illegible] का [illegible] जो आज से सात सौ वर्ष पूर्व [illegible] और दूसरे पक्ष में [illegible] हुई वह [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] आदि [illegible] में प्रकट किया और इस संस्कृति का [illegible] [illegible] गोरखनाथ।[229] गोरखनाथ की हिंदी में ब्रह्म की यह विचार धारा [illegible] [illegible] [illegible] परिष्कृत रूप [illegible]-साहित्य में मिलता है, जिसका तालिका [illegible] पृष्ठों पर [illegible] प्रस्तुत किया गया है।[230] इसके अतिरिक्त कबीरादि निर्गुण-भक्त-[illegible] सन्तों की वाणियों का अनिवार्य लियों और नाथ पंथी योगियों के पदादि से [illegible] [illegible] है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियां, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयां और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मानने वाले उनके पूर्व-वर्ती सन्तों के [illegible]। क्या नाम, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही [illegible] [illegible] [illegible] हैं।[231] परन्तु कबीर आदि सन्तों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। इसमें [illegible] का रस और वेदान्त का ज्ञान है।[232] उन्होंने [illegible] [illegible] [illegible], वैष्णव भक्त आदि [illegible] प्रचलित [illegible] को अपने ढंग पर [illegible] [illegible] जन साधारण का विश्वास [illegible] कर लिया था।[233]

[illegible]	पंजाबी	हिन्दी
[illegible]	[illegible]	[illegible]
नवाया) [illegible])	[illegible] [illegible] की भांति [illegible] रूप	
[illegible]	[illegible]	[illegible] या सत्गुरु
रेणि	रैण	रैन
[illegible]	[illegible]	[illegible]।

229- डा० रांगेय राघव-गोरखनाथ और उनका युग- १९६३ पृ० २५४

230- [illegible] : [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। आ०ग्र० [illegible] ९६५

म:१ : [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। आ०ग्र० पृ० १०१९

संत कबीर : [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। आ०ग्र० पृ० १३५२।

पूर्व नानक कालीन सन्त साहित्य

निर्गुण पंथ के प्रवर्तक [illegible] कबीर माने जाते हैं।[234] कबीर जी से पहले [illegible] नामदेव आदि संत हो चुके [illegible] पाए जाते हैं।[235] परन्तु कबीर आदि संतों का मार्ग प्रशस्त करने वाले ऐसे संत जयदेव तथा संत नामदेव ही थे। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'नामदेव का नाम, उनके [illegible] प्रमाण के कारण तथा [illegible] हिन्दी रचनाओं के आधार पर उत्तरी भारत के संतों में भी लिया जाता है। वे कबीर साहब के [illegible] मराठी एवं गुजराती सन्तों में [illegible] से प्रसिद्ध हैं। फिर भी उन में उत्तरी भारत के संत मत [illegible] विशेषताएं उपलब्ध नहीं होतीं और वे प्रायशः सगुण भक्त ही जान पड़ते हैं।[236] परन्तु हमारा विचार है कि नामदेव व [illegible] आदि [illegible] पूर्व कालीन संतों में सब से अधिक प्रसिद्ध [illegible] वे भी [illegible] उत्तरी भारत की संत परंपरा में आते हैं। आचार्य विनय मोहन शर्मा जी [illegible] हैं, 'हमारा निवेदन है कि चतुर्वेदी जी के निष्कर्षों में संशोधन की आवश्यकता है। वे [illegible] ठीक ठीक प्रस्तुत नहीं करते। उत्तरीय भारत की संत परंपरा की विशेषताएं [illegible]: (1) [illegible] अनुभव से सत्यान्वेषण (2) सद्गुरु [illegible] प्रतिपादन, (3) सुमिरन या नाम सुमिरन तथा (4) [illegible] की [illegible], सब ही [illegible] नाम देव की भी गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत रचनाओं में प्राप्त हैं।[237] डा० गणपति चन्द्र गुप्त भी आचार्य विनय मोहन शर्मा के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहते हैं, पं० परशुराम चतुर्वेदी ने [illegible] ध्यान [illegible] लिया है कि नामदेव में उत्तरी भारत के संत मत की [illegible] विशेषताएं नहीं मिलती पर यह बात भी ठीक नहीं है। उन्होंने नाम देव के हिन्दी [illegible] में से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उत्तरीय भारत के संत मत के [illegible] सारी विशेषताएं ढूंढ निकाली हैं।[238] सन्त जयदेव के आदि ग्रंथ में [illegible] पद संगृहीत हैं। [illegible] विषय में [illegible] ने [illegible] प्रकट करते हुए कहा है, [illegible] गोविंद [illegible] जयदेव के [illegible] हैं।[239]

231- हिन्दी साहित्य की भूमिका (1954) पृ० 31

232- वही पृ० 43 233- वही पृ० 43

234- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी साहित्य की भूमिका- पृ० 30

235- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- उत्तरी भारत की संत परंपरा- पृ० 10

(संवत- [illegible])

आचार्य परशुराम ने आदि ग्रंथ वाले जयदेव तथा गीत गोविन्द वाले जयदेव को भिन्न नहीं माना।[240] आदि ग्रंथ के जयदेव के पदों पर जैसा गीत गोविंद के [illegible] से भेद बताते हैं। गीत गोविंद के लिखने वाले जयदेव सगुणवादी हैं। परन्तु आदि ग्रंथ वाले जयदेव निर्गुणपंथ[illegible] भी हो गये थे। [illegible] जयदेव की वाणी में [illegible] योगियों के शब्दों के प्रयोग होते हैं, जैसा कि आदि ग्रंथ में उनके पद [illegible] पंक्तियों[241] के प्रयोग होता है। आदि ग्रंथ में जयदेव के [illegible] पद के साथ गीत गोविंद के पद के तुलनात्मक अध्ययन से दोनों की शैली तथा भाव धारा [illegible] दोनों जयदेव की रचनाएं विभिन्न प्रतीत होती हैं:-

आदि ग्रंथ: बदति जैदेउ जैदेव कउ रंमिआ, ब्रह्मु निरबाणु लिव लीणु पाइआ।।[242]

(जय देव कहते हैं कि जैदेव (हरि) का स्मरण किया, जो निर्वाण स्वरूप ब्रह्म है, उसमें ध्यान लगा कर उसे पाया। (जयदेव = जिस देव [illegible]))।

२३६- वही पृ० ६०

२३७- आचार्य क्षितिमोहन सेन- हिन्दी को मराठी संतों की देन- पृ० [illegible]

२३८- डा० गणपति चन्द्र गुप्त- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- (1965) पृ० १६३-१६५

२३९- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी साहित्य पृ० [illegible]

२४०- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- संत काव्य (१९५१) पृ० १३४-१३५

२४१- राग मारू जयदेव- आ०ग्रं० पृ० ११०६

२४२- आ०ग्रं० पृ० ११०६

गीत गोविंद: तव चरणं प्रणता वयमिति भावय च। कुरु कुशलं प्रणतेषु,
जय जय देव हरे॥८॥

श्री जयदेव कवेरिदं कुरुते मुदम्।
मंगलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे॥ ९॥[243]

(तुम्हारे चरणों में हम नत होकर प्रार्थना करते हैं कि हे भक्तवत्सल जय देव (हरि) तुम्हारी जय हो। कल्याण करो। जय देव द्वारा लिखित श्री हरि (जयदेव) की स्तुति का यह सुन्दर मंगलकारी उज्ज्वल गीत, श्री हरि (जयदेव) का जय गान है।)

संत नाम देव सातारा जिले (महाराष्ट्र) के नरसी गांव में पैदा हुए माने जाते हैं। वे संत-कवि ज्ञानदेव (सं० १३३१-१३५३) के समकालिक माने जाते हैं।[244] नाम देव का समय संवत् १३२७-१४०७ माना जाता है। नाम देव के आदि ग्रंथ के भी इन पदों में संतानुकूल लगभग सभी तत्व उपलब्ध हैं। जिस भी नामदेव के भी उल्लेख से उनका पद आदि ग्रंथ में मिलते हैं, उन्हीं से कोई गुरु नानक तथा आदि ग्रंथ के अन्य संतों का भी मार्ग-निर्देशन किया, यह भी सम्मुख रखते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त लिखते हैं, जिन नामदेव ने कबीर, रैदास, रविदास, दादू आदि ने इस प्रकार से संत परंपरा में प्रमुख स्थान दिया है, उन्हीं का नाम है भक्ति-धाराओं द्वारा परंपरा से निर्गुण एवं निर्गुण का देना कहां तक न्याय है? आचार्य विनय मोहन शर्मा ने अपने ग्रन्थ हिन्दी को मराठी सन्तों की देन में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हुए नाम देव को ही इस परंपरा के प्रवर्तक मानने का निर्णय दे दिया कि नामदेव में उत्तरी भारत के संत मत की सारी विशेषताएं विद्यमान हैं। इसी लिये वह उन्हें भारत में निर्गुण भक्ति मत का प्रथम प्रचारक एवं प्रवर्तक तथा कबीर आदि संतों का पथ-प्रदर्शक मानते हैं। यह सत्य है कि

243- गीत गोविंद-सर्ग १, प्रबंध २, पद-९।
244- हिन्दी साहित्य पृ० १३३।

कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएं प्रचुर मात्रा में नहीं मिलतीं, परन्तु जो कुछ प्राप्त है, उनमें उत्तर भारत की संत परंपरा का पूर्व आभास मिलता है और उसके परवर्ती संतों का विकास भी उनका प्रभाव पड़ा कि-जिसे उन्होंने भी गुरु रूप में स्वीकार किया है, ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानने में हमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।[245] डा० गणपति चन्द्र ने लिखा है, कि नामदेव के अतिरिक्त भी संत [illegible], एकनाथ, तुकाराम, रामदास, संत नामा, [illegible] प्रभृति संतों ने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में रचना की। जिनकी हिन्दी स्पष्ट हिन्दी चाहे उतना शुद्ध न हो पर ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें जो सम्मान देना उचित नहीं है नामदेव को दिया जा सकता है। [illegible] जितने सम्मान का अधिकारी है, जो उसका दिया जो जाना चाहिए, ... स्थापित करते हैं। वस्तु, नामदेव के ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व तथा भारतीय भक्तियों द्वारा प्राप्त मान्यता से ऐसी कुछ यदि उन्हें हिन्दी संत परंपरा में प्रथम स्थान दे दिया जाये तो कोई भी ऐसी समस्या उत्पन्न नहीं होती, जिसका समाधान न हो सके।[246] डा० राम कुमार वर्मा ने संत त्रिलोचन, सधना, बेनी- इन तीनों संतों को नामदेव और कबीर के बीच की कड़ी मानते हैं। इन तीनों संतों के प्रायः १,२,३ पद आदि ग्रंथ में संगृहीत हैं। अतः कबीर की भांति इन संतों की परवर्ती संतों के लिये अधिक देन नहीं है। लघु रूप में इनकी रचनाओं की परंपरागत रूप में विशेष महत्ता है। परन्तु नामदेव की आदि ग्रंथ में सम्मिलित हिन्दी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परवर्ती संतों ने न केवल नामदेव के भावों, विचारों और शैली का अनुकरण किया है, अपितु उनकी उक्तियों और शब्दावलियों तक को ग्रहण किया है, अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी संत परंपरा से नामदेव का अपना अविच्छिन्न संबंध है कि निर्गुणकार का कोई

२४५- हिन्दी को मराठी संतों की देन- डा० विनय मोहन शर्मा-
पृ० १२८-१२९ से हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ० २९६

२४६- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ० २९६

भी नहीं हुआ है ... विभिन्न नामों पर पाया गया। मराठी के जाने वाले नामदेव पर हमारा उतना ही अधिकार है, जितना उर्दू से हिन्दी में जाने वाले अन्याक्षर प्रेम चन्द पर है, यह दूसरी बात है कि नामदेव की रचनाओं का परिमाण प्रेम चन्द साहित्य की अपेक्षा बहुत कम है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।[247]

बाबा फरीद, जय देव, नामदेव, त्रिलोचन, सधना, बेणी आदि से होती हुई संत काव्य की जो परंपरा कबीर, रविदास आदि से होती हुई गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों तक पहुँची, उसका संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

दर्शन पक्ष :

ब्रह्म स्वरूप : सन्त जयदेव कहते हैं, 'सब से पूर्व वह 'परमादि पुरुष' विद्यमान था, जिसकी अन्य कोई उपमा नहीं, वह सत्य आदि भावों से युक्त है। वह परम-अद्भुत प्रकृति परम है, जिसका ध्यान करने मात्र से गति होती है।[248] बाबा फरीद भी कहते हैं, 'वह परमात्मा परवरदगार अपार, अगम और अनंत है।' संत नामदेव उस ब्रह्म का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं, 'वह ब्रह्म युग युगांतर से प्रथम विद्यमान है, वह निरंतर सर्वव्यापक राम जो आनंदरूप है। सर्व नियंता है।'[249] कबीर के राम भी आदि युगादि एवं सकल पदार्थों के गुरु-विश्राम हैं।[250] गुरु नानक देव जी उस 'आदि युगादि सच' है भी होसी भी' ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता को सत्य ही नहीं मानते।[251] गुरु अमरदास[252] गुरु राम दास[253] तथा गुरु अर्जुन देव ने ब्रह्म का यही स्वरूप प्रस्तुत किया है।

२४७- वही पृ० १६७

२४८- परमादि पुरुष मनोपिमं, सति आदि भाव रतं।
परमदभुतं परक्रिति परं जदि चिंति सरब गतं।
जय देव १०७०पृ० १२६

२४८(क)- परवरदिगार अपार अगम बेअंत तू। आ० ग्र० पृ० ४८८

२४९- आदि जुगादि जुगाँ जुगु ताका अंतु न जानिआ।
सरब निरंतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूप बखानिआ।
गोबिंद गाजै सबदु बाजै, आनंद रूपी मेरो रामईआ।
प्रमाणी - नामदेव पृ० ११२१।

ब्रह्म स्थिति: ऋग्वेद में ब्रह्म को सर्वत्र तथा सब रूप में विद्यमान माना है। [255]
फरीद जी भी उसी शक्ति को सब रूपों में देखते हैं, अत: वे किसी को बुरा कहने के पक्ष में नहीं हैं, सब उस ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ और है भी नहीं। [256] यह सर्व निर्द्वंद ब्रह्म वाला स्वर है। नाम देव ने मुरारी (ब्रह्म) का सब रूप के अंतर [257] विद्यमान है। [258] कबीर जी का खालिक भी खलक में है, और खलक खालिक में समा जाता है, क्योंकि सभी उसी नूर से पैदा हुई है। न कोई भला है न बुरा, सब समान हैं। [259] गुरु नानक देव [260], कबीर, [261] गुरु अमरदास, [262] गुरु राम दास [263] गुरु अर्जुन देव [264] गुरु तेग बहादुर [265] ने इस विचार को नामदेव जी की शब्दावली में दुहराया है। कबीर जी की उपर्युक्त पद पर फरीद का प्रभाव है।

जीवात्मा: संत नामदेव ने सब शरीरों में जो जीवात्मा है, उसे राम का स्वरूप [266] माना है। वे तो सारे संसार को गोविंद स्वरूप मानते हैं, बिना गोविंद के किसी का अस्तित्व ही नहीं। [267] भक्त बेणी ने परम ब्रह्म भगवान् को भी मनुष्य के अंतर बताकर आत्मा को ब्रह्म स्वरूप बताया है। [268] इसलिये वे आत्म तत्त्व की पहचान की बात करते हैं। [269] रामानंद जी ने पर ब्रह्म को मन में बताते हुए आत्मा को ब्रह्म माना है। [270] गुरु नानक तथा कबीर आदि ने पूर्व-वर्ती सब सन्तों ने आत्मा और परमात्मा के संबंध को वेदांत दृष्टिकोण के अंतर्गत इस प्रकार वर्णन कर उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया था। कबीर आदि परवर्ती गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने जीवात्मा को इस प्रकार ब्रह्म स्वरूप बताते हुए इसका अथवा आत्मा ब्रह्म विज्ञान भक्तों [271] को भी परिचालित किया है। [272]

२५०- कबीर मेरा सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जुगादि सगल भगत ताको सुखु बिस्रामु।
सलोक कबीर पृ० १३६४
२५१- आदि जुगादी हैं भी होसी बाबू झूठा सभु भाणी पृ० ४३७
२५२- आदि जुगादि दइआ पति दाता। म: ३ पृ० १०६०
२५३- आदि जुगादि अनादि कला धारी त्रिहु लोकह।। म:५ पृ० १४०९
२५४- आदि जुगादी है भी होसी सभ जीआ का सुखदाई तिहु। म:१ पृ० ६९९
२५५- प्रभु निरबाणु निरंजणु पारब्रहम। आ०ग्र० पृ० ११०६
२५६- फरीदा खालकु खलक महि, खलक वसै रब माहि।
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि।
फरीद- आ०ग्र० पृ० १३८१

मन: नाथ योगी साहित्य में मन को अग्नि और शिव कहा है।[253] कबीर ने सीधा गोरखनाथ से प्रभाव प्राप्त करते हुए मन का यही स्वरूप वर्णन किया है।[254] नाम देव ने मन की इस शक्ति का उपयोग ब्रह्म ज्ञान के लिये किया है, तथा परवर्ती सन्तों के लिये मन की एकाग्रता को ब्रह्म में लीन होने के लिये उत्तम साधन माना है। मन को गज और जिह्वा को कैंची मानते हुए दर्जी का वर्णन शैली में, मन को रामनाम सुमरिन में लीन कर वे यम की फांसी को नाप नाप कर काटते हैं।[255] उनके मन का राम से वही प्रीति है, जो चकवी की सूर से, हंस की मानसरोवर से तथा रूक्मणी की रांत से।[256] गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने मन को इसी प्रकार ब्रह्म-लीन करने का जो वर्णन किया है, उस पर नामदेव की रचना शैली का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। गुरु नानकदेव जी लिखते हैं, 'मन को हरि से ऐसी प्रीति होनी चाहिए जैसी कमल को जल से,

---

२५७- छान्दोग्य- ३-१४-१

२५८- घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी।

नामदेव आ०ग्र० पृ० ४८५

२५९- अवलि अलह नूरू उपाइआ, कुदरति के सभ बंदे।
एक नूरु ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।
लोगा भरम न भूलो भाई।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ सब ठाईं।

कबीर- आ०ग्र० पृ० १३४९

२६०- घट घट अंतरि सरब निरंतरि रवि रहिआ सभु वेगी।

म: १, ११२७

२६१- घट घट महलिआ आतम रामाऊ। कबीर आ०ग्र० पृ० ११६३

२६२- घटि घटे सभना विचि एको एको राम भतारो राम।

म:१, ७०२

२६३- घटि घटि अंतरि एको हरि सोई।। म:४, आ०ग्र०पृ० ११९७

२६४- घटि घटि अंतरि जागे सोई। म:१, आ०ग्र० पृ० ३८७

२६५- घटि घट भीतरि सो निरंजन जानो भरमु न पाइआ। म:९ आ०ग्र०पृ०७०३

२६६- सभै घट रामु बोलै रामा बोलै।। नामदेव आ०ग्र०पृ० ९८८

२६७- सभु गोबिंद है सभु गोबिंद है। गोबिंद बिनु नाही कोई। नामदेव आ०ग्र०-पृ०४८५

मञ्जी की गौर है, बालुक की भेद है, जल का बूंद है तथा बकरी की पूंछ है। २६७
अन्य गुरुओं ने भी मन का ... में इसी प्रकार का ... का वर्णन किया है। २६८

मन को राम नाम में लीन करना, और उसका उठते बैठते, सोते, जागते, ध्यान करना आदि ग्रंथ के कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। आत्मा स्वयं

२६८- मन ... का ... । ... राम है। आ० ग्र० पृ० ६७४
२६६- तिनि आतम ... न ... । ... राम ... । आ०ग्र०पृ० ६७४
२७०- जो ब्रह्म ... गुर मन ... माहि।

आ०ग्र०पृ०११६२

२७१- बृहदारण्यक उपनिषद् ४-४-५, भारतीय दर्शन-पृ० ५८ उमेश मिश्रा।
२७२- आतम रामु रामु है। म:१ पृ० १०३०
(२) आतम रामु ... परवाणी। कबीर पृ० ३४३
(३) आतमा ... देव- म: ? पृ० ४६६
(४) आतम राम ... - म: ३ पृ० ५५
(५) आतम रामु रविआ सब ... - म० ५ आ०ग्र० ६२६
(६) सरब निवासी सदा अलेपा ... संगि समाई। म:६ पृ० ६८४
२७३- ... मन ... मन ... - ... बानी पृ० २८
२७४- आ०ग्र० पृ० ३४२
२७५- ... मेरा ... जिन्हा मेरा ... ।
... काटउ ... की फासी। आ०ग्र०पृ० ४८५
२७६- ... गुरू ... , मानसरोवर ... ।
जिउ तरणा ... आनन्द, तिउ मेरै मनि रामईआ।
आ० ग्र० पृ० ६६२
२७७- आ० ग्र० पृ० ५६-६०
२७८- (१) मन मेरिआ ... सदा ... समालि सोइ।
म:३ पृ० ५६६
(२) मन मेरे ... हरि ... दिन राती।
म:४, आ०ग्र० ८६५
(३) मन मेरे ... नामु ... । म:१, आ०ग्र०पृ० ४५
(४) मन मेरे ... निवारि- म: ६-६३२

ब्रह्म-रूप है। मन वह जौहरी है, जो गुरु के शब्द को प्राप्त कर आत्मा के ब्रह्म-रूप को पहचान करता है:-

आतम देउ देउ है, आतमु रसि लागै पूज करीजै ॥१॥××॥
मनु मोती सालु है, गुर सबदी जितु हीरा परखि लईजै ॥३॥ म:४॥

राग कलिआन आ० ग्र० पृ० १३२५.

जब तक गुरु से भेंट न हो यह मन जौहरी नहीं बन सकता, और नाम-पदार्थ (हीरक) की पहचान नहीं कर सकता, क्योंकि इस मन के संग ही चंचल तृष्णा का निवास है, जो इसे स्थिरावस्था को प्राप्त नहीं होने देती।↕-

साधो इहु मनु गहिओ न जाई।
चंचल त्रिसना संगि बसत है,
या ते थिरु न रहाई।

म: ९, आ० ग्र० पृ० २१९.

परन्तु पूर्व कथनानुसार गुरु के शब्द द्वारा मन *स्थिरावस्था को प्राप्त होता है। प्रभु की खोज मन के भीतर ही होती है। इस ब्रह्म-चिन्तन की अवस्था ऐसी पातशाही है, जहां परमानंद की प्राप्ति होती है। मन फिर बुरा सोचता ही नहीं, क्योंकि यह सत्-कर्मों में लीन हो जाता है। यह सब इस लिये होता है, कि मन गंगा-नीर के समान निर्मल हो जाता है, और वहां केवल ब्रह्म का ही निवास रहता है। तब इस जीवात्मा को इस जन्म का शुभ फल प्राप्त हो जाता है, क्योंकि जीव-रूप-स्त्री को 'कन्त-करतार' का स्थिर-सोहाग प्राप्त हो जाता है:-

मन मधे प्रभु अवगाहिआ।
एहि रस भोगण पातिसाहीआ।
मंदा मूलि न उपजिओ तरे सची कारै लागि जीउ॥
करता मंनि वसाइआ।
जनमै का फलु पाइआ।
मनि भावंदा कंतु हरि तेरा थिरु होआ सोहागु जीउ॥

मा म: ५, ६-४-३९,
आ० ग्र० पृ० १३२.

↕ The mind split up into the three phases is ever restless.
* Again, the phases get synthesised and the mind becomes absolutely peaceful.
"Universal Religion" Page-6.
By Thakur Sankarnath Chakravarty.

जगत्

जयदेव ने ब्रह्म को प्रकृति का स्वामी कहा है। उन्हीं का जगत् कहा है।[279] नामदेव ने समस्त जगत को ब्रह्म रूप माना है। वही ब्रह्म सृष्टि में व्यापक है।[280] जिस प्रकार एक सूत्र में बहुत हजारों मणियों को पिरोया हो, उस प्रकार सारी सृष्टि में ब्रह्म व्यापक है। यह सृष्टि उसका ही प्रपंच है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है।[281] नामदेव ने संसार सागर को विषयों से निर्मित बताते हुए उसे पार करने का प्रयास किया है।[282] जीव इस संसार सागर से गुरु कृपा से ही पार हो जाता है।[283]

जगत् के विषय में आदि ग्रंथ के परवर्ती रचयिताओं ने विशद व्याख्या प्रस्तुत की है, परन्तु जो बात नामदेव ने कही है, उससे बढ़ कर कुछ नहीं कहा। गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने जगत् को ब्रह्म की रचना बताते हुए ब्रह्म रूप ही माना है। संसार को विषय-सागर कह कर गुरु कृपा से उसे पार होने की चर्चा की, और स्वयं उसमें ही स्थित हो गया।[284] यह जगत् उस परमेश्वर का निवास स्थान है।[285] गुरु नानक देव के कथनानुसार

२७९- परमद्भुतं, परप्रकृतिपरं, अपि चिंतित रमरणं।

जयदेव आ०ग्रं० पृ० ५२६

२८०- एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।

नामदेव आ०ग्रं०पृ० ४८५

२८१- सूत एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई।

जलु तरंग अरु फेन बुदबुदा, जल ते भिंन न होई।

नामदेव आ०ग्रं०पृ० ४८५

२८२- कैसे मन तरहिगा रे संसारु सागरु बिखै को बना।

नामदेव आ०ग्रं० पृ० ४८६

२८३- गुर कै परसादि नामा करि भेट्या।

नामदेव आ०ग्रं०पृ० ४८६

२८४- आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।

दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।

म०१, आ०ग्रं०पृ० ४६३

२८५- इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।

म०२ आ०ग्रं० पृ० ४६३

इस प्रकार संसार-सागर को केवल गुरु कृपा से हरि शरण प्राप्त होने से पार किया जा सकता है।[284] गुरु अमरदास जी ने नाम देव के समान संसारी विकार को उसी रूप में अत्यंत संयमपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है, यह विषयासक्त संसार हरि का रूप है, इस में से सार के स्वरूप को पहचान कर विषयों में आसक्त नहीं होना चाहिए। यह पहचान केवल गुरु की कृपा से ही होती है। गुरु से भेंट होने से दिव्य-दृष्टि[287] प्राप्त होती है, जो आत्मा को उसके मूल स्रोत परमात्मा से मिलाती है।

संत कबीर जी ने भी साधु के इसी स्वरूप का वर्णन किया है, और इसे गुरु का सर्वव्यापक रूप माना है।[288] नाम देव की भांति उन्हों ने भी इस संसार को असार मिथ्या तथा भवसागर बताया है। इससे पार होने का एक मात्र उपाय इस संसार में व्याप्त विषयों को छोड़, इसके कर्णधार साधक गुरु में लीन होना है। विषयासक्त जीव इस संसार सागर में डूबता चला जाता है।[289]

इस प्रकार संसार सागर से पार होने के लिये भगवद् कृपा से सद्गुरु से भेंट होती है। सद्गुरु द्वारा ही आत्मा का प्रभु से साक्षात्कार होता है। बिना भगवद् कृपा के जीव का कल्याण नहीं हुआ। क्योंकि वह साधु को विषय-रूप माया में लीन रखता है। जिस से जन्म मरण का बन्धन बना रहता है।

२८४- इहु जगु सागरु दुतरु किउ तरीऐ,
    बिनु हरि गुर पारि न पाई। म: १, आ०ग्र०पृ० ३५५

२८७- हरि बिनु अवरु न देखहु कोई, नदरी हरि निहालिआ।
    एहु विसु संसारु तुम देखदे, एहु हरि का रूप है, हरि रूप नदरी आइआ।
    गुर परसादी बुझिआ, जा देखा हरि इकु है, हरि बिनु अवरु न कोई।
    कहै नानक एहि नेत्र अंध से, सतिगुरि मिलिऐ दिब द्रिसटि होई।
    म: ३ आ०ग्र० पृ० ९२२

२८८- सूरज चंद्र करहि उजीआरा।
    सभ महि पसरिआ ब्रहम पसारा।
    कबीर ग्रंथ- २६ आ०ग्र० ३२६

२८९- बिखिआ बिआपिआ सगल संसारु। बिखिआ लै डूबी परवारु।
    रे नर नाव चउड़ि कत बोड़ी, हरि सिउ तोड़ि बिखिआ संगि जोड़ी।
    आ०ग्र० पृ० ३२८

माया : का देव ... ना ... ति ... रूप ... वर्णन ... हुए ... कि
... ना ... प्र ... ने सब ... हीं ... है, कि
... - ... के कारण ... विर ... इस ... को प्राप्त ... है ...
... है। ... हरण ... ता ... है, ... ग्र ... है ...
... हैं।[290] ... कड़ियाँ ... म- ... ादि ... ओं ... ... से ...
... में स्थित न ... बिल- ... र से पार ... ता है। यदि ...
... है ... हुआ ... ता ... रण ... न ... नहीं हुआ,
... िनि ... ता ... है ... िर ... ग्र ... है
... होता है।[291] ... मरण ... ... हुआ
है, ... ण प्राप्त होता है, फिर ... जाता है, और
... से ... ता है।[292] ... के ... ग्र ... स्वरूप
वर्णन ... हुए ... है, ... ता ... मोहित ... है कि ... के समस्त
... ों को ... त कर देता है। ... , ... , ... ादि,
... ी, ... ि, ... - ... ृ ... ादि ... , ऋषिगण
आदि ... माया से मोहित ... हैं, ... ता ... है,
... है, केवल ... गुरु (...) की प्राप्ति से माया का
... हुआ है।[293] गुरु ... की माया के स्वरूप का वर्णन ... देव
... से भिन्न नहीं, ... के ... हैं ... दारा ... ादि ... -पा ...

290- ... बिन ... मोहित ... गुरु ... होई।
... नामदेव ... रहता ... चारी।
... निरंतरि ... गुरारी।
नामदेव ग्र०,र० पृ० ४८५

291- ... मोहि ... , ... ।
... ादि ... ग्रि ... खु ... ।।
... संसार ... हू ... , ... ।
... ता ... ।
नामदेव ग्र०,र०पृ० ...

292- ... गुरदेव ... । ... गुरदेव ... ।
... गुरदेव ... हे । ... गुरदेव ... भवजल ... ।
... गुरदेव ... । नामदेव ग्र०,र०पृ० ...

क्या विषयवासनाओं का [illegible] जाल है, जिसमें जीव [illegible] फंसता है। [illegible] छूटता है, यदि गुरु की शरण में नाम स्मरण करे। फिर मृत्यु का भय नहीं रहता। बिना नाम स्मरण के त्रिविधि माया [illegible] नहीं छूटता और [illegible] शरण [illegible] नहीं छूटता।[294] परवर्ती संतों ने भी माया का वर्णन [illegible] में किया है।[295] गुरु अर्जुन देव का विश्लेषण [illegible] है और परंपरागत [illegible] विचार भी [illegible] में प्रस्तुत करता है।[296]

[illegible] कहा जा सकता है कि [illegible] संत-भक्त-दर्शन की विचारधारा [illegible], [illegible] में [illegible] नहीं है, परन्तु कबीर, गुरु नानक, गुरु अर्जुन देव आदि संतों ने [illegible] निर्गुण [illegible] धारा [illegible] निश्चित स्वरूप नामदेव [illegible] ने प्रस्तुत कर दिया था, जिसे परवर्ती संतों ने [illegible] किया। नामदेव ने जो कुछ कहा, परवर्ती संतों ने उसका [illegible] विशद विवेचन [illegible] किया है।

293- [illegible]
[illegible] उपकारी।
[illegible] त्रिगुण [illegible]।
[illegible] माखी [illegible]।
गुरु [illegible] खेला।
[illegible] खेला।
[illegible] दा।
[illegible] दुख [illegible]।
[illegible] छूटा। [illegible] छूटा।
[illegible] कबीर [illegible]।

कबीर- ग्रं० पृ० [illegible]

294- [illegible] विचारा [illegible]।
[illegible]।
[illegible] संतापि।
नानक [illegible] त्रिबिधि [illegible]।

गुरु नानक, [illegible]

295- [illegible] बिखुला।

[illegible], ग्रं० पृ० [illegible]

आवागमन

उपर्युक्त धारा [illegible] वर्णित [illegible] हुए हैं, [illegible]-[illegible] [illegible]-[illegible] में [illegible] हुआ है। [illegible] में [illegible], [illegible] हुआ [illegible] [illegible] है। [illegible] हुये [illegible] है।

[illegible] हुये [illegible] भिन्न भिन्न योनियाँ [illegible] होता है। नामदेव के अनुसार [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि [illegible] योनियाँ में [illegible] है। [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] योनियों में [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है। [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] वर्णन किया है, किन्तु नामदेव ने [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] है। मनुष्य देह को [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] गया है। मनुष्य [illegible] में [illegible] '[illegible]' [illegible] में [illegible]-[illegible]- [illegible] है।

[illegible] में बंधन से मुक्ति [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible]-क्रम में [illegible] [illegible] [illegible] है।

---

(२) [illegible] [illegible] सुख है, दुख [illegible] सुख [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] गुर [illegible] दुख [illegible]।

[illegible] [illegible] ३१६

२६६- [illegible] अलख [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] न [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] २०१

२६७- [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] है।

नामदेव [illegible] [illegible]

साधना पक्ष

[illegible] में [illegible] का जो स्वरूप [illegible] नानक [illegible] में [illegible] देता है, [illegible] पूर्ण [illegible] देव [illegible] नाम देव [illegible] प्रस्तुत [illegible] चुकी थी। [illegible] ग्रंथ [illegible] प्रतिपादन [illegible] है। [illegible] ग्रंथ में साधना पक्ष [illegible] किया जाता है, [illegible] नामदेव [illegible] ने प्रारम्भ कर दिया [illegible]। नामदेव [illegible] ग्रंथ के अन्य [illegible] से [illegible] प्रतीत होती है:-

नामदेव

दुरमति [illegible] नामा [illegible] नामा। [300]

रविदास

[illegible] के [illegible] [illegible] रहिओ [illegible] नामा।
[illegible] नाम [illegible] नामदेव [illegible] [301]

नामदेव ने [illegible] प्रकार [illegible]। [illegible] में [illegible] किया है, [illegible] भगवान् [illegible] हुआ [illegible]। [illegible] में परमेश्वर को [illegible] स्थानों में विद्यमान [illegible] कर, [illegible] दृष्टि [illegible] परमेश्वर [illegible] स्थानों में समान [illegible] देखा है। [302] [illegible] ग्रंथ [illegible] और [illegible] स्वरूप नामदेव ने [illegible] प्रकार प्रस्तुत किया है:-

---

२९८- [illegible] पंगा।
[illegible] रंगा।
[illegible]।
[illegible]। [illegible] पृ० ३२५-२६

२९९- [illegible] जनम [illegible]।
[illegible]।
कई जनम [illegible]।
[illegible] बराका।
[illegible] देह [illegible]।
[illegible] भइआ [illegible] दुरमति।
आ० ग्रं० पृ० १२६

१- [illegible] नामदेव हरि क[illegible] [illegible] देखु [illegible] [illegible] पारी।
[illegible] [illegible] [illegible] निरंतरि बिठल [illegible] उधारो। [301]

इस प्रकार आदि ग्रंथ में भगवान् के निर्गुण स्वरूप की जिस भक्ति का प्रचार सन्त भगवान् ग्रंथ के रचयिताओं ने किया, उसके प्रवर्तक नामदेव ही थे। साधना पक्ष में निर्गुण स्वरूप पर विस्तार से विचार किया गया है।

नारद भक्ति सूत्र में प्रेमाभक्ति को निर्गुण भक्ति में परिणत करने का श्रेय भी नामदेव को है। एक भगवान् की आराधना तथा प्रेम मार्ग की भक्ति में प्रमाण स्वरूप भारतीय परंपरा में है, इस विषय में इस्लाम अथवा सूफी प्रभाव को परिलक्षित करना व्यर्थ सा दिखाई पड़ता है। ग्रंथ के साधना पक्ष में इस तत्व पर विचार किया गया है।

१- एक भगवान् की आराधना

गीता में भगवान् ने कहा है, अल्प बुद्धि वाले लोगों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला फल नाशवान होता है। देवताओं की पूजा करने वाले लोग देवताओं को प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरा भक्त मेरे पास पहुंचता है। [304]

नामदेव के समय में देव पूजा का जोर था। अतः उन्होंने गीता के उपर्युक्त उपदेश को और स्पष्ट करते हुए कहा है:-

भैरउ भूत सीतला धावै। खर बाहनु उहु छारु उड़ावै।
हउ तउ एकु रमईआ लैहउ। आन देव बदलावनि दैहउ।
सिव सिव करते जो नरु धिआवै। बरद चढ़े डउरु ढमकावै।
महामाई की पूजा करै। नर सै नारि होइ अउतरै।
तू कहीअत ही आदि भवानी। मुकति की बरीआ कहा छपानी।
गुरमति राम नाम गहु मीता। प्रणवै नामा इउ कहै गीता। [305]
गोंड नामदेव

३००- आ० ग्रं० पृ० ८८४
३०१- आ० ग्रं० पृ० १२६३
३०२- समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति। गीता- १३- २७
३०३- आ० ग्रं० पृ० ४८५

[illegible] कि 'तुलसी' [illegible] प्रतिपादित [illegible], [illegible] स्वरूप, नाम आदि [illegible] प्रभु [illegible] था। [illegible] भी कि नामनाथ [illegible] प्रतिपादित हुए हैं, [illegible] सभी [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] प्रथम [illegible] किया था कि [illegible] है। [illegible] संसार [illegible] नाम का [illegible] नहीं। [illegible] स्मरण [illegible] तथा [illegible] आदि [illegible] नहीं [illegible]।[306] [illegible] दोनों [illegible] नाम [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] स्वीकार [illegible]।[307] [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] हैं।[308]

२- दाम्पत्य भाव

[illegible] है कि [illegible] प्रतिष्ठा प्राप्त है, [illegible] प्रथम [illegible] हैं। [illegible] रचयिताओं [illegible] भाव [illegible] किया है:-

नामदेव

मैं [illegible] साजु [illegible]। [illegible] सिंगारु।
[illegible] [निरउ] [illegible] राम [illegible]।
[illegible], [illegible] राम [illegible]।
[illegible] हुआर [illegible]।
[illegible] नामे [illegible]। 309

मैरव नामदेव।

304- [illegible]।
[illegible]।

[illegible] - ४ - २३

305- ना०रा० पृ० ८४

306- [illegible] नाम [illegible]।
[illegible]।
न [illegible] ॥

गूजरी [illegible] ना०रा० पृ० [illegible]

307- [illegible] राम। [illegible] नाम।
मैरव [illegible] ना०रा० [illegible]

[illegible]

[illegible] [310]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [311]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [312]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ५:[illegible], पृ०[illegible]

५:[illegible], पृ०[illegible]

जैतसरी म: ५

(१) [illegible] पा[illegible] ठाकुर [illegible] गुण [illegible] गुण न पछाणे।
गुण[illegible] मै पाइ[illegible] [illegible] बणा[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] गुणगणि [illegible] जि[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] गुर सुखेर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रंगाता।
वडभागि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रंगाता।
[illegible] [illegible] [illegible] गुरो [illegible] [illegible] [illegible]
बिनवंति नानकु गुरु [illegible] [illegible] [illegible] निधि पाई।[313]

(२) [illegible] निधि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पूरे।
[illegible] नानक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जी [illegible] पिआरे।[314]

सद्गुरु महिमा

सन्त मत [illegible] में सद्गुरु महिमा का प्रतिपादन [illegible] नामदेव [illegible] रचना में प्राप्त होता है [illegible] [illegible] अनुसरण उनके परवर्ती सन्तों [illegible] [illegible] है। साधना-पक्ष में नाम-रत्न [illegible] [illegible] [illegible] सहायक हुआ है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, उसका [illegible] [illegible] संतों की वाणियों में समान रूप से मिलता है। नामदेव [illegible] प्रतिष्ठित परंपरा [illegible] संत कबीर, गुरु नानक, आदि संतों ने [illegible] [illegible] में अनुसरण किया है:-

---

309- आ०ग्रं० पृ० ११६४

310- आ०ग्रं० पृ० ४८२

311- आ०ग्रं० पृ० ११०६

312- आ०ग्रं० पृ० ११२८

313- आ०ग्रं० पृ० ७०३-४

314- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

संत नाम देव[315]

१- जउ देखा तउ गावा।
तउ जन धीरजु पावा।
२- नादि समाइलो रे,
सतिगुरु भेटिले देवा।
३- जह झिलमिलि कारु दिसंता
तह अनहद सबद बजंता।
जोती जोति समानी।
मै गुर परसादी जानी।
रतन कमल कोठरी।
चमकार बीजुल तही।
नेरै नाही दूरि।
निज आतमै रहिआ भरपूरि।

संत कबीर[316]

१- [illegible] कउ [illegible] सुरति [illegible]।
[illegible] गिरि [illegible] [illegible]।
२- [illegible] दुंद [illegible] भूलि [illegible] पणा।
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।
३- चंदु सूरजु दुइ जोति सरूपु।
जोती अंतरि ब्रहमु अनूपु।
करु रे गिआनी ब्रहम बीचारु।
जोती अंतरि धरिआ पसारु।

गुरु नानक[317]

१- जा तिसु भावा तद ही गावा
ता गावे का फलु पावा।
२- [illegible] दिसै [illegible] [illegible] निसि [illegible]।
३- गुर [illegible] [illegible] [illegible]ारा।
ता मिटिआ सगल अंधारा।
[illegible] [illegible] [illegible] चंदु न
[illegible]।
सूरज किरणि [illegible] [illegible]
गैणारा।
[illegible] [illegible] [illegible] नही कोई,
[illegible] रहिआ [illegible] [illegible]।
[illegible] निरंजनि [illegible]
[illegible]।
हरि हरि [illegible] [illegible] [illegible]।[318]

४- <u>अनन्य भक्ति</u> : भक्ति मार्ग [illegible] विषम-मार्ग है। [illegible] [illegible] [illegible] ने अनेक कष्टों को फेलकर भी [illegible] [illegible] [illegible] नहीं छोड़ा था। प्रह्लाद भक्त की अनन्य भक्ति [illegible] [illegible] है, [illegible] भक्तों में शिरोमणि [illegible] [illegible] हैं। इनकी आदर्श भक्ति का [illegible] [illegible] के कारण [illegible] है। [illegible] कबीर तथा गुरु [illegible] ने नामदेव [illegible] [illegible] [illegible] रचना में [illegible] करते हुए [illegible] [illegible] [illegible] भी किया है:-

---

315- आ०ग्रं० पृ० ६५६
316- आ०ग्रं० पृ० ८७२
317- आ०ग्रं० पृ० ५९६
318- आ०ग्रं० पृ० १०३३

संत नामदेव

संडा मरका जाइ पुकारे। पढ़ै नही हमही पचि हारे।
राम कहै कर ताल बजावै चटीआ सभै बिगारे।
दुसट सभा मिलि मंतर उपाइआ करसह अउध घनेरी।
काढ़ि खड़गु कालु भै कोप्यिो मोहि बताउ जु तुहि राखै।
पीत पीतांबर त्रिभुवण धणी थंभ माहि हरि भाखै।
हरनाखसु जिनि नखह बिदारिओ सुरि नर कीए सनाथा।
कहि नामदेउ हम नर हरि धिआवहि रामु अभै पद दाता। भैरउ [319]

संत कबीर

प्रहलाद पठाए पढ़न साल। संगि सखा बहु लीए बाल। मोकउ
कहा पढ़ावसि आल जाल। मेरी पटीआ लिखि देहु स्री गोपाल।
नहीं छोडउ रे बाबा राम नाम। मेरो अउरु पढ़न सिउ नहीं कामु।
संडै मरकै कहिओ जाइ। प्रहलाद बुलाए बेगि धाइ। तू राम कहन
की छोडु बानि। तुझु तुरतु छडाउ मेरो कहिओ मानि। मो कउ
घालि जारि भावै मारि डारि। काढि खड़गु कोपिओ रिसाइ।
तुझ राखनहारो मोहि बताइ। प्रभ थंभ ते निकसे कै बिसथार।
हरनाखसु छेदिओ नख बिदार। ओइ परम पुरख देवाधि देव।
भगति हेति नरसिंघ भेव। कहि कबीर को लखै न पार। प्रहलाद
उधारे अनिक बार। भैरउ कबीर। [320]

गुरु अमरदास

आदि ग्रंथ भैरउ राग में म:3 का पद 'मेरी पटीआ लिखहु
हरि गोविंद गोपाला।'[321] तथा फिर भैरउ राग में 'तिनि
करते इकु चलतु उपाइआ। पिता प्रहलाद पढ़ण पठाइआ।'[322] दोनो
पदों में संत नामदेव और संत कबीर के पदों का मिश्रित वर्णन है।
गुरु अमरदास ने अधिक विस्तार किया है। परन्तु कथा बिलकुल वही है।

319- आ०ग्रं०पृ० 1165

320- आ०ग्रं० पृ० 1194

321- आ०ग्रं० पृ० 1133

322- आ०ग्रं० पृ० 1154-55

सुकृत धर्म

शुभ कर्मों को भक्ति मार्ग में महत्वपूर्ण स्थान है। भक्ति मार्ग में शुभ कर्मों को भी भक्ति ही कहा गया है। सुकृत धर्म की प्रतिष्ठा जयदेव-काल से सन्त मत में प्रख्यात हो गई थी। भक्ति के इस तत्व की परंपरा जयदेव से नामदेव को प्राप्त हुई, और फिर परवर्ती संतों तक पहुंची।

संत जयदेव :

यदि यम आदि को पराजित करने की इच्छा हो, तो प्रभु यशोगान तथा सुकृत धर्म (शुभ कर्म) का अनुसरण करो। सकल दुष्कृत कर्म एवं दुर्मति को त्याग केवल भगवद्भजन में मन लगाओ।[323]

संत नामदेव

सुकृत धर्म का गुरु ने उपदेश दिया है, और इस प्रकार मन शुभ कर्मों के अनुष्ठान में सदैव जागृत रहता है।[324] नामदेव जी ने सुकृत धर्म की रूप रेखा को अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है, मैं छीपा हूं, कपड़े रंगने तथा सीने का काम करता हूं। परन्तु इन कामों को करते समय भी मेरा ध्यान राम-नाम में रहता है।[325] अपने मित्र भक्तत्रिलोचन को इस धर्म का स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं, राम नाम में इस प्रकार ध्यान रहना चाहिए, जिस प्रकार पतंग उड़ाता हुआ बालक, पांच मित्रों से बातें करता हुआ भी पतंग की डोर को छोड़ता नहीं०, जिस प्रकार कुमारियां गागरों में पानी भर कर सिर पर रख कर हंसी-विनोद करती हुई चलती है, परन्तु गागर का ध्यान नहीं भुलाती, जिस प्रकार गाय का बछड़ा घर में बंधा होता और गाय बाहिर दूर पांच कोस तक चरने गई हो, ध्यान बछड़े में रखती है, तथा जिस प्रकार माता बच्चे को पालने में सुला कर अंदर बाहिर का सारा काम करती हुई, ध्यान बच्चे में रखती है।[326]

323- दुरित दमनादि परामर्थं जदु स्वरति सुकृत कृतं।
तज सकल दुस्कृत दुरमती भजु चक्रधर सरणं।
जयदेव- आ०ग०पृ० ५२६

324- सुकृत मन सागुर उपदेसी जागत ही अनुमानिया।
नामदेव- आ०ग० पृ० ४८५

संत कबीर

सप्तवार में शुक्रवार का वर्णन करते हुए कबीर जी कहते हैं, 'जीवन में उसी का व्रत सफल एवं सम्पूर्ण है, जो सुकृत धर्म का अनुष्ठान करता है। नामदेव के सुकृत धर्म की ओर संकेत करते हुए पूर्ण श्रद्धा से कबीर जी ने इस धर्म संबंधी नामदेव के विचारों का उल्लेख किया है। दो दोहों में नामदेव और त्रिलोचन की वार्ता प्रस्तुत करते हैं। एक बार त्रिलोचन ने कहा, "नामदेव को माया ने मोहित कर लिया। छापने को ही छापने में लगे रहते हो, राम नाम में मन नहीं लगाते। नाम देव ने कहा, 'सुनो त्रिलोचन भाई! हाथ पांव से सब काम को करते हुए भी, ध्यान जो निरंजन में लीन रखना ही भक्ति है।"[328] मनसा, वाचा, कर्मणा, चित्त शुद्धि ही सुकृत धर्म है। राम नाम का तात्पर्य राम का स्मरण यही है, कि जिस काम को करो शुद्ध चित्त से तथा ईमानदारी से करो। जहां कर्मों के अनुष्ठान में ईमानदारी है, वहां धर्म करने वाले का मन सदैव भगवान् के ध्यान में ही लगा समझना चाहिए। दुष्कर्मों को करने वाले माला फेरने वाले बगुला-भक्त का ध्यान कैसे राम नाम में लग सकता है। यही पाखंड है।

३२५- रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ।
राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ। आसा नाम देव।
आ०ग्रं० पृ० ४८५

३२६- बानीले लाडू काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले।
तिरि बाहरि काज किधी चीतु सु बारिक राखीअले।
रामकली नाम देव, आ०ग्रं०पृ० ९७२

३२७- सुक्रितु सहारै सु इह व्रति चढ़ै। गउड़ी कबीर, आ०ग्रं० पृ० ३४४

३२८- नामा माइआ मोहिआ कहै तिलोचन मीत।
काहे छीपहु छाइलै राम न लावहु चीतु। (२१२)
नामा कहै तिलोचना मुख ते राम संम्हालि।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।
सलोक कबीर - आ०ग्रं०पृ० १३७५-७६

गुरु नानक :

गुरु नानक देव जी ने भी शुभ कर्मों को सुकृत धर्म का नाम दिया है।[329] जो व्यक्ति दूसरे के अधिकार को नहीं छीनता वही सुकृत धर्म का सही अनुष्ठाता है।[330] जो व्यक्ति अपने गाढ़े पसीने की कमाई का फल खाता है, तथा उसमें से अपनी क्षमता के अनुसार किसी आवश्यकताग्रस्त की आवश्यकता की पूर्ति करता है, वही भक्ति मार्ग की पहचान कर सकता है।[331] परन्तु इसके उलट जो दूसरों का खून चूसता है, उसका हृदय कैसे शुद्ध हो सकता है, जब कि खून के दाग से कपड़ा भी अपवित्र हो जाता है।[332]

आदि ग्रंथ के अन्य रचयिताओं ने भी इस सुकृत धर्म को[333] भक्ति मार्ग में इसी परंपरागत रूप में स्वीकार किया है, और सिक्ख धर्म में किरत करना, वंड छकना, अर्थात् अपने हाथों से कमा कर और बांट कर खाना-धर्म माना जाता है।

मनुष्य जन्म की महानता

नामदेव कहते हैं मनुष्य जन्म बड़े भ्रमण के पश्चात प्राप्त हुआ है। इस जन्म को गुरु की शरण में सफल बनाया जा सकता है। क्योंकि गुरु ही ज्ञान अंजन प्रदान करता है, जिससे अज्ञान का अंधेरा नष्ट होता है।[334]

रविदास

बड़े जन्म भ्रम में बिछुड़े रहने के पश्चात यह जन्म मिला है। यह जन्म प्रभु मिलन के लिये प्राप्त हुआ है।[335]

३२९- सोन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुकृत धर्म कमाइआ। म:१, आ०ग्रं०पृ०४६७

३३०- हकु पराइआ नानका उसु सूअरु उसु गाइ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ।
म:१, आ०ग्रं०पृ० १४१

३३१- घालि खाइ किछु हथहु देइ।
नानक राहु पछाणहि सेइ। म:१, आ०ग्रं० पृ० १२४५

३३२- जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु।
म: ५, आ०ग्रं० पृ० १४०

कबीर: मनुष्य जन्म दुर्लभ है। बार बार नहीं होता।[336] जैसे वृक्ष से पका फल गिर पड़ने पर फिर डाली में नहीं लगता।

सन्त [illegible]

अनेक जन्मों में भ्रमण करने के पश्चात् यह जीवन प्राप्त हुआ। इस जन्म में प्रभु से अपना संबंध न जोड़ने पर पश्चात्ताप ही पाना है।[337]

मनुष्य जन्म को सफल जन्म मानकर [illegible] भावों में [illegible] व्यक्त होने का [illegible] आदि ग्रंथ में अनेकों स्थानों में [illegible] में की है। इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य में जो ज्ञान है, वह अन्य किसी योनि में नहीं। अतः इस योनि को [illegible] अन्य सब योनियों से उत्तम मानकर[338] [illegible] इसको कल्याणकारक एवं प्रभु-मिलन का साधन माना है।[339] यदि इस जन्म को कल्याणकारक में न लगाया जाये, तो फिर आवागमन में यह जन्म-मरण का क्रम चलता रहता है।

333- दुलभु [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] कै गुरु [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। म: ४ , आ० ग्र०पृ० [illegible]३४

334- सफल जनमु [illegible] गुर [illegible]।
दूजा [illegible] गुर [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] को [illegible] गुरि [illegible]।

[illegible] नाम देव- आ०ग्र०पृ० [illegible]

335- [illegible] जनम [illegible] के [illegible], [illegible] जनमु [illegible] है। [illegible]- पृ०६६४

336- कबीर मानस जनमु दुलंभु है, होइ न बारै बार।
[illegible] [illegible] फल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible]। ३०
आ०ग्र० पृ० १३६६

337- भ्रमत [illegible] [illegible] जनम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible]-पृ० ४८७

338- अवर जोनि [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
म: ५ आ०ग्र० पृ० ३७४

बाह्याचार का विरोध

आदि ग्रंथ में बाह्याचार का विरोध मिलता है, [illegible] की परंपरा [illegible] कुरीतियाँ, [illegible] हुई, [illegible] द्वारा [illegible] में प्रचलित हुई। बाह्याचार का तो बिलकुल विरोध [illegible], [illegible] रचनाओं में मिलता है, [illegible] में [illegible] प्रथम निर्देश [illegible] जयदेव की रचना में मिलता है:-

[illegible]।
[illegible]।

गूजरी जैदेव ३४८

[illegible] प्रकार [illegible] प्रथम [illegible], [illegible], [illegible] प्राप्ति का [illegible] है। [illegible] रचनाओं में [illegible] विचार [illegible] बिलकुल [illegible] है।

३४९- [illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।

म: ५, आ०ग्रं० पृ० [illegible]

३५०- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

गोंड नामदेव तथा रामकली नामदेव [341] [342]	सिरी राग गुरु नानक [343]
१-आनि दीजै पाइआ।	१-जा कीमति पोगोयै ता रा तोल जाई।
२-मन का विसारे पानि।	२-जा पिवति पानी मिलन ते रोडु न जाइ।
३-मनरखा गउ की अरति बाला भरि।	३-करम सरीर करताईवै पिरि मसबु बराइ।
४-मधुसिर अदु काजि सोना। वरम बान बाजै। तापम का निरमल गु नीं ताम सत्ता कर अंकु बाजै।	४-अंकन के मोट दड़ु ज्यों अदु पिर नेन बान्दु। (पे क्षम बीरम बरत आदि कुं कीम, ध्विबै माति माति मन अावै, मधुला तोल राम रातु है, दुमति ती पुरै न तोल डुलावै। [344]
५-मुलान मनवान, मिनि नारा पुनिवान बैठो आन मिल मिरति मौजै। माजेवि कोन पुग पुरव जाने, प्रान अमान।	५-पूवि बान गउआ पाणी भी आरि मरम सुखान।
६- नारद मनि भाता, गु दि बहुर पड़ना। मानि गाति जार मैं। निमर निमर गोविंदय। मन राम तारति मन निंय।	६-पानहदि दुधि मैनाता मैं वेद वाचारु। मै ज्ञान जोत के गुरमुखि मोखु दुआरु। मबदु तीरै जम ती उपरि गदु वावारु। नन मन साता वै मरा अनदिन वाग्न जलाइ। धरि नाम सुनि न पूरा वै का मीटा नाम कमाइ। (गुरु नानक देव का मैं यह प्रमाण के मिलातौं है लिए देखिए आ०ग्र०पृ०१९, १९६,१९७,२०२,५६७, ६६०,१००६ आदि।

कथ्य-पक्ष

भाषा

नामदेव की हिन्दी कविता पर पंजाबी, मराठी, फारसी आदि का प्रभाव है। मराठी उनकी मातृभाषा है, पंजाबी का प्रभाव पंजाब में रहने के कारण है। तथा फारसी का प्रभाव तत्कालीन प्रशासनिक भाषा होने

341- आ०ग्र० पृ० ८७३

342- आ०ग्र० पृ० ९७३

343- आ०ग्र० पृ० ६२

के कारण है। कबीर, गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने नामदेव की इस भाषा शैली का बहुत सीमा तक प्रभाव स्वीकार किया है।

अलंकार एवं प्रतीक योजना:

नामदेव की अलंकार एवं प्रतीक योजना का उनके परवर्ती संतों पर पर्याप्त प्रभाव है। मछली-नीर, कुरंक-नाद, धरती-इन्द्र, कोयल-आम, चकवी-सूर, तरुणी-कान्त, गाए-बछड़ा आदि के रूपकों का नामदेव तथा उनके परवर्ती संतों ने समान रूप से प्रयोग किया है।

राग तत्व

आदि ग्रंथ में कुल ३१ राग हैं। इनमें से १८ रागों में नामदेव की रचना उपलब्ध है। इन रागों में अन्य परवर्ती संतों की रचनाएं भी संगृहीत हैं।

निष्कर्ष

नामदेव ने जहां उत्तर भारत में युगानुरूप विचारों से क्रांति की चिंगारी प्रज्वलित की वहां हिन्दी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद-शैली भी प्रदान की। संक्षेप में नामदेव हिन्दी के अपने समय के,

(१) निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक और,

(२) हिन्दी में गीत-शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं। नामदेव की लोक प्रियता का प्रमाण इस बात से मिलता है कि कबीर, रज्जब, सुन्दरदास, दादू, धधना, रविदास, तथा सिक्ख गुरुओं ने उनका नाम अपार श्रद्धा के साथ लिया है।

आदि ग्रंथ में कवियों का परस्पर आदान प्रदान

(१) सन्त बेणी के पद, 'रे नर गरभ कुण्डल जब आछत'[३४५] का गुरु नानक के 'पहिले पहरै रैणि के'[३४६] आदि पदों पर प्रभाव है। दोनों पदों में विचार और भाषा का आश्चर्यजनक साम्य है।

३४४- आ०ग्रं० पृ० १३२५

३४५- आ०ग्रं० पृ० ९३

३४६- आ०ग्रं० पृ० १३५१

(२) संत वेणी के पद (तनि चंदन मस्तकि पाती)[३४७] का गुरु नानक के (गल माला तिलक लिलाटं)[३४८] पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

(३) सन्त नामदेव के पद (आनीले कुंभ भराईले उदक)[३४९] का रविदास के पद (दूध त बछरै थनहु बिटारिओ)[३५०] पर सीधा प्रभाव है।

(४) विभिन्न सन्तों के कतिपय पदों का तुलनात्मक अध्ययन द्रष्टव्य है।

(I) नामदेव:

दूध कटोरै गडवै पानी। कपल गाइ नामै दुहि आनी।
दूधु पीउ गोबिंद राइ। दूध पीउ मेरो मनु पतिआइ।
दूध पीआइ भगतु घरि गइआ। नामे हरि का दरसन भइआ।[३५१]

रविदास

निमत नामदेव दूधु पीआइआ। तउ जग जनम संकट नहीं आइआ।[३५२]

(II) रविदास

ऊचे मंदर साल रसोई। एक घरी फुनि रहन न होई।[३५३]

म:९ आप घरी कोउ नह राखै घर ते देत निकारा[३५४]

(III) रविदास

कहि रविदास सभै जगु लूटिआ। हम तउ एक राम कहि छूटिआ।[३५५]

कबीर: हम देखत जिनि सभु जगु लूटिआ। कहु कबीर मै राम कहि छूटिआ।[३५६]

म:९ त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै बिचारि।
कहु नानक भजु राम नामु नित जाते होत उधार।[३५७]

३४७- आ०ग्र० पृ० १३५१

३४८- आ०ग्र० पृ० १३३१

३४९- आ०ग्र० पृ० ४८५

३५०- आ०ग्र० पृ० ५२५

३५१- वही पृ० ११६३-६४

३५२- वही पृ० ४८७

३५३- वही पृ० ७९४

३५४- वही पृ० ५३६

(४) रवि [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] कुंभ [illegible]।
गोरख [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[355]
[illegible] [illegible] बुद्ध बुद्ध [illegible] [illegible]।

प:६ ग्रीषम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फांसियां, [illegible] साहू [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], प्रेम प्रेम [illegible] [illegible]।[356]

(५) <u>रविदास</u> :

[illegible] साधु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] रवि [illegible] [illegible] [illegible]।[360]

कबीर: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] झूला।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] झूला।[361]

(६) [illegible]:

[illegible] बनारसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।[362]

प:६ मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] साधु [illegible] [illegible] [illegible]।[363]

(७) रविदास

जैसा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रविदास चमार।[364]

प:३ [illegible] नाम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फूल।
[illegible] [illegible] [illegible] बिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फूल।[365]

३५५- ना०प्र० पृ० ७६४
३५६- वही पृ० ३०६
३५७- वही पृ० ५३६
३५८- वही पृ० ७६४
३५९- वही पृ० ६३४
३६०- वही पृ० ७६४
३६१- वही पृ० ८१०
३६२- वही पृ० ३४६
३६३- वही पृ० २५७
३६४- वही पृ० ३४६
३६५- वही पृ० ८१

(८) गोरखनाथ:

सतजुग मैं जुग [illegible] रचाया [illegible] निपाया।
[illegible] हूणा गण अंकुर [illegible] माया।
त्रेता जुग मैं जुगजोग रचाया। राम रमायण कीन्हा।
[illegible] हरि हरि भूले [illegible] ज्ञान न [illegible] कीन्हा।
द्वापर जुग मैं जुग नाम रचाया, [illegible] भार।
कैरो पांडौ हरि हरि भूले, [illegible] संसार।
कलिजुग मैं जुग चारि रचाया, [illegible] चारि विचारं।
घरि घरि [illegible] घरि घरि [illegible] घरि घरि [illegible]।
चौहं जुग भये जुग चारि [illegible], [illegible] निरालंब [illegible]।
[illegible] गोरख [illegible] पार उतरिया। [३६६]

गोरख नाथ के उपर्युक्त पद में जो गाया है [illegible] आदि ग्रंथ में [illegible] निम्नांकित पद मिलता है, जिसमें [illegible] गुरु नानक गुरु अमरदास तथा गुरु राम दास आदि सन्तों ने पद रचना की है:-

रविदास

सति जुगि सतु त्रेता जगी दुआपुरि पूजा चार।
तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार।
पारु कैसे पाइबो रे। मो सउ कोउ न कहै समझाइ।
जा ते आवागवन बिलाइ। [३६७]

गुरु नानक

सति जुगि सतु संतोख सरीरा। सति सति वाणी गहिर गंभीरा।
[illegible] सचु कहै सचु सोई। [illegible] सचै साचा सोई।
त्रेतै धरम कला इक चूकी। तीनि चरण इक दुबिधा सूकी।
दइआ दुआपुरि आधी होई। गुरमुखि विरला चीनै सोई।
[illegible] बिनु गुर पूरे किनै न पाइओ। [३६८]

३६६- गोरख बानी पृ० [illegible]
३६७- आ०ग्रं० पृ० ३४६
३६८- आ०ग्रं० पृ० १०२३-२४।

(२) वार आसा में भी गुरु नानक ने चारों युगों को वर्णन किया है।[३६६]

सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु।
त्रेतै रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु।
दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु।
कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु।।

गुरु अमरदास? गुरु जी ने चारों युगों नाम की बड़ाई का वर्णन किया है:-

सतजुगि सचु कहै सभु कोई।
घरि घरि भगति गुरमुखि होई।
सतजुगि धरम पैर है चारि।
गुरमुखि बूझै को बीचारि।
जुग चारे नामि वडिआई होई।
जि नाम लागै सो मुकति होवै गुर बिनु नाम न पावै कोई।
त्रेतै इक कल कीनी दूरि।
दुआपुरि धरमि दुइ पैर रहाए।
कलजुगि धरम कला इक रहाए।
सभ जुग महि नामु ऊतमु होई।
गुरमुखि विरला बूझै कोई।
हरिनाम धिआए भगतु जनु सोई।
नानक जुगि जुगि नामि वडिआई होई।[३७०]

गुरु रामदास

यहां नीचे जो म:४ का चारों युगों का वर्णन दिया जाता है, वह मारू राग में गुरु नानक देव जी के वर्णन से मिलता है। यहां केवल रेखाएं ही प्रस्तुत की जा रही हैं:-

सति जुगि सचु संतोखु सरीरा पग चारे धरमु धिआन जीउ।

× × ×

तेता जुग आइआ अंतरि जोरु पाइआ जतु संजमु करम कमाइ जीउ।
पग चउथा खिसिआ त्रै पग टिकिआ मनि हिरदै क्रोधु जलाइ जीउ।

३६६- आ०ग्र० पृ० ४७०
३७०- आ०ग्र० पृ० ८८०

सुद्धआपुरि आइआ भरमि भरमाइआ हरि गोपी कान्ह उपाइ जीउ।
किरिआ करम बिसिआत्रे पा टिकिआ मनि हिरदै क्रोध जलाइ जीउ।

x x x

कलिजुग हरि कीआ पग त्रै खिसकीआ पग चउथा टिकै टिकाइ जीउ।।
गुर सबदु कमाइआ अउखधु हरि पाइआ हरि कीरति हरि सांति पाइ जीउ।।
हरि कीरति रुति आई हरि नाम वडाइ हरि हरि नामु खेतु जमाइआ।
कलिजुगि बीजु बीजे बिनु नावै सभु लाहा मूलु गवाइआ।
जन नानक गुरु पूरा पाइआ मनि हिरदै नामु लखाइ जीउ।। ३७१
कलिजुगु हरि कीआ पग त्रै खिसकीआ पगु चउथा टिकै टिकाइ जीउ।।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि ग्रंथ के संत काव्य के प्रमुख रचयिताओं, कबीर गुरु नानक, गुरु रामदास। गुरु अर्जुन देव आदि द्वारा जिस काव्य की रचना की गयी उस रचना का पथ-प्रदर्शन करने वाले संत काव्य का प्रारंभ ईसवी सन् की बारहवी शताब्दी में ही हो गया था। जयदेव का समय बारहवीं शताब्दी तथा नामदेव का समय १३वीं शताब्दी में पड़ता है। विद्वानों ने इस तथ्य को एक मत से स्वीकार किया है, कि संत परंपरा के सर्वप्रथम पथप्रदर्शक प्रसिद्ध भक्त कवि जयदेव थे, जिन्होंने आदि ग्रंथ में संगृहीत पदों की भी रचना की थी।[३७२]

जैसा कि हम पूर्व अध्ययन से देख चुके हैं, जयदेव द्वारा प्रतिष्ठित परंपरा को समुचित रूपरेखा प्रदान करने का श्रेय संत नाम देव को है। नामदेव ने संत मत को जिस पराकाष्ठा पर पहुंचाया, उसी विचारधारा एवं काव्य-रचना ने परवर्ती सन्तों का पथ प्रदर्शन किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर तथा गुरु नानक ने जय देव तथा नामदेव द्वारा प्रतिष्ठित संत मत को जो सुव्यवस्थित रूप दिया उसका अन्तिम स्वरूप सिक्ख धर्म तथा आदि ग्रंथ के सन्त काव्य के रूप में प्रकट है।

३७१- आ०ग्रं० पृ० ४४५

३७२- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० ७८६

इन सन्तों ने सिद्धान्तों की अपेक्षा साधनाओं का परिष्कार करने की ओर कहीं अधिक ध्यान दिया। आदि ग्रंथ साक्ष्य है कि इन्हीं की धारणा है कि परम तत्त्व की अनुभूति के लिये भी इनकी गुरु की [illegible] से [illegible] पर ऐसा बताना प्रायः [illegible] है। बाह्याचार, पूजा-पाठ, तीर्थ यात्रा। वेशधारण आदि [illegible] कर्मों में [illegible] शुद्धता में [illegible] [illegible] गौण नहीं होती। [illegible] श्री गुरु के प्रति विशेष [illegible] के त्याग से होता है। ज्ञान, योग एवं भक्ति के मार्ग को अपनाकर [illegible] निष्काम प्रवृत्तियों का अनुसरण करने को अभीष्ट माना गया है।

इन सन्तों ने नाथों योगियों से साधना [illegible] के साथ साथ अन्तर्मुख की भावना के साथ और चित्त-शुद्धि के संदेश को स्वीकार किया। परन्तु फिर भी नामदेव तथा कबीर ने अन्य भक्ति [illegible] का अपेक्षा प्रस्तुत की। [illegible] प्रेरित होते हुए भी, [illegible] स्वरूप, स्वर एवं भावना लिये हुए प्रकट हुई। सन्त-[illegible] आदि ग्रंथ में इन सन्त-साधकों के ग्रंथों में व्यावहारिक प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है, जिनके विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों पर आगामी पृष्ठों में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

३- श्री गुरु ग्रंथ साहब का दर्शन पक्ष:

सचा सदा [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] रहे [illegible]।

अवर दूजा किए सेवीऐ जंमै तै मरि जाइ। ५:३

आदि ग्रंथ पृष्ठ ५०९

ब्र

<u>विश्वास का महत्त्व</u> : जिस प्रकार ब्रह्म देशकालातीत है, उसी भाँति ब्रह्म में विश्वास की भावना भी देशकाल की सीमाओं में न होकर असीम है। फिर भी अविश्वासी लोगों की कमी नहीं रही। जर्मन चिंतक फ्रेडरिक नीत्शे का मत है: मनुष्यों ने परमेश्वर की कल्पना एक महान् शक्ति सम्पन्न पुरुष के रूप में की है। यदि घोड़ा परमेश्वर की कल्पना करता तो वह एक विशाल घोड़े के रूप में करता, जैसे जल-तट-वासियों ने ईश्वर की कल्पना जल-देवता या समुद्री अप्सरा के रूप में की है, जिसका ...... ऊपर का भाग स्त्री के समान और नीचे का भाग मछली के आकार का है। नीत्शे की सम्मति में इस प्रकार के कल्पित परमेश्वर को आधुनिक विज्ञान ने समाप्त कर दिया है। रूस के बोल्शेविज़्म ने भी पूंजीवादी शोषक शक्तियों की प्रतिक्रिया में ईश्वर पर विश्वास को धक्का पहुंचाया है। कुछ विचारकों ने तो यहाँ तक कह डाला है, कि ईश्वर यदि हो भी, तो हमें उसे पदच्युत एवं ध्वस्त करना होगा[1]। उपर्युक्त विचार पर टिप्पणी करते हुए डा० बुल्ला राम कहते हैं, कि यह विचार मानव प्रवृत्ति को विकृत रूप में प्रकट करता है। इस के अनुसार मनुष्य या तो मूर्ख है या बालक। बालक मनुष्य मूर्खों के विश्वास पर जीते हैं और बुद्धि उनके संकेतों से अविश्वास के रूप में झूलते रहते हैं।[2] नीत्शे महोदय किस श्रेणी में रखे जा सकते हैं, यह निर्णय न देते हुए हम यहाँ उनके विषय में डा० मोहम्मद इकबाल का विचार प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। यदि वह मूर्ख फिरंगी उस ज़माने में होता, तो इकबाल उसको समझाता कि ब्रह्म-तत्त्व क्या है।[3]

कहना न होगा, कि आज के वैज्ञानिक युग में भी आज का बुद्धिवादी विज्ञानी ईश्वर सत्ता में विश्वास रखने में कोई आपत्ति नहीं मानता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री ऐलबर्ट आइन्स्टाइन सन् १९५० में प्रकाशित अपने ग्रंथ (OUT OF MY LATER YEARS) में लिखते हैं, मानव ज्यों ज्यों वैज्ञानिक क्षेत्र की नवीन खोजों या प्रगति में प्रवेश करता जाता है, त्यों त्यों वह सृष्टि में अभिव्यक्त बुद्धिवादिता के प्रति गंभीर श्रद्धा भावना से अभिभूत होता जाता है। इस बुद्धिवादिता को पहचान कर अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और अभिलाषाओं से भी ऊपर उठ जाता है और सृष्टि के रूप में मूर्तिमान् बुद्धि की महत्ता के सामने उसका सिर भक्ति-भाव से झुक जाता है। यह बुद्धि अपने मंगलमय स्वरूप में मानव की पहुँच से परे है।[4] इसी स्वरूप को मानव ने ब्रह्म नाम से अभिहित किया। पर आइन्स्टाइन बुद्धि का नाम लेकर ईश्वर की सत्ता

१- धर्म का विज्ञान- पृ० ३६

का विरोध नहीं करते और मानते हुए ग्रंथ में लिखते हैं: प्रभु का स्वर्गीय सम्मान् न्यायी और दयालु रूप मानव को आत्मज्ञान, नम्रता और पाप-मुक्ति प्रदान करता है।[5]

ब्रह्म के विचार के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के अनेक जिज्ञासाओं का उल्लेख भी लाभदायक होगा। सेंट ... लिखते हैं: हमारा संसार तथा जिसको ब्रह्म ने रचा है और उसे बनाए रखा है।[6] यह संसार उसी ब्रह्म की रचना होने के कारण प्रकाश है और क्योंकि प्रभु पवित्र हैं, उनके पास पाप का स्वल्प भी नहीं है हमें उनसे ... रहना चाहिए। उपर कहने का अर्थ है प्रभु सर्वशक्तिमान अनन्त-पवित्र, प्रबुद्ध एवं न्यायपूर्ण।[7]

<u>ब्रह्म का परंपरागत स्वरूप</u> : प्राचीन ग्रंथों में एक ही आत्मा ब्रह्म का अनेक प्रकार के विविध नामों द्वारा स्तुति की गई है। 'एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति', एक ब्रह्म को ही विद्वान् व्याख्या कर बताते हैं। स्तुति, गुण-कीर्तन का नाम है। अत: एक ही देव के अनेक नाम उनके अनेक गुणों का द्योतन करते हैं। अथवा ध्वनि उपनिषद् तथा पुराण साहित्य भी इस प्रकार कहता है: 'एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।[8]

१- स ब्रह्मा स विष्णु: स रुद्र: स शिव: सोऽक्षर: स परम: स्वराट्।
स इन्द्र: स कालाग्नि: स चन्द्रमा:।[9]

२- एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।[10]

यदि हम ध्यान पूर्वक अध्ययन करें तो हमें पता चल जाता है कि उत्तरवैदिक काल में नहीं, अपितु वैदिक काल में ही एक ईश्वर का विचार प्रकाश प्राप्त कर चुका था। वेदों के बहुत से गुणवाचक शब्द एक ही ईश्वर का बोध कराते हैं।[11]

२- भक्ति का विकास- पृ० ३६

३- अगर होता का मिज़ाज-ए-फिरंगी का ज़माने में।
तो ... उनको हमकलामा मुगल-ए-किब्रिया क्या है।
... गज़ल नं० १३ (बन्दिश ...)

४- पृ० ३६ से भक्ति का विकास पृ० ३१ पर उद्धृत।

५- ... - पृ० २०। से भक्ति का विकास पृ०३१ पर

६- रिलिजन ... - पृ० ६८

७- ... - पृ० २२

ऋग्वेद में इस बात का उल्लेख है कि उस अविनाशी ब्रह्म को जो दिव्य स्वरूप उत्तम गुणों से युक्त परमात्मा है, विद्वान लोग बहुत से नामों से पुकारते हैं, जैसे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) मित्र (सब का सखा) वरुण (सर्वोत्तम) अग्नि (सब का उपास्य) यम (सब का राजा) मातरिश्वा (सब से बलवान्)।[12] ऋग्वेद में एक और स्थान पर कहा है: विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुष अनेक गुणों से युक्त एक परमेश्वर को सदा ही अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।[13] यजुर्वेद में भी ऐसे ही विचार मिलते हैं।[14] अथर्ववेद में भी कहा है कि परमात्मा एक ही है। उसके बारे में और दो विचार हो नहीं सकता।[15] अथर्ववेद में वरुण परमात्मा के रूप में सर्वव्यापक है।[16]

८- निरुक्त- ७-४,८-९।

९- कैवल्योपनिषद्-८

१०- मनु० १२-१२३।

११- इन्द्र - राजा, मित्र- सखा, परमेश्वर, वरुण-आकाश, सर्वव्यापक, अग्नि- अग्रगामी, पवित्र, वायु- बलवान, चन्द्र- चन्द्रमा, यम-राजा, शासक, काल-समय, यज्ञ- उपासना, रुद्र-दुष्ट दमन, राजा, ब्रह्म-कर्ता, विष्णु-सर्वव्यापक, शिव-कल्याणकारी, शंकर- कल्याणकारी, महादेव- देवों में बड़ा, गणेश- गणों का स्वामी- धर्म का आदि स्रोत पृ० १४५-१४६।

२- The gods are praised; yet not the gods, but God is praised through them. So there is no question of ... monotheism also in the Vedas. Hence there is no development from polytheism through monotheism to monism, but only of monism from the first Mantra portion to the last Jnanic portion.
(A critical Survey of Indian Philosophy, p-16).

१२- इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋग्वेद १-१६४-४६

१३- सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। ऋग्वेद १-११४-५

१४- यजुर्वेद अध्याय ३२ मं: १ ।।

१५- न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते, न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणति यच्च न तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव। सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति।। अथर्ववेद- १३-५

१६- द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।। अथर्व -४-१६-२

गीता में कहा गया है कि इस लोक में दो पुरुष हैं- क्षर और अक्षर (पुरुष)। सब जीव क्षर हैं, अर्थात् कूटस्थ (जो अपने भावों को कई प्रकार से व्यक्त करता है) अक्षर है।[17] यहाँ जीवों में निवास करने की भगवान् की शक्ति का वर्णन है। वह भगवान् संसार में रहता हुआ भी इन्द्रियातीत है। उत्तम पुरुष है। वह तीन लोकों का स्वामी है और उसका पालन करता है।[18] भगवान् साकार जीवों में भी निवास करता है, और उसका पद अक्षरातीत है। इसी कारण भगवान् को वेदों में तथा संसार में पुरुषोत्तम कहा गया है।[19] उस परमात्मा का आदि, अन्त नहीं और वह देवों से उत्तम है। वह जन्म नहीं लेता। उसके मूलमहेश्वरम् स्वरूप को न जानने वाले उसे शरीरवान् समझते हैं। वे मूर्ख हैं।[20] मूर्खों की सेवा का फल भी सीमित ही होता है। भगवान् के भक्त भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं और देवों के उपासक देवों को ही प्राप्त करते हैं।[21]

सिद्धों ने ब्रह्मलोक को शून्य-महल का नाम दिया है। शून्य-पद का न आदि है, न अन्त और न मध्य। न वहाँ जन्म है न निर्वाण। यह अलौकिक महासुख है। न उसमें पराये का ज्ञान रहता है, न अपना। ऐसी सिद्ध सरहपाद ने उस परमपद की व्याख्या की है।[22] इसी शून्य की व्याख्या करते हुए सिद्ध ... लिखते हैं, वह परम तत्त्व न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। न किसी स्थान पर ठहरता है। मैं भी शून्य हूं, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहजस्वरूप है, न वहाँ पाप है, न पुण्य।[23]

१७- द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि
कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। गीता १६-१५

१८- उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। गीता १७-१५

१९- यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। गीता १८-१५

२०- गीता-११-६ २१- गीता २३-७

२२- आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिवाण।
एह सो परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण।। (सन्त सुधा सार- पृ० ५)

२३- सन्त सुधासार पृ० १२

जैन मुनि रामसिंह परम तत्व का निरूपण करते हुए कहते हैं, मैं सगुण हूं, और मेरा प्रियतम निर्गुण है। निर्लक्षण और निस्संग एक ही अंग में, एक ही स्थान पर, हम दोनों निवास करते हैं। फिर भी अंग से अंग नहीं मिल पाता।[24]

गोरख नाथ ने उस ब्रह्म को 'ओऽम' नाम से अभिहित किया और उसे अलख अतीत कहा है। वह तब से है जब धरती भी नहीं थी, आकाश भी नहीं था। उस समय स्वयंभू आविर्भूत हुआ। वह गर्भवास में नहीं आता, न योनियों में पड़ता है। न नाभि कहलाता है।[25] योगारंभ का यही कथन है कि सब घटों में एक ईश्वर को जानो।[26]

सिद्धों के शून्य से ही गुरु गोरखनाथ ने जिस रूप में ग्रहण किया, वह भी सिद्धान्ततः ब्रह्म के परम्परागत रूप से अलग नहीं। सब घटों का अन्तर्यामी वह 'ओऽम' नाम से अभिहित हुआ है जो वह तब से आविर्भूत है, जब न धरती थी न आकाश। योनियों के चक्र में तो वह कभी पड़ा नहीं। वह स्वयंभू है। इसी लिए वह स्वतः ही अपना निमित्त और उपादान कारण भी है। और उसे अन्य किसी शक्ति या वस्तु की अपेक्षा नहीं। सन्त जयदेव ने भी एक मात्र सत्य-ब्रह्म को ही आदि पुरुष के रूप में स्वीकार किया है।[27] प्रत्येक घट में व्याप्त वह एक ब्रह्म ही तो अनेक होकर सर्वत्र दिखाई देता है।[28] नामदेव के इस विचार की पुष्टि त्रिलोचन यह कह कर करते हैं कि वही एक तो तृण तृण में व्याप्त है।[29] बेणी ने

२४- हउ सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंग वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंग। १०
मिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं किम दरिसावइ पंथ। २१ संत सुधासार पृ-

२५- गोरखबाणी पृ० २५०   २६- वही- पृ० [illegible]०

२७- परमादि पुरख मनोपिमं सति आदिभाव रतं। ग्रं०पृ० ५२६

२८- एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।×××
घटि घटि अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी। ग्रं०पृ० ४८५

२९- जे को मूं उपदेसु करतु है ता वणि त्रिणि रतड़ा नाराइणा। ग्रं०पृ०९२

भी तीनों लोकों के एक मात्र अधिपति ब्रह्म को निरंजन रूप स्वीकार किया है।[30] सेन ने उस निरंजन रूप का ही तो ध्यान किया है[31] क्योंकि गुरु रामानंद ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी राम अन्तर्मन में उसकी स्थिति और सत्ता का बोध कराया था।[32]

एकंकार ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य देव झूठे हैं

वैदिक काल में, देवताओं के प्रति श्रद्धा, ब्रह्म की शक्तियों के प्रति श्रद्धा थी। ऋग्वेद में उस ब्रह्म के एक होने के बारे में स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[33] यजुर्वेद में भी यह विचार प्रतिष्ठित स्वरूप से हुआ था। अथर्ववेद में उसी पर बल दिया गया है।[34] परन्तु तत्पश्चात् बहुदेवोपासना तथा मूर्ति पूजा का जो व्यवधान हुआ उसके विरुद्ध वैदिक संदेश की अक्षुण्ण परंपरा विकसित हुई। भगवद्गीता में भगवान का आदेश हुआ: इन अल्प बुद्धि वाले लोगों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला फल अस्थायी होता है। देवताओं की पूजा करने वाले लोग देवताओं को प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरा भक्त मेरे पास पहुंच जाता है।[35] आदि ग्रंथ में इसी परंपरा का पूर्ण रूपेण विकास हुआ और उस परमात्मा को न केवल एक कहा गया, अपितु एक होते हुए दूसरा अवतार न होने का संदेश स्पष्ट रूप में प्रसारित किया गया। गौंड राग में नामदेव जी का एक शब्द है, जिस में एक परमात्मा को छोड़ कर अन्य देवों की पूजा का उपहास किया गया है।[36] कबीर जी के विषय में आदि ग्रंथ में रविदास जी की एक रचना है, जिसमें उन्हों ने लिखा है कि कबीर जी ने अपने घर के देवों को उपासना छोड़ कर एक और ही मार्ग का अनुसरण किया।[37] इस की पुष्टि कबीर जी की रचना से होती है, जो आदि ग्रंथ में सम्मिलित है। वे कहते हैं, घर के देवों तथा पितरों को छोड़कर मैं ने गुरु का शब्द लिया है, जो सर्वपाप-नाशक है। परमात्मा एक देशी नहीं, वह सर्वव्यापक है।[38] रविदास जी उस हरि के तुल्य किसी अन्य देव को नहीं

30- भाखि निरंजन त्रिभवण धनो। आ०ग्रं० पृ० ६९४

31- तू ही निरंजन कमलापाती। राम भगति रामानंद जानै। पूरन परमानंद बखानै।×× सैणा भणै भजु परमानंद।। आ०ग्रं० पृ० ६९५

32- पूजन चाली ब्रह्म ठाइ। सो ब्रह्म बताइओ गुर मन ही माहि। तू पूरि रहिओ है सभ समान। बेद पुरान सभ देखे जोइ। उहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ। आ०ग्रं०११ आ०ग्रं० ११९५

मानते।[३९] गुरु नानक देव जी तो अथर्ववेद की शैली में ही इस कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं, 'प्रभु तो मुझे सत्यगुरु से प्राप्त हुआ है, तथा मैं ने पिया है, उसके मार्ग में किसी अन्य दूसरे- तीसरे को मैं जानता ही नहीं। प्रभु एक ही है, जो पारस करके अपने कोष में प्रविष्ट करता है।[४०] उस कर्ता पुरुष का यही तो एक गुण है कि और कोई उस जैसा नहीं, और न कोई अन्य हुआ है, न होगा।[४१] गुरु अमरदास जी कहते हैं: भाई! केवल एक परमात्मा का ध्यान करो, क्योंकि उसके बिना अन्य कोई नहीं।[४२] उस भगवान का कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं।[४३] गुरु रामदास जी संसार की रचना केवल उसी एक से मानते हैं, और समस्त कोष में उसी को व्यापक मानते हैं। वही एक सब कुछ करता है।[४४] गुरु अर्जुन देव जी तो हृदय मन्दिर में केवल उसी एक की स्थापना करने को कहते हैं, क्योंकि उस के बिना अन्य कोई देव नहीं।[४५] गुरु तेग बहादुर कहते हैं: परमात्मा अगणित, अपार, अलख निरंजन है। जो उसे छोड़ कर भ्रम में उलझे हुए हैं, उनको दूसरे और भी उसी ने लगा दिया है, क्योंकि उनका वर्तमान उनके भूतकाल के कर्मों का ही परिणाम है। अतः प्राणी! अब भी समझ बूझ कर इन दूसरे भ्रमों का त्याग कर भगवान् के चरणों में चित्त लगाओ।[४६]

३३- ऋग्वेद -१३-८ ३४- ऋग्वेद १-१६४-४६

३५- गीता ७-२४ ३६- आ०ग्र० पृ० ८७४

३७- आ०ग्र० पृ० १२६३ ३८- आ०ग्र० पृ० ८५६

३९- हरि आपा तेऊरचना पदम कमलापति तास सम तुलि नहीं आन कोउ।

आ०ग्र० पृ० १२६३

४०- अंम्रित पीआ सतिगुरि दीआ। अवरु न जाणा दूआ तीआ।

एको एकु सु अपरंपरु परखि खजानै पाइआ- आ०ग्र० पृ० १०३४

४१- गुण एहो होरु नाही कोइ। ना को होआ ना को होइ।। आ०ग्र०पृ०३४९

४२- एको सिमरहु भाइहु तिसु बिनु अवरु न कोइ।। आ० ग्र० पृ० १०९३

४३- तिसका सरीकु को नाही ना को कंटक वैराई।। आ०ग्र० पृ० ५९२।

४४- एको एक रविआ भरपूरि। साकत नर लोभी जाणहि दूरि।

एको एकु वरतै हरि लोइ। नानक हरि एको करे सु होइ। आ०ग्र० पृ० ११७७

४५- एकु सिमिरि मन माही। रहाउ।। नाम धिआवहु रिदै बसावहु तिसु बिनु को नाही।। आ ग्र० पृ० ४०७

४६- आ०ग्र० पृ० १३७

ऊपर हमने ब्रह्म के अस्तित्व की चर्चा की है। उपनिषदों में लिखा है कि जो कोई ब्रह्म के अस्तित्व को जानता है तो इसी के आधार पर उस व्यक्ति के अस्तित्व की प्रतिष्ठा होती है।[४७] उपनिषदों में ब्रह्म को सर्वव्यापक माना है। यह अमर ब्रह्म सामने है, पीछे है, वह ब्रह्म दाहिने है, ब्रह्म बायें है, ब्रह्म नीचे है, ब्रह्म ऊपर है, सर्वव्यापक है, यह सारा विश्व ब्रह्मस्वरूप है।[४८] इसी उपनिषद् में कहा कि वह ब्रह्म स्वाभाविक दिव्य-ज्योति, अमूर्त पुरुष, बाहर तथा अभ्यन्तर में व्याप्त, अजन्मा, क्योंकि (अप्राण) अमना, शुभ्र तथा अक्षर से भी श्रेष्ठतम (परात्पर) ब्रह्म है।[४९] वह जो जीवों में है, सूर्य में है, एक ही ब्रह्म है।[५०] वह सर्वव्यापक है, पवित्र है, अयोनि (कायारहित) स्वरूप है। [illegible] है, शुद्ध है, पाप रहित है, अन्तर्यामी है, मन का राजा है, पुरुषोत्तम है, स्वयंभू है, उसने सब युगों को उनका कर्मभार सौंप रखा है।[५१] उपनिषदों में उस ब्रह्म को अत्यधिक दिव्य ज्योति माना है। उस दिव्य ज्योति में इतनी अधिक ज्योति है कि उसके [illegible] के सामने सूर्य, चांद, तारों तथा विद्युत की ज्योति की गति नहीं है। फिर यह अग्नि यहां क्या कर सकती है। [illegible] वह ज्योति विद्यमान है, तो सब कुछ उसके पीछे विद्यमान होता है।[५२] पुराणों में भी ब्रह्मलोक को इतनी अधिक ज्योति से प्रकाशमान कहा गया है कि वहां सब ज्योतियां मंद हो जाती हैं। जैसे सूर्य के सामने दिये की ज्योति। उस स्थान को अमरपद कहा है।[५३]

४७- असन्नेव स भवति, असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति। तैति० २-६।।

४८- ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म, दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। मुण्डको० २-६।

४९- दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।। मुण्डको० २-२।

५०- स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः।। तैति: २-८-५

५१- स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।
यजुर्वेद- अ०४०, मं० ८

५२- न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। कठो० [illegible]-१५,
श्वे० ६-१४, मुण्डक० २-२-१०।

गीता में भी सब ज्योतियों का मूल स्रोत ब्रह्म-लोक को ही कहा गया है। भगवान् कहते हैं: वह ज्योति जो सूर्य में है, और सारे ब्रह्माण्ड को ज्योतित करती है, वह तेज जो अग्नि तथा चन्द्र में है, उस ज्योति को मेरी समझो।[54] गीता में ही कहा है कि जिस प्रकार एक सूर्य निखिल ब्रह्माण्ड को ज्योतित करता है, उसी प्रकार वह जो (परमात्मा) प्रत्येक शरीर में निवसित आत्मा में बसता है, सारे शरीर को ज्योतित करता है।[55] औपनिषदिक विचार को गीता में इस प्रकार लिखा गया है: उस (परंपद) को न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि। वह मेरा परम धाम है, जहां पहुंचकर फिर वापिस नहीं लौटना होता।[56] गुरमति दर्शन के अनुसार उत्तम पद के उस ब्रह्म का ज्योति को प्रकाश है। 56(क)

आदि ग्रंथ में पूर्ववर्ती सन्त साहित्य में ब्रह्म का स्वरूप एवं स्थिति।

वज्रयानी सिद्ध साहित्य में ब्रह्म शब्द के स्थान पर शून्य (सुंन) शब्द का प्रयोग मिलता है। प्राय: लोग कहते हैं कि स्वयं महात्मा बुद्ध तथा उन के परवर्ती बौद्धाचार्य परमात्मा के विषय में मौन थे। परन्तु जिन शाश्वत सात्विक भावनाओं से महात्मा बुद्ध का सन्देश ओत-प्रोत है, वे न केवल ब्रह्म की पर्यायवाची हैं, अपितु उनका मूल स्रोत ब्रह्म ही है। वैदिक ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, अजन्मा एवं अनादि है। बौद्धिक-शून्य भी अव्यक्त होता हुआ सब सृष्टि का मूल कारण है। इस लिये बौद्धिक-शून्य के अर्थ अच्छी प्रकार समझ लेना अनिवार्य है। शून्य माध्यमिकों के अनुसार-कुछ नहीं के अर्थ नहीं रखता। शून्य का

५३- The place(i.e Brahmlok)that lasts till the dissolution of all the elements i.e. Cosmic dissolution is called immortality.(Vishnu Purana- II-[illegible]-97).

५४- यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। १५-१२, (गीता)

५५- यथा प्रकाशयत्येक: कृत्स्नं लोकमिमं रवि:।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। गीता - १३-३३

५६- न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावक:।
यत गत्वान निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता १५-६।

५६-(क) गुरमति साहित्य की परम्परा - निबन्ध - प्रो० सुरेन्द्र सिंह - गुरमति साहित्य सेमिनार - पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला जन० १९६५
साचा आदि जोति जोति है साहु। जिसदै ध्यानधि सम महि ... आ० ग्र० म० १, पृ० १३

टीक कहीं अवाच्य, अथवा अनभिलाप्य है, चारों कोटि विनिर्मुक्त: है।[५७]

सिद्ध तिलोपाद का विचार है कि वह परम तत्त्व न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है। सारा संसार ही शून्य है, मैं भी शून्य हूं, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है, आत्मा निर्मल सहजस्वरूप है, न कहीं पाप है, न पुण्य।[५८] उस ज्योति से ही अखिल ब्रह्माण्ड निर्मित है।

सिद्ध सरहपाद कहते हैं: सहज शून्यावस्था का न तो आदि है न अंत और न मध्य। न वहां जन्म है न निर्वाण। यह अलौकिक परम सुख है। वहां अपने पराये का ध्यान नहीं रहता। यही स्थान परमपद है।[५९] जैन मुनि रामसिंह कहते हैं, 'परम तत्त्व से जिसने अपने देह को पृथक् नहीं माना, वह अन्धा दूसरे अन्धे को क्या रास्ता दिखा सकता है?[६०] इसीलिये वे आगे कहते हैं: हे योगी! इस देह के देवालय में शक्तियों के साथ जो देव रह रहा है वह शक्ति संयुक्त शिव कौन है? शीघ्र ही इस भेद की खोज करो।[६१] नाथयोगी गोरखनाथ गोरखबाणी में लिखते हैं: सूक्ष्म वह है जो इन नेत्रों से देखा न जावे, और पुस्तकों में न आ सके।[६२] वह निरंजन इस संसार में विद्यमान है, जैसे तिल में तेल। इस प्राणि मूर्ति जीव में उस अमूर्त को देखो, यह सब उसी का खेल है।[६३]

५७- Shunya according to the Madhyamika, so emphatically maintained, does not mean a 'nothing' or an 'empty void', or a negative abyss'. 'Shunya' essentially means 'inexpressible' (avachya or anabhilapya), as it is beyond the four categories of intellect (chatushkoti vinirmukta)- [illegible] of Ind. Ph. p-[illegible]

५८- आवइ जाइ णहवि ण ठाइ। [illegible] सुण सुण सुण, तिहुअण सुण, णिम्मल [illegible] सहजे, ण पाप ण पुंण। सन्त सुधा सार पृ० ११-१२

५९- आइ ण, अन्त ण, मज्झ ण, णउ भव, णउ णिव्वाण।
[illegible] सो परम महासुह णउ परं णउ अप्पाण। सन्त सुधासार पृ० ५१

६०- भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावई पंथ। वही पृ० [illegible]

६१- देहा देवलि जो वसइ सत्तिहिं सहियउ देउ।
को तहिं जोइय सत्तिसिउ सिग्घु गवेसहि भेउ। वही पृ० २०

६२- [illegible] सूछिम [illegible] थूल। गोरखबाणी पृ० [illegible]
सूछिम सो जोति से आखु दिष्टि न देखिये, पुस्तक न आवै। वही पृ० [illegible]

जिस शून्य का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए उसे 'अनभिलाप्य' कहा है, वहीं 'शून्य' सिद्धों से नाथों ने तथा नाथों से सन्तों ने थोड़े से परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। आदि ग्रंथ में जगत् उत्पत्ति का वर्णन करते हुए गुरुओं ने 'शून्य' से उत्पत्ति बताई है।[64] जिससे स्पष्ट है कि 'शून्य' का अर्थ 'कुछ भी नहीं', नहीं। गोरखनाथ ने भी 'शून्य-अवस्था' में गुरु की स्थिति बताई है।[65] यह 'शून्य' में ही सहज रूप होता है।[66] जब जीव नहीं बना था, तो यह मन 'सुंन' (शून्य) में लीन था।[67]

आदि ग्रंथ में ब्रह्म का स्वरूप एवं स्थिति

सन्त जयदेव की रचना, आदि ग्रंथ में सब से प्राचीन है। वे कहते हैं: मन के सृजन से पूर्व वह आदि पुरुष ही था।[68] वह निरंकार वर्तमान, भूत, भविष्य में विनाश रहित है, और आनंद स्वरूप है।[69] नामदेव कहते हैं: युग-युगांतर से वह परमात्मा विद्यमान है। वह कब हुआ, इसका अन्त किसी ने नहीं पाया। उस का रूप यही है कि वह सर्वव्यापक है तथा आनंद-स्वरूप है। वह पुरुष गुणरहित है और घटघट में निवास करता है।[70] गोरखनाथ की भांति नामदेव जी भी अन्त में उसी ब्रह्म में 'सुंनसमाधि' होने का विचार प्रकट करते हैं।[71] बेणी के अनुसार, प्रयाग पर अर्थात् इड़ा, पिंगला तथा सुषमणा के स्थान पर परमात्मा का निवास है। यह 'दशम-द्वार' है और यही सिद्धों तथा योगियों का 'शून्य' है। वहां अनहद शब्द बोलता है, वहां चंद्रमा, सूर्य, पवन तथा पानी की पहुंच नहीं।[72]

६३- अंजन मांहि निरंजन रहिबा, तिल मुख भेदिबा तेलं।
मूरति मांहि अमूरति परस्या, भया निरंतर खेलं। गोरखबाणी पृ० २१७

६४- आपे कुदरति करि करि देखै, सुंनहु सुंनु उपाइदा।
पउणु पाणी सुंनै ते साजे। स्रिसटि उपाइ काइआ गड़ राजे। आ०ग्र०पृ०१०३७

६५- अबधू आवेस का अनुपम आनंदु सुनि का निरंतर वास।। गोरखबाणी पृ० १८७

६६- सुन्नि नगरि ताल बजावै तूर। वही पृ० १८८

६७- तबहु न निरदा न जीवा था सुनि राता मन।। कबी० पृ० १८६

६८- मन आदि गुण आदि वखाणिआ। आ०ग्र०पृ० ११०६

६९- भव भूत भाव समबिअं परम प्रसंनं है। आ०ग्र० पृ० ५२६

७०- आदि जुगादि जुगो जुगु ता का अंतु न जानिआ। सरब निरंतरि रामु रहिआ
रवि ऐसा रूपु बखानिआ। गोबिंद गाजै सबदु बाजै। आनद रूपी मेरो रामईआ।
बहु [illegible] पुरख [illegible] बखिसु उपाइआ। घटि घटि अंतरि सरब निरंतरि।। आ०ग्र० पृ०१३५

रविदा[illegible] जी कहते हैं कि जहां उस [illegible] का निवास है, उस [illegible] का नाम बेगमपुरा है। दुःख चिंता [illegible] वहां प्रवेश नहीं। शांति तथा आनंदस्वरूप है। वहां केवल [illegible] है, दूसरे तीसरे का वहां नाम नहीं।[73] कबीर भी कहते हैं कि इंगला और सुषुम्ना उसी की ज्योति है। (प्रत्येक) ज्योति में उस अनुपम प्रभु का प्रतिबिंब है। सागर साधु उसी ज्योति का प्रकाश है।[74] कबीर [illegible] ने उस ज्योति को 'शून्य' का नाम दिया है। [illegible] शुन्य मत्स्यपाद, जालंधरपाद, गोरख नाथ, नामदेव तथा [illegible] ने शून्य (शुन्य) से मिलाया है। [illegible] शून्य में [illegible]करण होने पर पुनः जन्म नहीं होता।[75] [illegible] विचार विष्णु पुराण के विचार से [illegible] मिलता है।[76] [illegible] अवस्था में प्रभु (शून्य) का [illegible] हुआ। जो [illegible] है से सृष्टि रचना हुई। [illegible] इस [illegible] विलय भी शून्य में ही होगा, ऐसा गुरु नानक का विचार है।[77]

७१- नामा [illegible] [illegible] [illegible] शून्य समाधि [illegible]। आ०ग्रं०पृ०६५७

७२- [illegible] पिंगुला [illegible] सुखमना [illegible] [illegible]।
बेणी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] निरंजन [illegible] [illegible]। तह बाजे [illegible] अनाहद बाणी।
[illegible] चंदु न सूरजु पउणु न पाणी। नामदेव बेणी आ०ग्रं० पृ०९७४

७३- बेगमपुरा [illegible] को नाउ। दुखु अंदोहु नहीं तिहि ठाउ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]। दोयम सेम [illegible] [illegible]। आ०ग्रं०३४५

७४- चंदु सूरज [illegible] जोति [illegible]। जोती [illegible] [illegible] अनूप।
[illegible] रे [illegible] [illegible] बीचार। जोती अंतरि धरिया [illegible]। रामकली।
कबीर आ०ग्रं० पृ० ८८४

७५- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
सुंनहि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
बहुरि [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] कबीर आ०ग्रं० पृ० ११०३

७६- The place (i.e. Brahman) that [illegible] [illegible] the absorption of all the elements (i.e. cosmic dissolution) is immortality (Vishnu Purana II-2-7).

७७- सुंन कला अपरंपार धारी। आपि निरालमु [illegible]।
आपे कुदरति करि करि देखै, सुंनहु सुंन उपाइदा। पउणु पाणी सुंनै ते साजे।
सृसटि उपाइ काइआ गड़ राजे। अगनि पाणी जीउ जोति तुमारी सुंने कला रहाइदा।
सुंनहु ब्रहमा। सुंनहु चंदु सूरजु गैणारे, तिस की जोति त्रिभवण सारे।

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वह ओंकार निराकार है, अगम, अजोनि, अकालीन तथा भेख रहित है। अगम, अगोचर है, तथा उसका कोई रूप रेखा नहीं। वह सभी घट में निवास करता है।[७८] उस की स्थिति का वर्णन जो गुरु नानक देव ने किया है, वह उपनिषदों से मिलता है।[७९] सब घटों में उसी ज्योति का प्रकाश है।[८०] वह परमात्मा सर्वव्यापक है।[८१] गुरु नानक देव [illegible] गुरु अमरदास जी [illegible] एक भगवान, दूसरे देवों का [illegible] करते हैं, क्योंकि वह एक सच्चा परमदेव ही सर्वव्यापक है।[८२] सब घटों में उसी ज्योति का प्रकाश है।[८३] उस तत्व का प्रकाश सच्चा गुरु करता हुआ है।[८४] उसी दिव्य ज्योति में सब किरणों का विलय होगा।[८५] गुरु राम दास जी [illegible] को अपने

सुंन समाधि सचे घर बारा। नानक निरमल नादु सबद धुनि सचु रामै नामि समाइदा। मारू : आ०ग्रं० पृ० १०३७-३८

७८- ओंकार निराकार। अमर अजोनी। जाति न जाला। आप अगोचर रूप न रेखिआ। खोजत खोजत घटि घटि देखिआ। बिलावलु म:१ आ०ग्रं०पृ० २६६

७९- निरति भिति किसकै चंदु न सूरा। सूरज किरणि न [illegible] धुनि [illegible]णारा। [illegible] गुरि रखिआ मनि [illegible]दा। [illegible] किरणि जोति उजिआला। करि करि देखै [illegible]। आ०ग्रं० पृ० १०३३

८०- सभ महि जोति जोति है सोइ। तिस कै चानणि सभ महि चानणु होइ। आ०ग्रं० पृ० ६६३

८१- बलिहारी कुदरति वसिआ। तेरा अंतु न जाई लखिआ। जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ। आ०ग्रं० ४६९ तथा जोती जोति समाणी- आ०ग्रं० पृ० ३५१।

८२- नानक सचा एकु दरु [illegible] । नानक [illegible] जह मै [illegible] साचा सोइ। [illegible] गुरमुखि परसादु होइ। म:३, आ०ग्रं०पृ० १४१३।

८३- जोति समाणी जोति [illegible] नामि समाइआ। म:१ आ०ग्रं० पृ० ७६०

८४- जोती हूं प्रभु जाणणा [illegible] गुरि सबदु सुणाइआ। आ०ग्रं० पृ० ५०६

८५- जोती जोति मिली मनु मानिआ। आ०ग्रं० पृ० १२४, जोति जोति मिलाए सोई म:३ आ०ग्रं० पृ० १२७५, जोति जोति मिला [illegible] नाद पसाउ। आ०ग्रं० पृ० ७९६

निकट भी मानते हैं,[८६] और निरन्जन ज्योति में व्यापक अविनाश ओर हैं।[८७] ब्रह्म के स्वरूप एवं स्थिति का निरूपण भी भक्त कर सका हुआ है, वह वैदिक ब्रह्म का ही स्वरूप है। निराकार को गुरू नानकदेव ने कई स्थानों पर व्यक्त किया है।[८८] गुरू अर्जुन देव के अनुसार: उस ब्रह्म का स्थिति सर्व है।[८९] निरंकार का स्वरूप अद्भुत, ज्योति है सब जगत में व्याप्त की ज्योति पुष्टि का निरूपण हुआ है। निखिल ब्रह्माण्ड उसी की ज्योति से प्रकाशित है।[९०] अत: वह ब्रह्म प्रत्येक घट में निवास करता है, और सभी जीव समान हैं।[९१] गुरू तेगबहादुर उस ब्रह्म को निरंजन स्वरूप मानते हैं, वह प्रत्येक प्राणी के अन्तर्मन में निवास करता है, उसे अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं।[९२]

निर्गुण की सगुण स्थिति

ईश्वर अपने आप होने वाला (स्वयंभुसंभव) है।[९३] आरंभ में केवल ईश्वर

८६- केवल केवल राम रहे भरपूरि। निकटि कै जाणो नाहि दूरि।। आ०ग्रं०पृ०१६५

८७- जोति जोति मिलि प्रभु जाणआ।। आ०ग्रं०पृ० ४३६ तथा
 निरमल जोति होत जोति जोति मरि पिरु मिलि गये।
 पूरन निरगुण मिले जल थल महु पूरा राम।। जोत जोती जलंपूरन
 भोगा राम। ब्रह्म जोति ब्रह्म गुणाति मधु मधु आणीति। आतम परमातम
 परमातमा प्रभु बिना नहीं जाणा है। आ०ग्रं० पृ० ८४६

८८- जोति जोति मिलाय प्रातमा मधु जोति का राम। आ०ग्रं० पृ०११२४।

८९- पार ब्रह्म है सबनै ठाउ। बिनु बिनु हरि राखे जिस तिन नाउ। आ०ग्रं०७५

९०- जोती जाति मिली दुखु पाप गए, जन नानक प्रभु करतारिआ गेरा।। आ०ग्रं०९७

९१- सभ महि जोति जोति है सोइ। तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ। गुरु साखी जोति परगटु होइ। जो तिसु भावै सु आरती होइ।

 आपन नेरा। आ०ग्रं० पृ० ९७

९२- काहे रे बन खोजन जाई। सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।
 पुहप मधि जिउ बासु बसत है, मुकर माहि जैसे छाई। तैसे ही हरि बसे निरंतरि
 घट ही खोजहु भाई। आ०ग्रं० पृ० ६८४

९३- स्वयंभुसंभव, ऐश्वर्योऽस्मिन्प्रलीनोऽभवत् योगिगणाः से देखि। पुष्टि पूजा।
 श्वेता० अ० ४ मंत्र २६

 नवि न तस्यास्ति पतिरस्ति: स्वयंभु।। श्वे० अ० ४ मं० ८

ही था।[64] [illegible] आनन्द [illegible] ब्रह्म शाश्वत्, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] तथा [illegible] ध्रुवं (CONSTANT) है, [illegible] [illegible] [illegible] जाता है।[65] [illegible] ब्रह्म [illegible], [illegible], [illegible] है।[66] [illegible] [illegible] [illegible] ब्रह्म है, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] तथा [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] प्राणी हैं, जो [illegible] से [illegible] हैं अथवा [illegible] से [illegible] हैं, और [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] ब्रह्म-[illegible] (प्रज्ञान) [illegible] [illegible] हुआ है। [illegible] [illegible] प्रज्ञान है। [illegible] [illegible] [illegible] रखना है। प्रज्ञान [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] प्रज्ञान है।[67] [illegible] [illegible] है, 'मैं [illegible] [illegible] पूर्व [illegible] [illegible] [illegible] का पति हूं, मैं [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] का [illegible] करने वाला और दाता हूं। मुझे [illegible] [illegible], जैसे पिता को सन्तान पुकारती है, पुकारें, मैं [illegible] को [illegible] देने वाले [illegible] के लिये नाना [illegible] के भोजनों का [illegible] पालन के लिये करता हूं।[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] उत्पत्ति का मूल कारण है। [illegible] का [illegible] [illegible] है।[69]

ब्रह्म [illegible]: ही अपना निमित्त और उपादान कारण है, [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] नहीं। न कोई उससे तुल्य है और न [illegible] [illegible] [illegible] अधिक है।

६४- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥ तैत्ति० २-[illegible]-[illegible]।

६५- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]-१-३-१५।

६६- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म- तैत्ति० २-१-१

६७- [illegible] [illegible] प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऐतरेयोपनिषद् -[illegible]-[illegible]-३)

६८- [illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

६९- [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुरवः [illegible] [illegible]॥४॥

ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ४८ मंत्र १-५

[illegible] जिसमें [illegible], [illegible] किया है। [illegible] है।[100] [illegible] है [illegible] परन्तु [illegible] -गुण्ण [illegible] है। [illegible] नहीं परन्तु [illegible] है। [illegible] नहीं परन्तु, [illegible] देखता है। [illegible] नहीं तथापि [illegible] सुनता है। [illegible] नहीं परन्तु [illegible] जानता है और उसको यद्यपि [illegible] जानने वाला कोई [illegible] नहीं। [illegible], [illegible] पूर्ण होने से [illegible] पुरुष कहते हैं।[101] [illegible] परम-पुरुष पूर्ण-ब्रह्म है, और [illegible] प्रतिबिम्बित ब्रह्म [illegible] पूर्ण है। पूर्ण (प्रतिबिम्बित ब्रह्म) पूर्ण (परम ब्रह्म) से निकलता है। (पुनः [illegible]) पूर्ण से पूर्ण निकालने से बाकी पूर्ण ([illegible] ब्रह्म) ही [illegible] है।[102] [illegible] है। [illegible] भय से पवन [illegible] है, [illegible] सूर्य [illegible] होता है, [illegible] अग्नि और इन्द्र हैं, मृत्यु भी [illegible] अपना काम करती है।[103]

[illegible] पूर्व [illegible] वैदिक एवं औपनिषदिक विचारों का [illegible] प्रस्तुत करें, ऊपर से वैदिक-औपनिषदिक [illegible] विचार का [illegible] गुरु नानक देव तथा उनके अनुयायियों द्वारा किया गया, उसे प्रस्तुत [illegible] करने का प्रयत्न किया जायेगा। गुरु नानक देव जी [illegible] हैं: [illegible] भय से पवन [illegible] वेगों से [illegible] है। उसी के भय से [illegible] नदियाँ [illegible] हैं। [illegible] भय से अग्नि [illegible] करता है। [illegible] के भय से धरती भारी बोझ को उठाए हुए है। [illegible] के भय से [illegible] जल को धारण किये फिरते हैं। [illegible] धर्मराज भी [illegible] भय के नीचे है। [illegible]

100- न [illegible] स्पर्शं। न [illegible] न [illegible] ।
[illegible] ॥
श्वेता [illegible]- अ० ६, ४०८

101- अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः स वेत्ति
वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥ श्वेताश्वतर-३-१९

102- ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय
पूर्णमेवावशिष्यते। बृहदारण्यक उपनिषद् ५-१-१।

103- भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च।
मृत्युर्धावति पंचम इति। तैत्ति० २-८-१

[illegible] में हैं क्या [illegible] क्यों [illegible]। [illegible] करता नहीं। [illegible], गुरु [illegible] में हैं। [illegible] हुआ है। [illegible], [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] नानक। [illegible] निरंकार, [illegible], [illegible] है।[104] [illegible] पुण्यहद [illegible] गुरु नानक [illegible] थे। [illegible] हैं, [illegible] है, [illegible] जाता है; [illegible], [illegible] को [illegible], मैं सब [illegible] हैं, [illegible] हुआ है। [illegible], सर्व तथा [illegible] पर्वतों दिन [illegible] हैं। पवन, [illegible], [illegible], [illegible] पीठ पर [illegible] हुआ है। वह [illegible] है, [illegible] रहता है। [illegible] रचना [104] [illegible] है, परन्तु [illegible] अपना [illegible] नहीं देता। [illegible] हैं, [illegible] नहीं [illegible] हैं, [illegible] है। [illegible] करोड़ों [illegible] पास [illegible] नहीं है। यदि मुझे [illegible] कहूंगा। [illegible] मेरा [illegible] नहीं। [illegible] के आगे करोड़ों [illegible]

१०४- [illegible] पवणु [illegible]। [illegible]।
[illegible]।
[illegible]। [illegible] राजा [illegible]।
[illegible]।
[illegible]। [illegible]।
[illegible] सूर। [illegible] पूर।
[illegible]। नानक [illegible] निरंकार [illegible]।

[illegible] पृ० ४४४

१०५ [illegible] तूं [illegible]। तूं [illegible] अपार।
तूं [illegible] परस [illegible]। [illegible] है [illegible]।
तूं [illegible]। [illegible] न [illegible] न [illegible]।
चांद सूरज और [illegible]। [illegible] दिन [illegible]। (contd)

दीपकों का प्रकाश करते हैं। तैंतीस करोड़ देवता भोजन करते हैं। नव ग्रह के करोड़ों समूह जिसकी सभा में रहते हैं। करोड़ों धर्मराज जिसके प्रतिहार हैं। करोड़ों पवन जिसके चौबारों (मार्गों दिशाओं) में प्रवाहित होते हैं। करोड़ों वासुकि नाग जिसकी शैय्या का विस्तार करते हैं, करोड़ों समुद्र जिसके यहां पानी भरते हैं और अठारह करोड़ पर्वत भी जिसकी रोमावली हैं, करोड़ों कुबेर जिसका भंडार भरते हैं। जिसके लिये करोड़ों लक्ष्मियां शृंगार करती हैं। करोड़ों पाप पुण्य का स्मरण करने वाले करोड़ों इन्द्र जिस की सेवा करते हैं। जिसके प्रतिहारियों की संख्या छप्पन करोड़ है। नगर नगर में जिस की प्रजा है। जिस गोपाल की सेवा में करोड़ों कलाएं गुप्त-वेषी होकर अव्यवस्थित रूप में मार्गों में जुटी हुई हैं। जिस के दरबार में करोड़ों संसार स्थित हैं तथा करोड़ों गंधर्व जय जय कार करते हैं। करोड़ों विद्याएं जिसके समस्त गुणों का गान करती हैं, फिर भी उस परब्रह्म का अन्त नहीं पाती हैं। बावन करोड़ जिसकी रोमावली है, जिसने रावण की सेना को कूटा था। जिसका गुणगान सहस्र करोड़ भांति से पुराण करते हैं, जिस ने दुर्योधन का मर्दन किया, करोड़ों कामदेव जिसके अणुमात्र के समान हैं, जिसके ध्यान मात्र से हृदय के सब भावनाएं धो जाती हैं; उस सारंगपाणि (परमात्मा) से कबीर जी भक्तिदान की याचना करते हैं।[१०८] यहां कल्पित ...... संख्याएं लेकर कबीर जी ने उस प्रभु के रूप में जितने नक्षत्रों तथा देवी देवताओं को बताया है जिनकी पृथक् पृथक् कल्पना करके लोग उनकी पूजा करते हैं। परन्तु कबीर जी ऐसे एक भगवान् को मानकर उससे अभयपद की याचना करते हैं। इस विचारधारा ने सन्त-मत की साधना-पद्धति को विशेष रूप से प्रभावित किया।

गीता तथा भगवान के गुण

अर्जुन भगवान् से कहते हैं, 'निस्संदेह आप अपने आप को आप ही जानते हैं, हे पुरुषोत्तम! सर्वभूतों के स्रष्टा, सब भूतों के देव, देवों के देव, आप जगत्-पति हैं।[१०९] सिद्धों के ग्रन्थों में सब जगत् स्वरूप कह चुके हैं। और जगत् का कारण तथा सर्वनियंता मान चुके हैं। गोरखनाथ कहते हैं, 'उस संसार के मूल, जिसका ओंकार रूप

पानी पवन अगिनि और माटी। सब की पीठ तोरि है साटि। पद्मावत-५०७, पृ: ३५५.

१०८- सन्त कबीर आ०प्र० पृ० ११६

१०९- स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम। भूतभावन भूतेश देव देव जगत्पते।

गीता १५-१०।

मूल मंत्र है, जो सारी सृष्टि की धारा चुकी है। ओंकार सारे संसार में व्यापक है। ओंकार नाभि (स्वाधिष्ठान) में और हृदय अनाहत षोडश या आदश कमल चक्र में निवास करता है। ओंकार का देवता है ओंकार ही गुरु। ओंकार को जपे बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होता है।[१०८] भगवान् के इन गुणों का स्पष्टीकरण गीता में और भी अधिक सम्यक् रूप से हुआ है। भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन! जो सब भूतों का बीज है, वह मैं ही हूं, कोई भी चर अथवा अचर मेरे बगैर कोई हो नहीं सकता।[१०९] सर्गों में मैं उनका आदि, मध्य तथा अन्त हूं।[११०] आदि ग्रंथ के संत कवि नामदेव जी भैरउ राग में सुंदर शिव का सजीव वर्णन बताते हैं, वह तीन लोक में फिरता है, आकाश उसकी टोपी है, सप्तपाताल उसकी खड़ावें हैं। सारा संसार उस का मन्दिर है।[१११] मलार राग में नाम देव जी कहते हैं : उस गोपाल राय ठाकुर निरंजन की सेवा करो, जिसके घर दिशाओं का वितान है तथा भुवन चित्रकारी से सुसज्जित है। जिसके द्वार कुंवारी लक्ष्मी है, चांद सूर्य जिसके दीपक हैं, सारा संसार भंडारी है, श्री गुरु जिसका कोटपाल है। वह ऐसा राजा नरहरि है। (आगे चलकर समस्त संसार को उस के आगे नाचता दिखाया है) ईश्वर (शिव) पाप, पुण्य, चित्रगुप्त, अप्सरायें, गण-गंधर्व, सूर्य, बासुक, अठारह भार वनस्पति आदि सब उसके आदेश (हुकम) से नाचते हैं। ध्रुव प्रह्लाद, अंबरीष, नारद सिद्ध बुद्ध नाथ सब उसके सेवक हैं।[११२]

कबीर का राजा-राम निराकार, तरन-तारन राम-राये है।[११३] वह संकट में नहीं पड़ता, योनियों में नहीं आता, उसका नाम निरंजन है। उसका माई बाप नहीं।[११४] वह परमात्मा सृष्टि का कर्ता है। प्रथम उसने ज्योतिस्वरूप अपने आप का सृजन किया। तत् पश्चात् प्रकृति से सब मनुष्य बने।[११५]

१०८- ओंकार आदि आखु मूल मंत्र सारा, ओंकार व्यापीले सकल संसारा।
ओंकार नाभि हृदै देव गुर सोई। ओंकार साधे बिना सिधि न होई।
गोरख बाणी पृ० ९८

१०९- यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन। न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।
गीता १०-३९

११०- सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।। गीता १०-३२

१११- आ० ग्रं० पृ० ११६७

गुरु नानक देव जी अकाल पुरुष के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं: वह ओंकार स्वरूप है, सत्य नामी है, कर्तापुरुष है, निर्भय है, निर्वैर है, अकाल मूर्ति है। अयोनि है तथा स्वयंभू होता हुआ गुरु कृपा द्वारा जाना जा सकता है।[116] आदि ग्रंथ में ब्रह्म की उस अवस्था को निर्गुण स्वरूप कहा है जिसमें वह शून्यावस्था में स्थित था, तथा जिस अवस्था में उसके सगुण स्वरूप द्वारा किया गया समस्त सृष्टि रचना के आकारों का विलय होगा। परन्तु उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं वाला सर्वशक्तिमान् ब्रह्म निर्गुण से सगुण अवस्था में कार्य किया करता है।[117] वह ब्रह्म उपनिषदों का अपर-ब्रह्म है। जो सगुण ब्रह्म है।[118] यही ब्रह्म नित्य स्वरूप एवं सत्य स्वरूप है। और सृष्टि का रचयिता एवं सर्व-शक्तिमान है।[119] वह कीट को सम्राट एवं सेनाओं को भस्म कर सकता है।[120]

११२- आ०ग्रं० पृ० १२९२।

११३- राजा राम तू ऐसा निरभउ तरन तारन राम राइआ। आ०ग्रं० पृ० ७२

११४- कोटि नाम जा के ठौर नाही ताहि नाम निरंजन जाको रे।
कबीर को सुआमी ऐसा ठाकुर जा कै माइ न बापो रे। आ०ग्रं० पृ०७७०

११५- सचि कहउ सुरु ... कुदरति ... दा बंदे।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे। लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिकु खलक, खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठांई।। आ०ग्रं० पृ० १३४

११६- १ओं सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनि
सैभं गुर प्रसादि। आ०ग्रं० पृ० १

११७-सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ। सहस मूरति नना एकु तोही।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही।

म:१, आ०ग्रं० पृ० १३

११८- The Upanisadas speak of Para Brahman and Apara Brahman. The former is higher Brahman. The latter is lower Brahman. The former is indeterminate, unconditional and devoid of attributes (nirguna). The latter is determinate, conditioned and endowed with attributes (saguna). The former is unqualified and incomprehensible. The latter is qualified and comprehensible. The former is transcendent and non-phenomenal (nisprapanca). The latter is immanent in the phenomenal world (saprapanca). The former is the transcendental Being (sat) Consciousness (cit) and Bliss (Ananda) which constitute its essence. The latter is the infinite eternal, omnipresent, omniscient, and omnipotent Creator, preserver and destroyer of the Universe, the moral governor and the Lord of the Law of Karma.
- The Foundation of Hinduism p. ...

गुरु अंगद देव जी कहते हैं, कि यह संसार उस सत्यस्वरूप का कोठरा है, और वह इसमें निवासित है।[119] गुरु अमर दास जी कहते हैं: वह परमात्मा राम अगोचर है। उसका रूप किसी को नहीं मिला। वह अपने को स्वयं ही जानता है, जीव जन्तु भ्रमित होते फिर रहे हैं। उस प्रभु का अन्त कोई कैसे पा सकता है? उसका वर्णन स्वयं प्रभु ही कर सकता है, जिसने इस संसार की सृष्टि की है।[122] गुरु राम दास जी ने गोविंद को [illegible] राम, अगोचर आदि निरंजन तथा निरंकार बताते हैं। उसकी गति अनिर्वचनीय है। उसकी महिमा अगाध है। वह अगम अपार तथा निरंकार है। वह अपने आप को आप ही जानने वाला है। ये सब जीव जन्तु बेचारे तुच्छ हैं और उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। वह आनन्दस्वरूप राम, अबिगत, अदृष्ट, अलख निरंजन, तथा गुण-निधान है। वह सुजान-पुरुष है, उस जैसा और कोई नहीं। स्वयं उसका [illegible] करता है, जो चाहे करता है।[123] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं : मैं ने सारे [illegible] को खोजकर देखा है। [illegible] के पश्चात् [illegible] ज्ञान मुझे

११९- [illegible] सदा [illegible], [illegible]।
[illegible] न [illegible] रचना [illegible]।
[illegible] हरि हरि [illegible]।
हरि हरि [illegible]। आ०ग्रं० पृ०[illegible]
१२०- [illegible] देव [illegible] सुजाणा। पृ० [illegible] आदि ग्रंथ।
१२१ आ०ग्रं० पृ० ४६३ म: २
१२२- राम अगोचर तेरा अन्त न पाइआ।
[illegible] न पा आ [illigible] तेरा [illegible] आप तू जाणहि।
[illegible] खंड तेरा [illegible]।
[illegible] तू है [illegible]। [illegible] सदा [illegible]
है तेरा अंत न पाइआ। आ०ग्रं० पृ० ६१८
१२३- [illegible] गोविंदु राम अगोचर आदि निरंजन [illegible]।
[illegible] गोविंदु [illegible]।
[illegible] अंत [illegible] न पाणी।xxx
[illegible] अगोचर [illegible]।
सदा आनंद [illegible]। हरि हरि प्रभु [illegible]
[illegible] न [illegible] सुजान [illegible]।। (contd).

ो नहीं मिला। वह बहुत कुछ अनंत, अगाह एवं इतना ऊंचा है कि उस तक पहुंच कठिन है।[124] वह सर्वाभिमान् है।[125] गुरु तेग बहादुर जी कहते हैं कि ब्रह्म की गति को कोई नहीं जान सकता। तपस्वी योगी तथा यति और बहुत से ज्ञानवान पुरुष हार कर थक गए। वह ब्रह्म एक क्षण में राव को रंक और रंक को राव कर सकता है, खाली को भर सकता है और भरे को खाली कर सकता है।[126]

ब्रह्म के जिस स्वरूप का आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने निरूपण किया है, वह सर्वथा औपनिषदिक है। वह ब्रह्म सर्वव्यापक, जगत्-कर्ता और सदैव समस्त जीवों के घट घट में निवसित है। उसका वह स्वरूप नेत्रादि से ग्रहण करने योग्य नहीं है। जो इस हृदय-स्थित परमात्मा को शुद्धबुद्धि से इस प्रकार जान लेते हैं, वे ब्रह्मरूप हो उसी में लीन होकर अमर हो जाते हैं।

जीवब्रह्म-जीवात्मा

आत्मा का अस्तित्व उपनिषदों के अध्यात्मवाद का आधार है।[127] कठोपनिषद् के अनुसार यह जीवात्मा अजन्मा है, तथा इसका प्रादुर्भाव किसी वस्तु से नहीं हुआ। शरीर के मर जाने पर इस आत्मा को कोई हानि नहीं पहुंचती।[128] यह आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, महान से भी महान् है, और घट घट में निवसित है। निष्काम भक्त ही इस आत्मा की महिमा का आनंद इन्द्रियों

पुरख सुजान तूं परधान तुधु जेवड अवरु न कोई।
तेरा सबदु सभु तूं है वरतेहि तूं आपे करहि सु होई। म:४ आ०ग्र०पृ०४४८

१२४- मै देखिओरी ऊंचा मोहनु सभ ते ऊचा। आन न समसरि कोऊ लागै, ढूढि रहे हम मूचा। बहु बेअंत अति बडो गाहरो थाह नही अगहूचा। तोलि न तुलीऐ मोलि न मुलीऐ कत पाईऐ मन रूचा। म:५ आ०ग्र०पृ०५३४

१२५- करण कारण समरथ प्रभु जो करे सु होगी। आ०ग्र० पृ० ७०६

१२६- हरि की गति नहि कोऊ जानै। जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोक सिआने।१। रहाउ।। छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक करि डारे। रीते भरे भरे सखनावै यह ता को बिवहारो।। अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा। ... निरंजन जिह रामु जगु भरमावहो। आ०ग्र०पृ० ५३७

१२७- उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आत्मा है। संहिता से लेकर आरण्यक पर्यन्त जो ब्रह्म आत्मा से भिन्न रूप में प्रतिपादित है, वह (contd).

से प्रत्यक्ष(oore ity) से प्राप्त होता है और इस प्रकार का चिन्तन मुक्त हो जाता है।[129] यही आत्मा सभी देवों में ब्रह्म देव है, तथा स्थावर और जंगम जो कुछ भी इस जगत् में है सभी आत्मा ही है। यही आत्मा से सृष्टि होती है, इसी में सभी पदार्थ स्थित हैं तथा अन्त में इसी में लीन हो जाते हैं।[130] इस जीव की उत्पत्ति इसी आत्मा-ब्रह्म से हुई, इसी कारण वह जीव-आत्मा है। जिस प्रकार मनुष्य की छाया उसके शरीर के कारण दिखाई देती है, इसी प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा का मूल ब्रह्म है। मन के कर्मों के अनुसार उस शरीर में इस का प्रवेश होता है।[131]

गीता और अध्यात्म

यह आत्मा कभी जन्म नहीं लेता, न कभी मरता है। एक बार होकर फिर इसका अन्त नहीं होता। यह अजन्मा है, नित्य है। शाश्वत है, पुराण है। शरीर के नष्ट होने से यह नष्ट नहीं होता।[132] आत्मा का यह स्वरूप कठोपनिषद् से मिलता है।[133] गीता में आगे कहा है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये धारण कर लेता है, उस प्रकार शरीरस्थ आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर में जाता है।[134] अस्तु इस आत्मा

उपनिषद में इसे अभिन्न माना गया है।(बृहदारण्यक-२-५-१९) से भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र- पृ०५७।

(अयम् आत्मा ब्रह्म-माण्डूक्योपनिषद्२-२-४

१२८- न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। कठो० १-२-१८

१२९- अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तम क्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।कठो०१-२-२०।

१३०- ऐतरेय आरण्यक में आत्मा के स्वरूप का पूर्ण परिचय दे दिया गया है। आत्मा से ही लोकों की सृष्टि बताई गई। बाद में चिद् रूप पुरुष या ब्रह्म के नाम इस आत्मा को अभिन्न ही कहा गया है।

भारतीय दर्शन पृ० ४५

१३१- आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनो कृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे। प्रश्नोपनिषद् ३-३

१३२- न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। गीता -२०-२

को छेद नहीं सकते और अग्नि इसे जलाने में असमर्थ है। पानी इसे गीला नहीं कर सकता, तथा वायु इसे सुखा नहीं सकती।[135]

परवर्ती सिद्धों मुनियों द्वारा आत्मा का प्रतिपादित स्वरूप

सिद्ध तिलोपाद कहते हैं: मैं भी शून्य हूं, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है, अतः शुद्ध निर्मल सहजस्वरूप है, न वहां पाप है न पुण्य।[136] वे भी अपने आप को निरंजन कहते हैं: मैं जगत हूं, मैं बुद्ध हूं, और मैं ही निरंजन हूं। मैं ही मानसिक अकर्ता हूं, और भव का भंजन करने वाला भी मैं ही हूं।[137] आत्मा का यह स्वरूप वैदिक ब्राह्मण से अक्षरशः मिलता है। यही आत्म-ज्ञान बौद्ध-सिद्ध-साधना-पद्धति का लक्ष्य है। आत्म-ज्ञान के बिना किसी को शिष्य बनाना ठीक नहीं कहा। ऐसा सिद्ध सरहपाद का विचार है।[138]

जैन मुनि रामसिंह आत्मा को परमात्मा-स्वरूप मानते हैं। वे कहते हैं: हे योगी! इस देह के देवालय में शक्तियों से सम्पन्न जो देव है, वह शक्ति संयुक्त शिव कौन है? (तू) इस भेद की खोज कर।[139] आगे चल कर वे कहते हैं, कि इस शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं, अतः परम-तत्त्व से जिस ने अपने देह को पृथक् नहीं जाना, वह अंधा दूसरे अन्धों को कैसे रास्ता दिखा सकता है?[140]

१३३- छान्दो० ६-[illegible]-१८

१३४- वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।२-२२ गीता

१३५- नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। २३-२ गीता।

१३६- हउ सुण [illegible] सुण तिहुअण सुण। णि[illegible] ण पाव ण पुण।
संत सुधासार पृ० ११

१३७- हउ सुद्ध हउ बुद्ध हउ णिरंजण। [illegible] भवभंजणा।। ४-पृ०६-[illegible]।

१३८- जाव ण [illegible] ताव ण सिस्स [illegible]। पृ० ३ वही।

१३९- देहा देवलि जो वसइ सत्तिहिं सहियउ देव। को तहिं जोइय सत्तिसिउ
सिग्घु गवेसहि भेउ।।[illegible]।। वही पृ० २०

१४०- [illegible] देहिं ण [illegible] [illegible]।
[illegible] पृ० [illegible]

आत्मा [illegible] उ[illegible]त्ता [illegible] चिंतन का [illegible] मान्यता [illegible]। फिर [illegible] आँ न करते। गुरु [illegible] कहते हैं: आत्मा सर्वोत्तम देवता है। [illegible] गुरु है, [illegible] परं[illegible] है। [illegible] शरीर के भीतर है।[141]

आदि ग्रंथ में आत्मा का स्वरूप

योगी [illegible] कहते हैं, [illegible] परमात्मा शरीर [illegible] में है। [illegible] है। वह [illegible] है, [illegible] शरीरस्थ आत्मा [illegible] स्वरूप है।[142] [illegible] शरीरों में [illegible] है। [illegible] कैसे [illegible] है?[143] नामदेव [illegible] कहते हैं: [illegible] में [illegible] है। [illegible] सर्व-नियंता है।[144] कबीर भी कहते हैं: [illegible] पुरुष [illegible] हैं।[145] [illegible] परमात्मा [illegible] शरीर में [illegible] है।[146] रविदास [illegible] आत्मा [illegible] मानते हैं। [illegible] सोना और [illegible]।[147] [illegible] कहते हैं कि आत्मा-[illegible] हुआ है, [illegible] मधुर पदार्थ प्रभु का नाम है।[148] धन्ना [illegible] पुरुष[illegible]-स्वरूप-[illegible] में [illegible] मानते हैं।[149] गुरु नानक देव जी की वाणी में आत्मा [illegible] में वर्णित [illegible] प्रतिध्वनि [illegible]: [illegible] मिलता [illegible] है। इसमें [illegible] आत्मा [illegible] है, [illegible] है, [illegible]। यह आत्मा शरीर [illegible] है [illegible], कैसे [illegible] है, [illegible] आत्मा अनादि है।[150]

१४१- [illegible] आत्मा [illegible] में [illegible] को न [illegible]णों [illegible]।।
[illegible]वाणी पृ० ६४

१४२- [illegible] में गुरु [illegible]। [illegible] अकार [illegible]। [illegible] रहिता [illegible]। आ०ग्रं० पृ० ६५७

१४३- [illegible] राम [illegible], [illegible] है। आ०ग्रं०पृ०९[illegible]

१४४- [illegible] आ०ग्रं० पृ० १३५०

१४५- [illegible] सुभाने। आ०ग्रं० पृ० १३४६।

१४६- निपटि [illegible] दूरि [illegible]।। आ०ग्रं० पृ० ३४१

१४७- [illegible] कैसा। [illegible] तरंग जैसा। आ०ग्रं०पृ०९३

१४८- [illegible] नाम [illegible] निरगुन[illegible] पुष्प [illegible]। [illegible] राखिआ [illegible] न [illegible]।। आ०ग्रं० पृ० ४८६

गुरु अमरदास जी इस जीव में स्थित आत्मा को ज्योतिस्वरूप कहते हैं और उपदेश देते हैं कि इसे अपने मूल को पहचान करनी चाहिए।[151] गुरु रामदास जी कहते हैं: कि इस शरीर में उसी एक प्रभु का निवास है।[152] वह सच्चा साहिब प्रत्येक शरीर में है इसलिये झूठा किसे कहें? सब उसी से जीव हैं, और उसी में लीन हो जाएंगे।[153] गुरु अर्जुनदेव जी इस आत्मा को हरि का रूप कहते हैं। न यह बूढ़ा होता है, न यह बचपन में आता है। न इसे दुःख ही सताता है, न यह विनाश को ही प्राप्त होता है। यह न उष्णता को मानता है, न शीतलता से प्रभावित होता है और न इसका कोई मित्र ही है न शत्रु। यह हर्ष-शोकातीत है। सब कुछ इसका है, जिसे यह करने योग्य है। न इसकी कोई माता है न पिता है। यह अपरंपर रूप है। पाप तथा पुण्य से निर्लेप है। सदैव घट घट में जागृत है। त्रिगुणी माया भी इसी अविद्या के कारण उत्पन्न हुई है। अज्ञानता वश भक्त माया इसी की छाया है। यह जीवात्मा अछेद अभेद, एवं दयालु है। इस की गति का कुछ पता नहीं चलता। इस कारण वे इस पर अपना बलिदान देने को तत्पर हैं।[154]

१४९- पूरन परमानंद मनोहर समझि देखु मन माही। आ०ग्र० पृ० ४८८

१५०- कथता बकता सुनता सोई। आपु बीचारे सु गिआनी होई। देही माटी बोलै पउणु। बुझु रे गिआनी मूआ है कउणु। मूई सुरति बादु अहंकारु। ओहु न मूआ जो देखणहारु। आ०ग्र०पृ० १५२

१५१- मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।। आ०ग्र० पृ० ४४१।

१५२- एको रवि रहिआ घट अंतरि सुणि बोलहु अंम्रित बैना। पृ० ३६[illegible] आ०ग्र०

१५३- साचा साहिबु एकु तू मेरे साहिबा तेरा कीआ सचु सभु होइ।
झूठा किस नो आखीऐ साहिबा दूजा नाही कोइ।
सभना विचि तू वरतदा साहिबा सभि तुझहि धिआवहि दिनु राति।
सभि को तुझ ही विचि है मेरे साहिबा तुझ ते बाहरि कोई नाहि।
सभि जीअ तेरे तू सभस दा मेरे साहिबा सभि तुझ ही माहि समाहि।।
आसा म:४, पृ० ६७०

१५४- अचरज कथा महा अनूप। प्रातमा पारब्रह्म का रूप।
ना इहु बूढा ना इहु बाला। इसु दूखु नही जम जाला।
ना इहु बिनसै ना इहु जाइ। आदि जुगादी रहिआ समाइ।

यह कठोपनिषदिक विचार की प्रतिध्वनि है।[155] गुरु तेग बहादुर जी कहते हैं: घट घट में उसी हरि का निवास है, इस तथ्य को संतों ने पुकार पुकार कर कहा है।[156] यह शरीर तो मिथ्या है परन्तु इस में जो (आत्मा) राम बसता है, उसे सत्य स्वरूप मानो।[157]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्म के पूर्ण और अपूर्ण ये दो रूप हैं और ब्रह्म अपूर्ण है और परमात्मा पूर्ण है। वही परमात्मा अविद्या के कारण बन्धन में पड़कर जीवात्मा कहलाता है; पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार सुख और दुःख को भोगने के लिये जगत् में अवतरित होता है, और जन्म मरण से युक्त रहता है। जीव को संसार में अपने पूर्व कर्मों के अनुकूल नया शरीर प्राप्त होता है। इस शरीर के छोड़ने को मरण कहते हैं। परन्तु आत्मा शरीर से भिन्न होता हुआ भी अपने किये कर्मों के अनुसार जन्म धारण करता है, या आत्मज्ञानी होने की दशा में अपने कर्मों के प्रभाव से छूटकर अपने अपूर्ण ब्रह्म रूप में स्थित हो कर जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

प्रकृति (महतत्व)

परमात्मा तो सृष्टि का कर्त्ता, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है। जीवात्मा भी उसी का रूप है। पर वह विकारों तथा प्रभावों से रहित है। दुःख सुख से प्रभावित नहीं होता। दुःख सुख से प्रभावित होने वाला जीव है जो अपने मन के भावों के अनुसार दुःख सुख को प्राप्त होता है। वास्तव में सुख-दुःख कोई वस्तु नहीं, इस पर सापेक्षता पक्ष के अध्याय में विचार किया गया है। जीव विकृतों से निर्मित है। आत्मा ज्योतिस्वरूप है। ऋग्वेद में लिखा है: अनादि काल से एक साथ रहने वाले परस्पर मैत्री भाव से ईश्वर (आत्मा) और जीवस्वरूप दो पक्षी, प्रकृति रूप

न इसु मन्तु नहीं इसु सीतु। न इसु सुखमन ना इसु मीतु। ना इसु जनम नहीं इसु जांतु। सदु दिड़ु मरता नहु मरै सेतु। पाप पुंन का लेपु न लागै। घट घट अंतरि सद ही जागै। तीनि गुणा का सकल उपाइआ। माइआ ताकी है छाइआ। अछल अछेद अभेद दइआल। दीन दइआल सदा किरपाल। ताकी गति मिति कछू न पाइ।। नानक ताकै बलि बलि जाइ। आ०ग्र०पृ०८६८-६६

१५५- कठो० २-२-१८

१५६- घट घट मैं हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि। म:६ आ०ग्र०पृ०१४२७

वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उन दोनों में से एक (जीव) सुखदुखात्मक कर्म-फल को खाता है, दूसरा (परमात्मा) फल न खाता हुआ केवल साक्षी रूप से देखता है।[158]

आदि ग्रंथ में गुरु नानक देव जी ने इस विचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है: सांसारिक शरीर रूप (प्रकृति) तरुवर पर जीव रूपी पक्षी अनेक होकर निवास करते हैं, मन में पैदा हुए मोहपाश वश होकर कोई सुख तथा कोई दुःख का अनुभव करता है। सायंकाल एवं प्रातःकाल ये आकाश को देख रहे हैं। अपने कर्मों के अनुसार ये दसों दिशाओं में घूमते हैं, यदि पुण्य-संयोगवश किसी साधु पुरुष से भेंट हो जाये तो सब को सत्यरूप प्रभु की प्राप्ति का सुख मिल सकता है।[159] दसों दिशाओं में भ्रमण के कारण ही दुःख होता है। यदि उस तरुवर पर स्थित परमात्मा की पहचान हो जाये तो दुःख का कारण समाप्त हो जाता है। नानक बोलते हैं: मैं पक्षी हूं, जो वृक्ष (तरुवर) पर बैठा हूं। वृक्ष पर ही परमात्मा है, परन्तु मन्दभाग्य-वश उस के दर्शन नहीं होते।[160] इस तरुवर के दृष्टांत को और स्पष्ट करते कबीर जी कहते हैं: एक एक शरीर उस बड़े वृक्ष की डाली ही है जिस में यह जीव स्थित है। इस शरीर में आत्मा एवं परमात्मा का ही रूप है। इसी प्रकार शरीर तरुवर की अनेक शाखायें (नाड़ियां) हैं। रस से भरे हुए पुष्प पत्र (चक्र) हैं। यह तो अमृत रस से भरा हुआ सरोवर है। जिसे पूर्ण रूप देने वाला अकेला एक हरि है। इस प्रकार उस हरि (राजा राम) की कहानी का पता चलता है कि उसने इस शरीर के अन्तर ही अपनी ज्योति को द्युतिमान् किया है। जिसे कोई विरला पुरुष ही जान सका है। इस तरुवर के

१५७- साधो सहजु सुनु [illegible] जानो। [illegible] रासु [illegible] साखी [illegible] पछानो। म: ६, आ०ग्र०पृ० ११८६
'Brahman or the Atma resides in the [illegible] of the heart'. - The Foundation of Hinduism, page-20.

१५८- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।
ऋग्वेद १-१६४-२०

१५९- तरवर पंखी बहु निसि बासु। सुख दुखीआ मनि मोह विणासु।
साझ बिहाग तकहि आगासु। दह दिसि धावहि करमि लिखिआसु।
साधु मिलै पूरब संजोग। सचि रहसे पूरे हरि लोग। आ०ग्र० पृ० १[illegible]-१३

१६०- तूं नानक सउ पंखी आहि। [illegible] तेरो दरसनु नाहि। आ०ग्र०पृ०३२३

कमलों (चक्रों) से रस में अनुरक्त एक भ्रमर (जीवात्मा) है, जिसने पुष्प रूप में स्थित अनाहत चक्र जिसके द्वादश दल हैं, को धारण किया हुआ है। इसके विशुद्ध चक्र, जिसमें षोडश दल हैं, में पवन (प्राणायाम) का संचार होने लगा है। और आकाश में कमल (सहस्रदल कमल) विकसित होने लगा है। सहज शून्य से उत्पन्न कुंड में एक योगी का पौधा (कुंडलिनी) उत्पन्न (पुष्पित) हो गया है। इसने पृथ्वी (मूलाधार चक्र) और आकाश (सहस्रदल कमल) का शोषण कर उन्हें एक कर दिया। कबीर भी कहते हैं कि मैं उसका सेवक हूं, जिसने तरुवर (वृक्ष) को देखा है।[161] मन का अन्यत्र भ्रमण छोड़ कर इस वृक्ष में लीन होना यही इस मिलने की जागृति है। क्योंकि अनन्त [illegible] का प्रतिपाद्य [illegible] की खोज घट में ही करना है। इस शरीर में वह ब्रह्म शिव के साथ ही है।[162] इस वृक्ष में लीन होना ही दुःखातीत अवस्था है।

इस वृक्ष और फल के दृष्टांत को सन्तों ने अपने ढंग से व्यक्त किया है, जैसा कि कबीर के विषय में देख चुके हैं। गुरु अमरदास जी भी फल और वृक्ष का रूपक प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, 'मन रूप फल शरीर रूप वृक्ष पर तभी शोभा देता है, यदि वह सत्यनाम के दानों को गुरु के निर्देशन में चुगता रहे। हरि रस का पान करे और सहजावस्था में स्थित रहे। भ्रमण को छोड़कर हरि नाम में लीन निजघर में निवास करे। यही वह फल शरीर

१६१- तरवरु एकु अनंत डार साखा पुहुपत्र रस भरिआ।

जानी रे जानी राजा राम की कहानी।

अंतरि जोति राम परगासा गुरमुखि बिरलै जानी। रहाउ।।

भवरु एकु पुहप रस बीधा बारह ले उर धरिआ।

सोरह मधे पवनु झकोरिआ आकासे फरु फरिआ।

सहज सुंनि इकु बिरवा उपजिआ धरती जलहरु सोखिआ।

कहि कबीर हउ ता का सेवकु जिनि इहु बिरवा देखिआ। आ०ग्र० पृ० ९७०

१६२- [illegible] भीतरि [illegible] तू की लेखा [illegible] सुमारि। आ०ग्र० पृ०१०२८

सागरों महु महु मिलिआ जाणै। या भीतरि जो राम बसत है ता ते

ताहि पछाणै। आ०ग्र० पृ० १०८६। [illegible] रहिआ समाणि जीउ।

आ०ग्र० पृ० ६९७

सुन्दरतानाा प्रमाण में पड़ता है, जो देख जलता और पुकार करता रहता है। गुरु ने अर्जुन देव का फरमान है कि वृक्ष (प्रकृति) की तीन शाखाओं (रज, तम, सत्व गुणों) से निवृत्त होकर चौथी अवस्था (तुरियावस्था) में वृक्ष के अमृत फल के रसास्वाद अर्थात् प्रभु-मिलन में लीन हो जाता है।[163] गुरु अर्जुन देव जी इस रूपक को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, सब जीव राही-मुसाफिर हैं, जो एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं। वे अनेक बन्धनों में पड़े हुए हैं।[164] एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं: वृक्ष के नीचे सब जीव इकट्ठे हैं। कुछ कड़वा बोलते हैं कुछ मीठा। रात्रि (जीवन) की समाप्ति पर सवेरा होने पर, जैसे जैसे [illegible] आयु की अवधि समाप्त होती है, वे प्रस्थान करते जाते हैं। जो पाप करते हैं, वे अवश्य मारे जाते हैं, क्योंकि यमराज उन्हें पकड़कर मारता है, परन्तु [illegible] अमृत नाम (वृक्ष का अमृत फल) का सत्संगति में प्राप्त करने से यम से छुटकारा मिलता है। अन्यथा कर्मों का हिसाब होगा।[165]

प्रकृति तत्त्व

उपनिषद् में लिखा है: ब्रह्म एक है, प्रकृति तथा जीव अव्यक्त रूप में उसी में सृष्टि रचना से पूर्व स्थित थे। वह सर्वव्यापी देव जगत् कर्ता और सर्वदा समस्त जीवों के हृदय में स्थित है। वह प्रकृति का भोग भाव रखता हुआ फंसाता है

१६३- पंखी बिरख सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ।
हरि रसु पीवै सहजि रहै उडै न आवै जाइ।
निज घरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ।
पंखी बिरख सुहावड़े ऊचौ बहु दिसि जाहि।
जेता चुगहि दुखि घणो जलि बलहि तै बिललाहि।
बिनु गुर महलु न जापई ना अम्रित फल पाहि।
गुरमुखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सुभाइ।
साखा तीनि निवारीआ एक सबदि लिव लाइ।
अम्रित फल हरि एकु है आपे देइ खवाइ।। आ०ग्र० पृ० ६६

१६४- सगल [illegible]रीआ। [illegible] [illegible]। [illegible] पंथहि पराना।
[illegible] [illegible]री आ। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। आ०ग्र०पृ०५३७

और स्वयं परमात्मा न कांपता है और न इसका भेद करता है।[166]

सांख्यदर्शन में ईश्वर सत्ता को स्थान न देते हुए प्रकृति को स्वयंभू, रजस् तथा सत्व गुणों से निर्मित बताया है।[167]

उपनिषदों के अनुसार प्रकृति ब्रह्म का स्थापित है जो गुणों से युक्त है। ब्रह्म सृष्टि की रचना इसी प्रकृति तत्त्व से करता है।[168] उपनिषदों में भी प्रकृति की अनादि सत्ता को स्वीकार किया गया है।[169] इस प्रकृति से जो स्वयं

१६५- [illegible] ते। [illegible] ओतनि [illegible]।

[illegible] उति [illegible] जिउ [illegible] फिरणो [illegible]।

पाप [illegible] करे [illegible] कुंई।

[illegible] पार [illegible] सारे। [illegible] गणीआ। संगति नरकि

न पाही। अंम्रित नाम दान नानक [illegible] गुण गोपाल नित वखाणिआ।

मा० म० पृ० १०२०

१६६- (१) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

श्वेत० अ० ४, मं० ५

(२) एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानाम् हृदये सन्निविष्टः।

श्वेत० ४-१७

(३) The world is real. It existed in an unmanifested condition in Brahman before Creation.
(The Foundation of Hinduism, p-28).

167- The existence of God is not proven. [illegible] Sutra-93
(quoted in A Critical [illegible] of Adi Granth p-[illegible]), and,
"But Sankhya does not believe in God. Prakriti according to it is composed of sattav, rajas and tamas, unborn, eternal, and mutable, but independent of God, who is non-existent.
(The Foundation of Hinduism p-30).

168- Niralamb-Upnishad Bombay, 1925, p-217, quoted in "The Foundation of Hinduism, page 30).

169- It existed in an unmanifest condition in Brahman before Creation. It was made manifest by him. (The Philosophy of the Upnishads-Chapt- , The Foundation of Hinduism p-28)

ब्रह्म में अव्यक्त रूप में विद्यमान था, जिससे सृष्टि की रचना हुई। नाम रूप का कारण भी ब्रह्म है।[170]

गुरु ग्रंथ का विचार प्रकृति के विषय में औपनिषदिक है। आदि ग्रंथ में गुरु नानक देव बोलते हैं कि सृष्टि रचना से पूर्व ब्रह्म शून्य-समाधिस्थ था। शून्य से उसने फिर प्रकृति को उत्पन्न किया।[171] एक अन्य स्थान पर गुरु नानक देव जी कहते हैं, उस स्वयंभू हरि ने अपने आप का सृजन कर, नाम रूपों का सृजन कर, तथा प्रकृति को प्रकट कर स्वयं उसमें स्थायीपूर्वक आसन लगा लिया।[172] उपनिषदों में कहा है: यह जगत् सत्य स्वरूप है, पर ब्रह्म तत्व को व्यक्त रूप में प्रस्तुत करने वाला है। यह उसी से उत्पन्न होता है, उसी द्वारा संभाले जाने के पश्चात् उसी में विलय हो जाता है।[173] गुरु ग्रंथ विचारधारा के व्याख्याकारों ने इस तथ्य की पुष्टि की है। डा० सुरेन्द्र सिंह कोहली लिखते हैं: शिव (पुरुष) और शक्ति (प्रकृति) दोनों परमात्मा ने स्वयं बनाए हैं। शिव शक्ति आपि उपाइ कै करता आपे हुकम वरताए (आनंद: म: ३)[174] वह पुरुष ब्रह्म उस पर ब्रह्म (पुरुषोत्तम) का ही व्यक्त रूप है।[175] डा० तारन सिंह इसी का स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं, पुरुष ब्रह्माण्ड में व्याप्त करता चेतना है, और प्रकृति आकार है, जिसमें चेतना विद्यमान है। परन्तु एक समय गुरु साहब ने ऐसा माना है, जब कोई प्रकृति या ब्रह्मांड नहीं था। उस समय केवल ब्रह्म था। उसमें से उस समय परमात्मा बनने वाला पुरुष और प्रकृति बनने की संभावना विद्यमान थी। वहाँ बरसों साल वह एक शून्यब्रह्म रूप में समाधिस्थ था। उस समय और कुछ नहीं था।[176] ऐसी अवस्था का वर्णन ऋग्वैदिक है। हे मनुष्य! जिस से यह सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण करता एवं प्रलय करता है, जो इस जगत् का स्वामी है, जिस व्यापक में यह सब जगत, उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय को प्राप्त होता है, वह परमात्मा है, उसी को तू जान, और दूसरे को सृष्टि कर्ता मत मान।[177] यह सब जगत्

१७०- Braham is the cause of names and forms or determinate objects.(The foundation of Hinduism page 28).

१७१- सुंन कला अपरंपरि धारी, आपि निरालमु अपर अपारी। आपे कुदरति करि करि देखै सुंनहु सुंनु उपाइदा। आ०ग्रं० पृ० १०३७

१७२- आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ। दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ। आ०ग्रं० पृ० ४६३

सृष्टि के पहले अन्धकारमय रात्रि था, फिर [illegible] सृष्टि [illegible] था [illegible] विद्यमान् था और उसने ही [illegible] सृष्टि की रचना की।[१७८] वेदों में [illegible] अंधकार [illegible] रात्रि का [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है। [illegible] प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन, [illegible] प्रकार सृष्टि रचना [illegible] चक्र चलता रहता है।[१७९] आदि ग्रंथ में सृष्टि रचना [illegible] [illegible] कहा गया है, वहां समस्त जगत् की उत्पत्ति [illegible] [illegible] मानी [illegible] है। [illegible]-[illegible]-[illegible]-प्रभु ने [illegible] से [illegible] को उत्पन्न किया और समस्त [illegible] मंडल [illegible] की उत्पत्ति [illegible] [illegible] से की।[१८०] गुरु नानक देव जी [illegible] लिखते हैं, [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible], चांद-सूर्य, धरती, [illegible], [illegible]-बाणी, चारों वेद, [illegible] पाताल, [illegible]-[illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], देव, दानव, गण-गंधर्व, पांच तत्त्व आदि की रचना हुई।[१८१] यह [illegible] [illegible] प्रभु ही है, जिसमें [illegible] [illegible] [illegible] तथा समस्त जगत् को रचने की [illegible] सर्वशक्तिमान् है। [illegible] में [illegible] है, आकाश, वायु, [illegible], जल, धरती- [illegible], [illegible]-शक्ति तथा मन की उत्पत्ति प्रभु से हुई। नदियां, समुद्र, पर्वत, तथा वनस्पति [illegible] से पैदा हुए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अन्न [illegible] देने [illegible] [illegible] है। देवता, [illegible], पशु, पक्षी भी उसी से हुए। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद उसी से निकले। [illegible] विधि का विधाता [illegible] [illegible] [illegible] है। प्रभु समस्त जगत् का मूल कारण है।[१८२]

१७३- The world is real. It is the expression of the Glory of Brahman. It springs from Him, is sustained by him, and absorbed in him.
(The Foundations of Hinduism p-28).

१७४- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आदि ग्रंथ पृ० [illegible]।

१७५- [illegible] निरंकार पुरख, [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] आ०ग्र० पृ० [illegible]

१७६- गुरु नानक [illegible] [illegible] पृ० [illegible]-[illegible]००, आ०ग्र० पृ० १०३५ से उद्धृत।

१७७- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न। [illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वेद।। ऋग्वेद।।

१७८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।। ऋग्वेद [illegible]-[illegible]-[illegible]।३

१७९- [illegible] [illegible] आदि ग्रंथ पृ० [illegible]

१८०- [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] उपाई [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। (Contd)

यह 'शून्य' जिससे सृष्टि रचना हुई, कुछ नहीं के अर्थों में नहीं प्रयुक्त हुआ। [illegible] शून्य में ब्रह्म तथा जगत् की उत्पत्ति की संभावना सर्वदा विद्यमान् थी।[183] शून्य शब्द का जैन और सिद्धों का है। उन्होंने ने समस्त संसार की उत्पत्ति शून्य से मानी है। [illegible] निगोदाद कहते हैं, सारा संसार का शून्य है। मैं भी शून्य हूं, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है।[184] जैन मुनि राम सिंह भी कहते हैं कि त्रिभुवन भी शून्य है।[185] नाथ संप्रदाय में भी शून्य इसी रूप में ग्रहण किया गया है। नाथ साहित्य में उपलब्ध होता था: 'कर्ता न शून्यम शून्यम न भर्ता, काम भावेन मैला। गगन शिखर में बालक बोले, ताका नाव धरहुंगे कैसा।[186] डा० धर्मवीर भारती गोरख बाणी के इन शब्दों पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं, उपरोक्त पंक्ति में 'कर्ता' तथा 'न भर्ता' वास्तव में द्वितीय श्लोक के 'न कर्ता' तथा 'न च कर्म' और 'न शून्यम्' तथा 'शून्यं' प्रथम श्लोक के 'शून्यं' तथा 'अशून्यं' का प्रतिध्वनि मात्र हैं। प्रथम-शून्य की शून्यवादी व्याख्या एक श्लोक में इस प्रकार की गई है:-

प्रथम: शून्यमिति न वक्तव्यमशून्यमिति वा भवेत्।
उभयम् नोभयम् चैव प्रज्ञप्त्यार्थं तु कथ्यते।[187]

द्वितीय [illegible] या विज्ञान वाद से:

न [illegible] नासान्न तथा न चान्यथा, न जायते व्येति न चावहीयते।
न वर्धते नापि विशुध्यते पुनर्विशुध्यते तत्परमार्थलक्षणम्।[188]

गोरखबाणी: का 'ताका नाव धरहुंगे कैसा।' तो 'प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते' का ही रूपांतर है। किन्तु एक सर्वथा नया भाव है। 'गगन शिखर में बालक बोले'- 'शून्य' के पूर्व वर्णित किसी भी बौद्ध संप्रदाय ने इस रूप में प्रयुक्त नहीं किया।

शून्य ब्रह्मा निज गुरु मेरा उपाय। शून्ये बसे तुम सकल स्वरूप। इस पद विचारे सो इस पूरा सिद्ध निरंजन परम गुरु [illegible]। (यह उपदेश पद पढ़ने योग्य है- शा०ज्ञा० पृ० १०३७-३८

१८१- शा०ज्ञा० पृ० १०३७-३८

१८२- शून्यो निगोदाद [illegible] १-१-७-४ तथा २-१-१-३-६ से दि फाउंडेशन आवभिन्दु- [illegible] पृ० [illegible] पर उद्धृत।

१८३- [illegible] नागार्जुन सिंह के [illegible]- डा० रत्न सिंह पृ० १९६-२००

१८४- [illegible] दुबाहार पृ० [illegible]

[illegible] नाथ साहित्य [illegible] अपना संशोधन है। किन्तु [illegible] संशोधन विरोधी नहीं है, [illegible] में इसके पीछे [illegible] योग परंपरा की एक महत्वपूर्ण दार्शनिक चिन्तना वर्तमान है। [illegible] में [illegible] शुन्य का [illegible] अद्वैत था [illegible] रूप में [illegible] किया गया है। [illegible] और [illegible] भी [illegible] नाद और बिन्दु के रूप में हठयोग तथा तांत्रिक मुद्राओं में [illegible] थे, [illegible] शुद्ध [illegible] ब्रह्म [illegible] रूप [illegible] वाचरण [illegible] जाता था, [illegible] के वाक्यार्थ [illegible] शुद्ध [illegible] प्रक्रिया द्वारा [illegible] की उत्पत्ति [illegible]। [illegible] समकालीन [illegible] ने [illegible] स्वीकार किया था और [illegible] में था। और [illegible] द्वारा [illegible] था। [illegible] प्रकार [illegible] रूप में [illegible] और शुन्य [illegible] और [illegible] में शुन्य [illegible] शुद्ध [illegible] नाद [illegible] मान लिया गया। [illegible] बाद शुन्यता का [illegible] है [illegible] प्रतिपादित में 'शुन्य' तथा 'पूर्ण' [illegible] एक [illegible] [illegible] में व्यक्त हुए हैं:

अन्तः शुन्यो [illegible] शुन्यः [illegible]।
अन्तः पूर्णो [illegible]: पूर्णो पूर्णो [illegible] पूर्णो।[189]

आदि ग्रंथ में प्रवृत्ति

गुरु ग्रंथ साहिब [illegible] शब्दों की व्याख्या [illegible] रूप में [illegible] किया गया है। गुरु नानक देव [illegible] की कथा में 'शुन्य' का नाम [illegible] और [illegible] 'शुन्य' [illegible] है।[190] [illegible] स्थिति को 'शुन्य-[illegible]' [illegible] 'शुन्य' का [illegible] में [illegible] नाद [illegible] में [illegible]

[illegible]- [illegible] शुण्ण [illegible] शुण्ण [illegible] शुण्ण [illegible] शुण्ण।
[illegible] पुराणं [illegible] शुण्ण। [illegible] दोहा-६४ से
[illegible] पृ० ३[illegible] पर [illegible]।

१८६- [illegible] पृ० १

१८७- [illegible] पृ० ३३७

१८८- [illegible] पृ० ३३७

१८९- [illegible] पृ० ३[illegible]

१९०- [illegible] पृ० १०३७

संकेतित करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं:

> सुन समाधि सबै तिह ताता। नानक निरभउ नादु सबद धुनि
> सचु रामै नामि समाइदा।[१६१]

इस पर टिप्पणी करते हुए शब्दार्थ गुरु ग्रंथ साहब के संपादक लिखते हैं: तुरीयापद की प्राप्ति पर आत्मा शून्य में शून्य-समाधिस्थ होगा। वहाँ शब्द की ध्वनि का निर्मल नाद सुनाई देता है।[१६२] इस प्रकार गुरु नानक देव जी ने शून्य को शब्द अथवा नाद का पर्याय भी माना है। नाथ संप्रदाय से ही यह तत्व इन्हाँ तक आया। सृष्टि रचना से पूर्व प्रभु शून्य-समाधिस्थ था। समस्त नाद-तत्व उसी शून्य में लीन था। इसी शून्य को शब्द-रूप अथवा नाद-रूप अवस्था भी कहा है।[१६३] गुरु नानक देव जी कहते हैं: नाद बिंद की सुरति समाइ। सतिगुरु सेवि परमपद पाइ।[१६४] इस पर टिप्पणी करते हुए गुरु ग्रंथ साहिब के संपादक कहते हैं: नाद= शब्द रूप; बिंदु=सूक्ष्म रूप में। इस का तात्पर्य है जब सृष्टि रचना नहीं हुई थी तो प्रभु शब्द-रूप में था।[१६५] नाथ पंथ की भी उस परमपद के स्थान पर अनहद-शब्द का ध्वनित सुनाई देता है।[१६६] इसी शब्द में लीन होकर उस अकुल निरंजन के पास पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार नाद में रत होकर शून्य-समाधिस्थ होकर उस शून्य-तत्व में लीन हो जाते हैं।[१६७] कबीर जी कहते हैं, शरीर मर जाता है, तो जीवात्मा कहाँ जाता है? उत्तर में कहते हैं कि वह जीवात्मा शब्दातीत अनाहद नाद वाली नादरहित शून्यावस्था में लीन हो जाता है।[१६८] इस शून्यावस्था का वर्णन एक अन्य स्थान पर कबीर जी ने स्पष्ट किया है। जैसे समुद्र में नदियाँ और बहा में लहरों का मिलना होता है, उसी प्रकार शून्य (आत्मा) शून्य (प्रभु) में समा कर सहज समाधि लगेगा तथा पवन-रूप हो जायेगा। फिर वहाँ से आना जाना नहीं होगा।[१६९] इस विचार शून्य को शब्दावली में स्थाग-

---

१६१- आ०ग्र० पृ० १०३८ १६२- शब्दार्थ गुरु ग्रंथ पृ० १०३८

१६३- सिद्ध मार्ग तत्व पृ० २३८ १६४- आ०ग्र० पृ० ३५२

१६५- आ०ग्र० पृ० ३५२

१६६- कह [illegible] नाद [illegible] [illegible] नाद बजन्ता। पृ० ६५७ आ०ग्र०

१६७- [illegible] सागर [illegible] साधु के [illegible]।

[illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] समाइआ। आ०ग्र०पृ०६७३

१६८- [illegible] जी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] राता। आ०ग्र०३३१

प्रदीपिका की प्रतिध्वनि है। नाम देव जी इसी प्रकार का विचार को प्रस्तुत करते हैं: अपार जल राशि में घड़े का जल (उस के फूट जाने पर) समा गया।[200] कबीर जी का एक ऐसा ही पद मिलता है, जो आदि ग्रंथ में नहीं, फुटा कुंभ जल जलहिं समाना, यहु तत कथौ गियानी। जायसी भी ऐसा ही विचार प्रस्तुत करते हैं। सुनं समुंद्र का मांहि जल जैसी लहरें उठें। उठि उठि मिटि मिटि जाहिं मुहम्द खोज न पाइयं।[201] इस प्रकार शून्य तत्व से ब्रह्म ने अपने को रचा और शून्य में विद्यमान् अणु-तत्व से जगत की सृष्टि की। उसी शून्य-तत्व में इसका विलय होता है। गुरु अर्जुन देव जी ने उस विचार को हठयोग-प्रदीपिका के शब्दों में ही गुरु ग्रंथ में व्यक्त किया है।[201(क)]

सृष्टि रचना से पूर्व अन्धकार की अवस्था का वर्णन भी ऋग्वेद में किया गया है।[202] उस का आदि ग्रंथ में भी उल्लेख हुआ है। गुरु नानक देव जी कहते हैं, "अरबों खरबों वर्ष अन्धकार था, न उस समय धरती थी न आकाश। न उस समय रैन दिवस ही थे, ब्रह्म उस समय शून्य-समाधिस्थ था।"[203] उन्हों ने उन अरबों खरबों से समय की अवधि को जब कि अन्धकार था, धोर युग का समय बताया है।[204] गुरु अमरदास जी ने भी इस अवधि को धोर युग कहा है।[205]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने सृष्टि रचना को उस परमात्मा का एक खेल बताया है। इस खेल के लिये परमात्मा को बाजीगर और रचना को बाजीगिरि कहा है। रविदास जी कहते हैं, "प्रभु एक खेल है। मुझे इस खेल से प्रेम है, और इस खेल के संचालक से मुझे प्रीति हो गई है"।[206] कबीर जी कहते हैं, "संसार का खेल बाजीगिरी है, ज़रा समझ सोच कर पांसा फेंकना।"[207] सृष्टि रचना इस प्रकार है, जैसे बाजीगर स्वांग बनाकर समूह को आकर्षित करके इकट्ठा कर लेता है, परन्तु तमाशा दिखा कर ज्यों ही वह अपनी प्रांच पसारी को समेटता है, सब लोग बिखर जाते हैं, परन्तु बाजीगर अकेला अपने ही रंग में मस्त दिखाई देता है, वैसे ही बाज़ीगर-परमात्मा करता है।[208]

१९९- आ०ग्रं० कबीर भाग राग पृ० ११०३

२००- जल भीतरि कुंभु समानिआ। आ०ग्रं० पृ० ६५७

२०१- सिख साम्प्रिव्य पृ० ३३८ पर उद्धृत।→

→ २०१(क) जैसे कुंभ उदकि पूरि आनिओ, तब ओहु भिन्न द्रिसटो ॥ कहु नानक कुंभ जलै महि डारिओ, अंभै अंभ मिला ॥ ६॥ ३॥ सारंग म० ५, आ० ग्रं० पृ० १२०३.

२०२- ऋग्वेद १०-१२९-३   २०३- आ०ग्रं० पृ० १०३५

२०४- केते जुग वरते गुबारै। ताड़ी लाई अपर अपारै।

धुंध गुबार तिनै वरताइआ। आ०ग्रं० पृ० १०२६

२०५- धुर धोर गुबार कित की आइआ- आ०ग्रं० पृ० १२८८

गुरु नानक देव जी कहते हैं, यह संसार तो ऐसा है जैसे बहुरूपों को बदलने के लिये कुछ दिनों के लिये किसी रंगीन शरीर वाले शरीर में भेज दिया जाये। जब सब खेल तमाशा करके चला जाता है, तब भी बाजीगर का मोहित खेल तमाशा करके चला जाता है।[२०९] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं: बाजीगर जैसे बाजी का खेल दिखाता है, नाना रूप तथा भेष बदलता है, इसी प्रकार जब उस बाजीगर परमात्मा ने संसार का स्वांग उतार कर सब प्रकार को वापस ठहराया, उस समय वह एक ओंकार था। जब वह खेल को बन्द करता है, तब भी वह अकेला ही रह जाता है। यह सृष्टि रचना कुछ ऐसी ही है। कितने रूप बनते हैं, बिगड़ते हैं, ये कहां से आते हैं, कहां जाते हैं? इस का उत्तर देते हुए वे कहते हैं: जैसे जल से अनेक तरंगें उठती हैं, सोने से अनेक प्रकार के आभूषण बनते हैं, उसी प्रकार बीज का आकार बीजारोपण कर अनेक प्रकार से उन का विस्तार होता है, परन्तु फल पकने पर, उनका उसी बीज (एक ओंकार) में विलय हो जाता है। अर्थात पक कर बीज ही बन जाते हैं।[२१०] सृष्टि रचना का क्रम उपनिषद में बताया गया है, आत्म-ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि उत्पन्न हुआ।[२११] आकाश से सब भूत उत्पन्न होते हैं, आकाश से नाम रूप प्रकट होते हैं।[२१२] इस क्रम को ग्रंथों में कहीं आकाशादि (तैत्ति०) कहीं अग्न्यादि (छान्दोग्य), कहीं जलादि (ऐतरेय), कहीं पुरुष कहीं हिरण्यगर्भ (वेद), कहीं काल (वैशेषिक), कहीं कर्म (मीमांसा), कहीं परमाणु (न्याय), कहीं पुरुषार्थ (योग) कहीं प्रकृति (सांख्य) तथा कहीं ब्रह्म (वेदान्त) विभिन्न रूप से वर्णन किया गया है। २१२(क).

२०६- कहि रविदास बाजी भगु भाई। बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आइ।

आ०ग्र० पृ०४८७

२०७- बाजीगरि संसार कबीरा चेति ढालि पासा। आ०ग्र० ४८२

२०८- बाजीगर डंक बजाई। सभ खलक तमासे आई। बाजीगर स्वांग सकेला। अपने रंगि रवै अकेला। आ०ग्र० पृ० ६५५

२०९- जैसे बाजीगरु दिन सारे। ओहु तमासा धुंधूकार।

बाजी खेलि गए बाजीगर जिउ निसि सुपने भखलाई है। आ०ग्र० पृ० १०२३

२१०- बाजीगर जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।

सांग उतारि थमिओ पासारा। तब

एक एको एकंकारा। कवन रूप द्रिसटिओ बिनासिओ। कतहि गइओ उहु कत ते

आइओ। रहाउ।। जल ते ऊठहि अनिक तरंगा कनिक भूखन कीने बहु रंगा।

बीजु बीजि देखिओ बहु परकारा। फल पाके ते एकंकारा। आ०ग्र० पृ० ७३६

२११- तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुः वायोरग्निः ।। तैत्ति० २-१

२१२- आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता: (छान्दो० ८-१४) सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते। छान्दो० १-९। २१२(क) आर्य सिद्धान्त दर्पण, श्री रामलाल पंजाब पुस्तक भंडार, लाहौर, १९३२, पृ० २४७.

प्रश्नोपनिषद में यह क्रम इस प्रकार है, उसने प्राणों का सृजन किया, प्राणों से श्रद्धा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथ्वी। इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र कर्म लोकों का सृजन किया, तथा लोकों का नाम भी पैदा किया।[213]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने भी सृष्टि रचना के क्रम के विषय में विवेचना की है। कबीर जी कहते हैं: प्रथम एक ब्रह्म (अल्लाह) ही था, उसने प्रकाश (आत्मा) का सृजन किया जिसके फलस्वरूप संसार की सृष्टि हुई और इस सृष्टि में वह स्वयं विद्यमान है।[214] गुरु नानक देव जी भी कहते हैं, उस ब्रह्म ने अपना सृजन स्वयं कर नाम रूप का सृजन किया, फिर प्रकृति का निर्माण कर स्वयं उसमें रमने लगा।[215] गुरु नानक देव जी ने सृष्टि रचना का क्रम भी प्रस्तुत किया है, उस सत्यस्वरूप ब्रह्म से पवन का सृजन हुआ, पवन से जल, और जल से त्रिभुवन की सृष्टि हुई और घट घट में उसी की ज्योति विद्यमान हुई।[216] ब्रह्म ही जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है।[217] यह विचार औपनिषदिक है। सृष्टि का क्रम तथा इसका वर्णन तो अनेक रूपों में हुआ है। आदिग्रंथ में भी इसी क्रम में ले रहा किया है। प्रत्येक कल्प में जहां तक सृष्टि का प्रलय होता है, वहां से ही सृष्टि का क्रम आरंभ होता है। यह बात स्पष्ट है कि पहले एक अव्यक्त रूप था और उसी से व्यक्त रूप में जगत् की सृष्टि हुई है। यह अव्यक्त रूप ही परब्रह्म है और समस्त जगत् उसी से उत्पन्न होता है और अन्त में उसी में लय को प्राप्त करता है, यही उपनिषद् में कहा है:

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[218]

इस प्रकार आदि ग्रंथ में प्राचीन एवं परंपरागत विचारों का समन्वयात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए सृष्टि संबंधी विवेचना की गई है। बौद्ध-शून्य को भी ग्रहण प्रदान करते हुए, इस शून्य से उत्पन्न जगत् को ब्रह्म रूप मानते हैं, ब्रह्म को शून्य मानकर, शून्य से शून्य की उत्पत्ति मानते हैं। यह विचार सर्वथा औपनिषदिक है। जो कि इस विश्वास को भी अभिव्यक्त करते हैं कि यह समस्त जगत निश्चय ही ब्रह्म रूप है। यह उसी से उत्पन्न होने वाला, उसी में लीन होने वाला और उसी में स्थित होने वाला है।

213- प्रश्नो० ६-४।

214- आ०ग्रं० पृ० १३५१।

215- आ०ग्रं० पृ०४६३

216- आ०ग्रं० पृ० १६

217- भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र पृ०६१

माया (त्रिगुणात्मक रचना)

ऊपर परमात्मा के [illegible] साकार (मायावी) रूप का वर्णन किया है, उसी से [illegible] के बाबा माड़ो (माया) की रचना हुई है। इस माया से प्रेम रचना तथा मायावी [illegible] रचना है [illegible] को न समझना माया का [illegible] जाता है।[219]

सृष्टि के आरंभ में अव्यक्त और निर्गुण परब्रह्म [illegible] है। अनादि-नाम-रूपात्मक-सगुण-शक्ति से व्यक्त [illegible] दृश्य-सृष्टि-रूप [illegible] होता है उसी को वेदान्त में माया कहते हैं।[220] प्रकृति अनादि है और सत्व, रज, तम, गुणों की साम्यावस्था है। वह सृष्टि का मूल कारण है। प्रकृति सब पदार्थों का कारण रूप है, और सब पदार्थ सत्व, रजस् तथा तमस् गुण सम्पन्न हैं। प्रकृति माया है। माया ब्रह्म की शक्ति है। वह माया का स्वामी सृष्टि की रचना करता है तथा शरीरों में आत्मा का स्थान लेता है। वह अपनी माया शक्ति से सृष्टि रचना करता है, और अन्त में सृष्टि पदार्थों को हर लेता है, जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से तार निकाल कर जाला बुनती है।[221] मुण्डकोपनिषद् में कहा है, जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला बुनती है, जिस प्रकार पृथ्वी पर वनस्पतियाँ और बूटियाँ उगती हैं, जिस प्रकार जीवित पुरुष के सिर के बाल तथा अन्य शारीरिक केश लोम फूलते हैं, उसी प्रकार अक्षर (ब्रह्म) से विश्व का निर्माण होता है।[222] ब्रह्म सत्, रजस् तमस्, सत्व गुणों से आच्छादित है।[223] ब्रह्म सत्य है माया से आच्छादन की विवेचना करते हुए भगवान् कहते हैं, अज्ञानी अथवा बुद्धिहीन व्यक्ति मुझ अव्यक्त को व्यक्ति रूप में मानते हैं। वे मेरे अव्यय-अनुपम परमपद से अज्ञान हैं।[224] इसी अज्ञान के पर्दे को माया कहा है। सांख्य दर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मक कहा है।

२१८- तैत्तिरीयोपनिषद- ३-१

२१९- [illegible] न जाई [illegible] विधि फन्दा [illegible] पाई। [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] न [illegible] जाई। [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]। ग्रा०ग्र० पृ० २०५

२२०- सगुन निरगुन निरंकार [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] फिर [illegible]। ग्रा०ग्र० पृ० २६०

२२१- Prakrti is one, unborn, eternal and composed of sattav, rajas and tamas. It is the root-cause of the Universe. It is modified into multiplicity of objects, which are th

(cont.)

इन गुणों के योग को ही माया कहा है। माया के पीछे ईश्वर की अधीनता को स्वीकार किया है।[225] गीता में कहा है, 'त्रिगुणात्मक माया के भ्रम जाल से आवृत ईश्वर मैं प्रत्येक व्यक्ति के लिये प्रकाश में नहीं आता।[226] ये मूढ़ लोग मेरे अज-अव्यय रूप को नहीं जानते।' गीता के इस वाक्य पर टिप्पणी करते हुए स्वामी स्वरूपानंद जी कहते हैं, 'यह योगमाया द्वारा भ्रम समावृत है, और इसके जानने के लिये दूसरों की बुद्धि भी इस के आवरण से समावृत है। परन्तु प्रभु ज्ञान का [illegible] प्रभाव नहीं, क्योंकि वह उसकी अपनी शक्ति है, वही उसका नियंता है, जैसे मायावी द्वारा प्रसारित माया प्रकट की जाने वाली माया का भ्रम मायावी के अपने ज्ञान को भ्रमित नहीं करता। वह भ्रम दूसरे जीवों को भ्रमित करता है, प्रभु ज्ञान को भ्रमित नहीं कर पाता।'[227] इसी विचार पर टिप्पणी करते हुए [illegible] लिखते हैं, 'परब्रह्म की एक [illegible] पर निर्भर माया का [illegible] स्वामी जी ने जो [illegible] है, [illegible] में त्रिगुणात्मक प्रकृति [illegible] है। सांख्यवादी पुरुष और प्रकृति दोनों तत्वों को [illegible] स्वतंत्र और [illegible] मानते हैं। परन्तु माया, [illegible] में [illegible] हैं। [illegible] उन्हें नित्य और अविकारी परब्रह्म के समान [illegible] और स्वतंत्र मानना [illegible] नहीं। क्योंकि

---

modification of sattav, rajas and tamas. [illegible] is Maya. The Lord is possessed of the power of Maya. Prakriti is real, but dependent on God. It is the power of God. The Lord of Universe creates the Universe and the embodied souls. He creates the world out of His own power or Prakriti and covers Himself with its products, even as a spider makes a cob web of threads drawn out of its own body. (The Philosophy of Svetasvatara Upnisad quoted in "The Foundation of [illegible] Page 34)

२२२- मुण्डकोपनिषद् ३-१।

२२३- He conceals His power with sattav, rajas and tamas. (Page 221).

२२४- गीता- ७-२४   २२५- [illegible] उपेन्द्र मिश्र पृ०२०३

२२६- गीता- ७-२५

२२७- "This Yog-maya spread over the Lord, which veils the understanding of others in recognising Him, does not obscure His own knowledge, as it is His, and he is wielder of it, just as the glamour (Maya) caused by a juggler (Mayavi) does not obstruct his own knowledge. This illusion which binds others cannot dim His vision."

(Commentary on 25th of [illegible] VII, Gita, by Swami Swroopa Nand).

नित्य और अनित्य कल्पनाएं दोनों परस्पर विरोधी हैं, इस लिये दोनों का अस्तित्व एक ही काल में माना नहीं जाता। इस लिये वेदान्तियों ने यह निश्चय किया है कि विनाशी प्रकृति या [illegible]-माया स्वतंत्र नहीं है। एक नित्य सर्वव्यापी और निर्गुण परब्रह्म में ही मनुष्य की दुर्बल इन्द्रियों को सगुण माया का दिखावा दिखाई पड़ता है।[228] परन्तु इतना उत्तर देकर अलग भी किया जाता है कि माया का ब्रह्म का [illegible] वाली होता है।[229] इस सूत्र की व्याख्या करते हुए स्वामी [illegible] लिखते हैं, 'प्रभु की रचना [illegible] प्रकार वाली होगी, ऐसा हमको प्रतीत होता है, तथापि परमेश्वर के लिये तो वह केवल लीला ही है, क्योंकि उसकी शक्ति अपरिमित है।'[230]

माया (त्रिगुणात्मक प्रकृति) की उत्पत्ति के विषय में यह परंपरागत विचार है। गीता में भी माया को त्रिगुणात्मक कहा है, गीता में यह भी कहा है, कि वेद इन्हीं तीन गुणों पर विचार करते हैं।[231] इस विषय पर व्याख्या [illegible] में वेदों [illegible] में त्रिगुण का उल्लेख किया गया है। जहां माया के आवृत्त [illegible] त्रिगुण [illegible] का भी वर्णन किया गया है।

नाथ साहित्य में माया

नाथ संप्रदाय में माया को सर्पिणी कहा गया है। गोरख बाणी में लिखा है, 'त्रिकुटी पर (भ्रूमध्य) में प्रवेश कर सर्पिणी माया को मारो। गोरखनाथ ने इसे त्रिभुवन को डसने वाली कहा है। ([illegible] नहीं छूटा) ब्रह्म में प्रविष्ट साधक पर ही माया का कोई प्रभाव नहीं होता।[232] गोरखनाथ के इसी विचार में औपनिषदिक विचार की [illegible] का योग देकर [illegible] ने इस पद की रचना की है। 'माया सर्पिणी अधिक सताती है। इसने ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि को डस लिया। इसे त्रिकुटी पर में प्रविष्ट होकर मारा जा सकता है। इसे त्रिभुवन [illegible] है। यह सर्पिणी (माया) इस ब्रह्म की रचना है। [illegible], [illegible] ब्रह्म की शक्ति है, इसके [illegible] भी शरीर होता है।[233]

२२८- गीता रहस्य पृ० २४३

२२९- लोकवत्तु लीला कैवल्यम्॥ ब्रह्मसूत्र २-१ सूत्र ३३, शांकर भाष्य पृ० ५६४।

२३०- वही पृ० ५६५

२३१- गीता २-४५

माया के [illegible] गोरख [illegible] माया [illegible] विचार गोरखनाथ [illegible] ने [illegible] किया है, [illegible] माया [illegible] में विचार किया गया है। कबीर जी ने बहुत [illegible] की माया [illegible] परमात्मा [illegible] प्रकट किया हुआ है।[234] [illegible] विचार [illegible] है, जिसका [illegible] विवेचन हो चुका है।

संत [illegible] जी कहते हैं: [illegible] प्राणी [illegible] माया [illegible] में माया [illegible] कारण [illegible] हुआ [illegible] है। [illegible] विकसित [illegible] है और [illegible] है। माया के लगा हुआ यह परमात्मा का नाम नहीं लेता। [illegible] लेता है। परन्तु माया [illegible] को [illegible] छोड़ना पड़ता है।[235]

नामदेव [illegible] संसार [illegible] माया का प्रसार मानते हैं। [illegible] माया का [illegible] करता दिखाई पड़ता है। [illegible] भी [illegible] है।[236] नामदेव जी प्रकृति (माया) को, जिससे सृष्टि रचना हुई, त्रिगुणात्मक मानते हैं।[237]

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि ईश्वर की माया को ब्रह्मा भी न जान पाया। [illegible] ब्रह्मा [illegible] ब्रह्म-कमल (नाभि कमल) की

२३२- [illegible] माया [illegible] त्रिभुवन [illegible] गोरखनाथ [illegible]।।
गोरखबाणी पृ० [illegible]३६-४०

२३३- [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] माया [illegible]।
[illegible] निरफल [illegible]। [illegible] गुर [illegible]
[illegible]। [illegible] नाही [illegible]।
[illegible] कबीरा। (ग्रं०ग्रं० [illegible])

२३४- [illegible] माया [illegible] मानवा। ग्रं०ग्रं० पृ० ४८१।

२३५- माया [illegible] प्राणि [illegible] विसरि [illegible]।
[illegible]।
माया [illegible]।
[illegible]। ग्रं०ग्रं० पृ० [illegible]

२३६- [illegible] पूरन [illegible]। [illegible]
[illegible]। ग्रं०ग्रं० पृ० ४८५

२३७- [illegible] खेलु [illegible]। ग्रं०ग्रं० पृ० [illegible]

कन्दराओं में जाकर भी मनुष्य को माया न छोड़ सका। क्योंकि ईश्वर की कृपा का अंत न मिला। उसने परमात्मा की याद नहीं जानी इसी कारण भ्रम में भूला रहा। माया ने देवी-देवताओं को भी मोहित कर लिया। माया ने मोहित कर जीव मात्र को भ्रष्ट किया है।[238] माया अहंकार को जन्म देती है। ब्रह्मा ने अपना अहंकार किया, और वह उस भेद को न जान सका। चारों वेद उसके मुख से निकले थे, पर वह विरक्ति नहीं पहचाना। भस्मासुर बलि राजा भी अहंकारी था, इसलिए उसे अहंकार करना पड़ा कि उसे पाताल जाना पड़ा। हरिश्चन्द्र दान पर भी यश का भेद न जान सका। हिरण्यकशिपु भी मायावी दुराचारी था। माया का भूला रावण भी और लंका लुटा बैठा। सहस्रबाहु मधुकीट, महिषासुर, जरासंध, काल जवन, रक्त बीज, कालनेम, ये दैत्य मायावी मारे गए। दुर्योधन ने अपना सम्मान गंवाया। जन्मेजय, कंस, केशी चाणूर भी माया वश थे।[239] संसार का प्रपञ्च जंजाल भी माया का है।[240] माया त्रिगुणात्मक है। वेद भी त्रिगुणात्मक माया का वर्णन करते हैं।[241] माया में तीन गुणों का संयोग और वेदों में तीन गुणों का विस्तार का विचार गीता में किया गया है। गीता में कहा है, वेदों में तीन गुणों का वर्णन है। हे अर्जुन! तू इस त्रिगुणात्मक माया से निर्लेप, निर्द्वन्द्व, नित्यसत्त्वस्था में योगक्षेम रहित होकर आत्मवान् हो जा।[242]

प्रकृति के इन तीन गुणों के प्रतीक तीन चेलों (देवों) की प्रकृति से उत्पत्ति का वर्णन गुरु नानक देव जी ने जपुजी में किया है। माया किसी युक्ति से प्रसूत हुई और उस से तीन देवताओं की उत्पत्ति हुई। एक संसार की उत्पत्ति, दूसरा पालन पोषण तथा तीसरा नाश करता है।[243(1)] गुरु अमरदास जी कहते हैं, कि माया माता के प्रसूत होने से तीन गुण पैदा हुए हैं, तथा त्रिगुणात्मक संसार

२३८- ब्रह्मै ब्रह्मा लागे अगिआनु था। ... न पा था। अगिआनु नहीं छोडै भरमि भुलाइआ। माइआ मोहे देवी सभि देवा। कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा। म:१, आ०ग्रं० पृ० [illegible]।

२३९- आ०ग्रं० पृ० [illegible]४-[illegible]। म:१

२४०- माइआ मोहि जगतु जंजाला। आ०ग्रं० पृ० [illegible]२

२४१- त्रिभवण महि त्रै गुण बिसथारु। चारे बेद कथहि आकारु। [illegible] तुरीआवस्था गुर ते हरि जानु। आ०ग्रं० पृ० १५४

२४२- त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्। गीता २-४५

पैदा हुआ। ब्रह्मा ने चार वेद दिये। वेदों में इन तीन गुणों का वर्णन है।[243(2)] वेद पढ़ने वाले राम वर्णित बिन इन तीन गुणों में ही उलझे हुए हैं, परन्तु वेदों में जो हरि का नाम बताया है, उसका सुमरण नहीं किया।[244] शास्त्रों और स्मृतियों में पाप पुण्य का विचार है, तीन गुणों (माया) के भ्रम में संसार भूला है, और मोह निद्रा में जीवन रात्रि समाप्त हो जाती है।[245]

गुरु रामदास जी कहते हैं, सोने के आभूषण और भांति भांति के सुन्दर वस्त्र नाम के बिना सब फीके हैं। माया का आवरण बहुत भारी आवरण है, यह तो भंवर में फंसने वाली बात है।[246] क्योंकि माया मोह भारी सांकल है, उस के मुख पर कालिमा का दाग भी लगता है। परंतु इस माया का स्वामी प्रभु इस माया से अलिप्त है।[247] और उस ठाकुर के भक्त भी इस से अलिप्त हैं। माया मोह सब दुःख ही दुःख है, जितना यहीं रह जाता है, उसके नाश होने पर दुःख होना पड़ता है। माया और प्रभु-भक्ति का संयोग नहीं हो सकता, दोनों की एक समय कामना करनी है।[248]

२४३- (१) कता भाउ जुगति विगाड़े तिनि वेदे परवाण।
 ... संसारी, ... पैसारी, ... दा ताण। आ०ग्र० पृ० ७
२४४ (२) ... [illegible] नैगुणपासरूं ... । चार वेद ... फुरमा... ।
 ... पै ... [illegible] ... । दूजै भाइ ...
 दुः ... त्रैगुण ... आ०ग्र० पृ० १०६६
२४४- वेदा महि नाम ... गुणवंति ... फिरहि ... आ०ग्र०पृ०६१६
२४५- सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ... सार न जाणी।
 तिहि गुणी संसार भ्रमि ... सुता सुतिआ रैणि विहाणी। आ०ग्र०पृ०६२०
२४६- सुनिआ ... सुन्दर ... कापरु भांति बनाईऐ। नाम बिना सभि
 फीके ... जनमि मरि फिरि आवैगो। माइआ पटल पटल है भारी
 ... घुमनि घेरि घुलावैगो। म:४ आ०ग्र० पृ० १३०८
२४७- ... मोह ... के भारी ... दाग लगाई। मेरे ठाकुर के जन
 अलिपत है, ... मुरगाई पंकु न लाई। म:४ आ०ग्र० पृ० १३२४
२४८- माइआ मोह ... दुखु है, ... दुःख रोइ। नानक बाझु लिखे ... न
 ... म:४ आ०ग्र० पृ० ३२६

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि माया मोह में समस्त संसार बंधा हुआ है। [249] परन्तु माया का रंग सदा फीका है, और अंत को सब रंग का नाश हो जायेगा। फिर यह माया का जाल इतना मोहक है कि तृष्णा-वश मनुष्य उस में फंस जाता है और दाना चुगता है, फिर उसमें से निकल नहीं पाता। [250] जो मनुष्य माया से प्रीति करता है, उसी को खाती है, इसने तो गुरु की कृपा से वश में कर लिया है। परन्तु इसे देखकर तो साधक, सिद्ध, सुर-देव, तथा मानव मोहित होगए। केवल एक साधु बचा, बाकी सब को इस ने ठग लिया। [251] माया का स्त्री-रूप में मानवीकरण करते हुए गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, इस के माथे पर त्रिकुटी और दृष्टि बड़ी क्रूर है। कड़वा बोलती है और इसकी मुंहफट है, सदैव भूखी ही रहती है, और अपने पति को दूर जानती है, राम ने एक ऐसी स्त्री का सृजन किया, उसने सारी सृष्टि को खा लिया, हम तो अपने गुरु-कृपा से बच गए हैं। [252]

गुरु तेगबहादुर जी कहते हैं, माया के कारण मूर्ख लोग दौड़ते फिरते हैं, बिना हरि भजन के (जन्म) वृथा बीत जाता है, माया के अंधेरे में अंधा हुआ मनुष्य राम नाम नहीं भजता, हरि भजन के बिना ही यम की फांसी गले पड़ती है। [253]

२४९- माइआ मोहि सगल जगु छाइआ। म: ५, आ०ग्र० पृ० ३९४, माइआ का रंगु सभु फिका जातो बिनसि निदानि। म:५ आ०ग्र० पृ० ४५।

२५०- माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ।
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ। आ०ग्र० पृ०५०

२५१- जिनि लाई प्रीति सोई फिरि खाइआ। ऐसा देखि बिमोहित होए।
साधिक सिध सुर देव मनुखा बिनु साधू सभि ध्रोहनि ध्रोहे। म:५, आ०ग्र०पृ०३७०

२५२- माथै त्रिकुटी द्रिसटि करूरि। बोलै कउड़ा जिहबा की फूड़ि।
सदा भूखी पिरु जानै दूरि। ऐसी इसत्री इक रामि उपाई।
उनि सभु जगु खाइआ, हम गुरि राखे मेरे भाई। म:५ आ०ग्र० पृ० ३९४

२५३- माइआ कारणि धावही मूरख लोग अजान। कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान।।२९।। मन माइआ महि फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु। कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम।।३०।। प्रानी रामु न चेतई मदि माइआ कै अंधु। कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंध।।३१।।

म:६, आ०ग्र० पृ० १४२७

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि आदिग्रंथ में माया को अविद्या की एक ग्रन्थि बताया है, जिस अविद्या के कारण जीव ब्रह्म को नहीं जान सकता और अहंकारवश कर्म करता हुआ, जन्म मरण के बन्धन में पड़ता है। परन्तु यही माया ईश्वर की आज्ञावर्तिनी तथा गुणों की खान है। इसी से शरीर का अस्तित्व है। जब आत्मा मन से प्रेरित होकर इस में रह सकता है, तथा अहम् (हउमैं) में मग्न हो माया के वशीभूत होता है। परन्तु यह माया ब्रह्म की दासी है। जब जीव आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, तो अहम् का परिष्करण हो जाता है। जीव ब्रह्म हो जाता है, और माया का भ्रम दूर हो जाता है।

आदि ग्रंथ के सन्तों ने माया को बड़ी प्रबल बताया है, जिसके प्रभाव से सुर, नर, मुनिजन आदि भी नहीं बच सके। यह माया भक्तों की चेरी है, क्योंकि भक्त ब्रह्म होता है, और ब्रह्म रूप होने से ब्रह्म की चेरी माया, उनकी भी चेरी है।

सांसारिक बन्धनों- पुत्र-कलत्रादि को भी सन्तमतों ने माया का एक रूप माना है। सांसारिक जीवन में आवश्यक संग्रह को उचित मान कर अनोपयुक्त आसक्ति को मोह-माया का बंधन माना है, इस पर साधना-पक्ष में विचार किया गया है।

हउमै (अहंकार)

माया का आवरण जब मनुष्य की बुद्धि पर पड़ता है तो उसमें हउमैं(अहंकार) का जन्म होता है। अहंकार का कारण अज्ञान है। ऊपर जो माया का फंदा हुआ बताया गया है, यह विचार भी गीता का है। यह त्रिगुणात्मक माया का पर्दा दैवी है। इसको पार करना कठिन (दुस्तर) है। जो मेरी शरण में आते हैं वे ही इसे पार कर सकते हैं।[२५४] प्रकृति के इन तीन गुणों द्वारा भ्रम में पड़ कर सारा संसार मुझे नहीं पहचान पाता, जो कि मैं इन सबसे ऊपर हूं और अनश्वर हूं।[२५५] यह विचार कठोपनिषदिक विचार भी रहा है, इन्द्रियां मन और बुद्धि- इन सब पर आत्मा का अधिकार है, अतः यह इन्हें उनको वश में करके भगवान् की ओर बढ़ा सकता है। परन्तु इस आत्मा से भी बलवान् मन और

२५४- दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। गीता-७-१४

२५५- त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्। गीता ७-१३

तत्व है, जिसका नाम अव्यक्त है, जिसे प्रकृति और कोई माया भी कहते हैं। इसी से समस्त जड़-समुदाय मोहित होकर इसी बन्धन में पड़ा रहता है। इसी प्रकार जीव के अधिकार का जहाँ नहीं, जो भी भगवान् हैं उनके स्वामी परमपुरुष परमेश्वर हैं- जो बल, क्रिया, और ज्ञान आदि सभी शक्तियों के अन्तिम अवधि और परम आधार हैं, उन्हीं की शरण लेनी चाहिए। जो वे दयालु होकर इस माया रूप पर्दे को नहीं हटा देते, तो उनकी शरण बिना भगवान् की प्राप्ति नहीं होगी। क्योंकि वे ही सदैव सर्वत्र विद्यमान हैं।[256] जिस ज्ञान द्वारा इस माया के पर्दे को हटाया जा सकता है, उस ज्ञान का अभाव होने के कारण मनुष्य बाहरी वस्तुएं देखता है। केवल बुद्धिमान् अमरत्व का इच्छुक इस आवरण को अपनी आँखों से हटा कर अपनी अन्तरात्मा को देखता है।[257]

ओम्(ओंकार) भगवद् भक्ति में बाधक माना गया है। क्योंकि वह माया का बड़ा पुत्र है, जिसके आत्मा के सम्मुख होने तक, उसका साक्षात्कार परमात्मा से नहीं होता। कठोपनिषद् में द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली के १४वें श्लोक में कहा गयाहै, कि वर्षा का जल एक ही है, पर जब ऊंचे पर्वत की ऊंची आरूढ़ चोटी पर बरसता है तो वहां ठहरता नहीं, तुरंत ही नीचे की ओर उतर विभिन्न वर्ण, आकार, और गंध को धारण करके पर्वतों में चारों ओर बिखर जाता है। इसी प्रकार एक ही परमात्मा से प्रकट विभिन्न स्वभाव वाले देव(गुरमुखि) असुर (मनमुखि) मनुष्य आदि को जो परमात्मा से पृथक् मानता है, और पृथक् मानकर ही उनका सेवन करता है, वो भी बिखरे हुए जल की ही भांति विभिन्न देव-असुरादि के लोकों में एवं नाना प्रकार की योनियों में भटकता रहता है। वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं हो सकता।[258] आत्मा जागृत है, परन्तु अहंभी (ओंकार) से आवृत आत्मा पर प्रभाव नहीं ठहरता। आत्म पाप रहते हुए मन दूजे से मैल नहीं होती। हमारा विचार है कि सन्तों ने सभी गुरु उस (मन) - मैं(अहं) के योग से लिया है। अहं(मन, आत्मा की प्रतीक है,) जो आत्मा मैं(ओंकार) से आवृत है, गुरु नानक देव जी कहते हैं किस प्रकार मन अज्ञानावस्था में स्थिर हो सकता है? इसका समाधान यह है कि आत्म मन सहज में मैं को अंतरात्मा से समाप्त करे।

२५६- महत: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:। पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गति:।। कठोपनिषद् तृतीय वल्ली मं: ११।

२५७- कठोपनिषद्- २-१-१।

२५८- यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति।१४

कठो- २-१-१४

नाथ साहित्य में दर्प : मायावश जो अंहकार पैदा होता है, उसका विवेचन करते हुए गुरु गोरखनाथ कहते हैं, हे अवधूत! साढ़े तीन हाथ शरीर (पर्वत) में माया रूप बेल हुई फैल गई है। वह बेल फल फूल गई है। मुक्ताफल (मुक्तिफल) भी इसी बेल पर लगे हैं। इसी बेल से प्रकाश से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस बेल का मूल नहीं है (अव्यक्त है)। फिर भी वह आकाश तक बढ़ गई है। ऊपर की गोठ (गोस्थान) तक अर्थात् ब्रह्मरंध्र तक उसका विस्तार हो गया है। जिससे ब्रह्मानुभूति पर आवरण पड़ गया है। गोरखनाथ ज्योतिषियों से प्रश्न पूछते हैं कि एक ऐसा शिकारी (आत्मा) है, जिसके हाथ नहीं है, पांव भी पंगु है, उसके मुख में कहीं दांत नहीं है, (मांस नहीं खाता) उसके पास धनुष भी नहीं है, फिर भी उसने मृग (अंहकारी मन) को मार डाला है, और मारा हुआ मन अवधूत हो गया है, अर्थात् समझ गया है।[260]

आदि ग्रंथ और दर्प

नामदेव जी अंहकार को मनुष्य का भारी शत्रु मानते हैं। अंहकार वश दुर्योधन और लंकापति रावण अधोगति को प्राप्त हुए।[261] रविदास जी कहते हैं कि अंहकार के नाश होने से इस शरीर में भी परमात्मा से मेल होता है।[262] अंहकारवश मनुष्य अपने आप को बड़ा कवि (महाकवि) कुलीन, पंडित, योगी, सन्यासी, गुणी, ज्ञानी शूरमा तथा दानवीर समझता है।[263] रविदास के इस विचार का अनुसरण गुरु अर्जुन देव जी ने गउड़ी राग में किया है। 'मनुष्य कहता है मैं माया एकत्रित करता हूं। मैं धनोपार्जन करता हूं, मैं शूरवीर, प्रधान, अभिजात, युवक, आचारवान, तथा कुलीन हूं। अंहकारवश कर्म करता है।'[264]

रविदास के 'जब हम होते तब तू नाहीं' से मिलता जुलता पद कबीर जी का आदिग्रंथ में मिलता है। 'अंहकार का नाश होते ही आत्मा, परमात्मा का अभिन्न हो गया।'[265] कबीर जी ने इस अवस्था का बार बार वर्णन किया है।[266]

२५९- जब गिआन मनु मनहि समानी। ब्रह्म ब्रह्म मै मै विसरु गोबिंद। म:१, आ०ग्रं० ९४३

२६०- गोरखबाणी १-२४ पृ० १२०   २६१- आ०ग्रं० पृ० ६९२

२६२- जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही।

अनल अगम जैसे लहरि मइ ओदधि (महोदधि) जल केवल जल मांही। आ०ग्रं०पृ०६५७

२६३- आ०ग्रं० पृ० ९७४   २६४- आ०ग्रं० पृ० २४२

२६५- जब हम होते तब तुम नाहीं अब तुम हहु हम नाहीं।

अब हम तुम एक भए हहि एकै देखत मनु पतीआही। आ०ग्रं० पृ० ३३९

सृष्टि (संसार)- कहां से उत्पन्न होता है?

सीमित ब्रह्म (आत्मा) तथा पूर्ण ब्रह्म (परमात्मा) के अस्तित्व को सिक्ख विद्वानों ने अनादि मान लिया।[२६७] परन्तु प्रकृति तत्व को अनादि मानने से उन्होंने इन्कार कर दिया।[२६८] क्योंकि वे किसी प्रकृति के अस्तित्व की प्रलय के बाद भी उपस्थिति को और इस तत्व को शून्य से जागृत कर परमात्मा का सृष्टि रचना करना इसलिये नहीं मानते कि इससे परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता में अन्तर आता है।[२६९] प्रकृति भी शून्य है, और यह शून्य से उत्पन्न हुई, जिस शून्य में स्वयं ब्रह्म समाधिस्थ था, परन्तु इस शून्य तत्व से निर्लेप था।[२७०] आदि ग्रंथ के [illegible] ने शायद इस लिये भी गुरुओं का केवल आत्मा और परमात्मा को अनादि मानना कहा है, कि वे गुरुओं से [illegible] दर्शन की विलक्षणता प्रस्तुत करना चाहते थे।[२७१] याद रहे, कि शून्य से 'कुछ नहीं', नहीं है।

इधर संसार की उत्पत्ति के विषय में गुरु(ग्रंथ)वाणी पर विचार करते हुए सिक्ख विद्वान् संसार की उत्पत्ति को मानने का गुरुओं का दर्शन पेश करते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गुरुओं के इस विचार में और योगवशिष्ठ के इसी विचार में (सृष्टि रचना का मूल संकल्प है) आश्चर्यजनक साम्य है।[२७२] सांख्यदर्शन में सृष्टि रचना का कुछ पृथक् पृथक् आरंभ बताया गया है। वेदान्त दर्शन औपनिषदिक है, क्योंकि उपनिषद् भी वेदान्त (वेद-अंत) हैं। गीता भी उपनिषद् ही है। क्योंकि यह उपनिषदों से प्रभावित है। वस्तुतः जितनी बातें उपनिषदों में हैं, वे सब गीता में भी हैं। इसलिये कहा गया है:-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।[२७३]

२६६- आ०ग्र० सलोक कबीर २०३-२०४, पृ० १३७५।।

२६७- इस ज्योति (आत्मा) के सर्वस्वरूप परम ज्योति (ब्रह्म) जैसे होने चाहियें। गुरु नानक चिंतन ते कला। पृ० १६४

१६८- सब कुछ उसने अपने अंदर से उत्पन्न कर दिया। कोई अनादि प्रकृति नहीं है। वही पृ० २०१

१६९- पवण पाणी सुंनै ते साजे। स्रिसटि उपाइ काइआ गड़ राजे। आ०ग्र०पृ०१०३७

२७०- सुंन कला अपरंपरि धारी। आपि निरालमु अपर अपारी। आपे कुदरति करि करि वेखै सुंनहु सुंनु उपाइदा। आ०ग्र० पृ० १०३७

गुरु ग्रंथ दर्शन भी विशेषतः गीता तथा उपनिषदों से प्रभावित है। सृष्टि रचना से पहले की अवस्था का आदि ग्रंथ में है।[274] वैसी ही ऋग्वेद के दसवें मंडल के १२९वें सूक्त के तीसरे मंत्र में पाई जाती है।[275] परन्तु डा० जयराम मिश्र का विचार डा० शेर सिंह के विचार से प्रभावित दिखाई पड़ता है। वे भी हउमै (अहंकार) को गुरमति दर्शन में संसार का विशेष कारण मानते हैं।[276] इन दोनों विद्वानों ने गुरु नानक देव जी की इन पंक्तियों को इस विचार का आधार माना है, हउमै विचि जगु उपजै पुरखा। नामि विसरिऐ दुखु पाई।[277] गुरु नानक देव जी का 'आसा की वार' में, 'हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ।'[278] को भी इस सृष्टि प्रस्तुत किया जाता है। व्याकरणिक नियमों के अनुसार भी यह अर्थ लेना संगत है तथा विचार पक्ष से भी। 'विचि' 'हउमै' के अर्थ में है। अतः अर्थ निकलते हैं, हउमै में जगु की रचना होती है। और उसी के कारण प्रभु नाम को भूले लोग दुःखी होते हैं, और हउमै में जीव जन्म लेता है और कर्मों में भरमाता है।[279] यदि गुरु जी का सृष्टि रचना के बारे में विचार [illegible] की उत्पत्ति हउमै से मानना होगा, तो हउमै विचहु का अर्थ, निकले। जैसे 'से' अर्थों में 'विचहु' शब्द का प्रयोग हुआ है:

'हउमै विचहु [illegible] सवारि, हउमै विचहु [illegible] विकार।'[280]

अंदर से हउमै को धोवे, अन्दर से विकार को धोवे। अहंकार का मनुष्य जन्म मरण में पड़ता है।[281] [illegible] अहंकार (हउमै) माया का आवरण है और [illegible] विचार गीता तथा उपनिषदों का है।[282] अतः आदि ग्रंथ [illegible] ग्रंथ है, जिस प्रकार वेदों के क्रम

२७१- "Shunya, according to the Madhyamika, we emphatically maintain, does not mean a 'nothing' or an 'empty void' or a 'negative abyss'. Shunya essentially means 'Indescribable' (avachya or anabhilapya) as it is beyond the four categories of intellect (Chatushkoti-vinirmukta)-A critical Survey of Indian Philosophy P-86.

२७२- गुरु ग्रंथ दर्शन- डा० जयराम मिश्र पृ० १३०-१३१

२७३- [illegible] दर्शन पृ० ६६ (जयराम मिश्र)

२७४- आ०ग्रं० पृ० १०३५

२७५- गुरमति दर्शन- डा० शेर सिंह-पृ०२३१ (ऋग्वेद १०-१२९-३)

२७६- गुरमति दर्शन पृ० २३६

२७७- वही पृ० २४०

२७८- आ०ग्रं० पृ० ४६६

२७९- वही पृ० ४६६

२८०- आ०ग्रं० पृ० ४६५

२८१- हउमै [illegible] फिरि फिरि जोनी पाहि। आ०ग्रं० पृ० ४६६

२८२- [illegible] आ०ग्रं०पृ०४८१

[illegible] आ०ग्रं०६२

में मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् (वेदांत) सब वेद ही हैं, और [illegible], [illegible] वेद पाठ की, जो बिना ग्रहण किए किया जाय, निंदा करता है, और विशेषतः कर्मयोग और प्रवृत्ति मार्ग की प्रतिष्ठा करता हुआ भी वेदांत ग्रंथ का अंग [illegible], उसी प्रकार गुरु ग्रंथ भी विशेषतः गीता से प्रभावित है, वेदों में नाम जप को गुणों वाला, फिर [illegible] वैराग्य, की प्रतिष्ठा करता हुआ, वेदों के [illegible] गुण के विचार और त्रिगुणात्मक-माया के बंधे में पड़े हुए पण्डितों के कर्म-कांडों का विरोध करता हुआ, [२८३] मूल रूप में वेदांत की प्रतिष्ठा करता हुआ, वेदांत ग्रंथ ही है।

जहां तक दर्शन-ग्रंथों में सृष्टि-रचना संबंधी विचार हैं, उनको गुरु [illegible] ने अधिक महत्व नहीं दिया, क्योंकि यह विचार मनुष्य को उलझनों में डाल [illegible], नाम-स्मरण से, उसको दूर ले जाते हैं। इस लिये सृष्टि रचना को गुरु जी इसको उन्होंने एक विस्मय-जनक रहस्य कहकर, [२८४] इसका जानने वाला केवल इस के स्रष्टा, [illegible] को ही मानना है। [२८५] [illegible] उत्पत्ति से मानते हैं, जिस स्थिति में स्वयं प्रभु ने अपने आप का सृजन किया। [२८६] यह शून्यावस्था परमपद अथवा परमधाम है, जहां पर किसी सांसारिक गति विधि का प्रवेश नहीं।

इसमें क्या है? गुरु नानक देव जी इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं: इसमें (संसार) जीव का एक जाति (स्वभाव) है, जिसके अंतर्गत वह कर्मों को करता है (ताकि उसका पुरुष अस्तित्व बना रहे), जो उसे ऐसे बन्धनों में डालते हैं कि वह पुनः पुनः जन्म लेता है। [illegible] के [illegible] के अनुसार भी जीव में आता नहीं है, जिसके संस्कार रूप में वह किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार फिर

२८३- त्रिगुणि [illegible] पुंन पाप [illegible] नाही [illegible] न जाणी।
[illegible] गुणी [illegible] प्रगि [illegible] सुनिआ [illegible] निरवाणी। आ०ग्रं० पृ० ६२०

२८४- [illegible] विसमादु [illegible], सुंन निरंकारि [illegible]। आ०ग्रं०९४०

२८५- [illegible] करता [illegible] आपे [illegible]। आ०ग्रं० पृ० ४

२८६- सुंननिरंकारि [illegible]- आ०ग्रं० पृ० ९४० [illegible] शून्य [illegible] संसार का कारण है
[illegible] सुंन [illegible] त्रिगुण सुनहु सुंन। आ०ग्रं० पृ० ९४३।
सुनहु [illegible] उपाय। [illegible] तहां [illegible]।
आ०ग्रं० पृ० १०३७

२८७- आ०ग्रं० पृ० [illegible], तथा [illegible] गुरु ग्रंथ [illegible]- पृ० ६३८
भाई- [illegible] सिंह।

२८८- आ०ग्रं० पृ० [illegible]३।

फिर उन्हीं कर्मों को करने के लिये दौड़ता है। इसमें (संस्कार) बड़ा भारी रोग है। परन्तु यह ला-दवा अर्थात् उपचार-रहित नहीं। इसका उपचार मन के हाथ में है।[287] वह है: इसमें ही परमात्मा। मन हर मैं मैं बिन्दु, गोबे।[288]

मन

'मन्यते अनेन इति मनः', अर्थात् जिसके द्वारा मनन करने का कार्य संपादन हो वह मन है। मन की इस भावना का हम आगामी पृष्ठ में विचार करेंगे। हम यहाँ केवल मन का शरीर तथा आत्मा से संबंध तथा उसका स्वरूप निर्धारण करेंगे। यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि प्राण तथा आत्मा की सूक्ष्म तत्वों की भांति मन भी सूक्ष्म तत्व है। मन क्या है? इसकी विवेचना उपनिषदों में विस्तार से की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा है, कामना, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, बुद्धि, भय- यह सब कुछ मन ही है।[289] वह ब्रह्म मन द्वारा जाना नहीं जा सकता और वह मन को घेरे हुए है।[290] कठोपनिषद में शरीर के संदर्भ में मन की बड़ी तर्कपूर्ण विवेचना की है। जीवात्मा परमात्मा से बिछुड़ा हुआ है। अनन्तकाल से वह अनवरत संसार रूपी बीहड़ वन में सुख की खोज में भटकता फिर रहा है। इसकी इस दयनीय अवस्था को देख भगवान ने इसे मानव शरीर रूपी सुन्दर सर्वसाधन संपन्न रथ दिया। इन्द्रिय रूप बलवान घोड़े दिये। उनके मुख में मन-रूपी लगाम देकर उसे बुद्धि रूपी सारथी के हाथों सौंप दिया और जीवात्मा को उस रथ में बिठा कर उसका स्वामी बना कर यह बतला दिया कि वह निरंतर बुद्धि को प्रेरणा करता रहे और परमात्मा की ओर ले जाने वाले भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम आदि के श्रवण, कीर्तन, मननादि विषय रूप प्रशस्त और सहज मार्ग पर चलकर शीघ्र परमात्मा के धाम में पहुंच जावे। जीवात्मा यदि ऐसा करता तो शीघ्र ही परमात्मा तक पहुंच जाता। परन्तु वह अपने परमानंदमय भगवत्प्राप्ति के महान लक्ष्य को भोलेपन भूल गया। उसने मन रूपी लगाम को इन्द्रिय रूपी दुष्ट घोड़ों की इच्छा पर ढीला छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि जीवात्मा विषयाक्रान्त इन्द्रियों के आधीन होकर सतत् संसार चक्र में डालने वाले लौकिक शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध विषयों में भटकने लगा। उन्हीं के साथ युक्त होकर वह विषय-विष के

289- कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा, धृतिरधृति ..... ह्रीर्धी र्भीरित्येतत्सर्वं मनएव। बृ० १-५-३।

290- यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।। केनोपनिषद: ६।।

उपयोगों में लग गया।[261]

मन का आध्यात्मिक तथा स्वरूप उपनिषद् में वर्णित है। इन्द्रियों से अर्थ (विषय) बलवान् हैं। वे साधक की इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। विषयों से बलवान् मन है। (यदि मन की विषयों में आसक्ति न रहे तो इन्द्रियां और विषय—ये दोनों साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते।) मन से भी बुद्धि बलवान् है, अतः बुद्धि के द्वारा विचार कर के मन को राग द्वेष रहित बनाकर अपने वश में किया जा सकता है। बुद्धि से भी इन सब का स्वामी आत्मा महान् बलवान् है। (उसकी आज्ञा मानने के लिये सभी बाध्य हैं) अतः मनुष्य को आत्म-शक्ति का अनुभव करके उसके द्वारा बुद्धि आदि सबको नियंत्रण में रखना चाहिए।[262] इसी उपनिषद् में द्वितीय अध्याय, तृतीय वल्ली के सातवें मंत्र में इसी विचार को और स्पष्ट किया गया है: इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से उनका स्वामी जीवात्मा ऊंचा है, क्योंकि उन सब पर उसका अधिकार है। वे सभी उसकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं, तथा यह इनका शासक है। अतः उनसे सर्वथा विलक्षण है।[263] इस जीवात्मा से भी इसका अव्यक्त शरीर- भगवान् की शक्ति प्रकृति बलवती है, जिसने सबको बन्धन में डाल रखा है। इसका वर्णन सृष्टि के संदर्भ में कर चुके हैं।[264] इस माया से भी श्रेष्ठ इसका स्वामी ब्रह्म है जिसे जानकर मनुष्य अमरपद को प्राप्त होता है।[265]

उपनिषद् के इस विचार को गीता के छठे अध्याय में श्लोक १२ से लेकर अंतिम ४७वें श्लोक तक मन और बुद्धि के योग तथा उनके योग द्वारा इंद्रियों को वश में करके मन को भगवद्धारणा में एकाग्रचित करने का वर्णन है। उपनिषद् में आत्मा, बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों का जो संबंध बताया गया है, उसी के आधार पर यह बातें निर्दिष्ट किया गया है। मन सब से बलवान जो अव्यक्त (माया) बताई गई है, उससे भी बलवान् परम-पुरुष-परमात्मा श्रेष्ठ है।[266]

२६१- आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। कठो० १-३-३-४-।

२६२- इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।। कठो० ३-१०, उपनिषदांक कल्याण पृ० २१०

२६३- इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्। सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्त- मुत्तमम्। कठो० २-३-७ उपनिषद् विशेषांक कल्याण पृ० २१६

जैन साहित्य : जैन मुनि देव सेन का विचार है, कि इस मन को इन्द्रियों पर काबू पा लेने से मन समाधिस्थ अवस्था प्राप्त होता है, और सब दुःखों से छूटता है।[297] मुनि राम सिंह कहते हैं: मन सभी उपदेश को समझता है, जब यह निर्विकल्प होकर लीन जाता है, और निर्विकल्प होते होता है तो चित्त को शक्ति में लय कर देता है।[298]

नाथ साहित्य : उपनिषद् में मन का स्वरूप जो हम ने ऊपर वर्णन किया है, उसमें मन इन्द्रियों और विषयों से अलग है। परन्तु माया के आकर्षण से उपजा इसमें के कारण यह इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से नहीं रोकता। गोरखनाथ ने भी मन के सकल स्वरूप का ही वर्णन किया है। यह मन शक्ति है, यह मन शिव है, यदि इस मन को लेकर उनमनि अवस्था में रख जावे तो तीन लोक की मुक्ति प्राप्त हो सकती है।[299] मन का अधिष्ठान भी शिवतत्व परब्रह्म में ही है। माया (शक्ति) के संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है और मन से पंच-भूतात्मक-शरीर की सृष्टि होती है। इसलिये मन का महत्व बड़ा है।[300] मन की प्रकृति का वर्णन करते हुए गोरखनाथ कहते हैं, मन का निरालंब रहना दुःसाध्य है। या तो यह (इस जगत में) माया फन्दों में बंधा रहता है, या फिर परम उदास अर्थात विरक्तावस्था में रहता है। या मन कामिनी के क्रोड़ में विश्राम लेकर रहता है, अथवा सब कुछ त्याग कर गुरु की शरण में रहता है। गुरु की ही दया से वह परम-विरक्ति-लाभ करता है।[301]

आदि ग्रंथ में मन का स्वरूप

संत कवि नामदेव जाति के दर्जी थे, अतः उन्होंने दर्जी की विशिष्ट शैली में मन की साधना का वर्णन किया है।[302] उपनिषद् में मन को ब्रह्म कहा गया है नामदेव जी कहते हैं: मेरा मन गज है, और मेरी जिह्वा कैंची है, अर्थात प्रभु-स्मरण करती है, और मन के गज से माप कर यम की फांसी को काटता हूं, अर्थात मन का गज यम की फांसी की लंबाई चौड़ाई को देखता है।[303] यदि यह मन विषयासक्त हो कर बंधता है, तो यह इतना सामर्थ्य भी है कि विषयों से मुक्त भी, एकाग्रचित हो राम नाम द्वारा सेवा भी जा सकता है।[304]

२९४-गीता-१४-५ २९५-कठो० १-३-८, कल्याण-उपनिषद्-विशेषांक पृ० ६।

२९६-गीता-६-४, तथा ६-८. २९७-संत सुधा सार पृ०१६

२९८-वही, पृ:२० ।

२९९-यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पांच तत का जीव। यहु मन ले जे उनमन रहै।

[illegible] कहते हैं, मन का माणिक मोती है, जिसे रत्नों में पिरोकर रखना चाहिए।[३०५] कबीर जी का मन का स्वरूप वर्णन गोरखनाथ से मिलता है। गोरखनाथ की रचना "गहु मन सबदी यह अनुसीव।"[३०६] [illegible] में कबीर जी ने गउड़ी राग में बावन-अखरी में मन का स्वरूप उन्हीं शब्दों में वर्णन किया है। यह मन शक्ति है, यह मन शिव है। यह मन पांच तत्त्व का जीव है, यदि यह मन उन्मनि अवस्था में लीन हो जाये तो उसे तीन लोक की सूझ प्राप्त हो जाती है।[३०७] कबीर जी ने मन को [illegible] (सूक्ष्म) कहा है, यह [illegible] विचार है।[३०८] इस मन की [illegible] कबीर जी ने निर्दिष्ट किया है।[३०९] उपनिषदों में मन को इन्द्रियों से बलवान् कहा है। और [illegible] से बलवान् [illegible] है। उपनिषद में [illegible] मन को [illegible] कहा है। कबीर जी ने [illegible] को सब से [illegible] कहा है।[३१०]

गुरु नानक देव जी ने गोरखनाथ तथा कबीर जी के मन के स्वरूप वर्णन का अनुसरण करते हुए जो [illegible] विवेचन प्रस्तुत किया है, उसका वर्णन करने से पूर्व गुरु जी द्वारा मन के परंपरागत स्वरूप का जो वर्णन किया गया है, उसका उल्लेख करते हैं। गुरु जी कहते हैं, यह मन [illegible] है, धर्म का [illegible] है। (यह विचार [illegible]) [illegible] रखता है। यह मन पांच तत्त्वों से जन्मा है।[३११] मन की [illegible] का वर्णन करते हुए कहते हैं, यह मन जोगी है, यह मन भोगी है। जो [illegible] को [illegible] है, वह [illegible] हो जाता है। यह मन राजा है और संग्रामी सूरबीर है।[३१२]

तो तीन लोक की [illegible]। [illegible] गोरखबाणी पृ० ९८

३००- [illegible] पृ० ९८

३०१- [illegible] मन [illegible]। [illegible] मन [illegible] परम उदास। [illegible] मन [illegible]। [illegible] मनि [illegible]। गोरखबाणी पृ० ५८

३०२- [illegible]- [illegible]-[illegible] अनुवाद, कल्याण उपनिषद् [illegible]- पृ० ३५९ ।

३०३- मन मेरे [illegible]। [illegible] काढो। [illegible] पृ० ४८५

३०४- मन राम नाम [illegible]... [illegible]।
क०ग्रं० पृ० ६९२

३०५- मन माणक [illegible] (क०ग्रं० पृ० ६९४) ३०६- गोरखबानी पृ० ९८

३०७- [illegible]। [illegible] मन [illegible]। [illegible] उनमनि [illegible]। [illegible]। क०ग्रं० पृ० ३५२

गोरखनाथ कहते हैं, कि जब तो यह मन भी गुरु शरण में निश्चलीनता होता है और आत्मचिन्तन में लीन होता है, अथवा विषयों में लीन होता है।[313] गुरु नानक देव जी भी कहते हैं, कि यदि मन आत्मचिन्तन में लीन नहीं होता तो यह भी चंचलता से अपना [illegible] को दिखाता है, तो फिर यह आशाओं और विषयों की झोंक में रहता है। मत्त हाथी की तरह [illegible] (माया) पर दौड़ता हुआ फिरता है। इस संसार में आकर मन भी माया मोह में भटकता रहता है।[314]

मन के परंपरागत स्वरूप एवं स्थिति का वर्णन जो गुरु नानक देव की रचनाओं में मिलता है, उसका [illegible] अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये सिद्ध गोष्टि का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करना लाभदायक होगा। बताया जाता है कि गुरु जी का [illegible] १५३[illegible] में अचल (बटाला) में सिद्धों से गोष्टी हुई। इससे पूर्व भी वे सिद्धों से गोरखमत्ता में मिले। गुरु जी को सिद्ध-योगियों ने अपने संप्रदाय में लाने का प्रयत्न किया।[315] गुरु जी ने गोरखबानी का [illegible] इन योगियों से [illegible] होगा। किन्तु उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सन्तों की रचनाओं का संग्रह किया। यह गोरखबानी की रचना का प्रयोग उन्होंने किया, और उस में वर्णित आत्मा प्रकृति पर टिप्पणियां कीं, जैसे उन्होंने बाबा फरीद जी के श्लोकों तथा [illegible] राग के पद पर टिप्पणी की। बाबा फरीद की बाणी आदि ग्रंथ में है। अतः उपर्युक्त आदि ग्रंथ के अन्तःसाक्ष्य से भी स्पष्ट है, परन्तु गोरखबानी का प्रभाव देखने के लिये सिद्ध गोष्टि तथा गोरखबानी का उदाहरण मात्र के लिये तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना उचित होगा:

गोरखबानी (प्रसिद्ध गोरखबोध)	सिद्ध गोष्टि (५:१) प्रश्न उत्तर
१- गोरख: स्वामी मन का कौण जीव, जीव का कौण [illegible]। [illegible] का कौण आधार, आधार का कौण रूप।	१- प्रश्न: मन का [illegible] पवन [illegible], पवन [illegible] रस [illegible]। गिआन की मुद्रा कवन [illegible], सिध की कवन कमाई।

308- डा० मधुसूदन, निर्गुण दे। [illegible] पृ० ३१६
(२) [illegible]
309- [illegible] आ०ग्र० पृ० ३३०
310- आ०ग्र० पृ० ३३१
311- [illegible] आ०ग्र० पृ० २२५
312- [illegible] आ०ग्र० पृ० २२५

गोर[illegible]बानी (म[illegible]न्द्र गोरखबोध)

म[illegible]न्द्र: [illegible] मन [illegible] पवन [illegible],पवन [illegible] सुन [illegible]। [illegible] ब्रह्म [illegible]। ब्र[illegible] [illegible] स्वरूप।[318]

२- गोरख: स्वामी [illegible] कौ मन कहां कौ पवन कहां कौ सब्द कहां कौ [illegible]। [illegible] न [illegible] रहै। [illegible] को [illegible] [illegible]॥२॥

म[illegible]न्द्र: [illegible] [illegible] कौ मन [illegible] पवन, [illegible] सब्द, [illegible] कौ [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] म[illegible]न्द्र कहै॥२६॥[319]

३- गोरख: स्वामी[illegible] न [illegible], तब कहां रहता मन। नाभि न [illegible] तब कहां रहिता पवन। रूप न [illegible] तब कहां रहता [illegible] न [illegible] तब कहां रहता चंद॥२७॥

म[illegible]न्द्र: [illegible] [illegible] न [illegible] तब [illegible] रहता मन। नाभि न [illegible] तब निराकार रहिता पवन। रूप न [illegible] तब [illegible] रहिता [illegible]। [illegible] न [illegible] तब [illegible] रहिता चंद।[320]

(नोट: [illegible] देह का वर्णन नहीं)

[illegible] गोसटि (म:१) प्रश्न उत्तर

उत्तर: [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] पिआस न जा[illegible]। [illegible] [illegible] पा[illegible] [illegible] [illegible]॥[317]

२- प्रश्न: [illegible] मन [illegible] कहा [illegible] कौ [illegible] पवना। [illegible] कौ [illegible] [illegible] [illegible] मन [illegible]।

उत्तर: [illegible] मन [illegible] [illegible] गुरमुखि मूल, [illegible] रहै। नाभि पवनु [illegible] कै गुरमुखि [illegible] तत रहै।[319]

३- प्रश्न: [illegible] [illegible] देह न [illegible] तब मनु कै रहता। नाभि कमल [illegible] न [illegible], [illegible] पवन [illegible] रहता। रूप न [illegible] न कोई [illegible] [illegible] लाई। रकतु [illegible] की [illegible] न [illegible], [illegible] की [illegible] नहीं पाई।

उत्तर: [illegible] देह न [illegible] [illegible] [illegible] रहै [illegible]। रूप न [illegible] जाति न [illegible] [illegible] रहता [illegible] [illegible]। [illegible] न [illegible] न [illegible] [illegible] निरंकार। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बिनाणी। साच [illegible] नानक [illegible] [illegible]।[321]

(नोट) [illegible] देह [illegible] [illegible] गया है।

३१७- गोर[illegible]बानी पृ० ५८

३१८- [illegible] [illegible] देवाना। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]पृ० ४१६

३१९- (१) [illegible] ग्रंथ [illegible] दरपण, [illegible], पोथी [illegible]। पृ० २०५६

स्पष्ट सिध गोसटि (५:२) तथा गोरखबानी में मछिन्द्र-गोरखबोध के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि गुरु नानक ने अपनी रचना गोरख की रचना के केवल प्रभाव के अंतर्गत ही नहीं, परन्तु उसको सामने रख कर की है। गुरु नानक ने गोरख-मछिन्द्र-बोध के पदों के पद लेकर सिध गोसटि में उन पर टिप्पणी की है। गोरखबानी के अंशों को सिध-गोसटि के अतिरिक्त आदि ग्रंथ में अन्य स्थानों पर भी ढूंढा जा सकता है।

<u>गोरखबानी:</u> अवधू मन का पवन जीव, पवन का सुनि बैराग।
बैराग का ब्रह्म आधार, ब्रह्म का अकुल रूप।[322]

<u>आदि ग्रंथ:</u> (५:१) मन का जीउ पवन पति, देही देही में देउ समागा।
जो तू देखहि हरि रसु गावै, मनु त्रिपतै हरि लिव लागा।[323]

गुरु रामदास जी मन को ब्रह्म-ज्योति मान कर सत्गुरु की शरण में जीव को उसी ज्योति के सामीप्य स्थापित करने को कहते हैं :-

मन तूं जोति सरूप है, आपणा मूलु पछाणु।।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमति रंगु माणु।[324]

यदि मायावश मन भ्रमण में पड़ जाए तो भी वह ज्योति उसके साथ ही रहती है, इसे पहचानने का एक मात्र साधन गुरु का शब्द है, सांसारिक विचार नहीं:-

जह जह मन तू धावदा, तह तह हरि तेरै नाले।
मन सिआणप छोडीऐ, गुर का सबदु समाले।[325]

---

(२) पैला सुणु [illegible] दा [illegible] [illegible] [illegible] (आ० [illegible] वार-१)

३१६- गोरखबानी पृ० [illegible]
३१७- सिध गोसटि ५:१, पृ० ९[illegible]-९४५
३१८- गोरखबानी पृ० १८६
३१९- आ०ग्रं० पृ० ९४५ सिध गोसटि
३२०- गोरखबानी पृ० १८६
३२१- आ०ग्रं० पृ० ९४५-४६ सिध गोसटि
३२२- गोरखबानी पृ० २०२
३२३- आ०ग्रं० पृ० ५६८
३२४- आ०ग्रं० पृ० ४४१
३२५- आ०ग्रं० पृ० [illegible]०

गुरु अमर दास जी ने मन की चंचलता का परिचय देते हुए कहा है, कि यदि यह सांसारिक विषयों में आसक्त हो जाए तो, इसे उनका मैला प्रति दिन हो जाता है, जिसके कारण जीवात्मा दुःख सहन करता है:-

इहु मनूआ अति सबल है, छडे न कितै उपाइ।[326]
दूजै भाइ दुःख लाइदा बहुती देइ सजाइ।

वस्तुतः यह मन सत्यस्वरूप है, और अपनी इस प्रवृत्ति के कारण सत्य-स्वरूप-ब्रह्म में ही लीन होता है, परन्तु यह अवस्था अहंकार के त्याग से शब्द में लीन होने से प्राप्त होती है:-

इहु मनु साचा सचि रता सचे रहिआ समाइ।
गावण, वेखण, बोलणा सबदे रहिआ समाइ।
बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ।
हउमै मेरा रहि गइआ सचै लइआ मिलाइ।[327]

गुरु राम दास जी, ब्रह्म, बुद्धि, आत्मा तथा मन के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं: मन एक जौहरी है जो बुद्धि के विचार पूर्ण निर्देशन में शरीर स्थित आत्मा में अमूल्य हीरा रूप ब्रह्म देव का पहचान कराता है। मन जौहर-हीरा है, जो ब्रह्म रूप हीरे को परखता है:-

आतम देउ है, आतमु रसि लागै पूज कराजै।
विवेक बुधि सभ जग महि निरमलु विचरि विचरि रसु पीजै।
गुर परसादि पदारथु पाइआ, सतिगुर कउ इहु मनु दीजै।
निरमोलकु अति हीरो नीको, हीरै हीरु बिधीजै।।
मनु मोती सालु है, गुर सबदी जितु हीरा परखि लईजै।[328]

मन में स्थित इस ब्रह्म को केवल सत्यगुरु का शब्द ही पहचान सकता है।

मन माही, मन माही मेरे गोविंदा हरि रंगि रता मन माही जीउ।
हरि रंगु नालि न लखीऐ मेरे गोविंदा। गुरु पूरा अलखु लखाही जीउ।[329]

इसी कारण गुरु अर्जुन देव मन को एक गगन आकार मान कर ब्रह्म-मोती-पदार्थ का उस के अन्तस्तल में अवगाहन करते हैं:-[330]

३२६- आ०ग्र० पृ० ३३
३२७- आ०ग्र० पृ० ३५
३२८- कलिआन म:४ आ०ग्र० पृ०१३२५
३२९- आ०ग्र० पृ० १७३
३३०- आ०ग्र० पृ० १३?।

मन भये प्रभु कृपालीता। ...रता पनि कतारथा।[330]

गुरु का मन में निवास किसी साधु अथवा सन्त गुरु की कृपा से होता है:-

मनु परदेसी आतमा निविग्नी साथ के संगि।[331]

गुरु तेग बहादुर जी मन की चंचलता का परिचय देते हुए कहते हैं, कि केवल तृष्णा के कारण मन स्थिर नहीं होता:-

साधो! इहु मनु गहिओ न जाई।
चंचल त्रिसना संगि बसतु है, याते थिरु न रहाई।[332]

इस तृष्णा तथा कामनाओं के त्याग से मन को स्थिरता प्राप्त होती है:-

साधो! मन का मानु तिआगो।
काम क्रोधु संगति दुरजन की, ताते अहिनिसि भागउ।[333]

वस्तुतः आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने मन के स्वरूप का ज्ञान कराते समय उसकी स्थिति तथा चंचलता का ही ज्ञान नहीं कराया, अपितु साथ साथ उसे स्थिरावस्था पर लाने के लिये भी जोर दिया है। यही आदि ग्रंथ के रचयिताओं का मूल उद्देश्य था, क्योंकि आदि ग्रंथ का उद्देश्य अधिकाधिक दार्शनिक न होकर साधनापरक है, अतः साधना पक्ष में इस ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

१०- आवागमन

गीता में लिखा है, जो जन्म लेता है, वह अवश्य मरता है, तथा जो मरता है उस का जन्म अवश्य होता है।[334] सब जीव आरंभ में अव्यक्त अवस्था में होते हैं।[335] देह के शरीर में निवास करने वाला आत्मा अमर है और कभी नहीं मरता।[336] परन्तु जन्म-मरण तथा आवागमन का चक्र चलता रहता है। भगवान्, मुनि

३३१- आ०ग्रं० पृ० ६३१   ३३२- आ०ग्रं० पृ० २१९

३३३- आ०ग्रं० पृ० २१९

३३४- जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।। २-२७

३३५- गीता २-२८

को करते हैं, हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। मैं उन सब को जानता हूं, पर तू नहीं जानता।[337] उपनिषदों में भी कहा गया है कि मनुष्य इस जन्म से पहले कई जन्मों को भोग चुका है। हे मनुष्यो! उस जन्म जन्मान्तर से अज्ञान निद्रा में सो रहे थे। अब तुम्हें भगवत्कृपा से यह दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसे पाकर एक क्षण भी प्रमाद में मत खोओ।[338] यदि मनुष्य इस जन्म में माया के जाल से छूट कर अमृत, स्पर्श, रूप रस तथा गंध से रहित होकर परब्रह्म में लगता है, तो वह जन्म मरण से छूट जाता है।[339] श्रीवाराहोपनिषद के तीसरे अंश में लिखा है, कि मनुष्यों को अपने दुष्कर्मों का कुफल भोगने के लिये बाध्य होकर कूकर-शूकरादि नाना योनियों में और रौरव कुंभीपाकादि नरकों को प्राप्त होकर भीषण यन्त्रणायें भोगना पड़ती हैं।[340]

सिद्ध - साहित्य में आवागमन

जन्म मरण से मोक्ष की बात सिद्धों ने भी कही है। वे कहते हैं, यदि पिण्ड ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो, तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए।[341] जैन मुनि रामसिंह भी जन्म मरण का भय दूर करना आवश्यक समझते हैं।[342]

नाथ योगी साहित्य में आवागमन।

गोरखनाथ कहते हैं कि मानव जन्म बार बार नहीं मिलता। अतः मनुष्य को किसी सिद्ध पुरुष (गुरु) की शरण में जाकर आवागमन के चक्र से छूटने की बात करनी चाहिए।[343] आगे चलकर गोरखनाथ ने कहते हैं, कि जो इस मर्म को नहीं जानते वे अज्ञानवश होकर, जन्म-मरण तथा आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं:-

भरि भरि खाय सुईंला भांभी, तन का मरम न पाया।
समझाया बोल का पद भेद नीरें, योगी जनम गंवाया।[344]

336- देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। गीता २-३०।

337- बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप। गीता ४-५।

338- उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। कठोपनिषद् १-३-१४।

339- कठोपनिषद- १-२-१८ 340- कल्याण उपनिषद विशेषांक पृ०१५७

341- सन्त सुधा सार- सिद्धसरहपाद, श्लोक ६, पृ० ५

आवागमन तथा गुरु ग्रंथ के अन्य सन्त कवि

नामदेव भी आवागमन को [illegible] करते हैं: [illegible] योनियों में [illegible] है। स्थावर, जंगम कीट तथा पतंगों में इसी की व्याप्ति है:-

[illegible] हैं, राजा [illegible], [illegible] भिखारी [illegible]।
[illegible] पाती [illegible], भोजन में [illegible] नाना रे।
स्थावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि राम समाना रे।[345]

मुसलमान कवि बाबा फरीद जी का भी आवागमन में विश्वास नहीं है:-

फरीदा [illegible] सिराणे [illegible]।
[illegible] वाले [illegible] पाणि।।६७।।[346]

आदि ग्रंथ में गुरु नानक काल के पूर्ववर्ती सन्तों ने आवागमन में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया है। रविदास जी कबीर की स्तुति करते हुए आवागमन के सिद्धान्त को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं:-

हरि के नाम कबीर उजागर। जनम जनम के काटे कागर।[347]

कबीर जी ने नाम देव की पंक्ति 'स्थावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि राम समाना' को लेकर आवागमन के सिद्धान्त में विश्वास को बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है:-

स्थावर जंगम कीट पतंगा। अनिक जनम कीए बहु रंगा।
ऐसे घर हम बहुतु बसाए। जब हम राम गरभ होइ आए।। रहाउ।।
जोगी जती तपी ब्रह्मचारी। कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी।
कहु कबीर प्रभु किरपा कीजै। हारि परे अब पूरा दीजै।[348]

गुरु अर्जुन देव ने कबीर के पद का स्पष्ट अनुकरण करते हुए आवागमन [illegible] के सिद्धान्त से विवेचन किया है। सारी रचना आदि ग्रंथ में उपलब्ध है, यहाँ कुछ अंश प्रस्तुत हैं:-

---

३४२- संत सुधा सार- श्लोक ३४ पृ० २५

३४३- फिरि फिरि भटकत जनम न पायसा, हरि ले सिव पुरुषा सूं नेहा।
गोरखबानी पृ०६७

३४४- गोरखबानी पृ० २१

३४५- आ०ग्रं० पृ० ६८८

३४६- आ०ग्रं० पृ० १३८२

३४७- आ०ग्रं० पृ० ४८७

३४८- आ०ग्रं० पृ० ३२६

कहीं काम कै कीट पतंगा। कहीं जनम गज मिन कुरंगा।
कहीं जनम पंखी सरप होइओ। कहीं जनम हैवर ब्रिख जोइओ।
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ। चिरंकाल इह देह संजरीआ।
कहीं जनम सैल गिरि करिआ। कहीं जनम गरभ हिरि खरिआ।
कहीं जनम साख करि उपाइआ। लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ।
साध संगि भइओ जनमु परापति। करि सेवा भजु हरि हरि गुरमति। ३४६

सूफी कवि मौलाना जलाल-उद्-दीन रूमी के आवागमन के संबंध में विचार गुरु अर्जुन के विचारों से मिलते हैं:-

'धातु की स्थावर अवस्था से मर कर मैं जंगम अवस्था में वृक्ष को प्राप्त हुआ। वृक्ष से मर मैं पशु बना। पशु से मर कर मैं पुरुष बना। फिर मुझे किस बात का डर है? मर कर मुझे कब और कौन सी हानि हुई है। हो सकता है, अगली बार मैं मनुष्य से मर कर फरिश्ता बन जाऊं और मेरे पंख निकल आएं। फरिश्ता बन कर भी मैं ठहरूंगा नहीं, आगे बढ़ूंगा। जो दिखाई देता है, नश्वर है, केवल एक वही (परमात्मा) रहेगा। फिर तो मैं फरिश्तों से ऊपर उठ कर वह हो जाऊंगा जो हमारे संकल्प में नहीं आता। इस लिये फिर मैं शून्य-शून्य क्यों न हो जाऊं, क्योंकि मेरे कानों में अनहद ध्वनि पड़ती है कि मर कर हम सब उसी ब्रह्म में लीन हो जाएंगे।'[350]

इसी विचार को कबीर जी ने भी व्यक्त किया है। आदि ग्रंथ में उनका निम्नलिखित पद देखने योग्य है:-

उदक समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे।
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी, पवन रूप होइ जावहिगे।
बहुरि हम काहे आवहिगे। आवन जाना हुकमु तिसै का हुकमै बुझि समावहिगे।[351]

परन्तु जब तक उस हुकम की पहचान नहीं होती, तब तक मनुष्य पर धन, पर-तन, पर-स्त्री, पर-निंदा तथा विवाद में अनुरक्त होकर आवागमन के चक्र में बार बार पड़ता है, और यह क्रम टूटता ही नहीं:-

---

३४९- आ०ग्रं० पृ० १०७६

३५०- दि रिलीजन ऑफ दि सिख्स (?) ... मैक-... ले० हरिनाम सिंह दून पृ० ६-१०

पर [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]निंदा, [illegible] [illegible]न [illegible]।[352]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]ग न [illegible]।

सन्त रविदास [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] मानव जन्म [illegible] मानते हैं। क्योंकि यह बड़े जन्मों के पश्चात् प्राप्त हुआ:-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।[353]

गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनुष्य जन्म [illegible] [illegible] [illegible] पाने [illegible] [illegible] मानते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त होता है:-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।[354]

गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मानते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] साधारण [illegible] संसार में अस्तित्व [illegible] [illegible] [illegible] है।[355] [illegible] [illegible] [illegible] कारण माया [illegible] [illegible] है।[356]

गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कारण मानते हैं।[357] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।[358] गुरु [illegible] देव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए लिखते हैं:-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] गोविंद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] नथ [illegible] भव [illegible] [illegible]।[359]

३५२- आ०ग्र० पृ० [illegible]३
३५३- आ०ग्र० पृ० [illegible]४
३५[illegible]- आ०ग्र० पृ० ६९६
३५४- आ०ग्र० पृ० ५८०
३५५- [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। आ०ग्र०पृ०८४२
३५६- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। आ०ग्र०पृ०१[illegible]५४
३५७- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible]:४, आ०ग्र०पृ०१२९६
३५८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है। आ०ग्र०पृ०१०६
३५९- आ०ग्र० पृ० १[illegible]०७

मिल जगदीश मिलन की बरीआ। चिरंकाल इह देह संजरीआ। P-176 म.९

[illegible] परापति मानुख देहुरीआ।
गोबिंद मिलण की [illegible] तेरी बरीआ।[३५०]

गुरु तेग बहादुर जी भी मनुष्य को मनुष्य जन्म की दुर्लभता का ज्ञान कराते हुए कहते हैं, कि बड़ा [illegible] से [illegible] में यह मानव जन्म मिला है, यह प्रभु मिलन की बारी है, [illegible] में [illegible] रहा है:-

[illegible] फिरत [illegible] जुग हारिओ मानस [illegible]।
नानकु कहतु मिलन की बरीआ, [illegible] नहीं।[३५१]

[illegible] आवागमन से [illegible] प्राप्त [illegible] मार्ग का कोई [illegible] है। गीता में ज्ञान-योग, कर्म-योग के अतिरिक्त भक्ति-योग अथवा प्रपत्ति-मार्ग का विधान है। [illegible] के त्याग निष्काम [illegible] आत्मसमर्पण [illegible] है। गुरमति [illegible] साधना-मार्ग [illegible] प्रपत्ति-मार्ग से प्रभावित है। [illegible] विद्वानों ने गुरु ग्रंथ के रचयिताओं की [illegible] प्रस्तुत करते हुए, [illegible] नवीन-मार्ग सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु हम [illegible] बिल्कुल नवीन नहीं मानते। [illegible] परंपरागत भक्ति-मार्ग से भिन्न [illegible] है।[३५२] [illegible] विचार है कि गीता [illegible] भक्ति-मार्ग [illegible] परिभाषित रूप है। [illegible] साधना- [illegible] है। गुरु ग्रंथ का साधना-मार्ग गीता के साधना-[illegible], जिसे [illegible] ज्ञान तथा [illegible] ने [illegible] प्रदान कर दिया था। [illegible] साधना-पद्धति पर विचार करते हुए [illegible] परंपरा से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

३५०- [illegible] पृ० ३७८

३५१- [illegible] म: ९, पृ० ६३१-३२

३५२- In fact the Guru invented a somewhat new path of salvation. It is neither Karma Marg, nor strictly Gyan Marg, nor the traditional Hindu Bhakti Marg. [illegible]!

- Philosophy of Sikhism, p-51.

४- [illegible] गुरु ग्रं[illegible] [illegible] का [illegible]ना [illegible]:

१- सबदु [illegible] [illegible]ु [illegible] लपटि [illegible]ु [illegible]। म:१ आ०ग्रं०पृ० ६०

२- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नित [illegible] पाणी।
[illegible] [illegible]साण [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] जाणी। म:१
ग्रं० पृ०२३

साधना के प्रकार

वैदिक साहित्य वेद त्रयी के नाम से प्रख्यात है, जो ज्ञान, कर्म एवं उपासना तीन मार्गों का निर्देश करती है। मानव इन्हीं तीन मार्गों पर चलकर अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है।[1] वैदिक साहित्य की परम्परा के संबंध में विद्वानों ने अनुसंधान किया है और उनका यह मत है कि वेदों का समय आज से दस सहस्र वर्ष पूर्व माना जा सकता है।[2] मानवी वृत्तियों के अनुसार भक्ति के चार भेद गिनाये गये हैं।[3]

१- सात्विकी भक्ति जिसमें मुक्ति की कामना रहती है,

२- राजसी भक्ति जिसमें धन कुटुम्ब की कामना रहती है,

३- तामसी भक्ति जिसमें दूसरों के अहित तथा शत्रुओं के विनाश की कामना रहती है तथा,

४- निर्गुण भक्ति जिसमें कोई कामना नहीं रहती। उसमें मुक्ति तक की कामना का त्याग है।

गीता में भी चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख है:-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। गीता ७-१६

भगवान् अर्जुन से कहते हैं धर्मात्मा लोग, जो मेरी पूजा करते हैं वे चार प्रकार के हैं:-

१- एक तो वे जो विपत्ति में फंसे हैं। वे विपत्ति से मुक्ति चाहते हैं।

२- दूसरे जिज्ञासु, अर्थात वे सीधे-सादे सच्चे लोग जो सत्य-कामा हैं।

३- तीसरे लोग जो धन के इच्छुक हैं, जो अपनी भौतिक स्थिति को सुधारना चाहते हैं।

४- चौथे ज्ञानी लोग हैं, जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया है। रामानुज ने ज्ञान का अर्थ केवल एक के प्रति भक्ति, एक-भक्ति किया है।[4]

१- भक्ति का विकास- पृ० १११

२- साधना और साहित्य- डा० हरस्वरूप माथुर-पृ० १

इन सबमें से ज्ञानी व्यक्ति, जो सदा ब्रह्म के साथ संयुक्त रहता है, और जिसकी भक्ति अनन्य होती है, सर्वश्रेष्ठ है। उसे मैं बहुत अधिक प्रिय हूं, और वह मुझे बहुत अधिक प्रिय है।[५]

वैदिक साधना

भक्ति तीन मार्गों की पावन त्रिवेणी का संगम है। ज्ञान और कर्म सम्पत्ति का प्रभु अनुग्रह के साथ सामंजस्य ही वैदिक भक्ति का आदर्श है। ज्ञान तथा कर्म रूपी वृक्ष का परिणाम रूपी फल उपासना कहलाता है। 'उपासना' का अर्थ है 'प्रभु के समीप बैठना'। उसके समीप बैठकर ही हम उसके अनुग्रह-भाजन, कृपा-पात्र बनते हैं।[६]

वैदिक युग में मानव ज्ञान अपनी शैशवावस्था में था। प्रकृति के प्रत्येक उपकरण तथा उसकी शक्ति में ऋषियों को देवत्व तथा अनन्त शक्ति की प्रतीति हुई। उन्होंने स्तुति-परक ऋचाओं के द्वारा अपना मन: प्रतीति को अभिव्यक्त किया। दैवी शक्तियों की पृथक् पृथक् आराधना अथवा बहु देवत्व उन्हें बहुत दिनों तक संतुष्ट नहीं रख सका। उनका बहुदेवत्व एक सृष्टा में सन्निहित हो गया। यह कार्य बुद्धिजन्य नहीं कहा जा सकता। निरंतर चिंतन के फलस्वरूप प्रतिभा-ज्ञान से ही यह कार्य संपन्न हुआ होगा। समस्त स्थावर-जंगम उसी सृष्टा के अंगों के रूप में कल्पित हुए। यही नहीं जो कुछ था, जो कुछ है, तथा जो कुछ होने वाला है, वह सृष्टा पुरुष ही है।[७] उपरिलिखित 'पुरुष सूक्त' की भान्ति 'आदि सूक्त' में कहा गया है: 'अदिति ही आकाश है, अदिति अंतरिक्ष है, अदिति माता है, अदिति ही पिता है तथा पुत्र है। अदिति ही समस्त देवता है, अदिति ही पंचजन है। जो कुछ उत्पन्न है तथा जो कुछ उत्पन्न होने वाला है अदिति ही है।[८]

वैदिक ऋषि सृष्टा की स्तुतियों से तृप्त न रह सके। देवताओं तथा सृष्टा की प्रसन्नता के हेतु वे यज्ञरूप कर्मों में संलग्न हुए तथा शनै: शनै: कर्मों के ही जाल में आबद्ध हो गए।[९] वैदिक ऋचाएं देवताओं की उपासना में

३- श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय २६, २ श्लोक- ७-१४ पर से 'भक्ति आन्दोलन का अध्ययन' पृ०१४ पर उद्धृत।

४- भगवद्गीता-भाष्य-राधा कृष्णन (अनुवाद) पृ० २१७-२१८

५- भगवद्गीता- ७-१७

भक्ति और श्रद्धा के भावों से भरपूर है- आरण्यक का उपासना काण्ड तथा उपनिषद्, विश्वास और उपासना के पक्ष, भक्ति-मार्ग की नींव कहे जा सकते हैं[10] क्योंकि कर्मकाण्ड की प्रधानता होने पर भी वैदिक काल में सहस्रधारा ज्ञान गंगा का कोई भी स्रोत शुष्क नहीं हुआ था। नवीन स्रोतों से धारा में जहां वेग आता गया, शक्ति आती गई वहां प्राचीन स्रोत क्षीण-काय होते हुए भी निर्मल होते गये। कर्म और यज्ञ की मान्यता बढ़ जाने पर वैदिक संहिताओं का एक कार्य यह भी हो गया कि वह उनके विधि-विधान का निर्देश करें। यज्ञ कैसे हो, वेदी कैसे बने, किन मंत्रों के द्वारा किस देवताओं का आवाहन हो, यज्ञ-शेष के कौन भागी हों- आदि तत्संबंधित अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया।[11]

विद्वानों का विचार है कि हिन्दू विचारधारा के मध्ययुग में धर्म का जो स्वरूप विचारों की जो परिपक्वता तथा विश्वास और श्रद्धा का जो अखंड स्रोत बहता मिलता है, उसका श्रीगणेश वैदिक काल में ही हो गया था। वेदों में निस्संदेह अनेकेश्वरवाद का दिग्दर्शन होता है, प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व को देवी देवता के रूप में स्वीकारा गया है, उनके यशोगान हेतु स्तव-पाठ तथा प्रसन्नता के लिये यज्ञ-विधान रचा जाता रहा है, तथापि प्रकृति के उस रूपों और विविध व्यवहार-नर्तन की पृष्ठभूमि में किसी अनुपम और रहस्यमयी शक्ति की सत्ता भी स्वीकार की गई है। इस स्वीकृति को चरम विकास तक पहुंचाने का श्रेय निर्विवाद उपनिषदों को दिया जायेगा।[12]

६- भक्ति का विकास- पृ० १११

७- पुरुष एवदं यद्भूतं यच्च भव्यम्।

ऋग्वेद - १०-९०-२

८- ऋग्वेद- १-८९-१०

९- भक्ति काव्य में रहस्यवाद-डा० रामनारायण पांडेय- पृ० २३

१०- सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण- पृ० ७

११- भक्ति काव्य में रहस्यवाद- पृ० २३

१२- संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण- ७

जिस निर्गुण तथा सगुण भक्ति का विकास मध्ययुग में हुआ, उसका उल्लेख हमें वैदिक काल में ही प्राप्त हो जाता है। यजुर्वेद में प्रभु के निर्गुण और सगुण स्वरूपों का वर्णन इस प्रकार हुआ है: प्रभु प्राकृत गुणों से विहीन होने के कारण निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने के कारण सगुण कहलाता है। मंत्र में अकायम् अव्रणम्, अस्नाविरम्, अपापविद्धम् शब्दों द्वारा प्रभु के निर्गुण स्वरूप का वर्णन किया गया है और शुक्रम, शुद्धम, कवि: मनीषी, परिभू: और स्वयंभू: शब्दों द्वारा उनका सगुण रूप प्रकट हुआ है।[१३] ऋग्वेद ७-४-४ में प्रभु को अकवियों में कवि और मर्त्यों में अमृत कहा गया है।[१४]

भक्ति अथवा साधना का औपनिषदिक स्वरूप

भक्ति अथवा ईश्वर में दृढ़ चित्त निष्ठा का सिद्धान्त परवर्ती उपनिषदों में सविस्तार प्रयुक्त किया गया है।[१५] डा० मन-मोहन सहगल लिखते हैं, भक्ति का शब्द सर्वप्रथम उपनिषदों में ही प्रयुक्त हुआ है।[१६] किन्तु डा० रति भानु सिंह नाहर ने 'भक्ति' शब्द के वैदिक प्रयोग का भी उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि ऋग्वेद संहिता (१-८-१२७-५) में 'भक्त' तथा 'अभक्त' शब्द आते हैं पर इन का अर्थ सायण ने 'सेवाभाज' तथा 'असेवामान' अर्थात पूजने वाले और न पूजने वाले ठीक ही लिया है।[१७] इस में सन्देह नहीं कि वैदिक भक्तों तथा गीता के भक्तों का स्वरूप एक नहीं। भगवान् ने गीता में वैदिक भक्तों को पाप मुक्त होकर यज्ञों द्वारा उपासना करते हुए स्वर्ग लोक की प्राप्ति हुए बताया है, क्योंकि वे ऐसी कामना करते हैं।[१८] तथा विशाल स्वर्ग लोक का आनन्द लेने के पश्चात् पुण्य समाप्त होने के पश्चात पुन: मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं।[१९] परन्तु गीता के भगवान् अपने भक्तों को जो अनन्य भाव से सदा अध्यवसायपूर्वक उनका चिंतन करते हैं, स्वयं अपने में मिला लेते हैं, और तब वे गमनागमन के बंधन से छूट जाते हैं।[२०]

१३- स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम् शुद्धमपापविद्धं।
कविर्मनीषी परिभू: स्वयं भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधात् शाश्वतीभ्य: समाभ्य: ।। यजु० ४०-८
भक्ति का विकास पृ० ११६ पर उद्धृत।

१४- भक्ति का विकास- पृ० ११६

१५- "The doctrine of Bhakti or single-minded devotion to God is clearly evident in ... (and the six ...

× "Bhakti" by Jadunath Sinha, quoted in Sant Kavya ka Darshnik Vishleshan - Page 8.

VISHLESHAN, P-8.

बृहदारण्यक उपनिषद् में रहस्यमयी ब्रह्म ज्ञान का उपदेश पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त किसी अन्य को न देने का आदेश है। सत्य काम जाबाल ने अपने शिष्यों को यही उपदेश दिया था।[२१] श्वेताश्वतर उपनिषद में भी पुत्र या शिष्य तथा प्रशांत चित्त वाले पुरुष को ही ब्रह्मविद्या देने का विधान है। छान्दोग्य उपनिषद् में तो यहां तक कहा गया है कि ज्येष्ठ पुत्र या अन्तेवासी शिष्य के अतिरिक्त यदि कोई अन्य व्यक्ति आचार्य को धन से परिपूर्ण तथा सागर परिवेष्टित समस्त पृथ्वी भी प्रदान करे, तो भी उसे ब्रह्मज्ञान न देना चाहिए।[२३] इससे सिद्ध होता है कि उपनिषद् काल तक आते आते ब्रह्म विद्या पूर्णतया रहस्यमयी तथा गोपनीय मान ली गई थी।[२४]

मुंडकोपनिषद् में विद्याएं दो प्रकार की मानी गई हैं:- परा तथा अपरा। अपरा के अन्तर्गत वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष आदि का ज्ञान है। दूसरी पराविद्या है, जिसके द्वारा अक्षर का ज्ञान होता है।[२५] उपनिषद काल में ही परा विद्या अर्थात ब्रह्मविद्या को सर्वश्रेष्ठ माना जाने लगा था। और यह भी माना जाने लगा था कि केवल मन्त्र ज्ञान के द्वारा मनुष्य शोक से रहित नहीं होता तथा समस्त शास्त्रों एवं वेदों का अध्ययन करके भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्य मुक्ति को प्राप्त नहीं होता। छन्दोग्य उपनिषद में नारद के कथन द्वारा ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता एवं वरेण्यता पर पूरा बल दिया गया है। नारद ने सनत्कुमार से कहा- भगवन् ! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद को जानता हूं। इसके अतिरिक्त इतिहास पुराण रूप पंचम वेद, वेदों का वेद, श्राद्ध, कल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिशास्त्र, तर्क शास्त्र, नीति देव विद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षात्र विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्पविद्या, जन विद्या और नृत्य, संगीत आदि सब में

१६- The word of 'Bhakti' occurs for the first time in Upanishads-The cult of Bhakti by Jadu Nath Sinh, quoted in Sant Kavya Ka Darshnik Vishleshan- p-8.

१७- भक्ति आन्दोलन का अध्ययन-पृ० १७

१८- गीता -६-२१

१९- गीता ६-२२ तथा गीता ८-१५

२०- गीता ११-२१

२१- बृहदारण्य उपनिषद्-६-३-१२

जानता हूं।[26] परन्तु हे भगवान्, मैं केवल मंत्रवेत्ता हूं। आत्मवेत्ता नहीं, मैंने आप जैसे तत्त्वदर्शियों से सुना है कि आत्म वेत्ता शोक से मुक्त हो जाता है और हे भगवान! मुझे शोक होता है, अस्तु मेरा शोक से निस्तार कीजिए।[27] इस आख्यान से स्पष्ट है कि मंत्र और दर्शन के ज्ञाता तथा रहस्यात्मक-दार्शनिक में भेद है। दार्शनिक तत्त्व का बौद्धिक ज्ञान हो जाने पर भी साक्षात्कार के अभाव में मुक्ति एवं शान्ति नहीं मिलती।[28] मुण्डकोपनिषद् के कुछ उदाहरण भी उपर्युक्त वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत किए जा सकते हैं। परमात्मन् का ज्ञान वेदाध्ययन, बुद्धि या गम्भीर शिक्षण से प्राप्त नहीं हो सकता, केवल वह सौभाग्य शाली महापुरुष जिस पर उसकी कृपा होती है, और व जिसको वह चुन लेते हुए वह जिसके सम्मुख अपने को अनावृत करता है, वही परमात्मन् को पहचान सकता है, दूसरा कोई नहीं।[29] औपनिषदिक भक्ति का यह स्वरूप आदि ग्रंथ में इसी प्रकार सुरक्षित है।

२२- श्वेताश्वतर- ६-२३

२३- छान्दोग्योपनिषद्-३-११-६।

२४- भक्ति काव्य में रहस्यवाद- पृ० २६

२५- तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म

(१) यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। मुं० उ० १-१-४

(२) तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा

कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते । वही १-१-५

२६- छान्दोग्यउपनिषद्- ७-१-२

२७- वही -७-१-३

२८- भक्ति काव्य में रहस्यवाद पृ० २६

२९- मुण्डकोपनिषद्- ३-२-३

उत्तर वैदिक कालीन भक्ति

षट् दर्शन और भारतीय साधना

षट् दर्शनों में योग शास्त्र भक्ति के क्षेत्र में विचित्र स्थान रखता है। उसका परम लक्ष्य है जीव के निजी स्वरूप की पहचान। वह रहस्यवादियों की भांति इस स्वरूप को भावात्मक न बना कर औपायात्मक वैज्ञानिक रूप स्वीकार करता है।[30] योग में आरण्यकों के दृष्टिकोण का विकसित रूप माना गया है।[31] योग के अनुसार ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं, अपितु वह केवल योगसिद्धि में मार्गदर्शन करने वाला परम-गुरु-तुल्य है। सांख्य की भांति योग का भी परम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति अथवा शुद्ध आत्मास्वरूप में स्थित होना है, परन्तु योग उसके लिये क्रियात्मक उपाय बताता है। मनुष्य की चित्तवृत्तियों की स्वभाविक गति बाह्योन्मुख होती है। जब वह साधना के द्वारा उन्हें अन्तर्मुख कर लेता है, तभी उसे आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, अत: चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है।[32] चित्तवृत्ति निरोध से दृष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।[33]

पुराणों में भक्ति

श्री-मद्-भागवत के एकादश स्कंध के चतुर्थ अध्याय में भक्ति की महिमा इस प्रकार वर्णित हुई है:-[34]

> न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
> न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।
> भक्त्याऽहमेकया ग्राह्य: श्रद्धयात्मा प्रिय सताम्।
> भक्ति: पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।। (२[illegible])।।

30- 'Yoga is seeking of union by the intellect, a science; Mysticism, is the seeking of the same union by emotion. (Quoted from An Introduction to Yoga by Annie Besant, P.[illegible], in [illegible] Kavya [illegible], page 10).

31- वही पृ० १० पर ब्रजमोहन गुप्त- हिन्दीकाव्य की रहस्यात्मक प्रवृत्तियां पृ० ५ पर से उद्धृत।

32- योगश्चित्त वृत्ति निरोध:। तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्। पातंजल योगदर्शन १-२-३ से पृ० २७१ पर, मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना में उद्धृत।

भगवान् उद्धव से कहते हैं कि मैं न योग के द्वारा और न सांख्य (ज्ञान) के द्वारा ही प्राप्त होता हूं। मेरी प्राप्ति का सुलभ साधन तो भक्ति है।[35] एक निष्ठा से की हुई मेरी भक्ति चाण्डाल तक को पवित्र कर देती है। श्लोक २४,२५ और २६ में लिखा है कि जो गद गद वाणी से द्रवितचित्त हो, कभी रोता हुआ कभी हंसता हुआ कभी लज्जा छोड़ गाता हुआ और नाचता हुआ मेरी भक्ति में निरत होता है वह इस निखिल विश्व को पवित्र कर देता है। जैसे अग्नि द्वारा स्वर्ण का मल दूर होकर फूंकने पर स्वर्ण अपने रूप में मिल जाता है, उसी प्रकार मेरे भक्ति योग से कर्म विपाक को दूर करता हुआ आत्मा मुझे ही प्राप्त कर लेता है। मेरे पवित्र चरित्रों का श्रवण एवं ध्यान करता हुआ आत्मा जैसे जैसे शुद्ध होता जाता है, वैसे ही वैसे अंजनाजित आंखों की तरह वह सूक्ष्म वस्तु के दर्शन करने लगता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत् के ऊपर उद्धृत वर्णन से भक्ति के स्वरूप के संबंध में नीचे लिखी बातें ज्ञात होती हैं:[36]

१- भगवान् भक्ति द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

२- योग, ज्ञान, स्वाध्याय, जप अर्थात् वानप्रस्थ और त्याग अर्थात् सन्यास प्रभु प्राप्ति के वैसे साधन नहीं हैं।

३- भक्ति में एक निष्ठा होनी चाहिए।

४- भक्ति से चित्त द्रवित हो जाता है और वाणी गद्गद हो उठती है।

५- भक्त कभी प्रभु के वियोग में रोता है, कभी उनके संयोग से हंसता है और कभी अतिभिभूत भावना में लज्जा छोड़कर गाता और नाचता है।

६- भक्ति से भक्त में पवित्रता आती है जो उस के संसर्ग में आने वालों को पवित्र करने वाली है।

७- भक्ति से कर्म-विपाक नष्ट होता है, और उसके नष्ट होने पर भगवान् प्राप्त होते हैं।

३३- मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना- पृ० २७१

३४- भक्ति का विकास- पृ० ३०२

८- भक्ति में भगवान् के चरित्रों का श्रवण एवं ध्यान करना चाहिए।

९- शुद्ध हुआ आत्मा ईश्वर जैसी सूक्ष्म वस्तु के दर्शन करता है।

शांडिल्य भक्ति सूत्र और नारद भक्ति सूत्र

ऐसा बताया जाता है कि यह दोनों सूत्र गुप्त साम्राज्यकाल तक बन चुके थे। दोनों में से शांडिल्य सूत्र को पुराना बताया जाता है, क्योंकि नारद भक्ति सूत्र में शांडिल्य का नाम लिया गया है, और यह नाम पूर्ववर्ती सन्त भक्तों के नाम के साथ आया है।[37]

उक्त दोनों सूत्रों में भक्ति का स्वरूप : नारद भक्ति सूत्र संख्या २[38] और शाण्डिल्य भक्ति सूत्र संख्या २[39] के अनुसार प्रभु में पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है।[40] भागवत में भी भक्ति की यही परिभाषा दी गई है। भगवान में हेतुरहित निष्काम, एकनिष्ठायुक्त, अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है। यही पुरुषों का परम धर्म है, इसी से आत्मा प्रसन्न होता है।[41] भागवत में नवधा भक्ति का भी वर्णन है। प्रभु के गुणों का श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य भाव, सख्यभाव और आत्म निवेदन भक्ति के ये नौ प्रकार हैं।[42]

गीता में भक्ति का स्वरूप

भारतीय दार्शनिक विचार की प्रत्येक प्रणाली हमारे सम्मुख सर्वोच्च आदर्श तक पहुंचने की एक व्यावहारिक पद्धति प्रस्तुत करती है। भले ही हम प्रारंभ विचार से करते हैं, परन्तु हमारा उद्देश्य विचार से परे क्रियात्मक अनुभव तक पहुंचना होता है।[43]

३५- गीता अ० १८ श्लोक ४८,५०,५१ में इस भक्त का लक्षण इन्हीं शब्दों में समर्पित करती हूं।

३६- भक्ति का विकास- ३०३

३७- वही, ३०१

३८- सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।। नारद भक्ति सूत्र- २

३९- सा परानुरक्तिरीश्वरे। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र-२

४०- भक्ति का विकास- ३०६

४१-

योग और गीता

भगवद्गीता हमारे सम्मुख केवल एक आधि विद्या (ब्रह्म विद्या) ही प्रस्तुत नहीं करता, अपितु एक प्रकार का अनुशासन (योग शास्त्र) भी प्रस्तुत करती है। योग शब्द युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है बांधना या जोड़ना। योग का अर्थ है अपनी आत्मिक शक्तियों को एक जगह बांधना, उन्हें सन्तुलित करना और उन्हें बढ़ाना। अपने व्यक्तित्व के तीव्रतम केन्द्रीकरण द्वारा खिंचाव से पर अनुभवातीत वास्तविकता तक पहुंच, आत्मा अपने आपको अपने कारागार से मुक्त कर अपने आन्तरिकतम अस्तित्व तक पहुंच जाता है।[44]

गीता हमारे सम्मुख एक सर्वांग संपूर्ण योग शास्त्र प्रस्तुत करती है, जो विशाल लचीला और अनेक पहलुओं वाला है, जिसमें आत्मा के विकास और ब्रह्म तक पहुंचने के विविध और सम्मिलित हैं। विभिन्न प्रकार के योग उस आन्तरिक अनुशासन के विशिष्ट प्रयोग हैं, जो आत्मा की स्वतन्त्रता और एकता के एक नये ज्ञान और मनुष्य जाति के एक नये अर्थ तक ले जाता है। इस अनुशासन से संबद्ध प्रत्येक वस्तु योग कहलाती है, जैसे ज्ञानयोग अर्थात् ज्ञान-मार्ग भक्ति योग, भक्ति मार्ग, या कर्मयोग अर्थात् कर्म का मार्ग।[45]

ज्ञान और गीता

गीताकार ने ज्ञान को श्रेष्ठ बताया है।[46] यदि मनुष्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी ज्ञान-नौका के द्वारा वह निःसंदेह संपूर्ण पापों से मुक्त हो जायेगा।[47] इस संसार में ज्ञान के समान

४१- स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति।।

भागवत १,२,६, से भक्ति का विकास पृ० ३०६ पर उद्धृत।

४२- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं स सख्यमात्म निवेदनम्।

भागवत- ७-५-२३ से पृ०३०६ पर भक्ति का विकास में।

४३- भगवद्गीता- परिचयात्मक निबंध राधा कृष्णन- पृ० ५४

४४- वही पृ० ५५

४५- वही पृ० ५५

४६- भक्ति गीता में रहस्यवाद- पृ० ५०

पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को बहुत काल से अपने आप समत्व बुद्धियोग द्वारा अच्छी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण हुआ पुरुष आत्मा में अनुभव करता है। गीताकार ज्ञान की श्रेष्ठता को घोषित करते हुए कहते हैं। इस पृथ्वी पर ज्ञान के सदृश पवित्र और कोई वस्तु नहीं है।[48] गीताकार शुष्क तार्किक ज्ञान को महत्व नहीं देते। उनका कथन है, श्रद्धा-पूर्ण व्यक्ति जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, यदि वह ज्ञान प्राप्ति के हेतु तत्पर होता है, तो वह ज्ञान को प्राप्त कर लेता है और शीघ्र ही सर्वोच्च शान्ति को प्राप्त कर लेता है।[49] परन्तु जो मनुष्य श्रद्धा-विहीन तथा संशयात्मक स्वभाव का है, वह अज्ञानी मनुष्य विनष्ट हो जाता है। ऐसे संशय-युक्त-पुरुष के लिये लोक तथा परलोक, दोनों में कहीं भी सुख नहीं है।[50]

डा० राधाकृष्णन लिखते हैं, गीता में जिस आधिविधक विचारधारा को स्वीकृत किया गया है, वह सांख्य दर्शन की है, जिसमें कुछ आधार भूत हेर-फेर कर दिए गए हैं। परमात्मा में गंभीर निष्ठा और मुक्ति में विश्वास के लिये तीन वस्तुओं को मानने की आवश्यकता होती है। एक तो आत्मा जिसको मुक्त किया जाना है, दूसरे वह बंधन जो उस आत्मा को बांधे हुए है, और जिससे उसे मुक्त किया जाना है, और तीसरे परमात्मा, वह सत्ता जो हमें इस बंधन से मुक्त करती है।

सांख्य दर्शन में पुरुष (आत्म) और प्रकृति (अनात्म) के बीच द्वैत को स्पष्ट किया गया है। गीता में इन दोनों को परमात्मा के अधीन बताया गया है। आत्माएं अनेक हैं और वे सदा पृथक रहती हैं। आत्मचेतन जीवन के सब परिवर्तनों के पीछे विद्यमान स्थायी सत्ता है। यह आत्म सामान्य अर्थों में प्रयुक्त आत्मा नहीं है, अपितु वह विशुद्ध निष्क्रिय, स्वतः प्रकाशित मूल तत्व है, जो न तो संसार से निकला है न संसार पर निर्भर है और न जिसका निर्धारण ही संसार द्वारा किया जाता है। वह अद्वितीय और अखंड है। मनुष्य आत्म नहीं है, अपितु आत्म उसमें है और मनुष्य आत्म बन सकता है।[51]

४७- गीता- ४-३६

४८- गीता- ४-३८

४९- गीता- ४-३९

५०- गीता- ४-४०

५१- भगवद गीता परिकल्पना सि.सं-४०-४१

कर्म और गीता

कर्म का महत्त्व दर्शाते हुए गीताकार लिखते हैं, कर्म अकर्म से अधिक अच्छा है। बिना कर्म के शारीरिक जीवन भी चला नहीं रह सकता।[52] कर्म का मूल ब्रह्म को माना गया है।[53] गीता में वैदिक याज्ञिक कर्मों के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है। यज्ञ से प्रसन्न होकर देवता अभीष्ट सुख भोग प्रदान करते हैं।[54] वे सन्त व्यक्ति जो यज्ञ के बाद बची हुई वस्तु (यज्ञशेष) का उपभोग करते हैं, सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।[55] परन्तु आत्मानुरक्त व्यक्ति के लिये गीताकार ने किसी कर्म की आवश्यकता नहीं बताई। उसे कर्तव्य भावना से मुक्त कहा है। वह कभी कर्तव्यहीनता नहीं, अपितु कर्तव्य की भावना से या अपने अस्तित्व के प्रगतिशील रूपान्तरण के लिये कार्य नहीं करता, अपितु इसलिये कार्य करता है कि उसका पूर्णता को प्राप्त स्वभाव कर्म में स्वतः प्रवृत्त हो जाता है।[56] भगवद्गीता हमारे सम्मुख एक ऐसा धर्म प्रस्तुत करती है, जिसके द्वारा कर्म के नियम से, कर्म और उसके फल की स्वाभाविक व्यवस्था से, ऊपर उठा जा सकता है।[57]

भक्ति और गीता

यद्यपि गीताकार के मत में ज्ञान और कर्म भी श्रेयस्कर हैं, परन्तु उसका सब से अधिक मान्य मत ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण ही ज्ञात होता है।[58] गीताकार सच्चे योग का वर्णन करते हुए कहते हैं, भगवान् में मन को एकाग्र करके निरंतर उसी के ध्यान में लगे हुए जो भक्त जन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से निष्ठापूर्वक उस परमेश्वर को भजते हैं, ऐसे भक्त योगियों में अति उत्तम योगी, भगवान् को मान्य हैं।[59] जो भगवत परायण भक्त जन संपूर्ण

५२- गीता- ३- ८

५३- गीता- ३- १५

५४- गीता- ३- १२

५५- गीता- ३- १३

५६- गीता- ३- १९- राधाकृष्णन पृ० १४१

५७- भगवद्गीता- परिचयात्मक निबंध-७७

५८- भक्ति में रहस्यवाद ॥ पृ० ५०

५९- गीता- १२-२

कर्मों को भगवान् के प्रति अर्पण करके अनन्य ध्यान योग से चिन्तन करते हुए उसकी उपासना करते हैं, भगवान् उन प्रेमी भक्तों का संसार सागर से शीघ्र ही पार कर देता है।[६०] भक्ति का स्वरूप भी गीताकार ने प्रस्तुत किया है, संक्षेप में इस प्रकार है, अनासक्ति से ध्यान योग में लीन सुख-दुःख, लाभ-हानि में समान रूप से संतुष्ट रहने वाला जो दृढ़ निश्चयवान कर्मित मन और बुद्धि दोनों को ही मुझ(भगवान्) में अर्पण कर देता है, ऐसा निश्चयवान भक्त निश्चय ही भगवान् को प्रिय होता है।'[६१]

कर्म-ज्ञान और भक्ति समन्वय

डा० रामनारायण पाण्डेय लिखते हैं, 'संक्षेप में हमें यह कहना होगा कि गीता में अर्जुन ही वह परम-साधक है, जो सब प्रकार से श्रद्धावान् होकर गुरु के बताए मार्ग पर चलकर सभी कर्मों में आसक्ति त्याग कर, परमात्मा के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करके उसका साक्षात्कार करता है, तथा उसका अवाङ्मुख, अतीन्द्रिय साक्षात्कार का वर्णन करता हुआ वह विस्मय, जिज्ञासा, भय तथा पुलक से गद् गद् हो जाता है। यहां हम कह सकते हैं कि यही परमात्मा का वह रहस्यात्मक प्रत्यय है जिसके लिये रहस्यवादी साधक निरंतर लालायित रहता है। यही उसका साध्य तथा सिद्धि है।'[६२]

डा० राधाकृष्णन लिखते हैं, 'गीता में भक्ति भौतिक प्रेम नहीं है, बल्कि अपेक्षाकृत अधिक चिन्तनात्मक और मननात्मक होता है। यह ज्ञान के आधार पर टिकी है परन्तु स्वयं ज्ञान नहीं है। इसमें योग पद्धति का कोई निर्देश निहित नहीं है और न भगवान् का अनुमानिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा ही निहित है। शांडिल्य ने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यह भक्ति स्वयं ज्ञान के बिना भी आत्मिक शान्ति प्रदान करती है, जैसे गोपियों को प्राप्त हुई था। भक्त में एक अतिशय विनय की भावना होती है। अपने आराध्य भगवान् की उपस्थिति में वह अपने आप को कुछ भी नहीं समझता। परमात्मा विनम्रता से जो कि आत्मा का पूर्ण आत्मसमर्पण है, प्रेम करता है।'[६३]

६०- गीता- १२-७

६१- गीता- १२-१४

६२- भक्ति काव्य में रहस्यवाद।

६३- दैन्यप्रियत्वात्। नारद भक्ति सूत्र- २७ से भगवद्गीता राधा कृष्णन-पृ० ६६ पर उद्धृत।

वैष्णव-भक्ति का विकास

डा० मुन्शी राम लिखते हैं कि महाभारत के नारायणी उपाख्यान का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि नारायण एक ऋषि थे और स्वायंभुव मन्वन्तर के सत युग में उत्पन्न हुए भगवान की चार अवतारभूत विभूतियों में से एक थे। तीन अन्य विभूतियां- नर, हरि और कृष्ण थीं। हरि और कृष्ण के संबंध में महाभारत मौन है पर नर और नारायण के व्यक्तित्व पर उस ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। महाभारत के अनुसार नर और नारायण बदरिकाश्रम में तप करते थे। जब नारद ने उन के पास जा कर पूछा:- समस्त संसार तो आप की पूजा करता है, फिर ऐसा कौन सा देव है, जिस की आप पूजा करते हैं? नारायण ने इस के उत्तर में नारद से कहा था:- जो परमात्मा संपूर्ण प्राणियों का अन्तरात्मा, त्रिगुणातीत, और त्रिगुणात्मिक प्रकृति का जनक है, वह सत- असत् रूप परमात्मा हम दोनों, नर और नारायण की उत्पत्ति का कारण है। हम दोनों उस की पूजा करते हैं। नारायण ऋषि की पूजा को महाभारत में ज्ञानयोग का नाम दिया है। इस ज्ञान योग का संबंध ध्यान-धारणा आदि से था। प्रभु का सदैव स्मरण करना, सर्वात्मना उसकी शरण ग्रहण करना, निरंतर उसी के ध्यान में लीन रहना- इस पूजा के प्रमुख अंग थे। यज्ञ का इन में कोई स्थान न था। नारायण ऋषि के पश्चात् महाभारत चित्रशिखंडी नाम के सात ऋषियों की तपस्या का उल्लेख करता है, जिन्हों ने पांचरात्र शास्त्र का निर्माण किया था। इन ऋषियों ने एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप कर के भगवान् नारायण की आराधना की थी। यहां भगवान् का भी नाम नारायण आ गया है और आराधना के अंतर्गत यज्ञ को कोई स्थान नहीं दिया गया है। वैष्णव भक्ति का यह प्रथम युग प्रभु के प्रति ज्ञान-ध्यान परायणता का युग है, जिसे निवृत्ति प्रधान युग भी कहा जा सकता है।[६४]

राजा वसु उपरिचर के साथ वैष्णव भक्ति का दूसरा युग प्रारंभ होता है। इस में अहिंसक यज्ञों की प्रधानता है और आरण्यक विधि से देवों को भाग अर्पित किये जाने का वर्णन है। यह युग प्रवृत्ति तथा निवृत्ति

६४- भक्ति का विकास- पृ० ३९३

दोनों को अपनाए हुए है। बृहस्पति ने राजा उपरिचर को जो शास्त्र पढ़ाया उस में इन दोनों धाराओं की मान्यता थी। राजा उपरिचर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है जो प्रवृत्ति मूलक है, तथा उसकी तपश्चर्या द्वारा भगवान् के दर्शन करता है, जो निवृत्ति मूलक है। निवृत्ति परायणता में मानस जप के साथ इन्द्रिय-शून्यता, निराकारिता तथा अविचल एवं अनन्य भक्ति की स्थिति आती है। वैष्णव भक्ति के इस दो युग भागवतों के दो सांप्रदायिक भेदों-पांचरात्रों तथा वैखानसों के लिये एक समान हैं। तीसरे युग में दोनों संप्रदायों का रूप पृथक् पृथक् हो जाता है। वैखानस वैदिक कर्मकाण्ड से चिपटे रहते हैं, पर पंचरात्र उस से भिन्न पथ का अनुसरण करते हैं।[65]

वैष्णव भक्ति के तृतीय युग में अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। जिस नारायण ऋषि के अवतार श्री कृष्ण माने गये, उस नारायण ऋषि को भी भगवान् का अवतार स्वीकार किया गया। इस प्रकार अवतार शृंखला को परमेश्वर से संयुक्त कर दिया गया। जिस यज्ञ की वैष्णव भक्ति के द्वितीय युग में अपनी प्रतिष्ठा थी, और जिस में औषधि का हवि दी जाय या अन्न की, इस विषय में उपरिचर राजा के समक्ष एक सन्देह बना रहा, उस यज्ञ का रूप भी तृतीय युग में परिवर्तित कर दिया गया। द्रव्यमय यज्ञ के स्थान पर भावमय यज्ञ की प्रतिष्ठा हुई।[66] जनता को बहिर्मुख बनने की अपेक्षा अन्तर्मुख बनने का अवसर मिला।

जब भागवतों को ब्राह्मणों में भी एक दल ऐसा मिल गया जो सामान्य यज्ञों के विषय में उनके साथ एक मत था, साथ ही वेद में जिसकी अटूट श्रद्धा थी, तो भागवत और वैदिक धर्म दोनों मिलकर एक हो गये। ब्राह्मणों ने भागवत धर्म के अभिनव प्रतिष्ठाता श्री कृष्ण को दिव्य विभूति के रूप में ईश्वर का अवतार स्वीकार कर लिया। उन के परिवार वालों को भी उन के साथ संयुक्त करके चतुर्व्यूह के अन्दर स्थान दिया। गीता में चतुर्व्यूह की प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर नहीं होती, पर वह महाभारत के नारायणी उपाख्यान में विद्यमान है। गीता श्री कृष्ण के कुछ समय पश्चात् बनी होगी, पर महाभारत का यह उपाख्यान निश्चित रूप से बहुत बाद

65- वही

66- भक्ति का विकास- ३७४

में बना। भक्ति के इस युग के साथ पूर्ति युग का प्रारंभ होता है। इसे वैष्णव भक्ति का चतुर्थ युग कह सकते हैं। पांचरात्र संहितायें इसी युग की देन हैं।[६७]

वैष्णव भक्ति के पंचम युग में भगवान की लीलाओं को विशेष रूप से स्थान मिला। श्री कृष्ण जी जिन लीलाओं का गुणगान इस पंचम युग में हुआ उन्हें भागवत में भी स्थान दिया गया, किन्तु चमत्कार युक्त रूप में नहीं। हिन्दी साहित्य की वैष्णव भक्ति कविता का काल इस पंचम युग से आरम्भ होता है।[६८]

हठयोग

योगदर्शन में योग का रूप भी है वर्णन कर आये हैं। हठयोग साधना की मुख्य धारा शैव रही है। और मत्स्येन्द्र नाथ तथा गोरखनाथ उसके प्रमुख आचार्य माने गये हैं।[६९] गोरखनाथ ने जिस हठयोग का उपदेश दिया, वह पुरानी परंपरा से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। शास्त्रग्रंथों में हठयोग साधारणतः प्राण-निरोध-प्रधान-साधना को ही कहते हैं।[७०] बौद्ध तंत्रों में भी योग के लक्षण वे अंश को स्वीकृत है, जो योग शास्त्र में निर्दिष्ट है। उनको षडंग योग कहा करते थे। इस में ६ अंग थे। प्रत्याहार, ध्यान, प्रणायाम, धारणा, अनुस्मृति तथा समाधि।[७१]

वास्तव में यह हठयोग चित्त का निरोध कर गुह्य साधनाओं के लिये भूमिका प्रस्तुत करता है। हठयोग द्वारा पवन का निरोध कर मेरुदंड में स्थित चक्रों का वेधन, यह योगाचार का स्वीकृत पद्धति थी। योगाचार में हिन्दू योग की भांति मस्तक नहीं वरन् हृदय में ही अंतिम चक्र की स्थिति मानी जाती थी। हृदय ही मन का केन्द्र या मनोबिंदु था। योगाचार संप्रदाय में केवल ५ चक्र माने गये थे।[७२] गोरखनाथ द्वारा प्रति-पादित योग में चक्र ६ ही हैं। गोरखनाथ ने स्वयं कहा है कि जो व्यक्ति ६ चक्र, सोलह आधार और दो लक्ष्य तथा व्योमपंचक को नहीं जानता वह सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।[७३] षट् चक्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।[७४]

६७- वही पृ० ३७५-७६

६८- वही पृ० ३७८

६९- हिन्दी साहित्य कोश- हठयोग- पृ० ८७६-८०

७०- नाथ संप्रदाय- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १३७

७१- सिद्ध साहित्य- पृ० २०६-२१०

७२- वही पृ० २१०-११

७३- नाथ संप्रदाय पृ० १४४

७४- वही पृ० १४३

चक्र	स्थान	दल संख्या	तत्व तथा गुण	विशेष
१-मूलाधार:	गुदा के अधोभाग में वायु और मुत्र मूल के मध्य	४	पृथ्वी, आकर्षण, गंध	आज्ञा चक्र के स्थान को त्रिकुटि कहा जाता है, और इसकी विशेषता यह है कि इस स्थान पर पहुंच कर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है, और फिर साधना में अवरोध का भय नहीं रहता। इन छः चक्रों को भेद कर कुण्डलिनि अन्तिम चक्र में पहुंचती है जिसमें सहस्रदल हैं, इसलिये इसे सहस्रार चक्र या सहस्रदल कमल भी कहते हैं। यहां भी शिव का स्थान है। इसे कैलाश भी कहते हैं।[७५]
२- स्वाधिष्ठान:	लिंगदेश में पेडू के ऊपर	६	जल, संकोचन रस	
३-मणिपुर:	मेरुदंड में नाभि के पास	१०	तेज, प्रसारण, रूप।	
४-अनाहत :	हृदय के पास	१२	वायु, गति, स्पर्श।	
५-विशुद्ध चक्र:	कंठ के पास	१६	आकाश, अवकाश, शब्द	
६-आज्ञा :	भ्रूवों के बीच में (त्रिकुटी)	२	मन।	

हठयोग की प्रमुख प्रक्रिया है श्वास निरोध के द्वारा कुण्डलिनी को जगाकर ऊपर की ओर प्रेरित करना। कुण्डलिनी वास्तव में मूल शक्ति है, जो सर्पिणी के समान मेरु दंड के नीचे निम्नतम बिन्दु में वायु और मल के मध्य भाग में है और स्वयंभूलिंग कहलाता है। उसमें त्रिकोणाकार अग्नि चक्र में साढ़े तीन कुण्डली मार कर सोती है। इसी लिये इसे नाग नागिन, सांपिन, नागिन आदि भी कहा गया है। जब तक यह सोती है तब तक सारा तेज सोने से वारित होता रहता है, और प्राणशक्ति क्षीण होती रहती है। पर जब मूल बन्ध लगाकर योगी इसे जगा देते हैं, तब यह मेरुदंड के सहारे ऊपर चढ़ने लगती है। मेरुदंड में छः चक्र माने गये हैं जिन्हें आकार की समता के कारण कमल भी कहा गया है। इन चक्रों को भेद कर कुण्डलिनी सहस्रदल कमल तथा आकाशमण्डल में पहुंचती है। इन चक्रों के वेधन का मार्ग नाड़ियों में से ही होकर है। नाथ के अतिरिक्त सिद्धों ने नाड़ियों की संख्या तथा महत्त्व पर बल दिया है, जो हिन्दू योग

७५- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० ८८०

पद्धति में माना गया है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि वैसे तो शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, पर उनमें से केवल सुषुम्ना ही शक्ति की वाहिका है। सुषुम्ना में से ही कुण्डलिनी ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। सुषुम्ना वस्तुतः तीन नाड़ियों से बनी है। ऊपर वज्रा, उसके अन्दर चित्रिणी और उस के अन्दर ब्रह्मनाड़ी है। वस्तुतः ब्रह्मनाड़ी ही कुण्डलिनी का मार्ग है। सुषुम्ना की बाईं ओर इड़ा और दाईं ओर पिंगला है। इसी को परवर्ती सन्त अनुप्रास मिलाने के लिये इंगला पिंगला कहने लगे थे। वामनासापुट का श्वास प्रवाह इड़ा से होता है, दक्षिण नासापुट का श्वास प्रवाह पिंगला से। इड़ा शीतल स्वभाव की है, उसमें चन्द्र का वास है, उसे गंगा माना गया है। उसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं। पिंगला उष्ण स्वभाव की है, उसमें सूर्य का वास है, उसे यमुना माना गया है। उसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। इड़ा को चन्द्र नाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। सुषुम्ना दोनों के मध्य में है, त्रिगुणमयी है। चन्द्र-सूर्य-अग्नि स्वरूपा है, सरस्वती है। इसके अधिष्ठाता शंभु या शिव हैं। इसे सन्त लोग सुखमन भी कहते हैं। इन तीनों नाड़ियों का संगम या त्रिवेणी ब्रह्मरंध्र में होता है। यह ब्रह्मरंध्र मस्तक के मध्य में परिकल्पित एक छिद्र है। योगियों के प्राण इसी रंध्र को भेदकर निकलते हैं और इसी से उन्हें ब्रह्म का प्राप्ति होती है। इसी को दशमद्वार (दशम दुआर) भी कहा गया है, क्योंकि शरीर के अन्य नौ द्वार तो सदा खुले रहते हैं। केवल ब्रह्मरंध्र बंद रहता है। जिसे साधना के द्वारा खोलना पड़ता है। इसी ब्रह्मरंध्र के खुलते ही सहस्रार चक्र से अमृतरस झरने लगता है और योगी को अमर काया की उपलब्धि होती है। इसीलिये इस ब्रह्मरंध्र को उल्टा कुआँ या कूप भी कहा गया है। जिसमें सोमरस या अमृत तत्व भरा हुआ है।[७६]

गुरुभक्ति साधना मार्ग

परंपरा से संबंध

वैदिक साधना पद्धति से संबंध: वैदिक काल में कर्म और यज्ञ की मान्यता अधिक बढ़ गई थी।[७७] वैदिक साहित्य वेदत्रयी के नाम से प्रख्यात है, जो ज्ञान, कर्म, एवं उपासना तीन मार्गों का निर्देश करती है।[७८] ज्ञान और कर्म-समन्विति का प्रभु अनुग्रह

७६- हिन्दी साहित्य कोश - ८८०-८८१

७७- भक्ति का और रहस्यवाद- पृ० २३

७८- भक्ति का विकास-१११

े साथ सामंजस्य को वैदिक भक्ति का ा ई है। ज्ञान और कर्म की पूजा का परिणाम फल उपासना कहलाता है।[७९]

वेद में लिखा है, जो मनुष्य कर्महीन है, वह दस्यु है।[८०] दिव्य शक्तियाँ निद्रा ग्रस्त प्राणी से नहीं, वरन् साधक कर्मकांडी से मित्रता करती हैं। वे स्वयं प्रमाद रहित हैं, अतः प्रमादी पुरुष को दण्ड देती हैं।[८१] आदि ग्रंथ में वैदिक कालीन षट् कर्मों ... जो कालांतर में विकृत रूप धारण कर गये थे, उन्हें साधना में मान्यता नहीं दी है।

(१) षट करम सहित रहता।
मन रोकि रोकि ... निंद। सिमरि सिमरि गोविंद। नामदेव[८२]

षट् कर्म करने वाला कुलीन व्यक्ति भी हरि भक्ति के बिना बेहाल है।

(२) षट करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदै नाहि।
चरनार बिंद न कथा भावै, सुपच तुलि समानि ।।१।।[८३]
रैदास रविदास।

यदि कोई षट् कर्म (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना-यज्ञ कराना, दान देना-दान लेना) तथा त्रिगुणित कर्म (स्नान, जप, हवन, देवपूजा, तीर्थ यात्रा तथा तप) द्वारा पूजा-स्नान करे ..... प्रभु प्रेम में लीन नहीं होता, तो अवश्य ही नर्क का भागी होगा।

(३) षट् करमा ते दुगुणे, पूजा करता नाइ।
रंगु न लगी पारब्रहम ता सरपर नरके जाइ। म:१[८४]

(४) षट करम किरिआ करि बहु बहु बिस्थार,
सिध साधिक जोगीआ करि जट जटा जट धार।
करि भेख न पाईऐ हरि ब्रहम जोगु हरि पाईऐ
सत संगती उपदेसि गुर गुर संत जना खोलि खोलि कपाट।[८५]
कानड़ा म:४

(५) षट् करम कुरीति बिगारु भाउ।
उपाव साव करि हारिओ नह नह हुटिओ बिकराल। म:५[८६]

७९- वही- पृ० २२१-२२२

८०- ऋग्वेद-१०- ... (भक्ति का विकास पृ० १९१)

८१- ऋग्वेद- ८-२-१८ (वही- पृ० १९१)

आदि ग्रंथ में कहीं पर इस परिस्थिति को कहा है। अब हम आगे विस्तार से उल्लेख करते हैं। यह संसार कर्मभूमि का है, यहाँ जो बोया जाता है, वही काटा जाता है।

(१) जन्म धरयो, शरीर धुआ अंतर की जैसी थी जात। भ:१[82]

वेद पाठ तथा कर्म आदि के विरुद्ध उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों, गीता तथा परवर्ती सिद्धों, नाथों संतों आदि के साहित्य में जो उक्तियाँ मिलती हैं, उन्हें भी कई आलोचक विद्वानों ने इन उक्तियों को वेदों का अपमान माना है। डा० मुन्शीराम लिखते हैं: वेद को त्रैगुण्य कहना (गीता-२-४२,४५, ४३) और उसके कारण बुद्धि को विचलित मानना तथा वेद-वादियों की वाणी को अविपश्चितों की वाणी कहना वेद का सम्मान करना नहीं है। गीता ने यहाँ तक यज्ञिक ब्राह्मणों की बड़ी निन्दा स्वीकार की है, जो वैदिक संप्रदायों ने मान्य था। (गीता: २-४६,४-३३) ज्ञान-मय-यज्ञों का अध्ययन और वैदिक ब्राह्मण को जिस दृष्टि से देखा था वैसा ही है जैसा हमें निर्गुण साहित्य के सन्तों की वाणी में मिलता है। पर जैसा हम पीछे लिख चुके हैं, भागवत संप्रदाय अपने परवर्ती रूप में वेदों और ब्राह्मणों का आश्रय लेने लगा था।[88] परन्तु केवल वेद पाठ तथा कोरे एवं औपचारिक ज्ञान के विरुद्ध व्यक्त होने के कारण निर्गुण अध्यात्म ग्रंथों को वेद-विरोधी नहीं ठहराया जा सकता। वेद मंत्रों के ऐसे पाठ के विषय में ऋग्वेद में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं:-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद, किमृचा करिष्यति य इत्तद् विदुस्त इमे समासते। ऋ०
१-१६४-३६

(ऋचाएं अक्षर, परम व्योम में समस्त ऋचाएं सन्निहित हैं। उसी में समस्त देव विराजमान हैं। जो उस अक्षर ब्रह्म को नहीं जानता, वह ऋचाओं के पाठ से क्या प्राप्त कर सकता है? जिन्होंने इस अविनाशी ब्रह्म को जान लिया है, वे तो आनन्द धाम में समासीन हो सकते हैं।)[89]

८२- ग्रा०प्रा० पृ० ८८३
८३- ग्रा०प्रा० पृ० १२२४
८४- ग्रा०प्रा० पृ० ७०
८५- ग्रा०प्रा० पृ० १२६७
८६- ग्रा०प्रा० पृ० ११६६
८७- ग्रा०प्रा० पृ० ७८
८८- वही पृ० १९८
८९- भक्ति का विकास-पृ०२५६

इस से सिद्ध है कि वेदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मज्ञान है, अर्थात् परमपद की पहचान करना। यजुर्वेद में भी आता है,[९०] जो साधक अन्धकार से परे, प्रकाशस्वरूप उस परम पुरुष को जान लेता है, वही मृत्यु को अतिक्रांत कर पाता है। इसके पार, प्रभु के पास पहुँचने के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं।[९१]

इस से स्पष्ट है कि प्रकाशस्वरूप उस परम-पुरुष को जान लेने अथवा अपार ब्रह्म की पहचान के अतिरिक्त साधना के अन्य मार्ग अथवा कर्म, यदि कर्म कर्म के लिये किसी उद्देश्य से किये गये हों तो उन्हें वेद के उपर्युक्त वाक्य के अनुसार प्रभु नाम की तुलना में हेय माना जायेगा। ऐसे निष्कर्ष अथवा कथन वेद विरोधी नहीं कहे जा सकते। हमारे इस विचार को समझने के लिये श्री कुन्हन राजा का निम्नलिखित कथन लाभदायक सिद्ध होगा। साधारणतया: यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है, कि उपनिषदों में वेदों की प्रामाणिकता का विरोध आरंभ हो जाता है, क्योंकि वेदों में कर्मकांडों का अनुष्ठान ही विहित हुआ। महात्मा बुद्ध ने बुद्धिवादी विचारधारा के युग का भारतीय विचारधारा में उद्घाटन किया। उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता को धराशायी कर दिया। परन्तु बौद्ध मत को भी तो भारत से प्रवास प्राप्त करना पड़ा

९०- वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। यजु० ३१-१८

९१- अनुवाद- भक्ति का विकास- पृ० १९८

९२- It is contended that even in the Upanishads there is a beginning of revolt against this authoritative nature of the Vedas, and the Buddha inaugurated the era of a true rationalism in Indian thought, demolishing the authoritative nature of the Vedas, but Buddhism had to quit the country leaving some indelible mark on the thought of India. But the fact is that there is no text in which there is a defence of the text of the Vedas as of supreme authority, which man shall never question. The most that is maintained is that there are passages in the Vedas that represent some ultimate truths, the whole Veda is not of that nature, nor is the truth confined to the available texts of Vedas. The position is that the Veda is authority in so far as it contains statements of some important truths, not that the statements relate to the truth because they are found in the Vedas. Such is the approach taken up in this presentation of the probable problems relating to Indian philosophy. There is no conflict between the different stages. (Some Fundamental Problems of Indian Philosophy- C. Kunhan Raja- P-195).

जाने का भारतीय दर्शन पर अमिट प्रभाव पड़ गया। बात वस्तुतः यह है कि किसी भी ग्रंथ में वेद-वर्णित विचारों का खंडन करने का बात नहीं कही गई कि वेदों की सत्ता परम प्रामाणिक है, तथा उनमें वर्णित विचार नित्य हैं, जिन पर कि उंगली नहीं उठाई जा सकेगी। अधिक से अधिक जो बात कही गई है वह यह है कि वेदों में जीवन जुड़े वर्णन हैं, जिन में कुछ अनित्य सत्यों का उल्लेख है। सारे वेद में इस प्रकार का वर्णन नहीं और न ही सारा वेद वेदों के प्राप्य भाग तक सीमित है। बल्कि वेदों की प्रामाणिकता इस लिये है कि उनमें कतिपय शाश्वत सत्यों का वर्णन है, इस लिये नहीं कि वे मनुष्य वेद-विहित हैं। भारतीय दर्शन की कतिपय समस्याओं के समाधान के विषय में एक दृष्टिकोण अपनाया गया है। विचारधारा की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में कोई विरोध नहीं।[६२]

वेदों का प्रतिपाद्य विषय और आदि ग्रंथ

वेदों के प्रतिपाद्य विषय के बारे में हम पीछे बता चुके हैं, कि ब्रह्मज्ञान अथवा परब्रह्म की पहचान करने का उपदेश वेदों का मुख्य विषय है। जब तक उस भगवान् में मन नहीं लगता, तब तक सब कर्म और ज्ञान व्यर्थ हैं। उस प्रभु की स्तुति कर के उस से ऐक्य स्थापित करना वेदों का प्रधान लक्ष्य है। इस परंपरा की पुष्टि तथा विस्तार आदि ग्रंथ में हुआ है।

कबीर जी कहते हैं:-

(१) वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न बिचारै।[६३]

अन्य गुरुओं ने भी वेद की महिमा को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है, और वेद विहित सत्यों के कारण उन्हें भगवान् ज्योति पुंज माना है:-

(२) दीवा बलै अंधेरा जाइ। बेद पाठ मति पापा खाइ।
उगवै सूरु न जापै चंदु। जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु।
बेद पाठ संसार की कार। पड़ि पड़ि पंडित करहि बीचार।
बिनु बूझे सभ होइ खुआरु। नानक गुरमुखि उतरसि पारि। म:१[६४]

(३) बेदा महि नामु उतमु सो सुणहि नाही, फिरहि जिउ बेतालिआ। म:३[६५]

(४) बेद पुरान सिम्रिति भनि अभिआस मुनि पंडित हरि गाइआ।
नामु रसालु जिन मनि वसिआ ते गुरमुखि पारि पइआ। म:४[६६]

६३- आ०ग्रं० प्रभाती कबीर- पृ० १३५०

६४- आ०ग्रं० पृ० ७९१

६५- आ०ग्रं० पृ० ६१६

६६- आ०ग्रं० पृ० ६६५

(५) चारे वेद होए सचिआर। पड़हि गुणहि तिन्ह चार वीचार।। म:१ [९७]

वेदों के प्रति आदि ग्रंथ के रचयिताओं की अपार श्रद्धा है। वे तो ऊंचे स्वर में घोषणा करते हैं कि वेद शास्त्र तो पुकार पुकार कर मनुष्य को सच्चे मार्ग पर चलने को कहते हैं, परन्तु यदि कोई उनकी सुने ही न, तो इसमें वेद शास्त्रों का क्या दोष:-

(६) वेद शास्त्र जन पुकारहि सुनै नाही डोरा। म: ५ [९८]

आदि ग्रंथ में वेद ज्ञान की परंपरा से संबंध स्थापित करने का एक मात्र उपाय सत्य बोलना माना गया है। गुरु नानक देव जी कहते हैं, जैसे कांसी, कंचन तथा तार के टूटने से लोहार उसे अग्नि में डाल कर जोड़ (टांका लगा) देता है, जिस प्रकार पति पत्नी के संबंध-विच्छेद को पुत्र जोड़ देता है, उसी प्रकार व्यक्ति यदि सच बोलता है तो उसका संबंध वेदों से स्थापित हो जाता है, उसी प्रकार जैसे ब्रह्मचारी तथा सत्यवादी की स्तुति इस लोक में जुड़ी रहती है:-

कैहा कंचनु तुटै सारु। अगनी गंढु पाए लोहारु।
गोरी सेती तुटै भतारु। पुतीं गंढु पवै संसारि।
वेदा गंढु बोले सचु कोइ। मुइआ गंढु नेकी सतु होइ।। म: १ [९९]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं की भारतीय तत्व चिंतन की परंपरा से कितनी आसक्ति थी, यह उनके नित्य कर्म से सिद्ध होता है। रविदास जी, भक्त नामदेव के विषय में लिखते हैं:-

जाकै भागवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ, तास की जाति आछोप छीपा।
बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ, नाम की नामना सपत दीपा। [१००]

इस पद में नाम देव को नित्य ही भागवत तथा बिआस (व्यास) तथा सनकादि के ग्रंथों का मनन करते बताया गया है।

स्वयं गुरु अर्जुन देव को भी अपने पूर्व-वर्ती तत्व-चिंतन का स्वाध्याय करने पर सन्तुष्टि प्राप्त हुई होगी:-

पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना। ता मेरै मनि भइआ निधाना।
रतन लाल जा का कछू न मोलु। भरे भंडार अखूट अतोल। म:५. [१०१]

९७- आ०ग्रं० पृ० ४७०

९८- आ०ग्रं० पृ० ४०८

९९- आ०ग्रं० पृ० १४३

१००- आ०ग्रं० पृ० १२९३

१०१- आ०ग्रं० पृ० १८६

आदि ग्रंथ के विषय में डा० तारन सिंह लिखते हैं: सिख धर्म अपना धर्म पुस्तक में बिल्कुल भारतीय है, और राष्ट्रीय दृष्टिकोण का धारणीय है। गुरु ग्रंथ साहिब अपने आप में एक वेद है।[१०२] एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं: वेद प्रभु के बारे में परंपरागत ज्ञान का स्रोत है। जब तक किसी मनुष्य को भारतीय धर्म ग्रंथों का सम्यक ज्ञान नहीं, जो हमारी परंपरागत निधि है, तब तक वह इस वेद (गुरु ग्रंथ) को नहीं समझ सकता। यह महान् ग्रंथ उसी प्राचीन सनातन ज्ञान से आविर्भूत हुआ है, तथा उसी परंपरा को विकास प्रदान करता है। इस तरह यह नई कृति भी है, परन्तु सर्वथा नई नहीं, क्योंकि इसकी जड़ वेद में है। भारतीय ब्रह्म-विद्या का सम्यक ज्ञान ही किसी मनुष्य को भी गुरु ग्रंथ साहिब की वाणी का बोध प्राप्त करने के लिये सहायक सिद्ध हो सकता है। इस के बिना इस ग्रंथ के रहस्यमयी भेदों को समझना कठिन है।[१०३]

गुरु तेग बहादुर जी ने भी वेदों के श्रवण, मनन को भी साधु-मार्ग अथवा संत मत में अनिवार्य माना है। गुरमति साधना मार्ग में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान है:-

कोऊ माई भूलिओ मनु समझावै।

बेद पुरान साधमग सुनि करि निमख न हरि गुन गावै। म:९[१०४]

परन्तु इस श्रवण-मनन के विषय में गुरु जी का विचार अलौकिक ही है। जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, कि वेद कहता है: जो उस अक्षर-ब्रह्म को नहीं जानता, वह ऋचाओं के पाठ से क्या प्राप्त कर सकता है। ब्रह्म वेत्ता ही ब्रह्म के आनंद-धाम में समाधान होता है।[१०५] गुरु तेग बहादुर कहते हैं : वेद-पुराण पढ़ने का यही लाभ होना चाहिए कि प्रभु का नाम-स्मरण किया जाये, क्योंकि राम-शरण में ही सुख-शान्ति है।

(१) साधो राम सरनि बिसरामा।

बेद पुरान पड़े को इह गुन सिमरे हरि को नामा।। म:९[१०६]

(२) बेद पुरान जास गुन गावत ता को नामु हीऐ मो धरु रे। म:९[१०७]

यदि वेद-पाठ के विरोधी कथन आदि ग्रंथ में कहीं कहीं मिलते हैं तो उन की भावना को उपर्युक्त विचारों के संदर्भ में देखना चाहिए। कोरे कर्म कांड को सार्थक नहीं मानना चाहिए। यदि आदि ग्रंथ में वेद को त्रैगुण्य कहा है, और उसके बिना बूझे पाठ के कारण दुःखी होने की बात इस ग्रंथ में कही गई है, यह गीता के विचार का परंपरागत अनुकरण है:-

---

१०२- [illegible]- पृ० २६

१०३- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक अध्ययन- पृ० ३१

१०४- आ०ग्रं० पृ० २२०

१०५- ऋग्वेद-१-१६४-३९ से भक्ति का विकास पृ० १९४ पर उद्धृत।

आदिग्रंथ: वेद पुकारै त्रिबिधि माइआ।
मनमुख न बूझहि दूजै भाइआ।
त्रैगुण पड़हि, हरि न जाणहि, बिन बूझे दुखु पावणिआ। म:३ ८-३०[108]

यहाँ भाव इस प्रकार है, वेद तो माया को त्रैगुण्य कहते हैं। परन्तु मनमुख द्वैत भाव में उलझे हुए भी त्रैगुण्य माया का पाठ पढ़ते हैं, अर्थात् माया के अधीन कर्म करते हैं, तथा उस ब्रह्म को नहीं जानते, और बिना ब्रह्म-ज्ञान के दुःख पाते हैं। गीता के विचारों को भी इस संदर्भ में देखना होगा, और यहाँ गुरु अमरदास के गीता के विचार के समर्थित महत्त्व को प्रामाणिक मानकर, वेद को नहीं, अपितु उनमें वर्णित माया को त्रैगुण्य कहना होगा। गीता में 'त्रैगुण्य विषया वेदा' का भाव यही है। वेदों का विषय 'त्रैगुण्य माया' है। इसी कारण इस माया के आवरण को दूर कर भगवान् ने अर्जुन को 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' का उपदेश दिया।[109] गीता के पद, 'वेद-वादरता: पार्थ नान्यदस्तीति वादिन:'[110] अर्थात् वेद- कथाओं के वाद-विवाद में आनंद लेने वाले वादी, से युक्त उन लोगों के लिये कहे हैं, जो वेद के ब्रह्म-ज्ञान के संदेश को छोड़ कर केवल क्रिया-कलापों में उलझे हुए थे। गीता के चौदहवें अध्याय में कहा है: 'प्रकृति के तीन गुणों द्वारा भ्रम में पड़े हुए लोग मुझ त्रिगुणातीत को नहीं जान पाते।'[111] जहाँ तक गीता में लिखा है कि वेद त्रैगुण्य माया का वर्णन करते हैं, वहाँ गीता में यह भी आता है : 'प्रणव: सर्ववेदेषु शब्द: खे, पौरुषं नृषु।'[112] अर्थात् मैं वेदों में मैं ओअम् नाम हूँ, आकाश में मैं शब्द हूँ और पुरुषों में पौरुष हूँ। इसी विचार की ध्वनि आदि ग्रंथ में सुनाई देती है: 'वेदा महि नामु उतमु।'[113] जो शब्द गुरु अमर दास जी के हैं, तथा आदि ग्रंथ के 'वेद पुकारै त्रिबिधि माइआ'[114] भी म:३ के ही हैं, अत: यह आपस में विरोधी नहीं हैं।

भागवत धर्म साधना और आदि ग्रंथ

विष्णु का अवतार: भागवत धर्म पांच रात्र, एकान्तिक, नारायणी, वासुदेव, वैष्णव, सात्वत आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है।[115] पीछे हम कह चुके हैं, भगवान्

106- आ०ग्र० पृ० ... ०
107- आ०ग्र० पृ० ... ०
108- आ०ग्र० पृ० १२८
109- गीता २-४५ (राधाकृष्णन-१२८)
110- गीता २-४२ (वही)
111- गीता-७-१३
112- गीता ७-८
113- आ०ग्र० पृ० ११६
114- आ०ग्र० पृ० १२८
115- महाभारत अध्याय-३४८, श्लोक ..., ..., ८४ से भक्ति का विकास पृ०-३३ पर।

है उपासक भक्ति नारायण को भगवान् का रूप मानकर उनकी पूजा भी ओरों करो तथा भगवान् और नारायण को अभिन्न मान लिया गया। तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक में जो विष्णु गायत्री दी है, उसमें नारायण, वासुदेव, तथा विष्णु को एक कर दिया है, यथा:-

नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।।[११६]

(नारायण की हम पूजा करते हैं, वासुदेव का हम ध्यान करते हैं, और इस कार्य में विष्णु हमारी सहायता करें)।

डा० राधाकृष्णन लिखते हैं: ब्रह्म तथा विष्णु और शिव मूलतः एक हैं, भले ही उन की कल्पना भिन्न भिन्न रूपों में की गई है। गीता का कवि संसार को पुष्टि दिलाने की प्रक्रिया में है, इस लिये विष्णु पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। कृष्ण, भगवान् के विष्णु रूप का प्रतिनिधि है। विष्णु ऋग्वेद का एक अत्यंत प्रसिद्ध देवता है। वह महान् तथा व्यापक है। विष्णु शब्द 'विश्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'व्यापक होना'। वह आन्तरिक नियामक है, जो सारे संसार को व्याप्त किए हुए है। वह निरंतर बढ़ती हुई मात्रा में आत्मा भगवान् की स्थिति और गौरव को अपने अन्दर समेटता जाता है।[११७] पद्म पुराण में भी विष्णु को भगवान् के रूप में माना है: स एव भगवान् विष्णु प्रकृत्याम् आविवेश।[११८] वैष्णव धर्म में विष्णु, हरि, कृष्ण और नारायण को ब्रह्म पुराण के अध्याय ७० के नीचे लिखे श्लोक में भी एक ही कहा गया है:-

विष्णुत्वं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च।
नारायणो महात्मा प्रभवोऽव्यय एव च।[११६]

आदि ग्रंथ में भी विष्णु के इसी रूप को मान्यता दी गई है। आदि ग्रंथ

११६- भक्ति का विकास- पृ० २३३ तथा भगवद्गीता -राधाकृष्णन-६६ (नारायण कहता है: सूर्य की भांति होने के कारण मैं सारे संसार को किरणों से आच्छादित करता हूं, और मैं सब प्राणियों का धारण करने वाला हूं, इसी लिए मैं वासुदेव कहलाता हूं) महाभारत- १२-३४१-४१।

११७- अमर कोश- विष्णु को 'व्यापक परमेश्वर' कहता है। 'विष्णु' का मूल 'विश्' धातु में बना जाता है जिसका अर्थ प्रवेश करना है। तैत्तिरीयोपनिषद् का कथन है: उस संसार को रचने के बाद वह उस में प्रवेश कर गया।

११८- देखिए पद्म पुराण- भगवान के रूप में विष्णु प्रकृति में प्रवेश कर गया। भगवद्--गीता राधाकृष्णन- ६।

का सर्व-व्यापक भगवान् विष्णु के रूप में सर्वव्यापक है, और उसके नाम आदर से स्थान स्थान पर ले लिया गया है। आदि ग्रंथ का वासुदेव (मुरारी) भी सर्वव्यापक है:-

(१) वासुदेव सरब मै, ऊन न कतहू ठाइ।
वासुदेव जल थल महि रविआ।[120]

(२) धनि धनि बन खंड ब्रिंद्राबना। जह खेलै श्री नाराइना।[121] नामदेव

(३) घटि घटि अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी।[122] नामदेव

गुरु नानक देव जी ने भी कृष्ण को ही सब देवों का शिरोमणि माना है और उसे सब देवों का आत्मा कह कर ब्रह्म रूप माना है। यहां पर सब देवता कृष्ण (वासुदेव) में एक हो गए हैं, और निरंजन रूप कहे गए हैं:-

(४) एक क्रिसनं त सरब देवा, देव देवा त आतमा।
आतमं श्री वासुदेवस्य जे कोई जानसि भेव।
नानक ता को दासु है, सोई निरंजन देवा[123] सलोक सहसक्रिती म:१

आदि ग्रंथ के भक्तों ने विष्णु का अनेक रूप में वर्णना की है। आदि ग्रंथ में राम, कृष्ण एक हो गए हैं:-

(१) कहि कबीर प्रभु कालिंग पानी।[124]

(२) कहु नामदेव प्रभु कालिंग पानी।[125]

(३) तुम घरि लाख कोटि अस्व हस्ती हम घरि एकु मुरारी। कबीर[126]

(४) कबीर सूता किआ करहि उठि कि न जापहि मुरारि।[127]

(५) वासुदेव न मिलि मुरारि।[128] नामदेव

(६) सरणि परे गुरदेव तुमारी। तू समरथु दइआलु मुरारी। मारू म:१[129]

(७) गुरमति क्रिसनि गोवरधन धारे। गुरमति साइरि पाहण तारे।
गुरमति लेहु परम पदु पारी। नानक बोलहु रिदै मुरारी।
जम के फाहे काटहि हरि जपि अकुल निरंजनु पाइआ। मारू म:१[130]

११९- भक्ति का विकास पृ० ३३०
१२०- आ०ग्रं० पृ० २५६
१२१- आ०ग्रं० नामदेव पृ० ९८८
१२२- आ०ग्रं० पृ० ४८५
१२३- आ०ग्रं० पृ० १३५३
१२४- आ०ग्रं० पृ० ३२३
१२५- आ०ग्रं० पृ० ३३७
१२६- आ०ग्रं० पृ० ३३६
१२७- आ०ग्रं० पृ० १३७२
१२८- आ०ग्रं० पृ० १२६६
१२९- आ०ग्रं० पृ० १०३१
१३०- आ०ग्रं० पृ० १०४१

(८) नवि गरे है होति प्रभु से विरत संसारा।

जिन भिखिआ गुरु उलटा जपि नामु मुरारि। भाग ५:३[१३१]

(९) रवि ससि दीपक जाके, त्रिभवणि एका जोति मुरारी। ५:१[१३२]

(१०) भायन भौम भान फल लेहु मुरारी राम। बिलावहु ५:४ छ[१३३]

भगवान को प्राप्त करने का एक मात्र साधन भक्ति है

श्रीमद्भागवत में भगवान् उद्धव से कहते हैं:-

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता। २०।।

भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ।। २१।।

हे उद्धव ! मैं न योग के द्वारा और न सांख्य (ज्ञान) के द्वारा ही प्राप्त होता हूं। मेरी प्राप्ति का मुख्य साधन तो भक्ति है। एक निष्ठा से की हुई मेरी भक्ति चाण्डाल तक को पवित्र कर देती है।[१३४]

गीता में भी भगवान् कहते हैं:-

(१) मैं न तो वेदों के पाठ द्वारा, न यज्ञों द्वारा, न दान द्वारा, न धर्मों की क्रियाओं द्वारा और न घोर तपस्या द्वारा ही इस रूप में देखा जा सकता हूं।[१३५]

(२) अनन्य भक्ति द्वारा मुझको इस रूप में जाना जा सकता है और मुझ में प्रवेश किया जा सकता है।[१३६]

आदि ग्रंथ और भक्ति

आदि ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय ही निष्काम भक्ति है। ग्रंथ पाठ, तीर्थ स्नान, दान, यज्ञ-धर्म, तपस्याएं आदि का भक्ति की तुलना में कोई विशेषता नहीं:-

---

१३१- आ०ग्रं० पृ० ६६४

१३२- आ०ग्रं० पृ० ४८६

१३३- आ०ग्रं० पृ० ५४७

१३४- श्रीमद्-भागवत। एकादश स्कंध चतुर्दश अध्याय (२०-२१)

१३५- गीता- ११-४८ तथा ११-५३

१३६- गीता- ११-५४

(१) प्रविरति मारगं वरतंति बिनासनं।

गोबिंद भजन [illegible] संगेण [illegible] नानक [illegible] जनमा नं। म:५

(प्रवृत्ति मार्ग- यज्ञ कर्म आदि के मार्ग पर [illegible] विनाश ही प्राप्त होता है। गोविन्द-भजन द्वारा साधु संगत में [illegible] प्राप्त होता है।) १३७

(२) दोवै तरफा उपाइ इकु वरतिआ। बेद बाणी वरताई अंदरि वादु घतिआ।

परविरति निरविरति हाठा दोवै विचि धरमु फिरै रैबारिआ।

मनमुख कचे कूड़िआर तिंनी निहचउ दरगह हारिआ।

गुरमती सबदि सूर है कामु क्रोधु जिंनी मारिआ।

सचै अंदरि महलि सबदि सवारिआ।

से भगत तुधु भावदे सचै नाइ पिआरिआ।

सतिगुरु सेवनि आपणा तिंन्हा विटहु हउ वारिआ। म:३ १३८

प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग उसी ने पैदा किए। (प्रवृत्ति मार्ग- यज्ञ कर्म आदि का अनुष्ठान, निवृत्ति मार्ग- इन कर्मों द्वारा [illegible], निवृत्ति परायणता में भगवत्-नाम के साथ [illegible]-शून्यता, निराश्रित तथा [illegible] एवं अनन्य भक्ति की स्थिति आती है)। वेद वाणी से [illegible]-झूठे पाठ से [illegible] लोग वाद-विवाद में उलझते हैं। इस प्रकार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के झगड़ों में उलझकर [illegible] धर्म [illegible] रहे हैं। परन्तु ऐसे मनमुख झूठे व्यापार में फंस कर भगवान् के सम्मुख [illegible] पराजित होते हैं।

परन्तु ऐसे भी शूरमा भक्त होते हैं, जो काम-क्रोधादि [illegible] कर सत्यनाम में भगवान् के सत्य-नाम को प्राप्त [illegible] प्राप्त करते हैं। ऐसे भक्त भगवान् को प्रिय होते हैं, क्योंकि वे सत्यनाम में लीन होते हैं और अपने सत्गुरु की सेवा करते हैं। नानक ऐसे भक्तों पर [illegible] न्योछावर करता है।)

गुरु अर्जुन देव ने भी [illegible] का अनुसरण किया है। [illegible] कहा गया है।

(३) परविरति मारगु जेता किछु होईऐ तेता लोग पचारा।

जउ लउ रिदै नही परगासा तउ लउ अंध अंधारा। म:५ १३९

(४) पाठ पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।

पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।

पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।

हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका। म:५ १४०

(५) बजुंभेत नाने। कुल कुल बाने ग्राम असनाने। भगत नामदेव

बजुंमेत कु गाबै मिल परम गत पावै।

नाम का सिरभा न गाबै बाम सराबंरि मिल बाजे। रामकली नामदेव

का न चुनि भनि कारति नाभा। भगत नामदेव

राम नाम नरि नञन कुबे। रामकली नामदेव [141]

(६) तनु कंतारि भीवै न रतो तौकि स्वाव।

नरा नरा रा टाओ गिरि नरवजु नरा।

कंचन नै भोट दए नरी तहु भिर मैबर दानु।

भुमिदान नजा तणी ने तिरि नरम सुमानु।

मनाह भुगे केताएं कै केद बोनार।

भी बंधन जोग ने सु मुखि भोख दुआरु।

स्वादु बोरि मनु नी जपारि मनु भावारु। म: १ [142]

(स्पस्त धर्मों से अनुष्ठान की तुलना में सदाचार तथा भक्ति की प्रधानता है।)

परंपरागत प्रेम मार्ग और आदि ग्रंथ का भक्ति मार्ग

नारद भक्ति सूत्र तथा शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति परम-प्रेम-स्वरूपा है। प्रभु में पराकाष्ठा की अनुरक्ति रखना ही भक्ति है:-

(१) सा परानुरक्तिरीश्वरे- शांडिल्य भक्ति सूत्र- २

(२) सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। - नारद भक्ति सूत्र-२

भागवत में भी भक्ति की परिभाषा दी गई है। भगवान् में हेतु रहित, निष्काम, एकनिष्ठायुक्त अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है। (भागवत-१-२-६)[143]

१३७- आ०ग्रं० पृ० १३५५

१३८- आ०ग्रं० पृ० १३८० तथा पृ० १०२७

१३९- आ०ग्रं० पृ० १२०५

१४०- आ०ग्रं० पृ० [illegible]४१

१४१- भगत नामदेव आ०ग्रं०पृ० ८७३ रामकली - आ०ग्रं० पृ० ९७३

१४२- आ०ग्रं० पृ० [illegible]२

१४३- भक्ति का विकास- पृ० ३०६

आदि ग्रंथ की भक्ति प्रेम से ओत-प्रोत है।

(१) प्रेम भगति करि [illegible] न [illegible]। म: १[144]

(२) प्रेम भगति नहीं [illegible] ता [illegible] रसिदान [illegible]।[145]

(३) [illegible]सर पावहि नही [illegible] गुण [illegible] अपार।
प्रेम भगति कै कारणै [illegible] रसि[illegible] बपार।[146]

(४) प्रेम भगति [illegible] लिव लाइ। [illegible] ममता [illegible] जलाइ। [illegible] नानक म:३[147]

(५) प्रेम भगति [illegible] मनि लागा। गुण गावै [illegible] निति जागा। नानक म:५[148]

(६) प्रे[illegible] भगति मनु [illegible], नि[illegible]। नानक दरसन पा[illegible] मानु। म:५[149]

(७) मुकति भुगति जुगति [illegible] नाउ। प्रेम भगति नानक गुण गाउ। म:५[150]

(८) [illegible] गुर [illegible] निति चरण [illegible] बिगसु [illegible]।
प्रेम भगति तिन [illegible] [illegible] नाहि जरे। म:५[151]

(९) प्रेम भगति राते गोपाल। नानक जावै [illegible] रवाल। म:५[152]

(१०) प्रेम भगति नानक सुखु [illegible] [illegible] संगि समाई। म:५[153]

(११) प्रेम भगति [illegible] जानिआ, तृपति [illegible] मुकति [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] की[154]

(१२) प्रेम भगति पर[illegible] प्रीति पुकारी न [illegible]।
[illegible] सबदु [illegible] [illegible] [illegible] मनु [illegible]।। [illegible] [illegible] [illegible]।[155]

१४४- आ०ग्रं० पृ० ६८५

१४५- आ०ग्रं० पृ० ३४६

१४६- आ०ग्रं० पृ० ३४६

१४७- आ०ग्रं० पृ० ८४१

१४८- आ०ग्रं० पृ० १०६

१४९- आ०ग्रं० पृ० १६६

१५०- आ०ग्रं० पृ० २००

१५१- आ०ग्रं० पृ० १ ६

१५२- आ०ग्रं० पृ० १६८

१५३- आ०ग्रं० पृ० ~~४८५~~ ३८४

१५४- आ०ग्रं० पृ० ४८८

१५५- आ०ग्रं० पृ० १३६६

परंपरागत नवधा भक्ति और आदि ग्रंथ में उसका स्वरूप

नवधा भक्ति के वेदों में प्रासंगिक संकेत मिलते हैं। (ऋग्वेद १-१५६-२,१-१५४-१, १-१५६-३४,१-१५६-४) बृहदारण्यक में श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार का उल्लेख है। श्रुति स्रोत में त्रिविध भक्ति के अन्तर प्रकारों का भी, जिन्हें आत्मा संबंधी चार प्रतिपत्तियां कहा गया है, आगे चलकर भागवतकार ने नव प्रकारों में विस्तार कर दिया।[156] भागवत में नवधा भक्ति का वर्णन पाया जाता है, जो इस प्रकार है:-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। ७-५-२३[157]

आदि ग्रंथ में भी भक्ति के नौ स्वरूप स्वीकार किए गए हैं। गुरु अर्जुन देव ने और सिरी राग में नवधा भक्ति का उल्लेख किया है:

भगति नवै परकारा। पंडित वेदु पुकारा। म: ५[158]

(१) श्रवण: अपने इष्ट देव का यश श्रवण करना। श्रीमद्भागवत में भक्त प्रवर वैराग्य रसिक श्री शुकदेव जी कहते हैं: जो लोग साधुओं के आत्मा है उस प्राणाधार भगवान् का कथामृत श्रवणपुट के द्वारा पान करते हैं, अत्यंत दूषित होने पर भी उनका अभिप्राय पवित्र हो उठता है। अन्त में वे लोग श्री विष्णु भगवान् के चरणकमल को प्राप्त होते हैं।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवण पुटेषु सम्भृतम्।

पुनन्ति ते विषय विदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्।[159]

गुरमति भक्ति में श्रवण का विशिष्ट स्थान है:-

कोटि करम करंते प्रभु प्रीतम भक्ति गुण गुणी सुभि अविनाशी राम।

सुणि सुणि उद्धु मनु निरमल होवै, कटीऐ काल की फासी राम।। म:५[160]

(२) कीर्तन: प्रभु के गुणों का संकीर्तन कीर्तन है। श्री मद्-भागवत में कहा है: जो भगवानुराग विवेकवान् होते हैं वे पवित्र कीर्ति वाले हैं, जो भगवान् के गुण-वर्णन को ही तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञ, मन्त्रपाठ और दान के नित्य फल के रूप में कीर्तित किया करते हैं:-

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनम्।[161]

१५६- हिन्दी साहित्य कोश- ३६६   १५९- श्रीमद्भागवत- १-२

१५७- भक्ति का विकास- पृ० ३०६   १६०- आ०ग्रं० पृ० ७८०

१५८- आ०ग्रं० पृ० ७१   १६१- श्रीमद्भागवत- १-५

आदि ग्रंथ में कीर्तन की विशेषता आता है:-

(१) ताल छिन्का दे मेरे पिआरे गुर हरि आराधे मेरा राम।
हरि आराधे जप पंगु पावे दुख न [illegible] कोई। म:५ [162]

(२) हरि गुण गाव रसन पर पाइआ प्रभ की अगम वाणी।
सहज भाव प्रभ की हरि मीठी कीरतन वाणी।
मना संतोष पूरन पद गावत हरि [illegible] दाही।
जन नानक प्रभ पद दरसन [illegible] कल मणि वाही। सूही म: ५ [163]

(३) कीर्तन आदि ग्रंथ की वाणी की आत्मा है। समस्त वाणी रागों के आधार पर संपादित है। राग पक्ष पर पृथक विचार किया गया है। अर्जुन में रागों की पौड़ियां तथा आसा की वार में गायन सुनने के लिए कीर्तन के सुन्दर उदाहरण है। गुरमति संगीत में कीर्तन को विशेष स्थान प्राप्त है। स्वयं गुरु नानक संगीतज्ञ थे, इसी प्रकार गुरु ग्रंथ के अन्य रचयिता भी संगीत के वेत्ता थे। आदि ग्रंथ की वाणी को लिखा भी कीर्तन के लिये गया है।

(४) अनद सूख मंगल ते कीरत हुन गाउ।
कथा कीरतन राग नाद धुनि इह बनिओ सुआउ।। बिलावल म: ५ [164]

(५) गुरु अर्जुन देव जी ने स्पष्ट रूप में कीर्तन का गुरमति में इस प्रकार चित्रित किया है:-
गोबारि [illegible] धुनि [illegible], [illegible] राग [illegible]।
सदा देवो प्रभु दिखावे, सभी रसिआ [illegible]।
सदा सुरति [illegible] की सेवा, [illegible] गुर [illegible]।
भलो भलो रे कीरतनीआ।
राम रमा रामा गुन गाउ।।
छोड़ि माइआ के धंध सुआउ। रहाउ।।
पंच [illegible] करे संतोखा, [illegible] सुरा है बाले।

१६२- आ० ग्रं० पृ० ७८०
१६३- आ०ग्रं० पृ० ७८१
१६४- आ०ग्रं० पृ० ८१८

बाजा नाणु ताणु ... बानर पाउ न ... ।
फेरी फेरू न ... ।
... नरहर आणि ... । ... बिदुरे।
... ... । ... ।
... ठाकुर ... । ... ।
... टेक। ... नानक ... । रामकली म:५ [165]

आदि ग्रंथ में ... के ... में ... किया गया है:-
... निरमोलक हीरा। ... । म: ५ [166]

(३) विष्णो स्मरणं : प्रभु का हृदय में स्मरण करना, स्मरणं कहलाता है। आदि ग्रंथ में नाम सुमिरना की ... महत्ता है। कलिकाल में हरि नाम ... भी गति नहीं है:-

"हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलं। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" [167]

आदि ग्रंथ की ... में नाम सुमरिन पर ... दिया गया है:-

(१) सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। ... मिटावउ।
सिमरउ ... । नामु जपत ... अनेकै।। म:५ [168]

(२) कबीरा ... । ... रामु ... ।
... पाउ ... निरंजनु नालि।। कबीर [169]

(३) कबीर जी ... पद: जिह सिमरनि ... मुकति दुआरु। जाहि बैकुंठि नहीं संसारि। [170] ... विस्तार से ... अर्जुन देव जी ने गउड़ी सुखमनी में ... ... । ... सिमरनि ... नहीं। [171] ... में किया है। प्रभु ... सुमरिन से जन्म मरण का बन्धन छूट जाता है, और ... नाम सुमरिन ... ... है: सुखमनी ... अमृत प्रभु नामु। ... ... विस्राम।। [172] ... स्मरणं आदि ग्रंथ की ... मुख्य ... है। आदि ग्रंथ स्मरणं से ... में ... है।

165- आ०ग्रं० पृ० ...५
166- आ०ग्रं० पृ० ...३
167- ... भार्ग- पृ० २८
168- आ०ग्रं० पृ० २६२
169- आ ग्रं० पृ० १३७६
170- आ०ग्रं० पृ० ६९१
171- आ०ग्रं० पृ० ...६२-६३
172- आ०ग्रं० पृ० २६२

४- पाद--सेवनं: चरण सेवा- विशेषत: प्रभु चरण सेवा को भक्ति में पादसेवनं कहा है। कई भगवान् को भी मूर्तिमान कर उनकी चरण सेवा की भावना की गई है। पद्म पुराण में कहा गया है: हे आनंदकंद कमला प्रिय वासुदेव! गोविंद मधुसूदन मुझे अपनी दासता प्रदान करो, अपना सेवक बनाओ। हे केशव! तुम्हें मैं नमस्कार करता हूं। हे अरविन्द-पद्म पाणे तुम हमेशा मुझ पर अपनी कृपा बनाये रखो:-

आनंद कंद कमलाप्रिय वासुदेव गोविंद हे मधुसूदन देहि दास्यम्।

पादौ नमामि ते केशव नित्यमाशु कृपां कुरुष्व मम अरविन्द करपाणे। [१७३]

हरि पाद सेवनं: आदि ग्रंथ में भक्ति के पाद सेवा प्रकार को तीन भागों में विभक्त किया गया है। हरि-पाद-सेवनं, गुरु-पाद-सेवनं तथा संत-पाद-सेवनं। सर्व प्रथम हरि-पाद-सेवनं का वर्णन किया जाता है:-

(१) जाका पद निर्मल, मन रा पद, गंध बिनु मरन जा बंध एक बात भोगी।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनों अनदिनों भोगि नाही पिआसा। म:१ [१७४]

(२) हरि चरण कमल की टेक सति गुरि दिता तुसि कै बलि राम जास। म:५ [१७५]

(३) हरि के चरण रिदै उरिधारि। सदा सदा प्रभु सिमरीऐ भाई दुख किल-बिख काटणहारु।। म:५ [१७६]

(४) हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा। [१७७]

(५) हरि के चरन अराधीअहि गुर सबदि रतनागरु। म:४ [१७८]

(६) हरि की चरणी लागि रहा विचहु आपु गवाइ।। [१७९]

गुरु पाद सेवनं:

(१) गुर की चरणी लगि रहु विचहु आपु गवाइ।
ऐसे सेवा रविआ जगो फले भाग।। म: १ [१८०]

(२) जिनवंति नानकु गुर चरण लागे भागे सगल दूरे।। म:३ [१८१]

(३) गुर के चरन रिदै विचारे तेरा नामु समाले। म:३ [१८२]

(४) गुर के चरन रिदै कमाए। हरि सिमरा प्रगि आपि मिलाए। म:५ [१८३]

१७३- पद्म पुराण भूमि-३२ से उद्धृत सामाना मार्ग पृ० १८५ पर।
१७४- आ०ग्रं० पृ० १३
१७५- आ०ग्रं० पृ० ८७७
१७६- आ०ग्रं० पृ०६२०
१७७- आ०ग्रं० पृ० ३३६
१७८- आ०ग्रं० पृ० १३१८
१७९- आ०ग्रं० पृ० ६६४
१८०- आ०ग्रं० पृ० ६१
१८१- आ०ग्रं० पृ० ६२२
१८२- आ०ग्रं० पृ० ६१६

संत-पाद सेवनं

(१) संता की रेणु साध जन संगति हरि कीरति तरु तारी।
कहत करै मधुरा प्रभु हरखै गुरमुखि रिदै मुरारी। प्रभाती म:१[१८४]

(२) भगति करे मन देहि कबूरि। संत जना की पग पंकज धूरि। म:३[१८५]

(३) सगल सिआणप छाडै बिगारु। संत जना की चरणी लागु। म:५[१८६]

५- अर्चन : चंदन फूलादि सामग्री से उपचारोपचार को अर्चन कहते हैं। आदि ग्रंथ की वाणी में पूजा के बाह्य उपकरणों को कोई महत्ता नहीं। हृदय में अर्चना को महत्ता दी गई है। आदि ग्रंथ के संतों के धूप-दीप-नैवेद्यादि में विशेष निरूपण है:-

(१) तेरा नाम करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ।
करणी कुंगू जे रलै, घट अंतरि पूजा होइ। सूही म: १[१८७]

(२) मनु मंदरु जिसु का नारि नाराइणु भावन गावी चित्रपात करी।
पूजा प्राण सेवकु जे सेवे, इन बिधि साहिबु रवतु रहै। सूही म:१[१८८]

(३) गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होइ। भवखंडना तेरी आरती। म: १[१८९]

(४) एक दिवस मन भई उमंग। घसि चंदन चोआ बहु सुगंध।
पूजन चाली ब्रहम ठाइ। सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि। संत रामानंद[१६]

(५) आनीले कुंभ भराईले ऊदक ठाकुर कउ इसनानु करउ।
बइआलीस लख जी जल महि होते बीठलु भैला काइ करउ॥
आनीले दूधु रीधा लै खीरं ठाकुर कउ नैवेदु करउ।
पहिले दूधु बिटारिओ बछरै बीठलु भैला काइ करउ।
ईभै बीठलु ऊभै बीठल बिनु संसारु नाहीं।
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिओ तूं सरब मही। नामदेव[१९१]

१८३- आ०ग्रं० पृ० १२९०
१८४- आ०ग्रं० पृ० १३३२
१८५- आ०ग्रं० पृ० ११७४
१८६- आ०ग्रं० पृ० २७७
१८७- आ०ग्रं० पृ० ४८६
१८८- आ०ग्रं० पृ० ७२८
१८९- आ०ग्रं० पृ० ~~१०३~~ १३
१९०- आ०ग्रं० पृ० ११९५
१९१- आ०ग्रं० पृ० ४८५

(६) दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ। फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ।
माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ।। अवरु न फूलु अनूपु न पावउ।
मैलागर बेर्हे है भुइअंगा। बिखु अम्रितु बसहि इक संगा।
धूप दीप नईबेदहि बासा। कैसे पूज करहि तेरी दासा।
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ। गुर परसादि निरंजन पावउ।
पूजा अरचा आहि न तोरी। कहि रविदास कवन गति मोरी।।

गूजरी रविदास[१६२]

(७) धूप दीप घ्रित साजि आरती। वारने जाउ कमलापती।
मंगला हरि मंगला। नित मंगलु राजा राम राइ को।
उतमु दीअरा निरमल बाती। तुही निरंजनु कमलापाती। धनासरी बेणि[१६३]
(यहां बाह्य उपकरणों की अपेक्षा आत्म समर्पण को अर्चनाश्रित प्रस्तुत किया गया है)

(८) नामु तेरो आरती नामु तेरो उरसा नामु तेरा केसरो ले छिटकारे।
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे।
नामु तेरा दीवा नामु तेरा बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे।
नाम तेरे की जोति लगाई भइओ उजिआरो भवन सगलारे।। रविदास[१६४]

(९) कागद देवा कागद देवल कागद जंगम जाती।
कागद के धूप दीप नईबेद कागद पूजा पाती।
काहवा बहु दहि दीजो नविनिधि पाहीं।
ना कहु आवती न कहु जावती राम की दुहाई।। पीपा।[१६५]

९- वन्दनं: प्रणाम अथवा नमस्कार- श्रद्धा-पूर्वक नत मस्तक होना। भक्ति का यह अंग अंत:करण की शुद्धि द्वारा संपन्न होता है। जहां भी- अपराधी दुगणा निवै जो हंता मिरगाहि। आदि ग्रंथ में वन्दनं का महत्ता इस प्रकार व्यक्त हुई है:-

(१) प्रभु जी तूं मेरे प्रान अधारै।
नमसकार डंडउति बंदना अनिक बार जाउ वारै। बिल० म: ५[१६६]

(२) डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ। डोलन ते राखहु प्रभु नानक देकरि हथ। म:५[१६७]

१६२- आ०ग्रं० पृ० ५२५
१६३- आ०ग्रं० पृ० ६९५
१६४- आ०ग्रं० पृ० ६९४
१६५- आ०ग्रं० पृ० ६९५
१६६- आ०ग्रं० पृ० ८२०
१६७- आ०ग्रं० पृ० २५६

(३) धूप दीप सेवा गोपाल। (अर्चनं)
अनिक बार बंदन करतार। (बंदनं)
प्रभ की सरणा गही सभ तिआगि। (आत्म निवेदनं)
आठ पहर गाईऐ गोबिंदु। (कीर्तनं)
तनु धनु प्रभ का प्रभ की जिंदु। (आत्म निवेदन)
हरि किरपा ते सेवा लाए। (दास्यं)
सागर नरि बोहिथ प्रभ चरण। (पाद सेवनं) गउड़ि म:५[१९८]

७- दास्यं : सेवाभाव से भगवान् की आराधना करने से भक्त प्रिय भगवान का सानिध्य अत्यन्त शीघ्र हो जाता है। वे इस से सन्तुष्ट हो कर भक्त के प्रति कृपा किया करते हैं। अत: दास्यं की आदि ग्रंथ में विशेष महत्ता है:-

(१) तूं साचा साहिब दासु तेरा गोला। भाका म:५[१९९]
(२) निरोध हउ दासरो तेरा। तूं भारी ठाकुर गुणी गहेरा। सूही म: ५[२००]
(३) दास कबीर ताको भइ भाता, उबरि न कबहुं जाइ।[२०१]
(४) भगत करनि हरि चाकरी जिनी अनदिनु नामु धिआइआ।
दासनि दास होइ कै जिनी विचहु आपु गवाइआ।। म: १[२०२]
(५) दासनि दासा होइ रहहि ता पावहि सचा नाउ।। म:३[२०३]
(६) दासन दासा होइ रहु हउमै बिखिआ मारि।
जनमु पदारथु जीतिआ कदे न आवै हारि। म: ४[२०४]

८- सख्यं : आदि ग्रंथ में भक्त-भगवान् के दास-स्वामी भाव तथा दास-स्वामी-सख्य भाव का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत हुआ है। श्रीमद्भागवत ११-११-४३ में भक्त सखा भगवान स्वयं उद्धव से कहते हैं: हे सखा उद्धव! अभिन्न हृदय मित्र के समान सम्मान के द्वारा मेरे प्रिय भक्त मेरी पूजा किया करते हैं। जो व्यक्ति मेरे इस प्रकार के भक्तों की पूजा किया करते हैं वे मानो मेरी ही पूजा किया करते हैं और जो लोग उन से मित्रता किया करते हैं, उनसे मेरी भी मित्रता हो जाती है।[२०५]

१९८-आ०ग्रं० पृ० २९९
१९९- आ०ग्रं० पृ० ७३२
२००- आ०ग्रं०पृ०
२०१- आ०ग्रं० पृ० ६९६
२०२- आ०ग्रं० पृ० ४४५
२०३- आ०ग्रं० पृ० ५६५
२०४- आ०ग्रं० पृ० १३१२
२०५- वैष्णवे बंधुसत्कृत्या।
श्रीमद्भागवत, ११-११-४३ से गुप्त साधना मार्ग पृ० १८५ पर।

आदि ग्रंथ में भक्त कवियों ने अन्य संबंधों के साथ साथ भगवान् से सखा-भक्ति के संबंध को भी स्थापित किया है:-

(१) मिलि मेरे प्रीतमा जी, हरि नाम सुआमी मेरा। म:५ [२०६]

(२) तूं मेरा सखा तूंही मेरा मीतु। तू मेरा प्रीतमु तुम संगि हीतु। म:५ [२०७]

(३) सजण सचा पातिसाहु सिरि साहां दै साहु। म:५ [२०८]

(४) सखा सैनु पिआरु प्रीतमु नामु हरि का जपु जापी। तुखारी म:१ [२०९]

(५) साजन तेरे चरन की होइ रहा सद धूरि।
नानक सरणि तुहारीआ, पेखउ सदा हजूरि। राग मारू म:१ [२१०]

(६) हम घरि साजन आए। साचै मेलि मिलाए।। सूही म:१ [२११]

(७) साजन मेरे प्रीतमहु तुम सह की भगति करेहो। आसा म: ३ [२१२]

(८) सजणु मेरा एकु तूं करता पुरखु सुजाणु। सूही म: ४ [२१३]

(९) साजणु मैडा रंगुला रंगु लाए मनु लेइ।
जिउ माजीठै कपड़े रंगे भी पाहेहि।
नानकु रंगु न उतरै बिआ न लगै केह।म: ३ [२१४]

९- आत्मनिवेदन : अर्थात आत्म-समर्पण। श्रीमद्भागवत में कहा है, हे उद्धव ! मनुष्य जब समस्त कर्मों का परित्याग कर के मेरे अधीन आत्म-समर्पण करता है, निश्चय जानो कि वह तभी अमृतत्व प्राप्त कर के अर्थात् अमर होकर मेरे साथ एकत्व प्राप्त करने योग्य हो जाता है।

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो, मयात्मभूयाय च कल्पते वै। [२१५]

भक्ति के नौ प्रकारों में आत्म--निवेदन गुरमति भक्ति की चरम-सीमा है।-

(१) [illegible] हम [illegible] ठाकुरपहि डारि।
जब हम सरणि प्रभू की आई, राखु प्रभू भावै मारि।। म:४ [२१६]

(२) तुधु आगै अरदासि हमारी, जीउ पिंडु सभ तेरा। आसा म:५ [२१७]

(३) हरि है संगि सो हरि लीन।
तनु मनु अरपि करतु सब अरपि तैं [illegible] [illegible] सुनि फोक । सूरदास [२१८]

२०६- आ०ग्रं० पृ० ८८४
२०७- आ०ग्रं० पृ० १८१
२०८- आ०ग्रं० पृ० १४२६
२०९- आ०ग्रं० पृ० १११३
२१०- आ०ग्रं० पृ० ६८६
२११- आ०ग्रं० पृ० ७६४
२१२- आ०ग्रं० पृ० ४४०
२१३- आ०ग्रं० पृ० ७५६
२१४- आ०ग्रं० पृ० ६४[illegible]
२१५- श्रीमद्भागवत -११-२९

(४) तनु मन अरपउ पूजा चरावउ।। गुर परसादि निरंजन पावउ।। रविदास[219]

(५) तनु मनु अरपे सति गुर सरणाई। हिरदै नामु वसै वडिआई। ५:३[220]

(६) तनु मनु अरपि सीगार बणाए करि प्रभ भावै साउआ। ५:४[221]

इस प्रकार भागवत् की नवधा भक्ति के सभी स्वरूप आदि ग्रंथ की साधना में घुले मिले हुए हैं, और गुरभक्ति साधना मार्ग ने उन्हें अपने अनुकूल ढंग से अपना लिया है। नवधा भक्ति के अर्चनं तथा पाद सेवनं को डा० मुन्शी राम ने सगुण भक्ति के अन्तर्गत माना है।[222] और इन अंगों को निर्गुण भक्ति के मेल में कहा है। परन्तु आदि ग्रंथ के अर्चनं और पाद सेवनं के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्तों ने इन अंगों का भी निर्गुणीकरण कर लिया था। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के ग्यारह प्रकार बताए गए हैं।[223] गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम विरहासक्ति। इन प्रकारों में भागवत् की नवधा भक्ति के सभी स्वरूप सम्मिलित हैं। गुणमहात्म्य में श्रवण-कीर्तन का समावेश हो जाता है, अर्चनं, पादसेवनं और वन्दनं, पूजासक्ति में आ जाते हैं, स्मरण, स्मरणासक्ति में, दास्यं दास्यासक्ति में, और आत्मनिवेदनं आत्म निवेदनासक्ति में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। रूपासक्ति, कान्तासक्ति और वात्सल्यासक्ति भागवत के नवधा भक्ति वर्णन में स्थान नहीं पाती। ये प्रेमासक्ति के रूप हैं और सगुण भक्ति के अन्तर्गत माने गये हैं।[224] परन्तु आदि ग्रंथ के सन्तों ने इन तीनों रूपों का भी निर्गुण रूप प्रस्तुत किया है और इन्हें भी अपनी साधना पद्धति में अन्तर्भुक्त कर लिया है:-

१- **कान्तासक्ति:** दाम्पत्य भक्ति आदि ग्रंथ की भक्ति का सब रूपों में उत्तम रूप है। इस रूप को नाम देव, कबीर, गुरु नानक तथा उनके परवर्ती अनुयायियों ने विशेष महत्त्व दिया है:-

नामदेव : मैं बउरी मेरा राम भतारु। रचि रचि ताकउ करउ सिंगारु।[225]

कबीर : गाउ गाउ री दुलहनी मंगलचारा। मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा।
कहि कबीर मोहि बिआहि चले हैं पुरख एक भगवाना।[226]

२१६- आ०ग्रं० पृ० ५२७
२१७- आ०ग्रं० पृ० ३८३
२१८- आ०ग्रं० पृ० १२५३
२१९- आ०ग्रं० पृ० ५२५
२२०- आ०ग्रं० पृ० ३६२
२२१- आ०ग्रं० पृ० ७७५
२२२- भक्ति का विकास पृ० ३०६
२२३- वही, नारद भक्ति सूत्र- पृ०८२ के आधार
२२४- डा० मुन्शी राम- भक्ति का विकास-पृ०३०६
२२५- आ०ग्रं०पृ० ११६४

गुरु नानक: हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीगारी।
नानक मेलि लई गुरि अपणै घरि वरु पाइआ नारी।[227]

गुरु अमरदास: मैं कामणि मेरा कंतु करतारु। जेहा कराए तेहा करी सीगारु।[228]

गुरु रामदास: हरि सुखि सेज सोई पिर नालणि मै मनि पूरा भावे भावा।
जो पिर पिआरा मै नदरि न देखै हउ किउ करि धीरजु पावा।[229]

गुरु अर्जुन देव: नव निधि पाई, बसो आधाड, बाजे अनाहद तूरे।
कहु नानक मैं वरु घरि पाइआ, मेरे लाथे सगल बिसूरे।[230]

२- रूपासक्ति : कान्तासक्ति की भावना उसके लिये रूपासक्ति की भावना को जन्म देता है। उस कांत-भरतार को सन्तों ने साक्षात् सौंदर्य का प्रतीक मान कर उस से प्रेम किया है। आदि ग्रंथ के सन्तों की भक्ति का रूपासक्ति रूप भी अलौकिक है:-

कबीर: सावल सुंदर रामईआ। मेरा मनु लागा तोहि।[231]

गुरु अर्जुन: (१) सावल सुंदर रूप बनावहि बेणु सुनत सभ मोहैगा।
करमाला त्रिभुवण कमल नैन। सुन्दर कुंडल मुकट बैन।
संख चक्र गदा है धारि महासारथी सत संगा।
पीत पीतंबर त्रिभवण धनी। जगंनाथु गोपाल मुखि।[232]
वह सुन्दर रूप देखा जाता नहीं। सर्वत्र व्यापक है।
(२) हरि सुंदर मनमोहन पिआरे सभहूं ते निरारे।[233]
(३) मेरा सुंदरु सुआमी जी हउ चरन कमल पग छारा।[234]
(४) तुझै उपमा भई, गहिओ की न अंचला ?
सुंदर सुख बिराजित पेखि मनु अंचला।[235]

रूपासक्ति के भावात्मक रूप अन्य रचयिताओं की वाणी में भी ढूंढे जा सकते हैं:-

गुरु नानक: सगल भवन तेरी माइआ मोह। मै अवरु न दीसै सरब तोह।
मेरे सुंदर गहिर गंभीर लाल। गुरमुखि रामनाम गुन गाए तू अपरंपरु सरबपाल।[236]

226- आ०ग्रं० पृ० ४८२
227- आ०ग्रं० पृ० ११०९
228- आ०ग्रं० पृ० ११२८
229- आ०ग्रं० पृ० ५६१
230- आ०ग्रं० पृ० ५९९
231- आ०ग्रं० पृ० ३३५
232- आ० ग्रं० पृ० १०८२
233- आ०ग्रं० पृ० ५३४
234- आ०ग्रं० पृ० ७८४
235- आ०ग्रं० पृ० १३६२
236- आ०ग्रं० पृ० ११६६

गुरु रामदास: मेरो सुंदरु कहहु मिलै कितु गली। हरि के संत बतावहु मारगु हम पीछै लागि चली।
पिआरे के बचन सुखाने हीअरै इह चाल बनी है भली।
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई ओह सुंदरि हरि ढुलि मिली।
एको प्रिउ सखीआ सभ प्रिअ की, जो भावै पिर सा भली। म:४ [237]

वात्सल्यासक्ति: आदि ग्रंथ के कवियों की भक्ति की मुख्य भावना यद्यपि कान्ता-भक्ति की है, तो भी अन्य भावनाओं के रूप भी इस भक्ति में स्वीकृत हैं। वात्सल्यासक्ति भी इस भक्ति में योग्य स्थान प्राप्त कर सकी है। भक्तों ने प्रभु को माता-पिता के रूप में भी देखा है:-

कबीर: बापि दिलासा मेरो कीन्हा। सेज सुखाली मुखि अंम्रितु दीन्हा।
तिसु बाप कउ किउ मनहु विसारी। आगै गइआ न बाजी हारी।
पिता हमारो वड गोसाई। तिसु पिता पहि हउ किउ करि जाई।
तू मेरो पूत, तेरा तू बापु मेरा। एकै ठाहर दुहा बसेरा।
कहु कबीर जनि एको बूझिआ। गुर प्रसादि मै सभु किछु सूझिआ। [238]

गुरु अर्जुन: (१) नानक के प्रभ दाते सतिगुर हम तुमरे बाल गुपाला। [239]
(२) तुम मातपिता हम बारिक तेरे। तुमरी क्रिपा महि सूख घनेरे। [240]
(३) तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता। [241]
(४) गुरु पूरै पिता संगि मेले। [242]
(५) तू मेरा पिता तू है मेरा माता। तू मेरे जीअ प्रान सुखदाता। [243]

भक्ति परंपरा के अन्य मुख्य अंग

श्रीमद्भागवत्, नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र तथा रूप गोस्वामी के भक्ति-रसामृत--सिंधु में भक्ति के विभिन्न अंगों पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। डा० मुन्शीराम ने इन का विस्तृत अध्ययन अपने ग्रंथ भक्ति का विकास में प्रस्तुत किया है। [244] इन ग्रंथों के संक्षिप्त अध्ययन को आगे उद्धृत करके हम भक्ति के विकसित अंगों का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए, उन अंगों का अध्ययन आदि ग्रंथ में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

२३८- आ०ग्रं० पृ० ४७६
२३९- आ०ग्रं० पृ० ३७८
२४०- आ० ग्रं०पृ० २६८
२४१- आ०ग्रं० पृ० १०३
२३७- आ०ग्रं० पृ० ५२७
२४२- आ०ग्रं० पृ० ११४१
२४३- आ०ग्रं० पृ० ११४४
२४४- भक्ति का विकास पृ० ३०६-३२१

श्रीमद्भागवत्

श्रीमद्भागवत् स्कंध ३, अध्याय २६ के श्लोक १५ से १६ तक भक्ति के अंगों का वर्णन हुआ है जो इस प्रकार है:-[245]

१- नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन।

२- शास्त्रोक्त हिंसा-रहित क्रिया-योग का अनुष्ठान।

३- भगवान् के विग्रह के दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति वन्दना और नाम संकीर्तन।

४- समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना करना।

५- सत्य- धैर्य और संयम- वैराग्य का अवलंबन।

६- महापुरुषों का मान, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार।

७- यम-नियमों का पालन, जिसमें स्वाध्याय अर्थात् अध्यात्म शास्त्रों का श्रवण और ईश्वर प्रणिधान अर्थात् प्रभु की शरण ग्रहण करना। (प्रपत्ति मार्ग या आत्मनिवेदन) भी आता है।

८- मन की सरलता और अहंकार का त्याग।

९- सत्पुरुषों का संग।

नारदभक्ति सूत्र

नारद भक्ति सूत्र संख्या ३४ में लिखा है: तस्या साधनानि गायन्ति आचार्याः अर्थात् आचार्यों ने भक्ति के साधनों की प्रशंसा की है। ये साधन नारद ने नारदभक्ति सूत्र ३५ से ५० , तथा ६२-६४,७४,७६,७८ तथा ७६ में वर्णित किए हैं। उनसे निम्नांकित बातें भक्ति के साधन में गृहीत की जा सकती हैं।[246]

१- विषय त्याग तथा विषय-संग (विषयासक्ति) का त्याग।

२- सर्वदा सभी भावों में निश्चिन्त होकर भगवान का लगातार भजन।

३- भगवान् के गुणों का श्रवण और कीर्तन (नाम जाप) स्त्री, धन, नास्तिक और शत्रुओं के चरित्र श्रवणीय नहीं हैं।

४- महान पुरुषों की कृपा अथवा भगवान की दया दृष्टि ।

५- महान् पुरुषों का सत्संग दुर्लभ और अगम्य है, पर प्राप्त हो जाने पर निश्चित रूप से सफलता प्रदान करता है। क्योंकि दुर्लभ नहीं जाता, अमोघ है।

२४५- भक्ति का विकास-३१०

२४६- भक्ति का विकास- पृ० ३१२

यह सत्संग प्रभु कृपा से प्राप्त होता है। भगवान् कृष्ण भगवान् के भक्त होते हैं और जिनमें भेद भावना नहीं रहती। अतः भगवान कृष्ण भक्तों का सत्संग अवश्य करना चाहिए।

६- दुष्टों का संग सभी प्रकार से त्याज्य है, क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और सर्वनाश का कारण है। अभिमान, दंभादि आसुरी वृत्तियां हैं, अतः परित्याज्य हैं। वितण्डावाद दूषित वृत्तियों को उभारता है, अतः उसमें भाग नहीं लेना चाहिये।

७- एकान्त में रहना, संग या आसक्ति का त्याग, भगवान् कृष्णों की सेवा ममत्व-विहीनता, लोकबंधन तथा योग-क्षेम का त्याग, कर्मफल का त्याग, कर्म का भी त्याग, त्रैगुण्य वेदों का भी त्याग, निस्त्रैगुण्य-प्राप्ति और भगवान् में अनवरत अनुराग।

८- लोक-व्यवहार अथवा फलाकांक्षारहित होकर कर्माचरण।

९- यम नियम तथा सत्संबंधी आचार का पालन। इन्हीं में भक्ति शास्त्रों का मनन और उनके उद्दीपक कर्म भी आ जाते हैं।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र

इस भक्ति ग्रंथ के सूत्र १८, २१, ४६, ४५, ४६, ५६, ६४, ६५, ७४, ८३, ८५, ९६ में भक्ति के निम्नांकित अंगों की ओर संकेत है:-[२४७]

१- देवभक्ति में भी उपास्य भगवान् कृष्णों का सत्संग भी आ जाता है, क्योंकि उपासनात्मक दिव्य-प्राप्ति का और कारण भी नहीं होता, उसमें दिव्यता का संचार भी हो उठता है। (सूत्र १८,२१)

२- प्रभु के गुणों का ज्ञान उनकी लीलादि का स्मरण और कीर्तन (सूत्र-२१,७४)

३- प्रभु के प्रति समर्पण भावना। (सूत्र ६४)

४- प्रभु का सतत एकान्त भाव से ध्यान। (सूत्र ६५,८३)

५- भगवान् के भक्तों का ध्यान और अपना समस्त शक्तियों को उनके लिये लगा देना- प्रभु सेवा तथा भक्त सेवा (सूत्र ४५)

६- कार्पण्यभाव- सूत्र ४६

७- पवित्रता (मन वचन कर्म में) सूत्र- ५६

२४७- वही ३१३

सूत्र ८३ से ज्ञात होता है कि शांडिल्य भक्ति सूत्र गीता से परवर्ती है।[२४८]

भक्तिरसामृतसिंधु

इस ग्रंथ में उत्तम भक्ति के अंग पूर्वभाग चतुर्थ लहरी के श्लोक १,६,७ में वर्णित किए गए हैं।[२४९]

१- अंतःकरण की पवित्रता और प्रभु-परायणता।

२- देव भक्ति, भगवान् पुरुषों का सत्संग और मान।

३- दीनों पर दया, समान स्थिति वालों से मित्रता।

४- यम नियम तथा शास्त्रीय आचार का पालन। यम: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) नियम: शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान)।

५- अधिकल- योग क्षेम-श्रम आदि का त्याग।

६- दुर्जन संसर्ग से पृथक् रहना और नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन करना।

७- प्रभु परायणता के लिये मन की सरलता।

८- अहंकार का त्याग, धैर्य और वैराग्य का अवलंबन।

९- भक्ति संबंधी शास्त्रों का श्रवण।

१०- समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना करना।

११- भगवान् के गुणों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजा, आत्मनिवेदन।

१२- दुष्टों का संसर्ग, स्त्री-विषयक, धन, नास्तिक और असुरों के चरित्र का श्रवण प्रभु परायणता के लिये बाधक। अत: इन का त्याग।

१३- कारुण्य भाव-जीव दया- दीनों पर दया- अन्त:करण की पवित्रता को बल देता है।

सूत्र ११,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३० के आधार पर निम्नांकित अंगों का वर्णन है:-[२५०]

१४- भुक्ति-मुक्ति दोनों की आकांक्षा का परित्याग। (पूर्वभाग- २:११)

१५- गुरु-पाद-सेवा (पूर्वभाग- २ लहरी- श्लोक २४ तथा २५)

२४८- वही ३१४

२४९- भक्ति का विकास पृ० ३१४

२५०- वही पृ० ३१५,३१६,३१७

१६- साधु-समागम, सन्तों के पग का अनुसरण। (सूत्र २५)

१७- सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा। (२५)

१८- भगवान् कृष्ण के लिये भोगादि का त्याग (२५)

१९- तीर्थ स्थान वास। (२६)

२०- सम्यक् व्यवहार। (२६ ।२६)

२१- भगवान् के विमुखों के संग का त्याग। (२८)

२२- अनेक ग्रंथों तथा कलाओं के अभ्यास, व्याख्या एवं वाद से पृथक् रहना। (२६)

२३- भोगादि के वशीभूत न होना (२६)

२४- किसी भी प्राणी का अपमान करना। (३०)

२५- किसी भी प्राणी को दुःख न देना। (३०)

२६- भगवान् की सेवा तथा नाम-जाप में किसी प्रकार के अपराध को उत्पन्न न होने देना। (३०)

इन सारों ग्रंथों में जो भक्ति का स्वरूप है, वह अधिकतर भागवत् की नवधा भक्ति तथा नारद भक्ति सूत्र की भक्ति के ग्यारह प्रकारों के अन्तर्गत ही है। इन ग्यारह प्रकारों के अतिरिक्त जो भक्ति के अंग उपर्युक्त विवरण में दिये गए हैं, उन्हें हम सहायक भक्तियाँ तथा अपरोक्ष भक्तियों के दो भागों में विभक्त कर उन की परंपरा का आदि ग्रंथ से अध्ययन प्रस्तुत करते हैं:-

सहायक भक्तियां

१- नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्यों का पालन।

२- समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना।

३- सत्य-धैर्य और सन्तोष- वैराग्य का अवलंबन।

४- महापुरुषों का मान- सत्संगति।

५- जीव दया-दीनों पर दया।

६- यम-नियमों का पालन।

७- महानपुरुषों की कृपा(गुरु की कृपा), उसे भगवान् की दया दृष्टि। (भगवान् की कृपा)

८- पवित्रता (मनसा-वाचा- कर्मणा)

९- मन की सरलता तथा व्यवहार में उदारता।

१०- नाम जाप।

अवरोधक क्रियाएं : ऐसी बाधक क्रियाएं हैं, जो प्रभु-नाम-स्मरण में मन को लीन नहीं होने देतीं। अत: इन क्रियाओं से मुक्त हो कर ही भक्ति प्राप्ति सहायक क्रियाओं के रूप में सिद्ध होती है। भक्ति मार्ग का यह प्रारंभिक पता है। सहायक क्रियाओं अथवा भक्ति के नित्यकर्म में जब मन लगता है तब मन को जीत लिया जाये। अत: यह भक्ति की ऊपर रचना है।

१- अहंकार (घमंड) का त्याग।

२- विषय-त्याग - दुष्कर्मों का त्याग।

३- निर्जित भाव (...) में भगवान् का ध्यान। (चिंता का त्याग)

४- दुष्टों के संग का त्याग। भगवान् से विमुख मनुष्यों के संग का त्याग।

५- मुक्ति-भुक्ति, योग-क्षेम आदि की इच्छा तथा अधिकार का त्याग।

६- बाह्याडंबर का त्याग। (इस मार्ग में बाह्याडंबर का आवरण तथा साधना का सुगम मार्ग)

७- सब जीवों को समान समझ- जाति पांति के भेद भाव तथा ऊंच नीच की भावना का त्याग।

विस्तार भय के कारण उपर्युक्त सभी अंगों का संक्षिप्त अध्ययन ही प्रस्तुत करना अभीष्ट होगा।

सहायक क्रियाएं

(क) नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्यों का पालन:

१- नाम देव: आठ पहर अपना प्रभु सिमरन करो नामु बिसारि राम।[२५१]

२- कबीर: अहिनिसि एक नाम जो जागै। केतक सिध भए लिव लागै।[२५२]

३- गुरु नानक: अहिनिसि अंतरि रहै लिव लाइ। ... प्रभु ... समाइ।[२५३]

४- म:३ : अहिनिसु भगति करहि दिन राती हउमै ... मरै ... होई।[२५४]

५- म:४ : अहिनिसि जपी ... ... ध्यान आदि लिव लाइ।[२५५]

६- म:५ : आठ पहर हरि हरि ... ... जापी।[२५६]

२५१- आ०ग्र० पृ० ६२६
२५२- आ०ग्र० पृ० ३३०
२५३- आ०ग्र० पृ० १२५६
२५४- आ०ग्र० पृ० ११३३
२५५- आ०ग्र० पृ० ९९५
२५६- आ०ग्र० पृ० ७४१

(ख) समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना।

१-फरीद: इकु फिका ना गालाइ सभना मै सचा धणी।[२५७]

२-कबीर: लोगा भरमि न भूलहु भाई। खालिकु खलक, खलक महि खालिकु, पूरि रहिओ स्रब ठाई।[२५८]

३-नामदेव: घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी।[२५९]

४-म:१ : घट घट अंतरि सरब निरंतरि रवि रहिआ [illegible] सेयो।[२६०]

५-म:३ : घट घट अंतरि जिस की जोति समानी।[२६१]

६-म:४ : घटि घटि अंतरि रवि रहिआ अपिआरु जन सोई।[२६२]

७-म:५ : प्रभ बिनु अवरु दूसर कोई नाही। घट घट अंतरि सगल समाही।[२६३]

८-म:९ : घटि घटि मैं हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।[२६४]

(ग) सत्य-धैर्य और संयम- वैराग्य की भावना

यह वैराग्य ऐसा है जैसे जल में कमल का जीवन। संसार में रहते हुए संसार से अलिप्त रहना:-

१- म: १ : जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।[२६५]

गुरमुखि अलिपतु लेपु कदे न लागै सदा रहै सरणाई।[२६६]

२- म: ३ : गुरमुखि अलिपतु रहै संसारे।[२६७]
गुरमुखि अलिपतु रहै निरारे।[२६८]

३- म: ५ : ब्रह्म गिआनी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप।[२६९]

(घ) महापुरुषों का मान सतसंगति

महापुरुषों का मान :

१-कबीर: [illegible] भगति है किन जना कु गावै।[२७०]

२-म: १: बलिहारी गुर आपणे जिनि [illegible] दिखा दिखाइ।[२७१]

२५७- आ०ग्रं० पृ० १३८४
२५८- आ०ग्रं० पृ० १३४९
२५९- आ०ग्रं० पृ० ४८५
२६०- आ० ग्रं० ११२९
२६१- आ०ग्रं० पृ० ८३२
२६२- आ०ग्रं० पृ० १३१८
२६३- आ०ग्रं० पृ० ८६६
२६४- आ०ग्रं० पृ० ४२६

३- म: ३ : हरि के [illegible] सदा जन निरमल, जुगि जुगि [illegible]।[२७२]

४- म: ४ : जन की महिमा [illegible] न [illegible] ऊतम हरि [illegible]।

संत जना की [illegible] सोभा, जिन [illegible] हरि [illegible]।

हरि के संत जना [illegible] हरि हरि [illegible] ऊतम जनम जनाक।[२७३]

५- म: ५ : हरि का [illegible] हरि [illegible]। [illegible] न [illegible]।[२७४]

सत् संगति

संत संगति [illegible] साधु [illegible] नाम [illegible] आप [illegible] की [illegible] विशेष [illegible] है। सत्संगति की बहुत [illegible] की गई है। गुरु नानक जी सत् संगति के [illegible] हैं: '[illegible] संगति [illegible] जिनी [illegible] नाम [illegible]।'[२७५] जिस प्रकार चन्दन [illegible] की भांति सुवासित [illegible], [illegible] प्रकार [illegible] संगति [illegible] गुणों [illegible] है: 'उत्तम संगति [illegible]। गुण [illegible] अवगुण [illegible]।' म:१[२७६]। गु[illegible] [illegible]: '[illegible] चंदन [illegible] की [illegible], [illegible] सत्संगति [illegible] पतित परवाणु।'[२७७]

१-कबीर: कबीर संगति [illegible] दिन दिन दूना [illegible]। - १००[२७८]

कबीर साधु की संगति [illegible] को [illegible] । - ६६[२७९]

२- म:२ : [illegible] संगति [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]।[२८०]

३- म:३ : [illegible] संगति [illegible] साधु [illegible]।[२८१]

४- म:४ : [illegible] संगति साधु [illegible], [illegible] हरि [illegible]।[२८२]

५- म:५ : [illegible] संगति [illegible], [illegible], हरि [illegible] भरत [illegible]।[२८३]

गोबिंद [illegible] नानक [illegible]।[२८४]

२७५- ग्रं० पृ० ६३८

२७६- ग्रं० पृ० [illegible]

२७७- ग्रं० पृ० [illegible]

२७८- ग्रं० पृ० २३०

२७९- ग्रं० पृ० [illegible]

२८०- ग्रं० पृ० ३४२

२८१- ग्रं० पृ० ६३७

२८२- ग्रं० पृ० [illegible]

२८३- ग्रं० पृ० [illegible]

२८४- ग्रं० पृ० पृ० [illegible]

६- म: ६ : करि साम संगति मिमरु भा ं, छोति पतित पुनीत। २८५

(ह) जीव-दया-दीनों पर दाया

१-कबीर: कबीर खुदु खाना खीचरी जा महि अंम्रित लोनु।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ।।(१८८) २८६

पाति तोरै मालिनी पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन कउ पाती तोरै सो पाहन निरजीउ।। २८७

२- म:१ खा भी कपड़े तीरथ मंझि न्हि।
छुटि छुटि जा ा ावणे कै न कही जन्हि। २८८

दइआ जाणै जीअ की कछु पुंनु दान करेइ। २८९

३- म:५ : अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवान। २९०
जीअ दइआ मइआ सरबत्र रमणं परमहंस रीति।। २९१

दीनों पर दया

मनुष्य को मनुष्य की दया का पात्र मानना, (चाहे एक दीन हो और अन्य समृद्ध) आदि ग्रंथ का मान्य सिद्धान्त नहीं। दीन दयाल केवल एक परमात्मा है, अत: उसी का आश्रय और उसी की ओट लेना आदि ग्रंथ का मान्य सिद्धान्त है। मनुष्य की टेक को छोड़ भगवान् की टेक लेना ही उचित है:-

१-फरीद: फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि।
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि।।४२।। २९२

२७५- आ०ग्र० पृ० ७२	२८२- आ०ग्र० पृ० १२४४
२७६- आ०ग्र० पृ० ४१४	२८३- आ०ग्र० पृ० ४०१
२७७- आ०ग्र० पृ० ८६१	२८४- आ०ग्र० पृ० १३५१
२७८- आ०ग्र० पृ० १३६६	२८५- आ०ग्र० पृ० ६३१
२७९- आ०ग्र० पृ० १३६६	२८६- आ०ग्र० पृ० १३७४
२८०- आ०ग्र० पृ० ५५३	२८७- आ०ग्र० पृ० ४७९
२८१- आ०ग्र० पृ० १४२७	२८८- आ० ग्र०पृ० ७२६

२-कबीर: कबीर समुंद न छोडीऐ जउ अति खारो होइ।

पोखरि पोखरि ढूंढते भलो न कहिहै कोइ। (५०) [२९३]

३- म:१: किआ हौ कोई पोह, मंनु निमाणी कहु हू ॥ [२९४]

४- म:४: किआ भी पड़ा कीआ पिर हुआ नाहि प्यारी।

किआ हौ पड़ा कीआ हु,प के नाहि कमाई।

किआ भी पड़ा कीआ निरंकार न परो नाहि पाणी दुआरी।

हमारा पड़ा हरि रखिया सचाई।

हमरा हरि पड़ा जिनि रम घड़े सभि सवारे। [२९५]

५- म:५ : ना कछ कुलह्दु खति मणी होई जोबन देह।

लागू गोए कुसमना गाक मि भाजि ते।

लगी भवै वासरा कुं जपु सवराउ।

भिति गावै गांवु पार कृष्नु लभै न वतो वाउ ॥ [२९६]

मानुष की टेक बृथी सभ जान। देवन कउ एकै भगवानु।

जिस के दीऐ रहै अघाई। बहुरि न तृसना लागै आइ। [२९७]

मनुष्यको मनुष्य का आश्रय लेना उसकी अवस्था में घृणित है, जब आश्रयदाता अपने आप को आश्रित से उत्तम समझता हो और आश्रित हो नीच। जब ऐसी दशा उपस्थित हो जाती है कि उत्तम-कथित उत्तम लोग नीचों से घृणा करते हैं, तो आदि ग्रंथ के भक्त नीचों के पक्ष में खड़े होते हैं, उन्हें उनसे घृणा होती है:-

---

२८९- आ०ग्रं० पृ० ४४८

२९०- आ०ग्रं० पृ० १३६

२९१- आ०ग्रं० पृ० ५०८

२९२- आ०ग्रं० पृ० ११८०

२९३- आ०ग्रं० पृ० १३६०

२९४- आ०ग्रं० पृ० ७६१

२९५- आ०ग्रं० पृ० ३६६

२९६- आ०ग्रं० पृ० ७०

२९७- आ०ग्रं० पृ० २८१

१- जौ तूं ब्राह्मणु ब्राह्मणी जाइआ, तउ आन बाट काहे नहीं आइआ।
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध। कबीर [298]

२- नीचा अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस। म: १ [299]

३- नीच ऊच नहीं मान अमान। बिआपित राम सगल सामान। कबीर [300]

गुरु नानक देव का तो विश्वास था कि सामंत-वादी-प्रथा की दास-श्रेणी स्वयं बदल कर रख देगी। न कोई स्वामी रहेगा और न दास। सब समान होंगे :-

जिन सिरदारी तिनहि उतारी बाहरु कैसे चरणा।
जा सिरदारी पवै जंजीरी, ता बाहरु स्वाहु भरणा । म: १ [301]

जहां तक दीनों पर दया का प्रश्न है, आदि ग्रंथ के भक्त, केवल भगवान् को ही दीन-दयाल के पद पर आसीन करते हैं:-

१-नामदेव: दीन का दइआलु माधौ गरब परहरि। [302]
२-रविदास: हमसरि दीन, दइआलु न तुमसरि अब पतीआरु किआ कीजै। [303]
३-कबीर: दीन दइआल क्रिपाल दमोदर भगति बछल भै हारी। [304]
४-म:१ : दीना नाथु सरब सुखदाता। नानक हरि चरणी मनु राता। [305]
५-म:४ : दीन दइआल क्रिपा करि माधो, हरि हरि नामु गोपाल राम। [306]
६-म:५ : दीन दइआल करहु [illegible]। नानक दास परिओ सरणि गोपाला। [307]
७-म:६ : दीन दइआल सदा दुख भंजनु ता सिउ मनु न लगाना। [308]

(ख) यम-नियमों का पालन

यम प्रमुखत: आचरण के विशोधन की व्यवस्था है, जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन किया जाना चाहिए। नियम पांच हैं- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान। [309]

२९८- आ०ग्रं० पृ० ३२४
२९९- आ०ग्रं० पृ० १५
३००- आ०ग्रं० पृ० ३४४
३०१- आ०ग्रं० पृ० ६०२
३०२- आ०ग्रं० पृ० ६९४
३०३- आ०ग्रं० पृ० ६९४
३०४- आ०ग्रं० पृ० ६७१
३०५- आ०ग्रं० पृ० १५४

अहिंसा के विषय में जीव दया के बारे ऊपर वर्णन किया जा चुका है। अन्य विषयों पर नीचे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है:-

सत्य : आदि ग्रंथ की भक्ति में सत्य को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। जिस जीवन में सच को महान् स्थान प्राप्त हो वह जीवन सब से उत्तम है:

१-नामदेव: साचि सीलि चालहु सुलितान।[310]

२-कबीर: साचे लाग न सब लागे साचे के अधिकारी।
साची कहु मैं भार भनाय पहुँचे जाय भंडारी।[311]

३-म:१ : सचै ऊपरि अवर न दीसै साचे कीमति पाई है।[312]

४-म:३ : सचै लाए सचि लगे सदा सचु समालेनि।
नानक आपे ते परवाण मन जि लगाते गुरु वारेनि।[313]

५:म:४ : सचु वणंजहि रंग सिउ, सचु सउदा होइ।
तोटा मूलि न आवई लाहा हरि भावै होइ।
सा जाती सचु आराधणा सचु सचा पुरखु निराले।
सचु सेवी सचु मनि वसै सचु सचा हरि रखवाले।
सचु सचा जिनी अराधिआ से जाइ रले सच नाले।[314]

६-म:५ : साचा तखतु सची पातिसाही। सचु खजीना साचा साही।
आपे सचु धारिओ सभु साचा सचे सचि वरतीजा है।
सचु तपावसु सचे केरा। साचा थानु सदा प्रभ तेरा।[315]

अस्तेय :

अस्तेय का अर्थ है, चोरी न करना। आदि ग्रंथ का एक महान् अंग अपने पसीने की कमाई खाना है। चोरी से अथवा किसी अन्य अयोग ढंग से प्राप्त किया हुआ धन घृणित माना गया है।

३०६- आ०ग्र० पृ० ६६६
३०७- आ०ग्र० पृ० ७४२
३०८- आ०ग्र० पृ० ६८५
३०९- आ०ग्र० हिन्दी साहित्य कोश- ८८०
३१०- आ०ग्र० पृ० ११६६
३११- आ०ग्र० पृ० ११२३
३१२- आ०ग्र० पृ० १०२३
३१३- आ०ग्र० पृ० ६५१
३१४- आ०ग्र० पृ० ३११
३१५- आ०ग्र० पृ० १०७३

१- म: १ जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ।
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ।[316]

चोर की हामा भरे न कोइ। चोरु कीआ चंगा किउ होइ।[317]

चोरा जारा रंडीआ कुटणीआ दीबाणु।
वेदीना की दोसती वेदीना का खाणु।[318]

२- म:३: चोरि गंढू पतकीऐ बिनु नावै खोटा पाइ।[319]

३- म:५ : चोर जार जूआर ते बुरा। अणहोंदा भारु निंदकि सिरि धरा।[320]

हरि का नाम जिनि मनि न आराधा। चोर की निआई जमपुरि बाधा।[321]

<u>ब्रह्मचर्य</u> : गुरमति में आजीवन ब्रह्मचर्य को कोई स्थान नहीं:-
बिंदु राखि जौ तरीऐ भाई। खुसरै किउ न परम गति पाई।[322] कबीर
गुरमति में गृहस्थ जीवन को उत्तम जीवन माना गया है:-
मन रे ग्रिह ही माहि उदासु।
सचु संजमु करणी सो करे गुरमुखि होइ परगासु। म:३[323]
दिखावे के तप तथा योग की बजाय गृहस्थ जीवन कहीं अच्छा है:-
इसु भेखै थावहु गिरहु भला जिथहु को वरसाइ। म: ३[324]
गुरमति में जो गृहस्थ की श्रेष्ठता है, उसका वर्णन भाई गुरदास के शब्दों में इस प्रकार है:-
गिआनन मैं गिआन अरु धिआनन मैं धिआन,
गुर सकल धरम मैं ग्रिहसत प्रधान है।[325]
गुरमति के अनुसार तो एक पत्नी वाले गृहस्थ को यति कहा है:-
एका नारी जती होइ ।[326]
जो पुरुष अपनी नारी को छोड़ किसी अन्य नारी की ओर दृष्टि रखता है, उस के इस जघन्य कार्य को अक्षम्य कहा है:-

---

316- आ०ग्र० पृ० ४७२
317- आ०ग्र० पृ० ६६२
318- आ०ग्र० पृ० ७९०
319- आ० ग्र०पृ० ४२५
320- आ०ग्र० पृ० ११४५
321- आ०ग्र० पृ० २४०
32 - आ०ग्र० पृ० ३२४
323- आ०ग्र० पृ० २६
324- आ०ग्र० पृ० ५८७
325- कथा उपदेश सागर- पृ० ४४०
कबित्त सवैये- ३७६

१- घर की नारि तिआगै अंधा। परनारी सिउ घालै धंधा।
पापी का घरु अगने माहि। जलत रहै मिटवै कब नाहि।। नामदेव[327]

२- बनिता छोडि बद नदरि परनारी।
वेसि न पाईऐ महा दुखिआरी ।। म: ५[328]

३- आँखि झूठु वेखणा परत्रिअ परधन रूपु। म:१[329]

यदि परधन तथा परदारा की ओर बुरी दृष्टि से न देखा जाए तो वह नर परम श्रेष्ठ है:-

४- परधन परदारा परहरी। ता कै निकटि बसै नरहरी। नामदेव[330]

<u>अपरिग्रह</u> : दूसरे के अधिकार को छीनना परिग्रह है, जिसको त्याज्य माना है। पराए धन को ग्रहण करने के विषय में जो विचार आदि ग्रंथ में मिलते हैं, उनका संक्षिप्त रूप से यहाँ प्रस्तुत किया गया है। रिश्वत चोरी की भी आदि ग्रंथ में बहुत निंदा की गई है:-

१- हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ। म:१[331]

२- जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु। जो रतु पीवहि माणसा,
तिन किउ निरमल चीत।म:१[332]

३- लै कै वढी देनि उगाही दुरमति का गलि फाहा है। म:१[333]

४- काजी होइ कै बहै निआइ। फेरे तसबी करे खुदाइ।
वढी लै कै हकु गवाए। जे को पुछै ता पड़ि सुणाए।
लोक मुहावहि चाड़ी खाहि । म:१[334]

<u>नियम</u> : शौच: मन की निर्मलता का नाम शौच है। भक्ति का यह विशेष अंग है। इसी कारण आदि ग्रंथ में इसका विशिष्ट स्थान है:-

<u>हृदय की शुद्धि ही यथार्थ शुद्धि है</u>

जीअहु निरमल बाहरहु निरमल। बाहरहु निरमल जीअहु निरमल
सतिगुर ते करणी कमाणी। म:३[335]

३२६- गुरमति निरणय भंडार- बानी भाग सिं-६८६

३२७- आ०ग्रं० पृ० ११६५

३२८- आ०ग्रं० पृ० १३४८

३२९- आ०ग्रं० पृ० ४७२

३३०- आ०ग्रं० पृ० ११६३

<u>बाहर की शुद्धि, शुद्धि नहीं है</u>

१- जीअहु मैले बाहरहु निरमल।
बाहरहु निरमल जीअहु त मैले तिनि जनमु जूऐ हारिआ। म:३ [336]

२- बाहरि धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर।
साध भले अणनातिआ चोर सि चोरा चोर। म: १ [337]

३- बाहरु धोइ अंतरु मनु मैला दुइ ठउर अपुने खोए। म:५ [338]

४- बाहरि पाखंड सभ करम करहि मनि हिरदै कपटु कमाइ।
[illegible] सरीरि जो जीवै सो अंत खोआ जाइ। म:३ [339]

<u>संतोष</u> : संतोष आदि ग्रंथ का वर्णित है तीन मुख्य अंगों में से एक है। गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु ग्रंथ का संपादन संपूर्ण कर चुकने के पश्चात् इस ग्रंथ के अंत में मुंदावणी की मुहर लगाते हुए इस ग्रंथ की वाणी के तीन अंगों को इस प्रकार निर्दिष्ट किया:

<u>मुंदावणी म:५</u>

थाल विचि तिंनि वसतू पईओ, सतु संतोखु वीचारो। [340]

सत्य, संतोष तथा विचार में से सत्य, तथा विचार पहलुओं का पीछे वर्णन हो चुका है। संतोष का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

आदि ग्रंथ के अनुसार संतोष से [illegible] ने गाढ़े पसीने की कमाई से जो प्राप्त हो उसी में निर्वाह करने का नाम है। इस में से यदि किसी आवश्यकताग्रस्त की सहायता की जा सके तो यह भी भक्ति है:-

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ।। म:१ [341]

जहां तक धन-संपत्ति को जुटाने का प्रश्न है, आदि ग्रंथ का विचार इतना वैज्ञानिक एवं सफलतापूर्ण है, कि इस के विरुद्ध कोई अर्थशास्त्री भी अपना दूसरा विचार प्रस्तुत नहीं कर सकता। आदि ग्रंथ के सन्तों का विश्वास है कि आज तक कोई भी धनिक इसलिये धनीमानी नहीं बना कि उसने शुद्ध-सात्त्विक साधनों से माया एकत्रित की है, अथवा उस ने पसीने की कमाई जुटाई है। वरन् अधिकतर केवल इस लिये धनी हैं कि उन्होंने अन्य लोगों का अधिकार छीना है, शोषण किया है, तथा पाप कर्मों से माया जुटाई है:-

---

३३१- आ०ग्र० पृ० १४१ ३३२- आ०ग्र० पृ० १४०

... रि कारणि तणी त्रिहुी ... तणी उआवी।
पाया ...कुदु ... नाही मु ... न जाई। म:१ [342]

इसी कारण मन के लोभ के विषय में सोदन्ना रखने को कहा गया है:
लोभ का ... न ... ...
... ... न ... । म:३ [343]

मन-... ... ... है, ... प्रकार है, जैसे अग्नि
... ... । यदि प्रबंड अग्नि में ... ..., तो ... ...
हो ही नहीं सकता:-
... ... राजन ... भूपन ... ... न ... ।
... रहै ... ... भोजन कहु न ... ।
... मति ... ... न ... ।
जिह पाता ... ... प्राणै ... ... । म:५ [344]

अत: कबीर भी प्रबंड ... ... विधि के त्याग का उपदेश
देते हुए कहते हैं:-
बहु परपंच ... परानु ... । ... दारा ... आनि ... ।
मन ... ... न ... । ... ... । [345]

यदि मनुष्य समस्त पुरियों के धन-भार को ... ... ले तो भी
... भूख नहीं मिट सकती:-
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार। ... म:१ [346]

३३३- आ०ग्र० पृ० १०३२	३३४- आ०ग्र० पृ० ६५१
३३५- आ०ग्र० पृ० ६२६	३३६- आ०ग्र० पृ० ६१६
३३७- आ०ग्र० पृ० ७८६	३३८- आ०ग्र० पृ० ३८१
३३६- आ०ग्र० पृ० १४१७	३४०- आ० ग्र०पृ० १४२६
३४१- आ०ग्र० पृ० १२४५	३४२- आ०ग्र० पृ० ४१७
३४३- आ०ग्र० पृ० १४१७	३४४- आ०ग्र० पृ० ६७२
३४५- आ०ग्र० पृ० ६५६	३४६- आ०ग्र० पृ० १

अत: आदि ग्रंथ में संतोषमय भक्ति का प्रभुत्व अंश भासता है, अपने श्रम से उपार्जित धन पर ही संतोष करने का उपदेश है:-

१- सत संतोख [illegible] म भाई। म:१ [३४७]

संतोषी पुरुष को ही सत्य की प्राप्ति होती है:-

२- सचु मिलै संतोखीआ [illegible] एके भाइ। म:१ [३४८]

३- [illegible] रहि धावै। [illegible] न [illegible] पावै।
बिना संतोख नहीं कोऊ राजै। सुपन मनोरथ [illegible] काजै। म:५ [३४९]

४- [illegible] संतोखीई [illegible] सचु [illegible]।
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुक्रितु धरमु [illegible]। म:१ [३५०]

[illegible] द्वारा प्राप्त की सूखी रोटी का [illegible], अपने श्रम से प्राप्त रूखी सूखी रोटी को अमृत समान कहा है:-

रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ।
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ। [३५१]

दूसरे के द्वार पर जा कर यदि मांग कर खाने की अवस्था आ जाये तो उस मांगने की अपेक्षा प्राण त्यागना एक महान संतोष है, क्योंकि मांगना तो कई बार मरने के समान है।

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साँई मुझै न देहि।
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि।।४२।। [३५२]

तप : तप आदि ग्रंथ की भक्ति का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। तप से काया को दुख दिया जा सकता है। परमपद की प्राप्ति का यह साधन आदि ग्रंथ की भक्ति में उस कारण विशेष महत्ता नहीं रखता कि बड़े बड़े तपस्वी तथा ऋषि मुनि जिन्होंने वैराग्य ग्रहण कर तपस्या को ही अपना नित्य कर्म बनाया, वे भी कभी कभी अपने मार्ग से भ्रष्ट हो गए:-

---

३४७- आ०ग्रं० पृ० १०३०
३४८- आ०ग्रं० पृ० १८
३४९- आ०ग्रं० पृ० २७९
३५०- आ०ग्रं० पृ० ४६६
३५१- आ०ग्रं० पृ० १३७९
३५२- आ०ग्रं० पृ० १३८०

१- तपे र[illegible] भाइआ भरिपूरा। कबीर [353]

२- तपे तपीसर लोकि बीता। कबीर [354]

३- तपी तपीसुर मुनि भनि पेखिआं नट नाटिक निरताय। म:५ [355]

४- धूं [illegible] गेरी है कथा। [illegible] का भारि[illegible] त्रिभो नवता।

देसु [illegible] परदेसहि [illegible]। [illegible] नातं [illegible] आ[illegible]। म:५ [356]

५- [illegible] ऊपरि [illegible] बिखु [illegible] न [illegible]। म:३ [357]

६- मन का फूटा कूड कमावै, भाइआ [illegible] तपा सदावै।

परमै भूला [illegible] [illegible] नहि। [illegible] तपा कै परभागि [illegible]।म:३ [358]

आदि ग्रंथ के तप का स्वरूप

गुरु सेवा:

१- गुर सेवा तपा [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] मनि [illegible] [illegible] दूख विसारण [illegible]।

[illegible] गावै [illegible] [illegible]। म: ३ [359]

२- गुरु परसादी [illegible] [illegible]। नानक [illegible] तपा [illegible] पावै। म:३ [360]

३- [illegible] तपसी [illegible] साथ [illegible]। सदा [illegible] [illegible] सुरति रंगु। म:५ [361]

४- [illegible] [illegible] ने छुटि परे गुर [illegible] भाणि [illegible]।

[illegible] [illegible] प्रभु [illegible], [illegible] न [illegible] आ[illegible] [illegible]।म:५ [362]

स्वाध्याय : गुरमति [illegible] में वेद-शास्त्रादि धर्म पुस्तकों के स्वाध्याय, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन को [illegible] स्थान प्राप्त है:-

स्वाध्याय: दीवा [illegible] [illegible] [illegible]। वेद पाठ मति [illegible] [illegible]। म:१ [363]

२- वेद [illegible] [illegible] [illegible] झूठे, झूठा [illegible] न [illegible]। कबीर [364]

श्रवण: वेदा मति नाम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फिरहि [illegible] वेताल[illegible]।म:३ [365]

२- [illegible] भाई सुनि [illegible] [illegible] समझावै।

वेद पुरान [illegible] [illegible] [illegible] करि निभल न [illegible] गुन [illegible]। म:६ [366]

353- [illegible]ग्रं० पृ० ११६० 354- आ०ग्रं० पृ० ८७२

355- आ०ग्रं० पृ० १२३६ 356- आ०ग्रं० पृ० १३४८

357- आ०ग्रं० पृ० ३३ 358- आ०ग्रं० पृ० ६४८

359- आ०ग्रं० पृ० ४२३ 360- आ०ग्रं० पृ० ६४८

श्रवण-मनन-निदिध्यासन

१- बेद पुरान पड़े को इहु गुनु सिमरे हरि का नामा। म:६ [367]

२- नानक जिन्ही सुणि कै मंनिआ हउ तिना विटहु कुरबाणु। म:३ [368]

३- मंने की गति कही न जाई। म:१ [369]

४- सुणिआ मंनिआ, मनि कीता भाउ। म:१ [370]

५- मुख रसना अंम्रितु बोलदी हरिनामि सुहावी।
जिन सुणि सिखा गुरु मंनिआ तिना भुख सभ जावी। म:१ [371]

६- जिनी सुणि कै मंनिआ तिना निज घरि वासु। म:३ [372]

बिना मनन तथा निदिध्यासन के क्रिया ग्रंथ पाठ व्यर्थ:-

१- बेद कतेब सिम्रिति सभि सासत इन पड़िआ मुकति न होई।
एकु अखरु जो गुरमुखि जापै तिस की निरमल सोई। म:५ [373]

२- पड़ि पुस्तक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं। म:१ [374]

३- पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख। म: १ [375]

४- बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाई।
टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूरि खुदाई। कबीर [376]

ईश्वर प्रणिधान : भगवद्भजन के ध्यान में मग्न रहने का नाम ईश्वरप्रणिधान है। पीछे हम वर्णन कर आये हैं कि गुरमति पथ में वाहि-नाम- के सुमिरन को भक्ति अथवा नाम-जाप कहा है। उठते-बैठते-सोते-जागते निरन्तर निर्भय ऐसी प्रभु में ध्यान को लीन रखना भी ईश्वर प्रणिधान है। प्रसाद प्राप्ति इसी का दूसरा नाम है:-

---

३६१- आ०ग्र० पृ० ११८०
३६२- आ०ग्र० पृ० १००२
३६३- आ०ग्र० पृ० ७६१
३६४- आ०ग्र० पृ० १३१०
३६५- आ०ग्र० पृ० ६१६
३६६- आ०ग्र० पृ० [illegible]
३६७- आ०ग्र० पृ० २२०
३६८- आ०ग्र० पृ० ७६०
३६९- आ०ग्र० पृ० ३
३७०- आ०ग्र० पृ० ४
३७१- आ०ग्र० पृ० ७२६
३७२- आ०ग्र० पृ० २७
३७३- आ०ग्र० पृ० ७४७
३७४- आ०ग्र० पृ० ४७०

१- रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि।
लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसै असनेहि।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर।
जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो मनि तनि सांति सरीर।
बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर। म:१ [३७७]

२- रे मन राम सिउ करि प्रीति।
स्रवन गोबिंद गुनु सुनहु अरु गाउ रसना गीत। म:९ [३७८]

(छ) महान्-पुरुषों की कृपा-गुरु कृपा तथा भगवत्कृपा

डा० रामनारायण पांडेय लिखते हैं, वेदों से चली आती हुई गुरु-भक्ति की धारा बौद्ध धर्म तथा दर्शन के अभ्युत्थान में अक्षुण्ण बनी रही।[३७९] मुण्डकोपनिषद् में तो स्पष्ट कहा गया है:-

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[३८०]

अर्थात् उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाना चाहिए।

घेरण्ड संहिता में गुरु-प्रदत्त विद्या, गुरु माहात्म्य तथा गुरु-सेवा के संबंध में स्पष्ट एवं प्रामाणिक उद्धरण हैं। संहिताकार ने वही ज्ञान उपयोगी और सशक्त माना है, जो गुरु के मुख से प्राप्त हो, अन्यथा ज्ञान निरर्थक, अशक्त और दुखदायी हो जाता है:-

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा।[३८१]

गुरु ही माता है, गुरु ही पिता है तथा देव (ईश्वर भी) है। इसमें संशय नहीं। इसलिये मन, वचन और कर्म से गुरु की सेवा सब को करनी चाहिए।

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वैः प्रसेव्यते।[३८२]

इसलिये गुरु की कृपा से सभी शुभ वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। अतः गुरु की सेवा नित्य करनी चाहिए अन्यथा मोक्ष होने की संभावना नहीं:-

---

३७५- आ०ग्रं० पृ० ४६७
३७६- आ०ग्रं० पृ० ६७७
३७७- आ०ग्रं० पृ० ५९-६०
३७८- आ०ग्रं० पृ० ६३१

गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभात्मनः।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत्। ३८३

श्रीमद्भगवद् गीता के चौथे अध्याय के चौंतीसवें श्लोक में गुरु की महत्ता कहते हुए बताया है, तत्त्व के जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से, भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जानो। वे मर्म ज्ञानी पुरुष तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। गीता ३८४

पोथी ज्ञान से तथा स्वाध्याय, मनन-चिन्तन और निदिध्यासन से भी तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस पर प्रकाश डालते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं: नाथ पंथी योगियों, सहजयानियों और वज्रयानियों, तांत्रिकों और परवर्ती सन्तों में सभी ने सद् गुरु की महिमा अत्यधिक गाई गई है। सद् गुरु के बिना ज्ञान के बाहे और सभी व्यापार हो जाएँ पर यह जटिल साधना पद्धति नहीं हो सकती। ३८५

आदि ग्रंथ और सद्गुरु की आवश्यकता एवं गुरु कृपा

१- बिनु सतिगुर किनै न पाइओ, बिनु सतिगुर किनै न पाइआ।
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ। ३८६

२- गुर बिन घोरु अंधारु गुरू बिन समझ न आवै।
गुर बिन सुरति न सिधि गुरू बिनु मुकति न पावै। सवैये म:४ ३८७

३- जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआ गुर बिनु घोर अंधार। म:२ ३८८

गुरु की पहचान :

१- जितु मिलिऐ मनि होइ अनंदु सो सतिगुरु कहीऐ।
मन की दुबिधा बिनसि जाइ हरि परम पदु लहीऐ। म:४ ३८९

२- गुर मिलि सीतल अगनि बुझावै। म:१ ३९०

३- गुर गिआन प्रचंड बलाइआ, अगिआन अंधेरा जाइ। म:३ ३९१

४- गुर साधु दिखाइआ संग जिउ, तउ सतिगुर कै संगि आउ। म:४ ३९२

५- घरं हु केरा निधु मैं सचि गुरु मिलिआ।

सफल दरसनु नेत्र पेखत तरिआ। म:५ [३९३]

६- जिस मरने सभु जगतु तरासिआ।

सो मरना गुर सबदि प्रगासिआ। कबीर [३९४]

भक्त तथा सद्गुरु संबंध : भक्तों ने गुरु जी को अपना सब कुछ समझकर उसकी शरण ग्रहण की है। गुरु ही दाता है तथा गुरु समर्थ पुरुष है। वो सब में निवास करता है। गुरु साक्षात परमेश्वर का रूप है:-

१- गुरु दाता गुरु समरथ गुरु, गुरु सभ महि रहिआ समाइ।

गुरु परमेसरु पारब्रहम, गुरु डुबदा लए तराइ। म:५ [३९५]

२- पूरण केदरि सभ को प्रभु गुरु करतार। म:१ [३९६]

भक्तों का बंधु, सखा, तीर्थादि सब कुछ गुरु ही है:-

३- गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसरा।

गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा।

गुरदेव तीरथु अंम्रितु सरोवरु गुर गिआन मजनु, अपरंपरा। म:५ [३९७]

३७९- भक्ति काव्य में रहस्यवाद- १६२

३८०- मुण्डकोपनिषद्-मुण्डक-१-खंड २, मन्त्र १२।

३८१- शिव संहिता-३-१०

३८२- वही पृ० ३-१३

३८३- वही ३-१४

३८४- गीता- ४-३४

३८५- हिन्दी साहित्य की भूमिका- ६५

३८६- आ०ग्र० पृ० ४६६

३८७- आ०ग्र० पृ० १३६६

३८८- आ०ग्र० पृ० ४६३

३८९- आ०ग्र० पृ० १६८

३९०- आ०ग्र० पृ० ४४१

३९१- आ०ग्र० पृ० २६

३९२- आ०ग्र० पृ० ४०

३९३- आ०ग्र० पृ० ६६

३९४- आ०ग्र० पृ० ३२७

३९५- आ०ग्र० पृ० ४६

३९६- आ०ग्र० पृ० ६१

३९७- आ०ग्र० पृ० २५०

गुरु मध्यस्थ के रूप में : भक्त और भगवान की मेल के लिये गुरु मध्यस्थ के रूप में सहायता करता है। जब तक जीव का परमात्मा से मेल कराने में गुरु सहायता न करे। तब तक जीव भटकता ही रहेगा।[398]

जैसा सतिगुरु सुणीदा तैसा ही मै डीठु।
विछुड़िआ मेले प्रभू हरि दरगह का बसीठु। म:५[399]

गुरु कृपा : गुरु की कृपा से भगवान् और भक्त की भेंट होती है। गुरु का शुद्ध भक्त को इस पथ का मार्ग दर्शन कराता है।

१- गुर परसादी बूझि ले तउ होइ निबेरा। म:१[400]
२- गुर किरपा ते रवि रहाइ। म:३[401]
३- गुर किरपा ते पाईऐ पिआरा अम्रित नाम अपार। म:४[402]
४- गिआन धिआनु गुर सबदु है मीठा। गुर किरपा ते किनै विरलै चखि डीठा। म:३[403]
५- सारे पंच निवादीआ। गुर किरपा ते दलु साधिआ। म:५[404]

भगवत्कृपा: गुरु की कृपा हो जाए तो भगवत्कृपा भी प्राप्त हो जाती है। गुरु के शब्द की इतनी महानता है कि सब कार्य उसी के कारण सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि भक्त फिर वही कार्य करता है, जो भगवान् को अच्छे लगते हैं:-

१- साहिबु होइ दइआलु कृपा करे अपुना कारजु सवारे। कबीर[405]
२- साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी। म:१[406]
३- प्रभ किरपा धारी हरि मुरारी भै सिंधु सागर तारणां। म:५[407]

डा० जयराम मिश्र लिखते हैं:- प्रभु-कृपा को यदि सभी साधनों का मूल कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। परमात्मा की कृपा अनिर्वचनीय है।[408] प्रभु की कृपा से ही साधु संगति तथा समस्त पदार्थ प्राप्त होते हैं:-

१- तुम्हरी क्रिपा ते भजहो नाम रंग। म:५[409]
२- करणा किछू न जानई बिनु भावै किछु देइ। म:३[410]

३९८- श्री गुरु ग्रंथ दर्शन पृ० ३२६
३९९- आ०ग्र० पृ० ९५७
४००- आ०ग्र० पृ० २२६
४०१- आ०ग्र० पृ० १५८
४०२- आ०ग्र० पृ० ६०४
४०३- आ०ग्र० पृ० १६२
४०४- आ०ग्र० पृ० २१०
४०५- आ०ग्र० पृ० ३३४
४०६- आ०ग्र० पृ० ४९२
४०७- आ०ग्र० पृ० ५४४

गुरू प्राप्ति तथा भगवद् प्राप्ति : सौभाग्यवश ही गुरू की प्राप्ति होती है, और उसकी कृपा द्वारा भगवत्कृपा का पात्र बना जा सकता है। गुरू की कृपा से प्रभुमिलन का सौभाग्य प्राप्त होता है। नारद भक्ति सूत्र में लिखा है: लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव।[४११]

गुरू प्राप्ति का सौभाग्य:-

१- वडै भागि सतिगुरू मिलै पाईऐ पदु निरवाणी। म:१[४१२]

२- वडभागी सतिगुरू पाइआ बुझिआ प्रभु बिचार। म:३[४१३]

३- वडे भागि सतसंगति पाई गुरु सतिगुर परस भगवान। म:४[४१४]

४- वड भागी हरि संत मिलाए। जन नानक तिन हरि भूले नाही।म:५[४१५]

भगवत्कृपा प्राप्ति का सौभाग्य:

१- गुरमति नामु परापति होइ। वडभागी हरि पावै सोइ। म:३[४१६]

२- वडभागी हरि पाइआ जन नानक नामि समाई। म:४[४१७]

३- एक निमख तजु न जाइ। वडभागी नानक पाइ। म:५[४१८]

४- जाका खोजहि सरब उपाए। वडभागी दरसु को विरला पाए।[४१९]

(ज) पवित्रता (मनसा-वाचा-कर्मणा)

अन्तःकरण की शुद्धि को भक्ति का मुख्य अंग माना गया है। शांडिल्य भक्ति सूत्र में लिखा है: तस्याः पावित्र्यमुपक्रमात्।[४२०] मन-वचन-कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि को ही पवित्रता का नाम दिया गया है, जब तक हृदय की पवित्रता की साधना संपूर्ण नहीं हुई, तब तक अन्य साधनाएं व्यर्थ हैं:-

अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि।
सीस निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि।म:१[४२१]

गुरू ग्रंथ की भक्ति में पवित्र मन से नाम-जप करने वाला भक्त ही पवित्र माना गया है:-

पतित पवित्र पवित्र पुनीत। नामु जपे नानक हरि प्रीति।। म:५[४२२]

इस पवित्रता की कसौटी मन, वचन, और कर्म तीनों की एकरूपता है। यदि इस पवित्रता को प्राप्त कर लिया है, तो भक्ति के लिये मार्ग प्रशस्त हो गया है। सत्त-शब्द में लीन हो कर मन सच्चा होता है।

२- कैसे रावै सु आगै लावै। मनु राता गुर सबदि रावै। म:३ [423]

जब मन सत्य में लीन हो जाता है, तो मुख से सच्ची वाणी का उच्चारण होता है :-

मन सचा मुखि साचउ नाइ। म:१ [424]

इस सच्ची प्रीति का केवल मन-वच-कर्म की शुद्धि से निर्वाह हो सकता है। यदि मन की पूर्ण शुद्धि नहीं, तो उसे पवित्रता नहीं कहा जा सकता। जो मनुष्य मन-वच-कर्म से विषयासक्त है, वह पवित्र कैसे कहा जा सकता है? :-

मन बच क्रम रस त्यागि जुगाना। बिनसि गइआ जाइ कहूं समाना। म:४ [425]

अत: मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्धाचरण पर विशेष बल दिया गया है:-

१- मन बच क्रम आराधै हरि हरि साध संगि सुख पाइआ। म:५ [426]

२- मन बच क्रम अराधै करता तिसु नाही कदे सजाई है। म:५ [427]

३- मन बच क्रमि राम नामु चितारी। म:५ [428]

४- मन बच क्रम प्रभु एकु धिआइआ। म:५ [429]

५- मन बचनि रिदै धिआइ हरि होइ संतुसटु इव भणु हरिनामु मुरारी। म:४ [430]

६- मनि बचि क्रमि हरिगुन नही गाए यह जीअ सोच धरउ। म:६ [431]

४०८- गुरु ग्रंथ दर्शन- ३११

४०९- आ०ग्रं० पृ० ३८२

४१०- आ०ग्रं० पृ० ३०

४११- नारद भक्ति सूत्र-८०

४१२- आ०ग्रं० पृ० ४ १

४१३- आ०ग्रं० पृ० १४१६

४१४- आ०ग्रं० पृ० १३३५

४१५- आ०ग्रं० पृ० २०३

४१६- आ०ग्रं० पृ० ११८

४१७- आ०ग्रं० पृ० ११०६

४१८- आ०ग्रं० पृ० ८३८

४१९- आ०ग्रं० पृ० १०१

४२०- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र-५६

४२१- आ०ग्रं० पृ० ४७०

४२२- आ०ग्रं० पृ० २०६

४२३- आ०ग्रं० पृ० ११[illegible]

४२४- आ०ग्रं० पृ० ८३६

४२५- आ०ग्रं० पृ० ४८७

४२६- आ०ग्रं० पृ० १२२०

४२७- आ०ग्रं० पृ० १०७१

४२८- आ०ग्रं० पृ० ६१६

४२९- आ०ग्रं० पृ० ७६०

४३०- आ०ग्रं० पृ० ६८५

४३१- आ०ग्रं० पृ० ६८२

(क) मन की सरलता तथा व्यवहार में उदारता

भक्ति में चंचलता तथा चतुराई को कोई स्थान नहीं। भौतिक व्यापार एवं चतुराई-सौष्ठव की भक्ति के मार्ग में कोई महत्व नहीं है:-

१- ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ।
चतुराई न पाइआ किनै तू सुणि मंन मेरिआ। म:३ [४३२]
२- सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि। म:१ [४३३]
३- सहस सिआणप करि रहे मनि कोरै रंगु न होइ। म:४ [४३४]
४- सहस सिआणप नह मिलै तेरी जिंदुड़ीए जन नानक गुरमुखि जाता रामा [४३५] म: ४
५- सगल सिआणप उपाव थाके भावन ना जाणी। म:५ [४३६]
६- सगल सिआणप लहाइ न जाणी। नानक कीआ गुर बडभागी पाइऐ। म:५ [४३७]

ईश्वर का निवास तो सरल सदाचारयुक्त हृदय में होता है। सरल हृदय ही निर्मल हो सकता है। हृदय मन्दिर में भगवान् को स्थापित करने के लिये मन-दर्पण की स्वच्छता अनिवार्य है। प्रभु प्राप्ति का साधन भौतिक व्यापार नहीं, गर्व-रहित गुरु सेवा है।

१- सबद वीचारि कमावहि गुर-सेवा। मनि तनि निरमल अभिमान अभेवा। म:१ [४३८]
२- मनु तनु निरमलु सदा सुखु अंतरि विचहु भरमु चुकाइआ। म:३ [४३९]

<u>व्यवहार में उदारता</u> : अपनी चतुराई का तथा अभिमान त्याग कर विनम्र भाव से गुरू सेवा तथा साध-संगति की सेवा में दत्त चित होने का नाम व्यवहार की उदारता है:-

१- पाणी पखा पीसु दास कै तब होहि निहालु।
राज मिलख सिकदारीआ अगनी महि जालु।
संत जना का छोहरा तिसु चरणी लागि।
माइआ धारी छत्रपति तिन्ह छोडउ तिआगि। म:५ [४४०]

४३२- आ०ग्र० पृ ९१८
४३३- आ०ग्र० पृ १
४३४- आ०ग्र० पृ ४०
४३५- आ०ग्र० पृ ५४१
४३६- आ०ग्र० पृ ५४८
४३७- आ०ग्र० पृ ८८७
४३८- आ०ग्र० पृ ९०४
४३९- आ०ग्र० पृ ९००

२- जे गुर देखि त आखी राजा दुख बिधि दूर न लाई।
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी विचि अगनी आपु जलाई।
पखा फेरी पाणी ढोवा जो देवहि सो खाई।
नानक गरीबु ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लैहु वडिआई। म:४[441]

३- पीसउ पीसि पाणी आणी पीरा नाकि ना पोहण जाह।
पखा फेरी पैर मलोवा जपत रहा तेरा नाउ।
सूण अराधी नानकु लाला माणिक मुनु वडिआई।
आदि जुगादि दइआपति दाता पुरु विणु मुकति न पाई। म:१[442]

(ञ) नाम जाप :

नाम जप आदि ग्रंथ की भक्ति का एक महत्वपूर्ण अंग है। नाम की महत्ता के विषय में डा० शेर सिंह कहते हैं: वास्तव में गुरुओं ने भक्ति के एक नवीन पक्ष का आविष्कार किया। वह नहीं, ज्ञान तथा परंपरागत हिन्दू भक्ति मार्ग में से कोई भी नहीं। वह नाम-मार्ग है।[443] नाम-मार्ग के अनुसरण का जो सर्वदा उदारता पूर्ण व्यावहारिक स्वरूप आदि ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है, उसकी विलक्षणता को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। परन्तु भक्ति मार्ग में नाम-जप की परंपरा अति प्राचीन है। इसकी पुष्टि आदि ग्रंथ के अन्त: साक्ष्य से प्राप्त होती है:-

१- बेदा महि नाम उतमु। म:३[444]
२- बेद पुरान पड़े को इहु गुन सिमरे हरि को नामा। म:६[445]

नाम-जप की परंपरा के संबंध में डा० जयराम मिश्र लिखते हैं: नाम-माहात्म्य भागवत आदि प्राय: सभी पुराणों में पाया जाता है, पर मध्ययुग के भक्तों में इसका चरम विकास हुआ।[446]

आदि ग्रंथ में नाम जप के स्वरूप के विषय में डा० तारन सिंह लिखते हैं: श्री गुरु ग्रंथ साहिब के प्रत्येक पद में नाम सुमिरन की प्रेरणा की गई है। परन्तु सुस्पष्टतया नाम क्या वस्तु है, इस विषय में कुछ नहीं कहा गया। न ही यह बताया गया है कि परमात्मा का नाम क्या है? न ही नाम-सुमिरन की विधि स्पष्ट रूप में बताई गई है, जैसा कि दूसरे ग्रंथों में आवश्यक होता है।[447] परन्तु हमारा विचार है कि आदि ग्रंथ में जिस नाम के बारे में बार पुन: पुन: दोहे लिखे गए हैं, उसका स्वरूप इस ग्रंथ में पर्याप्त स्पष्ट है। नाम-जाप से तात्पर्य भगवान् के नाम को आठों याम हृदय में स्मरण करना है। उठते बैठते, सोते जागते खाना खाते करते भगवान् के नाम को न भूलना नाम जाप है, क्योंकि हरि नाम सर्वश्रेष्ठ

१- उत्सव बैठत सोवत चितारी। मारग चलत हरे हरि गाईऐ। म:५ [448]

२- नारज काम नाम पाट जपीजै। गुरु प्रसादि हरि अम्रित पीजै। म:५ [449]

३- नामु निरोभाण रसना मै, नगत रे लिव लारि। सवैये म:३ [450]

इस नाम का स्वरूप निर्धारण करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं:-

सा क्रिमं रा देवा, देवदेवाल वातमा। वात्मा वासुदेवस्यि जो

जाणे भेउ। नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ। म:१ [451]

भगवान्, अलख-निरंजन स्वरूप को वादि ग्रंथ के पदों ने विष्णु

स्वरूप माना है। ब्रह्मा विष्णु और शिव मूलत: एक हैं, यद्यपि उनकी कल्पणा

तीन अलग अलग रूपों में की गई है।[452] नारायण, विष्णु, हरि, कृष्ण (वासुदेव)

को एक ही मान लिया गया है। ऋग्वेद (१-१५४) का विष्णु, शतपथ ब्राह्मण

का यज्ञरूप विष्णु तथा ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का पुरुष, एक ही हैं। ऋग्वेद (१-१५६-

२,३) में विष्णु प्रभु ईश्वर के रूप में आया है। वह सब से पूर्व(पहला) और

बाद का सन्यासक है। हमें उसी का नाम स्मरण और उसी के समक्ष आत्मसमर्पण

करना चाहिए। उसके नाम का कीर्तन या स्तोत्र मन को यथा कथा शान्ति सम्पन्न

कर देता है। यह विशेषण ईश्वर के ही हो सकते हैं, अन्य किसी के नहीं।[453]

इससे सिद्ध है कि आदि ग्रंथका 'नाम-जप' ही 'ईश्वर-नाम-जप' है। ईश्वर अथवा नाम

के स्वरूप का वर्णन आदि ग्रंथ में स्थान स्थान पर मिलता है, और इस का संक्षिप्त

अध्ययन साधना पक्ष के भागवत धर्म साधना और आदि ग्रंथ के सिद्धान्तों के

अंतर्गत तथा दर्शन पक्ष में भगवान् के निर्गुण-सगुण स्वरूप सिद्धान्तों के अंतर्गत किया

गया है। इस पर भी कोई यह पूछे कि आदि ग्रंथ में नाम(ईश्वर) का स्वरूप स्पष्ट

नहीं, तो उसे क्या बताया जावे।

४४०- आ०ग्र० पृ० ८२१

४४२- आ०ग्र० पृ० ६६१

४४४- आ०ग्र० पृ० ६९६

४४५- आ०ग्र० पृ० २२०

४४६- हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ६२

के गुरु ग्रंथ दर्शन पृ० ३३२ पर उद्धृत।

४४७- श्री गुरु ग्रंथ साहिब का साहित्य

...पृ० ४०

४४१- आ०ग्र० पृ० ८५७

४४३- 'In fact the Guru invented a somewhat new path of salvation. It is neither Karma Marg nor even the traditional Hindu Bhakti Marg. It is Nam Marg.
(Philosophy of Sikhism)
p. 50-51

भक्त कवियों ने भगवान् के नाम के इस स्वरूप को 'वाहिगुरु' स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए और भी स्पष्ट किया है:-

वाहि गुरु वाहिगुरु वाहि गुरु वाहि जीउ।
कवल नैन मधुर बैन कोटि सैन संग सोभ कहत मा जसोद जिसहि
दही भात खाहि जीउ।
श्री निवासु आदि पुरखु सदा तुही वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीउ।
राम नाम परम धाम सुध-बुध निरंकार बेसुमार सरबर कउ काहि जीउ।
सवैये म:४[454]

आदि ग्रंथ के भक्तों का राम नाम परम-धाम निवासी निराकार होता हुआ भी विष्णु रूप यशोधा नंदन भी है, परन्तु वह पुरातो सर्व-व्यापक है। जिसके स्वरूप को समझना मनुष्यकी बुद्धि के बस का काम नहीं, वह केवल अनुभव-गम्य है। इसी कारण गुरु नानक देव ने आदि ग्रंथ में इसे 'सुखम मूरति नाम निरंजन काइआ का आकारु'[455] कह कर उस के स्वरूप को बुद्धि को चकरा देने वाला विस्मादरूप (विस्मयानन्द) बता कर छुट्टी पा ली है।[456] आदि ग्रंथ की भक्ति में गुरु (सति गुरु), नाम तथा वाहि-गुरु (ईश्वर) तद्रूप कर दिया गया है:-

दूजा नाहीं जाणै कोइ। सतगुरु निरंजनु सोइ।
मानुख का करि रूपु न जानु। मिली निमाने मानु। म:५[457]

इसी सतगुरु-निरंजन को विस्मादरूप जान कर वाहि-गुरु कहा है। इस विचार के तत्त्व भी तैत्तिरीयोपनिषद में मिलते हैं। उस विस्मादरूप (आनंदमयी) अवस्था, जिसका कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अनुभव करने के पश्चात् साधक के मुख से निम्नलिखित उद्गार अकस्मात निकल पड़ते हैं।-

हा३बु हा३बु हा३बु। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। हा ३ वु हा ३, ३ हा, ३ वु।।[458]

अर्थात् अन्न रूप होने के कारण ब्रह्म सब व्यापक है। वह उससे अभिन्न रूप होकर उसका अनुभव करने वाले के लिये आश्चर्य जनक बना रहता है। किस प्रकार आश्चर्य जनक बना रहता है? हा ३, वु हा ३, हा ३, वु ३- ये तीन अक्षर आश्चर्य के सूचक हैं। इनका अर्थ में अत्यंत विस्मय प्रकट करने के लिये है।[459] इस पर टिप्पणी करते हुए डा०जयराम

४५४- आ०ग्रं० पृ०
४५६- आ०ग्रं० पृ०
४५७- आ०ग्रं० पृ० १३६३
४५५- आ०ग्रं० पृ० ४६६
४५२- भगवद्गीता-राधाकृष्णन पृ०२६
४५३- डा० मुंशी राम-भक्ति का विकास-
३२२-२३

भिन्न लिखते हैं, कि इस प्रकार वाहिगुरु बिल्कुल नवीन शब्द है। यह सिक्खों की आंतरिक अवस्था का प्रतीक है।[460] परन्तु कभी स्पष्ट कर कहते हैं, सारांश यह कि वाहिगुरु मन की विस्माद अवस्था का [illegible] चिन्ह है। यह 'राम' अथवा 'अल्लाह' की भांति संज्ञक नाम नहीं है।[461] इस में सन्देह नहीं कि 'वाहिगुरु' शब्द की व्युत्पत्ति विद्वानों ने 'वाहि' और 'गुरु' की है, और इसे इकट्ठा शब्द 'वाहिगुरु' नहीं माना है, और [illegible] 'गुरु [illegible]' है', लिए हैं।[462] परन्तु हम यह बात सब विद्वानों के ध्यानार्थ यहां बता देना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं, कि 'वाहिगुरु' शब्द गुरु ग्रंथ के प्रथम लिपिकार भाई गुरुदास के समय में ही 'परब्रह्म' का पर्यायवाची बन चुका था, जैसाकि भाई गुरुदास की स्वयं की रचनाओं से सिद्ध है। गीता के स्थान में भाई साहिब कहते हैं:-

१- वेद न जाणे भेद किछु, शेषनाग न पाए।
वाहिगुरु सालाहणा गुर शब्द अलाए।[463]

२- वाहिगुरु गुरु मंत्र है, जप हउमै खोई।[464]

इस प्रकार वाहिगुरु (पुरुषोत्तम) जिसका यह स्वरूप वेद में भी वर्णित है,[465] परन्तु जिसे वेद को पढ़कर जानने वाले भी पूर्ण रूप से नहीं जान सके।[466] उस वाहिगुरु का स्तुतिगान गुरु शब्द (गुरु मंत्र) के जाप द्वारा अनन्य भाव से सदैव अध्यवसायपूर्वक किया जा सकता है।[467] ऐसे भक्त के योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) का भार वह वाहिगुरु स्वयं संभालता है, क्योंकि वह भक्त, योगक्षेम की कामना से विमुक्त होता है। भाई गुरुदास ने अपनी प्रथम वार की पउड़ी न० ५० में वाहिगुरु शब्द को सत्ययुग के वासुदेव विष्णु के 'वा', द्वापर के हरि कृष्ण के 'ह', त्रेता के 'राम' के 'र' और कलियुग के नानक गुरु के 'ग' से बना बताया है। यह सब अपने युग के सच्चे गुरु थे।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में गुरु रामदास की रचना में भी 'वाहिगुरु' शब्द निरंकार के लिये प्रयुक्त होने लगा था:-

वाहु वाहु सतिगुरु निरंकार है जिसु अंतु न पारावार। म:४[468]

४५४- आ०ग्र० पृ० १४०२
४५५- आ०ग्र० पृ० ५६६
४५६- आ०ग्र० पृ० ९६३-६४
४५७- आ०ग्र० पृ० ८६५
४५८- तैत्तिरीयोपनिषद् ३-१०-५
४५९- शंकर भाष्य (तैत्तिरीयोपनिषद्) गीता प्रेस, गोरखपुर- पृ० २४४ पर से गुरु ग्रंथ दर्शन पृ० ३४२ पर उद्धृत।

इस गुरु वाक्य में 'वाहु-गुरु-वाहिगुरु' को 'वाहिगुरु' कहा गया है। इस पद के विकास की परंपरा पूर्ववर्ती गुरुओं में भी प्राप्त हो जाती है। उस परमात्मा को 'अगम्य-अगोचर' तथा 'नाम्निहीन' भी कहा जाता है। उसकी स्तुति गान करने के लिये उन विशेषणों के पूर्व वाहि (क्या कहने? - धन्य) लगाकर भी उसका स्मरण किया गया है:-

१- <u>वाहु वाहु (धन्य)</u>

१- वाहु वाहु करहि से जन सोहणे तिन कउ सभि मिलाए। म:३ [469]

२- वाहु वाहु गुरमुख सदा करहि, मनमुख मरहि बिखु खाइ। म:३ [470]

३- वाहु वाहु बाणी निरंकार है तिसु जेवडु अवरु न कोइ। म:३ [471]

२- <u>वाह वाह अगम अथाह</u>

१- वाहु वाहु अगम अथाहु है वाहु वाहु सचा सोइ।
वाहु वाहु वेपरवाहु है वाहु वाहु करे सु होइ।
वाहु वाहु अंम्रित नामु है गुरमुखि पावै कोइ। म:३ [472]

२- वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई। म:३ [473]

३- वाहु खसमि गुर सुजान। म:४ [474]

४- वाहु खसम तू वाह। म:१ [475]

इस प्रकार गुरु नानक ने 'ओंकारि उतपति' ... 'आपु रचिओनु करि पसाउ वाहि गुणातीता,'[476] का विचार किया था वह म:४ तक, 'वाह वाह जिस गुरु निरंकार है जिस अंत न पारावार'[477], रूप धारण कर गया। इस निरंकार को 'खसम' से, 'वाहु खसम तू वाहु', कह कर गुरु नानक ने भी स्तुति की थी। भगवान का यह स्तुति गान 'करता नाम जाप', भाट-कवियों में स्पष्ट रूप में गुरु राम दास के लिये, 'श्री निवासु, आदि पुरख सदा तुही वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु जीउ,'[478] रूप धारण कर गया। यह 'वाहिगुरु' शब्द, 'है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई'[479]।

४६०- गुरु ग्रंथ दर्शन- पृ० ३४२

४६१- वही पृ० ३४२

४६२- गुरमति निर्णय भंडार-पृ० ८१०

४६३- वारां भाई गुरदास-वार ६, पउड़ी १३

४६४- वही- वार १३, पउड़ी २

४६५- गीता १५-१८

४६६- गीता- ६-२० । २१

४६७- गीता ६-२२

४६८- आ०ग्रं० पृ० १४२१

४६९- आ०ग्रं०पृ० ५१५

के पद पर आसीन हो गया। जिसे भाई गुरु दास ने अपनी वार में अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है: 'वाहिगुरू गुरु मंत्र है जप हउमैं खोई।'[480] यह बीज-मंत्र अथवा गुरु-मंत्र हरि का नाम ही है, जिसकी गुरु अर्जुन देव ने भी व्याख्या की है:-

१- बीज मंत्र सर्ब को ज्ञान।
चहु बरना महि जपै कोऊ नाम। म:५[481]

गुरु अर्जुन से भी पूर्व हरि नाम जपु को बीज-मंत्र की संज्ञा देते हुए भक्त बेणी ने कहा है: 'बीज मंत्र ले हिरदै रहै। मनूआ उलटि सुंन महि गहै।'[482] इसी बीज-मंत्र को गुरु नानक देव ने मूल मंत्र भी कहा है: 'मूल मंत्रु हरि नामु, रसाइण, कहु नानक पूरा पाइआ।'[483] इस प्रकार बेणी से लेकर भाई गुरदास तक बीजमंत्र, मूलमंत्र तथा गुरु मंत्र, हरि नाम के लिये प्रयुक्त हुआ, और इसका अनुगुण जाप आदि ग्रंथ की भक्ति का साध्य है, और साधना भी। यह साधना योग-सम्बंधी सिद्धि की कामना नहीं करती। यह भगवत्कृपा से अपने आप भक्त के पीछे लगी फिरती है। भाई गुरुदास के पश्चात् गुरु अर्जुन के पश्चात् गुरु तेग बहादुर की रचना में भाई गुरुदास के गुरु मंत्र शब्द का भी हरि नाम के लिये प्रयोग हुआ है: 'कहु नानक इह जगत महि किन जपिओ गुरमंतु।'[484] गुरमति (गुरमत-गुरमंत्र) या अथवा हरि नाम का आठों याम स्मरण करने वाले आदि ग्रंथ के भक्तों को किसी धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि की इच्छा नहीं होती। यह सब सिद्धियां तो उन के पीछे फिरती हैं:-

मेरे मन जपि हरि गुन अकथ सुनाई।।
धरमु अरथु कामु मोखु है जन पाछै लगि फिराई। म:४[485]

४७०- आ०ग्र० पृ० ५१५
४७१- आ०ग्र० पृ० ५१५
४७२- आ०ग्र० पृ० ५१५
४७३- आ०ग्र० पृ० ६४७
४७४- आ०ग्र० पृ० १[illegible]१
४७५- आ०ग्र० पृ० ७८८
४७६- आ०ग्र० पृ० [illegible]
४७७- आ०ग्र० पृ० ११२१
४७८- आ०ग्र० पृ० १४०२
४७९- आ०ग्र० पृ० ६
४८०- वार-१३ पउड़ी २।
४८१- आ०ग्र० पृ० २७४
४८२- आ०ग्र० पृ० ६७४
४८३- आ०ग्र० पृ० १०४०
४८४- आ०ग्र० पृ० १४२६
४८५- आ०ग्र० पृ० १३२०

अवरोधक शक्तियां

(क) अहंकार (हउमै) : हउमै के बारे में दर्शन पक्ष में विस्तार पूर्वक विचार किया जा चुका है। आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार में सब से बड़ी बाधा हउमै (अहंकार) के आवरण की मानी गई है।

१- अंतरि गुपतु न जाई लखिआ। नामु रतनु है गुफा रखिआ। म:१ [४८६]

२- अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई। म:५ [४८७]

सत संगति इकतु गिरि काले निज भाव न करो भाई।

आत्मा से जब यह हउमै का आवरण दूर हो जाए तभी प्रभु से उसकी भेंट हो जाती है:-

कवन गिआन मन मनहि समावै। हउमै मै मै बिनसु जावै। म:१ [४८८]

इस हउमै के नाश का उपचार गुरु-मंत्र अथवा गुरु-शब्द (हरि नाम) की साधना (कमाई) बताई गई है, जो भगवत्कृपा से ही प्राप्त होती है:-

हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।
नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि। म:१ [४८९]

इस प्रकार हउमै के समाप्त होते ही, आत्मा को अपने मूल का ज्ञान हो जाता है, और वह उसी में सहज-समाधिस्थ हो जाता है:-

हउमै जाइ त सभो सूझै, जो गुरमुखि सहजि समाइदा। म:५ [४९०]

(ख) विषय-त्याग : विषयासक्त होकर जीव दुष्कर्मों के बंधन में फंस जाता है। संसार में रहते हुए सम्यक् व्यवहार और सदाचार के मार्ग पर प्रसार करता हुआ जीव भी अपने परम-तत्त्व की ओर ले जाता है। विषयासक्त होकर कभी तृप्ति नहीं होती। संयमपूर्ण जीवन ही जितेन्द्रिय व्यक्ति को अपने पन का पहचान करवाता है, तथा वह प्रभुचरणों में सहज- समाधिस्थ होता है:-

विषयों में तृप्ति नहीं

१- बिखिआ भरि किन ही त्रिपति न पाई।
जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै बिनु हरि कहा अघाई। म:५ [४९१]

२- बिखिआ अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइहै राजा राम निवासा। कबीर [४९२]

४८६- आ०ग्र० पृ० १३०   ४८७- आ०ग्र० पृ० २०५

३- बिखिआ की आसा मनहि करेइ। आणा जाणा आणि करेइ।। म:३ [493]

४- बिनु नैचे सटवाणीआ नहु छाति स्पाउ। पौग फुट्ठ फआरा फूट का फूटे लपटाइ। म:४ [494]

५- बिनिआन गिर गीत सुआनि नि नाहिन फेरो। म:६ [495]

कुकृत त्याग : जब विषयों से जिसे की तृप्ति नहीं हो सकती, फिर तो विषयों का त्याग ही भक्ति मार्ग को प्राप्त कर सकता है:-

१- छोड़हु काम क्रोध बुरिआई। हउमै धंधु छोड़हु लंपटाई। म:१ [496]

२- छोडि छोडि रे बिखिआ के रसूआ। म:५ [497]

३- तजि अभिमानु मोहु माइआ फुनि भजन राम बिनु लावउ।। म:६ [498]

४- लोभादि द्रिसटि परग्रिहं जदि बिधि आचरणं।
तजि सकल दुहकृत दुरमती भजु चक्रधर सरणं। जैदेव [499]

सुकृत करणी : अत: कुकृत्य को त्याग कर शुभ कर्म में लीन होना आदि गुंथ की भक्ति का आधारभूत सिद्धान्त है। सत्य सब से ऊंचा है, परन्तु इस से भी ऊपर सदाचार पूर्ण जीवन है।

१- सचहु ओरै सभु को, उपरि सचु आचारु। म:१ [500]

२- औनही मंदै पैरू न राखिओ, करि सुक्रितु धरमु कमाइआ। म:१ [501]

३- सुक्रित मनसा गुर उपदेसी जागत ही मनु मानिआ। नामदेव [502]

४- सुक्रितु करि करि लीजै रे मन। कबीर [503]

५- सुक्रित करणी सारु जपमाली। हिरदै फेरि चलै तुधु नाले।म:४ [504]

६- सुकरणी सामाणि गुर निधि लभ पाई। म:५ [505]

४८८- आ०ग्र० पृ० ६४३
४८९- आ०ग्र० पृ० ४६६
४९०- आ०ग्र० पृ० १०५६
४९१- आ०ग्र० पृ० ६०२
४९२- आ०ग्र० पृ० ३३०
४९३- आ०ग्र० पृ० १२७२
४९४- आ०ग्र० पृ० १६६
४९५- आ०ग्र० पृ० १३१२
४९६- आ०ग्र० पृ० १०२६
४९७- आ०ग्र० पृ० २०६
४९८- आ०ग्र० पृ० २१६
४९९- आ०ग्र० पृ० [illegible]
५००- आ०ग्र०पृ० ६२
५०१- आ०ग्र० पृ० ४६७
५०२- आ०ग्र० पृ० ४८५
५०३- आ०ग्र० पृ० ४७६
५०४- आ०ग्र० पृ० ११३४
५०५- आ०ग्र० पृ० ३७१

(ग) निष्काम भाव से भगवद् भजन।

मनुष्यकी समस्त चिन्ताओं का कारण अपने किये कर्मों के फल की आकांक्षा है। जो मनुष्य फल की कामना का त्याग कर देता है, उसे चिंता नहीं सताती:-

१- आसा मनसा दोऊ बिनासत त्रिहुगुण आस निरास भई। म:१ [५०६]

२- आसा मनसा जलाइ तू, होइ रहु मिहमाणु। म:३ [५०७]

३- इह आस परपिओ भगतु हूआ है, किन भगि फूल बिनि लगाई।
मेरे मन आसा करि करि प्रातम सावे को, जो तेरा नालि बरावगु थाइ पाइ। म:४ [५०८]

४- आसा मनसा बिकार मोह मन भगति लोभाना।
झूठ सम्पो भनि नहीं पार बृहु न जाना। म:५ [५०९]

५- आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।
कामु क्रोध जिह परसै नाहिन तिह घटि ब्रहम निवासा। म:६ [५१०]

निष्काम सेवा: प्रभु निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर उन कामनाओं को पूर्ण करता है जिन्हें भक्त कभी सोचता तक भी नहीं:-

१- प्रणवै नामा भए निहकामा। नामदेव [५११]

२- सेवा करत होइ निहकामी। सुखमनी म:५ [५१२]

३- काम क्रोध लोभ निहकामा। सुखमनी म:५ [५१३]

गुरु चरणों में रह कर निष्काम सेवा से समस्त कामनायें स्वतः पूर्ण हो जाती हैं:-

१- पूरन होइ आस गुर चरणी मन रसे। म:४ [५१४]

२- मिटे सगल मे त्रास। पूरन होई आस।
सफल सेवा गुरदेवा।। रामकली म:५ [५१५]

५०-६- आ०ग्रं० पृ० ३५६	५०७- आ०ग्रं० पृ० ६४[illegible]
५०८- आ०ग्रं० पृ० ८६०	५०९- आ०ग्रं० पृ० ८२५
५१०- आ०ग्रं० पृ० ६३४	५११- आ०ग्रं० पृ० ६८८
५१२- आ०ग्रं० पृ० २८६	५१३- आ०ग्रं० पृ० ७०४
५१४- आ०ग्रं० पृ० ५१३	५१५- आ०ग्रं० पृ० ८६६

निष्काम सेवा ही निश्चिंत भाव को जन्म देता है। जो मनुष्य पर नहीं रखता उसी प्रेम भाव से भगवान् का हुकम मान कर शान्त रहता है:-

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ।।म:१ [516]

चिंता तो उस बात की होनी चाहिए जो अनहोनी हो। जो होना ही है, यदि उस को आत्मसमर्पण भाव से स्वीकार किया जाए तो कोई शोक नहीं होता।

चिंता ताकी कीजीऐ जो अनहोनी होइ। म: ९ [517]

भगवान् की कृपा से समस्त चिंताएं दूर हो जाती हैं:-

चिंत अचिंता सगली गई। प्रभ नानक नानक नानक मई। म: ५ [518]

आदि ग्रंथ के भक्तों ने जो भगवान को अचिंता की संपदा प्रदान की है, इसी कारण वश उन्होंने भक्त को अपने जैसा अचिंत कर लेता है। [illegible] गुरु अर्जुन देव का पृ० ११५७ पर विस्तृत पद लिखा गया है:-

अचिंत हमारै भोजन भाउ। अचिंत हमारै लीजै नाउ।। म:५ [519]

चिंता-अचिंता से निर्मुक्त भक्त जीवन-मुक्त होता है:-

१- हरखु सोगु जा कै नही, बैरी मीत समानि।

कहु नानक सुणु रे मना मुकति ताहि तै जानि।। म:९ [520]

२- हरख सोग ते रहहि निरासा। अंम्रितु चाखि हरि नामि निवासा।म:१ [521]

३- हरख सोग ते रहहि निरारा, [illegible] प्रान पते। म:५ [522]

४- हरख सोग दोहा ते मुकता, सो प्रभु तू पाइआ। म:४ [523]

५- हरख सोगु सभु दुखु है भारा।

गुरमुखि होवै सो सुखु पाए, जिनि गुरमुखि नामु पछाता है। म:३ [524]

६- कबीर गुर लागा तब जानीऐ मिटै मोहु तन ताप।

हरख सोग दाझै नहीं, तब हरि आपहि आप। (१८६) [525]

५१६- आ०ग्र० पृ० १

५१७- आ०ग्र० पृ० १४२८

५१८- आ०ग्र० पृ० ११५७

५१९- आ०ग्र० पृ० ११५७

५२०- आ०ग्र० १४२७

५२१- आ०ग्र० पृ० १[illegible]८६

५२२- आ०ग्र० पृ० १३३७

५२३- आ०ग्र० पृ० ६६०

५२४- आ०ग्र० पृ० १०५[illegible]

५२५- आ०ग्र० पृ० १३७४

(घ) दुष्ट संगति का त्याग :

गुरबाणी में दुष्टों के लिये, दुर्जन, मनमुख, हरि-विमुख, साकत(शाक्त) आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। दुर्जन शब्द दुराचारी के लिये, मनमुख शब्द अहंकारी के लिये, हरि-विमुख शब्द नास्तिक के लिये प्रयुक्त हुए हैं। शाक्त शब्द वैसे तो शक्ति पूजक के लिये है, परन्तु वैसे पूजाचार में भी वामाचार का प्रचार एवं प्रसार हुआ, उसके कारण साकत(शाक्त) को दुष्ट का परिचायक मान लिया गया। दुष्टों की इन सब श्रेणियों का संग भगवद्भजन में बाधक है। अतः इन सब का संग त्याज्य है। भक्तों के भक्ति मार्ग में बाधक कार्यकर्ताओं को भी दुष्ट शब्द से याद किया गया है।

(१) दुष्ट संगति का त्याग : सन्त भक्तों ने शिव, शुक, सनकादि, नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, हनुमान आदि सन्त-भक्तों की भक्ति की महात्म्या की है और कहा है, राम जपउ जीअ ऐसे ऐसे। ध्रू प्रहिलादि जपिओ हरि जैसे।[526] प्रह्लाद की भक्ति में बाधा डालने वालों को आदि ग्रंथ के भक्तों ने दुष्ट सभा की संज्ञा दी है:-

१- दुसट सभा मिलि मंत्र उपाइआ करसह अउध घनेरी। नामदेव[527]

२- दुसट सभा महि मंत्र पकाइआ। प्रहलाद का राखा होइ रघुराइआ।[528]

इसी लिये भक्तों ने दुष्टों के संग को त्यागना ही उचित बताया है:-

३- दुसटी सभा विगुचीऐ बिखु वाती जीवण बादि।
ए प्रभि मूके भरमु न जोई। सतिगुरु सेव सदा सुखु होई।[529]

४- दुसट अहंकारी सदा झूठु कमावहि ना बूझहि विचारे।
निंदा दुसटी ते किनि फलु पाइआ हरणाखसु नखहि बिदारे। म:३[530]

५- दुसट दूत सभि भ्रमि थके। निंदक कउ साचे नाही ठाउ।
गोइ आणा वाजिआ जापि जापि। म:५[531]

(२) दुर्जन के संग का त्याग

१- सुंदर वचन तुम सुणाहु छोली पिर तैंडा मन साधारणु।
दुरजन सेती नेहु रचाइओ दसि विखा मै कारणु। म:५[532]

२- दुरजन सेती नेह करु कै गुणि नहि रंग माणाती। ५:५ [533]

यदि गुरु-गोविंद की कृपा गोविंद रूप में, वे हट लीजावें, तो दुनि का सज्जन बन जाता है:-

दुरजन ते साजन भये, भेटे गुर गोविंद। ५:१ [534]

(३) मनमुख के संग का त्याग: मनमुख कौन है, इसका उत्तर आदि ग्रंथ में प्रकाश किया है:-

१- मनमुखि कामकरि करो करुपुरखि फले पाइ। ५:१ [535]

२- मनमुख जाये जा आ जूरी। आपणा रूप न पछाणनि रीति विगुचो।५:३ [536]

३- मनमुखि कमावे मनि गवाइ।
मनमुखि जीवो दूजा भावो। अंधन बुझे तापु नाम् पछाने। ५:१ [537]

अत: ऐसे अहंकारियों का संग त्याज्य बताया है:-

१- मनमुख की मति दूजि विआपी। ५:१ [538]

२- मनमुख सेती संग करो मुकति भावा दागु लगाइ।
मुख काले तिन लोभिआ गं नामनि मनमुख गवाइ। ५:३ [539]

३- मनमुख सेती दोसती ओड़िआ बिन जारि।
उसु परीती तुटी विलमु न लोवई उसु दोसती चलनि विकार।५:३ [540]

(४) हरि-विमुख के संग का त्याग

हरि-विमुख दुष्ट व्यक्ति की संगति नाम-सुमिरन में बाधक हो जाता है। उसका त्याग अनिवार्य है। संगत्यागी विट्ठलेण भावानि कुमिरे: [541]

१- जाहि मन हरि विमुखन को संगु। सारंग ५:५ सूरदास [542]

हरि विमुखन का संग त्याज्य करने हेतु इस का उत्तर आदि ग्रंथ में देते हुए कहा गया है, कि जिस का जैसा संगति होता है, वह वैसा ही हो जाता है। और हरि विमुख जन्म व मांगने के लिये दु:खों में फंस जाता है।

५३०- ना०ग्र० पृ० ६०१
५३१- ना०ग्र० पृ० ११८३
५३२- ना०ग्र० पृ० ६४६
५३३- ना०ग्र० पृ० १०८७
५३४- ना०ग्र० पृ० ६३५
५३५- ना०ग्र० पृ० ६३
५३६- ना०ग्र० पृ० १०४२
५३७- ना०ग्र० पृ० ८३१

१- बैसुा तेरा राम ने त्यागि जनम विजोग। म:५ [५४३]

२- बैसु तेरा राम ते जिउ बालू उपरि बूलि। म:५ [५४४]

(५) साकत (शाक्त) के संग का त्याग। कबीर से लेकर साकत शुद्र दुर्जन के लिये प्रयुक्त होने लगा। इसलिये साकत का संग त्याज्य बताया गया है:-

१- कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु।। (१३२) [५४५]

२- कबीर संगति करीऐ साध की अंति करै निरबाहु।
साकत संगु न कीजीऐ जा ते होइ बिनाहु।। (९३)।। [५४६]

३- कबीर साधू की संगति रहउ जउ की भूसी खाउ
होनहारु सो होइहै साकत संगि न जाउ।। (९८)।। [५४७]

४- कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।।
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेतु।। (२००) [५४८]

कबीर जी को तो साकत से घोर घृणा है :-

१- कबीर बैसनउ की कूकरि भली साकत की बुरी माइ।
ओह नित सुनै हरि नाम जसु उह पाप बिसाहन जाइ।(५) [५४९]

२- कबीर साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ।।
उहु साकतु बपुरा मरि गइआ कोइ न लैहै नाउ।। (१४३)।। [५५०]

३- कबीर संगु हुआ किआ रोईऐ जो अपुने ग्रिहि जाइ।
रोवहु साकत बापुरे जु हाटै हाट बिकाइ।। (१६०)।। [५५१]

इस प्रकार कबीर से लेकर परवर्ती संत साहित्य में साकत शुद्र दुर्जन के लिये प्रयुक्त होने लगा और साकत का संग त्याज्य माना गया:

१- साकतु सुआनु सभु करे कराइआ। जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ। [५५२]

२- साकतु सुआन कहीअहि बहु लोभी बहु दुरमति मैलु भरीजै। म:५ [५५३]

३- साकत कूड़े दुरमती मरि रहु न जाणन्हि। म:३ [५५४]

४- साकत सिउ मन मेलु न करीअहु जिनि हरि हरि नामु बिसारे।
साकत बचन बिछुआ जिउ डसीऐ तजि साकत परै परारे।।म:४ [५५५]

५३८- आ०ग्र० पृ० ३५६ ५३९- आ०ग्र० पृ० १४१७
५४०- आ०ग्र० पृ० ५८९ ५४१- भक्ति रसामृतसिंधु-१-२८
५४२- आ०ग्र० पृ० १२५३ ५४३- आ०ग्र० पृ० १३५

५- साकत सूड़ नहु गुरमती भरिआ, किउकरि तानु बनाजै। म:४ [556]

(ङ) भुक्ति-मुक्ति योगक्षेम तथा कर्मफल आदि की इच्छा का त्याग

कर्म-फल के त्याग के विषय में नारद-भक्ति सूत्र में कहा है:
यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति, ततो निर्द्वन्द्वो भवति। [557]

तुलसी गोस्वामी ने भी मानव्य सुत के सम्मुख के लिये भुक्ति और मुक्ति दोनों की आकांक्षा के परित्याग को श्रेयस्कर समझा है- [558]
भुक्ति मुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावत् भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ।। [559]

आदि ग्रंथ की भक्ति में महाभाग्यपूर्ण सेवन, प्रभु-पाद-सेवनं, तथा हरि-नाम-सुमरिन को ही भुक्ति-मुक्ति एवं युक्ति का साधन बताया गया है। भुक्ति-मुक्ति-युक्ति का स्वामी वही परमात्मा है। अतः उसकी निष्काम सेवा में इन सब का फल निहित है। भगवान् के घर किसी वस्तु की कमी नहीं :-
१- भुकति मुकति जुगति सभु पाईऐ, सरब सुखा का दाता। म:५ [560]
२- भुकति मुकति जुगति हरि नाउ। प्रेम भगति नानक गुण गाउ।म:५ [561]
३- भुकति मुकति जुगति तेरी सेवा, जिसु तूं आपि कराइहि। म:५ [562]
४- भुकति मुकति जुगति वसि जा कै। ऊणा नाही किछु जन ता कै। म:५ [563]

आदि ग्रंथ के सन्तों की साधना में भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, उसके बदले भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करना तुच्छ माना गया है। कर्म धर्म में मुक्ति नहीं है। विद्या-विज्ञान तथा योग में भी मुक्ति नहीं। सत्गुरु के शब्द का विचार ही सच्ची मुक्ति है:-
१- राजु न चाहउ, मुकति न चाहउ, मनि प्रीति चरन कमला रे।म:५ [564]
- निरति संतोखु सेवा गुर पूरे नामु कमावणा।×××
कई बैकुंठ नाही लवै लागे। मुकति बपुड़ी भी गिआनी तिआगे। म:५ [565]

५५?- आ०ग्र० पृ० ३१?
५५६- आ०ग्र० पृ० १३६६
५५८- आ०ग्र० पृ० १३६६
५६०- आ०ग्र० पृ० १३७२
५६५- आ०ग्र०पृ० १३७१
५६?- आ०ग्र० पृ०१३६६
५६६- आ०ग्र० पृ० १३६७
५६?- आ०ग्र० पृ० १३६५

३- मुकति भुगति जुगति पूरन परमानंद निधान।
भै भाइ भगति निहाल नानक सदा सदा कुरबान। म:५ [566]

४- करम धरम करि मुकति मंगाही। मुकति पदारथु सबदि सलाही।
बिनु गुर सबदै मुकति न होई, परपंचु करि भरमाई है। म:१ [567]

५- मुंद्रा फटक बनाई कानि। मुकति नही बिदिआ बिगिआनि।
जिहवा इंद्री सादि लोभाना। पसू भए नही मिटै नीसाना।
त्रिबिधि लोगा त्रिबिधि जोगा। सबदु वीचारै चूकसि सोगा।म:१ [568]

निष्कर्ष : कर्म कांडों का अनुष्ठान भुक्ति-मुक्ति-युक्ति आदि फलों का प्रदाता नहीं हो सकता।कर्मों का अनुष्ठान अहंकार को जन्म देता है:-

१- करम धरम करते बहु संजम, अहंबुधि मन जारिओ रे। म:कबीर [569]

२- दुबिधा मेटि बिना नहि रहहु। करम धरम की सूल न सहहु।कबीर [570]

३- करम धरम का सारु न जाणै, सुरति मुकति किउ पाईऐ। म:१ [571]

४- करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु।। म:३ [572]

५- करम धरम सुचि संजमु करहि अंतरि लोभु विकारु।
नानक मनमुखि जि कमावै सु थाइ न पवै दरगह होइ खुआरु। म:४ [573]

इसलिये गुरमुख कर्म धर्म का फल त्याग,कर्म धर्म को कार्य जान कर त्याग देता है:-

करम धरम संजम सचु नेमा संग संगि साध तिथि सारो।म:५ [574]

५५२- आ०ग्रं० पृ० ४८१
५५३- आ०ग्रं० पृ० १३७६
५५४- आ०ग्रं० पृ० ८५४
५५५- आ०ग्रं० पृ० ९५२
५५६- आ०ग्रं० पृ० १३७४
५५७- नारद भक्ति सूत्र- ४८
५५८- भक्ति का विकास-पृ०३१५
५५९- भक्तिरसामृतसिंधु-पूर्वभाग- २:११
भक्ति का विकास पृ० ३१५ पर
५६०- आ०ग्रं० पृ० ६११
५६२- आ०ग्रं० पृ० २००
५६१- आ०ग्रं० पृ० ७४६
५६३- आ०ग्रं० पृ० ११५०
५६४- आ०ग्रं० पृ० ५३४
५६५- आ०ग्रं० पृ० १००८
५६६- आ०ग्रं० पृ० १३०८
५६७- आ०ग्रं० पृ० १०२४
५६८- आ० ग्रं० पृ० ९०३
५६९- आ०ग्रं० पृ० ३३५
५७०- आ०ग्रं० पृ० ३४३
५७१- आ०ग्रं० पृ० ४३७

आदि ग्रंथ की भक्ति में शुभ-कर्मों को [illegible] धर्मानुष्ठान माना गया है। शुभ कर्मों के अनुष्ठान में ही मुक्ति है, उन्हीं में स्वर्ग है, तथा उनके विपरीत कर्म करना नरक है। सन्तों को इस लोक से परे किसी स्वर्ग की इच्छा नहीं तथा नरक का डर नहीं:-

१- अमलु करि धरती, बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै, भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी।। म:१ [५७५]

२- करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए। म:१ [५७६]

३- करणी सार कमावै सबदि समावै अंतरि एको जाणिआ। म:३ [५७७]

संतों को स्वर्ग की कामना नहीं, तथा नरक का भय नहीं

१- सुरगु नरकु किआ पुरखु बिचारा, संतन दोऊ रादे।
हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसादे। कबीर [५७८]

२- सुरग बासु न बाछीऐ, डरीऐ न नरकि निवासु।
होना है सो होइ है, मनहि न कीजै आसु। कबीर [५७९]

३- [illegible] लोगु [illegible] जिह न [illegible], [illegible] पूरनि [illegible] देखा।
सुरग नरक अंम्रित बिखु, ए सभ, तिउ कंचन अरु पैसा।
उसतति निंदा ए सम जा कै लोभु मोहु फुनि तैसा। म:९ [५८०]

योगक्षेम: संतों के लिये योगक्षेम, प्रभु-गुण-गायन ही है, उन्हें किसी कुशल-क्षेम की इच्छा नहीं:-

१- धनु इहु थानु गोविंद गुण गाए। कुसल खेम प्रभि आपि बसाए। म:५ [५८१]

२- करि किरपा नामु रसु दीआ। कुसल खेम सभ थीआ। म:५ [५८२]

प्रभु नाम सुमिरन के अतिरिक्त किसी देव की पूजा में कुशल-क्षेम नहीं है। संत कबीर भी कहते हैं:-

मो कउ कुसलु बतावहु कोई।
कुसलु कुसलु करते जगु बिनसै कुसलु भी कैसे होई।।रहाउ।।
माटी के करि देवी देवा तिसु आगै जीउ देही।
देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रहमु नहीं जाना।
कहत कबीर अकुलु नही चेतिआ बिखिआ सिउ लपटाना। कबीर [५८३]

५८२- आ०ग्रं० पृ० ५११ ५८३- आ०ग्रं० पृ० १४३३

(च) बाह्याडंबर का त्याग

भक्ति में बाह्याडंबर को कोई स्थान नहीं। आदि ग्रंथ में क्रियाविभाग की भक्ति की निंदा की गई है, परन्तु किसी मत अथवा संप्रदाय के पूजाचार की विधियों की निंदा नहीं की गई। उन विधियों का सम्यक् अनुष्ठान तथा उनके कुपरिणाम का आदि ग्रंथ में निर्देशन किया गया है। शाक्त, वाममार्गियों जैनियों (सरेवड़ों), रावलों, योगियों, मुसलमानों, वैष्णवों के पूजाचार के बाह्याचार का अनावरण कर उनकी पूजा विधियों की कु-व्याख्या प्रस्तुत की गई है-

शाक्त भक्ति: शाक्तों की भक्ति के किसी भी अंश को मान्य नहीं समझा गया। उनमें अनाचार का भी प्रचार हुआ, इसी के कारण सन्तों ने उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा है:-

१- कबीर बैसनउ की कूकरि भली साकत की बुरी माइ।
ओह नित सुनै हरि नाम जसु, उह पाप बिसाहन जाइ।।(५२)।।[584]

२- साकत मूड़े दुरमती हरि रसु न जाणन्हि। म:३[585]

३- तेरे सेवक कउ किसकी काणि। साकतु भूला फिरै बेबाणि।म:५[586]

शाक्तों के प्रति सन्तों की ही घृणा नहीं था, अपितु शैवों और वैष्णवों को भी उनसे घृणा था। डा० रामनाथ सिंह लिखते हैं, 'शाक्त भक्ति को देवी के रूप में स्वीकार करने से शैवों और वैष्णवों के मन में शाक्तों के प्रति घृणा भर गई थी। पंच मकारों में मत की घोरतम विकृति की अभिव्यक्ति ने शाक्त मत को संत मार्ग से विदूर कर दिया था।'[587] डा० कोमल सिंह सोलंकी लिखते हैं: 'इस उपासना में मैथुन को महत्त्व दिया गया है और पूजा के दौरान उपासक मदमत्त होकर उच्छृंखल विलास में लीन हो जाते थे। इस उपासना पद्धति का सर्वसाधारण समाज में कहीं स्थान हुआ होगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है। प्रायः शाक्तों का कुत्सित रूप कर उनके संहार करने का वर्णन मिलता है।[588]

वाममार्गी साधना : शाक्तों की भान्ति वाम मार्गी साधना भी सात्विकता की समस्त सीमाओं को लांघ कर अनाचार में प्रवृत्त थी, अतः इसकी भी निन्दा सन्तों

५८४- आ०ग्रं० पृ० १३६८ ५८५- आ०ग्रं० पृ० २४

५८६- आ०ग्रं०पृ० ६६० ५८७- आ०ग्रं० पृ० ७७०

की रचनाओं में उपलब्ध है। वाममार्ग का संबंध शाक्तों से तत्ववाद की ओर उन्मुख हुआ प्रतीत होता है। इस आचार में स्त्रियों के साथ स्वच्छंद संसर्ग मुख्य बात थी।[५८९]

अवधु पारि परि उतरत दुहेला अवधु पारि परि पानी।
आगि पानि पंचयोगिया जैहे ... बधि नरक दे रानी। कबीर।[५९०]

वाम मार्ग शैव-मत की शाखा थी। इन्हें तांत्रिक भी कहा जाता है। इस मत में पांच मकारों, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन (मद्यमांसंतथा-मत्स्यंमुद्रा मैथुनैरपि)[५९१] को महत्व दी जाती थी। महान् कोश में भाई कान्ह सिंह लिखते हैं: शास्त्रों में शिव की एक ऐसी मूर्ति की कल्पणा की गई है, जिसकी दाहिनी ओर नर तथा वाम की ओर स्त्री की है। इस मूर्ति के वाम-पक्ष के पुजारियों को वाममार्गी कहा गया है।[५९२] इस प्रकार की साधना ने जिस दुराचार को प्रचारित किया, उसी की ओर कबीर जी ने उपर्युक्त पद में संकेत किया है। वाम मार्ग शाक्त मत का ही एक साधना पंथ माना जा सकता है।[५९३]

५७८- आ०ग्र० पृ० ९६९
५७९- आ०ग्र० पृ० ३३७
५८०- आ०ग्र० पृ० २२०
५८१- आ०ग्र० पृ० १६७
५८२- आ०ग्र० पृ० ९२२
५८३- आ०ग्र० पृ० ३३२
५८४- आ०ग्र० पृ० १३६७
५८५- आ०ग्र० पृ० ८५४
५८६- आ०ग्र० पृ० ३७१
५८७- कबीर एक विवेचन- पृ० ६३
५८८- नाथ पंथ और निर्गुण सन्त काव्य- पृ० ८१
५८९- नाथ संप्रदाय- पृ० ५२
५९०- आ०ग्र० पृ० ४७६
५९१- हिन्दी साहित्य कोश- पृ ३२२
५९२- महान कोश- भाई कान्ह सिंह नाभा, पृ०८१७
५९३- नाथ पंथ और निर्गुण सन्त काव्य- पृ० ८३

जैन धर्म साधना : डॉ० प्रेम सागर जैन, जैन पूजा के विषय में आचार्य देवसेन (१०वीं शताब्दी) के विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं, गृहस्थ के लिये निरालंब ध्यान संभव नहीं। अतः उसको आलंब ध्यान करना चाहिए। आलंब ध्यान में व्रत उपवास और शील के साथ साथ जिन पूजा भी शामिल है। उन्होंने देव-पूजा को शीश का आभरण कहा है।[५९४] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जैन धर्म-साधना के विषय में लिखते हैं, 'इस धर्म की विशेषता मानव जीवन के अंतर्गत आत्म-संयम, सदाचार तथा अहिंसा के नियमों को महत्वपूर्ण स्थान देना है। किन्तु पौराणिक युग के प्रभाव में आ कर इस के अनुयायी भी पुराणों की रचना, तीर्थों की स्थापना कठोर व्रतों के अनुष्ठान, तार्किकों की भांति तथा विविध तर्क वितर्कों के फेर में पड़ गए। उनका प्राचीन मुख्य ध्येय स्थिर न रह सका और विक्रम की ९वीं-१०वीं शताब्दी तक आ कर उनकी साधना के अंतर्गत विविध तांत्रिक आचारों का समावेश हो गया।'[५९५] गुरु नानक के समय इन आचारों का तांता बढ़ चुका था। जैन साधकों की एक शाखा के लोग जीव-हत्या को महापाप मान कर स्नान तक न करते थे और गन्दे रहते थे। संभवतः यह दिगंबर साधुओं में से थे, जो नंगे रहते थे।[५९६] गुरु नानक देव कहते हैं:-

सिर खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही।
भेडा वांगी सिर खोहाइनि भरीअनि हथ सुआही।
माऊ पीऊ किरत गवाइनि टबर रोवनि धाही।
ओना पिंड न पतलि किरिआ दीवा मुए किथाऊ पाही।
अठसठि तीरथ देनि न ढोई, ब्रहमण अंनु न खाही।
सदा कुचील रहहि दिन राती मथै टिके नाही। ××
दयि विगोए फिरहि विगुते फिटा वतै गला। ××
मुइआ जीवदिआं गति होवै जां सिरि पाईअै पाणी।
नानक सिर खुथे सैताना एना गल न भाणी। ५:१ (श्लोक)[५९७]

५९४- जैन भक्ति काव्य की पृष्ठ भूमि- पृ० २७

५९५- उत्तरी भारत की संत परंपरा- पृ० ४७

५९६- वही० पृ० ४७

५९७- आ०ग्रं०पृ० १४९-५०, तथा भारतीय संत परंपरा और समाज- डा० रांगेय राघव- पृ० ३५।

(For original quotation from this book, see page 25 of this thesis). Foot Note 63.

उपर्युक्त छंद के विषय में आदि ग्रंथ (सुदार्थ) के टिप्पणीकार लिखते हैं, यह सारा श्लोक जैन-सरेवड़ों के लिये उच्चारण किया गया है। उनके भ्रम तथा पाखंड का कठोर परन्तु हास्य पूर्ण शैली में खंडन किया गया है।[598]

यद्यपि जैन-साधु त्यक्त रहते थे, परन्तु आचार उनमें भी अधिक था, जिसका विशेष संकेत किया गया है। गुरु अर्जुन देव जी ने इन के आचार को व्यर्थ बता कर साधु-समागम में नाम-जप का निर्देश दिया है:-

पूजा वरत तिलक इसनाना पुंन दान बहु दैन।
कहूं न भीजै संजम सुआमी बोलहि मीठे बैन।
प्रभु जी को नामु जपत मन चैन।
जाप ताप भ्रमन बसुधा करि उरध ताप लै गैन।
इहि बिधि नह पतीआनो ठाकुर जोग जुगति करि जैन।
साध संगि रंगि प्रभु भेटे नानक सुखि जन रैन। धनासरी म:५ [599]

बहुत से अन्य आचारों, यथा-तप, प्राण-हवन, कंचन-अश्व-हस्ती-भूमि आदि का दान, योगासनादि के साथ गुरु जी ने जैन-मार्ग की संयम-साधना के आचार को भी व्यर्थ माना है। जब तक गोविंद-भजन में मन न लगाया जावे तब तक दुःखों का नाश नहीं हो सकता।[600]

<u>रावल-योगी:</u> योग तथा आदि ग्रंथ की भक्ति पर पृथक् विचार आगामी पृष्ठों पर किया जावेगा। यहां पर केवल योग के आचार की ओर संकेत मात्र से विवरण दिया गया है। योगियों- सन्यासियों के कई पंथ बन गए थे, जिन में भेखा, डंडा, त्रिशूल, सिंगी, मुद्रा आदि को धारण करना ही योग समझ लिया गया और योग का वास्तव स्वरूप लोप होने लगा।

<u>योगियों के बारह तथा सन्यासियों के दस पंथ</u>

बारहि महि रावल खप जावहि चहु छिअ महि संनिआसी।
जोगी कापड़ीआ सिरखूथे बिनु सबदै गलि फासी।

598- आ०ग्रं० (सुदार्थ) (पोथी-२) पृ० २४६

599- आ०ग्रं०पृ० ६७४ 600- आ०ग्रं० पृ० २६५

सबदि भिदै से सुरतानारी साची दरगह जाने।

कादिरु नामि रजानि निव लागै गुणि गुणि साचि समाने। प्रभाती म:१ [६०१]

२- जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाई।

जोगु न मुंदी, मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिंङी वाई।

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ। सूही म:१ [६०२]

<u>मुसलमान मत का आचार:</u> मुसलमान मत में शरअ के अनुसार हज, बांग, नमाज़, रोज़ा, कलमा, सुन्नत आदि का विशेष महत्त्व है। आदि ग्रंथ में शरअ के इन विधि-विधानों की यथा-योग्य व्याख्या की गई है। कारण यह कि भक्तिकाल में शासन मुसलमानों के हाथ में था, अत: काज़ी मुल्लां जोकि धार्मिक नेता भी थे, और न्यायाधीश भी थे, धर्म तथा व्यवहार की मन माने ढंग से व्याख्या करने लग पड़े थे और कुरआन के सन्देश को भूल गये थे। गुरुओं तथा सन्त भक्तों ने कुरआन के अनुसार इन विधि-विधानों की व्याख्या प्रस्तुत की और बाह्याचार को महत्त्वपूर्ण न मान कर खुदा का नाम लेने ([illegible]) को सर्वोच्च बताया है। इस ओर व्यावहारिक पक्ष में धार्मिक व्यवस्था में विस्तार से विचार किया गया है। यहां केवल मुसलमान के विविध कर्मों पर आदि ग्रंथ में किये गये विचारों का उल्लेख किया गया है:-

<u>मुसलमान कैसा हो:</u>

१- मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै।

अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकल माना मालु मुसावै।

होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।

रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै।

तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै। वार माझ [६०३]

२- मुसलमाणु मोम दिलि होवै। अंतर की मलु दिल ते धोवै।

दुनीआ रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाटु घिउ पाकु हरा। मारू म:५ [६०४]

<u>बांग</u>

मुलां मुनारे किआ चढहि? सांई न बहिरा होइ।

जा कारनि तूं बांग देहि, दिल ही भीतरि जोइ। कबीर [६०५]

<u>नमाज़ तथा कलमा:</u>

पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।

पहिला सचु हलाल दुइ, तीजा खैर खुदाइ।

कणी [illegible] रा[illegible] नु, [illegible] [illegible]ुलाह।।
[illegible]रणी [illegible]था [illegible] के ना मुस[illegible]णु [illegible]दाइ।।
नानक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।। [illegible] म:१ [६०६]

मुल्ला, मस्जिद मुल्लां :

[illegible]नु निवाज [illegible] मुल्ला। [illegible]सा [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] मनु [illegible]णा [illegible] कुदाइ [illegible]। [illegible] म:५ [६०७]

रोज़ा : रोज़ा [illegible] माह-ए-रमज़ान में [illegible] [illegible] अपितु सदा [illegible] [illegible]। है। रोज़ा [illegible] [illegible] है, [illegible]न्द्रिय-[illegible] [illegible], [illegible] भगवद्-[illegible] में लीन [illegible]:

वरत न [illegible] न [illegible] रमदाना। [illegible] [illegible] [illegible] निदाना।
[illegible] [illegible] [illegible]। हिंदू तुरक दुहां नेबेरा।
[illegible] [illegible] न [illegible]। [illegible] न निवाज गुजारउ।
[illegible] निरं[illegible] ले [illegible] नमस्कारउ।
ना[illegible] हिंदू न मुसलमान।। अलह राम के पिंडु परान।
[illegible] कबीर [illegible] [illegible]ना। गुर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पछाना। [६०८]

हज-काबा : [illegible] [illegible] [illegible] कोई प्रकार आवश्यक नहीं [illegible] प्रकार [illegible] यात्रा का कोई विशेष [illegible] नहीं। परमात्मा किसी विशेष स्थान पर नहीं [illegible]। [illegible] तो सर्वव्यापक है। जो [illegible] हैं, वे तो हज के लिये जा सकते हैं, परन्तु निर्धन लोग तो [illegible] [illegible] असमर्थ हैं। फिर [illegible] निर्धन लोगों से भगवान कैसे प्रसन्न हों? भगवान् हज-काबे की यात्रा अनिवार्य नहीं बताता। अपितु हृदय में ही भगवान् को खोजना [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] हज [illegible] [illegible] भगवान् से भेंट नहीं होती:

१- हज काबे जाउ न [illegible] पूजा। [illegible] [illegible] [illegible] न पूजा। कबीर (म:५) [६०९]
२- [illegible] हज [illegible] [illegible] जाइथा, [illegible] [illegible] [illegible]।
सांई मुझ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फुरमाइ [illegible]। (१९७) [६१०]

६०१- आ०ग्रं० पृ० १३३२
६०२- आ०ग्रं० पृ० ७३०
६०३- आ०ग्रं० पृ० १४१
६०४- आ०ग्रं० पृ० १०८५
६०५- आ०ग्रं० पृ० १३७४
६०६- आ०ग्रं० पृ० १४१
६०७- आ०ग्रं० पृ० ११५३
६०८- आ०ग्रं० पृ० ११३६

३- कबीर हज काबै हो होइ गइआ केती बार कबीर।
साँई मुझ महि किआ खता मुखहु न बोलै पीर॥ (१९७) [६११]

<u>काज़ी तथा मुल्ला:</u> काज़ियों ने इस्लाम के हक़ को भूल कर रिश्वत खोरी तथा अन्याय का दौर-दौरा आरंभ कर दिया था। अपने इस अन्याय को युक्तिसंगत बताने के लिये कुरान से अपनी मन मानी व्याख्या प्रस्तुत करते थे:-

काजी होइ कै बहै निआइ। फेरे तसबी करे खुदाइ।
वढी लै कै हकु गवाए। जे को पुछै ता पड़ि सुणाए। म:१ [६१२]

इसलिये सन्तों को काज़ी-मुल्लां के परित्याग का उल्लेख करना पड़ा। आदि ग्रंथ में काज़ी मुल्लां के ठीक स्वरूप का वर्णन मिलता है:-

सो मुलां जो मन सिउ लरै। गुर उपदेसि काल सिउ जुरै।
कालपुरख का मरदै मानु। तिसु मुला कउ सदा सलामु।
है हजूरि कत दूरि बतावहु। दुंदर बाधहु सुंदर पावहु। रहाउ॥
काजी सो जु काइआ बीचारै। काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै।
सुपनै बिंदु न देई झरना। तिसु काजी कउ जरा न मरना। कबीर। [६१३]

आदि ग्रंथ के भक्त कवि भी हिन्दू-मुसलमान के झगड़े में पड़ते ही नहीं थे। उन के लिये तो सब इन्सानों की एक नूर से उत्पत्ति हुई था। अत: वे हिन्दू के घर में आने वाले को हिन्दू और मुसलमान के घर पैदा होने वाले को मुसलमान मानने के पक्ष में नहीं थे। भगवान् ने तो इन्सान को इन्सान पैदा किया है, परन्तु हम ने उसे हिन्दू अथवा मुसलमान बना दिया है। बिना गुरु पीर के हिन्दू-मुसलमान किसी का उद्धार न होगा:-

हिंदू कै घरि हिंदू आवै। सूतु जनेऊ पड़ि गलि पावै।
मुसलमानु करे वडिआई। विणु गुर पीरै को थाइ न पावै। म:१ [६१४]

गुरु नानक देव जी के उपर्युक्त पद के संदर्भ में भाई गुरदास की प्रथम वार में ३३वीं पउड़ी में हिन्दू मुसलमान के विषय में गुरु नानक तथा मक्के के हाजियों की वार्तालाप प्रस्तुत है:-

पुछणि खोलि किताब नूं, वडा हिन्दू कि मुसलमानोई।
बाबा आखे हाजीआं शुभ अमलां बाझहु दोनों रोई।

६०९- आ०ग्र० पृ० ११३६ ६१०- आ०ग्र० पृ० १३७५

मुल्तान सूफी मत : सूफी मत का स्पष्ट उल्लेख आदि ग्रंथ में नहीं मिलता। सूफियों की चार अवस्थाएं गुरु अर्जुन देव जी ने वर्णित की हैं। जब कहा गया कि सूफी फकीर अल्लाह के नाम की आराधना के रूप में बता जाती है।[६१६]

शरीअत: सरा सरीअति ले कमावहु। (नाम सुमिरन)

तरीकत: तरीकति तरक खोजि टोलावहु। (मानसिक शुद्धि)

मारिफत: मारफति मनु मारहु अबदाला। (मनोमारण-अथवा मनःमारण)

हकीकत: मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा। (फिर से आवागमन-जीवन मुक्त)

वैष्णव: शैवों-शाक्तों तथा अन्य हिन्दू मत मतांतरों में से वैष्णवों को आदि ग्रंथ के भक्तों ने श्रद्धा की दृष्टि से देखा है-

कबीर बैसनो का कूकरि भला साकत की बुरी माइ।[६१७]

जो भी वैष्णवों में से बाह्याचार का आडंबर और पाखंड था उसकी आलोचना सन्तों ने की है:-

कबीर बैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि।[६१८]
बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भंगारि।। (१४५)

वैष्णवमत आलोचना गान : वैष्णव भक्ति के युग के पश्चात् जो पंचम युग आया, उसमें भगवान् की लीलाओं को विशेष रूप से स्थान मिला।[६१९] गुरु नानक के समय लीलागान का भक्ति का रूप अत्यन्त विकृत हो चुका था कि उसमें आडंबर ही रह गया था। गुरु नानक का पूरा दृष्टिकोण भी यही है वे कहते हैं:-

वाइनि चेले नचनि गुर। पैर हलाइनि फेरन्हि सिर।
उडि उडि रावा झाटै पाइ। वेखै लोकु हसै घरि जाइ।
रोटीआ कारणि पूरहि ताल। आपु पछाड़हि धरती नालि।
गावनि गोपीआ गावनि कान्ह। गावनि सीता राजे राम।
निरभउ निरंकारु सचु नामु। जा का कीआ सगल जहानु।[६२०]

यहां पर उपचार को छोड़कर नाम सुमिरन पर बल दिया गया है। सब पूजाचारों से नाम सुमिरन महान है।

६११- आ०ग्रं० पृ० १३७५
६१२- आ०ग्रं० पृ० ६५१
६१३- आ०ग्रं० पृ० ११५६-६०
६१४- आ०ग्रं० पृ० ६५१
६१५- बाराँ भाई गुरदास- पृ० १७
६१६- मारू दासी (आ०ग्रं०) पृ० १०८३
६१७- आ०ग्रं० पृ० १३७७
६१८- आ०ग्रं० पृ० १३७२

(ग) सब जातियों की समानता तथा जाति पाँति विरोध

सब सम्प्रदायों को, बिना किसी भेद-भाव के [illegible] [illegible] सब धर्मों की [illegible] [illegible] [illegible] है। आदि ग्रंथ में [illegible] तत्त्वों को निम्न- [illegible] [illegible] हैं:

समानता:

१- अवलि अलह नूर उपाया कुदरति के सब बंदे।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ, कउन भले को मंदे।
लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु, पूरि रहिओ स्रब ठांई। कबीर[621]
२- ना हम हिंदू न मुसलमान। अलह राम के पिंडु परान। कबीर[622]

जाति पाँति विरोध:

जाति जनमु नह पूछीऐ सच घरु लेहु बताइ।
सा जाति सा पति है जेहे करम कमाइ। प्रभाती म:१[623]

ऊँच-नीच की भावना का विरोध:

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस। म:१[624]

निंदा अथवा नुक्ताचीनी का विरोध

१- निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि। म:३[625]
२- सभ नाओं कौ बुरा कहा होइ। गुणकारी नानकु तारे सोइ। म:१[626]
३- कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥ कबीर[627]

---

६२१ - [illegible] का विकास-पृ० ३७८
६२२- आ०ग्रं० पृ० १३४९
६२३- आ०ग्रं० पृ० १३३०
६२५- आ०ग्रं० पृ० ७५५
६२७- आ०ग्रं० पृ० १३६४
६२०- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
६२ - आ०ग्रं० पृ० १३७६
६२४- आ०ग्रं० पृ० १५
६२६- आ०ग्रं० पृ० ७२८

योग-साधना और गुरमति साधना

परम्परागत साधना के प्रकारों में सिद्धों के हठयोग का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। युक्ति तथा उपाय भी है और उपाय को भी योग कहा गया है। योग का व्यावहारिक अर्थ दो पदार्थों का मिलना अथवा संयोग माना गया है और डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को भी यही अर्थ मान्य प्रतीत होता है।[628] वेदान्त में जीव और परमात्मा के मिलन को योग कहा है।[629] योगवाशिष्ठ में संसार सागर से पार होने की युक्ति को योग कहा है।[630] सब चिन्ताओं का परित्याग कर निश्चिंत होने का नाम भी योग कहा है। (सर्व चिंता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते)।[631] पतंजलि ने प्रसिद्ध- योगश्चित्त वृत्ति निरोधः (योग, चित्त वृत्ति का निरोध है)[632] और चित्त वृत्ति के निरोध के अर्थ में रूढ़ हो गया है।[633] कुछ लोगों ने योग को वेद मूलक माना है। कुछ ने इसे जैनागमों से निकला बताया है, कोई ने बौद्ध दर्शन से इसका संबंध जोड़ा है, तथा कुछ लोगों ने योग को इन सब से स्वतंत्र परम्परा, प्राचीन काल से ही आज तक माना है। प्रायः यह माना जाता है कि इन चारों परंपराओं में चार प्रकार के योग हैं। राज योग वैदिक है, तो हठयोग किसी स्वतंत्र परंपरा का है, जिसे हम तंत्रानुकूल कहते हैं। जैन और बौद्ध योगों को इन दो योगों से भिन्न समझना चाहिए। राजयोग और हठयोग दोनों के स्वतन्त्र प्रवाह आत्मोपलब्ध करते रहे, कभी कभी कुछ साधनाओं में दोनों का मेल हो जाता था। जहाँ दोनों का समन्वय होता था, वहाँ यह कहा जाता था, कि हठयोग प्रथम सोपान या साधन है तो राजयोग द्वितीय सोपान या साध्य। हठयोग का संबंध अधिकतर शरीर-विज्ञान और काया-कल्प से है और राजयोग का संबंध बोध या बुद्धि से है। किन्तु कई संतों ने राजयोग समाधि को सहज-समाधि कहा और हठयोग से प्राप्त समाधि को जड़-समाधि कहा। गोरख पंथी योगियों को हठयोगी समझा जाता है और निर्गुणवादी संतों तथा अद्वैतवादियों को राजयोगी।[634]

<u>आदि ग्रंथ का योग राजयोग अथवा सहज-योग है।</u>[635] भाट कवि गुरु नानक तथा गुरु रामदास की साधना के विषय में लिखते हैं:-

१- कवि कल सुजसु गावउ गुर नानक राजु जोगु जिनि माणिओ।[636]

२- राजु जोगु गुरु रामदास तुमहु रसु जाणी। सवैये म:४ के[637]

६२८- कल्याण योग विशेषांक वर्ष १०, अंक १, पृ० ३८

६२९- [illegible] पृ० [illegible]

६३०- योगवाशिष्ठ-६-२-१३-३, योगांक पृ० १६०

गुरुभक्ति साधना को राज योग की संज्ञा गुरु अर्जुन देव ने भी दी है। राज योग की परिभाषा करते हुए गुरु जी कहते हैं, 'रसना से एक नाम का जाप कर संसार में रहते हुए-स्वयं आनंद का कारण बनता है, और सारे जीवात्मा के संग लाभ पाता है। यह 'कर्म-योग' की कल्पना है। ऐसे राजयोग का गुरु जी ने अनुष्ठान किया।[६३८]

रसना जपीऐ एकु नामु। ईहा सुखु आनंद घना आगै जीअ कै संगि काम।
कटीऐ तेरा अहं रोगु। तूं गुर प्रसादि करि राज जोगु।

हठयोग तथा राजयोग में अन्तर बताते हुए डा० भा० जोध सिंह लिखते हैं, 'हठयोगी का परमलक्ष्य शारीरिक-साधना है, और वह शरीर को स्वस्थ रख कर सौ से अधिक वर्षों तक जीता है। उन्हों ने एक दार्शनिक ने हठयोगी की तुलना चिरजीवी वट-वृक्ष से की है। वट-वृक्ष भी सैकड़ों साल के होते हैं, परन्तु वह वट-वृक्ष से अधिक कुछ नहीं होते। इस प्रकार हठयोगी हठयोगी से अधिक कुछ नहीं।[६३९] हठयोग की पुस्तकों में भी राज-योग को उत्तम माना गया है। हठयोग का पीछे उल्लेख किया जा चुका है। राजयोग का जो परंपरागत स्वरूप ग्रंथों में मिलता है उसका वर्णन निश्चलदास ने अपने 'विचार-सागर' में किया है। इस के चार पाद इस प्रकार हैं:-

प्रथम पाद: चित्तवृत्ति निरोधसमाधि:। (अभ्यास, वैराग्य)
द्वितीय पाद: चित्त विक्षिप्तस्य समाधि:। (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)
तृतीय पाद: योग की विभूति
चतुर्थपाद: योग-फल-कैवल्य।

इस प्रकार योग शास्त्र भी ज्ञान साधन, निदिध्यासन के संपादन द्वारा मोक्ष का हेतु है।[६४०] जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, राज-योग की आदि ग्रंथ की परिभाषा भक्ति-योग की परिभाषा है। ग्रंथों में जिस प्रकार हठयोग को प्रथम सोपान माना गया है, और राज योग को द्वितीय, उसी प्रकार इस विचार को भिन्न रूप में आदि ग्रंथ में भी स्वीकार कर लिया गया है। हठयोग को क्रिया-योग अथवा काया-साधना भी कहा जा सकता है, और इसका निर्दिष्ट स्वरूप आदिग्रंथ में मिलता है, यह स्वरूप राजयोग के चित्तवृत्ति निरोध से मिलता जुलता है। काया-साधना के संपूर्ण हो जाने पर ध्यान-समाधि (संप्रज्ञात समाधि) का सोपान है, जो आदि ग्रंथ में गुरुओं द्वारा नाम सुमिरन है। ... यह ... दशा

[illegible] जाती है, तो साधक और साध्य का सामना [illegible] को प्राप्त हो [illegible]-समाधि (असंप्रज्ञात) में [illegible] हो जाते हैं। फिर [illegible] आदि ग्रंथ के [illegible] का [illegible] समाधि-परंपरागत योगशास्त्र वाली संप्रज्ञात समाधि नहीं। परंपरागत योगशास्त्र में [illegible] समाधि [illegible] कायम रहती है। आदि ग्रंथ की साधनायें [illegible]-समाधि को सहज-समाधि कहा है। यह समाधि गीता के योग से मिलती है। गीता में लिखा है, 'वह योगी जिसने मन को वश कर लिया है, सदा योग में लगा रहकर [illegible] और उस परम निर्वाण को प्राप्त करता है, जो उस ब्रह्मज्योति में समवीन होने से मिलता है।'[६४१] योग [illegible] 'परिमित मात्रा में [illegible] व्यवहार करना' है, 'अधिक खाना' व वा '[illegible] का त्याग योग' नहीं। जागते रहने [illegible] अधिक सोने में योग नहीं।[६४२] योग इन चेष्टाओं को नियमानुसार करना है। योग वस्तुतः [illegible] अनुशासन है। पूर्ण योगी की परिभाषा देते हुए कहा गया है, 'जब चित्त सब [illegible] (भोगादि की) से रहित होकर [illegible] होकर केवल आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, तब वह [illegible] को प्राप्त हुआ योग में [illegible] कहलाता है।'[६४३]

आदि ग्रंथ में योग की व्याख्या

काया साधना:- गुरु नानक देव जी 'काया-साधना' [illegible] विवेचन प्रस्तुत करते हुए [illegible] हैं: काया गढ़ में मन राजा है। इस राजा [illegible] नगरी में [illegible] ज्ञानेन्द्रियां [illegible] हैं और कर्मेन्द्रियां सेवक हैं। [illegible] है। [illegible] अहं के कारण इस [illegible] के भीतर ही [illegible] है, [illegible] में इसका निवास नहीं होता, [illegible] जीवात्मा को हृदय में स्थित परमात्मा [illegible] नहीं होती। [illegible] दुःख का कारण [illegible]

६३१- कल्याण योग विशेषांक पृ०१६४
६३२- भक्ति काव्य में रहस्यवाद पृ०३१७
६३३- हिन्दी साहित्य कोश-[illegible]२०
६३४- हिन्दी साहित्य कोश-[illegible]
६३५- महान कोश- कान्ह सिंह पृ०[illegible]
६३६- आ०ग्रं० पृ० १३६०
६३७- आ०ग्रं० पृ० १३६८
६३८- आ०ग्रं० पृ०२११
६३९- गुरु नानक विशेषांक-भाषा विभाग-पृ०४१
६४०- हिन्दी साहित्य कोश-[illegible]
६४१- गीता ६-१५
६४२- गीता ६।१६-१७
६४३- गीता ६-१८

पाप है, जिससे [illegible] हुआ [illegible] ([illegible]) [illegible] जाता है। यदि [illegible] निवारों का प्रमाण सत्य-संतों के सिद्धान्तों पर आधारित हो जाये और मन साधना प्रकर्ष, सत्य तथा संयम का अनुसरण कर आत्मशुद्धिकरण में लीन हो जाए, तो गुरु के शब्द (गुरु मंत्र-राम नाम) द्वारा [illegible] स्थापित होकर [illegible] (ब्रह्म) के सान्निध्य में स्थापित होता है।[६४४]

गुरु ग्रंथ की नाम-साधना, हठयोग-साधना से सर्वथा भिन्न है। [illegible] योग, भक्ति योग, नामयोग, [illegible] योग आदि की साधनाएं सम्मिलित होकर आदि ग्रंथ में व्यक्त हुई हैं। और साधना का गुरुमति का स्वरूप ऐसा नहीं, जिसे अतिशय सोपानों में [illegible] किया जा सके। वहां तो सोपान एक ही नाम है। गुरु अमरदास जी लिखते हैं: माया मोह अति [illegible] है। इस में स्वयं भगवान् का [illegible], जो [illegible] विचार करके [illegible] करता है। यदि [illegible] मन उस भगवान् में अपने को [illegible] कर [illegible] व्यापार करता है, तो [illegible] में स्थिर हो जाता है और निश्चल स्थान प्राप्त करता है। वह निश्चल स्थान तभी [illegible] सकता है, जब मनुष्य [illegible] नित्य नाम [illegible] करता रहे। कोई विरला गुरुमुख ही इस स्थान को प्राप्त कर सकता है।[६४५]

६४४- [illegible] जोगु [illegible] राजा। [illegible]।
[illegible] लोभु [illegible] पापि [illegible] दा।
[illegible] मोहु [illegible] भगति [illegible]। [illegible] लंजमु [illegible]।
नानक [illegible] गुर [illegible] पाइदा।

मारू म:१- आ०ग्रं० पृ० १०३७

६४५- [illegible] मोहु [illegible] अपारा। [illegible] प्रभु की [illegible]।
[illegible] निरालमु [illegible] निहचलु [illegible] दा।
[illegible] गुरमुखि विरले [illegible] पाइदा।
[illegible] निहचलु [illegible] दा।
[illegible] विधि [illegible]।
नानकु नामु वणजहि रंगि राते गुरमुखि को नामु पाइदा।

आ० ग्रं० [illegible], मारू म:३, पृ०१०६४

गुरु रामदास ने काया-नगर को ही संपूर्ण योग के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है: काया कोट अपार है। इसमें इन्द्रियों के बाजार हैं। जो साधक गुरु को मध्यस्थ बना कर व्यापार करता है। वह हरिनाम की वस्तु (राम) को संभालता (स्मरण करता) है। हरिनाम की निधि में ही सब हीरे-मोती लगे हुए हैं, अतः उसका व्यापार करना चाहिए। जो अपनी काया को छोड़ अन्यत्र हरिनाम धन को खोजते हैं, वे मूर्ख-पशु हैं। वे सुनसान[646] में ऐसे भटकते फिरते हैं, जैसे कस्तूरी की खोज में मृग जंगल में भटकता है।

अष्टांग योग: यम-नियमों का वर्णन तथा उनका आदि ग्रंथ में निर्दिष्ट स्वरूप भक्ति के परंपरागत तत्वों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा चुका है। परन्तु योग के आठों ही अंगों का आदि ग्रंथ में कहीं पृथक् पृथक् वर्णन नहीं किया गया। सब अवस्थाएं एक स्थान पर ला कर संयुक्त की जाती हैं। हठयोग और राजयोग का समन्वयात्मक स्वरूप प्रस्तुत करके गुरु नानक देव जी कहते हैं:- हृदय में राम नाम (शब्द) का निरंतर निवास ही मुद्रा है। संसार और ममता को दूर करना ध्यान है। काम, क्रोध, अहंकार का निवारण कर गुरु के शब्द में ज्ञानगोचर (राम नाम को) समझना बाती है। कंथा तथा झोली यही है कि उस भगवान् को सर्वव्यापक मानो। वही हरि (भवसागर से) पार करता है। वह सत्यनाम स्वरूप प्रभु, गुरु का सच्चा नाम की परख कर लेता है। इसीसे गुरु जान लेता है। सांसारिक विषयों से इन्द्रियों को हटाना खप्पर है। पंच तत्वों (दैवी गुणों) को ग्रहण करना टोपी है। शरीर का पवित्र रखना कुशासन है और मन को वश में करना लंगोट (आगोटा) है। सत्य तथा संतोष का अनुसरण कर संयमित जीवन व्यतीत करो और गुरुमुख हो नाम सुमिरन करना चाहिए।[647] इस प्रकार आदि ग्रंथ के योग में नाम सुमिरन ही मुख्य है।

६४६- काइआ कोटु अपारु है अंदरि हटनाले।
गुरमुखि सउदा जो करे हरि वसतु समाले।
नामु निधानु हरि वणजीऐ हीरे परवाले।
विणु काइआ जि होर थै धनु खोजदे से मूड़ बेताले।
से उझड़ि भरमि भवाईअहि जिउ झाड़ि मिरगु भाले।
म:४, आ०ग्र० पृ० ३०६

६४७- अंदरि सबदु निरंतरि मुद्रा, हउमै ममता दूरि करी।
कामु क्रोधु अहंकारु निवारै गुरु कै सबदि सु समझ परी।
खिंथा झोली भरिपुरी रहिआ नानक तारै एकु हरी।
साचा साहिबु साची नाई परखै गुर की बात खरी।

प्राणायाम: श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम है। यह चार प्रकार का होता है। रेचक : (कोष्ठस्थ वायु को बाहर निकालकर नाड़ी को रोक देना), पूरक :(नासारन्ध्र से बाहरी वायु को अन्दर निकालकर नाड़ी को रोक लेना), कुंभक (जब ऐसा प्रयत्न हो जहां श्वास-प्रश्वास की गति रोक जाये) और केवल कुंभक। इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर निरुद्ध करना प्रत्याहार है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन हैं। अन्तिम तीन ध्यान, धारणा, और समाधि अंतरंग साधन हैं। बहिरंग साधनों में से प्राणायाम को छोड़ अन्य का उल्लेख पीछे उल्लेख हो चुका है। यहां प्राणायाम का आदि ग्रंथ में वर्णित स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं: रेचक, कुंभक, पूरक मन के हठ के कारण किये जाने वाले कर्म हैं। पाखंड धर्म सच्चा प्रेम। यहां सच्चा सच्चा है। गुरु के शब्द में लीन होकर राम-नाम-अमृत-रस प्राप्त हो सकता है।[648]

ध्यान-धारणा-समाधि

सहज समाधि : सहज समाधि की ओर सारा साधना में संकेत किया गया है। गुरु नानक देव सहज समाधि का वर्णन करते हुए कहते हैं: मैं सहज-समाधिस्थ हूं, मैं निरंतर हरि में लिवलीन हूं तथा उसी के गुण गायन करता हूं। गुरु के शब्द में मग्न होकर इस संसार से वैराग्य प्राप्त कर परमपद (हरि) में ध्यान लगाये हुए हूं। गुरु-स्वरूप नाम-अमृत-रस भोता लगा है, और उस परमतत्त्व अविनाशी को अपने अंतर में ही प्राप्त कर लिया है। भगवन् ! जहां आप ने इस मन को लगाया है वहां ही यह स्थिर हो गया है। ऐसी सहज समाधि भक्ति योग में सनक सनंदन आदि ब्रह्म-पुत्र, प्रह्लाद, इन्द्रादि को संतुष्टि प्राप्त हुई थी। मैं तो हरि के नाम के बिना कहीं नहीं रह सकता, मेरे लिये हरि नाम सर्वोत्तम है।[649]

ऊंधउ भाउ भांडु सोधि। काचा करनामु भनु जालोटो।
मनु अंगीठु अंगम्हु है मानि। नानक कुरमु नाम समाधि। म:१, आ०ग्र० ७३६

648- रेचक कुंभक पूरक मन हाठो। पाखंड धरमु प्रीति नहीं हरि सउ
गुर सबद महा रसु पाइआ। म:१ आ०ग्र० पृ० १०४३

649- सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवां हरि गुन गाई।
गुर कै सबदि रता बैरागी निजघरि ताड़ी लाई।
गुर रस नामु भला रसु भोता निज घरि रहु हुआ है।

सहज समाधि के इस स्वरूप को अन्य सन्तों ने भी इसी रूप में स्वीकार किया है:-

१- कहि कबीर मन मन्नी भाज। मानि समाधाँ मा मरम पाज। ३-[६५०]

२- सहज समाधि उपाधि रहत होइ, बड़े भागि लिव लागी।

कहि रविदास उदास दास मति जनम मरन भै भागी। ३- -२१[६५१]

३- सागी गावितगा गाउ पर्व तिनु सभै कभनि मादि।

सभी भी मानि उपजै मार्ग पिवारि रिसाणो।

सभी भ मै सुख सानि सौ तिनु सभै पावणु मादि।

सानि सागाही सदा सदा सानि समाधि लगाइ। सिरि राग म:३[६५२]

४- सो सुख पा प्रभु छुट्टे। गुर पूरे के चरण मनि छुटे।

सहज समाधि लगी लिव अंतरि सो रस सोई जाणै जीउ।।

साम सांक वाहिगु मेरा। मन तन अंतरि सदौ नेरा।

सदा अनिपगु जीवात्मा नामा गो विसरा साधु पराणै जीउ।।

प्रभु मिलणै को मन नोसाराणा। मनि सो सदा सुखु पराणी।।

सानि संगोहि सदा त्रिपतासै सहजु सहजु कै माणै जीउ।।माफ म:५[६५३]

शून्य समाधि : सहज-समाधि का ही दूसरा नाम शून्य-समाधि है। परन्तु यह अवस्था सहज समाधि से आगे का सोपान है। सहज समाधिस्थ साधक अपने साध्य में ही सब लीन होकर 'जिउ जल महि जलु आइ खटाना। तिउ जोती संगि जोति समाना।'[६५४] जिस अवस्था को प्राप्त होता है, तो उसे शून्य-समाधि कहते हैं। यह भगवान् की स्थिति है। यह उसकी स्थिति सदैव ऐसी रहा है। सृष्टि रचना से पूर्व भी था। 'सुंन कला अपरंपरि धारि।'[६५५] आदि ग्रंथ के सन्तों की साधना का परम लक्ष्य यही शून्य समाधि है, जहाँ से फिर जन्म मरण नहीं होता:-

---

जब ही प्रभु जा मो मै राखिआ कैसी गुरमति पाई।

सनक सनादि ब्रह्मादि इंद्रादिक भगति रते बनि आई।

नानक हरि बिनु घरी न जीवां हरि का नामु वडाई। म:१ आ०ग्र०१२३२

[६५०]- आ०ग्र० पृ० ११९५

[६५१]- आ०ग्र० पृ० १२०६

[६५२]- आ०ग्र० पृ० ६८

[६५३]- आ०ग्र० पृ० १०६

[६५४]- आ०ग्र० पृ० २७८

[६५५]- आ०ग्र० पृ० १०३७

१- उदक समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे।
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे।
बहुरि हम काहे आवहिगे। कबीर- ६५६

२- सबदि सोत अकासहि राग गाउके हरि नाचैगा।
ईड़ा पिंगला अउरु सुखमना पउनै बंधि रहाउगो।
चंदु सूरजु दुइ सम करि राखउ ब्रहम जोति मिलि जाउगो।
नामा कै चितु हरि सिउ राता सुंन समाधि समाउगो।नामदेव ६५७
(यहाँ यौगिक क्रियाओं का वर्णन करि सुमिरन से ध्यान कर शून्य समाधिस्थ होने की बात कही है)

३- सुंन समाधि सहजि मनु राता। तजि हउ लोभा एको जाता।
गुर चेले अपना मनु मानिआ। नानक दूजा मेटि समानिआ। ८-३ म:१ ६५८

४- ओति पोति जन हरि रसि राते। सुंन समाधि नाम रस माते।
हरि की भगति मुकति बहु करे। नानक जन संगि केते तरे। म:५ ६५९

कुंडलिनी-योग

गुरमति में योग की कठिन साधनाओं को कोई स्थान नहीं। यद्यपि कुंडलिनि के शब्दों का आदि ग्रंथ में वर्णन मिलता है। परन्तु गुरमति अनुसार भक्ति का नाम कुंडलिनी है। ६६० - कुंडली सुरझी सत संगति। ६६१

सुरति शब्द योग : अनाहत शब्दों में सुरति अर्थात ध्यान को जोड़ने को सुरति-शब्द योग कहते हैं। अभ्यासी की सुरति अर्थात आत्मा क्रमशः अन्तर में चढ़कर छन चक्रों, कमलों और पदार्थों की चैतन्य का और मिन मण्डलों की रचना का अनुभव करती हुई अन्त में सच्चे कुल मालिक का दर्शन प्राप्त करती है। ६६२

आदि ग्रंथ का सुरति शब्द योग गुरु शब्द अथवा राम नाम में जुड़ी हुई सुरति (लिव) का नाम है। ६६३ सुरति शब्द योग का अनुसरण केवल गुरमुख (संत) ही कर सकते हैं, दुर्मति (साकत) तो राम नाम से विमुख भटकते हैं।

६५६- आ०ग्रं० पृ० ११०३
६५७- आ०ग्रं० पृ० ९७३
६५८- आ०ग्रं० पृ० ९०४
६५९- आ०ग्रं० पृ० २९५
६६०- महान कोश- पृ० २५३
६६१- आ०ग्रं० पृ० १४०२
६६२- साहेब जी महाराज, योगांक पृ०८० से भक्ति में राधास्वामी मत पृ०३१९ पर
६६३- भाई कान्ह सिंह-महान कोश-११९

साकत नर सबद सुरति किउं पाईऐ।
सबद सुरति बिन आईऐ जाईऐ। म:१ [664]

गुरु अर्जुन देव जी सुरति शब्द लय का वर्णन करते हुए कहते हैं, मेरी तृष्णा अग्नि प्रशांत हो गई है और अंतरात्मा शीतल हो गया है। पूर्ण गुरु से सब भगवान् से टूटा प्रीति गांठ ली है। अब मेरी सुरति निरंतर शब्द में स्थित भगवान् से जुड़ गई है। अब मैं ने हरि-नाम अमृत-रस को सागर में भर कर पिया है। अब मेरा जन्म मरण छूट गया है, और मैं अविनाशी में स्थित होकर अविनाशी हो गया हूं और मेरा भ्रम दूर हो गया है:-

त्रिसना बुझी अंतरु ठंढा। गुरि पूरै ते टूटा गंढा।
सुरति सबदु रिद अंतरि जागी अमिउ झोलि झोलि पीजा है।
मरै नाही सद सद ही जीवै। अमरु भइआ अबिनासी थीवै।
ना को आवै न को जावै गुरि दूरि कीआ भरमीजा है।म:५ [665]

आदि ग्रंथ में इड़ा-पिंगला-सुषमणा का संयोग, त्रिवेणी संगम आदि योगपरक शब्द, सहज समाधि, शून्य समाधि तथा सुरति शब्द योग के पर्यायवाची शब्द हैं। इनमें हठयोग की साधना का कोई वर्णन नहीं:-

कबीर गंग जमुन के अंतरे, सहज सुंन के घाट।
तहां कबीरै मटु कीआ खोजत मुनि जन बाट।।(१५२)।। [666]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आदिग्रंथ का योग सुरति-शब्द-योग अथवा नाम-योग है, जिसकी साधना सहजसमाधि में स्थित होकर शून्य-समाधि को प्राप्त होती है। शून्य-समाधि में स्थित होकर साधक भगवान् से तद्रूप हो जाता है, जन्म मरण से छूट जाता है। योग की यह साधना गृहस्थ के सदाचार-पूर्ण, संयत तथा सरल-जीवन की सुगम-साधना है। इसमें सन्यास अथवा भ्रमण को कोई स्थान नहीं है।

योग भगवे कपड़ों तथा योगी के बाह्य उपकरणों में नहीं, हृदय शुद्धि तथा शुद्ध-आचरण में है। योग में बाह्याडंबर का सर्वथा निषेध है।

गुरमति साधना-संक्षिप्त सार

गुरमति साधना चित्त-शुद्धि तथा आचार-शुद्धि का प्रतिपादन करती हुई गुरु शब्द की सत्संगति में निरंतर साधना का निर्देश करती है। इसमें भावदशारण में

664- आ०ग्रं० पृ० १०३१ 665- आ०ग्रं० पृ० १०७४

666- आ०ग्रं० पृ० १३७३

विनम्र भाव से आत्म-समर्पण करके शुभ कर्मों के अनुष्ठान पर बल दिया गया है। मनुष्य के शुभ-कर्म ही स्वर्ग हैं, और दुष्कर्म ही नरक। इस साधना में किसी कल्पित स्वर्ग की इच्छा अथवा नरक के भय को कोई स्थान नहीं। पुस्तक-ज्ञान, पाठ-पूजा, तीर्थ-स्नान, हज-नमाज़-रोज़ा की अपेक्षा हृदय-दर्पण को साफ़ और पवित्र कर शुभ-कर्म करते हुए उस हरि के हृदय मन्दिर में दर्शन करना ही सच्ची भक्ति है। नाम-सुमरिन का विशेष महत्व होने के कारण इसे नाम-मार्ग भी कहा जाता है। इस साधना में गुरु-कृपा, भगवत्कृपा को विशेष महत्त्व है। गुरु तथा संगत की सेवा को विशेष स्थान है। इसे प्राणों से [illegible] सच्ची भक्ति है।

प्राचीन भारतीय परंपरा में भक्ति मार्ग को खांडे-धार मार्ग कहा गया है।[667] इस विचार को बाबा फरीद से लेकर समस्त परवर्ती सन्तों ने दुहराया है:-

बाबा फरीद: बाट हमारी खरी उडीणी। खनिअहु तिखी बहुतु पिईणी।[668]
म:३ : खनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा।[669]
म: : हरि मारगि पग धारीजै। जिसु डरीऐ कारणि न कीजै।[670]
म:५ : पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि।[671]

नामदेव, कबीर आदि संतों को तत्कालीन शासकों ने यातनाएं दीं, परन्तु वे अपने धर्म में सुदृढ़ रहे। उनके सम्मुख प्रह्लाद जैसे भक्तों का आदर्श था। गुरु अर्जुन, गुरु तेग बहादुर तथा उनके सिक्खों के बलिदान इस खांडेदार मार्ग के पारम्परिक साधकों की साधना का परिणाम था। इसी साधना की पृष्ठभूमि में गीता का निम्नांकित उपदेश उनके इस मार्ग को प्रशस्त करता रहा:-

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। गीता[672]

६६६- आ०ग्रं० पृ० १३७३

६६७- क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति। कठो०१-३-१४
(बुद्धिमान इस मार्ग को कृपाण की धारा जैसा तेज़ तथा दुर्गम बताते हैं)

६६८- आ०ग्रं० पृ० ७९४ ६६९- आ०ग्रं०पृ० ९१८

६७०- आ०ग्रं० पृ० १४१२ ६७१- आ०ग्रं० पृ०११०२

६७२- गीता - ३-३५

५- श्री गुरु ग्रंथ साहिब और समाज:

१- इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।
पापा बाझहु होवै नाही, मुइआ साथि न जाई। आसा म:१ गु०ग्र०पृ० ४१७

२- निरधन आदरु कोई न देइ। गु०ग्र०पृ० ११५६

३- जिउ विभचारी बिगानि बुझाने, साकत मैं तरणा ॥
जा विभचारी पी अंधारी का साकत स्वाउ मरणा ॥ म:१ गु०ग्र०पृ० ९०२

आदि ग्रंथ और समाज

आदि ग्रंथ एक ऐसी धार्मिक पुस्तक का प्रमाण होता है, और इसके रचनाओं द्वारा समाज का नैतिक पालन, भक्ति तथा परिस्थितियां पुरानी धार्मिक दृष्टिकोण है जो लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि धार्मिकता आदिग्रंथ का महत्वपूर्ण विषय है, परन्तु इसका गुरु स्थानों में प्रतिष्ठापन, केवल इसके सम्पूर्ण महत्वपूर्ण [illegible] होने से इसी का नहीं हुआ था, बल्कि आदि ग्रंथ समाज रूप में गुरु रूप है जिस में जीवन के समस्त वस्तुओं को देखा। विशेषता है कि यह महान ग्रंथ किसी विशेष सांप्रदायिकता का और न ही [illegible] सम्पूर्णता, सुखशान्ति एवं सम्मान पूर्ण जीवन यापन करने के लिये मानव का मार्ग पथ-प्रदर्शन करता है।

आदि ग्रंथ में पंजाब से बाहिर के सन्तों की वाणी भी संगृहीत है। इस वाणी को संकलित करने वाले गुरु नानक देव जी थे। गुरु नानक देव जी ने पंजाब में जन्म लिया। परन्तु १५०७ से १५२१ ई० तक उन्होंने जो स्वदेश तथा विदेशों की यात्रायें की इन से स्पष्ट है कि उनका कार्य क्षेत्र केवल पंजाब तक सीमित नहीं था। वे किसी धार्मिक जिज्ञासा के रूप में पंजाब से बाहिर नहीं निकले थे। उन्होंने तत्कालीन मानव की सामाजिक अवस्था, जो मानवोचित जीवन मूल्यों का परित्याग कर [illegible], रोगी एवं पतनोन्मुख थी, को नाड़ी को एक योग्य एवं [illegible] सुखदाता-वैद्य की भांति पहचाना और उनके उपचारार्थ घर से निकल पड़े। अपनी उदासियों में उन्होंने (जो अनुमानतः १५०७ से १५२१ तक का समय है) जिन स्थानों की यात्रा की वहां से उन्होंने आदि ग्रंथ के पंजाबेतर भक्तों की वाणी को इकट्ठा किया। प्रो० साहिब सिंह लिखते हैं कि गोरखमता (अब नानकमता) बनारस, पटना, गया, बंगाल, जगन्नाथ, पंढरपुर (सितारा), राजस्थान, मथुरा-वृन्दावन, कुरु-क्षेत्र आदि स्थानों की यात्रा उन्होंने अपनी उदासियों में की। अपनी उदासियों में वे [illegible] काशी और पवित्र नगरों में गये। हरिद्वार में, गोरख पंथी योगियों से मिले तथा कबीर और रविदास से भेंट की। जयदेव तथा नामदेव के स्थानों पर जाकर उनकी रचनायें प्राप्त कीं। जैन मुनियों, वैष्णवों, [illegible], आदि से मिले। [illegible] से भेंट हुई। वृन्दावन की रास लीलाओं को देखा, जिस का वर्णन [illegible] में उल्लेख है।[1] इस यात्रा में गुरु जी ने अपनी वाणी रचना के लिये

१- [illegible] - प्रो० साहिब सिंह पृ० ५१-६१
(गावनि गोपीआ गावनि कान्ह। गावनि सीता राज राम। म०१ पृ० ४६४, आ०ग्रं०)।

[illegible] ध्युगीन [illegible] प्रभु [illegible] की [illegible] में [illegible] पृष्ठभूमि [illegible] [illegible] का
रचनाएँ [illegible], जिनसे वे प्रभावित हुए।

गुरु [illegible] बाणी के विषय में लिखी गई व्याख्याओं में आदि गुरु
[illegible] की उपलब्धियों का [illegible] वर्णन किया है। [illegible] लिखों में गुरु नानक
ने [illegible] कि संसार की स्थिति कैसी है और [illegible] यहाँ प्रमाण [illegible] गुरु
[illegible] कहते हैं:-

[illegible] कलिआ [illegible] बंधा [illegible] संसारा।
[illegible] करीतिआ, [illegible] नारायण [illegible] संसारा।[2]

गुरु नानक ने जिस [illegible], उनके प्रतिपादकों की रचनाएँ,
[illegible] रचना के [illegible] उन्होंने अपने अनुयायियों के लिये [illegible], जिनसे
१६०४ ई० में गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रंथ का संपादन किया। अत: मनुष्य मात्र
के [illegible] संतों का [illegible] आदि ग्रंथ में सुरक्षित है, [illegible]
[illegible] 'सर्वधर्मसमभाव' है।

गुरु ग्रंथ की रचना लोक-[illegible] के [illegible] एवं [illegible] को
प्रस्तुत करता है। इसमें [illegible]-लोक-दुःख-श्रेणियों की जीवन व्यवस्था
तथा उनकी [illegible] श्रेणीगत विषमताओं की [illegible] का विशेष रूप से
[illegible] किया गया है। [illegible] मानव-विरोधी [illegible] पर [illegible]
[illegible] हैं। [illegible] लोक-[illegible] की विवेचना में मानव के प्रत्येक पहलू पर आदि
ग्रंथ में प्रकाश डाला गया है। इसी कारण आदि ग्रंथ के [illegible] तत्व के [illegible]
को [illegible] है। इन [illegible] की विवेचना के [illegible] के लिये हम
सामाजिक जीवन के आदि ग्रंथ में वर्णित तथ्यों को निम्नांकित रूपों में [illegible]
करते हैं:-

(१) राजनीतिक स्थिति: विदेशी आक्रमण, आक्रमणकारियों की [illegible],
अत्याचार, [illegible], [illegible] आदि ग्रंथ की प्रतिक्रिया

(२) धार्मिक स्थिति: सांप्रदायिक स्थिति, वर्ण व्यवस्था-परस्पर घृणा,
[illegible], गुरु ग्रंथ का [illegible]।

(३) पारिवारिक व्यवस्था: [illegible] के [illegible] संस्कार, [illegible], पति-पत्नी [illegible]-
[illegible] विवाह-गुरु ग्रंथ में पारिवारिक व्यवस्था का रूप।

२- [illegible] [illegible]- [illegible] १-३६

(४) नैतिक स्थिति: नैतिक पतन, सत्य का अभाव, झूठ का बोल बाला, अन्याय रिश्वतखोरी, चोरी-जारी व्यभिचार लघुनता, आदि ग्रंथ का नैतिक उपदेश।

(५) आर्थिक व्यवस्था: वर्ग समाज, धनी-निर्धन श्रेणियां, निर्धन का शोषण, आदि ग्रंथ में श्रमिक तथा निर्धन श्रेणी की वकालत, श्रम का सत्कार।

(६) व्यवहारिक स्थिति: हिन्दू मुसलमानों का नित्य प्रति का जीवन- दो संस्कृतियों का आदान-आदान प्रदान- वर्णाश्रम पर आधारित जीवन- लोगों के व्यवसाय, मनोरंजन के साधन- खेल तमाशे- खानपान- व्यवहार-जीवन का आदि ग्रंथ द्वारा प्रतिपादित चित्र।

(७) सांस्कृतिक स्थिति: परंपरागत सांस्कृतिक विश्वासों तथा रूढ़ियों का आदि ग्रंथ में विवरण, उनका विश्लेषण, तथा आदि ग्रंथ में उनका स्वरूप।

(८) ऐतिहासिक विवरण: पौराणिक विवरण- सम-सामयिक इतिहास।

(९) सुधार कार्य और उपदेश- मानव समाज की नींव- आर्थिक संविधान का विरोध, व्यक्तिगत कर्तव्यों की व्याख्या, तुच्छता उच्चता की कसौटी-व्यवहारिक जीवन।

(१०) भूगोलिक विवरण- धरती-आकाश- खगोल- अर्क- अंतरिक्ष- सूर्य- चन्द्रमा- अग्नि, वायु आदि की स्थिति।

(११) कलात्मक स्थिति: भिन्न भिन्न कलाओं के प्रति लोगों का अनुराग, कविता, नृत्य, संगीत, चित्रकारी, वस्तुकला। कसीदाकारी, व्याकरण- शास्त्र ज्ञान का अनुराग- आदि ग्रंथ का उनके प्रति मत।

कहना न होगा कि उपर्युक्त विवरण के आधार पर आदि ग्रंथ की सामाजिक स्थिति के विषय में स्वतंत्र रूप से विचार विमर्श प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु यहां हम अपने प्रबन्ध की सीमा के अनुकूल समाज के उन मूलभूत तत्वों का आदि ग्रंथ में जो विवेचन है, उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

१- राजनीतिक स्थिति :

आदि ग्रंथ का संपादन १६०४ ई० में हुआ। इस के संपादन के लिये

गुरु नानक देव जी ने १५०७ ई० से ही सामग्री जुटानी शुरू की। नामदेव, कबीर रैदास आदि भक्तों को तत्कालीन शासकों द्वारा यातनाएं दी गई, उससे उस समय की हिन्दू जाति पर किए जाने वाले अत्याचारों का पता चलता है। 'पंजाब देश में मुसलमानों की तलवार का पानी राज्यों के अनेक सिंहासनों को डुबो चुका था। खिलजी वंश के अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत को अपने आधिपत्य में ले लिया था। दक्षिण भारत भी उसके आक्रमण से नहीं बचा था। जिन हिन्दू राजाओं में आत्म सम्मान और शक्ति की मात्रा शेष थी, वे उसकी रक्षा का अनवरत परिश्रम कर रहे थे। ऐसे अनिश्चित काल में हिन्दू जनता के हृदय में जिस भय और आतंक ने स्थान लिया हुआ था वह उनके धर्म को जर्जरित कर रहा था। धर्म रक्षा की शक्ति हिन्दुओं के पास रह ही नहीं गई थी।[3]

<u>बाबर का आक्रमण</u> : 'उत्तरी भारत में अभी विदेशी शासकों का शासन पूर्ण रूप से सुदृढ़ नहीं हो पाया था। १६वीं शताब्दी के अन्त में राणा संग्राम सिंह ने एक बार फिर भारत में हिन्दू शासन स्थापित करने के लिये लगभग संपूर्ण राजपूतों का संगठन कर, लोदी वंश की डांवाडोल स्थिति में दिल्ली पर अधिकार कर मुसलमानों की राजनैतिक सत्ता को समाप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु आगरा के निकट बाबर और राणा संग्राम सिंह (युद्ध में राणा की पराजय हुई और देश की राजनैतिक सत्ता मुगलों के हाथ में चली गई। पानीपत में इब्राहीम लोदी की पराजय के अनंतर और आगरा में राणा सांगा के हारने के पश्चात् देश की राजनैतिक स्थिति एकदम बदल गई, और मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई जो लगभग १८५० ई० तक जारी रहा।"[4]

बाबर के आक्रमण का समय वह समय था, जब गुरु नानक देव जी से पूर्व के आदि ग्रंथ के लग भग सब रचयिता जीवन के रंग मंच से प्रस्थान कर चुके थे। गुरु नानक देव भी अपनी उदासियां (यात्राएं) समाप्त कर करतारपुर में रह रहे थे। मुगलों द्वारा भारतीय जनता पर जो अत्याचार किए गए, उनके प्रति गुरु नानक की क्रांतिकारी दृष्टि किस प्रकार नवनोन्मीलन करती। बाबर-वाणी की रचना, बाबर के बर्बर अत्याचारों एवं आतंक के चित्र सारे भारतीय-गीत-काव्य में अनुपम स्थान रखती है। दुःख पीड़ा के वर्णन ने इस पद की काव्य-क्षमता को

३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० १६१

४- हिन्दी साहित्य की परंपरा- पूर्वमध्य युग- पृ० ६४

विरोध भी किया है।[5]

खुरासान खसमाना कीआ, हिंदुसतान डराइआ,

आपै दोसु न देई करता, जमु करि मुगलु चड़ाइआ।

एती मार पई करलाणे, तैं की दरदु न आइआ।[6]

बाबर की सेना को पापों की बरात कहते हुए गुरु जी कहते हैं, कि काबुल से पाप की बरात को लेकर बाबर ने हिन्दुस्तान पर धावा बोला है तथा जोरावरी पूर्ण ढंग से हिन्दुस्तान रूपी कन्या का दान मांगता है। मानवीय ... धर्म और ... का ... प्रधान ... रहा है। विवाह संस्कार को ... पूर्ण किया करते थे, परन्तु ... विधिपूर्ण विवाह के स्थान पर शैतानी से विवाह करते थे। यह अत्याचार हिन्दुओं तथा मुसलमानों की कन्याओं पर समान रूप से होते थे। और इस अवस्था में गुरु जी ने भी विवाह ... उदाहरण इस प्रकार है:-[7]

मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो।

जाति सनाती होरि हिदवाणीआ एहि भी लेखै लाइ वे लालो।

खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ वे लालो।

बाबर की सेना जिधर से गुजर रही थी, मानों अकाल का दृश्य-[8] विनाश-पूर्ण ... ... लाशों के ढेर थे।

साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी विचि आखु मसोला।।

प्रो० सुरिन्दर सिंह कोहली लिखते हैं,[9] "गुरु जी ने ... बाबर के अत्याचारों की ओर ... ... दशा तथा ... ... के कारण उन्होंने साधारण जनता को दुःख ... ... अयोग्य ... शासक ... घोषित किया:-

---

5- श्री गुरु ग्रंथ साहब जी दा साहित्यक इतिहास- डा० तारन सिंह पृ० २५४

6- आ०ग्रं० पृ० ३६०   7- आ०ग्रं० पृ० ७२२

8- वही

9- आदि ग्रंथ और समाज चिंतन- पंजाबी दुनिया- भाषा विभाग, पटियाला, जुलाई, १९६९- पृ० ११०

सकता सीह मारे पै कौ, खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाड़ि विगोए कुतीं, मुइआ सार न काई।[10]

गुरु नानक के समय भारतीय राजा-वर्ग अत्यन्त निर्बल था तथा मुगल आक्रमणकारियों के सम्मुख खड़े होने की सत्ता उनमें बिल्कुल नहीं थी। यही कारण है कि गुरु जी ने आक्रमणकारियों तथा उनके सामने आधीन दिखाई देने वाले राजा वर्ग- दोनों की विलासपूर्ण रुचियों की भर्त्सना की।[11]

बाबर के आक्रमण के समय एमनाबाद की जो दुर्दशा हुई, उसका वर्णन आसा राग की चार अष्टपदियों में मिलता है। यह अष्टपदियां न केवल अपने विषय के कारण भारतीय भक्ति काव्य की अनुपम निधि हैं, वरन् अपने काव्य-स्तर की मार्मिकता तथा ऐतिहासिक प्रामाणिकता के कारण एक निपुण नागरिक एवं व्यावहारिक जीवन के तत्व-वेत्ता के चरित्र का अनुपम चित्र है। गुरु नानक साहब स्वयं इस दुर्दशा के केवल दर्शक ही नहीं थे अपितु शिकार भी थे। राजनीतिक स्थिति का सारांश तथा यह मार्मिक चित्र एक दर्द-दीवाने देश-भक्त के हृदय का उद्गार है:-[12]

जिन सिर सोहनि पटीआ, मांगी पाइ संधूरु।
से सिर काती मुंनीअनि गल विचि आवै धूड़ि।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि।
जदहु सीआ वी-आहीआ लाड़े सोहनि पासि।
हीडोली चड़ि आईआ, दंद खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारीऐ, झले झिमकनि पासि।
इकु लखु लहनि बहिठीआ, लखु लहनि खड़ीआ।
गरी छुहारे खांदीआ, माणनि सेजड़ीआ।
तिन गलि सिलका पाईआ तुटनि मोतसरीआ।
धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिनी रखे रंगु लाइ।
दूतां नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।[13]

१०- आ०ग्र०पृ० ३६०

११- पंजाबी दुनिया- जुलाई १९६९ पृ०१११

१२- गुरु ग्रंथ साहब और दा साहित्यिक इतिहास- २५

१३- आ०ग्र०पृ० ४१७

इसका उल्लेख [illegible] किया [illegible], यह [illegible] :-

[illegible] पर धर मंडप [illegible], [illegible]।
[illegible] देव [illegible], [illegible] न [illegible]।
[illegible] पान [illegible] आ [illegible]।
[illegible] आरणि [illegible], [illegible] पाणि [illegible] आई।[14]

[illegible] में, [illegible] राजनीतिक स्थिति [illegible] स्पष्ट है, कि [illegible] विदेशी आक्रमणकारियों [illegible] देवता [illegible] के [illegible] में [illegible] क्रिया के कारण निर्बल [illegible] ने [illegible] आक्रमण [illegible] अवसर दिया। [illegible] ने [illegible] स्थिति [illegible] किया था, परन्तु [illegible] में [illegible] मार्ग [illegible] में [illegible] पूर्ण [illegible] कर रहे थे। [illegible] में [illegible] भारत [illegible] शत्रु [illegible], [illegible] लूटने [illegible] आक्रमणकारियों ने उनको [illegible] रनिवासों [illegible] खींचकर [illegible] किया और उनका धन-दौलत [illegible] लूटा।

[illegible] आरणि [illegible], [illegible] पाणि [illegible]।
[illegible], [illegible] न [illegible]।
[illegible] मन्दिर [illegible]।[15]

उस समय [illegible] राजा ([illegible] वंश) [illegible] स्थिति [illegible] था, [illegible] मन्दिर के [illegible] पुजारियों [illegible] था। [illegible] के आक्रमण [illegible], [illegible] ने [illegible] तोड़ने [illegible] निष्फल प्रयत्न किया, परन्तु [illegible] के देखते देखते [illegible] और राजकुमारों को [illegible] में [illegible] गया। [illegible] के [illegible] आक्रमणकारियों [illegible], [illegible] दिया गया :-

---

14- [illegible] पृ० [illegible]

15- [illegible] पृ० [illegible]

जोहा [illegible] बीर [illegible] रवि [illegible] आ माह दुनिआ [illegible] ता।
[illegible] मुगल [illegible] मंदर, [illegible] कुइर [illegible] था।
कोई मुगल न होआ अंधा, किनै न परचा ला[illegible]।[16]

मुगल राज्य और सिख गुरु:

आदि ग्रंथ में गुरु नानक ने मुगल-पठानों के युद्ध का करुणापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। गुरु नानक कहते हैं: मुगल-पठानों की लड़ाई में बड़ी तेग चली। मुगलों ने तोपें दागीं, पठानों ने हाथियों को कुंद एवं मद-मस्त करके छोड़ा। हिन्दू, तुर्क, भट्टी (राजपूत) तथा ठाकुरों की स्त्रियाँ, [illegible] बुर्के से ढोलकर न जा[illegible], क्योंकि [illegible] सिर से पैरों तक [illegible] विलाप कर रही थीं, और [illegible] मरकर मसान पहुंची थीं।[17]

मुगलों ने [illegible] भारत [illegible] पर [illegible] शासन किया, परन्तु मुगल शासन के आरम्भ में युद्ध होने के बाद गुरु अर्जुन देव का बलिदान, गुरु तेग बहादुर की कुर्बानी तथा गुरु गोविन्द सिंह के मासूम बच्चों का कत्ल, मुगल राज्य के अत्याचार का [illegible] था। सम्राट नूर-उद्-दीन मुहम्मद जहांगीर (१५६९-१६२७) जिसकी आज्ञा से गुरु अर्जुन देव का बलिदान हुआ, स्वयं अपनी आत्मकथा तुजुके जहांगीरी में गुरु [illegible] के १६ दिन पश्चात् १६ जून, १६०६ को अपने दृष्टिकोण के अनुसार इस घटना का ब्योरा देते हैं:-

गोविंदवाल में जो व्यास (बियास) के किनारे है, [illegible] के वेष में अर्जुन नाम का एक हिन्दू था, जिसने बहुत से भोले-भाले हिन्दुओं, बल्कि बेवकूफ और मूर्ख मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाकर शामिल कर अपना [illegible] और [illegible] का ढोल [illegible] ऊंचा बजाता हुआ था। (वाले) गुरु [illegible] (ख्याति प्राप्त [illegible]) है [illegible] गुरु कहते हैं। चारों ओर से [illegible] तथा [illegible] उनके पास आकर उन पर पूरा पूरा विश्वास प्रकट करते थे। तीन चार पुश्तों से उन्होंने यह दुकान गर्म की। [illegible] मेरे दिल में यह विचार आता था कि [illegible] कूड़े के व्यापार [illegible] बंद करना चाहिए या उस (गुरु) को मुसलमान बना लेना चाहिए। यहां तक कि इन दिनों में [illegible] खुसरो ने इधर

१६- आ० ग्रं० पृ० ४१७-१८

१७- आ०ग्रं० पृ० ४१८

से इन्कार किया। [illegible] जहाँगीर बादशाह (मुग़ल) ने [illegible] किया [illegible] (गुरु) [illegible] रहे। [illegible] किया और [illegible] विपदाओं पर विचार-विमर्श किया। [illegible] (गुरुओं) [illegible] हर [illegible], [illegible] हैं, और [illegible] करते हैं।

[illegible] बात [illegible] [illegible] के [illegible] भी [illegible] जनता [illegible], मैं ने [illegible] (गुरु अर्जुन) को मेरे सम्मुख उपस्थित किया जाये; और मैं ने [illegible] और [illegible] को [illegible] दान कर दिया। [illegible] [illegible] कि उसे [illegible] किया जाए, [illegible], [illegible] कर [illegible] दिया जाए।[18]

गुरु अर्जुन [illegible] गुरु [illegible] रचनाओं [illegible] निर्भीक [illegible] अनुसार [illegible] उन्हों ने [illegible] के [illegible] कभी सिर न झुकाया। गुरु अर्जुन देव [illegible] को [illegible] किया और उन्हों ने [illegible] [illegible] नहीं दी। आदि ग्रंथ में [illegible] सिद्धान्त को उन्हों ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया:-

[illegible] गु [illegible], [illegible] जाता।
[illegible] [illegible] ऐसी [illegible], [illegible] हमारे भाग।[19]

गुरु ग्रंथ [illegible] ने [illegible] सिद्धान्त का प्रतिपादन किया [illegible] ग्रंथ के [illegible] गुरु अर्जुन का बलिदान, उसकी [illegible] जीवन में [illegible] था। गुरु [illegible] (अनंद) राग में लिखा है:-

[illegible] लिखी [illegible] भाग [illegible]।[20]

[illegible] बाबा फरीद [illegible] राग में रचना की प्रतिध्वनि है:-

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।[21]

गुरु नानक देव जी ने [illegible] सिद्धान्त को [illegible] निर्भीक शब्दों में प्रस्तुत किया है:-

---

१८- तुजके जहाँगीरी पृ ३५ पर से गुरु अर्जुन [illegible] पृ० ६०-६१ पर उद्धृत (अनुवाद)

१९- आ०ग्र० [illegible] पृ० ११०२

२०- आ०ग्र० पृ० ६९८

२१- आ०ग्र० पृ० ९६४

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।

सिरु धरि तली गली मेरी आउ।

इतु मारगि पैरु धरीजै।

सिरु दीजै काणि न कीजै।[22]

उन्होंने भी मरना शूरवीरों का परंपरागत अधिकार माना है, क्योंकि मरने से ही शूरवीरों को सम्मान प्राप्त होता है:-

मरणु मुणसा सूरिआ हकु है, जो होइ मरनि परवाणो।

सूरे सेई आगै आखीअहि, दरगह पावहि साची माणो।[23]

गुरु नानक जी का निर्भयता विचार भी भक्तों व संतों की उनकी रचनाओं से प्राप्त हुआ था:-

(१) कबीर जिसु मरने ते जगु डरै, मेरै मनि आनंदु।

मरने ही ते पाईऐ, पूरनु परमानंदु ।।[24]

कबीर जी ने शूरवीर का वर्णन इस प्रकार किया है:-

सूरा सो पहिचानीऐ, जु लरै दीन के हेत।

पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहू न छाडै खेतु।।[25]

भक्ति का यह मार्ग आदि ग्रंथ के रचयिताओं को गीता तथा उपनिषदों से प्राप्त हुआ था। अपने धर्म में मरना श्रेयस्कर है, ऐसा गीता का सन्देश है।

श्रेयान स्वधर्मो विगुण: परधर्मात स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ।।[26]

जिस मार्ग के अनुयायी गुरु ग्रंथ के रचयिता हैं, कठोपनिषद् में उसे बुद्धिमान् ब्राह्मण का मार्ग कहा है और दुर्गम बताते हैं:-

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।[27]

२२- आ०ग्र० पृ० १४१२

२३- आ०ग्र० पृ० ५८०

२४- आ० ग्र० पृ० १३६५

२५- आ०ग्र० पृ० ११०५

२६- गीता- ३-३५

२७- कठोपनिषद्-१-३-१४

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का सामना गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने भी निर्भान्त रूप में किया। गुरु तेग बहादुर ने भी आदि ग्रंथ में निर्भान्ता को इन शब्दों में प्रस्तुत किया:-

भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आन।[28]

वे न किसी से डरे और न ===== किसी को डराया। अपने पिता के बलिदान का वर्णन बचित्र नाटक में गुरु गोविंद सिंह ने इन शब्दों में किया:-

धरम हेत साका जिनि कीआ।
सीसु दीआ पर सिररु न दीआ।[29]

राजनीतिक स्थिति द्वारा प्रस्तुत की गई परिस्थितियों का जो समाधान आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने प्रस्तुत किया, वह भारतीय इतिहास में केवल अद्वितीय ही नहीं, वरन् एक ऐतिहासिक युग का नवनिर्माण है, जिसने हिन्दू जाति के गौरव, सम्मान तथा धर्म की रक्षा की।

२- धार्मिक स्थिति

भक्तिकाल में हिन्दी प्रदेश में पांच प्रमुख धाराएं चल रही थीं।[30]

(क) अनेक उपधाराओं के रूप में विकसित भक्ति प्रधान वैष्णव धारा।

(ख) निर्गुण मत की ज्ञानाश्रयी धारा।

(ग) हठयोग की धारा।

(घ) सूफी प्रेम मार्गी धारा।

(ङ) इस्लाम धर्म की कट्टरवादी धारा।

(क) वैष्णव धर्म : डा० मुन्शी राम लिखते हैं, वैष्णव भक्ति का प्रथम युग प्रभु के प्रति ज्ञान-ध्यान-परायणता का युग है, जिसे निवृत्ति प्रधान युग भी कहा जा सकता है। राजा वसु उपरिचर के साथ वैष्णव भक्ति का दूसरा युग प्रारंभ होता है, जिसमें यज्ञिक यज्ञों की प्रधानता है। राजा उपरिचर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है, जो प्रवृत्ति-मूलक है, और अपनी तपश्चर्या द्वारा

२८- आ०ग्र० पृ० १४२८

२९- बचित्र नाटक- गुरु तेग बहादुर का बलिदान। ह० ८४

३०- हिन्दी साहित्य की परंपरा- ६७

भगवान् के दर्शन करता है, जो निवृत्तिमूलक है। निवृत्ति परायणता में मानसजप के साथ इन्द्रिय-शून्यता, निराहारिता तथा अविचल एवं अनन्य भक्ति की स्थिति आती है। राजा उपरिचर के पश्चात् यह भक्तियोग लुप्त हो गया। इस लुप्त हुए भक्ति योग का द्वापर के अन्त में श्री कृष्ण ने उद्धार किया। उन्हीं के साथ वैष्णवभक्ति के तीसरे युग का आरंभ होता है। श्री कृष्ण ने स्वायंभु युग के भगवद् भक्त तपस्या नारायण-ऋषि में उस परम ज्योतिर्मय की ज्योति का दर्शन किया और उन्हें परम-पुरुष के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। अवतारवाद की शृंखला यहीं से आरंभ हुई। वैष्णव भक्ति के तृतीय युग में अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। ब्राह्मणों ने भगवान् धर्म के अभिनव प्रतिष्ठाता श्री कृष्ण को दिव्य विभूति के रूप में ईश्वर का अवतार स्वीकार कर लिया। अतः श्री कृष्ण की मान्यता उनके जीवन काल में ही थी, उसके पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ती गई और ब्राह्मण-भागवत-सम्मिलन के होते ही वह पूर्ण रूप में चमक उठी। इसे हम वैष्णव भक्ति का चतुर्थ युग कह सकते हैं। पांच रात्र संहिताएं इसी युग की देन हैं। भक्ति के इस युग के साथ मूर्तिपूजा का आरंभ होता है। वैष्णव भक्ति का पंचम युग श्री कृष्ण लीला-गान का युग है।[31] आचार्य वल्लभ का पुष्टि मार्ग इन्हीं लीलाओं से विशेष रूप से पुष्ट हुआ है। यवन शासन की दुर्दान्त पीड़ाओं से मर्माहित आर्य जाति को पंचम युग की इस भक्ति ने भगवद् लीलाओं का मंजुल लेप लगा कर अपूर्व आश्वासन दिया।[32]

परन्तु मुसलमानों के आगमन तक देश में चल रहे धार्मिक आंदोलन दो भागों में बंट चुके थे। एक वर्ग तो नीची जातियों का था और दूसरा ऊंची जातियों का। प्रथम वर्ग पर वज्रयानी सिद्धों और नाथ पंथियों का विशेष प्रभाव था, और उन्हीं ने इस वर्ग को एक विशिष्ट आन्दोलन का रूप प्रदान किया। इस वर्ग पर मुसलमानी एकेश्वरवाद का भी प्रभाव था। हिन्दी साहित्य के सन्तों का साहित्य इसी धारा का प्रतिनिधित्व करता है। ऊंची जातियों में वैष्णव धर्म का आन्दोलन चला, जो कि प्राचीन मर्यादाओं के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति से पूर्ण था। परन्तु मुगल काल में जनता में विलास की भावना बढ़ गई।

३१- भक्ति का विकास- ३७२-३७८

३२- वही पृ० ३६२

[illegible] भावना [illegible] शृंगार रस की लीलाओं में आनंद लेते थे। फलस्वरूप मधुर भाव उपासना पद्धति का दुरुपयोग प्रारम्भ हुआ।[33] उपासना के इस विकृत रूप का वर्णन डा० [illegible] मोहन चंद्र [illegible] ने अपने ग्रन्थों में किया है, हिन्दुओं की दशा [illegible] धार्मिक घृणा [illegible] थी। साधारणतया [illegible] विश्वास [illegible] बात का नाम था, कि विशेष पंथ से दीक्षा [illegible] पवित्रता, तीर्थ-स्नान, [illegible] जीवन तथा मृत्यु के संस्कारों का [illegible]करण। वेद-शास्त्र [illegible] पंडितों की [illegible] थी। [illegible] हिन्दू धर्म के उच्च-[illegible] भाव विलासिता के आवरण के नीचे दब चुके थे। प्राचीनता में हिन्दुओं के धर्म को [illegible] कर लिया था।[34]

आदि ग्रंथ ने हिन्दू धर्म की इस विकृतावस्था की विशेष रूप से विवेचना की है:-

१- [illegible] की विकृति:

[illegible] कैं [illegible] [illegible]। [illegible] फेरनि सिर॥
उडि उडि [illegible] [illegible] पाइ। [illegible] लोकु [illegible]॥
रोटी[illegible] [illegible] पूरनि [illegible]। [illegible] [illegible] नाल॥
[illegible] गोपी[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] सीता [illegible] राम॥[35]

आदि ग्रंथ [illegible] [illegible]

[illegible] गोपीआ [illegible] गोपाल॥
[illegible] पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] संसार॥[36]

२- हिन्दू [illegible] [illegible]

[illegible] पुजारु [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[37]

३४- [illegible]कालीन [illegible] [illegible]- पृ० ५
३५- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
३६- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
३७- आ०ग्रं० पृ० [illegible]०

आदि ग्रंथ द्वारा प्रति-पादित पूजा:

कहु नानकु निहचउ धिआवै।
विणु सति गुर वाट न पावै।[38]

३- वैष्णव भोजन शुद्धि

दिखावे की शुद्धि है। वैसे सारा झूठ इन के अन्दर है। मलेच्छों का धान खाते हैं। हलाल किया बकरा खाते हैं। सारा रहन सहन तथा आचार तुर्कों का है। पराधीनता-वश ये ब्राह्मण मुसलमानों के कठपुतली बन गए हैं। नाम के ब्राह्मण हैं, अन्यथा उनके मुसलमानों जैसा होने में कोई सन्देह नहीं। मुसलमान गउ ब्राह्मण पर जज़िया लगाते हैं, परन्तु इन ब्राह्मणों को सब कुछ स्वीकार है।

गउ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।[39]
धोती टिका ते जपमाली धानु मलेछां खाई।
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।

मथै टिका तेड़ि धोती कखाई।
हथि छुरी जगत कासाई।
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु।
मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु।
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा।
चउके उपरि किसै न जाणा।
दे कै चउका कढी कार।
उपरि आइ बैठे कूड़िआर।
मतु भिटै वे मतु भिटै।
इहु अंनु असाडा फिटै।
तनि फिटै फेड़ करेनि।
मनि जूठै चुली भरेनि।

३८- वही

३९- आ०ग्र०पृ० ४७१-७२ (पंडित लोग मुसलमानों को खुश करने के लिये कुरान

cntu.

आदि ग्रंथ तथा शुद्धि

कहु नानक सचु धिआईऐ।
सुचि होवै ता सचु पाईऐ। [४०]

४- वैष्णव मत, शैव मत, शाक्त मत, तथा गुरमत।

डा० हरनाम सिंह लिखते हैं, 'शैव और वैष्णव मतों में बहुत कुछ आदान प्रदान हो चुका था। सांप्रदायिक उत्साह से युक्त विष्णु भक्त, शिव की आराधना बिल्कुल उसी प्रकार करते थे, जिस प्रकार उदार शैव शिव के साथ साथ विष्णु और उनके अवतारों का भी समादर करते थे। पूर्व में शाक्त मत का ज़ोर था, किन्तु जिस प्रकार वैष्णव मतों में दुर्गा की उपासना प्रचलित थी, उसी प्रकार शैवों में योग के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति की प्रतिष्ठा के साथ साथ अन्य प्रभाव भी परिलक्षित होने लगे थे। आद्या शक्ति को देवी के रूप में स्वीकार करके भी शैवों और वैष्णवों के मन में इन शाक्तों के प्रति घृणा भर गई थी। पंच मकारों में मत की घोरतम विकृति की अभिव्यक्ति ने शाक्तमत को संयत धर्मों से विदूर कर दिया। इन धर्मों में एक ओर तो परिलक्षित रूप से आदान प्रदान हो रहा था और दूसरी ओर धार्मिक विकृतियों के परिणाम स्वरूप अन्त: सांप्रदायिक राग द्वेष इतना बढ़ा कि एक ही भाव भूमि पर आग्रह और विग्रह के आरूढ़ हो जाने से विकृति कुछ अधिक जटिल हो गई थी।[४१]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं को भी शाक्तों के प्रति वही घृणा रही, जो वैष्णवों तथा शैवों को। परन्तु वैष्णव धर्म के शुद्ध सात्त्विक रूप के प्रति आदि ग्रंथ में श्रद्धाभाव ही प्रदर्शित हुआ:-

कबीर

बैसनउ की कूकरि भली साकत की बुरी माइ।
ओह नित सुनै हरि नाम जसु उह पाप बिसाहन जाइ।[४२]

पहने थे। परन्तु धोती तहमत (पल्लेदार) वाला पहनते हैं। यदि नीले वस्त्र धारण करें, तो मुसलमानों की नज़रों में सम्मान प्राप्त करते हैं। हलाल का बकरा खाने के लिये चौके में रखा हुआ है। चौके के गिर्द लकीर खींचकर कहते हैं, कोई अन्दर मत आए, कहीं हमारा अन्न भ्रष्ट न हो जाए।

सांप्रदायिकता शाखिक से और पौराणिक तत्वों के अंतर्गत इस विषय पर विशद् विवेचना की गई है। श्री कृष्ण द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म में किस गुरुओं का कितना आदर था, इस का प्रमाण गुरु अंगद देव के इन शब्दों से मिलता है:- एक किसनूं सरब देवा देव देवा त आतमा। आतमा बासुदेवसि जे को जाणै भेउ। नानक ता का दास है, सोई निरंजन देउ।[43]

निर्गुण मत की ज्ञानाश्रयी शाखा तथा हठयोग की धारा।

नामदेव, कबीर, रविदास आदि सन्तों ने गुरु नानक से पूर्व निर्गुणमत की ज्ञानाश्रयी धारा को व्यवस्थित रूप दे दिया था। इस धारा की पृष्ठभूमि में वैष्णव मत तथा नाथ योगी मत दोनों का आधार था। आदि ग्रंथ के रचयिताओं को नाथ योगियों द्वारा सिद्ध-साधना का अंतर्निहित रूप कुछ-कुछ स्वीकार हुआ। परन्तु गोरख नाथ के उपरान्त नाथ योगी मत भी कई एक विकृतियों का शिकार हो गया था। योग केवल दिखावे मात्र का योग रह गया था। गुरु नानक की रचनाओं सिद्ध गोसट, आसा की वार तथा अन्य स्थलों पर योगियों के मेषाचार की आलोचना मिलती है। आडम्बर और नकली योग का विवरण गुरु नानक की इन पंक्तियों में है:-

जोगु न खिंथा, जोगु न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ, जोगु न सिंङी वाईऐ।
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी, जोगु न ताड़ी लाईऐ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ, जोगु न तीरथि नाईऐ।

आदि ग्रंथ का योग

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।
गली जोग न होई।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै, जोगी कहीऐ सोई।[44]

४०- आ०ग्रं० पृ० ७६२
४१- कबीर एक विवेचन- ६२-६३
४२- आ०ग्रं० १३६९
४३- आ०ग्रं० ४६९

आदि ग्रंथ में आसा की वार के साक्ष्य से पता चलता है कि तत्कालीन योगी लोग, घर का त्याग कर श्मशान में नंगे हो कर विभूत लगा कर अनाहार मौन तपस्या करते थे। पांव से नंगे रहकर कंद मूल खा कर साधना करते थे। गुरू जी कहते हैं:-

बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ।
बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ।
बहु वे जात्रा अपणा कीआ।
अंन न खाइआ सादु गवाइआ।
बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ।
बसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै।
मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता।
पग उपेताणा अपणा कीआ कमाणा।
अलमलु खाई सिरि छाई पाई।
मूरखि अंधै पति गवाई।
विणु नावै किछु थाइ न पाई। [45]

<u>गुरु ग्रंथ की योग :</u>

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति।
खिंथा कालु कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीत।
आई पंथी सगल जमाती, मनि जीते जग जीत। [46]

(अर्थात : योगी संतोष की मुद्रा कानों में डालते, श्रम का खप्पर तथा झोली बनाते, ध्यान की ही भस्म रमाना चाहिए है, मृत्यु अवश्यंभावी है, इसे कंथा बनाओ, काया का सतीत्व ही तेरी युक्ति हो, तथा विश्वास (प्रतीति) का डंडा तेरे पास हो। योगियों के बारह पंथों की परिभाषा दी है। सब का ही अपने पंथ का व्यवहार करना अथवा आई पंथ है। (योगियों के १२ पंथों में एक-आई पंथ वाले सहिष्णुता की भावना के लिये प्रसिद्ध हैं)- यदि अपने को जीत लिया तो जगत को जीत लिया समझो।

४५- आ०ग्र० पृ० ४७०

४६- आ०ग्र० पृ० ~~४६७~~ ७३०

४५- आ०ग्र०पृ०४६७

विद्वानों का विचार है, किसी समय नाथ पंथ का बड़ा प्रभाव था। अनेक सवर्ण और अवर्ण लोग इसके अनुयायी थे किन्तु अवर्णों में तो इसका प्रचार बहुत ही अधिक था। गोरखनाथ से संबंधित अनेक लोक वार्तायें परंपरा से देश में प्रचलित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोरखनाथ या नाथ पंथ का प्रभाव कभी लोक व्यापी था। सभी वर्ग और श्रेणियों में इसका समादर था, इसलिये राजा से रंक तक की लोक कथायें इस से संबंधित मिलती है।[47] आदि ग्रंथ में गोरख का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया गया है। विष्णु के नाम के लिये गोरख का पर्यायवाची शब्द आदि ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है।

गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई।[48]

योगी लोग गोरख का गुरु रूप में आदर करते थे, ऐसा गोरख के समय से ही पता चलता है। गोरखबानी में लिखा है, 'नाथ कहंता सब जग नाथ्या, गोरष कहंता गोई।[49] गोरखनाथ भी स्वयं गोरष की पहचान बताते हैं, 'जहां गोरष तहां ग्यान गरीबी दुंद बाद नहीं कोई।'[50] गुरु ग्रंथ में भी योगियों द्वारा गोरख का नाम जपने का वर्णन है।

१- कबीर

जोगी गोरखु गोरखु करै।
हिन्दू राम नाम उचरै।
मुसलमान का एकु खुदाय।
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ।[51]

२- म: ४

पंडित सासत सिम्रिति पड़िआ।
जोगी गोरखु गोरखु करिआ।[52]

४६- आ०ग्र० पृ० ६
४७- कबीर एक विवेचन-६४-६५
४८- आ०ग्र० पृ० २
४९- गोरखबानी सब्दी नं० १२
५०- गोरखबानी पृ० १६५
५१- आ० ग्र० पृ० ११६०

ऐसी लोक व्यापी मत में विकारों को दूर करने के लिए योग तथा योगी की व्याख्या पर आदि ग्रंथ में विशेष ध्यान दिया गया। गुरु नानक देव जी को अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये योग साधना का सर्व साधारण तथा सुगम स्वरूप प्रस्तुत करना पड़ा:-

सुरति सबदु साखी मेरी सिंङी बाजै लोकु सुणै।
पतु झोली मंगण कै ताई भीखिआ नाम पड़े।
बाबा गोरखु जागै।
गोरख सो जिनि गोइ उठाली करते बार न लागै। रहाउ।।[५३]

शबदार्थ आदि ग्रंथ के टिप्पणीकार लिखते हैं कि उक्त शब्द (पद) तथा अन्य सम्बद्ध पद गोरख हटड़ी के स्थान पर योगियों के प्रति उच्चारण किए गए हैं। इस पद में गोरखमत अनुयायियों को गुरु नानक ने कहा कि हमारा गोरख सदैव शुद्ध-प्रबुद्ध हमारे साथ रहता है। गोरख वही है जिसे सृष्टि रचना करने में कुछ देर नहीं लगी। हम उसी गोरख की आराधना करते हैं, तथा जो भी योगी इस कार्य में हमारा सहचर बने हम उसे असली गोरखमत अवलंबी मानकर उसके साथ संपर्क रखते हैं।[५४]

सूफी (प्रेम मार्गी धारा।[५५]

सूफी अपने मुरीद (साधक) के सामने चार मार्ग रखते हैं। शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत। शरीयत शरअ का ज्ञान प्राप्त करना है। शरीयत के पश्चात् तरीकत में पदार्पण करना पड़ता है। नफ्स अथवा अहंभाव के साथ युद्ध करते हुए, इन्द्रियों द्वारा प्रभु-प्राप्ति तक पहुंचने का मार्ग तरीकत है, जिसे कर्मकांड कहा जा सकता है। तरीकत में तप(द्वन्द्व सहन) एकान्त सेवन, मौन आदि की गणना है। मारिफत उपासना है, जिससे नफ्स(अहं भावना) दूर होती है। हृदय में परम ज्ञान का उदय होता हैऔर साधक आरिफ(प्रज्ञा-संपन्न) कहलाने की योग्यता प्राप्त करता है। मुरीद या साधक को म्वारिफ प्राप्त होने से पहले तौबा (प्रायश्चित) जुहद (स्वेच्छादारिद्रय) सब्र (सन्तोष)

५२- आ०ग्र०पृ० ९६३

५३- रामकली म:१पृ० ८७७

ज़ुहद(नम्रता), रियाज़ (दमन) तवक्कुल (ईश्वर कृपा पर पूर्ण विश्वास) और रज़ा(तटस्था) में से निकलना पड़ता है जो उस के अन्दर ईश्वर के प्रति अटल अनुराग (मुहब्बतया इश्क़) को जागृत कर देते हैं, और साधक पवित्र बन जाता है। हकीकत साधन नहीं, साधक की परम सर्वश्रेष्ठ अनुभूति है, जिसकी प्राप्ति शरीयत एवं तरीकत के सम्यक् पालन के पश्चात् मारिफत द्वारा होती है।[५५]

आदि = ग्रंथ में सूफी शब्द का कहीं प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं, मिलता, परन्तु किसी अबदाल नाम के सूफी फकीर को सूफी मत के चार मार्गों की व्याख्या करके बताते हुए गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं :-

अलह अगम खुदाई बंदे। छोडि खिआल दुनीआ के धंधे।

होइ पै खाक फकीर मुसाफरु इहु दरवेसु कबूलु दरा।।१।।

सचु निवाज यकीनु मुसला। मनसा मारि निवारिहु आसा।।

देह मसीति मनु मउलाणा,कलम खुदाइ पाकु खरा।।२।।

सरा सरीअति ले कंमावहु। तरीकति तरक खोजि टोलावहु।

मारफति मनु मारहु अबदाला। मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा।

कुराणु कतेब दिल माहि कमाही। दस अउरात रखहु बद राही।

पंच मरद सिदकि ले बाधहु खैरि सबूरी कबूलपरा।।[५६]

अर्थात् हे उस अगम्य खुदा के बन्दे। दुनिया के धन्धों का ख्याल छोड़कर साधुओं (फकीरों) की चरण धूलि बनो, ऐसा दरवेश खुदा के हजूर में कबूल होगा। सत्य का निमाज़ अदा करने के लिये, यकीन(विश्वास) का मुस्सला (सफ) तैयार करो। मन (नफ्स) को मार कर आशा(त्रिष्णा) का निवारण करो। इस प्रकार का शुद्ध सात्विक मन ही मौलाना(शेख) बन कर मानसिक शुद्धि के कलमे को देह रूपी मस्जिद में पढ़ता है। यहाँ से शरीयत का राह प्रशस्त होता है, अर्थात् सूफी तसव्वुफ के चार मार्गों में से प्रथम पर आरूढ़ होता है।

५४- शब्दार्थ आ०ग्रं० ८०० पाद टिप्पणी अर्थात ऊपर दशम द्वारा है, वहाँ पर आत्मा का अगम्य गुरु गोरख(परमात्मा)रहता है। तथा, ऊपर गगनु गगन परि गोरखु ता का अगमु गुरु पुनि वासी।।आ०ग्रं० पृ० ६९२

५५- भक्ति का विकास- डा० मुन्शी राम- पृ० ४००

५६- आ०ग्रं० पृ० १०८३

शरीयत: शरअ शरीयत, ईश्वर के नाम की कमाई (साधना) है।

तरीकत: अन्य पदार्थों को छोड़ने योग्य समझकर, केवल खुदा के नाम की खोज करो।

मारिफत हे अब्दाल फकीर! मन (नफ्स) की असंभावना को दूर करना ही मारिफत है।

हकीकत: सूफी साधक (आरिफ) की सर्व श्रेष्ठ अनुभूति अर्थात हकीकत (परम-सत्य) यही है कि मानसिक शुद्धि (मारिफत) द्वारा हृदय मन्दिर में परमात्मा से भेंट करो।

पुन: शरीयत के मार्ग को प्रारम्भ करने के लिये साधना का प्रथम सोपान बताया है। दस (नियमों) इन्द्रियों को कुमार्ग पर जाने से रोकना, काम-क्रोध लोभ-मोह अहंकार (पांच मर्दों) का संतोष के रस्सु से बांधना। हृदय को ही शुद्ध तथा पवित्र कलाम(कुरआन) बना कर उसकी आराधना (मनन) करना। इस प्रकार तब का सेर (दान) कबूल होगा।

गुरु ग्रंथ की सूफी मार्ग की यह विवेचना सूफियों से कुछ भिन्न नहीं है, केवल उसकी व्यावहारिक व्याख्या है। आदि ग्रंथ का साधना मार्ग बहुत कुछ व्यवहारिक एवं यथार्थवादी होने के कारण कतिपय कर्मों को केवल बाह्याचार की अपेक्षा उनको यथार्थ रूप में अपनाने की सम्मति देता है। अत: सूफी मत के इन सोपानों की केवल व्याख्या ही की गई है। सूफी साधक शुद्ध सात्विक भावनाओं वाले फकीर थे, अत: उनके आचार की कोई भी आलोचना आदि ग्रंथ में नहीं मिलती।

इस्लाम की एकेश्वरवादी धारा।

इस्लाम के कुछ एक सहिष्णुतावादी सम्राटों को छोड़कर अन्य सब ने इस्लाम के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को सत्कार की दृष्टि से नहीं देखा। राजनीतिक अवस्था पर विचार करते हुए हम हिन्दू तथा मुसलमानों के विलास-पूर्ण जीवन का दृश्य प्रस्तुत कर चुके हैं। यहां हम केवल इस्लाम धर्म की तत्कालिक स्थिति तथा उसका आदि ग्रंथ में जो विवरण है, उसके विचार तक ही अपने वक्तव्य को सीमित रखेंगे।

मुसलमानों का शासन होने के कारण इस्लाम को राजाश्रय की प्राप्ति थी। काज़ी लोग धार्मिक नेता भी थे, और राजनीति में भी उन्हीं की प्रधानता थी। न्यायाधीश का कार्य भी यही करते थे। एक खुदा के सिवा अन्य देवी देवताओं में विश्वास रखने वालों को काफिर कहा जाता था। जितने भी मुस्लिम विजेता आए उन्हों ने मंदिरों की मूर्तियों का अपमान किया। हिन्दुओं की धार्मिक स्वतंत्रता पर मुसलमानों के क्या क्या आघात हो चुके थे, इस का प्रमाण फीरोज़ तुगलक के कौल कारनामें हैं।कहा जाता है कि उसने एक बार एक ब्राह्मण को खुले आम हिन्दू संस्कार करने पर जीवित ही जलवा दिया।[५७] मैकालिफ के- इतिहास इस बात पर भी साक्षी है कि सिकन्दर लोधी की उपस्थिति में बोधन नाम के एक ब्राह्मण को अपने धर्म का उत्कर्ष प्रकट करने पर मृत्यु दंड दिया गया था।[५८] मैकालिफ ने एक मुसलमान लिखारी का प्रमाण प्रस्तुत हुए अलाउद्-दीन की धर्मान्धता के विषय में लिखा है कि एक बार उसने अपने काज़ी से पूछा कि हिन्दुओं के लिए शरअ की क्या आज्ञा है? काज़ी ने उत्तर दिया हिन्दू धरती के समान हैं,यदि उनसे चांदी मांगी जाए तो उन्हें अति विनम्रभाव से सोना भेंट करना चाहिए। यदि कोई मुसलमान हिन्दू के मुंह में थूकना चाहे तो हिन्दू को झट पट अपना मुंह खोल देना चाहिए। खुदा ने हिन्दुओं को मुसलमानों के गुलाम पैदा किया है। पैगंबर साहब ने हुक्म दिया है कि यदि हिन्दू इस्लाम कबूल न करें तो उन्हें कैद कर लो, यातनाएं दो तथा अन्त में तह-तेग करदो। यह बात सुन कर बादशाह ने हंस कर कहा, मैं ने शरअ की तशरीह(व्याख्या) की प्रतीक्षा नहीं की। मैं ने पहले ही आज्ञा दे रखी है कि हिन्दू छः मास के गुजारे के लिये अनाज तथा मामूली कपड़े के अतिरिक्त अपने पास कुछ नहीं रख सकते।[५९]

५७- स्मिथ-स्टुडेंटस हिस्ट्री आफ इण्डिया- पृ० १२६ से कबीर एक विवेचन पृ० ६१ पर उद्धृत।

५८- ईश्वरी प्रसाद- मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ ४८१-८२ से कबीर एक विवेचन पृ०६१ पर उद्धृत।

५९- सिक्ख रिलिजन-भाग १, भूमिका पृ० ४१-५० पर से गुरमति दर्शन, शिरोमणी गु: प्र०क०पृ० २० पर उद्धृत।

श्री सत्य केतु विद्यालंकार ने इब्नबतूता के हवाले से लिखा है कि जब कोई हिन्दू, सुल्तान के दरबार में कोई प्रार्थना पत्र लेकर उपस्थित होता था, तो हाजिब लोग चिल्लाकर कहते थे, हदाक अल्लाह या भगवान तुम्हें सन्मार्ग पर ले जावें। जज़िया कर के कारण हिन्दुओं को सदा यह अनुभूति बनी रहती थी, कि सल्तनत में उनकी स्थिति हीन है। यदि कोई हिन्दू धर्म का परित्याग कर इस्लाम को स्वीकार कर ले, तो मुसलिम लोगों की दृष्टि में यह बात बड़े गौरव व पुण्य की होती थी। जब कोई हिन्दू इस्लाम को ग्रहण करने के लिये तैयार हो जाता था, तो उसे सुल्तान के सम्मुख उपस्थित किया जाता था, सुल्तान उसे उत्तम वस्त्र व स्वर्ण के आभूषण प्रदान करता था, और ऐहलौकिक सुख व उत्कर्ष का मार्ग उसके लिये खुल जाता था।[६०]

मुसलमानों की राजनीति धार्मिक आदेशों अथवा शरायत पर आधारित रही है; जिस शरअ की तशरीह काज़ी लोग अपनी आवश्यकता के अनुकूल करते थे। धार्मिक अवस्था का जो ऐतिहासिक विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है, आदि ग्रंथ में उसका प्रामाणिक विवेचना मिलता है। गुरु नानक देव जी लिखते है, उस समय मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकें कुरआन आदि कीतेबें मान्य थीं। पंडितों के पुराणादि ग्रंथ मान्य नहीं थे। परमात्मा का नाम 'रहमान' अथवा 'अल्लाह' पड़ गया था।

कलि परवाणु कतेब कुराणु।
पोथी पंडित रहे पुराण।
नानक नाउ भइआ रहमाणु।[६१]

कलि: नाउ खुदाई अलहु भइआ।[६२]

शासकों का अन्याय तो केवल गैर-मुसलमानों के लिये ही था। अत: धर्मान्ध शासक तथा उनके चाटुकार मुकद्दम खूनखार शेरों तथा शिकारी कुत्तों की भांति सोते-बैठते को जगा कर जगा देते थे। चाकर वर्ग नाखूनों वाले जानवरों की भांति, अपने अन्याय के नारकीय लोगों को घायल करते थे। और लोगों का लहू कुत्तों (मुकद्दमों) के द्वारा चूस लेते थे।

६०- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास (सत्यकेतु विद्यालंकार-डी०लिट (पेरिस) पृ० ४३०-३१

६१- आ०ग्रं० ९०३

६२- आ०ग्रं० ४७०

राते सीह मुकदम कुते।
जाइ जगाइनि बैठे सुते।
चाकर नहदा पाइनि घाउ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।[६३]

ऐसी अवस्था में मुसलमान धर्म का अनुष्ठान जिस प्रकार से होता था, उस का चित्र आदि ग्रंथ में इस प्रकार दिया है:

१- वे प्रत्येक बात शरअ के दृष्टि कोण से देखते थे:-
   मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु।।[६४]

२- वे लोग पीते तो लोगों का लहू थे, परन्तु धार्मिक अनुष्ठान निमाज़ादि को पढ़ते थे:
   माणस खाणे करहि निवाज।[६५]

३- काज़ी धार्मिक नेता भी था तथा न्यायाधीश भी। अन्याय का दौर दौरा था। काज़ी जब अन्याय करता था, तो उस की पुश्त ताड़ के उपर में शरअ की कोई धारा पढ़ कर सुना देता था। शास्त्रों वेदों को कोई मानता नहीं था। अपनी अपनी गर्ज़ की पूजा होती था। हिन्दू भी मुसलमानों के कलमा को हृदय में तथा कानों में स्थान देते थे। चुगली खा कर लोगों को लूटते थे:-

सासतु बेदु न मानै कोइ। आपो आपै पूजा होइ।
काजी होइ कै बहै निआइ।। फेरे तसबी करे खुदाइ।
वढी लै कै हकु गवाए। जे को पुछै ता पड़ि सुणाए।
तुरक मंत्र कनि रिदै समाहि। लोक मुहावहि चाड़ी खाहि।[६६]

ऐसी अवस्था में आदि ग्रंथ ने न केवल आर्य धर्म की रक्षा की तथा वेद-शास्त्रों को गौण-स्थान दिलाया, वरन् मुसलमान धर्म की कुरआन-सम्मत व्याख्या भी प्रस्तुत की।

६३- आ०ग्रं० पृ० १२८८

६४- आ०ग्रं० पृ० ४६५

६५- आ०ग्रं० ४७१

६६- आ०ग्रं० ९५१

नमाज़

शरअ शरीयत का विचार किए बिना, उसे कैसे जाना जा सकता है, सन्तोष का सिजदा करो, मानसिक शुद्धि को ध्येय बनाओ। (केवल पश्चिम की ओर ही नहीं वरन्) जिधर भी देखो गे फिर उधर ही ख़ुदा नज़र आएगा।

१- सरै सरीअति करहि बीचारु।
बिन बूझे कैसे पावहि पारु।
सिदकु करि सिजदा मनु करि मखसूदु।
जिह धिरि देखा तिह धिरि मउजूदु।। ६७

२- पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलालु दुइ तीजा खैर खुदाइ।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ। ६८

अर्थात मुसलमान पांच समय पांच नमाज़े पढ़ते हैं। उनके पांच ही नाम हैं। १- नमाज़-ए-सुबह, २- नमाज़-ए-पेशीन, ३- नमाज़-ए-दीगर,४- नमाज़-ए-शाम,५- नमाज़-ए-खुफतन। गुरु नानक देव ने पांच नमाजों के नाम यह दिए हैं। १- नमाज-ए- सच, २- नमाज़-ए-हलाल, ३-नमाज़-ए-खैर-खुदा, ४- नमाज़-ए-नीयत-ए-रास, ५- नमाज़-ए- सिफतओ-सनाय। यह नाम क्रमशः, सत्य, पसीने की कमाई, शुभ-इच्छा, नेक इरादा, तथा ईश्वर स्तुति के घोतक हैं। यदि शुभकर्मों का अनुष्ठान किया जाए, तो ऐसा कलमा तथा नमाज़ पढ़ने वाला मुसलमान कहला सकता है।

मुसलमान कहलाना मुश्किल है। गुरु नानक देव जी कहते हैं, यदि पूरा मुसलमान हो, तभी वह मोमिन कहलाने का अधिकारी है। प्रथम तो औलिया फकीरों के दीन (मत) को मीठाकर माने। जैसे लोहे का जंगार उतारने वाला मसकुल जंगार को उतार फेंकता है,उसी भांति अपने धन को लुटा दे। मुसलिम होकर पैगंबर के दीनी उपदेश में विश्वास रखे, तथा, जीवन और मृत्यु के भ्रम को दूर करे। अर्थात आत्मा को अमर माने। ख़ुदा की रज़ा को सिर माथे पर कबूल करे, अपनेअहंभावको त्याग कर उस कादर-करीम में विश्वास रखे। यदि इस प्रकार से कर्म करता हुआ सब जीवों पर दया करे, तो मुसलमान कहला सकता है।

मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा, मसकल माना मालु मुसावै।
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै, मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै।
तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै।[४९]

गुरु अर्जुन देव ने [illegible] मुसलमान के सच्चे धार्मिक अनुष्ठान को [illegible] प्रकार [illegible] आदि ग्रंथ में वर्णन किया है, मिहर (कृपा) [illegible] करो, [illegible] की [illegible] होगा [illegible]।

कुरान ([illegible]) के [illegible] [illegible] किया है। खुदा की [illegible] नूर, नूर, [illegible] कहलाती है। [illegible] [illegible] का [illegible] स्थान हृदय-मन्दिर (हुजरा) है, जो [illegible] कहा [illegible] जाता है। जो हृदय को [illegible] करता है, वह [illegible] है। [illegible] [illegible] है जो [illegible] ([illegible]) को [illegible] है। [illegible] है, जिसे ईश्वर-स्तुति का [illegible] है। नमाज़ से [illegible] केवल पांच वक्त का नमाज़, [illegible] [illegible] [illegible] को याद करना ही नमाज़ है। इन इन्द्रियों को वश में रखना [illegible] है। [illegible] प्रकार प्रभु स्मरण [illegible] ([illegible]) [illegible] अनुशासन का [illegible] है। [illegible] में [illegible] [illegible] सांसारिक जीवन [illegible]। परिवार [illegible] [illegible] का [illegible] है। पीर-भक्ति-[illegible] [illegible] करना भी आवश्यक है। केवल एक खुदा को [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] प्रथम [illegible] स्तुति, दूसरे [illegible] है। तीसरे [illegible], चौथे दान है। पांचवें, पांचों इन्द्रियों को [illegible] [illegible] एक स्थान पर रखना, [illegible] [illegible] नमाज़ें [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] में [illegible] को मानना [illegible] ([illegible] निरंतर [illegible]) है। [illegible] का [illegible] खुदा है [illegible] [illegible] है। (नमाज़ का लोटा) [illegible] खुदा को मानना [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] दिल को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

४७- [illegible] पृ० ८४

४८- [illegible] पृ० १४१

४९- [illegible] पृ० १४१ म: १

मुसलमानों की विलासिता पर टिप्पणी की गई है, उस के सम्यक अनुशासन का विवरण दिया है। काया शुद्धाचरण का अनुसरण करे। विश्वास को औरत समझो। रंग तमाशे तथा मनोरंजन यही है कि एक की (खुदाई) सत्ता में विश्वास रखो। हृदय की पवित्रता ही स्वास है। शरीर को साबित (अखंडित-सुंनत न करना) रखना, सिर को दस्तार समझो।

मुसलमान वही है जो मोम की तरह कोमल हृदय वाला हो। अपने अंतस की सब मैल त्याग दे। दुनिया के ऐश्वर्य (विलासिता) से वह दूर रहे, जैसे कुसम, पाट (रेशम) घी तथा मृग चर्म पवित्र होते हैं। वही नेक मर्द है, जिस पर उस मिहरवान (कृपालु) हरि की कृपा है। वही शेख है वही हाजी है।[७०]

आदि ग्रंथ और वैदिक धर्म

निर्गुण सन्तों की वाणियों में ब्राह्मण के जातिगत अभिमान तथा वेद-शास्त्र के ज्ञान के ढोंग की आलोचना को देख कर कतिपय लोगों ने उन्हें नास्तिक तक कह दिया। वेद पाठ को बिना समझे अथवा उसको बिना हृदयंगम किए, किए जाने की जो आलोचना सन्तों की वाणी में मिली, उससे कतिपय विद्वानों ने उन्हें वेद-विरोधी घोषित कर दिया। डा० शेर सिंह लिखते हैं। गुरु साहब ने वेदों की प्रामाणिकता को उतनी श्रद्धा से नहीं माना, जितनी श्रद्धा से वैदिक धर्म-अनुयायी मानते थे।[७१] हमारा विचार है कि कबीर आदि साधकों तथा गुरुओं ने वेदों की प्रामाणिकता को जो मुसलिम-शासन काल में लुप्त-प्राय हो गई थी, पुन: स्थापित किया; आदि ग्रंथ के सभी मुख्य सन्तों की वाणियों में वेद-वाणी तथा उसकी प्रामाणिकता में श्रद्धाभाव को मुक्त कंठ से प्रदर्शित किया गया है।

कबीर: बेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न बिचारै।[७२]

गुरु नानक: दीवा बलै अंधेरा जाइ। वेद पाठ मति पापा खाइ।
उगवै सूरु न जापै चंदु। जह गिआन प्रगास अगिआन मिटंत।
बेद पाठ संसार की कार। पढ़ि पढ़ि पंडित करहि बीचार।
बिनु बूझे सभ होइ खुआर, नानक गुरमुखि उतरसि पारि।[७३]

७०- आ०ग्रं० पृ० १०८४

७१- गुरमति दर्शन- पृ० ६१

७२- आ०ग्रं० पृ० ७६१

गुरु अमरदास:

वेदा महि नामु उतमु सो सुणहि नाही, फिरहि जिउ बेतालिआ।[74]

गुरु रामदास:

वेद पुरान सिम्रिति हरि जपिआ, मुखि पंडित हरि गाइआ।[75]

गुरु अर्जुन देव:

वेद पुरान सिम्रिति, साधु जन इह बाणी रसना भाखी।

जपि राम नामु नानक निसतरीऐ, होरु दुतीआ बिरथी साखी।[76]

गुरु तेग बहादुर:

१- जोगी सारे खोजिओ मन समझावै।

२- वेद पुरान साध मत, सुनि करि, निमख न हरि गुन गावै।

वेद ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है, परन्तु यदि बाग-तले अन्धेरा हो, तो इस में दिये अथवा प्रकाश का क्या दोष? वेद पढ़ने का यही गुण है कि हरि नाम का सुमरिन करे:-

गुरु नानक: चारे वेद होए सचिआर। पड़हि गुणहि तिन चार वीचार।[78]

रामानंद : वेद पुरान सब देखे जोइ। उहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ।[79]

गुरु अर्जुन देव: चतुर सिमरि चारे वेद सुणि खोजिओ ततु बीचार।

सरब खेम कलिआण निधि राम नामु जपि सार।[80]

गुरु तेग बहादुर : वेद पुरान पड़े को इह गुनु, सिमरे हरि को नामा।[81]

बिना तत्त्व चिंतन के वेद विचार व्यर्थ है:-

कबीर: बेद पुरान पड़े का किआ गुनु खर चंदन जस भारा।[82]

गुरु अर्जुन देव: बेद पड़हि संपूरना तुलि सार न बेलं।

पूजा भारणि को फिरै जिस घुरि मसतकि लेखं।[83]

73- आ०ग्र० पृ० ७९१

74- आ०ग्र० पृ० ६९६

75- आ०ग्र० पृ० ६९५

76- आ०ग्र० सारंग म: ५, पृ० १२२७

अत: सामाजिक व्यवस्था में धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना तथा वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान जो आदि ग्रंथ में हुआ, भक्ति काल की भारतीय धर्म-साधना को यह महान देन है। आदि ग्रंथ का गुरमत अथवा सिक्खों मार्ग विशेषत: वैष्णव धर्म का संशोधित, परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप है। इसके आगे साधना पक्ष के अध्याय में विचार किया जायेगा। वैष्णवों के अवतारवाद का त्याग, और एक प्रभु में विश्वास वैदिक परंपरागत विश्वास है। विष्णु के अवतारों में उस प्रभु की सत्ता के दर्शन भागवत धर्म तथा गीता के भक्ति योग के प्रभाव से सम्भावित हैं। डा० सुन्दरराम लिखते हैं, 'जब भागवतों को ब्राह्मणों में से एक दल ऐसा मिल गया, जो सकाम यज्ञों के विरोध में उनके साथ एकमत था, साथ ही वेद में जिसकी अटूट श्रद्धा थी, तो भागवत और वैदिक धर्म दोनों मिलकर एक हो गए। ब्राह्मणों ने भागवत धर्म के आदि प्रतिष्ठाता श्री कृष्ण को दिव्य विभूति के रूप में ईश्वर का अवतार स्वीकार कर लिया।[८४] आदि ग्रंथ ने इसी भागवत धर्म तथा वैदिक धर्म के एक रूप गुरु धर्म में मुसलमान शासकों के समय जो विकार एवं विषमताएं प्रस्तुत हुए, उन को परिष्कृत कर गुरमत धर्म की स्थापना की। इस धर्म की साधना मार्ग को प्रशस्त करने के लिये हठयोगियों तथा मुसलमानों की साधना पद्धतियों की त्रुटियों की भी आलोचना की, शाक्तों तथा वाम-मार्गी साधकों के अनाचार की निंदा की, तथा परंपरागत वैदिक धर्म के एक शुद्ध सात्विक एवं व्यवहारिक रूप को प्रस्तुत किया।

७७- आ०ग्रं० पृ० २९०

७८- आ०ग्रं० पृ० ५७०

७९- आ०ग्रं० पृ० ११९५

८०- आ०ग्रं० पृ० २९७

८१- आ०ग्रं० पृ० २९०

८२- आ०ग्रं० पृ० ११०३

८३- आ०ग्रं० पृ० १०६६

८४- भक्ति का विकास- पृ० ३७५

३- पारिवारिक व्यवस्था

संस्कार परक जीवन

आदि ग्रंथ में मनुष्य की उन सब पारिवारिक स्थितियों का, जिनसे वह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त गुजरता था, विवरण खोजा जा सकता है। आदि ग्रंथ बताता है कि गर्भाधान से लेकर ही माता का मन अति विकसित रहता है। बच्चे के जन्म की उस समय विशेष प्रसन्नता होती थी, जब गोविन्द भक्त अथवा शुभ सन्तान के रूप में सन्तान का जन्म हो।[८५] बड़ा होकर बच्चे का यज्ञोपवीत संस्कार होता था। ~~अथवा-कुवव-~~ महान कोश में लिखा है, गर्भ से लेकर ब्राह्मण का आठवें, क्षत्री का ग्यारहवें तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार होता था। नारद के मत में ब्राह्मण का वसंत ऋतु, क्षत्रिय का ग्रीष्म तथा वैश्य का शरद ऋतु में यह संस्कार होता है।[८६] आदि ग्रंथ में धागे के यज्ञोपवीत के स्थान पर दया की कपास, संतोष का सूत्र तथा यतित्व की गांठ तथा सतित्व के बाट से तैय्यार किए जनेऊ को पहनने का आदेश है।[८७] विवाह की आयु को प्राप्त होने पर युवक की सगाई (कुड़माई) अथवा मंगनी की जाती थी।[८८] भाई बन्नों वाली आदि ग्रंथ की बोड़ में एक पद है जिसमें सगाई की प्रथा का विस्तृत विवेचन है। बिरादरी एकत्र होकर बालक की सगाई का आरंभ करती है। बड़े सज्जन पुरुष ससुर को ढूंढ कर अमृत-मेवा बांटा जाता है।[८९] सगाई के पश्चात् विवाह संस्कार संपन्न होता था। इसके लिये लगन लिखवाया जाता था तथा इस लगन के अनुसार लड़के वाले बरात लेकर लड़की वालों के घर पर आते थे।[९०] बरात के वधु के घर पर आने पर मंगल

८५- उदरै माहि आइ कीआ निवास।
माता के मन बहुत बिगास।
जंमिआ पूत भगत गोविंद का। आ०ग्रं० पृ० ३९६

८६- महान कोश- कान्ह सिंह - पृ० ३७८

८७- दइआ कपाह संतोख सूत जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु।। म:१, आ०ग्रं० पृ० ४७१

८८- सतु संतोखु करि भाउ कुड़मु कुड़माई आइआ बलिराम जीउ। म:४ आ०ग्रं० पृ० ७७३

गीत गाए जाते थे।[६१] बेदी के गिर्द भांवर अथवा फेरे लेकर वर-वधु का पाणिग्रहण संस्कार संपन्न होता था।[६२] विवाहिता स्त्री अपने पति की प्रसन्नता के लिए श्रृंगार करती थी।[६३] इन श्रृंगारों को सोलह श्रृंगार भी कहते थे।[६४] इन श्रृंगारों के लिये स्त्रियां सोने चांदी के आभूषणों का प्रयोग करती थीं।[६५] सिर के बालों को पट्टियां संवारी जाती थीं, मेंढियां गूंथी जाती थीं, मांग निकाल कर संधूर डाला जाता था।[६६] गले में हार पहने जाते थे, कलाईयों में कंकण, उंगलियों में मुन्दरियां, आंखों में काजल, दान्तों में रंगदार दातुन (दंदासा) मुंह में पान फूल आदि लेकर पवन को चन्दन आदि की सुगंधि से सुवासित करके सुहागिन अपने आप को अपने कांत को सौंपती थी।[६७] आदि ग्रंथ में इस सब श्रृंगार के स्थान पर ईश्वर के प्रेम का श्रृंगार करने को कहा है। ईश्वर के बिना सब पाट-पटंबर आग से जला दो। ईश्वर कान्त के साथ उसकी चरण धूलि के श्रृंगार में लोटना ही उत्तम है।[६८]

८६- साध संगति इकत्र करे बालक करहु मगेवा।
लवे सुजन कुटुम मले, बंडिवह अंग्रित मेवा।
रामकली म:५, छंत पउड़ी ३, भाई बन्नो वाल बीड़।

६०- लगण लिखाइआ गुरहु आइआ, विवाहु कुड़म दिवाइआ- वही।
(२) हरि प्रभु काज रचाइआ। गुरमुखि वीआहणि आइआ- सूही म:४,
आ०ग्र० पृ० ७७५

६१- सखी सहेली गाउ मंगल ग्रिहि आए हरि कंत जीउ। रामकली म:५ पृ०६२६
(२) गाओ गाओ री दुलहनी मंगलचार। मेरे ग्रिहि आए राजा राम भतार।
कबीर आ०ग्र० पृ०४८२

६२- नाभ कमल में बेदी।...... राम राइ सिउ भावर लैहउ- कबीर- आ०ग्र० पृ० ४८२

६३- (१) बहुते वेस करे- आ०ग्र० पृ० ६३३ ऐते वेस करेदीए मुधे, आ०ग्र०पृ०५५७

६४- नैन सलोनी सुंदर, सोलह सींगार करै अति पिआरी। आ०ग्र० पृ० २२५

६५- कामणि लोड़े सुइना रुपा। आ०ग्र० पृ० १५५

६६- आ०ग्र० पृ० ५४ तथा पृ० ७२२

६७- आ० ग्र० पृ० ३५८ तथा पृ० ७८८

मुसलमानों के शासन काल में उनकी संस्कृति का एक प्रभाव यह भी था कि पर्दे का रिवाज पड़ गया था।[९९] मुसलमानों में बहु पत्नी विवाह की प्रथा थी। इसका प्रभाव हिन्दू समाज पर भी पड़ गया। एक से अधिक पत्नी-विवाह की प्रथा का साक्ष्य आदि ग्रंथ में मिलता है।[१००] स्त्री का शिक्षित होना एक उत्तम गुण समझा जाता था, भले ही यह शिक्षा घर पर ही दी गई हो।[१०१] वह स्त्री अपने आप को सोहागवती तथा सौभाग्यवती ख्याल करती थी, जिस का पति उस पर प्रसन्न था तथा उसके समीप होता था।[१०२]

अन्त्येष्टि संस्कार का भी तत्कालीन दृश्य आदि ग्रंथ में मिलता है। मनुष्य के मर जाने पर उसके संबंधी, है।है।। तथा, ओहि।ओहि।। करके ऊंची चीख पुकार करते थे। गला पीटते थे तथा सिर धुनते थे।[१०३] परन्तु यह सब रोने वाले झूठा रोना रोते थे।[१०४] जितने रोने वाले हैं सब दिखावा करते हैं।[१०५]

भिन्न भिन्न जातियों में मृतक की अन्त्येष्टि के पृथक पृथक ढंग थे। गुरु अर्जुन देव इस की तीन दशाएं बताते हैं:-

१- जल प्रवाह

२- कुत्तों के आगे डालना

३- ~~[illegible]~~ जला देना अथवा गाड़ देना।[१०६]

गुरु अमर दास जी अन्त्येष्टि की पांच प्रचलित विधियों को आदि ग्रंथ में वर्णन करते हैं।

१- मुर्दे को जलाना।

२- दबाना।

३- कुत्तों के आगे डालना।

४- जल प्रवाह।

५- मांसाहारी जीवों के आगे डालना

वे कहते हैं कि यह रीतियां तो जाति गत हैं, परन्तु मर कर जीव कहां समाता है, इसका किसी को ज्ञान नहीं।[१०७] आदि ग्रंथ के इस पद पर

९८- धणी विछुंना पाट पंटबर भाही सेती जाले। धूड़ी विच लुडंदड़ी
    सोहां नानक ते सह नाले। अ०ग० पृ० १४२४,१४२५

९९- जब नाची तब घूंघटकैसा- आ०ग्रं० पृ० ११११२

१००-सउकनि घर की कंति तिआगी- पृ० ३६४

१०१- चज अचार किछ बिधि नही जानी- पृ० ३७२

टिप्पणी करते हुए भाई कान्ह सिंह लिखते हैं: मुसलमान तथा ईसाई मुर्दों को दबाते हैं। हिन्दू दाह संस्कार करते हैं। यूनान में प्राचीन काल में मुर्दे कुत्तों के आगे डाले जाते थे। कई जातियां अपने मृतकों को गंगादि पवित्र नदियों में प्रवाहते हैं पारसी लोग क्योंकि अग्नि को पवित्र मानते हैं, इस लिये उसे मुर्दे को नहीं छुवाते। वे मुर्दों को किसी निर्जन स्थान पर मांसाहारी जीवों के खाने के लिये छोड़ देते हैं।[१०८] सती की प्रथा कबीर तथा गुरु नानक के काल में जोरों पर होगी, तभी इसका विरोध आदि ग्रंथ में मिलता है।[१०९]

मृतक की अन्त्येष्टि के पश्चात् कुछ एक क्रियाएं संपूर्ण की जाती थी। हिन्दुओं की अन्त्येष्टि क्रिया का अन्तिम भाग पिण्डदान की क्रिया है, जो अशौच की अवधि में की जाती है। मृतक अभी भी एक प्रकार से जीवित समझा जाता है। जीवित सम्बन्धियों के प्रयत्न मृतक के लिये भोजन प्रस्तुत करने तथा पितरों के स्थायी आवास की ओर उसका मार्ग दर्शन करने के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं।[११०] आदि ग्रंथ में पिण्ड दान की क्रिया का कटुआलोचना की गई है। जिससे ऐसा लगता है कि यह क्रिया उस समय बहुत जोरों पर थी, चाहे अब भी यह दूर नहीं हुई। कबीर जी कहते हैं:-

---

१०२- आनंद बिनोद तिते घरि सोहि, जो धन कंत सिंगारी थीउ। म:५ आ०ग्र० पृ० ६७०

१०३- हे हे करि कै ओहि करेनि। गला पिटंनि सिरु खोहेनि। म: १, आ०ग्र०पृ०१४१

१०४- कूठा रुदनु होवा दोआले- कूडे वेण पवे-आ०ग्र० पृ० ७५ तथा ६७६

१०५- रोवण वाले जेतड़े सभि बनंहि पंड परालि। आ०ग्र० पृ० १५

१०६- तीन संझिआ कर देही कीना, जल कूकर भसमेही। आ०ग्र० पृ० १५

१०७- इक दझहि इक दबीअहि इकना कुते खाहि।
इकि पाणी विचि उसटीअहि इकि भी फिरि हसणि पाहि।
नानक एव न जापई किथै जाइ समाहि। म: ३ आ०ग्र० पृ० ६४८
करतार पुर वाली बीड़ में म:१ है।

१०८- गुरुमत प्रभाकर - पृ० ३६४

१०९- (१) बिन सत सती होइ कैसे नारि। कबीर पृ० ३२८
(२) सतीआ एहि न आखीअनि, जो मड़िआ लग जलंनि। नानक सतीआ जाणीअनि, जि बिरहे चोट मरंनि। म: ३-७८७।

जीवत पितर न माने कोऊ, मूए सिराध कराही।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि, कउआ कूकर खाही।
माटी के करि देवी देवा तिस आगे जीउ देही।
ऐसे पितर तुमारे कही आहि आपन कहिआन लेही।[१११]

अर्थात पितर क्या हुए जो आप मुंह से मांग कर ले भी नहीं सकते। गुरु नानक देवने तो इस क्रिया के एक और पक्ष की व्यंग्यपूर्ण आलोचना की है। वे कहते हैं कि यदि चोर चोरी करके अपने घर के पितरों को पिंडदान करता है, तो आगे तो चोरी की वस्तु पहचानी जायेगी अत: पितरों को भी चोर बना देगी।[११२] आगे तो अपने श्रम का ही दान लाभप्रद होता है।

मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग नरक की प्राप्ति का विचार भी लोगों के मस्तिष्क में घर किए बैठा था। आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने तथा-कथित स्वर्ग-नरक की कल्पना की अपेक्षा इस जीवनमें ही इन दो अवस्थाओं की कल्पणा की है। गुरु नानक देव जी कहते हैं, शुभ कर्मों की धरती करो। उस शबद का बीजारोपन करो। सत्य के चमकते हुए पानी से उसे सींचो, इस प्रकार किसान बनकर धर्म(ईमान) पैदा करो। यही स्वर्ग नरक का ज्ञान है।[११३] सन्तों ने तो इन दोनों लोकों को रद्द ही कर दिया है। कबीर जी कहते हैं, हमें तो अपने गुरु की कृपा से इन दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं।[११४]

स्वर्ग नरक

स्वर्ग नरक की कल्पना केकारण, स्वर्ग की इच्छा से तथा नरक के भय से लोगों का जीवन अन्धविश्वासों से लदा हुआ था। लोग प्रत्येक कर्म को शगुन-अपशगुन देख कर करते थे। समय स्थान के पूर्ण विचार से ज्योतिषियों से पूछ कर कार्य किए जाते थे। आदि ग्रंथ में शगुन अपशगुन के विचार की आलोचना

११०- पारस्कर गृह्यसूत्र-३-१०-२७-२८ गदाधरकृत क्रियापद्धति से हिन्दू संस्कार- डा० राज बली पांडेय पृ०३३४ पर उद्धृत

१११- कबीर- आ०ग्रं० पृ० ३३२

११२- जे मोहका घरु मुहै, घरु मुहि पितरी देइ।
आगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ।
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ।
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ। आ०ग्रं० पृ० ४७२

करते हुए लिखा है, कि शगुन-अपशगुन उनको लगते हैं जो हरि से विमुख होते हैं।[११५] जिसपर हरि की कृपा हो उस के लिये सब महीने, दिन-वार तथा मुहूर्त भले हैं।[११६] कार्तिक आदि महीनों में शुभ-कार्यों को करने का कोई दोष नहीं।[११७] आदि ग्रंथ ने उपदेश दिया कि पुस्तक पढ़ पढ़ कर ज्योतिषी झूठा विचार प्रस्तुत करता है।[११८] वह तो माया का लोभी है।[११९] पंडित को पत्री की अपेक्षा मन की पत्री बांचना चाहिए, यदि सुखों की चाह है।[१२०]

समाज में नारी भावना

गुरु नानक काल में स्त्री की दशा अच्छी नहीं थी। उसे केवल विलास का साधन मात्र समझा जाता था।[१२१] उसे केवल काम वासना की तृप्ति के लिये बनी समझा जाता था।[१२२] यह दशा ऐसी था, जिसमें स्त्री पुरुष का खिलौना बन कर रह गई थी। उसे समाज में समादर नहीं प्राप्त था। गुरु नानक देव ने इस के विरुद्ध आवाज़ उठाई और स्त्री का योग्य स्थान बताया। स्त्री से ही पुरुष उत्पन्न होता है। स्त्री में ही उत्पत्ति की स्थिति होती है। स्त्री से ही विवाह होता है। स्त्री से ही प्रेम किया जाता है। स्त्री से संसार का क्रम चलता है। एक स्त्री मरने पर दूसरी ढूंढने लग जाते हैं। स्त्री से ही संबंध स्थापित होता है। फिर उसे बुरा क्यों कहा जाए, जिसने सम्राटों को जन्म दिया। स्त्री से स्त्री उत्पन्न होती है। स्त्री के बिना कोई उत्पन्न नहीं होता। केवल परमात्मा ही स्त्री गर्भ में नहीं आता।[१२३]

११३- अमलु करि धरती, बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी। म:१
आ०ग्रं० पृ० २३-२४

११४- कवनु नरकु किआ सुरगु बिचारा संतन दोऊ रादे।
हम काहू की काणि न कढते अपने गुरपरसादे। आ०ग्रं०पृ० ९६९

११५- सगन अपसगुन तिस कउ लगहि, जिसु चीति न आवै। म:५, आ०ग्रं०पृ०४०१

११६- माह दिवस मूरत भले जिन कउ नदरि करे। म:५, आ०ग्रं पृ०१३६

११७- कितिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु- म:५, आ०ग्रं० पृ० १३५

११८- पढ़ि पढ़ि पंडित जोतकी वाद करहि बीचारु। म:३, आ०ग्रं० पृ० २७

११९- माइआ का मुहताजु पंडितु कहावै। म:३, आ०ग्रं० पृ० २३१

१२०- मन का पत्री वाचणी सुखी हू सुखु सारु। म:३ आ०ग्रं० पृ० १०९३

स्त्री केवल पुरुषों द्वारा ही नहीं, घर घर में, स्त्री द्वारा भी तंग की जाती थी। इसका वर्णन अनेक स्थलों पर आदि ग्रंथ में मिलता है। सास ननद देवरानी या जिठानी में उसका झगड़ा प्रायः रोज़ ही होता था।[124] कहीं कहीं उसे [illegible] विरोध का भी [illegible] होना पड़ता था।[125] पुरुष [illegible] नारी तो उससे कुछ कम पर यथावत् अपना मान किया हुआ था।[126] ऐसी अवस्था में गुरु नानक की आवाज़ एक क्रान्ति का सन्देश था।

१-सो किउ मंदा आखीऐ, जितु जंमहि राजान। म:१

२- धन पिर एहि न आखीअनि बहनि इकठे होइ।

एक जोति दुइ मूरती, धन पिर कहीऐ सोइ।[127]

नैतिक स्थिति

जिस समय गुरु ग्रंथ के रचयिता गुरु-साहिबान जीवन को [illegible] रहे थे, उस समय, ऐसे जीवन का अभाव सा दिखाई देता था। सत्य का अकाल पड़ा हुआ था। जीवन अति कलुषित हो गया था।[128] पाप का राज्य था, लोभ उस का मंत्री था, झूठ उसका सरदार था, जिसे उसका प्रधानतः प्रयोग करता था। काम उस राज्य का नायब (सहायक राजकर्मचारी) था, जिस से बैठ कर मंत्रणा प्राप्त की जाती थी।[129] काम की सरकारी ने क्या क्या कुफ़र किलाए थे, उनका पता आदि ग्रंथ के अध्ययन से मिलता है। कामातुर पुरुष अपनी स्त्रियों से भी तृप्त नहीं होते थे। परस्त्री गमन का नैतिक पतन ज़ोरों पर था।[130] यहाँ तक कि त्यागी साधु-योगी भी गृहस्थ जीवन का त्याग कर [illegible] में गिरते थे। भक्त नामदेव ने गुरु नानक ने भी पूर्व

१२१- [illegible] पड़ीऐ [illegible]। [illegible] म:१ आ०ग्र०पृ०९५१ तथा
[illegible] गुरु [illegible] जिसु [illegible]। भाई गुरदास, [illegible]
आ०ग्र० पृ० ६५१ नोट २५

१२ -[illegible] गुरो [illegible], [illegible]। म:१ आ०ग्र०पृ० १२८९-९०

१२३- भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ। आ०ग्र० पृ० ४७३

१२४-(१) [illegible], [illegible] न देवै-[illegible] न देइ [illegible]। म:१ पृ०१५१
(२) [illegible] निमाणा नानक [illegible], [illegible], [illegible] हूँ। म:५
आ०ग्र० पृ० ६६३
(३) [illegible] नो [illegible]। देह निमाणी दुख संताप। म:५
आ०ग्र० पृ० ३७०

इस पतन का अनावरण किया था।[131] कबीर जी भी इस ओर संकेत करते हुए लिखते हैं कि दूसरे के धन, दूसरे के तन तथा दूसरे की स्त्री का अपहरण और निन्दा, तथा झगड़ों का बोल बाला था।[132] यही कारण था कि परवर्ती गुरु ग्रंथ के रचयिताओं को इस पतन के गर्त से लोगों को निकालने के लिये भरसक प्रयत्न करना पड़ा।[133] सुरापान आदि नशों का बहुत प्रयोग था। विलासपूर्ण जीवन का यह विशेष अंग था। आसा राग में गुरु नानक का गुड़ कर गिआन तथा सिरी राग में सच सुरा गुड़ बाहरा दोनों पद इसी ओर संकेत करते हैं।[135] भंग अफीमादि का भी रिवाज था।[136] हिन्दू तथा मुसलमान ग्रंथ दूसरे के अधिकार का अपहरण करना गाय तथा सूअर के वध के तुल्य बताते थे। परन्तु तो भी दोनों जातियों में नैतिक पतन के कारण धर्म ग्रंथों को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी।[137] ऐसा वातावरण कपटाचार को

१२५- सउकनि घर की कंति तिआगी। म:५, आ०ग्रं० पृ० ३६४

१२६- रनां होईआ बोधीआ, पुरस होए सईआद,। म: १, आ०ग्रं० पृ० १२४२

१२७- आ०ग्रं०पृ० ४७३ तथा ७८८

१२८- सचि कालु कूड़ वरतिआ, कलि कालख बेताल। म:१, आ०ग्रं०पृ० ४६८

१२९- लबु पापु दुइ राजा महता, कूड़ होआ सिकदारु।
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु। म:१, आ०ग्रं० पृ० ४६८

१३०- परदारा पर धनु पर लोभा हउमै बिखै बिकार। म:१, मलार, आ०ग्रं० पृ० १२५५

१३१- घर की नारि तिआगै अंधा, पर नारी सिउ घालै धंधा। भैरउ नामदेव, आ०ग्रं० पृ० ११६५

१३२- परधन परतन परती निंदा पर अपबादु न छूटै। राम कली-कबीर पृ० ९७१

१३३- परधन पर दारा पर निंदा इन सिउ प्रीति निवारि। म:५, आसा। पृ० ३७९। तथा पर धन, पर दारा, सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै म:९, सोरठ, आ०ग्रं० पृ० ६३३

१३४- आ०ग्रं०म:१, ३६० तथा रामकली कबीर आ०ग्रं०पृ० ९६९

१३५- सिरि राग म:१ पृ० १५

१३६- तिलंग म: १ पृ० ७२१

१३७- हकु पराइआ नानका उस सूअर उसु गाइ। गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ। माझ म:१ आ०ग्रं० पृ० १४१

जन्म देता है। चारों ओर ठगुगों- ठोरों, कपट तथा प्रवंचना का जाल बिछा हुआ था। कबीर जी ने इस वातावरण का वर्णन करते हुए लिखा है: कपटी लोग बहुत प्रपंच करके परधन लूटकर लाते थे और अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे।[१३८] तभी गुरु नानक ने आवाज़ उठाई कि यदि अन्तरमन में कपट है तो बाहिर की टीप-टाप का लाभ कुछ भी नहीं। जिन के कपड़े बाहिर से बोथड़े दिखाई देते हैं, परन्तु अन्त:करण शुद्ध है, उनके अन्तरमन ने पाट-पंटबर पहन रखा समझो।[१३९] जूआ खेलने का आम रिवाज था।[१४०] लोग रिश्वत लेकर झूठी गवाही दे देते थे।[१४१]

ऐसी अवस्था में आदि ग्रंथ ने शुद्ध सात्विक, विनम्र तथा कपट रहित जीवन जीने के साथ श्रम का आदर करने का सन्देश दिया। जीव दया को सब से महान् बताया।

नम्रता: निवै सु गउरा होइ- म:१[१४२]

मीठा बोलना: मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु।।म:१[१४३]

फीका बोलने वाला मूर्ख : फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ।[१४४]

अपना कमाया धन खाओ खर्चो: घालि खाइ किछु हथहु देहि। नानक राहु पछाणहि सेइ।। म:१[१४५]

क्रियात्मक गृहस्थ बनो: विचे गिरह उदास रहिआ लिव लाइआ।म:३[१४६]

(२) अमलु करि धरती, बीजु सबदो करि, सच की आब नित देहि पाणी।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी।[१४७]

१३८- बहु परपंच करि परधनु लिआवै। सुत दारा पहि आनि लुटावै। मन मेरे भूले कपटु न कीजै। आ०ग्रं० पृ० ६५६।

१३९- अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु। अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै नाही मैलु।। जिन पटु अंदरि बाहरि गुदड़ ते भले संसारि। आसा म:१, आ०ग्रं० पृ० ४७३

१४०- जूऐ खेलणु काची सारी। ऐसा मनु देखिआ जूआरी। गउड़ी म:१, आ०ग्रं० पृ० २२२

१४१- लै लै वढी देनि उगाही, दुरमति का गलि फाहा है। मारू म:१ पृ०१०३२

१४२- आ०ग्रं० पृ० ४७०

आर्थिक अवस्था

पूंजीवाद समाज दो गुटों में बंटा हुआ था। आर्थिक अवस्था का अध्ययन आदि ग्रंथ में अत्यन्त सुचारु रूप से प्रस्तुत किया है। समस्त संसार एक बंदीखाने का रूप बना हुआ था। लोभ लालच का अन्धेरा बन्दी खाना था। अवगुणों को पैरों में बेड़ियां थीं, तथा पूंजीवाद का मुदगर अपना चोट करता था और जेलखाने का जेलर पाप था।[१४८] साम्राज्यवाद के इस अत्याचार को अन्धे तथा मूर्ख लोग मुर्दों की भांति सहन करते हुए बेगार करते थे और शोषण करवाते थे।[१४९] जिस के पास दस एक मन अनाज तथा चार टके गांठ में होते थे। वह टेढा टेढा तथा अकड़ अकड़ कर चलता था, क्योंकि ऐसे व्यक्ति का ही राजसभा में आदर होता था।[१४९] जिस और उसे वहां से सौ सौ गांव तथा दो दो लाख टकों की जागीर मिल जाती थी।[१५०] जब आदर केवल अमीर को ही मिलता था, तब निर्धन को भला कौन पूछता है? कबीर जी कहते हैं, 'निर्धन को कोई आदर नहीं देता था। लाख यत्न करने पर भी उसे धैर्य नहीं मिलता था। यदि निर्धन धनी के यहां जाता था तो धनी उसे देखकर ही पीठ फेर लेता था। परन्तु यदि धनी निर्धन के घर जाता था, तो उसे आदर से बुलाना पड़ता था।[१५१] निर्धन जनता का शोषण केवल शासक वर्ग ही नहीं करता था, वरन् धार्मिक ठेकेदार भी पुजारी-पाठी-ज्योतिषी आदि बन कर भूखी जनता का शोषण करते थे। कहना न होगा कि भक्ति काल के तीन महान नेताओं नामदेव, कबीर तथा गुरु नानक ने केवल नाम सुमरिन का ही सन्देश नहीं दिया, अपितु इस शोषण के विरुद्ध भी आवाज़ उठाई। कबीर जी काशी

१४३- वही।

१४४- आ०ग्र० पृ० ४७३

१४५- आ०ग्र० पृ० ~~४७३~~ १२४५

१४६- आ०ग्र० पृ० १२४६

१४७- आ०ग्र० पृ० २३-२४

१४८- लब अंधेरा बंदी खाना अउगण पैरी।लुहारी पूंजी मार पवै नित मुदगर पापु करे कोटवारी।। म:१ आ०ग्र० पृ० ११९१

१४९- अंधी रयति गिआन विहूणी, भाहि भरे मुरदारु।। म:१, आ०ग्र० पृ० ४६९

१५०- मन दस नाजु टका चारि गांठी, ऐंडौ टेढो जातु। बहुत प्रतापु गांउ सउपाए, दुइ लख टका बरात। सारंग कबीर आ०ग्र० पृ०१२५१

के तत्कालीन पण्डितों के ढोंग का वर्णन करते हुए कहते हैं, इन पण्डितों ने साढ़े तीन तीन गज़ धोतियां पहन रखी हैं और तिहरे तिहरे यज्ञोपवीत डाल रखे हैं। परन्तु इन्हें हरि के सन्त कौन कहता है? यह बनारसी ठग हैं।[१५२] यह लोग अपने बर्तन मांज कर ज़मीन खोद कर चूल्हा बनाकर, लकड़ी धोकर जलाते हैं, परन्तु समूचे आदमी को खा जाते हैं।[१५३] इन लोगों ने ही शूद्र। शूद्र।। कह कर मार मार कर पूजा करते नामदेव को मन्दिर से उठा दिया था।[१५४] गुरू नानक देव स्वयं उच्च सवर्ण हिन्दू जाति में जन्म लेकर भी इन दोनों गुटों में से निम्न वर्ग के साथी बने। महात्मा बुद्ध की भांति उनके कार्य की यही श्रेष्ठता थी।[१५५]

ऐसे वातावरण में अमीर लोग महल चौबारों में रहते थे।[१५६] गरी दुशारे बाते थे, गले में मोतियों के हार[१५८] तथा शरीर पर रेशमी वस्त्र पहनते थे।[१५९] छत्तीस प्रकार के भोजन खाते थे।[१६०] लाखों में खेलते थे।[१६१] इस के उलट गरीब लोग झोंपड़ियों तथा छप्परियों में रहते थे।[१६२] रूखी सूखी और काठ जैसी शुष्क रोटी खाते थे।[१६३] फटे पुराने कपड़े पहनते थे।[१६४]

१५१- निरधन आदरु कोई न देइ। लाख जतन करै ओहु चिति न धरेइ।।
जउ निरधन सरधन कै जाइ। आगे बैठा पीठि फिराइ।
जउ सरधन निरधन कै जाइ। दीआ आदरु लीआ बुलाइ।। आ०ग्रं०पृ० ११५६

१५२- गज साढे तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग।गली जिना जपमालीआ लोटे हथि निबग।। ओइ हरि के सन्त न आखीअहि बानारसि के ठग।।
आ०ग्रं० पृ० ४७५

१५३- आ०ग्रं० पृ० ४७६

१५४- सूदु सूदु करि मारि उठाइओ, कहा करउ बाप बीठुला। नामदेव मलार
आ०ग्रं० पृ० १२९२

१५५- नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु। नानक तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।। म १ आ०ग्रं० पृ० १५

१५६- फरीदा कोठे मंडप माड़ीआं, आ०ग्रं०पृ० १३८०

१५७- गर दुआरे खांदीआं- म:१ आ०ग्रं० पृ० ४१७

१५८- तुटनि मोति सरीआ म: १ आ०ग्रं० पृ० ४१७

१५९- पाट पटंबरू पहिरि। म: १ आ०ग्रं० पृ० २२५

१६०- छतीह अंम्रित भाउ एकु- म:१ आ०ग्रं०पृ० १६
(२) छतीह अंम्रित भोजनु खाणा। म:५, आ०ग्रं०पृ० १००

१६१- इकु लखु लहनि बहिठीआ, लख लहनि खड़ीआ- म:१ आ०ग्रं० पृ० ४१७ तथा

गुरु ग्रंथ में वर्ग-समाज का भी कई स्थानों पर उल्लेख है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अपने आप को अन्य जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते थे। गुरु नानक देव जी लिखते हैं, योगी लोग ज्ञानी होने का दावा करते थे। ब्राह्मण लोग वेदों पर अधिकार जमाए बैठे थे। क्षत्रियों को अपनी वंशगत वीरता पर अभिमान था। और बेचारे शूद्रों को दूसरों की सेवा(बेगार) करनी पड़ती थी।[१६५] गुरु नानक देव ने भिन्न भिन्न वर्णों के लिये निश्चित किए इन कामों का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है, कि इस प्रकार जातियों में कामों का बांटना ठीक नहीं, प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करनाचाहिए, वेद पढ़ने के सब अधिकारी हैं, अपने स्वमान हित सब को शूरवीरता दिखानी चाहिए। हाथ से काम करना प्रत्येक मनुष्य के लिये लाभकारी है। श्रम का आदर ही समुचित जीवन है।[१६६] भक्त नामदेव जाति के छींपा थे। कपड़े धोने, छापने तथा सीने का काम करते थे। दर्जी सूई, कैंची का वर्णन उन की रचना में मिलता है।[१६७] कबीर जी ने नामदेव तथा भक्त त्रिलोचन की एक वार्ता अपने दो दोहों में वर्णन करते हुए श्रम की महिमा बताई है। त्रिलोचन, नामदेव को मिलने गए नामदेव जी छायलों को छाप रहे थे। त्रिलोचन ने उन से कहा, नामदेव। माया से क्यों मोहित हो गए हो। छायलों को ही क्यों छापते रहते हो। राम नाम में मन क्यों नहीं लगाते? नामदेव ने कहा भाई त्रिलोचन मुख से राम नाम का सुमरिन करो, तथा हाथ पाऊं से कार्य करो।[१६८] काम ही भक्ति है, यह आदि ग्रंथ के प्रत्येक रचयिता का जीवन सिद्धान्त था। कबीर जुलाहे का काम करते थे। गुरु नानक ने १५२१ से १५३६ तक करतार पुर में हल चला कर जीवन यापन किया।

१६२-(१) किचर कति लंघाईऐ छपरि तुटै मेहु।। फरीद आ०ग्रं० १३७८

(२) पाडु पडोसणिपूछिले नामा का पहि छानि छवाई हो ।। आ०ग्रं०पृ० ६५७

१६३- फरीदा रोटी मेरी काठकी- लावण मेरी भुख। जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख। (?) रुखी सुखी खाइ कै ठंडा पाणी पीउ।

फरीदा देखि पराई चोपड़ी न तरसाए जीउ।। आ०ग्रं० पृ० १३७६

१६४- बाहरि गुदड़ - म: १ आ०ग्रं० पृ० ४७३

१६५- जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राहमणाह। खत्री सबदं सूर सबदं,सूद्र सबदं पराकृतह।। म:१ आ०ग्रं० ४६६

१६६- सरब सबदं एक सबदं, जे को जाणै भेउ। आ०ग्रं० ४६६, घालि खाइ किछु हथहु देहि। आ०ग्रं० पृ० १२४५

१६७- मन मेरो गजु जिहबा मेरी काती। - रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ।।

सुइने की सुई रुपे का धागा। नामदेव आ०ग्रं० पृ० ४८५

१६८- सलोक कबीर संख्या २१२,२१३, आ०ग्रं० पृ० १३७६

रविदास चमार का काम करते थे। धन्नाभगत जाट का कामकरते थे। सैन नाई थे, सधना कसाई थे। गुरु नानक की रचना में किसान, खेत, हल, बैल, सुहागा, बीज पानी आदि का वर्णन उनके अपने व्यवसाय के कारण है।[१६६] उनकी बाणी में, अन्य कई व्यवसायों के रूपक भी मिलते हैं। जपु जी साहिब में सुनार का वर्णन है।[१७०] माझ की वार में लोहार का वर्णन है।[१७१] सिरी राग में माली,[१७२] राज मिस्त्री,[१७३] मछेरे,[१७४] सिपाही[१७५], धाणुक[१७६] आदि का वर्णन मिलता है। धाणक एक तीर कमान लेकर शिकार करके जीवन-यापन करने वाली जाति थी। इसका निवास हरियाणा, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान में अब भी है। वहां के लोग इन्हें नीच समझते हैं। धाणुक के हाथ में धनुष होता है। गुरु नानक ने परमात्मा को भी धाणुक रूप में देखा वह 'धाणुक' उनका 'सारंग पाणि' बन गया। यह सब उनकी नीच जातियों से प्रीति के कारण है। वे तो अवर्ग तथा वर्ग निर्पेक्ष समाज के प्रवर्तक थे। किसी ने उन्हें भूतना तथा बेताला कहा तो किसी अन्य ने उन्हें आदमी कहा।[१७७]

आदि ग्रंथ के कवियों ने आर्थिकता के कुछ विशेष तथ्यों पर भी प्रकाश डाला है। अन्न मनुष्य के स्वास्थ्य तथा जीवन के लिये अनिवार्य है। कबीर ने अन्न को परमात्मा कहा और इस से सारी उत्पत्ति बताई है।[१७८] यह औपनिषदिक विचार है।[१७९] गुरु नानक देव कहते हैं खान पान पवित्र है अतः पवित्र भोजन जो परमात्मा ने व्यवसाय के रूप में दिया है, उसका सेवन करना चाहिए।[१८०] कबीर जी

१६६- इहु तनु धरती, बीजु करमा करो सलिल- म: १, पृ० २३१
खेती: हरी नही ना हढुरी पको वढणहार- पृ०४३ तथा
मन हालो, किरसाणी करणी, सरमु पाणी तन खेतु। नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु। म:१ आ०ग्रं० पृ० ५६५ लोग गठावे पनही-सोरठ रविदास आ०ग्रं० पृ० ६५६
१७०- जतु पाहारा धीरजु, सुनिआरु, अहरणि मति, वेदु हथिआरु।। आ०ग्रं पृ०८
१७१- कैहा कंचनु तुटै सारु। अगनी गंढु पाए लोहारु। आ०ग्रं० पृ० १४३
१७२- जाके रुख बिरख आरउ -म: १, पृ० २५
१७३- कचा रंग कचा जिचि राजु- म:१ पृ० २५
१७४- आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु- म: १ आ०ग्रं० पृ० २३
१७५- सिपाही- सिरी राग- ४-७- पृ० १६
१७६- धाणक रूप रहा करतार- १-४-२६, सिरी राग म:१, पृ० २४

ने तो भक्ति के लिये भी आर्थिक दशा का संतोषजनक होना जरूरी बताया है। उन्हों ने कहा है, 'भूखे भक्ति न कीजे। यह माला अपनी लीजे।' तथा उन्हों ने अपना प्रति दिन की खुराक का ब्योरा भी लिख दिया है। दो सेर आटा, पाओ घी, नमक, आध सेर दाल- यह दो जून का राशन मांगा है। सोने के लिये चार पायों वाला खाट मांगा है। तकिया, तलाई, लिहाफ की भी आवश्यकता बताई है। तथा अन्त में लिखते हैं कि यह कोई लोभ नहीं किया वरन् यह तो जीवन की आवश्यकताएं हैं।[१८१] तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था के कारण किसी के पास अधिक और किसी के पास कुछ भी नहीं था। फलत कवियों ने अनुपयुक्त-वितरण की ओर भी संकेत किया है। फरीद जी कहते हैं, किसी के पास बहुत अधिक आटा है और किसी के पास नमक भी नहीं।[१८२] तभी तो धन्ना भक्त ने कबीर की भान्ति अपनी आवश्यकता की चीज़ों का विवरण देते हुए कहा था, 'आटा दाल, घी आदि मिल जाए तो खुशी की बात है। अच्छी सी जूती तथा वस्त्र भी चाहिएं। जाट थे, अत: खेती का पूरा ज्ञान था। अनाज ऐसी खेती का मांगते हैं, जो सात बार बाही जोती गई हो। इन वस्तुओं के अतिरिक्त दूध के लिये गाय-भैंस भी मांगते हैं। इसी प्रकार एक अच्छी सी घोड़ी मांगते हैं। संभवत: कहीं आने जाने के लिये बहुत समय न लगे, तथा घोड़े से खेती के काम में बाधा न पड़े। किसान अपने काम में इतना व्यस्त होता है कि उसे खेतों से अवकाश नहीं मिलता। इस लिये घर का प्रबंध चलता रखने के लिये गृहिणी भी अच्छी सी मांगते हैं।'[१८३]

उस समय जब योगी, सन्यासी आदि गृहस्थ जीवन का त्याग बताते थे, आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने जीवन से भागने की अपेक्षा इसे ठीक ढंग से जीने का उपदेश दिया। जनता के शोषकों को राक्षस बताया।[१८४] तथा एक साम्यवादी अर्थ व्यवस्था का दृश्य प्रस्तुत किया, जिस में सब लोग समान होते हैं।[१८५] गुरु ग्रंथ के रचयिताओं को वर्ण-व्यवस्था तथा तद्‌जनित घृणा से अत्यधिक घृणा थी। वे लोगों को हिन्दू मुसलमान नहीं वरन् मानव बनाना चाहते थे। इस लिये उन्हों ने अर्थ व्यवस्था के अनुपयुक्त-वितरण की पृष्ठ-भूमि में इस वर्ण-

---

१७७- कोई आखै भूतना कोई कहै बेताला। कोई आखै आदमी नानकु वेचारा।
    मारू म:१ आ०ग्रं० पृ०

१७८- गौंड कबीर - आ०ग्रं० पृ० ८७३

१७९- तैतिरयोपनिषद- २-२-१।

१८०- खाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु संबाहि। आ०ग्रं० पृ० ४७२

१८१- आ०ग्रं० पृ० ६५६

व्यवस्था को कारण समझा। गुरु अमर दास जी कहते हैं, 'हिन्दू के घर हिन्दू जन्म लेता है और सूत-जनेऊ पहन कर बड़ा बनता है। परन्तु बुराई करते हुए भी वह कैसे बड़ा हो सकता है? मुसलमान अपनी बड़ाई करते हैं परन्तु बिना शुभ कर्मों के किसी का उद्धार नहीं होगा।[१८६] कबीर को तो उस कर्ता से भारी गिला है, जिसने मानव को हिन्दू-मुसलमान के गुटों में बांट दिया।[१८७] इसी कारण नानक दरवेश ने भी अपनी जाति को कोई नहीं माना। सब को मानव कहा।[१८८]

गुरु नानक देव जी ने एक विश्व-अर्थ शास्त्री के रूप में यह भली भांति समझ लिया था, कि अमीर आदमी ~~कक~~ दूसरों का अधिकार छीन कर, अत्याचार द्वारा पाप कर्मों से अमीर बने हैं। अमीर का अमीर होना तथा गरीब का गरीब होना अमीर द्वारा गरीब का शोषण है।[१८९] ~~इसका~~ उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अपनी नेक कमाई से कोई अमीर नहीं बनसकता। इस का कारण स्वामी-दास प्रथा है। स्वामी के हां धन-वैभव तथा बहुतात है, दास के हां खाने को दो जून का भोजन नहीं और वह रोटी के लिये हाथ फैलाता है। परन्तु आदि ग्रंथ के रचयिता मांग कर खाने से मर जाना अच्छा समझते हैं।[१९०] डा० इकबाल ने इस बात को कई शतियों पश्चात् नवीन ढंग से कहा था, 'ऐ स्वर्गीय पक्षी। उस दाने से मौत अच्छी है, जिस के चुगने से गगन-विहार में बाधा पड़ती हो।'[१९१] दास प्रथा की इस बुराई के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठाते हुए दासों को गुरु नानक ने कहा था, धनी पुरुषों के पास अधिक धन है। उन्हें धन की चिन्ता तथा भय रहता है, तुम्हें कैसा डर है? जब भी समय आये गा। इन धनी सरदारों ने तुम्हारे हाथों मरना है।[१९२] यह दासों के लिये, अमीरों सरदारों, पूंजीपतियों आदि के विरुद्ध एक महान संदेश था, जिसमें क्रान्ति निहित थी।

१८२- फरीदा इकना आटा अगला, इकना नाहीं लोण- आ०ग्रं० पृ० १३८०

१८३- आ०ग्रं० पृ० ६६५

१८४- जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु।जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमल चीतु। म:१ आ०ग्रं० पृ० १४०

१८५- एक नूर ते सब जग उपजिआ कउन भले को मंदे। कबीर प्रभाती आ०ग्रं०पृ०१३४९

१८६- हिन्दु के घरि हिन्दू आवै - - - मुसलमान रे वडिआई - - - करणी बाझहु तरै न कोई। आ०ग्रं० पृ० ९५१-९५२

१८७- हिन्दू तुरक कहा ते आए किनि एह राह चलाई। आसा: कबीर आ०ग्रं०पृ०४७७

१८८- फकड़ जाती फकड़ु नाउ ।। सभना जीआ इका छाउ।। म:१, आ०ग्रं०पृ०८३

१८९- पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई- म:१ आ०ग्रं०पृ० ४१७

६- व्यवहारिक स्थिति : हिन्दू लोग स्वच्छता की ओर अधिक ध्यान देते थे। खाना पकाते समय लकड़ी को धो कर जलाते थे। विशेष प्रकार का चूल्हा बनाते थे। चौका बनाकर उसमें किसी को आने नहीं देते थे। परन्तु इस पर भी शासकों की ही नकल कर के उन के धर्माचार का पालन करते थे। नैतिक स्थिति में इस ओर संकेत किया गया है। मुसलमान ऐश्वर्य पूर्ण तथा विलासमय जीवन व्यतीत करते थे, यह उनके धार्मिक सिद्धान्तों में मान्य था।[१९३] आर्थिक स्थिति में वर्ण-व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। लोग अपने अपने वर्ण का व्यवसाय करते थे। शूद्रों की दशा दयनीय थी। लोगों के आम पेशे, किसान, लोहार, मोची, दर्जी, जुलाहा, मेहेरा धाणक आदि के थे। ब्राह्मण लोग पूजा का धान खाते थे और अन्य वनवासियों को लूटते थे। कबीर ने इन को बानारसो ठग कहा है।[१९४] चौपड़, शिकार, बाजी का तमाशा आदि लोगों के मनोरंजन थे।[१९५] लोग जुआ भी खेलते थे।[१९६] शराब पीने का आम रिवाज था और शराब निकाली भी जाती थी। गुरु ग्रंथ में लिखा है कि गुड़ तथा महुए (धावे) के फूलों से शराब निकाला जाती थी। कबीरतथा गुरु नानक ने शराब निकालने की भाठी का पूरा विवरण दिया है।[१९७] गुरु ग्रंथ में राजाओं के व्यवहारिक जीवन का वर्णन है। उनकी सेना चार प्रकार की थी: हाथी रथ-घोड़े तथा पैदल। तुपक (छोटा तोप) का वर्णन बाबर के आक्रमण के समय गुरु नानक ने किया है। प्रकोटों की दीवारें दोहरी और पक्की होती थीं और उन के आस पास तिहरी खाई होती थी। उनके ऊंट, घोड़े, हाथी, खापर, निवारी पलंग, तंबू कनात (सराचे) कीमखाब (लालरी) सिर पर फूलत सुनहरी छत्र, नेज़ बाजे, कहे चारों ओर से नमस्कार, बड़े बड़े प्रासाद, हरम-रनिवास, अनेक स्त्रियां उनके नौकरों की लाल वर्दी, गलीचे, बगीचे, चोआ चन्दन की महक, कीमती वस्त्रों तथा सुसज्जित सेजों का स्थान स्थान पर वर्णन है।[१९८] इसी शाही ठाठ तथा विलासमय

१९०- फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि। जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि।। आ०ग्र० पृ० १३८०

१९१- ऐ तायर-ए-लाहूती, उस रिज़्क से मौत अच्छी, जिसरिज़्क से आती हो परवाज़ में कोताही। बाले-जबरील, गज़ल न० ३४, पृ० ३८, मकतबा बुक डिपो, दिल्ली-६।

१९२- जिस सिकदारी, तिसहि खुआरी, चाकर केहे डरना।
जा सिकदारै पवै जंजीरी ता चाकर हथहु मरणा । रामकली म:१,
आ०ग्र० पृ० ९०२

जीवन के प्रति गुरु नानक को घृणा हुई थी और उन्होंने कहा था : पापा बाझहु होवै नाही मुआ साथि न जाई।[199] गरीब अमीर के मध्य पारंपरिक अन्तर की ओर अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विचार हो चुका है।

लोग बैसाखी, बसंत, होली, फाग, दीवाली, दुसहरा आदि त्योहारों को मनाते थे। इन त्योहारों का आदि ग्रंथ में स्थान स्थान पर वर्णन है।[200]

खान पान आदि का उल्लेख आर्थिक जीवन के अंतर्गत हो चुका है। उस समय दास-स्वामी व्यवस्था के कारण लोक जीवन सुखी नहीं था।[201]

७- संख्यापरक पद्धति : सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन प्रस्तुत करते समय, कुछ एक परंपरागत विश्वासों तथा रूढ़ियों को आधार मान कर आदि ग्रंथ में उन तत्वों को ढूंढने का प्रयत्न किया गया है। प्राचीन साहित्य में जिन संख्याओं का सांस्कृतिक महत्व स्वीकार किया गया है, उनका आदि ग्रंथ में किस प्रकार प्रयोग हुआ है, उसका विवरण प्रस्तुत है:-

---

१९३- बाबर-ब-ऐश कोश कि आलम दुबारा नेस्त- (बाबर ऐश कर ले, दुनिया में फिर नहीं आना) - तोजुके बाबरी

१९४- आ०ग्रं० पृ० ४७५

१९५- नटूवै सांग बणाइआ बाजी संसारा- इसमें चउपड़ि खेलणा- आ०ग्रं०पृ० ४२२ तथा मिग पकरे घरि आणे हाटि-चुख चुख ले गए बादि बाटि। आ०ग्रं० पृ० ११३६।

१९६- जूवै खेलण काचो सारी। (जैसा जगु देखिआ जूआरी)। म:१, आ०ग्रं० पृ०२२२

१९७- गुरु नानक: गुड़ करि गिआन धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ। भाठी भवनु प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुआईऐ। आ०ग्रं०पृ०३६०

कबीर: गुड़ु करि गिआन धिआनुकरि महूआ- भउ भाठी मन धारा। आ०ग्रं० पृ० ९६९

१९८- श्री गुरु ग्रंथ साहब दी साहित्तक विशेषता- गोपाल सिंह -पृ० ८६

१९९- आ०ग्रं० पृ० ४१७

२००- (१) नानक वैसाखी प्रभु पावै सुरति सबदि मनु लीना। आ०ग्रं० पृ० ११०८

(२) माह माह मुमारखी चड़िआ सदा बसंत। आ०ग्रं० पृ० ११६८

(३) आजु हमारे बने फाग। आ०ग्रं० ११८०

(४) आज हमारै ग्रिहि बसंत। होली कीनी सन्त सेव। आ०ग्रं० पृ० ११८०

(५) दीपक सबदि बले। म: १- आ०ग्रं० पृ० ११०९

(६) गुर गिआन साचा थानु तीरथु दस पुरब सदा दसाहरा। म:१ पृ० ६८७

एक: परमात्मा एक है, उसका नाम सत्य है। वह सृष्टि का रचयिता है, उसे किसी का भय नहीं, उसका किसी से वैर नहीं। वह अकाल-मूर्ति, अयोनि, स्वयंभू तथा गुरु कृपा से जाना जाने वाला है।[202]

युग्म: जोड़ा- सूर्य चान्द, पुरुष स्त्री आदि।

तीन: योगियों की तीन क्रियाएं, रेचक, पूरक, कुंभक।[203] तीन प्रकार के ताप: (आध्यात्मिक, अधिभौतिक, अधिदैविक)[204] तीन प्रकार की पवन: शीत, मंद, सुगंध[205] तीन प्रकार की व्याधियां (आधि, व्याधि, उपाधि)[206] तीन अवस्थाएं : वेदों का विषय तीन गुणों की क्रिया से संबंधित है। (त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।- राजस, तामस, सत्वगुण)[207] तीन लोक: मृत्यु लोक, स्वर्ग लोक, पाताल लोक,[208] तीन देवता: ब्रह्मा, विष्णु, महेश[209] तीन नदियां: कर्म, ज्ञान, भक्ति।[210]

चार: चार वेद(ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद)[211] चार युग: सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि[212] आत्मा की चार अवस्थाएं: तीन ऊपर वर्णित, चौथी तुरिया चार वर्ण- चार आश्रम: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र- आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास[213] चार पदार्थ: धर्म, अर्थ, काम मोक्ष,[214] चार किल विष (ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-स्त्री-गमन अथवा: एक अन्य मत, ब्रह्म हत्या, गौ-हत्या, दुहिता हत्या, भ्रष्टाचार[215] चार दिशाएं: पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण[216] चार खाणियां: अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज[217], चार मुक्तियां: सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य[218] सूफी मत के चार मार्ग: शरीयत, मारिफत, तरीकत, हकीकत[219][220]

२०१- नानक दुखीआ सभु संसार। म:१ आ०ग्रं० पृ० ९५४

२०२- आ०ग्रं० पृ० १

२०३- रेचक पूरक कुंभक करै। आ०ग्रं० पृ० १०४३

२०४- आधि न साकहि तीने ताप। आ०ग्रं० पृ० ७४३

२०५- सीत मंद सुगंध चलिओ सरब थान। आ०ग्रं० पृ० १०१८

२०६- आधि बिआधि उपाधि- आ०ग्रं० पृ० १२२३

२०७- गीता २-४२, तीनि अवस्था कलि- आ०ग्रं० पृ० १५४

२०८- तीन त्रिलोक समाधि- आ०ग्रं० पृ० ६७४

२०९- तीन देव आ०ग्रं० पृ० ३४४,४६८, ब्रह्मा बिसन महेसि- आ०ग्रं० पृ० ६०८,१०१३

२१०- तीनि नदी- आ०ग्रं० पृ० ३४४

२११- चारे बेद कथहि आकारु- आ०ग्रं० पृ० १५४

२१२- सतियुग सतु तेता जगी, दुआपरि पूजाचार.. कलि केवल नाम आधार।
आ०ग्रं० पृ० ३४६

पांच: पांच ज्ञान इन्द्रियां: नाक, कान, नेत्र, जिह्वा, त्वचा[221]; पांच कर्म इन्द्रियां: हाथ, पैर, मुंह, गुदा, लिंग[222]; पांच तत्व: पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश[223]; पांच प्राण: प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान;[224] पांच तन्मात्र: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध[225]; पांच विकार: काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार।[226] पांच नमाजें (नमाजे सुबह, नमाजे पेशीन, नमाजे दीगर, नमाजे शाम, नमाजे खुफ्तन)[227]

छ: छ: दर्शन: योग, सांख्य, न्याय, वेदान्त, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा[228] छ: कर्म: यज्ञ करना, यज्ञ कराना, विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, दान देना, दान लेना;[229] छ: चक्र: मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा[230]

२१३- तुरिआ अवस्था सतिगुर ते- आ०ग्रं० पृ० १५४

२१४- (१) ब्रहमन बैस, सूद अरु खत्री आ०ग्रं० पृ० ८५८

(२) चारि बरन चारि आस्रम- आ०ग्रं० पृ० १२६७

२१५- परधु अबध सभु कामु मोहु है- आ०ग्रं० पृ० १३२०

२१६- देखिए संख्या कोष पृ० ४३ तथा चारे किलविख उनि अघ किए- आ०ग्रं०पृ०७०

२१७- चारि कुंट दह दिस भ्रमे- आ०ग्रं० पृ० १३३

२१८- अंडज, जेरज, सेतज उतभुज घटि घटि जोति समाणी- आ०ग्रं० पृ० ११०६

२१९- चारि मुकति चारै सिधि- आ०ग्रं० पृ० ११०५

२२०- आ०ग्रं० पृ० १०८३

२२१- पंच सखी हम एक भतारो। आ०ग्रं० पृ० ३५६

२२२- बीस सपताहरो(५ सूक्ष्म, ५ स्थूल, ५ ज्ञान, ५ कर्म इन्द्रियां) (पांच प्राण + मन + बुद्धि) शब्दार्थ आ०ग्रं० पृ० २३

२२३- अपु तेज वाइ प्रिथवी- आ०ग्रं० पृ० १०३१

२२४- पंच पछाआ दर महि रहतो। आ०ग्रं० पृ० ३२६

२२५- रूप रंग सुगंध, भोग, तिआगि चले माइआ छले कनिक कामिनी म: ५, आ०ग्रं०८०१

२२६- काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अंहमेवा। म: ५ आ०ग्रं० पृ० २६६

२२७- पंज निवाजां वखत पंज- म: १, आ०ग्रं० पृ० १४१

२२८- षट दरसन सभे परे- कबीर आ०ग्रं० पृ० १३७५

२२९- षट करम कुल संजुगतु है- रविदास- आ०ग्रं० पृ० ११२४

२३०- उलटत पवन चक्र षटु भेदे, -कबीर आ०ग्रं० पृ० ३३३

(२) छठि खटु चक्र- कबीर पिता- आ०ग्रं० पृ० ३४३

छः दिशाएं: उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊपर तथा नीचे,[२३१] छः यती: जैन परंपरा में अभिभूत छ: यती[२३२], नानक प्रकाश में छ: यतियों के नाम इस प्रकार दिए हैं।[२३३]

अब छः जती गुणों दे जानो। लछमण, गोरख अर हनुमाना।
भीषम, भैरव दत्त पछानो।

छः भेष (योगी, जंगम, जैनी, सन्यासी, बैरागी, वैष्णव[२३४] ; आदि) में इन छः भेषों पर भिन्न भिन्न स्थानों पर टिप्पणियां मिलती हैं।

१- जोगी, जंगम, सन्यासी : जोगी जंगम अरु संन्यासी- म:६ बसंत[२३५]
२- जैनी : जैन मारग संजम अति साधन: सुखमनी म:५[२३६]
३- बैरागी : जो मनु मारहि अपणा, सो पुरख बैरागी राम।म:३[२३७]
४- वैष्णव : कबीर बैसनउ की कूकरि भली, साकत की बुरी माइ।।[२३८]

छः राग: भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्रीराग, मेघ राग[२३९], छः रस: मीठा, नमकीन, चटपटा, तीखापण, खट्टा तथा कड़ुवा।[२४०] ऋतुएं छ:: वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर।[२४१]

२३१- छह दिस धाए- कबीर तिन्ती- आ०ग्रं० पृ० ३४३
२३२- छिअ जती माइआ के बंदा-कबीर आ०ग्रं०पृ० ११६०
२३३- संख्या कोश पृ० ६६ तथा शब्दार्थ अं०ग्रं० पृ० ११६०
२३४- संख्या कोश पृ० ६७
२३५- आ०ग्रं० पृ० ११८६
२३६- आ०ग्रं० पृ० २६५
२३७- आ०ग्रं० पृ० ५६६
२३८- आ०ग्रं० पृ० १३६७
२३९- आ०ग्रं० पृ० १४२६ (रागमाला)
२४०- सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे।
खट तुरसी मुखि बोलणा- आ०ग्रं० पृ० १६
२४१- रुति सरस बसंत.. ग्रीखम रुति अति गाखड़ी.. रुति बरसु सुहेलीआ...
रुति सरद अहंबरो.. रुति सिसीअर, हिमकर रुति मनि मानधतो- आ०ग्रं०पृ०६२७-२

सात: वार : रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि;[२४२] धातु : चर्म, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य;[२४३] आकाश-पाताल : ७-७ चौदह- लोक कादरि के वि... जाप,[२४४] सात द्वीप: जंबू, प्लक्ष (शाक) शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर; सात सागर: क्षीर, दधि, घृत, ईख, मधु, मीठे जल का, खारे जल का;[२४५] सात पाताल: अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल, मुसलमानी विश्वास के अनुसार: ... , ..., ..., ..., ..., ..., ...[२४६], सात पुरियां (अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची (मद्रास के चेंगलपट जिले में), अवन्तिका (उज्जैन) द्वारावती (द्वारिका)- अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची अवंतिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायका:[२४७] सात सुर: षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद।[२४८]

आठ: धातु (सोना, चांदी, तांबा, जस्त, पारा, कला, लोहा, सीसा);[२४९] शारीरिक धातु: माता से- मांस, नाड़ी, त्वचा, रक्त; पिता से: अस्थि, मज्जा, चर्बी, वीर्य[२५०], आठ सिद्धियां : अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता;[२५१] आठ पुत्र : दशरथ राजा के आठ आठ पुत्र,[२५२] आठ पहर: दिन रात के[२५३]

२४२- पंद्रह तिथीं सात वार- कबीर ग्रं० पृ० ३४३

२४३- सात सूत ... बिलावल कबीर ग्रं० पृ० ८५६

२४४- संख्या कोश : पृ० १०७, तथा कादरि कादह लोक ... ग्रं० पृ० ३४३

२४५- सपत ... सागरा, वार ग्री म:४, ग्रं० पृ० ८४

२४६- सपत पाताल की वाणी- ... ग्रं० पृ० ६३

२४७- तीर्थ पारिजात से संख्या कोश पृ० ११५ पर उद्धृत, तथा
जल थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार। ग्रं० पृ० ४६६

२४८- पंच तंत्र करि ... , सात सुरां है वाले। म: ५ ग्रं० पृ० ८८५

२४९- आठ धातु पातशाह की घड़ीऐ ... विगास । म:१ ग्रं० पृ० ६१

२५०- संख्या कोश - पृ० १२३, भ... कोश-पृ० १६

२५१- अठ सिधि नव निधि ... - म: ५ ग्रं० पृ० ११०४

२५२- ... पृ० १४२६-३०।

२५३- आठ पहर ... - ग्रं० पृ० २००

नौ: नव ग्रह : सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु;[२५४] नौ द्वार : दो आँखें, दो कान, दो नासिका, एक मुंह, गुदा, मूत्रद्वार;[२५५] नौ ध्वनियां: गुरु ग्रंथ की वारें;[२५६] नौ निधियां: पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व- मार्कण्डेय पुराण अध्याय-६८;[२५७] नवधा भक्ति: श्रवण, सुणि सुणि जहु मन निरमल होवै- आ०ग्रं०पृ० ७८०; २- कीर्तन: कथा कीरतन राग नाद धुनि इहु बनिओ सुभाउ। आ०ग्रं० पृ० ८१८; ३- स्मरण: हरि हरि कबहू न मनहु बिसारे, आ०ग्रं० पृ० २१०; ४- पादसेवन: हरि चरण कंवल मकरंद लोभित मनो, अनदिनो मोहि आही पिआसा। आ०ग्रं०पृ० १३; ५- अर्चन: चरणी हूं जे रहे घट अंतरि पूजा होइ, आ०ग्रं० पृ० ४८९; ६- वन्दना: नमसकार डंडउति बंदना, अनिक बार जाउ बारे, आ०ग्रं० पृ० ८२०; ७- सख्य: तू मेरा सखा तू ही मेरा मीत। तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीत। आ०ग्रं० पृ० १८१; ८- दास्य: मुल खरीदी लाला गोला, मेरा नाउ सभागा। गुर की बचनी हरि बिकाना जितु लाइआ तितु लागा। म:१, आ०ग्रं० पृ० ९९१; ९- आत्म निवेदन: अब हम चली ठाकुर पहि हारि। जब हम सरणि प्रभु की आई, राखु प्रभु भावै मारि। देवगंधारी म:४, पृ० ५२७-२८; यह 'भगति नवै प्रकारा' अर्थात् नौ प्रकार की भक्ति है।[२५८]
नौ द्रव्य : पृथ्वी, पानी, तेज, वायु, आकाश, काल, दिग्, आत्मा, मन।[२५९]
नौ खंड : कुरु, हिरण्यमय, रम्यक, इला, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर, भारत;[२६०]
नौ नाथ: नाथ परंपरा में आविर्भूत नव नाथ, आदि नाथ, मत्स्येंद्र नाथ, उदयनाथ, संतोषनाथ, कंथड़ नाथ, सत्य नाथ, अचंभनाथ, चौरंगी नाथ तथा गोरखनाथ। एक और मत के अनुसार: आदि नाथ, संतोष नाथ, शेष नाथ, अचंभ नाथ, गजकंठनाथ प्रज्ञानाथ, मत्स्येंद्र नाथ, गोरख नाथ।[२६१]

२५४- नव ग्रह कोटि ठाढ़े दरबार- कबीर आ०ग्रं० पृ० ११६३
२५५- नउ दरवाजे, आ०ग्रं० पृ० ११०, १५२, ६५४, १३२३।
२५६- नौ वारों पर लोक साहब की नौ ध्वनियां (आदि ग्रंथ)
२५७- सलोक कबीर- १५२ राम राजा नउ निधि मेरै- आ०ग्रं० पृ० ११०७
२५८- भगति नवै परकारा। पंडित वेद पुकारा। म:५, आ०ग्रं० पृ० ७१
२५९- नउ नाइक की भगति पछानै। आ०ग्रं० पृ० ८७३
२६०- नवै खंड की पृथमी मांगै। राग कबीर आ०ग्रं० पृ० ४७७
२६१- भजन कीत-५१४, गुण गावहि नवनाथा। आ०ग्रं० पृ० १३९०

दस: अवतार : २४ माने गए हैं। मुख्य दस ही हैं। आदि ग्रंथ में अवतारों की संख्या दस ही दी गई है। (सत्य युग: मत्स्य, कच्छप, बाराह, नरसिंह, वामन, त्रेता: परशुराम, श्री राम चन्द्र, द्वापर: श्री कृष्ण, कलि: बुद्ध तथा कल्की)[262], दस इन्द्रियां: पांच कर्म, पांच ज्ञान;[263] दस दिशाएं : चार मुख्य, चार कोने, ऊपर तथा नीचे,[264] दस दशाएं। पुरुष की- दूध, माता पिता, भाई-भाभी -स्त्री, खेल, ज्ञान, धन, नाम, संख्य, क्रोध, बुढ़ापा, मृत्यु,[265] दस पर्व: हिन्दू मत के अनुसार- अष्टमी, चौदस, पूर्णमासी, संक्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायण, व्यतिपात, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण। एक अन्य मत, ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दसवीं तिथि, हस्त नक्षत्र, बुधवार, गुरुकरण, आनंद योग, वृतिपात, कन्या का चांद, वृष का सूर्य।[266] सन्यासियों के दस पंथ: तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्यक, गिरि, पर्वत, सागर, सारस्वती, भारती, पुरी।[267] दस वायु: प्राण, समान, अपान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय।[268]

बारह: योगियों के बारह पंथ: हेतु, पाव, आई, गम्य, पागल, गोपाल, कंथड़ी वन, धज, चोली, रावल तथा दास पंथ।[269] बारह वान्नि अथवा बानी का सोना: बारह बार साफ किया हुआ सोना।[270] बारह योजन छत्र: दुर्योधन का छत्र बारह योजन पर फैला था।[271] बारह महीने: देखिए बारह माह माझ म:१, तुखारी छन्त म:१।[272] बारह सूर्य: विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र, उरुक्रम,[273] चक्र : अनाहत चक्र, जिसमें बारह दल होते हैं।[274]

२६२- हुकम उपाए दस अवतारा। म:१, आ०ग्रं० पृ० १०३७

२६३- निरतन करे दसों अंद छूटे। आ०ग्रं० पृ० ४८०

२६४- चार कुंट दह दिस भ्रमे- म:५, आ०ग्रं० पृ० १३३

२६५- पहिले पियारि लया थनदुधि- दूजे दया होवा गुमाला। म:१, आ०ग्रं०१३७

२६६-दस पुरब सदा दसाहरा- आ०ग्रं० पृ० ६८७

२६७- (१) बहुविध भेख सनिआसी। आ०ग्रं० पृ० १३३२ (२) संनिआसी छित्र आ०ग्रं० पृ० ६४१, (३) गुरुमत प्रभाकर- पृ० १८६

२६८- संत कबीर- पृ० ४९०, दस मुदाफ बावनि- आ०ग्रं० पृ० ९८३

२६९- (१) बारह महि जोगी भरमाए- आ०ग्रं० पृ० ६४१, ( ) बारह महि रावल खपिजाविह- आ०ग्रं० पृ० १३३२।

२७०- (१) बारह वंनि कुंदन- आ०ग्रं० पृ० १०५४, (२) जागरि कंचु बारहा, भीतरि भरी भंगार- आ०ग्रं० पृ० १३७२

तेरह: तेरह शास्त्र: चार वेद, छः वेदांग, स्मृति, पुराण एवं शास्त्र,[275]

चौदह: लोक: चौदह लोक- भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक एवं जनलोक, [illegible], [illegible] में [illegible] [illegible] गये हैं [illegible],[276] चौदह रत्न: देवताओं ने [illegible] [illegible] समुद्र [illegible] समुद्र मंथन किया था। उसमें से चौदह रत्न निकले थे। [illegible], [illegible], घोड़ा, [illegible], मणि, ऐरावत हाथी, धनुष, रंभा, चंद्रमा, विष, [illegible], [illegible] आदि।[277]

पंद्रह: पंद्रह तिथि: अमावस्या से लेकर पूर्णिमा तक।[278]

सोलह: [illegible]: [illegible] जिनमें १६ कला होती हैं।[279] सोलह श्रृंगार: १६ श्रृंगारों का भिन्न भिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन है।[280] रसिक प्रिया में केशव ने १६ श्रृंगार का प्रकार दिये हैं:-[281]

प्रथम सकल शुचि मज्जन अमल बास, जावक सुदेस केश पास को सुधारबो।
अंगराग भूषण विविध मुखवास रंग, कज्जल-ललित लोल लोचन निहारबो।
बोलन हसन मृदु चलन चितौन चारु, पल पल पतिव्रत प्रण प्रतिपारबो।
केशोदास सविलास करौ कुँवरि राधे, इहि बिधि सोरह सिंगारन सिंगारबो।

२७१- [illegible] जोजन [illegible]- ग्रं० पृ० ९२

२७२- ग्रं० पृ० २३३, [illegible]

२७३- [illegible] पावै सूर। कबीर ग्रं० पृ० ३४४

२७४- चार [illegible] पुरुष का कीया, [illegible] । कबीर, ग्रं०पृ०४९०

२७५- [illegible] । कबीर, ग्रं०पृ० ३४६

२७६- [illegible] [illegible]- कबीर, ग्रं० पृ० ३४४

२७७- [illegible] नैनै [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]- [illegible] ग्रं०पृ०६६८

२७८- पंद्रह तिथि [illegible]। कबीर ग्रं० पृ० ३५३

२७९- [illegible]। [illegible] कबीर, ग्रं० पृ० ६७०।

२८०- [illegible] [illegible]।
[illegible]। [illegible] ग्रं० पृ० १३६१

२८१- [illegible] पृ० १६५ पर उद्धृत।

[illegible] : [illegible] पुराण के अनुसार [illegible] इस प्रकार हैं:-

> [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]।
> [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।
> [illegible] अरु [illegible], [illegible] [illegible]।[282]
> आदि ग्रंथ में [illegible] [illegible] हैं।[283]

[illegible]: आदि ग्रंथ में [illegible] की [illegible] है। [illegible] [illegible] को प्रकट किया [illegible]। [illegible] [illegible] देव [illegible] [illegible] प्राप्त [illegible]। [illegible] आदि ग्रंथ में हैं। [illegible] का [illegible] किया है। [illegible] नाम इस प्रकार हैं: [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible],[284] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।

[illegible]: पुराण : [illegible] पुराणों का आदि ग्रंथ में [illegible] स्थान पर उल्लेख है: ब्रह्म, [illegible], वैष्णव, [illegible], [illegible], [illegible], मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्म-वैवर्त, लिंग, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], गरुड़, ब्रह्मांड- विष्णु पुराण [illegible][285] [illegible] पुराणों [illegible] है। आदि ग्रंथ [illegible] पुराण [illegible] विशेषतः प्रभावित है। [illegible] आदि ग्रंथ में पौराणिक तत्वों का [illegible]।[286] १८ भार [illegible]: [illegible] १८ भार [illegible] किए गए हैं। [illegible] [illegible] भार [illegible] होता है। [illegible] प्रत्येक [illegible] एक [illegible] [illegible] होता है।[287] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] में स्थान स्थान पर [illegible] उल्लेख है।[288]

282- [illegible] पृ० १६४ [illegible]।

283- [illegible] सम्पूर्ण फलिका।

[illegible] [illegible] भा० [illegible] १०७० पृ० १०८८

284- [illegible], [illegible] दुनिया, [illegible], पृ० ३[illegible]१

285- [illegible] ग्रंथ [illegible] पौराणिक [illegible]- पृ० २३

286- [illegible] वेद [illegible] ५, १०७० पृ० [illegible]

[illegible] पुराण- [illegible], १०७० पृ० [illegible]

287- [illegible]- पृ० [illegible]५०

सिद्धियां : योग ग्रंथों में अठारह सिद्धियों अथवा चमत्कारों का उल्लेख है। उन में से आठ का वर्णन आठकी संख्या के अंतर्गत भी हुआ है। अन्य दस इस प्रकार हैं: अनूर्मि, दूरश्रवण, दूरदर्शी, मनोवेग, कामरूप, परकाया प्रवेश, स्वच्छन्द मृत्यु, सुर क्रीडा, संकल्प सिद्धि, अप्रतिहत गति।[289]

सांपों के अठारह कुल: सर्प-विज्ञान के शास्त्रों में कई स्थानों पर आठ और कई स्थानों पर अठारह कुलों का वर्णन है। इन १८ कुलों का वर्णन इस प्रकार है: शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महा-पद्म, शंख, कुलिक, सबुद्धि, नंदसार, पृथु-श्रवा, तक्षक (तक्षक) अश्वतर, हेम-मालिन, नरेंद्र, वज्रदृष्टि, वृष, कुमार।[290] आदि ग्रंथ में जनमेजय द्वारा सर्पों के अठारह कुलों को मारने का वर्णन है।[291]

बीस: बीस बिस्वे: एक लोकोक्ति है, जिस प्रकार सोलह आने, बीस बिस्वासियों का एक बिसवा, तथा बीस बिस्वे का एक बीघा होता है। आदि ग्रंथ में इस मुहावरे का प्रयोग मिलता है।[292]

इक्कीस: नाड़ियां: शरीर की २१ मुख्य नाड़ियां जिनमें दस प्रधान हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने इन कीगणना इस प्रकार की है। इड़ा, पिंगला, सुखमणा, गंधारी, हस्त जिह्वा, पुष्प, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शंखिनी।[293] परन्तु शबदार्थ आदि ग्रंथ (शिरोमणि गु द्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित) के टिप्पणीकार 'गज इकीस' का भाव, पांच तत्त्व, पंच विषय विकार, दस प्राण तथा एक मन लेते हैं।[294] हमारा विचार है कि डा० वर्मा ने गज इकीस का भाव युक्ति संगत प्रस्तुत किया है, क्योंकि गजनव (नौ द्वार) गज दस (पांच ज्ञान - पांच कर्म इन्द्रियां), गज इक्कीस (नाड़ियां) पुरीआ एक तनाई (जुलाहे की शब्दावली में शरीर का ताना बाना)- यह अर्थ ठीक है।

२८८- (१) रोतावली कोटि अठारह भार- कबीर आ०ग्रं० पृ० ११६३
(२) भार अठारह मुकरु तेरा- नामदेव- आ०ग्रं०पृ० ११६७
(३) भार अठारह मेवा- म:१, आ०ग्रं० पृ० ४४२
(४) भार अठारह अभिवंदन- म: ४, आ०ग्रं० पृ० ८३४

२८६- (१) सपि निधान, दस अष्ट सिधान। म: ५ शबदार्थ आ०ग्रं० पृ० १०
(२) अठारह सिधि पिछै लगीआ- म:३, आ०ग्रं० पृ० ६१

२६०- संख्या कोश पृ० २००

छत्तीस गुण (गोत्र): प्रायः [illegible] ग्रंथों में वर्णन आता है कि [illegible] संसार में [illegible] जाते हैं, तथा [illegible] छत्तीस गुणों [illegible] हैं। इन गुणों की गणना [illegible] प्रकार है: [illegible] पीढ़ियां [illegible], [illegible] पीढ़ियां [illegible], [illegible] पीढ़ियां [illegible]।[295] [illegible] ग्रंथ में उल्लेख है कि प्रह्लाद की छत्तीस गुणों [illegible]।[296]

[illegible]: [illegible] (प्रत्येक [illegible]) [illegible] की [illegible] रचना में आता है।[297]

पच्चीस प्रकृतियां: पांच तत्वों में से प्रत्येक [illegible] पांच पांच प्रकृतियां। [illegible][298] [illegible] में पृ० [illegible] उल्लेख है। [illegible] में इन का कई [illegible] है।[299] डा० राम कुमार ने [illegible] विवरण [illegible] प्रकार किया है:-[300]

१- आकाश: काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।

२- वायु: दौड़ना, [illegible], फैलना, [illegible], संकोच।

३- जल: [illegible]ोति, स्वेद, र[illegible], [illegible], मूत्र।

४- अग्नि: [illegible], भूख, नींद, [illegible], आलस्य।

५- पृथ्वी: त्वचा, [illegible], [illegible], नाड़ियां, अस्थि।

६- इन प्रकृतियों के अतिरिक्त [illegible] इन तत्वों के पांच पांच गुण इस प्रकार बताए जाते हैं:-[301]

१- पृथ्वी: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। (तन्मात्र)

२- जल: हाथ, पैर, मुंह, गुदा, लिंग (कर्मेन्द्रियां)

३- वायु: प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान (प्राण)

४- अग्नि: आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा (ज्ञानेन्द्रियां)

५- आकाश: अन्तःकरण, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार ([illegible] इन्द्रियां)

२९४- [illegible] देवी [illegible]।

[illegible]। [illegible] म:१, [illegible]

२९५- (१) [illegible] गुर [illegible] मन [illegible]। म:५, [illegible]

(२) [illegible]।। म:१, [illegible]

(३) [illegible]। [illegible] पृ० [illegible]

तीस: भाग के तीन दिन।[302]

इक्कीस: गुरु ग्रंथ की राग-रागनियां: श्री, माफ, गउड़ी, आगा, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, वडहंस, सोरठि, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गोंड, रामकली, नट नाराइन, माली गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कलिआन, प्रभाती, जैजावंती।[303]

बत्तीस: स्त्री पुरुषों में शुभ लक्षणों की संख्या ३२ बताई जाती है। भाई कान्ह सिंह ने महान कोश में स्त्री पुरुष के ३२ लक्षणों का विवरण दिया है।[304] आदि ग्रंथ में इस विस्तार पर उल्लेख मिलता है।[305] गुरमति मार्तंड में ज्ञानी लाल सिंह संगरूर ने भी इन लक्षणों का विवरण दिया है।[306] संख्या कोश में राजा के ३२ शुभ लक्षणों का उल्लेख है।[307]

तैंतीस: तैंतीस करोड़ देवताओं की भारतीय संस्कृति में कल्पना की गई है।[308] कबीर ने राजा राम की बरात में उनको सम्मिलित हुए वर्णन किया है। इन की गणना ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से की गई मिलती है। प्राय: संस्कृत ग्रंथों में आठ देवताओं के ३३ भेदों के अनुसार ३३ कोटि देवता माने गए हैं। उनका विवरण इस प्रकार है: आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति रामायण में इन्द्र तथा प्रजापति के स्थान पर अश्विनी कुमारों का उल्लेख है।[309]

२९३- (१) गज नव, गज दस, गज इकीस, पुरीआ एकतनाइ।। आ०ग्रं० पृ० ३३५
(२) सन्त कबीर- पृ० ४९१।

२९४- आ०ग्रं० पृ० ३३५ (कुदाली) नोट: ७

२९५- गुरमति मार्तंड: पृ० २८६

२९६- प्रहिलाद जनै इकीह कुल उधारे, भैरउ ५:३, आ०ग्रं० पृ० ११३३

२९७- ब्राम्हन गिआरह करहि चाबीसा, काजी माह रमजाना। आ०ग्रं० पृ० १३४९

२९८- संख्याकोश पृ० २१२

२९९- पांच पचीस मोह मदसर-कबीर: आ०ग्रं० पृ० ११६१

३००- संत कबीर- पृ० ४९१

३०१- संख्याकोश -पृ० २१३

३०२- महै निसु बासुर दिन तीस। कबीर आ०ग्रं० पृ० ११५८

चौंतीस: अक्षार: ... तो बावन है। (देखिए संख्या बावन) परन्तु मु... चौंतीस।
कबीर ... - आ०ग्रं० पृ० ६५८

छत्तीस: छत्तीस युग: प्राचीन विद्वानों की कल्पना के अनुसार प्रलय के पश्चात्
३६ युगों पर्यन्त धुन्धावस्था रहती है। इन छत्तीस युगों के नाम कल्प माने गए हैं।
एक कल्प में चार युग होते हैं। आदि ग्रंथ में इसका वर्णन कई स्थानों पर है:-
छतीह जुग गुबारु ... आपे गणत कीना। [310] म:३
जुग छतीह गुबार। [311] मलार म:१
छत्तीस अमृत(भोजन) कई विद्वानों ने खाद्य पदार्थों की गिनती ३६ की है। भाई
कान्ह सिंह लिखते हैं: यह कैवल कल्पनात्मक संख्या है। भाई ... दास ... ने इन
की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है: कि रस भिन्न-भिन्न हैं, छत्तीस भोजन ... ने
रसोई। छः रस जिनकी छः की संख्या के नीचे गणना की गई है, उनके छ: छ:
भेद हो जाने से यह गणना ३६ तक पहुंच जाती है। इस गणना का .....
सार्वभौमिक महत्व भी हो सकता है।[312] आदि ग्रंथ इस गणना का कई स्थानों
पर उल्लेख करता है।[313]

३०३- आ०ग्रं० देखिए ... रागा ...।।
३०४- महान कोश पृ० ६२५
३०५- स्त्री: कतीह सुलखणी सच संतोखि पूता।
आ... ... सुख ... म:५, आ०ग्रं० पृ० ३७१
पुरुष: प्रणवता नामदेउ ... किना ना ... ...। आ०ग्रं०पृ०११६३
३०६- गुरमति मार्तंड- पृ०३६२
३०७- संख्या कोश- पृ० २२५
३०८- (१) सुर नर मुन जन कौतक ... तेतीस ... ...।। आ०ग्रं०पृ० ४८२
(२) सुर तेतीसउ जेवणिपाक। आ०ग्रं०पृ० ११६३
३०९-संख्या कोश पृ० २२५
३१०- वार रामकली म:३ आ०ग्रं० पृ० ९४९
३११- आ०ग्रं० पृ० १२८२
३१२- महान कोश पृ० ३६३
३१३- (१) जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि। म:५ आ०ग्रं०पृ० २६९
(२)छतीह अंम्रित भाउ- म: १, आ०ग्रं० पृ० १६

बावन: वर्णमाला के बावन अक्षर- आदि ग्रंथ में कबीर तथा गुरु अर्जुन देव की बावन अखरियां हैं।[314] बावन कोटि रोमावली: कथित आ ने आदि ग्रंथ में, वानरों की सेना, जिसकी सहायता से लंका गढ़ जीता था, की संख्या बावन कोटि बताई है। यह संख्या भी कल्पित ही ली जाती है।[315]

साठ : शरीर की नसें। शरीर के भीतर नसों के जाल का वर्णन करते हुए कबीर जी ने नौ द्वार तथा साठ नसें बताई हैं।[316] साठि संवत्सर: प्रभव आदि (ज्योतिष मत में माने हुए) साठ संवत। यह तीन देवताओं के बीस बीस संवत हैं, तथा पुनः पुनः इनका चक्र चलता है। आदि ग्रंथ में इन संवतों को देवताओं के न मानकर उस परमात्मा के ही माना गया है। आदि ग्रंथ के रचयिताओं की विशेषता यह है कि उन्होंने परंपरागत विश्वासों को स्वीकार करते हुए, कहता के इन विश्वासों की आलोचना नहीं की, परन्तु, उनकी व्याख्या अपने ढंग से की है।[318] संस्कृत ग्रंथों में प्रथम बीसी ब्रह्मा की मानी गई है। 'प्रभव नाम संवत्सरे, आदि ब्रह्मा स्वामी'। यह बीसी प्रभव नाम संवत से आरंभ होती है। दूसरी बीसी विष्णु की मानी गई है। 'सर्व जना यो नाम सरे, विष्णु स्वामी'। यह बीसी जना यो नाम संवत से आरंभ होती है। तीसरी बीसी शिवजी की है और उसका वर्णन इस प्रकार है 'अथ रुद्र बीसी लिखते, पल्वंग, नाम संवत्सरे रुद्र स्वामी'। यह बीसी पल्वंग नाम संवत से आरंभ होती है।[319]

चौसठ: घड़ियां (दिन रात की: पहले आठ पहर माने जाते थे, और आठ पहरों में से प्रत्येक पहर की आठ घड़ियां मानी जाती थीं। इस प्रकार कुल ६४ घड़ियां जाती थीं। कबीर जी ने चौसठ घड़ियों का वर्णन किया है।[320] अब यह गिनती साठ मानी जाती है।[321]

३१४- (१) बावन अखर लोक त्रै सभु कुछ इनही माहि। कबीर आ०ग्र० पृ० ३४०

(२) बावन अखर जोड़ि के करी न जानी चितु लाइ। आ०ग्र० पृ० १३६३

३१५- बावन कोटि जाके रोमावली। रावन सेना जहते छली। भैरउ कबीर आ०ग्र०११६६

३१६- साठ सूत नव खंड- कबीर आ०ग्र० पृ० ३३५

३१७- महान कोश पृ० १०६

३१८- तेरे साठि संवत सभ तीरथा।। बसंत म:१ आ०ग्र० पृ० ११६८

३१९- संख्या कोश - पृ० २१६

३२०- आठि जामि चउसठि घरी तुअ निरखत रहै। आ०ग्र० पृ० १३७७

३२१- महान कोश- पृ-३२६

कलाएं : ग्रंथों में चौसठ कलाएं मानी गई हैं। यह गणना प्राचीन कवि तथा कला के ६४ भेद मान कर की है। यह संख्या भिन्न भिन्न स्थान भिन्न मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में १६, बाण कवि ने ४८, कला विलास तथा 'महाभारत' आदि ग्रंथों में ६४, तथा 'ललित विस्तार' ग्रंथ में ८६ कलाएं लिखी मिलती हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए भाई कान्ह सिंह नाभा लिखते हैं, 'यदि कलाओं की गणना करें तो सैकड़ों की सूची तैयार हो जाए।[322] संभवत: इसी कारण आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने या तो पुराण सम्मत संख्या १६ ली है, या 'अनिक कला' अथवा 'सरब कला' शब्द का प्रयोग किया है।[323] क्योंकि परमात्मा की कलाओं की गणना की ही नहीं जा सकती।[324]

अठसठ: तीर्थ: हिन्दू धर्म के ग्रंथों में तीर्थों को प्रधान माना है। इन तीर्थों का बार बार आदि ग्रंथ में वर्णन हुआ है। आदि ग्रंथ तीर्थ स्नान को मोक्ष का साधन नहीं मानता। सब से महान तीर्थ हृदय शुद्धि तथा जीव दया है।[325] ईश्वर का नाम ही ६८ तीर्थों के तुल्य है। ६८ तीर्थों के नामों के लिये देखिए संख्या कोश पृ० २३०, महान कोश पृ० ३७ , गुरमत मार्तंड पृ० ८६० ।

सत्तर: काबा: मुसलमान - धर्म के विश्वास अनुसार ७० काबे माने गए हैं। हिन्दू तीर्थों की भान्ति कबीर ने इन की कल्पना भी हृदय के अन्दर में ही की है।[326] सालार: कबीर साहब को मुसलमानी विश्वासों का पर्याप्त ज्ञान है, और यत्र तत्र उनका प्रयोग किया है। इन विश्वासों को मतानुकूल बनाकर अपनाया है। वह परमात्मा की करीम लीला का गान करते हैं, उसके सत्तर ही सालार हैं[327] आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) के टिप्पणीकार लिखते हैं: खुदा के जबराईल फरिश्ते के साथ सात हजार(सत्तर ही) अन्य फरिश्ते थे कि मुहम्मद साहब तक कलाम-ए-करीम (कुरान शरीफ) पहुंचने में कोई बाधा न पहुंचे।[328]

बहत्तर: कोष्ठ: शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर के बहत्तर कोष्ठ। इन कोष्ठों को कबीर ने स्थान स्थान पर वर्णन किया है।[329] इन संख्याओं का वर्णन योग परक साधना के अन्तर्गत हुआ है।

---

322 - महान कोश- पृ० २३१

323- सरब कला सावे भरपूरा। म:१, श ०ग्रं० पृ० १०२४

324- अनिक कला लखी नह जाइ। म:५ आ०ग्रं० पृ० २८४

325- (१) अठसठि तीर्थ सगल पुंन जीअदइआ परवान। म:५ आ०ग्रं० पृ० १३६

चौरासी: सिद्ध- नाथ पंथ की परंपरा में सिद्धों की संख्या । आदि ग्रंथ के प्रधान रचयिताओं की रचनाओं में इनका उल्लेख हुआ है। और परवर्ती रचयिताओं ने इन संख्याओं को वैसे ही स्वीकार किया है। डा० धर्मवीर भारती लिखते हैं, ये सिद्ध केवल कल्पना मात्र ही नहीं हैं, इनका ऐतिहासिक अस्तित्व भी था। जहां तक संख्या का प्रश्न है, यह संख्या वास्तविक न होकर काल्पनिक मालूम होती है। तन्त्रों में ८४ संख्या का विशेष महत्व है और इस में गूढ़ तांत्रिक अभिप्राय है। तन्त्रों में योग में, आसन भी ८४ माने गये हैं और वहां भी इस संख्या का तांत्रिक महत्व है। टुचि इस संख्या को बारह राशि तथा सात ग्रहों का गुणनफल मानते हैं। यह ८४ संख्या लगभग प्रत्येक तांत्रिक संप्रदाय में स्वीकृत थी और यह विश्वास किया जाता था कि संप्रदाय में ८४ सिद्धों का होना अनिवार्य है। किन्तु इन संप्रदायों की सूची सर्वथा विश्वसनीय नहीं है क्योंकि प्रत्येक संप्रदाय ८४ की संख्या पूरी करने के लिये चारों तरफ जाल फैलाता था और विभिन्न शताब्दियों तथा प्रांतों के सिद्ध पुरुषों के नाम अपनी सूची में सम्मिलित कर ८४ का अंक पूरा करता था।[330]

एक बात स्पष्ट है कि मध्य काल में समस्त जनता इन ८४ महासिद्धों की कल्पना से प्रभावित थी और जायसी, कबीर तथा गुरु रामदास तक उनका उल्लेख अपनी रचनाओं में करते हैं:-

जायसी: नवौं नाथ चलि आवहि और चौरासी सिद्ध।[331]

कबीर: (१) सिध चउरासीह माइआ महि खेला ।[332]

(२) षट दरसन संसे परे अरु चउरासी सिध।[333]

गुरु रामदास: चउरासीह सिध बुध तेतीस कोटि मुनि जन सभि चाहहि
हरि जीउ तेरो नाउ।।[334]

३२६- सतरि काया मठ की भीतरि। कबीर आ०ग्रं० पृ० ४८०

३२७- सतरि सैइ सालार है जा के ।। कबीर आ०ग्रं० पृ० ११६१

३२८- गुरुवाणी आ०ग्रं० पृ० ११६१, टिप्पणी नं० ८

३२९- (१) सात सूत नव खंड बहत्तर। आ०ग्रं० पृ० ३३५

(२) बहुत्तर घर इकवारि आगारी। आ०ग्रं० पृ० [illegible]

(३) बहत्तरि नारि इकु पुरखु। आ०ग्रं० पृ० ९६३

(४) असन बहत्तरि लागी तारि। आ०ग्रं० पृ० ११६४

३३०- सिद्ध साहित्य- पृ० २८-२९ ३३१- जायसी ग्रंथावली, गुप्त, पृ० ९८

भाई नानक सिंह ने भी ८४ सिद्धों की तालिका दी है। परन्तु उन्हें गोरख पंथी लिखा है। यह नाम ऊर्धि, अत्राथ, अतनिवासी आदि गिने गए हैं। परन्तु यह सिद्धों की तालिका न होकर नाथों की तालिका है। ऐसा लगता है कि नाथों में भी ८४ संख्या की मान्यता दी गई थी। सिद्धों की सूची में प्रथम सरहपा अथवा लुईपा का नाम आता है। इनके नाम कणहपा, कणेरिपा, कुरिपा, कंकणपा, गुण्डरिपा आदि हैं।[336] नरक: चौरासी अथवा चौरासी लाख नरकों की भी कल्पणा की गई है। यह भी चौरासी लाख योनियों की कल्पना पर आधारित संख्या प्रतीत होती है। जन्म मरण का बन्धन एक नरक माना गया है।

गुरु नानक: चउरासी नरक साकतु पाईऐ।[337]

कबीर: चउरासी लख फिरे दिवानां।[338]

आदि ग्रंथ और संख्याएं

कल्पित संख्याएं केवल भावाभिव्यक्ति के लिये हैं। उनके पीछे कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। कबीर जी ने कल्पित संख्याओं को भी अपूर्ण मान कर उनको अंकित बना दिया है। पीछे इनने भार अठारह भालण अथवा भार अठारह रोमावली का वर्णन किया है। कबीर जी कहते हैं: रोमावली कोटि अठारह भार,[339] इस प्रकार सृष्टि कथा मांद एक रूप दिखाई देते हैं। दुर्गा, महादेव, ब्रह्मा, धर्मराज, आदि भी एक एक माने गए हैं, परन्तु कबीर जी ने एक पद में परमात्मा की लीला को कोटि कोटि कह कर पुकारा गया है। क्योंकि यह गणना करना बड़ा कठिन है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि ज्योतिष आदि की तथा अन्य कल्पित गणनाएं गिनने से मन में संशय उत्पन्न होता है।[341] वे कहते हैं कि परमात्मा की लीला की गणना नहीं हो सकती फिर उसे गिना ही क्यों जाए। जब इस अंक की संख्या प्रस्तुत करते हुए हार गए हैं।[342] वे कहते हैं, गिनती करने वाला उसकी कलाओं में गिनती करता है, परन्तु यह नहीं जानता कि यह असंख्य हैं।[343] जो संकुचित हृदय है वह गिनतियों में पड़ता है, गुरु अमर

332- आ०ग्र० पृ० ११६० 333- आ०ग्र० पृ० १३७५

334- आ०ग्र० पृ० ९९६ 335- मानस ती- पृ० ३१६

336- सिद्ध साहित्य-पृ० ४८ 337- आ०ग्र० पृ० १०२८

338- आ०ग्र० पृ० ११६१ 339- आ०ग्र० पृ० ११६३

दा॰ के अनुसार उसका हृदय जलता ही रहता है।[344] इसी कारण गुरु अर्जुन देव जो कहते हैं, गाओगी ! परमात्मा अनंत है, उसकी लीला की गणना न करो, क्योंकि तुम कर ही नहीं सकते। उस गणना को करते कई मर गए परन्तु कर न सके।[345]

८- ऐतिहासिक विवरण : राजनीतिक स्थिति में हम बाबर के आक्रमण का विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। गुरु नानक ने इस आक्रमण के बारे में टिप्पणी करते हुए एक स्थान पर लिखा है: आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला।[346] शब्दार्थ गुरु ग्रंथ के टिप्पणीकार इस कथन पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि मुगल ७८ संवत् १५७८ में आये और १५९७ में चले जायेंगे। यहां बाबर के १५७८ के एमनाबाद पर आक्रमण का वर्णन है। भाई लालो यहां का रहने वाला था। यह पद भी इसी को संबोधन कर के लिखा है, जिसमें जानि सतानवै से हुमायूं के १५९७ में शेरशाह सूरी द्वारा निकाले जाने की ओर संकेत है, जिसे मरद का चेला कहा है। शेरशाह एक महत्त्वाकांक्षी सम्राट था।[347] नामदेव ने अपनी रचना में किसी सुल्तान द्वारा सताये जाने का वर्णन किया है। एक मरी गाय को जीवित करने का आग्रह करते सुल्तान ने नामदेव को बांध कर यातनायें दीं। स्वयं भगवान ने नामदेव को बचाया था, ऐसा आदि ग्रंथ में एक पद है।[348] कबीर जी को भी पोट बांध कर हाथी के आगे डाले जाने का संकेत उनके एक पद में मिलता है।भुजा बांधि भिला करि डारियो।[349] शब्दार्थ आदि ग्रंथ के संपादक इस सुल्तान का नाम सिकंदर लोधी लिखते हैं। कहते हैं, बनारस में कबीर को मुसलमान सम्राट ने बहुत कष्ट दिया।[350] संभवत: यह इस लिये हुआ कि कबीर ने मुल्लां काज़ियों के ढोंग की कटु आलोचना की थी।[351] और काज़ी मुल्लां ही उस समय के न्यायाधीश थे। गुरु नानक देव को भी बाबर ने बंदी बना लिया था।[352] और यह भी बाबर के आक्रमण तथा उसके अत्याचारों की आलोचना के कारण ही हो सकता है।[353] गुरु नानक काल की ऐतिहासिक स्थिति का हम राजनीतिक स्थिति के संदर्भ में पर्याप्त उल्लेख कर चुके हैं। उस समय धर्म अलोप हो गया था। कूड़ ही कूड़ प्रधान था। आदि ग्रंथ में गुरु नानक की रचना में इसका उल्लेख मिलता है।[354] उस समय राजा लोग तो कसाई बने हुए थे, तथा उन के कर्मचारी कुत्ते के ...

३४०- आ०ग्रं० पृ० ११६३

३४१- (१) गणत गणीऐ सहसा दुखु जीअ। म:१, आ०ग्रं० पृ० ६०४

(२) गणत गणीऐ सहसा जीऐ। म:१ आ०ग्रं० पृ० १०२३

थे।[355] यज्ञोपवीत धारण किये हुए, धोती तिलक लोटाधारी ब्राह्मण भी कसाई और ठग बने हुए थे।[356] प्रजा अंधी तथा मुर्दा मन का भार ढोती थी।[357] गुरु नानक की रचना आसा की वार[358] इतिहास का एक हृदय विदारक पृष्ठ है। आदि ग्रंथ में भक्त धन्ना नेभी एक पद में किसी राजा द्वारा सताए जाने का वर्णन किया है।[359]

जहां तक पौराणिक इतिहास का संबंध है, उसका विवेचन पौराणिक आख्यान के अध्याय में विस्तार से किया गया है।

आदि ग्रंथ का संपादन भी एक ऐतिहासिक महानता का कार्य है। इस ग्रंथ को इस रूप में संपादित करके, भक्त कवियों की रचनाओं को प्रामाणिक रूप में सुरक्षित करके गुरु अर्जुन देव ने न केवल भक्ति का बौद्धिक तैयार किया परन्तु साहित्य जगत् पर भी महान् उपकार किया।

३४२- गणत न आवै किउ गणीऐ खपि खपि मुए बिसंख। म:१, आ०ग्रं०पृ० ६३७

३४३- गणत गणावै अखरी, अगणत साचा सोइ। म:१, आ०ग्रं० पृ० ६३४

३४४- गणत गणी सो जलै संसारा। म:३ आ०ग्रं० पृ० १०६२

३४५- गणती गणउ न गणि सकउ, ऊठि सिधारे मैत। म:५, आ०ग्रं०पृ०२५५

३४६- आ०ग्रं० पृ० ७२३

३४७- शब्दार्थ आदि ग्रंथ पृ० ७२३, टिप्पणी नं० ४

३४८- आ०ग्रं० पृ० ११६५, आदि ग्रंथ शब्दार्थ के टिप्पणीकार इस सुल्तान का नाम मुहम्मद बिन तुग़लक लिखते हैं। देखिए शब्दार्थ आ०ग्रं० पृ० ११६५, टिप्पणी नं० २७

३४९- आ०ग्रं० गौंड कबीर पृ० ८७०

३५०- शब्दार्थ आ०ग्रं० पृ० ८७०, पाद टिप्पणी।

३५१- कबीर मुलां मुनारे किआ चढहि सांई न बहरा होइ।
जा कारनि तूं बांग देहि दिल ही भीतरि जोइ। आ०ग्रं० पृ० १३७४
बांग पर कई ऐतिहासिक विवादों के उल्लेख मिलते हैं।

३५२- साखा इतिहास- पृ० ६८

३५३- पाप की जंञ लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो। आ०ग्रं० पृ०७२२

३५४- सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ फिरै परधानु वे लालो। आ०ग्रं० पृ० ७२२

३५५- कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ।
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ। आ०ग्रं० पृ० १४५

९- सुधार अथवा क्रांति-संदेश: गुरु ग्रंथ में पुंजीवादी वर्ग का विरोध स्थान स्थान पर मिलता है।[३६०] निम्न वर्ग को ऊंचा उठाने के लिये स्थान स्थान पर जागृत किया गया है। उनको अन्धे धन पर मेगार करने के लिये कोसा गया है।[३६१] गुरु नानक देव ने तो गुलामों को पुंजीपतियों तथा सम्राटों के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र तक में कूद पड़ने का क्रांति-संदेश दिया है।[३६२] वे ऐसा संदेश देते भी क्यों न, बड़े छोटे का यह अन्तर तथा दास-स्वामी-प्रथा न जाने कहाँ से तो चलाई थी। वैसे तो मानव मानव सब हैं समान।[३६३]

१०- भूगोलिक विवरण : आदि ग्रंथ में संसार की उत्पत्ति शून्यावस्था से मानी गई है।[३६४] जैसा कि विचारपक्ष में सृष्टि रचना के संबंध में लिखा गया है, यह शून्यावस्था ब्रह्म की, है भी सोसी जागी न जागी की दशा है। अत: सृष्टि का रचयिता स्वयं ब्रह्म है, तब सृष्टि उसके अनुशासन के अंतर्गत है:-[३६५]

भै विचि पवणु वहै सद वाउ। भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि अगनि कढै वेगारि। भै विचि धरती दबी भारि।
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि। भै विचि राजा धरम दुआरु।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु। कोह करोड़ी चलत न अंतु।
भै विचि जोध महाबल सूर। भै विचि आवहि जावहि पूर।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु।

राजे सिंह मुकदम कुत्ते। म:१ आ०ग्रं० पृ० १२८८

३५६- आ०ग्रं० पृ० ४७५, तथा जुरी क्याउनि तिन गल ताग। आ०ग्रं० पृ० ४७१

३५७- कंडी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु। आ०ग्रं० पृ० ४६६

३५८- आ०ग्रं० पृ० ४६२ ३५९- आ०ग्रं० पृ० ८५८

३६०- जलि जाउ एहु बड़पना माइआ लपटाए।

ऐसो राजु न किसै काजि जितु नह त्रिपताए। म:५ आ०ग्रं० पृ० ९४५

३६१- आ०ग्रं० पृ० ४६६

३६२- बा निकदारि पर्छ जंजीरी, ता बाहर दमाहु परणा।। म:१ आ०ग्रं० पृ०९०२

३६३- एक नूर ते सभ जग उपजिआ कउन भले को मंदे। कबीर आ०ग्रं० पृ० १३४९

३६४- सुंन कलाधरि अपरंपरि धारी आपि निरालमु अपर अपारी आपे उपाए। पउणु पाणी सुंनै ते साजे।

त्रिसटि उपाइ माइआ गड़ राजे। म:१ आ०ग्रं० पृ० १०३७

३६५- आ०ग्रं० पृ० ४६४।

सूर्य को भी करोड़ों कोस बतला बताया है। वैसे उसे स्थिर माना जाता है। यह विचार औपनिषदिक है, तथा खोज का विषय है।[366] चंद सूरज दुइ दीपक राखे, सगि घरि सूर समाइदा।[367] से पता चलता है कि यह चांद का सूर्य से प्रकाश प्राप्त करने की ओर संकेत है।[368] चौदह भवनों, सात पातालों, सात आकाशों आदि की जो गणना की जाती थी, इसको न मानते हुए कई ग्रहों (PLANETS) की ओर संकेत आदि ग्रंथ में मिलता है। पाताला पाताल लख आगासा आगास।[369] गुरु नानक देव जी कहते हैं कि आकाशों में १८००० लोकों की कल्पना की गई है, परन्तु यह गणना भी असंख्य है, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आदि ग्रंथ ऐसी कल्पित संख्याओं को मान्यता प्रदान नहीं करता, और कहता है:-

सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।
लेखा होइ त लिखीऐ, लेखै होइ विणासु।[370]

गुरु ग्रंथ में भिन्न भिन्न लोकों के लिये पृथक पृथक सूर्य चांद के होने का वर्णन है। केते इंद चंद सूर, केते केते मंडल देस।[371] सृष्टि रचना से पूर्व की अवस्था पूर्ण अंधकार-मय बताई गई है, तथा उस समय का वर्णन ३६ युग किया है:-

१- अरबद नरबद धुंधूकारा।[372] २- जुग छतीह गुबारु।[373]

उस समय सिवाय प्रभु के कुछ न था।- धुंधूकारि निरालमु बैठा ना तदि धंधु पसारा है।[374] गुरुवाणी में सृष्टि की रचना इस प्रकार बताई है:-

साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ।
जल ते त्रिभवणु साजिआ, घटि घटि जोति समोइ।[375]

एक ही सूर्य के होते हुए कई ऋतुएं हैं। सूर्य तथा धरती के आपसी संबंध के कारण ऋतु परिवर्तन होता है तथा दिन रात बनते हैं, इसका भी उल्लेख आदि ग्रंथ में मिलता है:-

विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ।
सूरजु एको रुति अनेक। नानक करते के केते वेस।[376]

366- तैत्तिरीयोपनिषद- २-८-१ 367- आ०ग्रं० पृ० १०३३
368- श्री गुरु ग्रंथ साहब दी साहित्यक विशेषता- गोपाल सिंह पृ० ८८
369- जपु प:१ आ०ग्रं० पृ० ५ 370- आ०ग्रं० पृ० ५
371- आ०ग्रं० पृ० ७ 372- आ०ग्रं० पृ० १०३५
373- आ०ग्रं० पृ० ३८२ 374- आ०ग्रं० पृ० १०२६
375- आ०ग्रं० पृ० १९ 376- आ०ग्रं० पृ० ३५७

गुरु अर्जुन देव ने बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर तथा हिमन्त ऋतुओं का ऋतु-ऋतु वर्णन किया है।[377]

११- कलात्मक स्थिति - आदि ग्रंथ में ललित कलाओं की ओर भी ध्यान दिया गया है। इस महान् ग्रंथ का राग पक्ष संगीत प्रेम की ओर संकेत करता है। राग पक्ष में इस ओर विस्तार से ध्यान दिया गया है। कविता का प्रेम भक्ति-काव्य की रचनाओं से फूट फूट पड़ता है। गुरु ग्रंथ के कला-पक्ष में इस की विस्तृत विवेचना है। गुरु नानक अपने कवि अथवा शायर होने में गर्व अनुभव करते थे, ऐसा उनकी लेखनी से स्पष्ट है:-

१- करे कराए सभ किछु जाणै, नानक साइर इव कहिआ। म:१ पटी[378]

२- नानकु साइरु इव कहतु है, सचे परवदगारा। धनासरी म:१[379]

आदि ग्रंथ में नाट्यशाला का उल्लेख मिलता है:-

अंतरि क्रोधु चढ़हि नाटसाला। बिलावल म:१[380]

अर्थात् क्रोध से भरे हुए लोग जब पूजापाठ करते हैं तो भक्तों की सी ऐकटिंग (अभिनय) करते हैं। रास लीला, नृत्य आदि का भी आदि ग्रंथ में उल्लेख मिलता है:-

नृत्य: वाइनि चेले नचनि गुर। पैर हिलाइनि फेरनि सिर।[381]

रास-लीला: गावनि गोपिआ गावनि कान्ह। गावनि सीता राजे राम।[382]

चित्रकारी की ओर भी गुरु ग्रंथ के रचयिताओं का ध्यान गया है। कबीर जी ने स्वयं ब्रह्म को एक महान् चित्रकार के रूप में प्रस्तुत किया है।-

कवा रचित चित्रहि भारी। तजिचित्रै चेतहु चितकारी।

चित्र बचित्र इहै अवझेरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा।[383]

तत्कालीन वस्तुकला की ओर भी आदि ग्रंथ में भिन्न भिन्न स्थानों पर वर्णन मिलते हैं:-

फरीद: फरीदा कोठे मंडप माड़ीआं। आ०ग्रं० पृ० १३८०

गुरु नानक: मन्दर मंदरि सोदीआ। आ०ग्रं० पृ० ४१७

गुरु अर्जुन : जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि। आ०ग्रं० पृ० २६६

३७७- आ०ग्रं० पृ० ६२७

३७८- आ०ग्रं० पृ० ४३५

३७९- आ०ग्रं० पृ० ६६०

३८०- आ०ग्रं० पृ० ८३२

३८१- आ०ग्रं० पृ० ४६५

३८२- आ०ग्रं० पृ० ४६५

३८३- आ०ग्रं० पृ० ३४०

आभूषण, बर्तन आदि के टूट जाने पर लुहार, सुनार तथा हथियार उसे गांका लगा देते थे, इसका आदि ग्रंथ में उल्लेख है:-

गुरु नानक: कैचन कैचन टुटिआ। कानो गंढुपाए लोहार।[384]

सुनार की दुकान का पूरा विवरण एक रूपक को प्रस्तुत करते हुए दिया गया है:-

गुरु नानक: जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु।
भउ खला अगनि तप ताउ। भांडा भाउ अंम्रित तितु ढालि।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल।[385]

कुम्हार भी भान्ति भान्ति के मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाते थे:-

कबीर: माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै।[386]

घरों में स्त्रियां प्रकार प्रकार की कढ़ाई अथवा कसीदाकारी का काम करती थीं।
कढि कसीदा पहिरहि चोली तां तुम जाणहु नारी।[387]

यदि स्त्री गृह-कला में निपुण न होती थी, तो उसका पति-घर में सत्कार नहीं होता था:-

बाहुड़ी वसु तब किछु सापनी पेवकड़े धन वसै।
आप कुचजी दोस न देऊ जाणा नाही रसै।
कढि कसीदा पहरहि चोली ता तुम जाणहु नारी।
जे घरु राखहि बुरा न चाखहि, होवहि कंत पिआरी।[388]

उपसंहार:

आदि ग्रंथ के रचयिता, भक्ति तथा नित्य के जीवन में एक घनिष्ट संबंध स्थापित करना चाहते थे। इस के लिये उन्होंने ने श्रम का सम्मादर, अपनी

384- आ०ग्रं० पृ० १४३

385- आ०ग्रं० पृ० ८

386- आ०ग्रं० पृ० १३५०

387- आ०ग्रं० पृ० ११७१

388- आ०ग्रं० पृ० ११७१

मेहनत की जीविका तथा शुद्ध सात्त्विक जीवन पर बल दिया। धर्म के संबंध में उन्होंने हिन्दू मुसलमान, अथवा योगी-सन्यासी आदि बनने की अपेक्षा मानव बनने का सन्देश दिया। जीवन, जीने योग्य है, यह उनका महान् सन्देश था। खाणा पीणा पवित्र है दितोसु रिजक संबाहि।[389] केवल खान पान वही अनुचित है जिस से मन में विकार उत्पन्न होता है।[390] शारीरिक वेष भूषा तथा धार्मिक चिन्हों के संबंध में कबीर ने वेष की अपेक्षा चित्त शुद्धि पर अधिक बल दिया है। यही आदि ग्रंथ का महान् संदेश है।[391]

389- आ०ग्र० पृ० ४७२

390- बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु।
    जितु खाधै तनु पीड़ीऐ, मनमहि चलहि विकार। आ०ग्र० पृ० १६

391- कबीर प्रीति इक सिउ कीए, आन दुबिधा जाइ।
    भावै लांबे केस कर, भावै घररि मुडाइ।
    (केशधारी साधकों तथा मुंडित योगियों, दोनों को सच्ची प्रीति की ओर प्रेरित किया गया है।) आ०ग्र० पृ० १३६५
    कबीर ग्रंथावली में यह श्लोक इस प्रकार है:-
    सांई सेती सांच चलि, औरां सूं सुध भाइ।
    भावै लांबे केस करु, भावै घुरड़ि मुंडाइ।।
    (कबीर ग्रंथावली, ८४६-११ से हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय पृ० १०
    प्रस्तावना पर उद्धृत)

६- श्री गुरु ग्रंथ साहब में पौराणिक तत्व:

ध्यानं तप: सत्य युगे, त्रेतायां यज्ञकर्म च।
द्वापरे पूजनं दानं, हरिनाम कली युगे । सुगम साधना मार्ग पृ० ३३

सतियुगि सतु, तेता जगी, दुआपरि पूजाचार।
तीनौ जुग तीनौ दिड़े, कलि केवल नाम अधार।
भक्त रविदास आ०ग्रं०पृ०३४६

आदि ग्रंथ में पौराणिक [illegible]

आदि ग्रंथ में पौराणिक [illegible] पुराण [illegible] आदि ग्रंथ का पौराणिक [illegible] है, [illegible] प्रसंग में [illegible] होता।

[illegible] पुराणों [illegible] है, [illegible] में [illegible] उपलब्ध [illegible] है।[1] [illegible] के अनुसार [illegible] पुराण [illegible] हैं, [illegible] गया। [illegible] पुराण के अनुसार पुराण प्राचीन घटनाओं का विवरण देने वाला है। डा० [illegible], डा० [illegible] के अनुसार पुराण [illegible] 'पुराण' [illegible] पुराण [illegible] है।[4] आदि ग्रंथ में पुराण [illegible] पुराण [illegible] हैं। [illegible] ग्रंथ के [illegible] ने पौराणिक [illegible] में [illegible] का [illegible] किया है। पुराण अठारह [illegible] हैं [illegible] में [illegible]। विष्णु पुराण में पुराणों की संख्या अठारह है, उनके नाम [illegible] हैं: ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, वामन, कूर्म, गरुड़, ब्रह्माण्ड।[5] इन अठारह पुराणों के अतिरिक्त [illegible] उप-पुराण भी अठारह माने जाते हैं। आधुनिक [illegible] पुराणों [illegible] अथर्ववेद, [illegible] ब्राह्मण आदि ग्रंथों में मिलता है।[7] पुराणों का [illegible] प्रश्न अति जटिल है। आधुनिक [illegible] ने इस [illegible] पर कोई निर्णय [illegible] नहीं किया। पुराण-[illegible] प्राचीन धारणा के अनुसार [illegible] है, परन्तु [illegible] नहीं होता।[6] पुराणों के [illegible] में डा० [illegible] ग्रंथ 'प्राचीन भारतीय [illegible]' [illegible] अध्याय में [illegible] है, [illegible] पुराण [illegible]

1- आदि ग्रंथ का पौराणिक [illegible]- शोध प्रबंध- डा० रत्न [illegible]-पृ०२२
2- पुराणं [illegible]-पुराणं [illegible]-(निरुक्त-३-१९-२४)
3- पुरातनस्य [illegible] पुराणानि विदुर्बुधा:(मत्स्य पुराण- ५३-६२)
4- (१) [illegible] हिस्ट्री [illegible] लिट्रेचर- पृ० ५१८ (२) [illegible] पुराणस [illegible]- भूमिका पृ-४४ (३) पुराण-[illegible] पुराण [illegible]

सुव्यवस्थित [illegible] में [illegible] प्राचीन [illegible] काल में हुआ।[10] [illegible] [illegible] को लिपिबद्ध [illegible]: वायु पुराण [illegible] में सबसे प्राचीन [illegible] है और इसका समय [illegible] गुप्तकाल [illegible] जा सकता है। [illegible] के विषय में [illegible] जाता है कि उनकी रचना [illegible] गुप्तकाल में हुई। [illegible] मधुरा [illegible] में संयोजन हुआ, क्योंकि [illegible] की संख्या अठारह ही [illegible] गई है।[11]

पुराण [illegible] ने धार्मिक विधि-विधानों, प्रथाओं, [illegible], व्रतों, तथा [illegible] का निरूपण [illegible] और [illegible] प्रकार संस्कारों [illegible] पर प्रकाश डाले हैं।[12] पुराणों के विषय का स्वरूप इतना विस्तृत है कि [illegible] किसी प्रकार के [illegible] लक्षण-सूत्रों में बांधा नहीं जा सकता। संस्कृत के प्राचीन [illegible] अमर सिंह ([illegible]) पुराणों के पंच लक्षण मानते हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित। सर्ग का अर्थ सृष्टि विधान है। प्रतिसर्ग का अर्थ सृष्टि विस्तार-प्रलय तथा पुनः सृष्टि क्रम। देवताओं तथा ऋषियों की वंश परंपरा को 'वंश' कहा है। [illegible] मनु का [illegible] के लिये अधिकार [illegible] 'मन्वंतर' है। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं के वंशों का वर्णन 'वंशानुचरित' है।[13] परन्तु पुराणों के विषय में श्रीमद्भागवत पुराण में पुराणों के लिये दस लक्षण माने गए हैं: [illegible], विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वंतर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय) हेतु तथा अपाश्रय।[14] [illegible] पौराणिक विषयों को [illegible] अधिक विस्तृत है, और पुराणों में वर्णित विषयों को [illegible] के विचार में महामहोपाध्याय [illegible] शास्त्री ने भी [illegible] की [illegible] से अधिक समीचीन परिभाषा मत्स्य पुराण (53-[illegible]-[illegible]) में ढूंढी है। पुराणों के स्वरूप के निर्णय में यह अधिक [illegible] है। [illegible] अनुसार [illegible] लक्षणों के अतिरिक्त पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा रुद्र की स्तुति, [illegible] की रक्षा एवं [illegible] तथा [illegible], [illegible] और [illegible] आदि विषयों की चर्चा करते हैं। फिर भी पुराणों की समस्त विषय-[illegible] [illegible] परिभाषा की परिधि में [illegible] नहीं आ [illegible]।[15]

[illegible] प्राचीन [illegible]-[illegible] तथा [illegible] का वर्णन [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]-367

5- विंटरनित्ज: ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर- पृ० 531

6- विष्णु पुराण-[illegible] 3-[illegible]।

7- [illegible] [illegible]- [illegible] [illegible] -पृ० 266

8- [illegible] ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन-पृ० 27

यथार्थ में पुराण-परंपरा [illegible] की भाँति सदैव अक्षुण्ण एवं जीवन की भाँति परिवर्तनशील रही है और [illegible] पाठ में सुधार, संशोधन और परिवर्तन होता रहा है। [illegible] पुराणों के विषय को निर्धारित करने में [illegible] करना कठिन है। [illegible] प्रमाण [illegible] से यही अर्थ [illegible] है कि पुराण [illegible] में [illegible] में [illegible] है।[16] डा० [illegible] ने पौराणिक [illegible] के [illegible]-प्रतिसर्ग-[illegible]-[illegible]णों (पांच -लक्षण) के आधार पर निम्नांकित प्रवृत्तियों की धारणा बनता है। (१) आस्तिकता (२) अवतारवाद, (3) सांप्रदायिकता (४) भक्ति [illegible] (५) चरित्र चित्रण [illegible] (६) [illegible] और [illegible] (७) वर्ण और आश्रम विधान (८) [illegible] और पूजाचार (९) [illegible]-धर्मांश [illegible]।[17]

उपर्युक्त पौराणिक तत्वों का आदि ग्रंथ में [illegible] उल्लेख मिलता है। इन तत्वों को किसी [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] दृष्टांत [illegible] रूप में प्रयुक्त किया गया है। [illegible] इन [illegible] का ग्रंथ में [illegible] है अनुकूल [illegible] प्रयुक्त [illegible]। [illegible] पौराणिक [illegible] में [illegible] प्रयुक्त [illegible] प्रसंग [illegible] है, [illegible] सूत्रों में [illegible] कुछ [illegible] है।

<u>आस्तिकता:</u>

आदि ग्रंथ में रचयिताओं [illegible] कुछ [illegible] है। [illegible] [illegible] युग सृष्टि के [illegible] आने का वर्णन आदि ग्रंथ में मिलता है। [illegible] सृष्टि [illegible] (36 युगों) तक और [illegible] था, गुरु नानक देव जी लिखते हैं, [illegible] ग्र [illegible] सुन्न-समाधि [illegible] था:

[illegible] नरक [illegible]। [illegible] न [illegible] [illegible]।
न दिन रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि [illegible]।[18] म:१

इस [illegible] पुराणों में [illegible] ऋग्वेद के [illegible] नासदीय सूक्त में मिलता है।[19] आदि ग्रंथ में [illegible] धुंधूकार [illegible] म:१ [illegible] सुणाई[20]

१६- आदि ग्रंथ का पौराणिक [illegible]- पृ० ८८

१७- प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास पृ० ३०४

१८- हिन्दू [illegible] - [illegible] पृ० ३६६

१९- हिन्दू संस्कार-राजबली पाण्डेय पृ० [illegible]

गुरु नानक देव तथा उनके परवर्ती गुरु कवियों ने ३६ युग का वर्णन किया है। क्योंकि ६ कल्पों का समय अंधकार (chaos) रहा:-

१- युग छतीह गुबारु तिनि कीआ। म:१ [21]

२- युग छतीह फीआ गुबारा। म:२ [22]

३- युग छतीह गुबारा। म:३ [23]

ज्ञातव्य [illegible] रहे कि जो अंधकार वाले [illegible] हैं: छत्तीस युगों के समय तक शून्य बना रहता है और ब्रह्म [illegible] ध्यान-मग्न [illegible] युगों में [illegible] युग [illegible] जाते हैं। इस समय को छत्तीस युगों का माना गया है। [24]

सृष्टि रचना में एक कल्प में चार युग माने गए हैं। उनको क्रमश: कृत (सत्य) युग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलियुग में विभाजित किया जाता है। इन युगों का समय देवताओं के वर्षों में गिना जाता है। कृत युग ४,८०० वर्ष, त्रेता युग ३६०० वर्ष, द्वापर युग २४०० वर्ष, कलियुग १२०० वर्ष- कुल जोड़ १२००० वर्ष। देवताओं का एक वर्ष ३६० वर्षों के तुल्य होता है।

[illegible] ग्रंथ में युगों की गणना [illegible] तथा अन्य धार्मिक विश्वासों के [illegible] गई है। [illegible] उल्लेख रविदास [illegible] वाणी में मिलता है:-

सतिजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार।

तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार। [25]

(अर्थात् सतयुग सत्कर्म में, त्रेता यज्ञ में तथा द्वापर पूजाचार में विश्वास रखता था। कलियुग में केवल नाम का आधार श्रेष्ठ है।)

इस विचार को गुरु नानक देव तथा उनके परवर्ती गुरु कवियों ने [illegible] में स्वीकार किया:-

गुरु नानक: सतिजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु।
त्रेतै रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु।
दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु।
कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु। [26]

२३- दशम ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० ३०

२४- श्रीमद्भागवत पुराण ([illegible])

२५- [illegible] पुराण [illegible] भूमिका-४६

२६- [illegible] (पंजाबी) [illegible] फरवरी, भाग २४ पृ०३२६ से दशम ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० [illegible] पर उद्धृत

म:३ [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] पेर [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दूरी।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[27]

म:[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।××
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।××
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।××

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।××
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।[28]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पाद थे, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible]। [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] सत्यवादी [illegible] थे। [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे। [illegible] में [illegible] [illegible] थे, [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] में धर्म केवल [illegible] पाद पर [illegible] होने से [illegible] केवल [illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] दिया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में प्रस्तुत किया गया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिउ [illegible] था।[29] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं, वेद पुरान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[30]

१९- [illegible] [illegible] [illegible] पौराणिक [illegible] पृ०३२
२०- [illegible] [illegible]- पृ० २३१-तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे। ऋ०मं०१०-सू०१२९-म०३
२१- [illegible] पृ० [illegible]
२२- [illegible] पृ० [illegible]
२३- [illegible] पृ० ३९६
२४- [illegible] पृ० [illegible]
२५- [illegible] पृ० १०३५
२६- [illegible] पृ० १०२६
२७- [illegible] पृ० १०[illegible]
२८- [illegible] [illegible] पृ०४९०
२९- [illegible] पृ० [illegible]
३०- [illegible] पृ० [illegible]

उपर्युक्त वर्णन पौराणिक मान्यता का आधार लिया है। [illegible] आधार में [illegible] मिलता है। जैन लोग [illegible] लिखते हैं: युगों के [illegible] विद्वान् और [illegible] ने [illegible], [illegible] युगों का वर्णन किया है, जिसका सारांश इस प्रकार है: कृत युग में धर्म तथा सदाचार निरन्तर था, [illegible] सिद्धियाँ [illegible] हुए। त्रेता युग में [illegible] गये [illegible] भाग कम हो गया। मनुष्य सत्यवादी थे और उन [illegible] धार्मिक [illegible] थे। द्वापर युग में धर्म आधा रह गया। वेद चार हो गये। (आदि ग्रंथ में द्वापर तथा कलि के सन्धि काल में कबीर का अवतरण लिखा है: "कलि धरि [illegible] कृष्ण [illegible] हुआ।"[31]) कलियुग में धर्म का चौथा भाग रह गया। वेदों द्वारा प्रतिपादित विधान, धार्मिक संस्कार तथा यज्ञ की विधियाँ समाप्त हो गईं। मिथ्या [illegible], [illegible] क्रोधादि दोष, [illegible], तथा [illegible] चारों ओर फैल गये।[32]

अतः [illegible] में [illegible] ग्रंथ में [illegible] का [illegible] प्रस्तुत करके आदि ग्रंथ में कलियुगी जीवों का मार्ग-दर्शन किया है।

[illegible] पृ० १२[illegible] पर भी चारों युगों का वर्णन इसी प्रकार किया है, जैसे आदि ग्रंथ में। [illegible] वैद [illegible] है, [illegible] युगों में [illegible] के [illegible] का विस्तार [illegible] है और [illegible] विकास [illegible] उतर [illegible] है, ऐसा लिखा है।

२- अवतारवाद:

श्रीमद् भागवत महापुराण की रचना का श्रेय महर्षि वेद व्यास को दिया जाता है।[33] इन्हीं वेद व्यास जी को महाभारत के पौराणिक संकलन कर्ता कहा गया है।[34] गीता जो कि महाभारत के २३ से ४० अध्याय (१८ अध्याय) हैं, इसकी रचना का श्रेय भी इन्हीं को मिलता है।[35] इन व्यास जी की रचना भागवत पुराण में प्रतिपादित धर्म को भागवतधर्म, [illegible], नारायण, वासुदेव, वैष्णव, सात्वत आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है।[36] नारायण तथा वासुदेव की [illegible] नारायण तथा वासुदेव [illegible] भी [illegible] सिद्ध [illegible] है। विष्णु पुराण में लिखा है: ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणों से युक्त तथा हेय गुणों से विहीन होने के कारण सब में बसने वाले और सबको [illegible] में बसाने वाले वासुदेव नाम से प्रसिद्ध परमात्मा को भगवान् कहते हैं।[37] और उनकी भक्ति करने वाले भागवत कहलाते हैं।[38]

[illegible]- आ०ग्रं० पृ० [illegible]   ३०- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

जिस प्रकार महाभारत में भागवत तथा अन्य पुराणों का वर्णन मिलता है, उस प्रकार आदि ग्रंथ में किसी पुराण विशेष का भी प्रमाण नहीं, वरन् सब पुराणों का प्रमाण है। फिर भी विष्णु पुराण तथा भागवत् पुराण तथा महाभारत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अवतारवाद को [illegible] आदि ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है, [illegible] ग्रंथ हैं, [illegible] श्रीमद्भगवत् गीता, तथा दूसरे आदि ग्रंथ। श्रीमद्भगवद् गीता के रचयिता व्यास ने भगवान् की गीता में परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।[39] के रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु [illegible] हम यह देखते हैं [illegible] धारण किये हुए भगवान् अवतार ग्रहण [illegible] करते हैं।[40] अतः आदि ग्रंथ में भगवान् के विष्णु रूप [illegible] के दुष्टों का नाश करने वाले हैं, और साधुओं का परित्राण करने वाले हैं, इसमें मुरारि (वासुदेव) तथा राम (मथुरा) [illegible] को सगुण रूप में स्वीकार किया गया है। परन्तु [illegible] आदि ग्रंथ में प्रभु [illegible] अवतारि परम निरंकार (निराकार) हैं। [illegible] दर्शन [illegible] गीता में [illegible] निर्गुण: [illegible]। [illegible] परमात्मा [illegible]:[41] [illegible] संस्थापक [illegible] युगे युगे।[42] [illegible] अविनाशी [illegible] भी [illegible], [illegible] पधारे।[43] [illegible] भी [illegible] नहीं।[44] आदि ग्रंथ में भगवान् का [illegible] है। वे दुष्टों का संहार करते हैं, परन्तु फिर भी [illegible], [illegible] हैं। अतः [illegible] भगवान् [illegible] धारण करते हैं, परन्तु [illegible] भगवान् के अवतारों [illegible]। [illegible] अवतारों की संख्या २४ [illegible] है। [illegible] में दस अवतार मुख्य हैं, और [illegible]। आदि ग्रंथ में [illegible] अवतारों का भी वर्णन है। [illegible]: दस अवतार [illegible] अवतार [illegible]।[45] आदि ग्रंथ में अवतारों के अतिरिक्त [illegible] का भी [illegible] है। ब्रह्म, विष्णु, शिव को [illegible], [illegible] जाती हैं, [illegible] अवतारों को [illegible] माना जाता

39- [illegible] पृ० [illegible]०   38- हिन्दू [illegible] पृ० [illegible]

33- [illegible] व्यास प्रणीतं श्रीमद् भागवत महापुराण, गीता प्रेस (गोरखपुर)

34- श्रीमद् भगवत गीता- राधाकृष्णन-परिभाषा [illegible]- पृ० १[illegible]

है। किसी अवतार में पांच और किसी में नौ अंश (कलाएं) तथा किसी में सोलह अंश माने जाते हैं। [46] जिस प्रकार डा० राधाकृष्णन ने लिखा है: ब्रह्मा विष्णु और शिव मूलत: एक हैं, यद्यपि उनकी कल्पना भिन्न भिन्न रूपों में की गई थी। ब्रह्मा की सृष्टि संसार की सृष्टि करने की प्रक्रिया में है, और विष्णु का पालन शक्ति का किया गया है। कृष्ण, भगवान् के विष्णु रूप का प्रतिनिधि है। [47] आदि ग्रंथ में भी ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश (शिव) को एक रूप मान कर उसे प्रभु के मुख्य-गुणात्मक रूप से प्रकट हुआ माना गया है। [48] आदि ग्रंथ में इन देवताओं के अवतारों का उल्लेख गुरु अमर दास ने किया है। परन्तु इनमें भी उस परमात्मा का अन्त नहीं मिला:

> इस अवतार [illegible] लाइओन [illegible] हुआ कीआ।
>
> जिस [illegible] राख [illegible] भावै [illegible] हुआ मिलीआ।
>
> ऐसा ब्रह्मा देवदे [illegible] तिनी ना [illegible]आ। वार गूजरी: म:३ [49]

गुरु अर्जुन देव जी भी अवतारों के ब्रह्मज्ञान विषयक सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'अवतार न जानहि अन्तु, परमेस्वर पारब्रह्म बेअंत।' [50] वे तो इन अवतारों को राजा कहते हैं, और महादेव को अवधूत, जो प्रभु का अन्त नहीं जान सके। [51] इतना होते हुए भी आदि ग्रंथ में भगवान् के इन पौराणिक अवतारों का कहीं

३५- श्रीमद् भगवद् गीता-राधाकृष्णन-पृ० २६

३६- भक्ति का विकास- डा० मुंशीराम पृ० २३३

३७- सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु च स सर्वात्मा, वासुदेवस्तत: स्मृत:॥ विष्णु पुराण ६-५-८०

३८- भक्ति का विकास पृ० २३३

३९- गीता- ४-८

४०- गीता ६- [illegible]

४१- गीता ३-३५

४२- गीता ४-८

४३- [illegible] नाटक पृ० ७१, अ० ६-पद ४२.

४४- वही, अ० ६- पद- ३२, पृ० ६९.

४५- हुकमि उपाए दस अवतारा। पृ० १०३७

अंनतु उपाये [illegible] अवतारा। पृ० १०३८

४६- गुरमति प्रभाकर- पृ० ६०

४७- भगवद्गीता-राधाकृष्णन पृ० २६

४८- ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाए। म:१ आ०ग्रं०पृ०१०३७

४९- आ०ग्रं० पृ० ५१९

५०- आ०ग्रं० पृ० ८९४

५१- दस अवतार [illegible] महादेउ अउधूता। तिन भी अन्तु न पाइआ तेरा, [illegible] थाके बिभूता। आ०ग्रं० पृ० ७४७।

ब्रह्मा के नाम लिया गया है तथा उनमें भगवान् के राम, निराकार, निरंजन, अयोनि अबंधु, आत्म-भू, अलेखा, अविनाशी, निराकारी, निर्वैर, निर्गुण, निर्द्वंद्व, त्रिगुण स्वरूप का आरोप किया गया है। इन ग्रंथों में भिन्न भिन्न अवतारों के नाम लेकर जो कृष्ण का गुणगान श्री गुरु अर्जुन देव ने किया है, वह उनके योग्य है। स्मरण रहे, कि आदि ग्रंथ के संपादक स्वयं गुरु अर्जुन देव ही थे। उनके पारब्रह्म परमेश्वर, अंतर्यामी एवं अच्युत हैं, फिर भी वे भिन्न भिन्न अवतारों के रूप में काम करते हैं। वे मधुसूदन, दामोदर, ऋषिकेश, गोवर्धन धारी, मुरली मनोहर, मोहन, माधव, कृष्ण मुरारी, जगदीश्वर, असुर संहारक, जगजीवन, अविनाशी ठाकुर, घट-घट वासी, नरसिंह, नारायण, दाता प्रभु (नाराज) मधुसूदन, श्री रामचन्द्र, बनवारी, चक्रधारी, मधु-कैटभ-भूमि, अनाथ-नाथ, गोपीनाथ, वासुदेव-निरंजन, मुकुंद मनोहर, लक्ष्मी नारायण, द्रौपदी का लज्जा पालक, गोपाल गोविंद, श्री रंग, मत्स्य (मत्स्य) कच्छ(कूर्म) अवतारों को नामानुसार अवतरित होने वाला, अद्भुत चरित्र वाला केशव, मधुसूदन, सांवल सुन्दर चक्रधारी वेणु-वादक, अनमोल विभूषणधारी कमल नयन, सुंदर कुंडल मुकुट-वेणु धारी, चक्र-गदा-धारी, (कृष्ण का [illegible]), पीत-पीतांबर, त्रिभुवन-धनी, जगन्नाथ गोपाल, सारिंगधर-भगवान-अटल (विष्णु) तथा का स्वयं ही गोपियों के साथ स्वयं भी वन में रमण करने वाला माना है।[52]

निर्गुण कवियों का भगवान् में अवतारों के उन गुणों का आरोप करना परंपरागत तत्त्व है। आदि ग्रंथ के सर्व-प्राचीन रचयिता भक्त जयदेव भी सकल दुष्कृत तथा दुर्मति का त्याग करके चक्रधारी (विष्णु) की शरण में आने को कहते हैं।[53] फिर भी उनके प्रभु कमलनयन, ध्रुव, अविनाशी में अभाव [illegible] तथा परमानंद स्वरूप हैं।[54] नामदेव ने भी दाशरथि राम रामचन्द्र की आराधना की है: 'जसरथ राय नंदु राजा मेरा राम चंदु प्रणवै नामा ततु रसु अंम्रित पीजै।'[55] श्री कृष्ण (देवकी नंदन) की उन्होंने स्थान स्थान पर श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'धनि धनि तू माता देवकी। जिह ग्रिहि रमईआ कवलापती।'[56] फिर भी उनके राम दशरथी राम से भिन्न हैं: पांडे तुमरा राम चंदु सो भी आवतु देखिआ था। रावन सेती सरवर होई घर की जोइ गवाई थी- तथा भगवान् भी वह नहीं है, जिसने बल-बैल को सवारी की थी, और भांति भांति के रूप धारण करके भी और उनके लड़के का मनन् किया था।[57] नामदेव

52- आ०ग्रं० पृ० १०८२-८३

53- तजि सकल दुहक्रित दुरमति भज चक्रधर सरणं। आ०ग्रं० पृ० ५२६

54- [illegible] मूल भाव समाधिं परमं प्रकंनामिलं। आ०ग्रं० पृ० ५२६

करते हैं: [illegible] जो नरक [illegible] [58] [illegible] उनके उत्तरों [illegible] नहीं; [illegible] [59] [illegible] [60] [illegible] में [illegible] [illegible] [61] [illegible]

[illegible] आदि ग्रंथ में [illegible] बंधे हुए [illegible]:

गावनि [illegible] [62]
[illegible] तुलसी [illegible]

आदि ग्रंथ में [illegible] निषेध है, [illegible]:

[illegible] [63]
[illegible]

आदि ग्रंथ में [illegible] मिलता है। आदि ग्रंथ के [illegible] दाशरथि राम [illegible] हैं:

[illegible] जोड़ु।
[illegible]
[illegible]
[illegible]

राम [illegible]
[illegible] सेवीजै [illegible]
सीता [illegible] लछमणु [illegible]
नानक [illegible] [64]

५८- आ०ग्रं० पृ० ६९३   ५९- आ०ग्रं० पृ० ६८८

गुरु [illegible] का [illegible] है कि [illegible] ने [illegible] नये नये [illegible] लिये रखे है, [illegible] का उदाहरण [illegible]:

कृपे [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] हरिनामणी [illegible] बहुत [illegible]। ६५
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] में [illegible]: [illegible] गुरु [illegible] भी [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] हैं:-

कृत [illegible] [illegible] निर्गुण गोबी [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पाई।। ६६

[illegible]-वाद के [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]-नामदेव-रविदास-कबीर से लेकर परंपरागत रूप में गुरु नानक [illegible] [illegible] [illegible] को प्राप्त हुआ। गुरु [illegible] का [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] हैं:-

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।। ६७

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] ने प्रेम-[illegible] अवस्था में प्रभु की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रशंसा की है:-

नामदेव: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ६८
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

कबीर: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मा [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] लीओ है [illegible] बड़ो [illegible] [illegible]। ६९

गुरु [illegible]: [illegible] जुगु जुगु [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] राम [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ७०

५७- आ०ग्रं० पृ० ८०४
५८- आ०ग्रं० पृ० ८०४
५९- आ०ग्रं० पृ० ४८५
६०- आ०ग्रं० पृ० ३३८
६१- आ०ग्रं० पृ० ३३८
६२- आ०ग्रं० पृ० ८
६३- आ०ग्रं० पृ० १०९
६४- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

डा० शर्मा लिखते हैं: सारांश यह है कि आदि ग्रंथ में पौराणिक अवतारवाद को स्वीकार तो नहीं किया गया, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति द्वारा किन्हीं नामों की दुर्गति नहीं की गई।[71] हमारा विचार है कि आदि ग्रंथ में भगवान् के दोनों स्वरूपों को समन्वय प्राप्त है। वह सगुण साकार, अवतारी हुआ हुआ भी है, तथा वह सार (ईश्वर) और असार (संसार) से पर। उसका वेद तथा संसार में पुरुषोत्तम प्रसिद्ध है।[72] यह विचार गीता और उपनिषद में पूर्ण पुष्ट होकर निखार में मिलता है।[73] सारे सिक्खों ने गुरु नानक को भगवान का रूप प्रस्तुत करके इन्द्रादि तथा ब्रह्मादि नामों को उसका प्रतिनिधि स्वीकार किया है। उन्हें वामन, रामचन्द्र, कृष्ण तथा नानक रूप में प्रायः सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में अवतरित होते लिखा है।[74]

3- सांप्रदायिकता:

पुराण लोगों के लिखने में सांप्रदायिक हैं। इनमें वेदों के तत्त्व को प्रधान मानते हैं, किन्तु इनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, तथा शक्ति की उपासना और स्तुति मिलती है। लेकिन इन सब में एक अखण्ड देव परमेश्वर की भक्ति तथा आराधना के संकुचित प्रचार मिलते हैं। इसी कारण पुराण सांप्रदायिक प्रचार का साधन बन गये हैं। पुराणों में सांप्रदायिकता प्रतियोगिता एवं मोह का रूप धारण कर गई है।[75] निर्गुणिया संप्रदाय के उद्देश्य को पूरा करने के लिये जैन धर्म का पुराण रचा गया, इसका प्रमाण सविस्तार इन पुराणों के नामों से भी मिल जाता है।[76]

इस प्रकार अवतार-विवाद-निषेध सिद्ध कर चुके हैं कि भगवान की ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ नहीं। अतः पुराणों की सांप्रदायिकता के कारण भिन्न-भिन्न देवताओं तथा देवी देवताओं की पूजा का प्रचार हुआ उसके कारण मार्ग में विघ्न आया, उसी प्रसंग में गीता में इस प्रकार वर्णन किया है: भगवान कहते हैं: हे अर्जुन! जिन लोगों के ज्ञान उन उन कामनाओं के कारण हर लिये जाते हैं, वे अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उन उन नियम-विधानों को करते हुए, अन्य देवताओं की शरण में जाते हैं। जिस जिस भक्त जिस किसी देवता में श्रद्धा रखता है, वह उसी देवता को प्राप्त होता है, अर्थात्, वह जैसा भी करता है, परन्तु भगवान् के भक्त भगवान् को प्राप्त होते हैं।[77] गीता में भगवान् को परमात्मा, पुरुषोत्तम, आत्मा कहा है। वह स्वयं ही, जिसे केवल विष्णु रूप कहा है, वह धर्म संस्थापनार्थ युग युग में अवतरित होता है। फिर

भी वह [illegible] एक[illegible] नहीं है, [illegible] प्रत्येक [illegible] हृदय में निवासित है।
आदि ग्रंथ में [illegible] पौराणिक [illegible] का [illegible] प्रकार [illegible] किया गया है, [illegible] प्रकार [illegible] में देवान्वेषणी [illegible] [illegible] का [illegible] प्रतिपादन किया गया है।

आदि ग्रंथ के [illegible] में [illegible] नामदेव, कबीर, [illegible] गुरु नानक [illegible] पौराणिक [illegible] [illegible] [illegible] उनमें से [illegible] प्रकार किया:-

नामदेव- [illegible] ब्रह्म [illegible] [illegible] आवै।
[illegible] देखऊ।
[illegible] आवै [illegible] दिखावे। [illegible]
[illegible] की [illegible] [illegible] नारि [illegible] [illegible]
[illegible] मुक्ति [illegible]
[illegible] माता। [illegible] माता [illegible] [illegible][78]

[illegible] प्रकार [illegible] का [illegible] [illegible] पौराणिक [illegible] विविध [illegible] [illegible] आदि ग्रंथ में [illegible] [illegible] कबीर जी [illegible] [illegible] [illegible] (पूजा) से हुई, [illegible] प्रयुक्त [illegible], अतः इसे [illegible] दृष्टि से [illegible] है:-

[illegible]: [illegible]
[illegible][79] कबीर

[illegible] तुलना करते हुए [illegible] की [illegible] है:

[illegible] [illegible]।
[illegible] नाम [illegible], [illegible]।।[80]

[illegible]- आ०ग्रं० पृ० ११६
[illegible]- आ०ग्रं० पृ० ८८४
७९- आ०ग्रं० पृ० ३[illegible]८
[illegible]- आ०ग्रं० पृ० ७३५
७८- आ०ग्रं० पृ० ११०५
८०- आ०ग्रं० पृ० ४१२

शक्ति पूजा का आश्रय लेकर जिस अनाचार का प्रचार हुआ उसी से क्षुब्ध होकर कबीर ने इतने कठोर शब्दों का प्रयोग करना चाहा। आदि ग्रंथ में कबीर जी का निम्नांकित पद वाम-मार्गियों के अनाचार की आलोचना है:

इनु पापि परि उतरत घराट इनु पतित भरि पानी।
साकि पापि पंथ जोगीता फिरे साकत नरक के रानी।[८१]

यदि कबीर ने शाक्त की अपेक्षा वैष्णव को अच्छा माना है, तो राम नाम के बिना, सेवक या चमार भी वैष्णव की उसी प्रकार है, जिस प्रकार कंचन का भूषण शाक्त के हाथ आदर-मान का हो, परन्तु अनादर में अंगार पराया हो

कबीर किनो हुआ न किया पराया चाला मेरा चार।
बाहरि हेरु चाराग, भीतरि परो अंगार।[८२]

शाक्त की आलोचना कबीर की परंपरा रूप में आदि ग्रंथ के परवर्ती रचयिताओं ने ग्रहण की। गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, तथा गुरु अर्जुन देव जी ने कबीर के स्वर में स्वर मिला कर शाक्त को कोसा है:

गुरु नानक:
१- साकत कूड़ कपट महि टेका।[८३]
२- साकत कूड़ि पचहि मनि हउमै दुखु मारगि पैरे पचाइहे।[८४]
३- साकत कूड़े अंधि पकार्ड भरि भरि जनमहि नाई जाइ है।[८५]

गुरु अमरदास: साकत कउ दुरमती हरि रस न जाणंनि।[८६]

गुरु रामदास: आदि ग्रंथ में स्थान स्थान पर इन्होंने शाक्त की आलोचना की है। शाक्त के संबंध में विचार इस प्रकार है:-

साकत नर भोगी अति पापिस, जिन हरि हरि सेवा न करा।[८७]

इस संबंध में अन्य गुरुओं के विचारों के लिये आदि ग्रंथ में पृ० १३, १७१, १७२, १२, ६६८, ७३४, ७६६, ८३४, ९८१, ९८२, १२७७, १३२१, १३२४ तथा १३३५ द्रष्टव्य हैं।

८१- आदि ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० १५४(पंजाबी), पृ० २२२(हिंदी), भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली-१९६५
८२- गाथा ११-१८
८३- उपरांत पराः पार: पुराणा:- पुष्ठकी ०-२-१, १-२।
८४- आ०ग्र० पृ० १३८९, १३९०
८५- आदि ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० १९०(पं), २२६(हि०)
८६- अष्टादश पुराण दर्पण (ज्वाला प्रसाद) पृ०३१
८७- गाथा ७-१०-२३
८८- आ०ग्र०पृ०८७४

आदि ग्रंथ में पृ० १३६ पर गुरु अर्जुन देव जी ने शाक्त के विषय में यह पूरा पद लिखा है:

गुरु अर्जुन: साकत नेहुरा पूरा मिलाभा... तोलिय गुरु साकत ... धारा।

... नीच ति... ... आती।

साकत धान परिसत फिरासी। ५:५ [88]

... के अतिरिक्त ... में उनके विचारों में अपने आदि ग्रंथ में पृ० २०१,२०६,२६५,३७२,३९७,४०३,६४१,६८१,८८६,८८८,८९२,९५७,११३६,१३२३,१३२५ तथा १३२६ भी देखने योग्य हैं।

आदि ग्रंथ में वैष्णव की उस प्रकार आलोचना नहीं की गई, जिस प्रकार शाक्त की। संभवत: इस लिये कि विष्णु के अवतारों के भक्त-वत्सल भावों से आदि ग्रंथ भी अधिक प्रभावित है। परन्तु सच्चे वैष्णव तथा ढोंगी वैष्णव में अंतर ... दिखाया गया है। ... आलोचना की परंपरा भी कबीर से आगे चलती है। ऊपर हम देख चुके हैं कि उन्होंने ... ढोंगी वैष्णव को बकरा ... माला फेरने वाले वैष्णव से हृदय में नाम स्मरण करने वाले वैष्णव को अच्छा कहा है। गुरु अर्जुन देव ने वैष्णव के गुणों ... का वर्णन किया है:

१- सो वैसनो है ... , ... जिन ... । [89]

२- ... आवे, ... परमगति पावै। [90]

३- ... मोहु ... दूरि, ... प्रभु ... । [91]

वैष्णव की ... परिभाषा उन्होंने ... की है:

४- वैसनो सो जिस ... प्रसंन।

... की माया ते ... भिंन। [92]

वैष्णव की परिभाषा उन्होंने ... धारण ... , क्योंकि वैष्णव ... भजन का त्याग कर कर्मकाण्डों में ... गया थे:-

... नामु ... , ... ।

... अभिमान। [93]

वेद पाठ, यज्ञ-कर्म आदि के अभिमान के फलस्वरूप ... से ... उन वैष्णवों की ... गुरु अर्जुन देव जी ने गुरमुख की सलाह की है।

... गुरमुखि ... । [94]

४- समन्वय भावना।

सांप्रदायिकता के समानांतर पुराणों में चलने वाली एक और प्रवृत्ति समन्वय भावना की है। समस्त पुराणों में जहां संप्रदाय विशेष के इष्टदेव को सर्वोच्च सिद्ध करने की भावना पर बल दिया गया है, वहां दूसरे इष्टदेवों के प्रति त्याग की भावना नहीं है। यथार्थ में प्रत्येक पुराण में मुख्य देव के साथ अन्य देवी देवताओं और भावों का अंश किसी न किसी रूप में स्थापित करने का यत्न अवश्य किया गया है। समस्त देव समूह सब पुराणों में समाहित है।[65]

आदि ग्रंथ में समन्वय की प्रवृत्ति को एक भिन्न रूप में स्वीकार किया गया है। निराकार प्रभु की स्तुति से संबंधित, गुरुओं के अतिरिक्त भिन्न भिन्न संतों-भक्तों की वाणियां भी इस में संगृहीत हैं। हिंदू, मुसलमान, शाक्त, वैष्णव आदि सब मतों को समान [illegible] की गई है। [illegible] पर भी किसी मत को दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं कहा। यदि श्रेष्ठ कहा गया है, तो एक गुरुमुख को जो [illegible] प्रत्येक मत के सच्चे साधक के लिये प्रयुक्त हुआ है। [illegible] उल्लेख ऊपर हो चुका है। शाक्तों तथा वैष्णवों संबंधी विचार भी ऊपर दिये गए हैं। हिंदुओं तथा मुसलमानों के विषय में आदि ग्रंथ में निम्नलिखित विचार हैं:-

(क) ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता है:-

म:१ सो ब्राह्मण जो ब्रह्मु बीचारै। आपि तरै सगले कुल तारै। आ०ग्रं०पृ०[illegible]२[66]

म:३ १- ब्रह्मु बिंदै सो ब्राह्मणु कहीऐ, जि अनदिनु हरि लिव लाए।

२- ब्रह्मु बिंदहि ते ब्राह्मणा जे चलहि सतिगुर भाइ।[67]

जाति का अभिमान तथा षट्कर्मों के विधाता माने जाने के कारण जो ब्राह्मण की श्रेष्ठता थी, उसे संतों ने नहीं माना है:-

कबीर बामनु गुरू है जगत का भगतन का गुरु नाहि।

अरझि उरझि कै पचि मूआ चारउ बेदहु माहि।। २३७।।[68]

७९- आ०ग्रं० पृ० १३७२
८०- आ०ग्रं० पृ० १३६७
८१- आ०ग्रं० पृ० ४७६
८२- आ०ग्रं० पृ० १३७२
८३- आ०ग्रं० पृ० १०३०
८४- आ०ग्रं० पृ० १०२६
८५- आ०ग्रं० पृ० १०२६
८६- आ०ग्रं० पृ० ८५४
८७- आ०ग्रं० पृ० ८६८
८८- आ०ग्रं० पृ० २३६
८९- आ०ग्रं० पृ० ११६
९०- आ०ग्रं० पृ० २७४
९१- आ०ग्रं० पृ० ११४७
९२- आ०ग्रं० पृ० २७४

(ख) मुसलमान मत का प्रतीक उसी प्रकार काज़ी (मुल्ला) है जिस प्रकार हिन्दू मत का प्रतीक ब्राह्मण है। इनमें काज़ी के गुण आदि ग्रंथ में इस प्रकार हैं:-

कबीर: काज़ी सो जो काइआ बीचारै। काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै।
सुपनै बिंदु न देई झरना। तिसु काजी कउ जरा न मरना।

इस पद में कबीर ने जोगी, हिन्दू तथा मुसलमान को एक ही स्थान पर समन्वयवादी भावना के अन्तर्गत एकेश्वरवाद का सन्देश दिया है:-

जोगी गोरखु गोरखु करै। हिंदू राम नामु उचरै।
मुसलमान का एकु खुदाइ। कबीर का सुआमी रहिआ समाइ।। ९९

इस परंपरागत समन्वयवादी प्रवृत्ति को कबीर के परवर्ती आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने भी ग्रहण किया है। गुरु नानक देव ने कबीर के उपर्युक्त पद को थोड़े से फेर बदल के साथ पाखंडी (वाम मार्गी साधक) के आचरण के लिये प्रयुक्त किया है:

सो पाखंडी जि काइआ पखाले। काइआ की अगनि ब्रहमु परजाले।
सुपनै बिंदु न देई झरना। तिसु पाखंडी जरा न मरणा। १००

गुरु नानक ने पाखंडी के लिये सुपनै बिंदु न देई झरणा को इस लिये उपयुक्त समझा, क्योंकि वाम-मार्गियों में व्यभिचार बहुत बढ़ा हुआ था। गुरु नानकदेव जी ने काज़ी तथा मुसलमान के उत्तम लक्षणों का भी उल्लेख किया है। त्याग अथवा सत्कर्म-कर्म तथा पवित्रता अथवा पाकबाज़ी काज़ी तथा मुसलमान के लिये अनिवार्य है:- १०१

१- काज़ी सो जो उलटी करै। गुर परसादी जीवतु मरै।
२- मुसलमान सोई मलु खोवै।

काज़ियों के अन्याय तथा कुकर्म को देख कर ही काज़ी का नाम तक दिया। काज़ियों द्वारा किये जाने वाले कुकर्मों का उल्लेख कबीर तथा गुरु नानक की रचनाओं में अधिक मिलता है:

कबीर: हिन्दू तुरक कहां ते आए किनि एह राह चलाई।
काज़ी तै कवन कतेब बखानी।
सकति सनेहु करि सुंनति करीऐ, मै न बदउगा भाई।
जउ रे खुदाइ मोहि तुरकु करैगा, आपन ही कटि जाई।
सुंनति कीए तुरकु जे होइगा, अउरत का किआ करीऐ।
अरध सरीरी नारि न छोडै, ता ते हिन्दू ही रहीऐ। १०२

गुरु नानक ने भी जनता में हिन्दू और मुसलमान दोनों के भेद को समाप्त करने का प्रयास किया है। कबीर का भाव था उसी रूप में रचना किये जिसमें ईश्वर ने पैदा किया है। अर्थात मानव बनना। न हिन्दू होगा न-मुसलमान होगा, इन्सान का औलाद है इन्सान होगा का प्रतिवाद इन शब्दों ने बहुत पहले उठा लिया था। गुरु नानक देव भी कहते हैं, हिन्दू है तो हिन्दू बनना है, और मुसलमान है तो मुसलमान। दोनों अपने आन्तरिक अभिमान में दूर दूर भागते हैं:-

हिन्दू है सहि हिन्दू जानै। सुन्नत मनि माटि भारि भारै।

मुसलमानु मनि मजहिबावै। हिन्दु गुरु पीर की साक न पावै।[103]

जब गुरु नानक देव जी मक्का गए तब काजियों ने पूछा, हिन्दू श्रेष्ठ है कि मुसलमान? आपने गुरुवाणी की है, बाबा आखे हाजीआं, शुभ अमलां बाझहु दोवै रोई।[104] गुरु नानक देव जी ने काजियों के अन्याय का विरोध भी किया है और काजी के लक्षण बताए:-

१- काजी कूडु बोलि मलु खाइ।[105]

२- काजी होइ कै बहै निआइ। फेरे तसबी करे खुदाइ।

वढी लै कै हकु गवाए। जे को पुछै ता पड़ि सुणाए।[106]

गुरु नानक ने काजी, ब्राह्मण तथा जोगी की त्रिकुटी, इनके पाखण्डों का भंडाफोड़ कर इनके सत्य स्वरूप को प्रकट कर दिया।[107]

५- चरित्र चित्रण में प्रतीक रूपकात्मकता।

डा० राम सिंह अरमान लिखते हैं, कुछ विद्वान पुराणों के पात्र दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं: देवता तथा दैत्य। दैत्य- दुराचारी, अत्याचारी, पापी, अहंकारवादी तथा समस्त बुराइयों के प्रतीक हैं। इनका रूप भी बहुत विकराल एवं भयानक है। वे इतने शक्तिशाली हुए हैं, कि उन्होंने तीन लोक जीत कर इन्द्र को दुर्गा की शरण में जाने के लिये बाध्य कर दिया था। देवताओं के लिये भगवान ने विष्णु, शिव-ब्रह्मा आदि के अवतार रूप में अवतरित होना स्वीकार किया। पुराणों में अधिकांश पात्र ऐसे ही गुट हैं। यह सब देवताओं के सहायक थे। देवता सत्य के प्रतीक तथा असुर झूठ के प्रतीक हैं।[108] इसका विश्लेषण करते हुए डा० महादेव का विचार है कि आदि ग्रंथ एक पुस्तक मात्र ग्रन्थ है, इसी से इस में चरित्र चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठता।[109] इन्होंने स्पष्ट कहा कि चरित्र चित्रण, भावात्मक तथा

१०३- आ०ग्रं० पृ० ११०२-३   १०४- आ०ग्रं० पृ० ७१८

प्रबन्धकाव्य में [illegible] है। परन्तु आदि ग्रंथ में [illegible] पौराणिक [illegible] बातों की [illegible] में प्रस्तुत किया गया है, [illegible] पौराणिक चरित्रों [illegible] है। [illegible] आदि ग्रंथ का [illegible] प्रस्तुत [illegible] है। [illegible] प्रस्तुत [illegible] सकता है, परन्तु [illegible] की सीमा के [illegible] आदि ग्रंथ में पौराणिक चरित्रों [illegible] प्रस्तुत [illegible] है:-

कृष्णावतार।

नामदेव। [illegible] [110] [illegible] । [illegible] । रहाउ॥
[illegible] । [illegible] ।
[illegible] [111] [illegible] ।
[illegible] बिंद्राबन [illegible] ।
बेन [illegible] चरै । [illegible] आनंद [illegible] ॥४॥१॥

नाम देव [illegible] (कृष्ण) है। [illegible] चित्रण नामदेव [illegible] किया है, जो पूर्णतया कलापूर्ण है। [illegible] राम, कृष्ण, [illegible], नरसिंह और विष्णु हैं:

[illegible] प्रस्तुत [illegible] ।
[illegible] राम [illegible] ।
[illegible] [112] [illegible] [113] [illegible] ।
[illegible] [114] [115] [illegible] ।
[illegible] [116] नरसिंह [illegible] ।
[illegible] [117] [illegible] ।

[illegible] आदि ग्रंथ में [illegible] चरित्र चित्रण [illegible] है:

वामन अवतार

नामदेव: [illegible] द्वार [illegible] ।
[illegible] [illegible] [118] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।
[illegible] पइआलि [illegible] [119] [illegible] ।
[illegible] [illegible] पृ० ११०३

११५- [illegible] ग्रंथ का [illegible] पृ० २०१

नरसिंह अवतार

नामदेव: १-भगत हेति मारिओ हरनाखसु, नरसिंघ रूप होइ देह धरिओ।[120]

२-हरनाखसु जिनि नखह बिदारिओ, सुरि नर कीए सनाथा।[121]

कबीर: सोई पारब्रहम देवाधि देव। भगति हेति नरसिंघ भेव।

कहि कबीर को लखै न पार। प्रहलाद उधारे अनिक बार।[122]

म:३ प्रहलाद के कारजि हरि आपु दिखाया।भगतिआ का करहि अंकार।

भगता नरसिंघ का रूप निवारु।[123] -कथा-

साथि कुसंगि हरि धारणा बनि अंगकारि।

हरि तेरा कहां जुगत लए उधारि।

बिन भगति भेखान रूप नरसिंघ प्रगटाइ।

हरणाखसु नखी बिदारिआ प्रहलादु लीआ उबारि।

संत जना के हरि कारज सवारे। प्रहलाद जन के इकीह कुल उधारे।[124]

म:४ जुगि जुगि भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे।

हरणाखसु दुसटु हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ।[125]

९६- आ०ग्रं० पृ० ११२ ९७- आ०ग्रं० पृ० ८४६

९८- आ०ग्रं० पृ० ११३७ ९९- आ०ग्रं० पृ० ११६०

१००- आ०ग्रं० पृ० ६१२ १०१- आ०ग्रं० पृ० ६१२

१०२- आ०ग्रं० पृ० ६११ १०३- आ०ग्रं० पृ० ६१२

१०४- भाई गुरदास वार -१ १०५- आ०ग्रं० पृ० ६६२

१०६- आ०ग्रं० पृ० ६५ १०७- आ०ग्रं० पृ० ६६२

१०८- आदि ग्रंथ का पौराणिक आख्यान पृ० ११४-११५ (पं०) पृ. २३३ (हिंदी संस्करण).

१०९- आदि ग्रंथ का पौराणिक आख्यान पृ० ११५ (पं०) पृ. २३४ (हिंदी संस्करण).

११०- आ०ग्रं० पृ० ९८८ १११- कृष्ण देवकी पुत्र: छान्दोग्य-३-१७-६ (3-17-6)

११२- अम्बरीष चक्रवर्ती मांधाता का पुत्र। मत्स्य पुराण के अनुसार यह पन्द्रहवें त्रेता युग में था। (भारत वर्ष का इतिहास- आदि युग से गुप्त साम्राज्य तक- पंडित भगवद् दत्त- बी०ए० द्वितीय संस्करण संवत् २००३।

११३- दाशरथि राम- सुग्रीव रावण पर विजय पाकर महारावण को मार कर राम ने ३० वर्ष की आयु में अयोध्या का राज संभाला। वायु पुराण के अनुसार दाशरथि राम २४वें त्रेता युग में हुए (वायु ७०-४७) भारत वर्ष का इतिहास पं० भगवद्दत्त पृ० ११०.

भक्-क-धारा- अवतार

१- भक्त भक्त गतिशा ब्रजनी।।:।[128]

२- जरन करन भक्त कृ हुज राम, अधुरा के बुलि रि तिजी गिनि निंद जाज।।[127]

सवैये ५:४ ।

इन पौराणिक व्यक्तियों के चरित्र पर जो प्र ा आदि-ग्रंथ में माला गया है, उनमें भक्त प्रहलाद प्रमुख आते हैं:-

बलि राजा:

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था, उसका पुत्र था बलि।[128] बलि दैत्य-राजा था, जिसे दानवीर होने का बड़ा अहंकार था। उसने सारा राज जीत लिया। इन्द्र का पदवी को प्राप्त करने के लिये १०१ यज्ञ करने लगा। इन्द्र, विष्णु के पास सहायता के लिये गया। विष्णु ने वामन-रूप धारण कर तीन कदम धरती मांगी। राजा बलि के पुरोहित शुक्र ने वामन रूप को पहचान लिया तथा दान देने से राजा को रोका। परन्तु राजा बलि ने अहंकारवश अपने गुरु के आदेश को न माना। गुरु नानक देव जी कहते हैं:-

बलि राजा माइआ अहंकारी। जगन करै बहु भार अफारी।
बिनु गुर पूछे जाइ पइआरी। ५:१[129]

इसी दानवीरता के अहंकार में बलि ने दान का वचन दे दिया। वामन ने एक कदम में धरती और दूसरे कदम में स्वर्ग-लोक (आकाश) को माप लिया। तीसरे कदम के लिये बलि ने अपना सिर समर्पित किया। वामन ने उसे पाताल में पाताल पहुंचा दिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं:-

छल करि धरती मंगी बावन रूपि करानै।
किउ पइआलि जाइ किउ छलीऐ जे बलि रूपु पछानै।[130]

१२४-सुदामा-निर्धन ब्राह्मण-बाल सखा कृष्ण-सखा।

१२५-ध्रुव भक्त- राजा उत्तानपाद का पुत्र। भागवत तथा विष्णु पुराण में कथा। सौतेली माता के दुर्व्यवहार के कारण तप किया। नारद गुरु। विष्णु के साक्षात्कार दर्शन। ३६००० वर्ष राज्य किया, पुनः विष्णु द्वारा दिया गया उच्च स्थान पर टिक गया। (गुरमत मार्तंड-ज्ञानी लाल सिंह)

१२६- दैत्य राजा, दिति का पुत्र तथा प्रह्लाद का पिता।

१२७- प्रह्लाद का पौत्र तथा विरोचन का पुत्र जो बड़ा दानी था। वा०/०/०१:०५

परन्तु वामन ने फिर नया आकार [illegible] ही स्वीकार नहीं था। अब दो चरणों में धरती और आकाश नाप लिये थे, तीसरा [illegible] बलि को पता न चला था। कहा जाता है, जब बलि को पाताल में ले जाया गया, तो बलि ने भगवान् के सिर को [illegible] किया। भगवान् [illegible] बलि पर प्रसन्न हो गये थे। नाम देव कहते हैं कि भगवान् ने बलि को पाताल का राज्य दे, [illegible] बनना पड़ा।

साधा रहे भक्ति बलि [illegible], [illegible] द्वार [illegible]।[231]

<u>हरनाकस (हिरण्यकशिपु) -षण्ड-मर्क- प्रह्लाद :</u>

ये मुलतान प्रदेश का राजा माना जाता है। आदि ग्रन्थ में इसके पिता का नाम [illegible] और [illegible] का नाम [illegible] किया है।[232] परन्तु [illegible] में पिता नाम कश्यप लिखा है।[233] इसने अन्तराल(?) [illegible] पर तप करके ब्रह्मा से वर प्राप्त किया: 'न दिन में, न रात में, न अन्दर न बाहर, न अस्त्र से न शस्त्र से मेरी मृत्यु हो।'[234] जीवन सोहल ने लिखा है: महाभारत तथा पुराणों के अनुसार इस दैत्य राजा ने [illegible] वर्षों के लिये त्रिलोकी का राज्य प्राप्त कर लिया था।[235] इसके एक प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता को भगवान् मानने से इन्कार कर दिया और प्रभु भक्ति में अनुरक्त रहने लगा। षण्ड तथा मर्क जो कि [illegible] के पुत्र थे, वे असुर पुरोहित थे। ऐसा वायु पुराण में लिखा है।[236] प्रह्लाद इन पुरोहितों के पास पढ़ने भेजा गया था। प्रह्लाद की कथा का आदि ग्रंथ में नामदेव, कबीर और गुरु अमरदास ने पूरे पदों में वर्णन किया है। गुरु [illegible] रचनाकारों ने [illegible] दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत किया है। कबीर तथा गुरु अमरदास ने अपने पदों की पूर्ण प्रेरणा नामदेव से प्राप्त की है। तीनों भक्तों के पदों में विषय, [illegible], [illegible] कोई विशेष अन्तर नहीं। नामदेव की रचना भैरउ राग में,[237] कबीर की रचना [illegible] में[238] तथा गुरु अमरदास की रचना दो स्थानों पर[239] राग भैरउ में है।

बताया जाता है कि प्रह्लाद ने राम नाम के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने से इन्कार किया:-

---

२२८- गुरु ग्रंथ पृ० १०७२
२२०- ना०प्र० पृ० ११०५
२२१- ना०प्र० पृ० ११६४
२२२- ना०प्र० पृ० ११६३
२२६- ना०प्र० पृ० १३५५
२२९- ना०प्र० पृ० ११६५
२२४- ना०प्र० पृ० ११६४
२२५- ना०प्र० पृ० ४५२

नामदेव: [illegible] पुकारै। [illegible] नाम [illegible] उधारै।
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]।
[illegible] नाम [illegible] है, [illegible] [illegible]।

कबीर: [illegible] [illegible] प्रह्लाद [illegible]। [illegible] रे [illegible] राम नाम।
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] : सभ नारी [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] न [illegible]।
संडै मरकै [illegible] पुकार। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को [illegible] कष्ट दिये। [illegible] खम्भ में [illegible] ने [illegible]। [illegible] नरसिंह रूप [illegible] [illegible] [illegible] को नखों से फाड़ दिया। आदि ग्रंथ में [illegible] [illegible] है, [illegible] नरसिंह अवतार के संदर्भ में किया गया है।

राजा हरिश्चन्द्र :

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] मार्कण्डेय पुराण [illegible] [illegible] [illegible]। महाभारत में [illegible] [illegible] उल्लेख है।[१४०] आदि ग्रंथ में [illegible] [illegible] उल्लेख है:-

प्रभाती म:१ : [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाम न [illegible]।[१४१]

दानवीर [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं था। आदि ग्रंथ में [illegible] अथवा [illegible] [illegible] [illegible] उल्लेख [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]:-

म:५ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[१४२]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[१४३]

[illegible] [illegible] ग्रंथ के [illegible] [illegible] [illegible] हैं: [illegible] [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] राजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। वह [illegible] पुण्य [illegible] स्वर्ग को प्राप्त हुआ। परन्तु नारद मुनि ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। पुराणों में [illegible] उल्लेख है।[१४४]

१३६- आ०ग्रं० पृ० १०७२ १३७- आ०ग्रं० पृ० १४०३
१३८- [illegible] पृ० २६६ १३९- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

गौतम-अहल्या-इन्द्र

भगवान गौतम में लिखा है कि अहल्या वृद्धाश्व की पुत्री थी। गौतम (शरद्वत) उसका पति था। रामायण के अनुसार ब्रह्मा ने उसे [illegible] बनाया था।[145] श्री [illegible] लिखते हैं, रामायण के अनुसार [illegible] ब्रह्मा द्वारा निर्मित [illegible] ब्रह्मा ने गौतम [illegible] दिया। इन्द्र ने [illegible] छलकर अपने कुकर्म का फल पाया।[146] गुरु नानक देव जी लिखते हैं:-

गौतमु तपा अहलिआ इसत्री तिसु देखि इंद्रु लुभाइआ।
सहस सरीर चिहन भग हूए ता मनि पछोताइआ।[147]

गौतम-अहल्या तथा इन्द्र [illegible] काम-वासना के संदर्भ में गुरु नानक के पूर्ववर्ती सन्तों ने भी उल्लेख किया है:

गोरखनाथ: इंद्र (इन्द्र) [illegible] भाग्य।[148]

नामदेव: गौतम सती सिला निसतरी।[149] गौतम नारि अहलिआ तारी।[150]

रविदास: गौतम नारि उमापति स्वामी। सीसु धरनि सहस भग गांमी।[151]

रावण:

नामदेव तथा कबीर ने भारत के अभिमान को चूर्ण बताने के लिये रावण की सोने की लंका तथा ऐश्वर्यादि का वर्णन किया है:-

नामदेव: [illegible] सुवरन की लंका सोना रावन के घर माही।
[illegible] भावी [illegible] [illegible] जाति [illegible] पराई।[152]

कबीर: रावन लंक न जाय [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।
लंका गढ़ सोने का [illegible]। [illegible] रावनु [illegible] न भा।[153]

रावन के चरित्र को कबीर ने एक अन्य स्थान पर बड़ी कुशलता से चित्रित किया है:-

लंका सा कोटु समुंद सी खाई। तिह रावन घर खबरि न पाई।
इकु लखु पूत सवा लखु नाती। तिह रावन घरि दीआ न बाती।
चंदु सूरजु जा के तपत रसोई। बैसंतरु जा के कपरे धोई।
[illegible] कहत कबीर सुनहु रे लोई। राम नाम बिनु मुकति न होई।

१३०- आ०ग्र० पृ० १३४४ | १३१- आ०ग्र० पृ० १[illegible]०५

१३२- आ०ग्र० तुलसी [illegible]-पृ० | १३३- मानस [illegible] पृ० [illegible]०६

१३४- तुलसी [illegible]-पृ० ३०१ | १३५- हिन्दी [illegible]-१६०

गुरु [illegible] देव ने रावण [illegible] की वर्णन किया है:-

[illegible] ५:५ रावन [illegible] नहि [illegible] आहि।[254]

गुरु ग्रंथ [illegible] में नामदेव [illegible] कबीर की भाँति [illegible] रावण के [illegible] की [illegible] गया है:-

[illegible] रावण [illegible] ।[255]

विष्णु पुराण में रावण [illegible] है। जिस में लिखा है कि [illegible] दूसरे जन्म में [illegible] था।[256]

[illegible] पौराणिक [illegible] के रचनाओं में आया है। पौराणिक [illegible] इस प्रकार हैं:-

[illegible], [illegible], प्रह्लाद, [illegible], ध्रुव, [illegible], जमदग्नि, परशुराम, [illegible], बहुर, विदुर, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], दशरथ, कृष्ण मुरारि, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], दुर्वासा, पुलस्त्य, अंगिरा। ([illegible])[257]

[illegible] पौराणिक [illegible] नामों [illegible] के [illegible] में [illegible] है। यथा:-

[illegible] पुण [illegible]।[258]

[illegible], इक्ष्वाकु [illegible] मांधाता था। [illegible] पुराणों में [illegible] है [illegible] निकला [illegible] हुआ था। परन्तु विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण में [illegible] है, कि [illegible] के कोई पुत्र न था, [illegible] उत्पन्न हुआ था। [illegible] ने [illegible] पाला।[259] [illegible], [illegible] [illegible] में [illegible] हैं: मांधाता [illegible], [illegible] सार्वभौम सम्राट था। चक्रवर्ती राजा की [illegible] में [illegible] है। मांधाता [illegible] पृथ्वी का विजेता था। अतः मांधाता सार्वभौम [illegible] है। [illegible] पुराण के अनुसार [illegible] युग में हुआ था। पुराणों [illegible] है।[260]

२५६- वायु पुराण ८५-[illegible]-९४ [illegible] उद्धृत।

२५७- भा०को० पृ० २६५

२५८- भा०को० पृ० [illegible]९४

२५९- भा०को० पृ० [illegible],१९४

२६०- हिन्दू [illegible] पृ० २५६

जिस प्रकार भागवत में जैसे पुरी कथा में पुष्प का पूरे बहुतसे पोने का चित्रण किया गया है, इस प्रकार अन्य कथाओं का उनके चरित्र चित्रण के चित्रण के संदर्भ में उल्लेख हुआ है।

वैराग्य सिद्ध, अंबरीष, उद्धव, अक्रूर, रुक्मांगद, प्रह्लाद, सुर-नर गण-गंधर्व, वेद गोस। सवैये न:३[161]

सवैये न:४ में गुरु राम दास को रघुवंश कुल का मानकर यह कथा लिखाहै:

राम जिनि सिंधु बंदक दसरथ सारि मुनि संगति ता को सरणं।

सानि गुरु गुरु सेवि बन्ना सानि ता मो श्री राम दास तारण तरणं।[162]

आगे कह कर कहा है कि गुरु जी ने मत्स्य, कूर्म वराहादि का अवतार लेकर जन्म कर्म किया, तथा कृष्ण अवतार मथुरा के किनारे गेंद लीला:-

जमुना चरण मज कहु हुअ तराज, जमुना के कूलि केह गोपियाँ किनि खिंद गोद।[163]

उपर्युक्त पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त निम्नांकित चरित्रों का भी आदि ग्रंथ में कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है:-[164]

उग्रसेन, अजामिल, अरण्यकासा, सहस्रबाहु, सुदामा, शेष नाग(वासुकि) सरस्वती, सीता, अंधासुर दैत्य, हनुमान(हणवंत) कैसा, कंस, चाणूर, कुब्जा, गरुड़, गणेश, गायत्री, गौरी, गौतम पितामाता, चंद्रावलि गोपिका, चंद्रायणी गणिका, जयमेजय, जरासंध, जालंधर दैत्य, त्रिलोचना, दत्तात्रेय, द्रौपदी, दुर्वासा, दुर्योधन, धर्मराज, नारद मुनि, पारिजात (वृक्ष) भामिनी, परशुराम, पिंगला, गणिका, बलभद्र, यमराज, रक्तबीज, वीरभद्र, वाल्मीकि, आदि।

१४१- गा०ग्र० पृ० १३४४

१४२- गा०ग्र० पृ० १३६३

१४३- गा०ग्र० पृ० ८०३

१४४- [illegible] ग्र० [illegible] ० पृ० ८०३ नोट ३

१४५- [illegible] पृ० २४

१४६- हिन्दू [illegible] पृ०१६

१४७- गा०ग्र० पृ० १३४३

१४८- [illegible] पृ० १६८

१४९- गा०ग्र० पृ० ८०४

१५०- गा०ग्र० पृ० ६८८

१५१- गा०ग्र० पृ० ६१०

१५२- गा०ग्र० पृ० ९६३

१५३- गा०ग्र० पृ० १३५८

१५४- गा०ग्र० पृ० १३६३

१५५- गा०ग्र० पृ० १३२८

१५६- हिन्दू [illegible] कोश-पृ०४६५

१५७- गा०ग्र० पृ० १३८६

१५८- गा०ग्र० पृ० १३९०

१५९- [illegible] पृ० [illegible]

१६०- भारत वर्ष का [illegible]।

६- चमत्कारवाद और चरित्र विचित्रता।

डा० रतन सिंह लिखते हैं कि निस्संदेह पुराण विचित्र घटनाओं तथा चरित्रों और उनकी विचित्र लीलाओं से भरपूर हैं। घटना संबंधी विचित्रता तथा चरित्र संबंधी विलक्षणता लाने के लिये लौकिक तथा अलौकिक कारणों की कल्पना पुराणों में यथा स्थान की गई है। जहां सांप्रदायिकता अधिक रही है, वहां चमत्कारवाद की चरम सीमा देखी जा सकती है। आदि ग्रंथ का मुख्य ध्येय किसी देवता विशेष की प्रभुता स्थापित करना नहीं। इस लिये चमत्कार तथा चरित्र संबंधी विचित्रता दिखाने के लिये इस में अवसर ही नहीं। सिख गुरु चमत्कार में विश्वास नहीं रखते।[१६५]

डा० मनमोहन सहगल का उपर्युक्त मत बिल्कुल ठीक है। आदि ग्रंथ के रचयिता करामात के विरुद्ध हैं:-

म:१- आपि नाथु नाथी सभ जा की, रिधि सिधि अवरा साद।[१६६]

म:३ सिधु नावै पिण्डु [illegible] आदि है, सिधु सिधी सिधु करमाति।
सा सिधि सा करमाति है, अचिंत करे जिसु दाति।[१६७]

आदि ग्रंथ के रचयिता सिख गुरुओं की रचनाओं में ही नहीं, दशम ग्रंथ के रचयिता गुरु गोविन्द सिंह की रचना बिचित्र नाटक में ऐसे पद मिलते हैं, जिनमें करामात का निषेध है:-

नाटक चेटक कीए कुकाजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा।[१६८]

इतना होते हुए भी भक्त तथा भाट कवियों की रचनाओं में चमत्कारवाद तथा चरित्र विचित्रता के यत्र तत्र दर्शन अवश्य हो जाते हैं। पौराणिक चमत्कारवादी एवं विचित्र घटनाओं को गुरुओं तथा भक्तों ने बिना किसी आलोचना के स्वीकार कर के आदि ग्रंथ में कोई स्थान नहीं दिया। चमत्कार नाम है, उस घटना का जो लौकिक प्राणियों के लिये असंभव, अद्भुत, आश्चर्यजनक तथा रोंगटे खड़े कर देने वाली हो। आदि ग्रंथ की रचना के काल क्रम के अनुसार प्रथम जयदेव का नाम आता है। उनकी रचना के दो ही पद हैं, जिन में इस तत्व का कोई उल्लेख नहीं। फरीद जी की रचना में भी कहीं इस तत्व का अभाव ही दिखाई देता है। परन्तु नामदेव की रचना में चमत्कारवाद का प्रचुर वर्णन आता है।

१६१- आ०ग्र० पृ० १३६२ १६२- आ०ग्र० पृ० १४०२

१६३- आ०ग्र० पृ० १४०३ १६४- गुरमत मारतंड पृ० [illegible]

नामदेव ने अपने वचन में एक कथा प्रस्तुत की है,[169] जिस पर प्रह्लाद वाली घटना का स्पष्ट प्रभाव है। नामदेव को किसी सुल्तान ने बांध लिया और उसे मरी हुई गाय जीवित करने को कहा, यदि वह ऐसा न करेगा तो उस की गर्दन काटी जाएगी।

सुल्तानु पूछै सुनु बे नामा। देखउ राम तुम्हारे कामा।
नामा सुल्ताने बाधिला। देखउ तेरा हरि बीठुला। रहाउ॥
बिस-मिलि गऊ देहु जीवाइ।। नातरु गरदनि मारउ ठांइ।।

सुल्तान को नामदेव का यह कथन स्वीकार हुआ, क्योंकि नामदेव ने चमत्कार दिखाने का कोई वचन नहीं दिया। उन्हों ने तो सुल्तान को कहा कि मृत गाय कैसे जीवित हो सकती है:-

बादिसाह ऐसी किउ होइ। बिसमिलि कीआ न जीवै कोइ।
मेरा कीआ कछू न होइ। करि है रामु होइ है सोइ।।

इस पर बादशाह को क्रोध आ गया और उसने हाथियों को चमकाया। जब नामदेव को मस्त हाथियों से मारने लगे, तो नामदेव की माता रोने लगी और कहने लगी कि राम राम छोड़ कर खुदा का नाम लेना आरंभ कर दे। नामदेव ने उत्तर दिया कि मैं तेरा पुत्र नहीं और तू मेरी माता नहीं, यदि मेरा शरीर नष्ट भी हो जाए तो भी हरिगुण गान करेगा। हाथी अपनी सूंड से नामदेव को मारने लगा, परन्तु नामदेव को उस के हरि ने बचा लिया। नामदेव जी इस तरह एक चमत्कारपूर्ण घटना का वर्णन करते हैं:-

पाखंतण बाज बजाइला। गरुड़ चढ़े गोबिंद आइला।
अपने भगत परि की प्रतिपाल। गरुड़ चढ़े आए गोपाल।
कहहि त धरणि इकोडी करउ। कहहि त ले करि ऊपरि धरउ।
कहहि त मुई गऊ देउ जीआइ। सभु कोई देखै पतीआइ।[170]
नामा प्रणवै सेल मसेल। गऊ दुहाई बछरा मेलि।

यहां पर बादशाह की सभा में गरुड़ पर सवार हो गरुड़ पंखों की ध्वनि का बाजा बजाता हुआ गोविंद ने आकर नामदेव को कहा: यदि तू कहे तो धरती उल्टी कर दूं- और कहे तो इस को हाथ के बल ऊपर धर दूं। कहे तो मृत गाय को जीवित कर दूं। नामदेव ने विनय की कि रस्सी डाल कर गाय का दूध निकालना है। कट गाय जीवित हो गई, जिसे बछड़ा नीचे छोड़कर दुहाया गया।

नामदेव [illegible] कहते हैं कि लोग उस के पास आए और कहने लगे कि यदि गाय जीवित न हुई, तो उस से लोगों का विश्वास उठ जायगा। अतः नारायण ने उसकी लज्जा रख ली, क्योंकि नामदेव और नारायण में कोई भेद नहीं:

नामे की कीरति रही संसार। भगत जना ले उधारिआ पारि।
सगल कलेस निंदक भइआ खेद। नामे नाराइण नाही भेद।[१९१]

उनके जीवन में भी एक और चमत्कार-पूर्ण घटना का वर्णन नामदेव जी ने किया है; अर्थात् नामदेव जी के पिता, जो कि विट्ठल के आराधक थे, नामदेव जी को एक दिन [illegible] कहीं चले गए कि विट्ठल की मूर्ति को दूध का कटोरा दे आना। नामदेव बच्चा था। वह दूध लेकर मूर्ति के सामने कटोरा रख कर बैठ गया, भला मूर्ति कैसे दूध पिए? परन्तु नामदेव तो पिता की आज्ञा का पालन तभी [illegible] सकते थे जब ठाकुर दूध पीते। अतः वह निःसहाय अवस्था में अनुनय विनय करने लगा, तो ठाकुर ने दूध पी लिया:-

दूध कटोरै गडवै पानी। कपल गाइ नामै दुहि आनी।
दूध पीउ गोबिंद राइ। दूध पीउ मेरो मनु पतीआइ।
नाही त घर को बापु रिसाइ। × × × × ×

सुइन कटोरी अम्रित भरी। लै नामै हरि आगै धरी।
दूध पीआइ भगतु घरि गइआ। नामे हरि का दरसनु भइआ।[१९२]
इस घटना को इसी रूप में कविकार ने स्वीकार किया है:
पियत नामदेव दूधु पीआइआ। तउ जग जनम संकट नहीं आइआ।।[१९३]

यह तो रही बचपन की चमत्कार पूर्ण घटना। अपनी प्रौढ़ावस्था की एक घटना प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं कि नामदेव जी पंढरपुर के विट्ठल जी के मन्दिर में पूजा के लिए गए। उनकी हीन-जाति को देखकर वहां के पंडितों ने उन्हें पूजा से उठा दिया। नामदेव ने यादवराय (कृष्ण) को पुकार कर अपनी नीच जाति के जन्म का शोक प्रकट किया। [illegible] छोड़ कर नामदेव देहुरे के पीछे जा बैठा और हरिगुण गान करने लगा। ज्यों ज्यों नामदेव हरि नाम का गुण गायन करता था,

---

१९५- [illegible] ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० [illegible] (हिंदी संस्करण)।

१९६- आ०ग्रं० पृ० [illegible]   १९७ - आ०ग्रं० पृ० [illegible]

१९८- [illegible] नाटक (गुरु तेग बहादुर का बलिदान) अध्याय २, पद १४, [illegible]

वैसे ही देहुरा फिराया गया और मन्दिर का देव-द्वार नामदेव के सामने आ गया और पुजारी पंडितों की ओर मन्दिर की पीठ हो गई।[१७४]

नामदेव: हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ। भगति करत नामा पकरि उठाइआ।
हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ। छीपे के जनमि काहे कउ आइआ।
लै कमली चलिओ पलटाइ। देहुरै पाछै बैठा जाइ।
जिउ जिउ नामा हरि गुण उचरै। भगत जनां कउ देहुरा फिरै।

गुरु राम दास जी ने भी दो स्थानों पर आदि ग्रंथ में नामदेव जी द्वारा वर्णित घटना की ओर का केवल [illegible] किया है:-

म:४ १- अहंकारीआ निंदका पिठि देइ नामदेउ मुखि लाइआ।[१७५]
२- नामदेअ प्रीति लगी हरि सेती लोकु छीपा कहै बुलाइ।
खत्री ब्राहमण पिठि दे छोडे हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ।।[१७६]

पद्म पुराण में प्रह्लाद की कथा है।[१७७] नामदेव द्वारा बिस्मिल गाय जीवित करने वाले पद से पूर्व प्रह्लाद की कथा का वर्णन है। उस के सब वही तत्त्व हैं, जो नामदेव के अपने जीवन की कथा में। प्रह्लाद को राम नाम छोड़ने की आज्ञा होती है। वह नहीं मानता। उसकी माता उसे कहती है जब सब लोग हिरणयकशिपु का नाम जपते हैं, तो प्रह्लाद क्यों नहीं मानता। प्रह्लाद को अनेक कष्ट दिये गये जब उसे तप्त लोह-स्तंभ से चिपटने को कहा तो नरसिंह अवतार धारण कर प्रभु ने उसकी रक्षा की:-

[illegible]।
हरणाखसु छेदिओ नख बिदारिओ सुरि नर कीए सनाथा।[१७८]

इस कथा को भी संत कबीर, गुरु अमरदास तथा गुरु रामदास ने स्वीकार किया है। [illegible] प्रह्लाद के पीछे हुआ तो भगवान ने प्रह्लाद की रक्षा की:-

कबीर: कालि खड़ग कोपिओ रिसाइ। तुझ राखनहारो मोहि बताइ।
प्रभ थंभ ते निकसे कै बिसथार। हरणाखसु छेदिओ नख बिदार।
ओइ परम पुरख देवाधि देव। भगति हेति नरसिंघ भेव।
कहि कबीर को लखै न पार। प्रहलाद उधारे अनिक बार।।[१७९]

[illegible]- आ०ग्रं० पृ० [illegible]। १७७- कबीर ग्रं० (तुकांत) के टिप्पणीकार ने सुलतान का नाम मुहम्मद-बिन-तुगलक लिखा है पृ० १०६५- पाद टिप्पणी।

५:३ पिता प्रह्लाद [illegible] गुरज उठाई। कहा तुमारा जगदीस गुसाई।
थंभ उपाड़ि हरि [illegible] दिखाइआ। अहंकारी दैतु मारि पचाइआ।
भगता मनि आनंद वजी वधाई। अपने सेवक कउ देवडिआई।।[१८०]

५:४ जुगु जुगु भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे।[१८१]
हरणाखसु दुसट हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ।

रामायण में कथा आती है, कि राम ने जब समुद्र पर पुल बांधा तो पत्थर [illegible] पर राम नाम लिख कर पानी में छोड़ दिया। पत्थर पानी पर तैरने लगे और पुल बन गया। नामदेव जी ने इस चमत्कारपूर्ण घटना को स्वीकार करते हुए लिखा है:-[१८२]

देखा पाखन तारता है। राम कहत जन कस न तरे।

अर्थात् जब पत्थर तार दिये, तो राम कहने वाले क्यों न तरेंगे? भगवान् ने भी अपनी कृपा से पापियों का उद्धार कर दिया। गणिका, कुब्जा-दासी, अजामिल-अपराधी, दासी-पुत्र विदुर तथा विप्र-सुदामा का उद्धार किया। उग्रसेन को पुनः मथुरा का राज्य [illegible] प्रदान किया।

गुरु ग्रंथ में इस प्रकार की विविध लीला का दिग्दर्शन कराने के लिये भक्तों ने अपना हृदय [illegible] एवं अलौकिक प्रस्तुत किया है। काल क्रम से नामदेव के पश्चात् कबीर जी का नाम आता है। दोनों भक्तों ने अपने स्वामी (भगवान्) का [illegible] विविध रूप प्रस्तुत किया है। गुरु नानक ने उनके स्वर में स्वर मिलाया है:

नामदेव	कबीर	गुरु नानक
१- [illegible] भार [illegible] मालिण	१- रोमावली कोटि अठारह भार। [illegible] कोटि जाके, रोमावली।	१- भार अठारह मालिण तेरी।
२- चंद सूर [illegible]।	२- कोटि सूर जाके परगास। कोटि महादेव [illegible]।	२- चंदु सूरजु दुइ दीपक राखे।

१८१- आ०ग्रं० पृ० ११[illegible] १८२- आ०ग्रं० पृ० [illegible]१६३ १८३- आ०ग्रं० पृ० ४८७
१८४- आ० ग्रं० पृ० ११६[illegible] १८५- आ०ग्रं० पृ० ४[illegible]१ १८६- आ०ग्रं० पृ० ७३३
१८७- जैन लौकिक-बिन्दु [illegible] कोश पृ० २४३-२४४.
१८८- आ०ग्रं० पृ० ११[illegible]५ १८९- आ०ग्रं० पृ० [illegible]६४ १९०- आ०ग्रं० पृ० ११५४

३- जांके [illegible] [illegible] बरसी भरतुन ध्रू, प्रह्लाद, अंबरीक, नारद, नेवे, [illegible]-गुणण गंधरब बान्दे [illegible]।	३-[illegible]टि [illegible] [illegible] के [illegible]। [illegible] कोटि करणं जेकार।	३-[illegible] [illegible] प्रभु [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे।
४- जां [illegible] [illegible] कुआरी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।	४- कोटि [illegible]देव [illegible] [illegible]। कोटिक [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] कोटि जाके सेवा करहि।	४-[illegible] ब्रह्मा देवी देवा। [illegible] मुझे तेरा सेवा। [illegible] [illegible] अनवाणी, अंत न [illegible] [illegible]।
५- पाप [illegible] जांके [illegible] दुआरे। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] प्रतिहार।	५-नव [illegible] कोटि [illegible] [illegible] [illegible] कोटि [illegible] प्रतिहार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।	५- [illegible] [illegible] पुरि [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
६- जांके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] निकाल। [illegible] दुवा जांके है पवण।	६- [illegible] कोटि [illegible] [illegible]।	६- [illegible] तुझे पवणे है फेरी।
७- [illegible] [illegible] जांके [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।	७- [illegible] [illegible] पुनि [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।	७- [illegible] निरंजनु निरभउ [illegible]। [illegible] न आणा दूजा [illegible]।
८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [189]	८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।	८- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। अवरु न आणा दूजा [illegible]।

नामदेव ने भी अपने स्वामी के कई अद्भुत रूप देखे हैं। उन्होंने [illegible] राम में उसे [illegible] [illegible] के रूप में देखा [illegible]। परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] की कृष्ण [illegible] है:-

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बोल।
[illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[190]

१८९- [illegible] पृ० ४५२   १९०- [illegible] पृ० ३४५

[illegible] गुण ने तो नामदेव के लिये चमत्कार पूर्ण ढंग से उसकी छानी [illegible] स्वयं [illegible] बना [illegible]। [illegible] गुरु ग्रंथ के [illegible] नामदेव की [illegible] टूट गई। किसी ने उसकी अनुपस्थिति में [illegible]। तो उन्होंने एक [illegible] को [illegible] कि यह स्वयं भगवान् ने [illegible] है।[188] परन्तु नाम देव का विश्वास [illegible] है, [illegible] इस [illegible]।

[illegible] पुनि [illegible] नामा का [illegible]।
[illegible] न जाई। [illegible]।
[illegible] प्रान [illegible]।
[illegible] गुण [illegible]।

नामदेव [illegible] नहीं [illegible] ने [illegible]। उसने तो [illegible] कि [illegible] करने वाला वह भगवान् है। [illegible] अपने एक अन्य स्थान पर [illegible] है:-

[illegible]।[189]

[illegible] ने [illegible] में विश्वास नहीं [illegible]। परन्तु भगवान् की [illegible], [illegible] चित्रण करते समय चरित्र [illegible] अलौकिक [illegible] में उन्हें उसी प्रकार [illegible], [illegible] भगवान् के [illegible] सहायता करने वाले [illegible] में उन्हें [illegible]। [illegible] निराकार आराध्य को साकार [illegible] अद्भुत [illegible] है। [illegible] निराकार [illegible]:[190]

[illegible] रवि [illegible] मोती। ×××।

[illegible] नैन, [illegible] नैन [illegible], [illegible] भुरति [illegible]।
[illegible]।

[illegible] में भगवान् [illegible] अवतार,[191] [illegible] अवतार,[192] [illegible]-[193] [illegible] (मत्स्य-कूर्म-[illegible]) [illegible] भगवान् [illegible] अद्भुत [illegible] हैं। भगवान् [illegible] अद्भुत [illegible] है, [illegible]:-

---

१८३- ना०ग्र० पृ०१८६ [illegible] — १८८- ना०ग्र० पृ० [illegible]

१८५- ना०ग्र० पृ० १०३४ — १८६- ना०ग्र० पृ० ८७४

१८७- ना०ग्र० पृ० [illegible] — १८८- [illegible] ना०ग्र०पृ०[illegible]

प:३ सुर नर मुनि जन शंभु न खोजते सु शंभु गुरु ने पाया।[१६४]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं: प्रभु को तेंतीस कोटि देवता, ब्रह्मादिक, सनकादिक, शेषादि जानने में असमर्थ रहे:-

सिध साधिक तेतीस कोरि तिरु कीम न परीऐ।

ब्रह्मादिक सनकादिक शेष गुण अंतु न पाए।[१६५]

ऐसे प्रभु का स्वरूप प्रस्तुत करते समय संतों ने उसके लिये विस्मयजनक उपाधियों तथा उपमाओं का आश्रय लिया है, और नेति-नेति कहकर अवकाश प्राप्त किया है।

७-वर्ण और आश्रम विधान:

डा० जग्गी लिखते हैं, "पुराणकारों को वर्णान्तर सहिष्णु नहीं था। हिन्दू धर्म को अधिक मर्यादापूर्ण बनाने के लिये पुराणों ने विरोध कर दिया। वर्ण-आश्रम-धर्म का स्वरूप पुराणों से पहले भी मौजूद था, पर पुराणों में उसको क्रियाशीलता मिली।[१६६(क)] पंडित बलदेव उपाध्याय का मत है कि वर्ण और आश्रम धर्म पर पुराणों की अधिक रुचि होना बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि वर्णधर्म और आश्रम धर्म की पूरी मान्यता भारतीय समाज का आधार है।[१६६(ख)]

इस में कोई सन्देह नहीं कि आदि ग्रंथ का दृष्टिकोण वर्णाश्रम विधान का विरोध करता हुआ इस के प्रति खंडन शैली का प्रयोग करता है। परन्तु इस संबंध में विषयक प्रेरणा के लिये डा० रतन सिंह का विचार उल्लेखनीय है: जब हम कहते हैं कि अमुक पुस्तक किसी अन्य रचना का स्रोत है, तो वह स्रोत उस नवीन रचना के लिये तीन प्रकार की प्रेरणा दे सकता है। साहित्यिक रूप तथा शैलीगत प्रेरणा तो स्पष्ट ही है, परन्तु विचारों की प्रेरणा के लिये खंडन तथा मंडन दोनों रूप स्वीकार करने होंगे।[१६७] पुराणों के वर्णाश्रम विधान का गुरु ग्रंथ में जो खण्डन है, वह वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता के विरोध में हुआ। वर्णाश्रम धर्म का विरोध जैन मुनियों तथा सिद्धों-योगियों के काल से सन्तों ने तीसरा रूप में स्वीकार किया। महात्मा ने ब्राह्मणों के वर्णाश्रम धर्म की कटु आलोचना की है।[१६८] मुनि राम सिंह कहते हैं, तू बहुत पढ़ कर किसे कहूं? जहां देखता हूं, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है:[१६९]

१८९- आ०ग्रं० पृ० ११६७ १९०- आ०ग्रं० पृ० १३
१९१- आ०ग्रं० पृ० ११३३,११५४,११६४ १९२- आ०ग्रं० पृ० १०८२, १०५,१३४४

आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने भी इसी सिद्धान्त को अपनाया है। प्राय उन्होंने ने समस्त जीवों को ब्रह्म रूप माना है:-

नामदेव: ईसे घट रमु बोलै रामाबोलै। राम बिना को बोलै रे। एकल माटी कुंजर चींटी भाजन है बहु नाना रे।[२००]

कबीर: अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे। एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे। माटी एक अनेक भांति करि साजी साजन हारै। ना कछु पोच माटी के भांडे न कछु पोच कुंभारै।[२०१]

इस लिये आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने वर्णाश्रम धर्म का डट कर विरोध किया।[२०२] कबीर जी ब्राह्मण से कहते हैं:-

गरभवास महि कुलु नहि जाती। ब्रह्म बिंदु ते सभ उतपाती।
कहु रे पंडित बामन कब के होए। बामन कहि कहि जनमु मत खोए।
जौ तूं ब्राह्मण ब्रह्मणी जाइआ। तउ आन बाट काहे नहीं आइआ।
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध।।

ब्राह्मण तो वह है, जो ब्रह्मवेत्ता है:-

कहु कबीर जो ब्रह्मु बीचारै। सो ब्राह्मणु कहीअतु है हमारै।

रविदास चमार थे परन्तु उनके चमार होने पर भी उनका आदर था, क्योंकि काशी के समस्त ब्राह्मण उनके शरण हुये थे:-

जा के कुटुंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत फिरहि अजहु बंनारसी आस पासा।
आचार सहित बिप्र करहि डंडउति तिन तनै रविदास दासान दासा।[२०३]

ब्राह्मणों का वर्णाश्रम धर्म कितना संकीर्ण तथा दुखदायक होता था, नामदेव की रचना से इस का परिचय प्राप्त होता है:-[२०४]

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ। भगति करत नामा पकरि उठाइआ।
हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ। छीपे के जनमि काहे कउ आइआ।

परन्तु इसी छीपे को भगवान् ने उच्च कुलीन ब्राह्मण-पाण्डितों से अधिक सम्मान प्रदान किया, गुरु रामदास लिखते हैं:-

नामदेअ प्रीति लगी हरि सेती लोकु छीपा कहै बुलाइ।
खत्री ब्राह्मण पिठि दे छोडे हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ।[२०५]

१९३- आ०ग्रं० पृ० १०८२-१४०३ १९४- आ०ग्रं० पृ० ६१८

१९५- आ०ग्रं० पृ० १३८६। १९६(क) राम कथा का पौराणिक अध्ययन - पृ०(१४३), हिन्दी(२४१)। १९६-(ख) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास प्रथम भाग पृ० ४०६

जब भगवान् ने इन तथाकथित नीच जाति वालों का पक्ष लिया, तो फिर आदि ग्रंथ के रचयिता, वर्णाश्रम धर्म को क्यों स्वीकार करते। उन्हों ने तो चिरकाल से पिसी जा रही नीच जातियों का साथ दिया। गुरु नानक जी कहते हैं:-[206]

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।

गुरु अर्जुन देव ने भी इन्हीं के स्वर में स्वर मिलाया:
नानकु नीचु नीचु [illegible] नाना, [illegible] गुरावउ।[207]

अपने को नीच कहना उच्चता का चिन्ह है- यह आदि ग्रंथ के रचयिताओं का विश्वास है। अपने आप को नीच समझने वाले को भगवान् बहुत ऊंचा स्थान प्रदान करते हैं:-

रविदास: नानकु ऊच करै मेरा गोबिंद काहू ते न डरै।।[208]

गुरु अमरदास जी ने भी जातिगत अभिमान को मूर्खता कहा है:-

जाति का गरबु न करि मूरख गवारा।xx।
चारे वरन आखै सभु कोई। ब्रहमु बिंद ते सभ ओपति होई।
माटी एक सगल संसारा। बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा।[209]

गुरु रामदास चार वर्णों और चार आश्रमों में उसको प्रधान मानते हैं, जो हरि की आराधना करता है:-

१- ब्रहमचारि ग्रहस्थ बहु सोना फिरदे भरमा सुमाना।
संनिआसी जोगी के तीरथि भ्रमिओ उन [illegible] विगाना।[210]
२- ब्राह्मण क्षत्री सूद वैश चारि वरन चारि आश्रम हरि जो हरि धिआवै सो प्रधान।[211]

१९७- पंजाबी साहित दे इतिहासकार पृ० २०
१९८- सिक्ख साहित्य पृ० ३०५
१९९- जेतु सरीरु [illegible] जहि जहि देखउ तहि तहि समाणउ।। (सन्त [illegible] पृ० २३)
२००- आ०ग्रं० पृ० ६८८
२०१- आ०ग्रं० पृ० १३४९
२०२- आ०ग्रं० पृ० ३७४
२०३- आ०ग्रं० पृ० १२६३
२०४- आ०ग्रं० पृ० १२६४
२०५- आ०ग्रं० पृ० ७३३

८- कर्मकांड और पूजाचार।

पुराणों में पुजारियों के प्रभाव के कारण पूजा के विधि विधानों का विस्तार सहित प्रतिपादन हुआ है। प्रत्येक बुरे कर्म का बुरा फल और प्रत्येक सत्कर्म का अच्छा प्रभाव दिखाने के लिये अनेक कहानियां पुराणों में मिलती हैं। कहीं प्राचीन आख्यानों को विकृत कर के अपने मनोरथानुकूल ढाला गया है। नरकों के दुःखों का ऐसा भयानक रूप दिया गया है, कि साधक उनसे भय त्रस्त-साध्य पूजाविधियों तथा कर्मकाण्डों को अपनाने के लिये तैयार हो जाता है। पापों की सूचियां देकर उनके उपाय तथा प्रायश्चित भी बताए गए हैं। तीर्थ यात्रा को बहुत ही अधिक महत्व दिया गया है। कई प्रकार के व्रतों को पालन करने का आदेश है। मूर्ति पूजा पर भी बहुत बल दिया गया है।[२१२]

आदि ग्रंथ कर्मकांड तथा पूजा के बाह्याचार के विरुद्ध है। जहां पुराण हिन्दु संस्कारों, कर्मकांडों तथा पूजा के विधि विधानों का प्रतिपादन करते हैं, गुरु ग्रंथ इन सब को आडंबर का मूल बतलाता है और केवल नाम स्मरण पर बल देता है। इसे कलियुग का औषध कहा गया है, और कलियुग में बिना नाम स्मरण के उद्धार नहीं हो सकता है। सतयुग में ज्ञान प्रधान था। त्रेता में यज्ञ कर्म होते थे। द्वापर में पूजाचार पर बल दिया गया, कलियुग में केवल नाम का आधार है:

रविदास: सतिजुगि सतु तेता जगी, दुआपरि पूजाचार।
तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार।[२१३]

हमारा विचार है कि पुराणों का पौराणिक साहित्य कलि तथा द्वापर के सन्धिकाल में प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् जब पूजा के विधि विधानों ने केवल ढोंग और दिखावे मात्र का रूप धारण कर लिया तो जैन मुनियों, सिद्धों तथा सन्तों ने इस के विरुद्ध स्वर ऊंचा किया। श्री गुरु ग्रंथ साहब के पूर्ववर्ती सन्तों के साहित्य की सामान्य विशेषताओं में हम इस पक्ष की विवेचना कर चुके हैं। आदि ग्रंथ के सन्तों ने भी कर्मकाण्डों तथा पूजाचार का विरोध किया:-

---

२०६- आ०ग्रं० पृ० ११
२०७- आ०ग्रं० पृ० ५२६
२०८- आ०ग्रं० पृ० ११०६
२०९- आ०ग्रं० पृ० ११२८
२१०- आ०ग्रं० पृ० १००३
२११- आ०ग्रं० पृ० ८६१
२१२- दशम ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० १८६ (पं०) पृ० २५२ (हिंदी).
२१३- आ०ग्रं० पृ० ३४६ तथा - ध्यानं नाम: सत्ये जो, त्रेतायां यज्ञकर्मभि।
[illegible]

यज्ञोपवीत:

कबीर: गज साढे तै तै धोती गं पहिरे तीनि तगा।

गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग।

ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग।[२१४]

गुरु नानक: आसा की वार में गुरु जी यज्ञोपवीत के बारे में एक पूरा पद लिखते हैं। इसमें दिखावे के जनेऊ को निष्फल बताया है:-[२१५]

होइ पुराणा सुटीऐ भी फिरि पाईऐ होरु।

नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु।।

यह जोरदार जनेऊ, जिसकी तारें पक्की हैं, इस का विवरण गुरु जी ने इस प्रकार दिया है:-

दइआ कपाह, संतोखु सूत, जतु गंढी सतु वटु।

एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु।।

न एहु तुटै न मलु लगै, ना एहु जलै न जाइ।

धंनु सु माणस नानका, जो गलि चले पाइ।

सुन्नत (मुसलमानों का संस्कार)

कबीर: सकति सनेहु करि सुंनति करीऐ, मै न बदउगा भाई।

जउ रे खुदाइ मोहि तुरकु करैगा, आपन ही कटि जाई।

सुंनति कीए तुरकु जे होइगा, अउरति का किआ करीऐ।

अरधसरीरी नारि न छोडै, ता ते हिन्दू ही रहीऐ।।[२१६]

व्रत, रोज़ा-तीर्थ-हज्ज, पूजा-नमाज़

कबीर जी भी ब्राह्मण-मुल्ला दोनों के व्यक्तियों तथा पूजाचार के कट्टर विरोधी थे। वे यों कहते हैं:-

हमरा झगरा रहा न कोऊ। पंडित मुलां छाडे दोऊ।

पंडित मुलां जो लिखि दीआ। छाडि चले हम कछू न लीआ।।[२१७]

कबीर जी ने रोज़ा-व्रत दोनों को निष्फल बताया है। वे कहते हैं: ब्राह्मण चौबीस एकादशियों के व्रत करते हैं। काज़ी रमज़ान महीने में रोज़ा रखते हैं। मस्जिद में सिजदा करने से अथवा जगन्नाथ में स्नान करने से कुछ नहीं होगा, यदि दिल में कपट है:-

---

२१४- आ०ग्र० पृ० ४७५ २१५- आ०ग्र० पृ० ४७१

ब्राह्मण गिरास [illegible] करीना, [illegible] मन समझाना।
गिरासा भाव पाव [illegible], [illegible] भाति निधाना।
कहा [illegible] भगतु कीआ, किआ [illegible] [illegible] बारं।
दिन भति [illegible] निवाज गुजारै, किआ [illegible] बारं। [२१८]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराणों में नरकों का जो भयानक दृश्य था, उससे भयभीत हो कष्टदायक विधि क्रियाओं को लोगों ने ब्राह्मणों के कहने पर स्वीकार किया। यह विधि-विधान था मानो साक्षात् नरक की ही यातनाएँ थीं। हिमालय में तन को गलाना, काशी में करवत लेना, आदि। आदि ग्रंथ में इन सब विधि क्रियाओं का नामदेव तथा गुरु नानक ने विरोध किया है:-

नामदेव [२२९]	गुरु नानक [२३०]
१- [illegible]	१- बहु [illegible] [illegible] तीरथि नाउ।
२- बहु [illegible] [illegible] पावै।	२- बहु [illegible] [illegible], जो मन ते रोगु न जाए।
३- [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।	३- [illegible] सरीर [illegible], गिरि [illegible] धराइ।
४- [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। आतम कउ [illegible]। [illegible] [illegible] कंचन दाजै। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।	४- [illegible] के [illegible] बहु [illegible], बहु [illegible] [illegible] दानु।
५- [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], भूमि दान, [illegible] [illegible] [illegible]।	५- भूमि दानु [illegible] [illegible], जो अंतरि [illegible] गुमान।
६- [illegible] [illegible]। [illegible] बहुत [illegible]।	६- [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।

उपर्युक्त सब पुण्य-कार्यों, सब धर्म-कर्मों को नाम सुमरिन की अपेक्षा तुच्छ माना है:

७- राम नाम सरि [illegible] न पूजै।	७- बहु [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] करहि। [illegible] नामै [illegible] न पूजई, जे [illegible] [illegible] [illegible]।

गुरु राम दास जी ने इन सब विरोधन को बड़ा संयम-पूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है:

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कोम, [illegible] [illegible] [illegible] बहु कीजै।
[illegible] [illegible] [illegible] नाम [illegible], [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible]।। [२३१]

गुरु अर्जुन देव जी ने भी हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अपने अपने धर्म ग्रंथों तथा पुजारियों के द्वारा लोगों को हिन्दू तथा मुसलमान बनाने की अपेक्षा मानव बनाने के लिये एक निरंकार को हृदय में बसाने को कहा है:-[222]

वरत न रहउ न मह रमदाना। तिसु सेवी जो रखै निदाना।
एकु गुसाई अलहु मेरा। हिन्दू तुरक दुहां नेबेरा।
हज काबै जाउ न तीरथ पूजा, एको सेवी अवरु न दूजा।
पूजा करउ न निवाज गुजारउ। एक निरंकार ले रिदै नमसकारउ।
ना हम हिन्दू न मुसलमान। अलह राम के पिंडु परान।

इस पद की प्रेरणा गुरु अर्जुन देव ने कबीर से ही प्राप्त की है, क्योंकि इस पद के अन्त में नानक नाम नहीं आया। भले आरंभ में महला ५:५ भी दिया गया है, परन्तु अन्त में 'कहु कबीर इहु कीआ वखाना। गुर पीर मिलि खुदि खसमु पछाना' है, जिस से स्पष्ट है, कि कबीर के विचारों को अपने विचारों की पुष्टि के लिये म:५ ने अपनी वाणी में उद्धृत किया है।

गुरुओं ने भी योगियों के बाह्याचार का भी खंडन किया है। यह खंडन की परंपरा संत जयदेव के समय से चली आती है:-

योगेन किम्, ध्यानेन किम्, दानेन किं तपसा।[223]
गोविंद गोविंदेति जपि नर सकल सिधि पदं।

योग का भेष एवं बाह्याचार गुरुओं के समय में बहुत था अतः गुरु नानक देव ने कहा:-

जोग न खिंथा, जोगु न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी, मूंड मुडाईऐ, जोगन सिंङी वाईऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ।[224]

गुरु अमरदास ने भी दिखावे के भेष को योग नहीं समझा। सहज-योग का उपदेश दिया है:-

जोग न भगवी कपड़ी, जोग न मैले वेसि।
नानक घरि बैठिआ जोगु पाईऐ सतिगुर कै उपदेसि।[225]

२२६- आ०ग्र० पृ० ४७ २२७- आ०ग्र० पृ० ११५८-५९
२२८- आ०ग्र० पृ० ११३६- तुलना- तहोरा-जगन्नाथ पुरी।
२२९- आ०ग्र० पृ० ७३०,९३ २३०- आ०ग्र०पृ० ९२

योगियों, भोगियों, नागड़ियों, ...ों, काम-नागियों आदि के ...चार की ... आदि ग्रंथ में विवेचना ... गई है। दिखावे ... ढोंग ... निष्फल बताया है। ... गुरुओं ने ... ओर ध्यान दिया है:-[206]

...:१- जोगी जोगंग ...ी किया ... दिगंबर।

म:५ ... अपि ...। ... ...।

... ...। निरधार ... ...।

... न ... ...। ... करो है पाखडा।[207]

जब चार वेद, छ: शास्त्र, अठारह पुराण तथा २७ स्मृतियां, एक ओंकार का ही वर्णन करती हैं, तो फिर उसी शरण में जाना चाहिए और सब भ्रान्तियों और ... ... का त्याग करना चाहिए:

दंभधार अत्यारे, ...।

... ...।

तपा तपोगुर मुनि ... ... नट नाटिक निरताए।

... ..., ..., ...।[208]

सभ मिलि ... ..., तउ किस ने कउ दुराए।।

६- उपदेशात्मकता: धर्म संकट मीमांसा

डा० ... ... लिखते हैं, पुराण स्वभावत: शिक्षामूलक और उद्देश्यत: साम्प्रदायिक हैं।[209] ... की भांति उपदेश देना और धर्म, विशेषत: पुराण धर्म का और ... ... की प्रेरणा देना पुराण साहित्य का एक और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इन में ... ... वर्णन ...त्मक अथवा ...त्मक शैली में हुआ है। ... को उत्तम जीवन यापन करने के लिये दृष्टांतों की भरमार है। पापाचार ... ... करने पर जो दु:ख ... पड़ते हैं, उन का विवरण देकर, मनुष्य को ... ... और ... के लिये प्रयत्न करने को कहा है।[210]

२०१- आ०ग्रं० पृ० १३०५   २०२- आ०ग्रं० पृ० ...३६

२०३- आ०ग्रं० पृ० ५२६   २०४- आ०ग्रं० पृ० ७३०

२०५- आ०ग्रं० पृ० १४२०-१४२१   २०६- आ०ग्रं० पृ० ४१६

२०७- आ०ग्रं० पृ० ७१   २०८- आ०ग्रं० पृ० ...३६

२०९- ... हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव पृ० ९४

आदि ग्रंथ के संतों-भक्तों का मुख्य-उद्देश्य लोकाचार, सदाचार, पूजाचार आदि का त्याग कर प्रभु भक्ति की साधना को प्रतिपादित करना था। अतः आदि ग्रंथ में सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक मानव के लिये उपदेश मिलता है।

आदिग्रंथ में अवतारवाद के निषेध, कर्म-कांडों-जप-तप-तीर्थ-व्रत, यज्ञ-पूजा-पाठ, हज्ज, नमाज़, रोज़ा आदि के निष्फल प्रयत्नों का त्याग, इन उपदेशों को हम अन्य प्रवृत्तियों के अंतर्गत प्रस्तुत कर चुके हैं। सदाचार संबंधी जो आदि ग्रंथ में उपदेश मिलते हैं उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है:-

(क) सत्य मार्ग सब से उत्तम मार्ग है:-

(१) सचै मारगि चलहिआ उसतति करे जहानु।[231]

सत्य से भी बढ़ कर सत्याचरण करना है, अथवा सत्याचरण अपनाना है:-

(२) सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु।[232]

सत्य से बढ़ कर कोई चीज़ है ही नहीं।

(३) सचै उपरि अवर न दाते, साचे की मति पाई है।[233]

(ख) कर्मयोग सब से उत्तम योग है- सच्चा कर्म ज्ञान, भक्ति, सत्य-कर्म का योग है:- सत्य-कर्म ही भक्ति है। जब ज्ञान तथा सत्य मिलता है, तब यह मन स्थिर-भाव को प्राप्त होता है:-

म:१ अमलु करि धरती, बीजु सबदो करि, सच की आब नित देहि पाणी।

होइ किरसाणु ईमानु जमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी।[234]

संभवतः इकबाल ने आदि ग्रंथ का उपर्युक्त कथन पढ़े बिना आज भी वर्षों के पश्चात यही बात कही थी:

अमल से जिंदगी बनती है, जन्नत भी जहन्नुम भी।

यह खाकी अपनी फितरत में न नूरी है न नारी है।[235]

भक्ति का मार्ग जिसका आदि ग्रंथ में उपदेश है वह इस प्रकार है:-

कबीर: नामा माइआ मोहिआ कहै तिलोचनु मीत।[236]

काहे छीपहु छाइलै राम न लावहु चीतु।

कबीर: नामा कहै तिलोचना मुख ते राम संम्हालि।

हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।[236]

230- आदि ग्रंथ का पौराणिक अध्ययन पृ० १६२

231- आ०ग्रं० पृ० १३६ 232- आ०ग्रं० पृ० ६२

233- आ०ग्रं० पृ० १०२३ 234- आ०ग्रं० पृ० २४

235- इकबाल- जीवनी और संकलन-सम्पादक प्रकाश पंडित। राजपाल एंड सन्स, दिल्ली- १९६०

अत: गुरु नानक देव जी ने अपने कमाने की कमाई खाने को उत्तम भक्ति कहा है। उसमें से किसी जरूरत-मंद को देना भी दान है:-

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ।[237]

यही सच्ची भक्ति है, यही नाम सुमिरन है, और यही आदि ग्रंथ का महान् उपदेश है:-

म.५ आठ पहर हरि का नामु लेइ। सचु उपदेसु सेवक कउ देइ।[238]

आठ पहर अर्थात नाम सुमिरन को व्यक्ता है, जब उठते बैठते, काम करते, सोते जागते, प्रत्येक समय भगवान् के नाम-सुमिरन का अजपा-जाप किया जाये, कबीर के अनुसार नामदेव जी ने त्रिलोचन को उपदेश दिया:-

जब मनुष्य आदि ग्रंथ के इन सच्चे उपदेशों को हृदयंगम कर लेगा, तो वह इस लोक में तथा परलोक में सुखी रह सकेगा:-

सदा उपदेसु हरि जपणा, हरि सिउ बणि आई।

ऐसे सुखदाता मनि वसै, अंति होइ सखाई।[239]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने सब प्राणियों को बिना किसी भेद-भाव के इस प्रकार अपना सखा रूप मान कर उपदेश दिया है, जैसे वे सब उनके समकक्ष ही हों। यह पौराणिक शैली का प्रभाव है:-

म:५ यार,मीत, सुनि साजनहु, बिन हरि छूटन नाहि।[240]

आदि ग्रंथ पृ० ७०३ पर एक पद में गुरु अर्जुन देव ने भगवान् की अद्भुत शक्ति का वर्णन किया है। अपने आप को छोटा तथा दूसरों को अपने से श्रेष्ठ बताया है। इसमें पाठकों तथा श्रोताओं को यार वे! संबोधन किया गया है।

यार वे! प्रिअ हभे सखीआ मू कही न जेहीआ।

यार वे! हिक डूं हिकि चाड़ै हउ किसु चितेहीआ।

यार वे! पिरु अपणा भाणा किछु नीसी छंदा।

यार वे! मै रातिआ लालनु मू दरि कांता।[241]

आदि ग्रंथ में गुरु नानक देव जी आदि जैसे सज्जन-गण जो उपदेश देते हैं तो, उसे बुरा भला कहकर नहीं देते। वे मेरा सज्जन है साथ अपने आप को भी दोषी मानकर सब को उसी का समकक्षी मान कर उपदेश करते हैं:-

---

236- आ०ग्रं० पृ० १३७६ 237- आ०ग्रं० पृ० १२४५

238- आ०ग्रं० पृ० २८७ 239- आ०ग्रं० पृ० १०८७

240- आ०ग्रं० पृ० २५६ 241- आ०ग्रं० पृ० ७०३

सिंमल रुखु सरीरु मै, मैं जन देखि भुलंनि।

से फल कंमि न आवनी ते गुण मै तनि हंनि।

अंधुले भार उठाइआ डूगर वाट बहुतु।

अखी लोड़ी ना लहा, हउ चड़ि लंघा कितु।[२४२]

उपदेश की इस शैली ने आदि ग्रंथ के संदेश को अधिक ग्राह्य बना दिया है। इस प्रकार ग्रंथ में ब्राह्मण (हिन्दू) काज़ी मुल्लां (मुसलमान) योगी आदि तथा उनके पूजा-स्थानों को बुरा भला नहीं कहा। उनके आडंबर को बुरा कहा है। व्रत, नियम, तीर्थ, पूजा, आरती, नमाज़, रोज़ा आदि के साथ साथ ब्राह्मण, काज़ी, मुल्लां, योगी आचार्यों आदि की परिभाषाएं आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने शुभाचार की कसौटी पर प्रस्तुत की हैं। आदि ग्रंथ में किसी भी अन्य धर्मावलम्बी को अपने धर्म का त्याग कर सिक्ख धर्म का अनुयायी बनने की प्रेरणा नहीं दी गई, यहां तो एक सार्वभौमिक व्यापक भावना निहित है:

म:३ जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।

जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि।[२४३] M.S.(Bilawal).

उपसंहार:

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि आदि ग्रंथ में विभिन्न पौराणिक तत्त्वों का पर्याप्त समावेश है। पुराणों का हिन्दुओं के संस्कारों तथा धार्मिक विधि विधानों पर पर्याप्त प्रभाव था। जनता मुख्यतया विशेष रूप से पौराणिक प्रथाओं से प्रभावित था। मध्यकाल में इस पुराणवाद ने जिस बाह्याडंबर का रूप धारण किया, उसके कारण इन की आलोचना तथा निर्गुण संतमतानुकूल व्याख्या करने के लिये उन्हीं पौराणिक तत्त्वों ने सन्त साहित्य को भी प्रभावित किया।

भिन्न भिन्न इष्ट देवों का पृथक् पृथक् रूप से अलग अलग पुराण में जो प्रतिष्ठा हुई उसने एक ब्रह्म की आराधना की भावना को पर्याप्त धक्का लगाया। केवल एक एक शक्ति को देव रूप में प्रतिष्ठापित करने के कारण से अलग अलग संप्रदाय फूट पड़े। सन्तों ने इन सब इष्टदेवों को एक ब्रह्म की शक्तियां मान कर कोटि कोटि देवों को ब्रह्म के सेवक बना कर एक ब्रह्म में आस्था की भावना को प्रतिष्ठित किया। पुराणों में भी इस भावना के बीज विद्यमान थे। पुराण विशेष में वर्णित इष्ट देव के साथ अन्य देवों का संबंध भी स्थापित किया गया

२४२- आ०ग्रं० पृ० [illegible]   २४३- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

मिलता है। परन्तु सन्त भावों मय सब इष्ट देव ब्रह्म जी एक [illegible] में इस प्रकार संयुक्त हो गये हैं, जिस प्रकार वैदिक काल में भिन्न देवता एक ही ब्रह्म में समा गये थे।

ब्रह्म को निराकार एवं निर्गुण रूप में प्रतिष्ठित करते हुए तथा उसे अजन, अमर एवं अयोनि, मानते हुए भी, भक्तों के उद्धार हित अवतार धारण करते हुए मानने में संतों को कोई आपत्ति नहीं।

पौराणिक शैलियों के दृष्टांत रूप में भी संत साहित्य में यथा स्थान उल्लेख मिलते हैं। सन्तों ने अपने भावों को प्रकट करने के लिये भी चरित्र चित्रण का आश्रय लिया है। पौराणिक भक्तों की कथाओं में भी अपने कुछ विश्वास को आधार रखा। भगवान् को भक्तों के उद्धार हित उनकी विपत्तियों को समाप्त कर उनका भक्ति भाव प्रकट करते हुए प्रस्तुत किया गया है। भक्तों के उद्धार हित पौराणिक अवतारवादी चरित्र निरूपण को भी उन्होंने अपने साहित्य में यथा योग्य स्थान दिया है।

वर्णाश्रम विधान को प्रस्तुत करना और धर्म को शास्त्रिक मर्यादापूर्ण बनाना पौराणिक साहित्य का विशेष विषय था। मध्यकाल में वर्णाश्रम व्यवस्था ने जो विकृत स्वरूप धारण किया, उसके कारण सामाजिक वातावरण इतना दूषित हुआ कि मनुष्य को मनुष्य से घृणा की भावना बढ़ गई थी। यहीं और सन्त साहित्य में इस संकीर्णता की भावना के विरुद्ध एक सबल विद्रोह उठ खड़ा हुआ। कबीर तथा तुलसीदास के विरोध में सन्तों ने बाह्याडंबर का विरोध किया है। क्योंकि इस आडंबर ने धर्म का अति विकृत स्वरूप प्रदान कर दिया था।

पौराणिक उपदेशात्मक शैली का भी सन्तों ने अनुकरण किया। सन्तों ने अपने उपदेशों को अधिक क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया। शुभ कर्मों को भक्ति का साधन किया गया और दुष्कर्मों को दुर्गति का साधन दिया गया। सत्कर्म करते हुए भगवान् के नाम का [illegible] स्मरण करना आदि ग्रंथ की भक्ति का मुख्य उपदेश है। इस को सुगति मार्ग का नाम दिया गया है। भावना रूप में इस की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

४- श्री गुरु ग्रंथ साहब का शैली पक्ष:

"विश्व की धर्म-पुस्तकों में बहुत कम ऐसी हैं, जो साहित्यिक स्तर तथा उच्च कोटि की निरन्तर प्रेरणा प्रदान करने के लिये इस (गुरु ग्रंथ) के तुल्य क्षमता रखती हों।"

डंकन ग्रीनलीस

दि गास्पल आव दि गुरु ग्रंथ साहब पृ० १२

गुरु ग्रंथ का शैली पक्ष

गुरु ग्रंथ का संपादन: गुरु ग्रंथ में गुरुओं तथा उनके निकटवर्ती सन्तों सेवकों के अतिरिक्त बाबा फरीद तथा अन्य पंजाबेतर भक्तों की वाणी भी संगृहीत है। यह बात अब सर्व सम्मत है कि गुरु नानक के इन पूर्ववर्ती सन्तों की वाणी गुरु अंगद देव जी को गुरु नानक देव से गुरु गद्दी प्राप्त करने के साथ ही मिली थी। इसपर गुरु नानकदेव, गुरु अमरदास तथा गुरु अर्जुन देव की टिप्पणियां यह सिद्ध करती हैं, कि यह वाणी उन्हें गुरु परंपरा में प्राप्त हुई।[1] उस समय इस संग्रह का नाम पोथी था।[2] ज्ञानी गुरु-दित्त सिंह जी लिखते हैं, आदि बीड़ की सब से पहली प्रतिलिपि, भाई बन्नों वाली बीड़ तथा इस की अन्य प्रतिलिपियों में- जो सागरी गांव, गोंदलां वाला, तरनतारन, बुर्ज वाला सिंह पटियाला में है, ततकरे के आरंभ की सूचना में 'ततकरा पोथी का' की सूचना है। गुरु अर्जुन देव जी ने बीड़ की तैयारी के समय स्वयं 'पोथी' नाम का प्रयोग किया है। आदि बीड़ के सूचीपत्र के आरंभ में उन्होंने जो सूचना लिखवाई थी वह इस प्रकार है:-

> 'सूची पत्र पोथी का ततकरा लिखिआ रागां का तथा शबदा का
> अपु श्री गुरु राम दास जी किआं दसखता का नकल।'[3]

पोथी शब्द का प्रयोग वैसे गुरु परंपरा में गुरु नानक देव जी से होता आया है। गुरु नानक देव जी लिखते हैं:-

> 'पोथी पुराण कमाईऐ। भाउ वटी इत तन पाईऐ।' श्री राग म:१[4]

पोथी पद का प्रयोग गुरु अर्जुन देव द्वारा केवल सूची पत्र में ही नहीं हुआ, वरन् उनकी अपनी रचना में भी यह पद गुरुवाणी संग्रह के लिये ही प्रयुक्त हुआ है:-

> 'पोथी परमेशर का थान।' सारंग म: ५[5]

१- गुरमति साहित्य विशेषांक (भाषा विभाग, पटियाला-जनवरी-फरवरी-१९६५) में डा० धर्मपाल मैनी का लेख-पृ० ५

२- 'तब गुरु बाबा नानक जी गुरु अंगद कउ सबद की थापना देकर संमत १५९५ असु वदी १० सचे खंड सिधारे-(बाबा पिरथवान जी दीआं पोथीआं) तथा 'तितु महिल शबद होआ, सो पोथी जबानि गुरु अंगद जोग मिलि-' (पुरातन जन्म साखी की एक प्रति)- देखिए गिआनी गुरुदित्त सिंह जी का निबंध 'श्री गुरु ग्रंथ की रचना'- पंजाबी दुनिया- नवंबर, १९५२ पृ० २५-२७

संपादन का प्रयोजन तथा क्रम : गुरु ग्रंथ के संपादन का प्रयोजन भी वही था, जो ऋग्वेद की वाणी को लिपिबद्ध करने का था। श्री ए०ए० मैकडानल अपने ग्रंथ प्राचीन भारत में लिखते हैं:- "ऋग्वेद का संपादन क्रम साम तथा यजुर्वेद से भिन्नता रखता हुआ एक ऐतिहासिक घटना है। क्योंकि इस के प्राचीन संपादकों का एक मात्र प्रयोजन यह था कि इस अमूल्य परंपरागत निधि को नष्ट एवं प्रक्षिप्त होने से सुरक्षित रखा जाये।"[6]

इसी प्रकार गुरु ग्रंथ का संपादन हुआ। गुरु अर्जुन अंक में श्री प्यारा सिंह पद्म लिखते हैं, "परंपरा से गुरुओं के हजूर में रहने वाले वंश में होने वाले तथा भाई मनी सिंह के समसामयिक सिख विद्वान् भाई केसर सिंह छिब्बर, बंसावली नामें में लिखते हैं, कि डूम (चारण) मीणों के शबद गाने लगे। इस प्रकार मीणों ने एक ग्रंथ भी बनाया जिसमें चार गुरुओं (पातशाहियों) के शबद भी सम्मिलित कर लिये। इस शरारत को जानकर गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु ग्रंथ साहब का संपादन कराया, ताकि गुरु वाणी प्रक्षिप्त न हो जाये, और इसका प्रामाणिक ग्रंथ सिक्ख सेवकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। पहले इसका नाम पोथी था, फिर ग्रंथ साहब और गुरु गोविंद सिंह ने इसे आदि ग्रंथ नाम दिया।"[7]

गुरु ग्रंथ की रचना शैली के विषय में विचार प्रस्तुत करते हुए डा० तारन सिंह लिखते हैं, "गुरु नानक साहब ने वेदों तथा स्मृतियों के आधार पर प्रतिष्ठित रीति रिवाजों का खंडन तथा मंडन किया है। वेदों तथा वेदों के आधार पर रचे गए उपनिषदों पुराणों आदि में से विचार, तथा काव्य शैलियों को भी उन्होंने स्वीकार किया, चाहे लोक-काव्य की शैलियों का भी पर्याप्त अनुकरण किया गया है।"[8]

भाषा शैली, काव्य प्रकारों, तथा छन्दों की परंपरा के विषय में अलग विचार किया गया है। यहाँ हम गुरु ग्रंथ की शैली के निम्नलिखित पक्षों की परंपरा के विषय में विचार करेंगे:-

---

३- पंजाबी दुनिया- नवंबर, १९५२ पृ० २४

४- आ०ग्र० पृ० २५   ५- आ०ग्र० पृ० १२२६

6-The arrangement of the Rigveda, unlike that of Sama and the Yajurveda was an historical one, for the intention of its ancient editors was simply to preserve this heritage of the past from change and destruction. (Arrangement of the oldest VEDA in INDIA'S PAST- A survey of her literatures, Religions, Languages and Antiquities) By A.A. Macdonell- Moti Lal Banarsi Dass-Delhi, page-5).

१- शैली की सर्वव्यापक विलक्षणता।

२- शब्दावली तथा पदावली की परंपरा तथा उसका विकास।

३- प्रतीक योजना- (१) साधारण प्रतीक (२) अर्थ रूपक

४- शब्द चित्र योजना।

५- शैली में रस-संयोजन,(अलंकार विधान, छन्द एवं काव्य रूपों तथा राग तत्त्वों का अलग अलग विवेचन किया गया है।)

६- उपसंहार शैली की दुरुहता, सुगमता एवं प्रभाव।

शैली की सर्वव्यापक विलक्षणता : गुरु ग्रंथ की रचना शैली के विषय में विद्वानों का विचार है कि विश्व की धर्म पुस्तकों में से बहुत कम ऐसी हैं जो साहित्यिक-स्तर तथा उच्च कोटि की निरन्तर प्रेरणा प्रदान करने की इस के तुल्य क्षमता रखती हों।[६] इस ग्रंथ के गुरु, भक्त, तथा भाट कवि परम आत्मक अनुभव वाले रचयिता थे अत: गुरु ग्रंथ अनुभव पूर्ण ज्ञान का अनुपम भंडार है। इनके रचयिताओं का अनुभव स्वतंत्र था, एवं सीधा जीवन से संबंध रखता था। ग्रंथ में ही उनकी काव्य-निधि का भावावेश हुआ है। यह वाणी स्वत: उनके अन्तरात्मा से स्फुटित हुई जो लौकिक जीवन का आलोकिकता से संबंध स्थापित करती है। संभवत: इसी कारण इस वाणी बोहिथ को तैयार कर गुरु अर्जुन देव ने यह घोषणा की:

संतहु सुखु होआ सभ थाई। पार ब्रहमु पूरन परमेसरु रवि रहिआ सभनी जाई।
धुर की बाणी आई। तिनि सगली चिंत मिटाई।।
दइआल पुरख मिहरवाना। हरि नानक साचु वखाना। सोरठ म: ५ [१०]

इसकी शैली की अद्भुत प्रेरणा शक्ति एवं निष्पक्ष भाव के कारण ही सिक्ख धर्म के अतिरिक्त भी विद्वानों ने इसे अन्य धर्मों में योग्य स्थान दिया है। मिर्जा गुलाम अहमद अपनी पुस्तक सतबचन में लिखते हैं, "गुरु ग्रंथ कुरआन-शरीफ का भाष्य है और बाबा नानक एक सत्य-निष्ठ मुसलमान थे।"[११] कुछ विद्वानों ने इस रचना को

७- (१) गुरु अर्जुन अंक-भाषा विभाग, पटियाला, जून, जुलाई, १९५३ पृ० १०५-१०६

(२) Primarily its name was Granth Sahib which means the Holy Book. But in order to distinguish it from Dasam Granth- the Granth written by the Tenth Guru- it was named Adi Granth.
(A Critical Study of Adi Granth-Page-1)
Dr. S.S. Kohli.

८- पंजाबी साहित्त ते साहितकार पृ० ३८-४०

यह कर कहा कि आदि ग्रंथ का मत हिन्दू तथा मुसलमान मतों का ऐसा संयोग है कि इसमें इन दोनों मतों के मुख्य सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित किया गया है।[12] डा० ट्रंप का विचार है कि नानक एक पूर्ण हिन्दू थे और उन्होंने ब्राह्मण मत तथा वेदों एवं पुराणों की प्रामाणिकता का पुन: प्रतिपादन किया।[13] इनसब मतों से बढ़ कर मिस डारोथी फील्ड का मत है जिन्होंने इस महान् ग्रंथ से .... सार्वभौमिक प्रेरणा प्राप्त की। वे लिखती हैं, "आदि ग्रंथ का पाठ यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न करता है कि यह मत सर्वथा नवीन है, तथा मानव मन को आकस्मिक प्रेरणा प्रदान करता है, यदि इसे कर्मनिष्ठ प्रयोग-वादी दृष्टि से देखा जाये तो यह मत संसार में प्रथम स्थान प्राप्त करे गा।"[14]

इस महान् ग्रंथ की महानता इस की शैली के एक अन्य गुण में भी निहित है। यह कतिपय तथ्यों की पुनरावृत्ति है। कई विद्वानों ने इस गुण को समझने की चेष्टा ही नहीं की और इसे अपनी बुद्धिवादी ऐनक से देखकर इसे गुण की अपेक्षा अवगुण घोषित किया। यदि वे किंचित मात्र भी साधक की दृष्टि रखते होते तो भावोद्रेक में इन सन्तों द्वारा अपनी कही हुई तथा अपने पूर्ववर्ती सन्तों की कही बातों को पुन: पुन: दोहराए जाने में उन्हें भी आनन्दानुभव होता। गुरु ग्रंथ की पदावली की शैली के इस गुण का कुछ विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

१- उसतति कहन न जाइ : म: ५ (पृ० २६१,१११७,१३६१)

२- उसतति करहि- म: १ (पृ० २२१) म: ४ (पृ० १३१६) म: ५ (पृ०२०५,५२८,६२२)

३- उसतति निंदा- नामदेव (११६४) कबीर (११२३) म:१ (१३३,१०४१),म:३ (३६२, ११२८), म:६ (२१६,२२०,११८६)

४- उकति सिआनप- म: ५ (१००,२६०,३८७,८११)

९- Among the world's Scriptures few, if any, attain so high a literary level or so constant a height of inspiration. - Duncan Greenlees.

(THE GOSPEL OF THE GURU GRANTH SAHIB, page xii)

१०- आ०ग्र० पृ० ६२८

११- सत वचन कृत हज़रत मसीह माऊद- महदी मसऊद- मुरसिल-ए-रहमान-मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहब कादियां- दिसंबर, १६३० से गुरमत दर्शन- पृ० ८४ पर उद्धृत। (The Guru Granth is an exposition and commentary of the Holy Quran & that Nanak was really a Mohammaden)Sat Bachan-page 84 Ph.of.Sikh.

१२- This religion was a sort of compound of Mohammdanism and Hinduism, in which the leading doctrines of both were reconciled by a strange kind of combination.' (Early Records of British India-Quoted in Philosophy of

५- उठदिआं बहदिआं सुतिआं- म: ३ पृ० ५६४।

६- उठदिआं बहदिआं सवंदिआ- म: ५ पृ० ३२१।

७- उतपति परलउ- म: १ पृ० ४५,२६६।

८- उपाव सिआणप सगल- म: ५ पृ० ४५,२६६।

९- उरधि रहिओ- म: ५ पृ० २०६,२५१,२६१,७६६,८२१,१३६१, म: ६ पृ० ६३३।

१०- उलटि भई- कबीर पृ० ३२७, म: १ पृ० २२१,३५२।

११- ऊचा अगम अपार, (अपार) - म:५ पृ० १३ ,७०४,१०७७

१२- ऊच अपार- म: ५ पृ० ६८,१०७२।

१३- ऊचे ते ऊचा- म: ५, पृ० २६८,८२२,८९५,१००९,११४५,१२३६,१३४९।

१४- ऊचा नहीं कहिणा मन महि रहणा आपे जाणै। म: १, पृ० ५८०,८७७।

१५- ऊठत बैठत- कबीर, पृ० ३३१,६७१,म:४, पृ० ५७२, म: ५ पृ० २७०।

१६- ऊठत बैठत सोवत जागत- म:५, पृ० १०१,८१०,८२०,६८०,१२९८।

१७- ऊठत बैठत सोवत- म: ५, पृ० २८६,३०९।

१८- ऊठत बैठत हरि - म: ४, पृ० ११९८, म: ५ पृ० १०९,२९७,६१४,६२२,११९८।

१९- ओइ घरि घरि- म: ४, पृ० ३०३,६५१।

२०- ओति पोति- म: ५, पृ० १६५।१९८,२८७,५१८,६७२,७३९,८९२,१०७७,१२९९,१३२२।

२१- ओना अंदरि- म: १ पृ० १७ म: ३ पृ० १४१८,म: ४ पृ० ३०४,३०७।

२२- ओपति परलउ- म: ५, पृ० ३८७,८६२,११८६।

२३- अनदिन सदा- म: ३ पृ० ११०,१११,११२,११४,११९,४३०,७७०,१०४६,१०५९,१०६७।

२४- अनदिन सेव- म: ३ पृ० ४२८,५९२,७६१,१०५५,१४१९।

२५- अनदिन कीरतन- म: ३ पृ० ५९३,म:५ पृ० २८१,६४१,६८४,११७४।

२६- अनदिन गुण गावै- म: ३ पृ० ६९,१३०,५९१,७७१,९४८,१०५५,१०६५,१०६७,१२५८।

२७- अनदिन नाम- म: १, पृ० १३३१,१३३२, म: ३ पृ० २९,३५,३६,५६८,११४५,१०४६,
१०४७,१०५३, म: ५ पृ० २५२।

२८- अनदिन भगति- म: ३ पृ० २२,३४,६५,१२०,१६१,१६२,५८५,६००,७६८,७७०,१०४५,
१०५५,११३३,१३३३, म: ४ पृ० ११९६।

२९- अनद बिनोद- म: ५ पृ० ९७,१००,१०२,१३०,३७६,३८४,६१९,७८२,१०८१,१०८५,१२०५।

३०- अनद मइआ- म: ३ पृ० ९१७ म: ५ पृ० १०१,२८७,३७८,६०८,६१४,९२७,१०९६,१२१८।

शैली की इस विलक्षणता के लिये देखिए 'गुरु-शब्द-रत्न-प्रकाश', भाषा विभाग, पटियाला, १९६३।

२- शब्दावली तथा पदावली की परंपरा तथा उसका विकास

आदि ग्रंथ की शब्दावली तथा पदावली की परंपरा को खोजने के लिये हमें बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आदि ग्रंथ में जयदेव, नामदेव, कबीर तथा अन्य भक्तों की पदावली में पर्याप्त निकटता है। "कबीरदास आदि साधकों ने नाथ-पंथियों और सहज-यानियों के बहुत से शब्द और दोहे ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिये थे। इनमें यत्र तत्र नाम मात्र के परिवर्तन भी हैं।"[१५] हम आपने इस शोध प्रबंध में गुरु ग्रंथ के पूर्ववर्ती सन्तों के साहित्य की सामान्य विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत करते समय इस आदान प्रदान की ओर संकेत कर चुके हैं। यहां स्वतंत्र रूप में इस विवेचन को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

शब्दावली के लिये आदि ग्रंथ के सभी रचयिता, विशेषतः जयदेव, नामदेव कबीर तथा गुरु नानक गोरखबानी के ऋणी हैं। जयदेव के आदि ग्रंथ में दो पद हैं, उनमें से एक पद की भाषा शैली उसकी अपनी ही रचना गीत-गोविंद से मिलती जुलती है।

जयदेव-आदि ग्रंथ : बदित जैदउ जैदेव कउ रमिआ ब्रहम निरबाणु लिव लीणु पाइआ।[१६]

जयदेव-गीत गोविंद: तव चरणं प्रणता वयमिति भावय। कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जयदेव हरे। श्री जयदेव कवेरिदं कुरुते मुदम् । मंगलमुज्ज्वल गीतं जय जय देव हरे।[१७]

15- 'Nanak was a thorough Hindu and also that he reproved the teachings of Brahmanism as well as the authority of the Vedas and the Puranas.

(Adi Granth- Dr. Trump-CI-CVII)

१४-फिलासफी आव् सिखिज़्म पृ० १०

जय देव का पद 'बंद सत गेदिला नाद सत पूरिआ'[18] तथा गुरु नानक का 'सूर सरु सोस लै, सोम सर पोखिलै'[19] छन्द की गति एवं शब्दावली में समता रखते हैं। कारण यह है कि दोनों में विषय की भी समता है। गुरु नानक ने जयदेव की रचना शैली का अनुकरण किया है। यह दोनों अपनी इस काव्य शैली की रचना के लिये गोरखवाणी से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। देखिए गोरखबानी का पद 'अवधु सकति सोइ जो सबदो सोषै, सीव सोइ जो सब को पोषै।'[20]
नामदेव पर भी गोरखबानी का प्रभाव परिलक्षित होता है:-

नामदेव : हिंदू पूजे देहुरा मुसलमाण मसीति।
नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीति। गोंड नामदेव।[21]

गोरखबानी: हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
योगी ध्यावें परमपद, जहं देहुरा न मसीत।[22]

गोरखनाथ ने गोरखबानी में जो आरती पृ० १५७-५८ पर लिखी है, उससे प्रेरणा प्राप्त कर गुरु नानक कबीर, सेण आदि सन्त कवियों ने आरतियां लिखी हैं, जिनकी शब्दावली के साथ साथ भाव एवं विचार की भी एकता है।

गोरखनाथ का सबसे अधिक प्रभाव गुरु नानक तथा संत कबीर पर है, यही दोनों मुख्य रचयिता हैं, जिन्हों ने परवर्ती एवं समकालीन साधकों को अधिक प्रभावित किया। अतः ऐसा दिखाई देता है, जैसे समस्त, आदि ग्रंथकी रचना शैली पर नाथों योगियों की रचना शैली का स्पष्ट प्रभाव है।

गोरखबानी के पद 'मारौ मारौ स्रपनी निरमल जल पैठी'[23] तथा कबीर के पद 'मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी', जोकि 'सरपनी ते ऊपर नहीं बलीआ'[24] से आरंभ होता है, में आश्चर्यजनक साम्य है। जहां गोरखनाथ ने 'स्रपणी मारि लै गोरष अवधूता', कहकर इसे मारने को कहा है, वहां कबीर ने इसे अधिक बलवान मान कर 'ता की कोटी तोई' जान कर इसे बस में करने को कहा है, क्योंकि इस के बसने से शरीर रहता है।

१५- हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ३७(१९५४)

१६- जयदेव भी कहते हैं, कि जयदेव (हरि) का स्मरण करने से उस ब्रह्म निर्वाण को लिवलीन होकर पाया। आ०ग्रं० पृ० ११०६

गोरखनाथ ने जो पाखंडी (साधुओं का एक पंथ) के लक्षण दिए हैं,[25] वही लक्षण कबीर ने जोगी के लिये दिये हैं।[26]

गोरखनाथ: पाखंडी सो काया पाखाले। उलटि पवन अगनि प्रजाले।
ब्यंद न देइ सुपने जाण। सो पाखंडी कहिए ब्रह्म समान। -४७

कबीर: काजी सो जो काइआ बीचारै। काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै।
सुपनै बिंदु न देई झरना। तिसु काजी कउ जरा न मरना।

गोरखनाथऔर कबीरकेउपर्युक्त दोनों पदों की भाषा शैली एवं विचार की तुलना गुरु नानक के निम्नांकित पद से करने से पता चलता है, कि कबीर और गोरख की रचनाएं एक साथ गुरु जी के सम्मुख थी, जिन में समन्वय स्थापित करते हुए, उक्त दोनों सन्तों की रचनाओंसे शब्दावली को ग्रहण करके यह लक्षण गोरख की भांति पाखंडी का भी प्रस्तुत किया है:-

म:१ सो पाखंडी जि काइआ पखाले। काइआ की अगनि ब्रहमु परजाले।
सुपनै बिंदु न देई झरना। तिसु पाखंडी जरा न मरणा।[27]

गोरखनाथ की रचना के गुरु नानक के पास होने का एक और पुष्ट प्रमाण यह है कि गोरखबानी के पृष्ठ १५-१६-१७ पर गृहस्थी, सिद्ध, पाखंडी तथा योगी के लक्षणों का वर्णन है। कबीर ने जो जोगी, मुल्लां, काजी तथा सुलतान के लक्षण दिए हैं, वे सब एक स्थान पर भैरउ राग में निबद्ध हैं।[28] गुरु नानक ने जो सति(सिद्ध) गृहस्थी, उदासी, पाखंडी, बैरागी, आदि के लक्षण दिए हैं, वे सब एक स्थान पर आदि ग्रंथ में दिए हैं।[29] गृहस्थी के लक्षणों को जिस प्रकार गोरखबानी में तथा गुरु नानक द्वारा आदि ग्रंथ में दिया गया है, उनमें जो पदावली का अनुकरण किया गया है, वह इस बात के सिवा और क्या सिद्ध करता है, कि गोरखबानी गुरु जी के पास थी:

१७- तुम्हारे चरणों में हम नत होकर प्रार्थी हैं, कि हे कलिलेश। जयदेव (हरि) तुम्हारी जय हो। जयदेव द्वारा लिखित भी जयदेव (हरि) की स्तुति का यह सुन्दर मंगलकारी उज्जवल गीत, उस जयदेव (हरि) का जय गान है। (गीतगोविंद सर्ग १, प्रबंध २,८-९) ।।

१८- आ०ग्र० पृ० १२०६   १९- आ०ग्र० पृ० ६६१

२०- गोरखबानी दश गोरखगोष्टि- पद संख्या ४४

२१- आ०ग्र० पृ० ८७५   २२- गोरखबानी पृ० २५

गुरु नानक: सो गिरही जो निग्रह करै, जपु तपु संजमु भीखिआ करै।
पुंन दान का करे सरीरु। सो गिरही गंगा का नीरु।।
बोलै ईसरु सति सरूपु। परम तंत महि रेख न रूपु।।[30]

गोरखबानी: गिरही सो जो गिरहै काया। अभि अंतरि की त्यागै माया।
सहज सील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा का नीर।।४५।।[31]

गोरखनाथ की रचना शैली का आदि ग्रंथ के रचयिताओं पर कितना प्रत्यक्ष प्रभाव है, इसका प्रमाण कबीर के निम्नलिखित पद की गोरखबानी से तुलना करने से मिलता है:-

कबीर: पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ। जिसु पाहन कउ पाती तोरै सो पाहन निरजीउ।।[32]
पाखान गढ़ि कै मूरति कीनी दे कै छाती पाउ। जे इह मूरत साची है तउ गढ़णहारे खाउ।।

गोरखबानी: कैसे बोलो पंडिता देव कौने ठांई। निज तत निहारतं अम्हें तुम्हें नाहीं।
पाषाणची देवली पाषाण चा देव। पाषाण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।
सरजीव तोड़िला निर-जीव पूजिला। पाप चीकरणी कैसे दुस्तर तिरिला।[33]

पदों के साम्य के अतिरिक्त कुछ वाक्य नाथों से संतों को परंपरागत रूप में प्राप्त हुए हैं:-

१- मनुष्ययोनि: गोरख: फिर फिर मानिषा जनम न पाया करि लै सिध पुरिस सूं मेला। २०३[34]
कबीर: कबीर मानस जनमु दुलभ है, होइ न बारै बार।[35]

२- मांस भक्षण: गोरख: जीव सीव संगे वासा बधि न खाइबा रुध्र मासा।
हंस घात न करिबा गोतं। कथंत गोरष निहारि पोतं। २२७[36]
कबीर: सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि, अंतकाल कउ भारी।[37]

२३- गोरखबानी पृ० १३६-४०
२४- आ०ग्र० पृ० ४८०-८१
२५- गोरखबानी पृ० १७
२६- आ०ग्र०पृ० ११६०
२७- आ०ग्र० पृ० ९५२
२८- आ०ग्र० पृ० ११५९-६०
२९- आ०ग्र० पृ० ९५२-५३
३०- आ०ग्र० पृ० ९५२
३१- गोरखबानी पृ० १७
३२- आ०ग्र० पृ० ४७९

३- <u>गुरु गोरख</u>: गोरखबानी:

नाथ कहतां सब जग नाथ्या गोरख कहतां गोइ।।[३८]

आदि ग्रंथ: (१) गुरु गोरख की ते बूझ न पाई- म: ५[३९]

(२) गुरु ईसरु गुरु गोरख बरमा- जपु म: १[४०]

(३) बाबा गोरख जागै। म: १[४१]

(४) गोरख सो जिन गोइ उठाला करते बारन लागै।[४२]

(५) जोगी गोरख गोरख करै। कबीर।।[४३]

४- <u>खंडधार मार्ग</u>: गोरखबानी:

(१) गोरख कहै हमारा षरतर पंथु। सबदी[४४]

(२) षांडै थे तुरसाणदुहेला, यूं सतगुरि मारग कहिया।[४५]

(३) सबद हमारा षरतर खांडा। रहणि हमारी सांची।[४६]

गुरु ग्रंथ (१) वाट हमारी खरी उडीणी। खंनिअहु तिखी बहुत पिईणी।[४७] शेख फरीद

(२) खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा। म: ३[४८]

५- <u>गगन मंडल</u> (शिखर) गोरखबानी:

(१) गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या।[४९]

गुरु ग्रंथ: (१) गगन मंडल महि रोपि थमु। म: १।।[५०]

(२) गगन मंडल महि ठहाकरु करै। कबीर[५१]

६- <u>पोथी पाठ</u>: गोरखबानी:

पढि पढि पढि केता मुवा कथि कथि कहा कीन्ह।

बढि बढि बढि बहु घट गया, पारब्रह्म नहीं चीन्ह।। २४८[५२]

गुरु ग्रंथ: पड़ि पड़ि गडी लदीअहि, पड़ि पड़ि भरीअहि साथ। नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख। म: १[५३]

७- <u>चार खाणी</u>: गोरखबानी:

चारि षाणी चारि बाणी।[५४]

गुरु ग्रंथ: अंडज जेरज उतभुजां खाणि सेतजाहं। म:१[५५]

३३- गोरखबानी- पृ० १३२

३४- वही० पृ० ६७

३५- आ०ग्रं० पृ० १३६६

३६- गोरखबानी पृ० ७३

३७- आ०ग्रं० पृ० ३३२

३८- गोरखबानी पृ० ५

३९- आ०ग्रं० पृ० २

३९- आ०ग्रं० पृ० २

४०- आ०ग्रं० पृ० ८८६

४१- आ०ग्रं० पृ० ८७७

४२- आ०ग्रं० पृ० ८७७

४३- आ०ग्रं० पृ० ११५९

८- अहूंठ हाथ (३½ हाथ) देही-

गोरखबानी: अहूंठ हाथका कंथा पाई। [५६]

गुरु ग्रंथ: (१) अउठि हाथ मढि मीरिआ जाचो। म: १ [५७]

(२) अउठि हाथ मढी घरु छाइआ। म:१ [५८]

(३) अउठि पटणा मढि मीरिआ करै। म:१ [५९]

९- अवधूत(अवधू):

गोरखबानी: अवधू नासि मषांत द्वार पवनका वास। [६०]

गुरु ग्रंथ: (१) अवधू मेरा मन मतवाला। कबीर [६१]

(२) अउधु सहजे ततु बीचारा। म: १ [६२]

१०- जोगी:-

गोरखबाणी: (१) जोगी सो जो राखै जोग। [६३]

गुरु ग्रंथ: (१) जोगी जती तपा संनिआसी-कबीर [६४]

(२) सो जोगी जो जुगति पछाणै- म: १ [६५]

(३) सो जोगी तत गिआनु बीचारे। म:३ [६६]

(४) ऐसा जोगी जुगति बीचारे। म:१ [६७]

११- नाद-बिंद-

गोरखबानी: (१) नाद बिंद है फीकी सिला। [६८]

(२) नाद बिंद रूपी बोलिए ॐकार। [६९]

(३) नादकै घरि ब्यंद गरजै। [७०]

गुरु ग्रंथ: (१) नादि समाइलो रे सतिगुरु भेटिले देवा। नामदेव [७१]

(२) नाद बिंद की सुरति समाइ। सति गुरु सेवि परमपदु पाइ।।नामदेव [७२]

(३) नादी बेदी सबदी मोनी। कबीर [७३]

(४) नादी बेदी पड़हि पुराणा। म:३ [७४]

४४- गोरखबानी सबदी नं २२० ४५- वही, सबदी ६१

४६- वही सबदी - २६४ ४७- आ०ग्रं० पृ० ७६४

४८- आ०ग्रं० पृ० ६१८ ४९- गोरखबानी- पृ० २

५०- आ०ग्रं० पृ० ६५३ ५१- आ०ग्रं० पृ० ११६०

५२- गोरखबानी- पृ० ७० ५३-आ०ग्रं० पृ० ४६७

५४- गोरखबानी पृ० १०२ ५५- आ०ग्रं० पृ ४६७

१२- पश्चिम द्वार-

गोरखबानी: पश्चिम द्वारे पवनां बंधि।[75]

गुरु ग्रंथ: (१) पश्चिम फेरि चढ़ाईसूर- बेणी[76]

(२) पश्चम दुआरै सूरज तपै। (मूल दुआरै बंधिआ बंधु।। कबीर[77]

१३- त्रिकुटी-

गोरखबानी: (१) त्रिकुटि संगम कूपा भरिया भद गोप ज्या अपारं।[78]

(२) इकुटी बिकुटी त्रिकुटी संधि।[79]

गुरु ग्रंथ: (१) तीनि तिलोक समाधि पलोवै। बेणी[80]

(२) तीनि नदी तह त्रिकुटी माहि। कबीर।[81]

१४- त्रिबेणी:

गोरखबाणी: (१) अनहद भौरा गवें त्रिवेणी के घाट।[82]

गुरु ग्रंथ: (१) बेणी संगम तह पिरागु मन मजन करे तिथाइ। बेणी[83]

(२) गंगा सागर बेणी संगमु अठसठि अंकि समाई है। म:१[84]

(३) गंग जमुन तह-बेणी संगम सात समुंद समावा। म:१[85]

१५- इड़ा-पिंगला-सुषमना-

गोरखबानी: इलाप्यंगुला सुषमना नाड़ी।[86]

गुरु ग्रंथ: (१) इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इकठाई। बेणी[87]

(२) इड़ा पिंगुला अउर सुखमना पउनैबंधि रहाउगो। नामदेव[88]

(३) इड़ा पिंगला सुखमन बंदे ए आवन कत जाहो। कबीर।[89]

५६- गोरखबानी पृ० २१६
५७- आ०ग्र० पृ० १३३२
५८- आ०ग्र० पृ० ६०७
५९- आ०ग्र० पृ० ६५२
६०- गोरखबानी सबदी पृ० १६५
६१- आ०ग्र० पृ० ६६६
६२- आ०ग्र० पृ० १३२८
६३- गोरखबानी सबदी पृ० २३१
६४- आ०ग्र० पृ० ४७६
६५- आ०ग्र० पृ० ६६२
६६- आ०ग्र० पृ० ६११
६७- आ०ग्र० पृ० २२३
६८- गोरखबानी सबदी १८१
६९- वही सबदी २४१
७०- वही सबदी ५४
७१- आ०ग्र० पृ० ६१६
७२- आ०ग्र० पृ० ३५२
७३- आ०ग्र० पृ० ६५४
७४- आ०ग्र० पृ० ११६६
७५- गोरखबानी सबदी १८७

१६- अनहद नाद:

गोरखबानी: (१) बाजंत अनहद तूरं।[९०] (२) अनहद नाद अभंगा।[९१]

गुरु ग्रंथ: (१) वाजे अनहद तूरे। म:३[९२]

(२) अनहता सबद वाजंत भेरी। म: १[९३]

(३) अनहत धुनि वाजहि नित वाजे। म:४[९४]

(४) अनहद सबदु सुहावा। म: ५(९५)

(५) अनहत सबद होत झुनकारा। कबीर[९६]

१७- काया कोट

गोरखबानी: (१) काया ग. भीतरि नव लाष खाई।[९७]

(२) काया गढ़ जीतिगा बिरला कोई।[९८]

(३) काया हमारे सहर बोलिये।[९९]

गुरु ग्रंथ: (१) काइआ नगरि नगरि गड़ि अंदरि बसिआ। म: १[१००]

(२) काइआ नगरी सबदे खोजे- म: ३[१०१]

(३) काइआ नगरु नगरु है नीको। म:४[१०२]

(४) काइआ गड़ महल महली प्रभु साचा। म:१[१०३]

(५) काइआ कोटु गड़ महि राजा। म: १[१०४]

(६) काया कोट अपार। म: ३[१०५]

१८- काया कोट का राज:

गोरखबानी: अवधु अमर कोट काया छत्तीस दरवाजा।

ग्यान गढ़ आसण प्राण भयो राजा।[१०६]

गुरु ग्रंथ: (१) अगम दुगम गड़ि रचिओ बास। कबीर[१०७]

(२) दासु कमीरु चढ़िओ गढ़ ऊपरि राजु लीओ अबिनासी।[१०८]

७६- आ०ग्रं० पृ० ६७४ | ७७- आ०ग्रं० पृ० ११५६
७८- गोरखबानी सबदी ३११ | ७९- वही सबदी १८७
८०- आ०ग्रं० पृ० ६७४ | ८१- आ०ग्रं० पृ० ३४४
८२- गोरखबानी पृ० १११ | ८३- आ०ग्रं० पृ० ६७४
८४- आ०ग्रं० पृ० १०२२ | ८५- आ०ग्रं० पृ० ११०९
८६- गोरखबानी पृ० १६७ | ८७- आ०ग्रं० पृ० ६७४

१९- शिव शक्ति:

गोरखबानी: (१) आदि नाथनादि पार ब्रह्म शिव शक्ति।[109]

(२) कैलास मन्दिर तहाँ शिव शक्ति निवासा।[110]

गुरु ग्रंथ: (१) शिव शकति संवादं। नामदेव[111]

(२) सिवशक्ती पर धारा पारब्रह्म। म: १[112]

(३) शिव सकति आपि उपाइ के करता आपे हुकमु वरताए। म:३[113]

(४) शिव सकति मिटाइआ चूका अंधिआरा: म: १[114]

(५) शिव शक्ती देवी मधि पारा। म: ३[115]

२०- सहज शून्य (शून्य मंडल)

गोरखबाणी: (१) जहाँ नाहीं तहाँ नाहीं त्रिकुटा मंझारी।
सहज सुंनि मैं रहणि हमारी।[116] (२) सहज सुंनि मिलै अविनासी।[117]

गुरु ग्रंथ: (१) सुंन मंडल महि करि परगासु।
सुंन सहज महि रहिओ समाइ। कबीर[118]

(२) सहज निरंतरि रहउ समाइ।
सुंन समाधि सहजि मनु राता। म:१[119]

(३) सुंन समाधि अनहत तह नाद। म: ५[120]

(४) सहज समाधि उपाधि रहत होइ। रविदास[121]

(५) सुंनिहि सुंनु मिलिआ समदरसी, पवनरूप होइ जावहिगे। कबीर[122]

(६) नानक कहै चितु करि थिरु राता सुंन समाधि समाइगो।[123]

२१-गुरु की आवश्यकता

गोरखबाणी: गुरु कीजे गहिला निगुरा न रहिला। गुरु बिन ग्यान न पायला रे भाईला।[124]

गुरु ग्रंथ: (१) जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार। म: [125]

१०९- आ०ग्र० पृ० ६७३ — ११०- आ०ग्र० पृ० ३२४ (partly illegible)

१११- गोरखबाणी सबदी ५४ — ११२- वही सबदी ५७ (partly illegible)

११३- आ०ग्र० पृ० ६२२ — ११४- आ०ग्र० पृ० १३,६ ३ (partly illegible)

११५- आ०ग्र० पृ० ६६८ — ११६- आ०ग्र० पृ० ७०८ (partly illegible)

(२)बिनु सतिगुर किने न पा ै।म:[126]

(३)बिनु सतिगुर बंधन न तुटही। बिनु गुर दाते किने न पाइआ।म:३[127]

(४)बिनु सतिगुर किनै न पायो। म: ४[128]

(५)बिन सतिगुर कैसे पावहि पारि।म:५[129]

२२-उन्मनी अवस्था:

गोरखवाणी: (१)अनिमिष मन है उनमन रहै।[130]

(२) यह मन है जो उनमन रहै।तौ तीनि लोक की बाता कहै।[131]

गुरु ग्रंथ: (१)इहु मन ले जउ उनमनि रहै। तउ तीनि लोक की बाता कहै।[132]

(२)उनमनि मनूआ सुनि समाना[दुबिधा]दुरमति भागी। कबीर[133]

(३) उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट। रविदास।[134]

२३- अजपा जाप:

गोरखवाणी: (१) अजपा जाप जपता गोरख, तीत अनूपं ध्यानं।[135]

(२) ऐसा जाप जपौ मन लाई।सोहं सोहं अजपा गाई।[136]

गुरु ग्रंथ: (१) अजपा जापु जपै मुखि नाम।म: १[137]

(२) अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ।म:१[138]

९६- आ०ग्र० पृ० ११६२
९७- गोरखवाणी पृ० ११६
९८- वही पृ० ११६
९९- वही पृ० ११६
१००- आ०ग्र० पृ० १३३६
१०१- आ०ग्र० पृ० ६१०
१०२- आ०ग्र० पृ० १२२३
१०३- आ०ग्र० पृ० १०३६
१०४- आ०ग्र० पृ० १०२७
१०५- आ०ग्र० पृ० ५१४
१०६- गोरखवाणी पृ० २४२
१०७- आ०ग्र० पृ० ११६२
१०८- आ०ग्र० पृ० ११६२
१०९- गोरखवाणी पृ० २४१
११०- वही पृ० २४२
१११- आ०ग्र० पृ० ८०३
११२- आ०ग्र० पृ० १०२७
११३- आ०ग्र० पृ० ६२०
११४- आ०ग्र० पृ० १६३
११५- आ०ग्र० पृ० १०५६
११६- गोरखवाणी पृ० १३४
११७- वही पृ० ११६
११८- आ०ग्र० पृ० ११६२
११९- आ०ग्र० पृ० ६०४
१२०- आ०ग्र० पृ० २०३
१२१- आ०ग्र० पृ० ११०६
१२२- आ०ग्र० पृ० ११०३
१२३- आ०ग्र० पृ० ६३३

२४- गुरमुखि:

गोरखबाणी: (१) आपा परखै गुरमुषि न चिन्हैं फाड़ि फाड़ि बाघणि खाया।[१३९]

(२) एक अषिरो एकंकार एव गुरमुखि जाणी।[१४०]

गुरु ग्रंथ: (१) गुरमुखि जागै सोई सारु। कबीर[१४१]

(२) गुरमुखि जागि रहे चूकी अभिमानी राम। म:१[१४२]

(३) गुरमुखि जागै गुण गिआन बीचारि। म:३[१४३]

(४) गुरमुखि जोति भली। म: ४[१४४]

२५-मनमुखि:

गोरखबाणी: मनमुखि जाता, गुरमुखि लेहु।[१४५]

गुरु ग्रंथ: (१) मन मुखि अंध न चेतही। म: १[१४६]

(२) मनमुखि अंध न चेतनी। म: ३[१४७]

(३) मनमुखि जनमु गवाइआ। म: ४[१४८]

(४) मनमुखि ढोई नह मिलै। म: ५[१४९]

१२४- गोरखबाणी पृ० १२८ १२५- आ०ग्रं० पृ० ४६३

१२६- आ०ग्रं० पृ० ४६६ १२७- आ०ग्रं० पृ० १२७०

१२८- आ०ग्रं० पृ० ३०३ १२९- आ०ग्रं० पृ० ११४०

१३०- गोरखबाणी पृ० ७१ १३१- वही पृ० १४

१३२- आ०ग्रं० पृ० ३४२ १३३- आ०ग्रं० पृ० ३३३

१३४- मके आ०ग्रं० पृ० ३४६ १३५- गोरखबाणी पृ० १०२। १३६-वही पृ०१२४

१३७- आ०ग्रं० पृ० ८४० १३८- आ०ग्रं० पृ० १२६१

१३९- गोरखबाणी पृ० १४४ १४०- वही पृ० १०१

१४१- आ०ग्रं० पृ० ११६४ १४२- आ०ग्रं० पृ० ११११

१४३- आ०ग्रं० पृ० १६० १४४- आ०ग्रं० पृ० १३२४

१४५- गोरखबाणी पृ० ६१ १४६- आ०ग्रं० पृ० ४२१

१४७-आ०ग्रं० पृ० ५६३ १४८- आ०ग्रं० पृ० १२३८

१४९- आ०ग्रं० पृ० ६४१

२६- अठसठि तीर्थ:

गोरखबाणी: अठसठि तीरथ सर्मंधि समावै।[१५०]

आदि ग्रंथ: (१) अठसठि तीरथ गुरू दिखाए घट ही भीतरि न्हाउगो। नामदेव[१५१]

(२) अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै नाही मैलु। म: १[१५२]

(३) अठसठि तीरथ गुर सबदि दिखाए तितु नातै मलु जाए। म: ३[१५३]

(४) अठसठि तीरथ मजनु कीआ सत संगति पग नाए धूरि। म: ४[१५४]

(५) अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु। म: ५[१५५]

२७- ब्रह्म ज्ञानी :

गोरखबाणी: बूझै तो कोई ब्रह्म गियानी।[१५६]

गुरु ग्रंथ: मनि साचा मुखि साचा सोइ। अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ।

नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ। म: ५[१५७]

२८- मनुष्य जन्म:

गोरखबाणी: फिरि मनिषा जनम न पायबा।[१५८]

गुरु ग्रंथ: (१) कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारै बार।[१५९]

(२) माणस जनमु दुलंभु, गुरमुखि पाइआ। म:१[१६०]

(३) माणस जनम दुलंभु है जग महि खटिआ आइ। म: ३[१६१]

(४) माणस जनमि हरि पाईऐ हरि रावण वेरा राम।

जिन माणस जनमि न पाइआ तिन्ह भागु मंदेरा राम। म:४[१६२]

(५) माणस जनमु वडपुंनै पाइआ देह सु कंचन चंगड़ीआ। म: ४[१६३]

१५०- गोरखबाणी सबदी १३

१५१- आ०ग्रं० पृ० ९७३

१५२- आ०ग्रं० पृ० ४७३

१५३- आ०ग्रं० पृ० ७५३

१५४- आ०ग्रं० पृ० ११६८

१५५- आ०ग्रं० पृ० १३६

१५६- गोरखबाणी पृ० २१६

१५७- आ०ग्रं० पृ० २७२,२७३

१५८- गोरखबाणी पृ० २०३

१५९- आ०ग्रं० पृ० १३६६

१६०- आ०ग्रं० पृ० ७५१

१६१- आ०ग्रं० पृ० ५६५

१६२- आ०ग्रं० पृ० ८४४

१६३- आ०ग्रं० पृ० ५७५

२६- पाषाण पूजा:

गोरखवाणी: पषाणंचो देवली, पषाणंचा देव।
पषाणं पूजिला कैसे फटीला सनेह।[१६४]

गुरु ग्रंथ: (१) पाखान गढि कै मूरति कीनी दे कै छाती पाउ।
जे एह मूरति साची है तउ गड़णहारे खाउ। कबीर[१६५]
(२) जो पाथर कउ कहते देव। ताकी बिरथा होवै सेव। कबीर[१६६]
(३) सिल पूजसि बगुल समाधं म: १[१६७]
(४) सिल पूजसि चक्र गणेसं। बेणी[१६८]

३०- उलटी गंगा:

गोरखवाणी: उलटि गंगा चलै धरणि ऊपर मिलि।[१६९]

गुरु ग्रंथ: (१) उलटी गंगा जमुन मिलावउ। कबीर[१७०]
(२) उलटी नदी कहा धरु तरवरु, सरपनि औ दूजा मन माही। म:१[१७१]
(३) उलटी सकति सिवै घरि। म:३[१७२]
(४) उलटी रे मन उलटी रे। म: ५[१७३] (नया रूप)

३१- बिन्दु

गोरखवाणी: (१) जोग करंता जो व्यंद राखै ते गोरष का भाई।[१७४]
(२) व्यंद न देई सुपनै जाण।[१७५]

गुरु ग्रंथ: (१) सुपनै बिंदु न देई झरना। कबीर[१७६]
(२) सुपनै बिंदु न देई झरना। म:१[१७७]
(३) बिंदु राखि जौ तरीऐ भाई। खुसरै किउन परमगति पाई। कबीर[१७८]
(४) बिंदु न राखहि जती कहावहि।[१७९]

१६४- गोरखवाणी पृ० १३२
१६५- आ०ग्रं० पृ० ४७६
१६६- आ०ग्रं० पृ० ११६०
१६७- आ०ग्रं० पृ० १३५३
१६८- आ०ग्रं० पृ० १३५१
१६९- गोरखवाणी पृ० २४२
१७०- आ०ग्रं० पृ० ३२७
१७१- आ०ग्रं० पृ० १२०४
१७२- आ०ग्रं० पृ० ९८६
१७३- आ०ग्रं० पृ० ५३५
१७४- गोरखवाणी पृ० ४६
१७५- वही पृ० १७

३२- माया सर्पणी

गोरखबाणी: (१) मारी मारी स्रपनी निरमल जल पैठी।[१८०]
तृभुवन डसती गोरखनाथ दीठी।

गुरु ग्रंथ: (१) मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी। कबीर[१८१]
(२) सरपन दूजी दूजा मन माही। म: १[१८२]
(३) माइआ होई नागनी जगति रही लपटाइ।
इस की सेवा जो करे तिस ही कउ फिरि खाइ। म: ३[१८३]
(४) माइआ भुइअंगम ग्रसिओ है प्राणी। म: ४[१८४]

३३- गुरु गारुड़ी

गोरखबाणी: अमृत पीआ विषै रस टार्या, गुर गारड़ी अकेला।[१८५]

गुरु ग्रंथ: (१) गारडू गुर ज्ञानु धिआनु गुर बचनी बिखिआ गुरमति जारी।म:१[१८६]
(२) गुरबचनी बिखु हरि काढिआ।म: ४[१८७]

३४- काचा भांडा

गोरखबाणी: घटि घटि गोरखि कहै कहाणी। काचे भाडै रहैन पाणी।[१८८]

गुरु ग्रंथ (१) काचे करवै रहै न पानी। कबीर[१८९]
(२) काची गागरि देह दुहेली। म: १[१९०]
(३) काचे भाडै साजि निवाजे अंतरि जोति समाई। म:१[१९१]
(४) काच गगरीआ अंभ मफरीआ। म: ५[१९२]

३५- आवागमन:

गोरखबाणी: (१) आवा गवण मरम का मारग, पुरषा पंथ बतायया।[१९३]
(२) आऊं नहीं जाऊं निरंजन नाथ की दुहाई।[१९४]

गुरु ग्रंथ: (१) आवागउणु निवारिओ करि नदरि नीसाणु। रविदास[१९५]
(२) बहुरि हम काहे आवहिगे। कबीर[१९६]

१७६- आ०ग्र० पृ० ११६०   १७७- आ०ग्र० पृ० ६५२
१७८- आ०ग्र० पृ० ३२४   १७९- आ०ग्र० पृ० ६०३
१८०- गोरखबाणी पृ० १३६   १८१- आ०ग्र० पृ०४८०
१८२- आ०ग्र० पृ० १२७४   १८३- आ०ग्र० पृ० ५१०
१८४- आ०ग्र० पृ० ६६७   १८५- गोरखबाणी पृ० २०७

(३) आवागउणु निवारिआ है साचा सोइ। म: १ [१९७]

(४) आवागउणु कीआ करतारि।
आंवहि जावहि मरहि अभागे।। म: ३ [१९८]

(५) आवागवणु होतु है फुनि फुनि, इहु परसंगु न तूटै। कबीर [१९९]

(६) आवणु जाणा सभु चलतु तुमारा। म: ५ [२००]

३६- उत्पत्ति (कब हुई)

गोरखबाणी: जाणा मै जोसी नै विचारी, पहला पुरिष कै नारी जी। [२०१]

गुरु ग्रंथ: (१) कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादीआ जिलिखनि लेखु कुराणु। म: १ [२०२]

३७- बटक बीज:

गोरखबाणी: भणत गोरष नाथ हम होइ, निरंतर बीजैं बटक समाया। [२०३]

गुरु ग्रंथ: बटक बीज महि रवि रहिओ जा को तीनि लोक विसथार। कबीर [२०४]

३८- एक अनेक :

गोरखबाणी: एकमैं अनंत अनंत मैं एक, एकै अनंत उपाया। [२०५]

गुरु ग्रंथ: (१) एक अनेक होइ रहिआ सगल महि अब कैसे भरमावहु। कबीर [२०६]

(२) एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई। नामदेव [२०७]

(३) सगल बिआपि रहिआ प्रभ छाजे।
एको एकु स अपर परंपरु परखि खजाने पाइदा। म: १ [२०८]

(४) एक अनंत अनूपि ठाउ ।। म: ५ [२०९]

१८६- आ०ग्रं० पृ० १२७४
१८७- आ०ग्रं० पृ० ६६७
१८८- गोरखबाणी पृ० १४
१८९- आ०ग्रं० पृ० ७६२
१९०- आ०ग्रं० पृ० ३५२
१९१- आ०ग्रं० पृ० ८८२
१९२- आ०ग्रं० पृ० ३६२
१९३- गोरखबाणी पृ० २१६
१९४- वही पृ० ११६
१९५- आ०ग्रं० पृ० ६६८
१९६- आ०ग्रं० पृ० ११०३
१९७- आ०ग्रं० पृ० ७२९

३९- जंत-मंत-तंत :

गोरखबाणी: झाड़ी तंत मंत बेदंत। कं गुटिका घात पाषंड।[२१०]

गुरु ग्रंथ: (१) तंत मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना। कबीर[२११]

(२) तंतु मंतु पाखंडु। म: १[२१२]

(३) तंतु मंतु पाखंड न जाणा, रामु रिदै मनु मानिआ। म: ५[२१३]

४०- लोहा चबाना:

गोरखबाणी: मैण के दांता सार घरि पीसबा,
तब योग पद दुर्लभ सत्य का जाणि।[२१४]

गुरु ग्रंथ: (१) मैण के दंत किउ खाईऐ सारु। जितु गरबु जाइ सु कवणु आहारु। म:१[२१५]

(२) भोजन सारु कराई। म: १[२१६]

४१- रस-कस

गोरखबाणी: रस कुस बहि गईला, रहि गई छोई।[२१७]

गुरु ग्रंथ: (१) रस कस खाए सादु गवाए। म: १[२१८]

(२) रस कस सुख ठाके बंधि चलाइआ रामु। म: १[२१९]

(३) रस कस सादा बाहरा सची बडिआईऐ। म: ३[२२०]

४२- काम वाशना:

(क) गोरखबाणी: कामनी कहतां जोग न छोडै भग मुख परलै केता।[२२१]

गुरु ग्रंथ: भग मुखि जनमु विगोइआ। बेणी।[२२२]

(ख)गोरखबाणी: ब्रह्मा देवता कंद्रप व्याप्या। यंद्र सहस्त्र भग पाई।[२२३]

गुरु ग्रंथ: (१) गोतम नारि उमापति स्वामी।
सीसु धरनि सहस भग गांमी। रविदास[२२४]

(२)गोतमु तपा अहिलिआ इसत्री, तिसु देखि इंद्रु लुभाइआ।
सहस सरीर चिहन भग हूए,ता मनि पछोताइआ। म:१[२२५]

१९८- आ०ग्रं० पृ० ८४२ | १९९- आ०ग्रं० पृ० ९७१

२००- आ०ग्रं० पृ० १०७३ | २०१- गोरखबाणी पृ० ६१

२०२- आ०ग्रं० पृ० ४ | २०३- गोरखबाणी पृ० ८६

२०४- आ०ग्रं० पृ० ३४० | २०५- आ०ग्रं० पृ० २०५

४३- जीवत मरना:

गोरखबाणी: मरौ वे जोगी मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ जिस मरणी गोरष मरि दीठा।[226]

गुरु ग्रंथ: (१) कबीरा मरता मरता जगु मुआ मरि भि न जानै कोइ।
ऐसी मरनी जो मरै बहुरि न मरना होइ। कबीर-[227]
(२) ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना। कबीर[228]
(३) जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनम न होई। कबीर[229]
(४) जीवत मरहु भवजलु जगु तरणा। म: १[230]
(५) जीवतु मरै ता सबदु बीचारै ता सचु पावै कोई। म: ३[231]
(६) पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस। म: ५[232]

४४- अंजन माहि निरंजन:

गोरखबाणी: अंजन मधि निरंजन भेट्या, तिल मुष भेट्या तेलं।[233]

गुरु ग्रंथ: (१) अंजन माहि निरंजन रहीऐ, बहुड़ि न भवजलि पाइआ। कबीर[234]
(२) अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ। म: १[235]
(३) अंजन माहि निरंजनु पाइआ जोती जोति मिलावणिआ। म: ३[236]

४५- परंपद:

गोरखबाणी: (१) विमल पंथ बोजल ज्यूं चमकै।[237]
(२) नूर झिलमिलि दीसै तहां अनत न जावै।[238]

गुरु ग्रंथ: (१) झिलि मिलि झिलकै चंदु न तारा।
सूरज किरणि न बिजुलि गैणारा।
पसरी किरणि जोति उजिआला। म: १[239]
(२) जोती हूं सभु चानणा सतिगुरि सबदु सुणाइआ। म: ३[240]

२०६- आ०ग्रं० पृ० ११०४ | २०७- आ ०ग्रं० पृ० ४८५
२०८- आ०ग्रं० पृ० १०३४ | २०९- आ०ग्रं० पृ० ५३६
२१०- गोरखबाणी पृ० १७१ | २११- आ०ग्रं० पृ० ४७६
२१२- आ०ग्रं० पृ० १०३५ | २१३- आ०ग्रं० पृ० ९६६
२१४- गोरखबाणी पृ० २४२ | २१५- आ०ग्रं० पृ० ६४३

शैली गत साम्य के इतने उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि इस प्रबंध के बहुत बढ़ जाने का भय है। सन्तों की शब्दावली, पदावली एवं विचार की प्रेरणा को समझने के लिये गोरखबाणी एवं गुरु ग्रंथ साहब का उपर्युक्त संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन ही पर्याप्त होगा।

(३) प्रतीक योजना- क(साधारण प्रतीक)

प्रतीकों को अभिव्यक्ति-परक प्रयोग कहा जा सकता है। सन्तों की अभिव्यक्ति का मुख्य हेतु ब्रह्म विचार और ईश्वर की प्रेमानुभूति था, यह बात प्राय: सर्वमान्य ही मानी जा सकती है। नाथ-पंथी-साधना से प्रभावित और उसी के ज्ञान-परक दृष्टिकोण को अपनाते हुए भी संत इस दृष्टि से नाथ पंथियों से भिन्न कोटि की साधना के पोषक थे। हेतु की भिन्नता होने के पश्चात् अभिव्यक्ति परक प्रयोगों की भिन्नता होना स्वाभाविक है, किन्तु सन्तों और नाथ पंथियों के अभिव्यक्ति परक प्रयोग कुछ बातों को छोड़ कर प्राय: समान ही हैं। संतों में नाथ पंथी प्रतीक योजना के अतिरिक्त दाम्पत्य और वात्सल्य प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर रूप से हुआ मिलता है, किन्तु साधनात्मक प्रतीकों तथा लोक तुला उपमानों का ठीक वैसा ही प्रयोग हुआ है, जैसा कि नाथ पंथी रचनाओं में हुआ है।[२५१]

हमारा विचार है कि इस का कारण मुख्य यही हो सकता है कि गोरखनाथ का प्रभाव उस समय बहुत ही अधिक था। सब लोक उनकी शुद्ध सात्त्विक भावना से प्रेरित थे। अत: सन्तों ने नाथों की सब अच्छी बातों को स्वीकार कर लिया। नाथ मत में केवल एक बात थी, जिसे सन्तों ने स्वीकार नहीं किया, वह थी गृहस्थ जीवन का बहिष्कार।

२१६- आ०ग्र० पृ० १४७
२१७- गोरखबाणी पृ० ८७
२१८- आ०ग्र० पृ० ८४०
२१९- आ०ग्र० पृ० ११४०
२२०- आ०ग्र० पृ० ६५१
२२१- गोरखबाणी पृ० ८८
२२२- आ०ग्र० पृ० ६३
२२३- गोरखबाणी सबदी १६८
२२४- आ०ग्र० पृ० ७१०
२२५- आ०ग्र० पृ० १३४४
२२६- गोरखबाणी पृ० १०
२२७- आ०ग्र० पृ० ५१५, १३६५
२२८- आ०ग्र० पृ० ३२७
२२९- आ०ग्र० पृ० ११०४
२३०- आ०ग्र० पृ० १०४०
२३१- आ०ग्र० पृ० ५०६

सन्तों का प्रतीक पद्धति के तीन मुख्य रूप मिलते हैं:- (१) आध्यात्मिक संबंध मूलक (२) साधना प्रधान (३) लोक मूलक उपमानों के रूप।

आध्यात्मिक संबंध मूलक प्रतीक रूपक

दाम्पत्य संबंध के प्रतीकों का प्रयोग विशेष कर सन्त-काव्य में हुआ है, परन्तु इसके तत्व नाथ-काव्य में भी मिलते हैं, चाहे नाथ-योगी स्वयं इस जीवन से दूर भागते थे। परमपद की पातशाही का वर्णन करते हुए गोरखनाथ कहते हैं:-

१- दाम्पत्य संबंध:

गोरखबाणी: ऐसी अवला पातसाही चाबै अदम बलाई।
तहां सत्य बीबा, संतोस साहिजादा, षिमां माति ले धाई।[२४२]

गुरु ग्रंथ: (१) मैं बउरी मेरा राम भतारु। रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु। नामदेव[२४]
(२) राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रंग राती। कबीर[२४४]
(३) नानक मेलि लई गुर अपणै घरि वरु पाइआ नारी। म:१[२४५]
(४) मैं कामणि मेरा कंतु करतारु। जेहा कराए करी सीगारु। म:३[२४६]
(५) बांह पकड़ि ठाकुरि हउ घिधी गुण अवगुण न पछाणै। म:५[२४७]

२- कलालिन:

गोरखबाणी: इकीस ब्रह्मंड भाठी चिणावै, पावक सदा मति वालं।
मनसा कलालिनि भरि भरि देवै, आछा आछा मद ना प्यालं।[२४८]

गुरु ग्रंथ: (१) काइआ कलालनि लाहनि मेलउ गुर का सबदु गुड़ कीन रे।
एक बूंद भरि तनु मनु देवउ जो मदु देइ कलाली रे।
भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रहम अगनि तनि जारी रे। कबीर[२४९]
(२) पूरा साचु पिआला सहजे तिसहि पीआए जा का नदरि करे। म:१[२५०]

३- आत्मा-परमात्मा-मिलन:

गोरखबाणी: अवधू उरधै बसैं चंद, अरधैं बसै सूर।[२५१]

गुरु ग्रंथ: ससि घरि सूरु बसै मिटै अंधिआरा।[२५२]

२३२- आ०ग्रं० पृ११०२ | २३३- गोरखबाणी गिआन तिलक पृ० २१७
२३४- आ०ग्रं० पृ० ३३२ | २३५- आ०ग्रं० पृ० ७३०
२३६- आ०ग्रं० पृ० ११२ | २३७- गोरखबाणी पृ० २१६

४- जीवात्मा-परमात्मा के प्रतीक

गोरखबाणी: दीपक एक अखंडित बाती। अगम अगोचर सकल ब्रहमंड।
तां दीपक कै बरन न ध्यंड।
सिखा न नैन सीस नहिं हाथ। सो दीपक देख्या जती गोरखनाथ।।
तां दीपक के मोह न माया। सो दीपक सूने सून समाया। दयाबोध।[253]

गुरु ग्रंथ: (१) दीपक बांधि धरबिो बिनु तेल।
सो दीपकु अमरकु संसारि। कबीर[254]
(२) दीपक सहजि बलै तति जलाइआ।
दीपक रस तेलो, धन पिर मेलो धन ओमाहि रसी। म: १[255]
(३) दीपक ते दीपकु परगासिआ, त्रिभवण जोति दिखाइ। म:१[256]

(४) दीवा मेरा एक नामु दुख विचि पाइआ तेलु।
उनि चानणि ओहु सोखिआ, चूका जम सिउ मेलु। म:१[257]

५- जीवन-रात्रि :

गोरखबाणी रात्ति गई, अंध रात्ति गई बाल एक पुकारै।
है कोई नगर में सूरा बालक मा दु:ख निवारै।[258]

गुरु ग्रंथ (१) रात्ति कारणि धनु संचीऐ, भलके चलणु होइ। म: २[259]
(२) रैणि गई मत दिनु भी जाइ। कबीर[260]
(३) रैणि विहाणी पछुताणी उठि चली गई निरास। म:५[261]
(४) एकु रैण के पाहुन तमु चाए बहु जुग आस बधाए। म: ५[262]

२३८- गोरखबाणी पृ० १५७
२३९- आ०ग्रं० पृ० १०३३
२४०- आ०ग्रं० पृ० ५०६
२४१- नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य पृ०२८६
२४२- गोरखबाणी पृ० १२१
२४३- आ०ग्रं० पृ० ११६४
२४४- आ०ग्रं० पृ० ४८२
२४५- आ०ग्रं० पृ० ११०६
२४६- आ०ग्रं० पृ० ११२८
२४७- आ०ग्रं० पृ० ७०३
२४८- आ०ग्रं० पृ० १२२
२४९- आ०ग्रं० पृ० ६६६
२५०- आ०ग्रं० पृ० ३६०
२५१- गोरखबाणी मछिन्द्र गोरखबोध- ३४
२५२- आ०ग्रं० सिधि गोसटि ४६
२५३- गोरखबाणी पृ० २३९-४०

साधना प्रधान प्रतीक रूपक

१- सुनार का रूपक:

गोरखबाणी: अहरणिनाद नै सूंबंद रूपीआ, रवि ससि षाला पवनं।
मूल चापि दिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं। [263]

गुरु ग्रंथ: जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु।
भउ खला अगनि तप ताउ। भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल। म: १ [264]

२- किसान का रूपक

गोरखबाणी: उत्तर देस मेह चढ़ि आया, दक्षिण आचल छाया।
पूरब देस थी पाणिग त्रिकूटी पश्चिम खेत्र में पाया।
मन पवना धोरी जोतावो सहजा सांतोड़ा समधावो।
दया धर्म नां बीज अणावो, इणी पेरि षेत्रे ओवो।
षाता न षूटै देतां न निठै जम बार नहीं जाइ।
मछींद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या नित नवेरा थाइ।। [265]

गुरु ग्रंथ (१) आपि सुजाणु न भुलई सचा वड किरसाणु।
पहिला धरती साधि कै सचु नामु दे दाणु। म: १ [266]

(२) इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंग पाणी।
मनु किरसाणु हरि रिदै जमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी। म: १ [267]

(३) मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु। म: १ [268]

२५४- आ०ग्रं० पृ० ६७१
२५५- आ०ग्रं० पृ० ११ ६
२५६- आ०ग्रं० पृ० ६०७
२५७- आ०ग्रं० पृ० ३५८
२५८- गोरखबाणी सबदी २६२
२५९- आ०ग्रं० पृ० ७८७
२६०- आ०ग्रं० पृ० ७९२
२६१- आ०ग्रं० पृ० १३४
२६२- आ०ग्रं० पृ० ११२
२६३- गोरखबाणी पृ० १०१
२६४- आ०ग्रं० पृ० ८
२६५- गोरखबाणी पृ० १२५
२६६- आ०ग्रं० पृ० १९
२६७- आ०ग्रं० पृ० २३
२६८- आ०ग्रं० पृ० ५९५

३- घुड़सवार:

गोरखबाणी: सहज पलांण पवन करि घोड़ा ले लगाम चित चबका।
चेतनि असवार ग्यान गुरु करि, और तजौ सब ढबका। [२६६]

गुरु ग्रंथ (१) देह मुहार लगामु पहिरावउ।
सगल तजीन पगु धरि लीजै। अने बाचारि असवारी कीजै।
सहज के पावे, पगु धरि लीजै।
चल रे बैकुंठ तुझहि ले तारउ।। हितचित त प्रेम के चाबुक मारउ।।
कहत कबीर भले असवारा। बेद कतेब ते रहि निरारा। कबीर [२७०]
(२) मन असवार जैसे तुरी सीगारी। म: ५ [२७१]

४- धोबी का रूपक:

गोरखबाणी: चंदा करि ले चूटा सुरजि करिले पाट।
नित उठ धोबी घोवै त्रिबेणी के घाट।
धरि ले नाड़ी चारोड़ी, पूरि ले बकनालि।
बदंत गोरखनाथ, अवधू मन उतरिबोपारि। [२७२]

गुरु ग्रंथ (१) भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि। म: १ [२७३]
(२) मै चिचि कुंबि चड़ाइ कै सरमु पाहु तनि होइ। म: १ [२७४]

लोक सुलभ उपमानों के रूपक

रूपकों की इस कोटि में दोनों प्रकार के प्रतीकों का सम्मिश्रण है।

(१) साधारण प्रतीक

१- मछली-जाल :

गोरखबाणी: आपण ही मछ कछ आपणही जाल।
आपण ही धीवर आपण ही काल। [२७५]

गुरु ग्रंथ: (१) आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु। म:१ [२७६]
(२) आपे मछुली आपे जाला। म: १ [२७७]

२६९- गोरखबाणी पृ० १०३ २७०- आ०ग्रं० पृ० ३२९

२- सर्प और बांबी:

गोरखबाणी: सरप मरै बांबी उठि नाचै कर बिनु डेरा बाजै।[२७८]

गुरु ग्रंथ: (१) बरमी मारी सापु न मरई नागु न सुनई डोरा। म:५[२७९]

(२) बरमी मारी सापु न मूआ। प्रभाती म: ५[२८०]

३- कौआ-हंस:

गोरखबाणी: कागा कै रूप माल हंसला न मेला।[२८१]

गुरु ग्रंथ: किआ हंस किआ बगुला, जा कउ नदरि करे।

जे तिसु भावै नानका कागहु हंसु करे। १२४ ।।[२८२]

४- श्याम-श्वेत

गोरखबाणी: दूधै धोया कोइला उजला न होइला।[२८३]

गुरु ग्रंथ: (१) साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेत। कबीर[२८४]

(२) काइआ कुसुध हउमै मलु लाई।

जे सउ धोवहि ता मेलु न जाई। माझ सोहले म:३[२८५]

(२) अर्थ रूपक तथा प्रतीक रूपक

डा० राम कुमार वर्मा ने रूपकों का विशिष्ट शैली, जो नाथों तथा सन्तों के काव्य में मिलती है, को दो भागों में विभक्त किया है।[२८६] एक अर्थ रूपक, दूसरे प्रतीक रूपक। शब्दों के विशेष अर्थों के कारण कुछ रूपक अर्थ-रूपक कहे जाते हैं। जैसे घर का अर्थ शरीर, आग का ब्रह्मज्ञान, पांच लड़के का पांचों इन्द्रियां। प्रतीक रूपक की परिधि में नाथों तथा सन्तों की उलटबांसियां आती हैं।[२८७]

अर्थ रूपक:

इन रूपकों की परंपरा सिद्धों तथा नाथों से सन्तों को प्राप्त हुई। बुद्धमत के ग्रंथ धम्मपद में एक गाथा है:-

मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च खत्तिये।

रट्ठं सानुचरं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो।[२८८]

२७१- आ०प्र० पृ० १६८ २७२- गोरखबाणी पृ० १५५

२७३- आ०प्र० पृ० ४ २७४- आ०प्र० पृ० ४६८

२७५- गोरखबाणी पृ० १३६ २७६- आ०प्र० पृ० २३

इसका शाब्दिक अर्थ है: माता, पिता दो राजाओं तथा अनुचरों के साथ पूर्ण राष्ट्र की हत्या करके ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है। इसका प्रतीकात्मक अर्थ है: तृष्णा (माता), अहंकार (पिता), शाश्वत और उच्छेद दृष्टि (दो क्षत्रिय राजा) तथा संसार की आसक्तियाँ (अनुचरों के साथ सारा राष्ट्र) को नष्ट कर योगी (ब्राह्मण) दुःख-रहित हो जाता है।

इस प्रकार की उक्तियाँ आदि ग्रंथ में विशेषकर कबीर जी की रचना में मिलती हैं।

उदाहरण: (१) कबीर ऐसा कोई न जनमिआ अपनै घर लावै आगि।
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि॥८०॥[289]

(२) को है लरिका बेचई लरिकी बेचै कोइ।
सांझा करै कबीर सिउ हरि संगि बनजु करेइ॥८१॥[290]

(३) कबीर ऐसा को नहीं मंदरु देइ जराइ।
पांचउ लरिके मारि कै रहै राम लिउ लाइ॥८३॥[291]

(४) कबीर ऐसा को नहीं इहु तनु देवै फूकि।
अंधा लोगु न जानई रहिओ कबीरा कूकि॥८४॥[292]

(पांचउ लरिका= काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार। लरिका बेचई= अहंकार रूपी मन को बेच कर उसके बदले में अहंकार रहित अवस्था को प्राप्त करना। लरिकी बेचै= आशा-तृष्णा को त्यागना। तन देवै फूकि= शारीरिक ममता-मोह का नाश।)

प्रतीक रूपक अथवा उलटबासियाँ

उलटबांसियाँ सिद्धों से लेकर नाथों के पास आईं और नाथ-योगियों से यह परंपरागत रूप में संतों तक पहुंचीं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उलटबासियों की परंपरा का इतिहास खोज कर उसे वैदिक काल तक जोड़ते हुए कहा है: उलटबांसी शब्द

२७७-आ०ग्र० पृ०१०२१
२७८- गोरखबानी पृ० २०८
२७९-आ०ग्र० ३८१
२८०-आ०ग्र० पृ० १३४८
२८१-गोरखबानी पृ० १२८
२८२- आ०ग्र० पृ० १३८४
२८३-गोरखबानी पृ० १२८
२८४- आ०ग्र० पृ० १३६६
२८५-आ०ग्र० पृ० १०४४
२८६-हिन्दी साहित्य-पृ० २३५ पर से नाथपंथ और निर्गुण-संत-काव्य पृ०३५१ पर।
२८७-प्रतीक रूपक अथवा अर्थ-विपर्यय पद को उलटबांसी कहते हैं, प्राकृतिक परिस्थितियों

का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जो रहा हो, और उसका प्रयोग मन चाहे जिस रूप से होता जा रहा हो, इसमें संदेह नहीं कि ऐसे पदों के रचने की परंपरा बहुत पुरातन है, और उनके प्रयोग वैदिक साहित्य तक में किये गए मिलते हैं।[293]

उदाहरण: 'चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति।' (ऋ० ३-४-५८-३)
(इस बैल के चार सींग हैं, तीन चरण हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, और यह तीन प्रकार से बंधा हुआ उच्च शब्द करता है।)[294]

गोरखबाणी में उलटबांसियां पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। कुछ एक उदाहरण के लिये प्रस्तुत हैं:-

(१) आंबलियो थकि मोरियो ऊपरि नाल बिजोरा फलियो।[295]
(२) ऊंट सियाणे वक गुरु नैं मान फेरते आगा बैठो।[296]
(३) एक गाइ नौ बछड़ा, पंच दुहिला आवै।
एक फूल सोलह कलियां मालनि मन में आरिंग न पावै।[297]

और भी बहुत सी उलटबांसियां गोरखबाणी में मिलती हैं।[298]

आदि ग्रंथ में उलटबांसियों का स्वरूप

१-ऐसा अचरज देखिओ कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीरु। रहाउ।
हरी अंगूरी गदहा चरै। नित उठि हासै हीगै मरै।
माता भैसा अमुंहा जाइ। कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ।
कहु कबीर परगटु भई खेड। लेले कउ चूघै नित भेड।[299]
(गउड़ी कबीर नामि रगाउ तिपिखा ५:५)

प्रतीकार्थक:

दधी = ब्रह्म, पानी = माया, गधा = कपटी मन, हरी अंगूरी = ब्रह्म ज्ञान। माता भैंसा = माया, अमुंहा जाइ = मुखरहित वस्तु, अज्ञान, भेड़ = वासना, लेला = मन (अंहकारी मन समझता है मैं वासनाओं का भोग करता हूं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि मूर्ख लोग समझते ही नहीं कि वासनाएं उनका भक्षण करती हैं)

को उलट कर विपरीत निरूपण करना ही इस शैली का उद्देश्य है। डा० राम कुमार वर्मा हिन्दी साहित्य पृ० २३६ से नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य पृ० ३५० पर उद्धृत।

२९८- धम्मपद- गाथा- ३९८ से बौद्ध धर्म का मध्ययुगीन सन्त साहित्य पर प्रभाव पृ०१७२ उद्धृत

२- जोइ खसम है जाइआ। पूति बापु खेलाइआ।
बिनु स्रवणा खीरु पिलाइआ। देखहु लोगा कलि को भाउ।
सुति मुकलाई अपनी माउ।। १।।
पगा बिनु हुरीआ मारता। बदनै बिनु खिर खिर हासता।
निद्रा बिनु नरु पै सोवै। बिनु बासन खीरु बिलोवै।
बिन असथन गऊ लवेरी। पैडे बिनु बाट घनेरी।
बिनु सतिगुर बाट न पाई। कहु कबीर समझाई।[३००]

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
१- जोइ-स्त्री	- माया	९- माउ- माँ	- माया
२- खसम-स्वामी	- देव अथवा मन	१०- बिना पग-बदन	- अज्ञान
३- पूति- पुत्र	- अज्ञान	११- निद्रा बिनु नरु	- ज्योति स्वरूप मन
४- बापु- पिता	- मन	१२- सोवै	- अज्ञानवश सोता है
५- बिनु स्रवणा- बिना स्तनों के	- माया (बांझ)	१३- बिनु बासन	- सत्य रहित (ज्ञान रहित) हृदय।
६- दूध (बिना थन का)	- अज्ञान(माया का)	१४- खीर बिलोवै	- ज्ञान- अमृत बिना बासन के बाहिर गिरना।
७- कलि	- कलियुग	१५- बिन असथन	- वास्तविकता हीन।
८- सुति	- अज्ञान का मन	१६- पैडे बिन बाट	- कुछ हृदय में है, पर भेंट नु हुई(भटकन)
		१७- बाट	- मार्ग।

ऐसी ही उलटबांसियां गुरु अर्जुन देव की रचना में हुई हैं:

रामकली म: ५

गऊ कउ चारे सारदूल। कउडी का लख हूआ मूल।
बकरी कउ हसती प्रतिपाले। अपना प्रभु नदरि निहाले।
दीसत मासु न खाइ बिलाई। महा कसाबि छुरी सटि पाई।
करणहार प्रभु हिरदै वूठा। फाथी मछुली का जाला तूटा।
सूके कासट हरे चलूल। ऊचे थलि फूले कमल अनूप। म:५[३०२]

२८९- आ०ग्र० पृ० १३६६ २९०- आ०ग्र० पृ० १३६६

ऊपर कबीर जी के पद में जिस अवस्था का वर्णन है, उसका एक भाग उपकार परिशिष्ट में दे दिया है। गुरु अर्जुन देव जी के पद में सतिगुरु की कृपा से मार्ग दर्शन होने से मन जो माया के जोशों में लीन था, निर्लिप्त बन गया है:

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
१- गउ-	माया विलीन मन मन जो पहले सर्पिणी थी।	२- सारदूल -	मन- जो पहले माया का था
३- बकरी-	मनुष्य जन्म- हार गया है गया।	४- करी -	माया जो पहले बाघिन थी।
५- स्त्री-	मन- जो पहले शृगाल था	६- मास -	विषय
७- बिलाई-	मायावश मन	८- मा T	अहंकार- अंहकार
९- तुरी -	विषय	१०- फाहसी मछी-	जीवात्मा
११- जाला-	छूटै-अंहकार का पर्दा दूर हो गया।	१२- पूछे आपट -	बिछुरी जीवात्मा।
१ - हरे बहूल-	हृदय कमल से प्रफुल्लित	१४- ऊंचे थाति फूले कमल अनूप	ब्रह्मरंध्र में से अमृत आवन से हृदय में सहस्रदल कमल खिल गया।

म: ५

मन अवतार कैसे तुरत सामारी। जिन का पुरखु पुकारै नारी।
बैल कउ नेत्रा पाइ दुहावै। गउ चरि सिंघ पाछै पावै।
गाडर ले आप घेनु करि पूजी। उदवे कउ पावै बिन पूंजी। 301

२९१- आ०ग्रं० पृ० १३६८
२९२- आ०ग्रं० पृ० १३६८
२९३- कबीर साहित्य का परख पृ० ११६
२९४- वही।
२९५- गोरखबानी पृ० १११
२९६- वही पृ० ११२
२९७- वही पृ० ११३
२९८- वही पृ० ११४,१३०,१५४,११६
२९९- आ०ग्रं० पृ० ३२६
३००- आ०ग्रं० पृ० ११६४
३०१- मन मारणा मै रहि रहिओ निसतत नाहि न मीत। आ०ग्रं०पृ०१४२८
३०२- आ०ग्रं० पृ० ३६८
३०३- आ०ग्रं० पृ० ३६८

इसमें सन्देह नहीं कि गुरु अर्जुन की उलटबांसियों का रूप कबीर की उलटबासियों से परिष्कृत है। इसी प्रकार कबीर ने गोरखनाथ की उलटबांसियों का परिष्करण अवश्य किया, परन्तु शैली बहुत कुछ वही थी। उपर्युक्त पद में भाव बिल्कुल स्पष्ट है कि मायावश मन इन्द्रियों को लगाम को ढीली छोड़ कर विषयासक्त होता है।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
१- कापुरख -	ज्ञान हीन मन	२- नारी -	जीवात्मा
३- बैल -	अज्ञान	४- नेत्रापाह दुहावै-	अज्ञान भ्रमण
५- गउ -	आत्मा	६- सिंघ -	अंहकार- अज्ञान
७- गाडर -	द्वैत भाव	८- कामधेनु -	आध्यात्मिक अनुभूति
६- सउदे -	नाम व्योपार	१०- पूंजी -	शुभ कर्म- अथवा साधना।

(४) शब्द-चित्र-योजना

इस शीर्षक के अन्तर्गत हमने ऐसे शब्द चित्रों को रखा है, जो आदि ग्रंथ के रचियताओं ने या तो तत्कालीन लोक जीवन से ग्रहण किये हैं, अथवा जिन्हें उन्होंने निजी अनुभूति के आधार पर अपनाया है। आदि ग्रंथ में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो साधारण जीवन से संबंधित हैं, परन्तु उनके प्रयोग से आत्मा-परमात्मा के संबंधों एवं कतिपय साधनापरक स्थितियों का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

सम्राट के रूपक

१- सच्चा पातशाह	२- सच्चा साहिब	३- साचा तखत
४- साचा थान (स्थान)	५- साचा दरबार	६- साची दरगाह
७- अदली (पातशाह)	८- फरमान (पातशाही)	६- हुकम(पातशाही)
१०- महल (पातशाह्का)	११- [illegible] खसम (स्वामी)	१२- दाता
१३- बखसंद (दयावान)	१४- दइआल- किरपाल	१५- नदरि-करम(नज़र-ए-करम)
१६- सलाम (अभिनंदन)	१७- मिहरबान (कृपालु)	

व्योपार के रूपक

१-बणजारा	२- परदेसी	३- रास-रसायाण(नाम)
४- रत्न-हीरा (नाम)	५- पदार्थ (नाम)	६- रत्न जवेहर-लाल(नाम)
७- रतन जवेहर-माणिक (नाम)	८- रतन पदारथ(नाम)	६- लेखाकार
		१०- पारख सराफ

सन्त वाणी में एक ऐसी ध्वनि है, जिस ने इस जीव को भगवान् के इस लीलामय जगत् में विधाता की विधि के विधान के अधीन कर्म करता हुआ घोषित किया है:- मनुष्य करता कुछ है और परिणाम कुछ और निकलता है:-

नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई।
चितवत रहिओ ठगउर, नानक फासी गल परी। म: ६ [304]

जीव माया के भ्रमवश कर्म करता है। तदुजनित अज्ञान के कारण फल की कामना करता है। माया से ठगा जाता है। और बंधन में पड़ता है। इसी बंधन से जीवन-मुक्त होना सन्तों का ध्येय है। जीवात्मा को मनुष्य योनि बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुई है अत: जीव को हरि-नाम का सुमरिन गुरु की शरण में साधु-संगति में बैठ कर करना चाहिए, जिस से माया का भ्रम टूट जाये, और जीवात्मा की अपने पास रहने वाले परमात्मा से भेंट हो जाय:

वडभागी संगति मिलै गुर सतिगुर पूरा बोलु।
सभि धिआवहु नर नाराइणो, जितु चूका जम कगदु कगोलु। म:४ [305]

प्रभु नाम सुमरिन से मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है तथा अभय-पद की प्राप्ति होती है। नहीं तो माया के भ्रम से उत्पन्न हुए अज्ञान के वश किये कर्मों का लेखा नहीं छूटे गा।

लेखा छोडि अलेखै छूटह हम निरगुण लेहु उबारी। म: ५ [306]

इस विचार को लेकर परमात्मा को त्रिभुवण धनी, और सच्चा पातशाह माना है। संसार के राजाओं को झूठा माना है, क्योंकि उनका राज्यकाल उनके जीवन में ही अथवा जीवन के पश्चात् समाप्त हो जाता है परन्तु भगवान् का राज्य शाश्वत है। वह न्यायकारी है।

म:४ जितने साह पातिसाह उमराव सिकदार चउधरी सभि मिथिआ झूठु, भाउ दूजा जाणु। हरि अबिनासी सदा थिरु निहचलु तिसु मेरे मन भजु परवाणु। [307]

इस भावना के अन्तर्गत उस सर्वशक्तिमान् शासक के शाश्वत राज्य के संबंध में कुछ रूपकों का प्रयोग हुआ है, जिन के प्रतीक इस प्रकार हैं:-

---

३०४- आ०ग्रं० पृ० १४२८ | ३०५- आ०ग्रं० पृ० १३१७
३०६- आ०ग्रं० पृ० ७१३ | ३०७- आ०ग्रं० पृ० ८६१

१- सच्चा पातसाह:

१- नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु। म: १ [३०८]

२- नानक सचे पातिसाहि डुबदा लइआ कढाइ। म: ५ [३०९]

३- तू सुलतानु कहा हउ मीआ तेरी कवन वडाई । म: १ [३१०]

२- सच्चा साहिब :

१- साचा साहिबु एकु तू होर जीअ केते लोअ। म: १ [३११]

२- साचे साहिबा किआ नाही घरि तेरै। म: ३ [३१२]

३- साहिब सबदु न उचरै माइआ मोह पसारी। म: ४ [३१३]

४- साचे साहिब सिउ मनु मानिआ। म: ५ [३१४]

५-

३- साचा तख़त :

१- साचा तख्तु सची पातिसाही। सचु खजीना साचा साही। म: ५ [३१५]

२- एको तख्तु एको पातिसाहु। म: १ [३१६]

३- साची नगरी तख्तु सचावा। म: १ १०२३ [३१६(क)]

४- साचा थान(स्थान) :

१- साचा थानकीउ दइआला। म: १ [३१७]

२- साचा थानु सदा प्रभ तेरा। म: ५ [३१८]

५- साचा दरबार

१- साचा घरु साचा दरबारा। म: ३ [३१९]

२- खसमै के दरबारि ढाढी वसिआ। म: १ [३२०]

३- वारु विरधि न जाणीऐ, निहचल तिसु दरवारु। म: ५ [३२०(ख)]

६- साची दरगह (दरगाह):

१- साची दरगह पाईऐ मानु। म: ५ [३२१]

२- साची दरगह साचु निवासा। म: १ [३२२]

३- साची दरगह पावै मानु। म: ३ [३२३]

३०८- आ०ग्रं० पृ० १७ | ३०९- आ०ग्रं० पृ० ४३

३१०- आ०ग्रं० पृ० ६७५ | ३११- आ०ग्रं० पृ० १५

७- अदली (न्यायकारी):

१- अदलु करे गुर गिआन समाना। म: १ [३२४]

२- तखति बहै अदली प्रभु आपे भरमु भेद भउ जाई हे।म: १ [३२५]

३- अदली होइ बैठा प्रभु आपि। म: ५ [३२६]

८- फुरमान (पातशाह का) :

१- फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार। कबीर [३२७]

२- अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु। म: १ [३२८]

३- मैनो नो फुरमानु होआ बखसहु किरपा धारि। म:३ [३२९]

९- हुकम (पातशाह का):

(१) हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ। म: १ [३३०]

(२) हुकमे आडाणे आकास। म: १ [३३१]

(३) हुकमु साजि, हुकमै विचि रखै, हुकमै अंदरि वेखै। म:२ [३३२]

(४) पाताल पुरीआ लोअ आकारा। तिसु विचि वरतै हुकमु करारा। हुकमे साजे हुकमे ढाहे, हुकमे मेलि मिलाइदा। म: ३ [३३३]

(५) हुकमु होवे हुकमु अराधे हुकमे सचे समाए। म: ४ [३३४]

(६) हुकमु पछाणै सु हरिगुण वखाणै। म: १ [३३५]

(७) हुकमे बाधा कार कमाइ। म: ५ [३३६]

(८) हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई। कबीर [३३७]

१०- महल (परिषद) :

(१) महला जाइ पावहु खसमै भावहु रंगि सिउ रलीआ माणै। म:१ [३३८]

(२) महलै अंदरि महलु को पाए। म:३ [३३९]

(३) महल न पावै कहतौ पहुता। म: ५ [३४०]

३१२- आ०ग्रं० पृ० ६९७

३१३- आ०ग्रं० पृ० १२४३

३१४- आ०ग्रं० पृ० ६३०

३१५- आ०ग्रं० पृ० १०७३

३१६- आ०ग्रं० पृ० ११८८

३१६(क) आ०ग्रं० पृ० १०२३

३१७- आ०ग्रं० पृ० १०३६

३१८- आ०ग्रं० पृ० १०७४

३१९- आ०ग्रं० पृ० १०६८

३२०- आ०ग्रं० पृ० १४८

३२०(क)- आ०ग्रं० पृ० ४७

३२१- आ०ग्रं० पृ० १२७०

११- खसम (मालिक-स्वामी) :

१- हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी। म:१ [३४१]

२- खसमु पछानि तरस करि जीअ महि, मारि मणी करि फीकी। [३४२]

३- खसमु पछाणहि आपणा तनु मनु आगै देह। म: ३ [३४३]

४- खसमु बिसारि आन कंमि लागहि। म: ५ [३४४]

१२- दाता (दानी):

१- दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ। म:१ [३४५]

२- नानक एको बाहरा दूजा दाता नाहि। म: २ [३४६]

३- दाते दाति रखी हथि अपणै जिसु भावै तिसु देई। म:३ [३४७]

४- दाता करता आपि, आपि भोगणहारिआ। म:४ [३४८]

५- दाता जुगता देनहारु तिसु बिनु अवरु न जाइ। म: ५ [३४९]

६- दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि। म: १ [३५०]

१३- बखसंद (क्षमावान्) :

(१) तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ। म: १ [३५१]

(२) हम अपराधी सद भूलते, तुम्ह बखसनहारे। म: ५ [३५२]

१४- दइआल-किरपाल (दयालु):

१- तूं दइआलु किरपालु सदा प्रभु आपे मेलि मिलाइदा। म:१ [३५३]

२- तूं दइआलु किरपालु प्रभु सोई। म: ४ [३५४]

३- तूं दइआलु कृपालु कृपानिधि मनसा पूरणहारा। म: ५ [३५५]

४- तूं दइआलु सदा सुखदाता। म: ३ [३५६]

५- तूं दइआलु रतनु लालु नामा साचि समाइला। नामदेव। [३५७]

३२२- आ०ग्र० पृ० १०२३ — ३२३- आ०ग्र० पृ० ११७३

३२४- आ०ग्र० पृ० १०४० — ३२५- आ०ग्र० पृ० १०२२

३२६- आ०ग्र० पृ० ९६६ — ३२७- आ०ग्र० पृ० ३३८

३२८- आ०ग्र० पृ० ५ — ३२९- आ०ग्र० पृ० १२८५

३३०- आ०ग्र० पृ० १ — ३३१- आ०ग्र० पृ० १०३७

३३२- आ०ग्र० पृ० १२४३ — ३३३- आ०ग्र० पृ० १०६०

३३४- आ०ग्र० पृ० १४२३ — ३३५- आ०ग्र० पृ० १०९

१५- नदरि-करम (नज़र-ए-करम)-कृपा दृष्टि :

(१) जिन कउ नदरि करमु तिन कार। नानक नदरी नदरि निहाल। म:१[358]

(२) जिन कउ नदरि करमु होवै, हिरदै तिना समाणा। म: ३[359]

(३) नदरि करे ता सति गुरु मेले, अनदिनु बिबेक बुधि बिचरै। म: ४[360]

(४) नदरि करे जिसु आपणी नाउ। तिस पराापति होइ। म: ५[361]

१६- सलाम (अभिनंदन):

सलामु जबाब दोवै करे। म:१[362]

१७- मिहरवान (दइआल)

१- मिहरवान मधुसूदन माधौ ऐसी सकति तुम्हारी। म: १[363]

२- मिहरवानु साहिब मिहरवानु। साहिब मेरा मिहरवानु।। म: ५[364]

३- मिहरवान किरपाल दइआला सगले तृपति अघाए जीउ। म: ५[365]

४- मिहरवान बखसिंद आपि जपि सचे नरणा। म: ५[366]

५- मिहरवान मउला तूही एक। म: ५[367]

त्रिभुवन में जो भगवान् का एक छत्र राज्य है, उस राज्य का जो शब्द चित्र आदि ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया, उसकी एक फांकी ऊपर दिखाने का यत्न किया गया है। क्योंकि गुरु ग्रंथ के रचयिताओं का काल मुस्लिम राज्य काल था, अतः उनकी भाषा शैली फारसी की शब्दावली से प्रभावित है।

३३६- आ०ग्रं० पृ० ३६०

३३७- आ०ग्रं० पृ० १३५०

३३८- आ०ग्रं० पृ० ५७६

३३९- आ०ग्रं० पृ० १०५४

३४०- आ०ग्रं० पृ० ७३८

३४१- आ०ग्रं० पृ० ४७१

३४२- आ०ग्रं० पृ० ४५०

३४३- आ०ग्रं० पृ० ३८

३४४- आ०ग्रं० पृ० १६५

३४५- आ०ग्रं० पृ १६३

३४६- आ० ग्रं० पृ० १२३६

३४७- आ०ग्रं० पृ० ६०४

३४८- आ०ग्रं० पृ० ६४२

३४९- आ०ग्रं० पृ० २६६

३५०- आ०ग्रं०पृ० ८३

३५१- आ०ग्रं० पृ० ४६७

३५२- आ०ग्रं० पृ० ८०६

३५३- आ०ग्रं० पृ० १०३४

३५४- आ०ग्रं० पृ० १२६

३५५- आ०ग्रं० पृ० ७४७

३५६- आ०ग्रं० पृ० १२२

३५७- आ०ग्रं० पृ० १३५१

आध्यात्मिक साधनापरक कुछ अन्य रूपक हैं, जिन्हें उपर्युक्त रूपकों की भान्ति एक ही श्रेणी में बांधा जा सकता है। सन्तों ने इस जीवात्मा को परमात्मा के देश से इस लोक में प्रवास-प्राप्त बताया है। इस प्रवास में यह आत्मा एक सच्चे तथा शुद्ध आचरण वाले व्यापारी की भान्ति ईश्वर के नाम की पूंजी (लाहा-वखर) संजोने आया है। इस आत्मा ने नाम की रास को प्राप्त कर इस अमूल्य निधि (रत्न-पदार्थ-हीरा-लाल) का व्यापार (वेसाह) करके भगवान् के कोश(खजाने) में इसे डालना है। वह भगवान् एक लेखाकार (गणिता) तथा एक सराफ (खोटे खरे को परखने वाला) है, जो हीरे-पदार्थ (नाम) की परख करता है, तब जा कर यह जीव उस की दरगाह में परवाण चढ़ता है।

१- वणजारा:

१- मैं बनजारनि राम की। तेरा नामु वखरु वापारु। म:१ [368]

२- तिहटड़े बाजार, सउदा करणि वणजारिआ। म: ५ [369]

सचु वखरु जिनी लदिआ, से सचड़े पासार। म: ५

(त्रिगुणात्मक माया जाल वाले संसार में नाम का व्यापार)

२- परदेसी:

१- करहले मन परदेसीआ किउ मिलीऐ हरि माइ। म:४ [370]

२- मन परदेसी जे थीऐ सभु देस पराइआ। म: १ [371]

३- मन परदेसी आइआ मिलिओ साध कै संगि। म: ५ [372]

४- रूप हीन बुधि बल हीनी मोहि परदेसनि दूर ते आई। म: ५ [373]

३५८- आ०ग्र० पृ० ८
३५९- आ०ग्र० पृ० ६२०
३६०- आ०ग्र० पृ० ६६०
३६१- आ०ग्र० पृ० ६०६
३६२- आ०ग्र० पृ० ४७४
३६३- आ०ग्र० पृ० ११६०
३६४- आ०ग्र० पृ० ७२४
३६५- आ०ग्र० पृ० १०३
३६६- आ०ग्र० पृ० ३२३
३६७- आ०ग्र० पृ० ८६७
३६८- आ०ग्र० पृ० ११५७
३६९- आ०ग्र० पृ० १४२५
३७०- आ०ग्र० पृ० २३४
३७१- आ०ग्र० पृ० ७६७
३७२- आ०ग्र० पृ० ४३१
३७३- आ०ग्र० पृ० २०४

३- नाम-रास (रसायण):

(१) नामु रसाइणु भाइ है, परहरि दुखु भारी। म: १ [३७४]

(२) नामरसाइणु इसु मनु माहि। म: ३ [३७५]

(३) नाम रसाइणि इहु मनु राता, अंमृतु पी तृपताई। म: ५ [३७६]

(४) नाम रासि साधसंगि खाटी। म: ५ [३७७]

(५) नाम रासि साचकी करि अब फिर आउ न जम कै घाटा। म: ५ [३७८]

४- नाम रत्न (हीरा):

(१) नामु रतनु हीरा निरमोलु। म: १ [३७९]

(२) नाम रतनु घरि परगटु होआ नानक सहजि समाइ। म:३ [३८०]

(३) हीरा लाल अमोलकु है भारी बिनु गाहक मीका काखा।
रतन गाहकु गुरु साधू देखिओ तब रतनु बिकानो लाखा। म:४ [३८१]

(४) नामु रतन हरि नामु अपारा। म: ४ [३८२]

(५) नामु रतनु तेरा है पिआरे। म: ५ [३८३]

(६) कबीरा एक अचमउ देखिओ हीरा हाट बिकाइ।
बनजन हारे बाहरा कउडी बदलै जाइ। [३८४]

५- नाम पदारथ :

(१) नाम पदारथु मनहि बसाईऐ। कबीर [३८५]

(२) नामु पदारथु पाइआ, लागु सदा मनि होइ। म: १ [३८६]

(३) नामु पदारथु नउ निधि पाए गुण गोटि समावणिआ। म: ३ [३८७]

(४) नामु पदारथु नउ निधि सिधि। म: ५ [३८८]

(५) नामु पदारथु आइआ, चिंता गई बिलाइ। म: ४ [३८९]

३७४- आ०ग्र० पृ० १३०६
३७५- आ०ग्र० पृ० १०४६
३७६- आ०ग्र० पृ० ६१५
३७७- आ०ग्र० पृ० १९४
३७८- आ०ग्र० पृ० १२९६
३७९- आ०ग्र० पृ० ६०५
३८०- आ०ग्र० पृ० ५९३
३८१- आ०ग्र० पृ० ६९६
३८२- आ०ग्र० पृ० ६९९
३८३- आ०ग्र० पृ० १०८५
३८४- आ०ग्र० पृ० १३७२
३८५- आ०ग्र० पृ० ३२६

६-रतन-जवेहर-लाल, रतन जवेहर माणिक:

(१) रतन जवेहर लाल अपारा। म: १ [३९०]

(२) रतन जवेहर लाल हरि कीआ तिना कउ आव। म: १ [३९१]

(३) रतन जवेहर माणिका, अंम्रित हरि का नाउ। म: १ [३९२]

(४) माणकु मन महि। म: १ [३९३]

(५) माणकु मोती नामु प्रभ उन लागै नाही संनि। म: ५ [३९४]

७-रतन-पदारथ:

(१) रतन पदारथ घर ही माहो। म: १ [३९५]

(२) रतनु पदारथु घर ते पाइआ। म: [३९६]

(३) रतन पदारथ माणक सरबरि भरपूरे लाल नदरि करे तोटि न होई। म: १ [३९७]

८-भण्डार का लेखा- लेखाकार परमात्मा:

(१) बाकी बाला तलबीऐ, सिरि मारे जंदारु आइ।
लेखा मंगै देवणा, पुछै करि कै बाकी सोइ। म: १ [३९८]

(२) लेखा धरमराइ की बाकी, जपि हरि हरि नामु किरखै। म: ४ [३९९]

(३) लेखै गणत न छूटीऐ। म: ५ [४००]

यह लेखा भी उस की कृपा से ही छूटता है:-
लेखा छोडि अलेखै छूटह, हम निरगुन लेहु उबारी। म: ५ [४०१]

९-रतन-पदार्थ की परख-पारखु सराफ:

परखि खजाने पाए जा नदरि करे तां पाइआ। म: १ [४०२]

इस गुरु-वाक्य से स्पष्ट है कि लेखाकार तथा पारखू भी वह कर्ता है जिसकी कृपा-दृष्टि (नदर-करम) से नाम-पदार्थ की प्राप्ति हुई, और उस गुरु-दातार के महल में से ज्ञान मिला। फिर उसे उस कोश में सम्मिलित कर दिया, जहां से फिर उस का जाना नहीं होता:

(१) खोटा सासु खंगु फिरि बुल न होटिआ।
पारस मिलिआ धातु फिरि वरि न होटिआ।
परखि खजाने पाए ते बहुड़ि न खोटिआ। म: ५ [४०३]

(२) साचा वंनु सुधु करावणा। नदरि सराफ वंनीस अ.....।

परन्ति इसमें पालना तथा कोशि किन्हि नाता नारीता है। नार सोते ६:५ [४०४]

(१) रस-संयोजन, अलंकार विधान, छंद एवं काव्य रूप तथा राग तत्व:

अलंकार विधान, छन्द एवं काव्य-रूप तथा राग तत्व के विषय में पृथक् पृथक् अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इन परंपरागत तत्वों के आदि ग्रंथ में उपलब्ध स्वरूप की परंपरा की खोज करने का प्रयत्न किया गया है। अतः यहां केवल रस-संयोजन का अध्ययन प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

रस-संयोजन:

लिखित रूप में रस का सर्व-प्रथम वर्णन भरत मुनि(दासरी शता ई०) के नाट्य-शास्त्र के छठे तथा सातवें अध्याय में पाया जाता है। भरत तथा अन्य लेखकों के उल्लेखों से उनके पूर्ववर्ती सदाशिव, ब्रह्मा, तण्डु, नन्दिकेश्वर, वासुकि, नारद, भरत वृद्ध, आदि भरत, शौद्धोनि आदि कई आचार्यों का पता चलता है, किन्तु उनके किसी ग्रंथ के अभाव में उनके विचारों का पता नहीं चलता। राजशेखर(९२५ ई०) ने नन्दिकेश्वर को तथा केशव मिश्र (१६वीं शती) ने शौद्धोनि को रस का पुरस्कर्ता माना है। भरत ने ब्रह्मा को महत्त्व दिया है। ब्रह्मा ने ही आठ नाट्यरसों को प्रस्तुत किया। ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद नाट्यशास्त्र की रचना की गई। इस को अलंकार-वादी रीति-वादी, ध्वनिवादी, नाट्यशास्त्र-रचयिता तथा ध्वनि-विरोधी सभी ने महत्त्व दिया है। भामह (पांचवीं-छठी शती) ने रस को अलंकार के ही अन्तर्गत रखा। कालान्तर में दसवीं शती में वक्रोक्तिवाद के प्रतिपादक कुन्तक, ११वीं शती में औचित्य-सिद्धान्त के पुरस्कर्ता क्षेमेन्द्र, काव्य प्रकाश के लेखक मम्मट, १२वीं शती में भाव-प्रकाश के लेखक शारदातनय, काव्यानुशासन के लेखक हेमचन्द्र, १३वीं शती में संगीत रत्नाकर के लेखक शारंगदेव, १४वीं शती में रसार्णवसुधाकर के रचयिता सिंगभूपाल तथा १६वीं शती में रस प्रदीपकार प्रभाकर आदि अनेक लेखकों ने रस-सिद्धान्त का निरूपण और पोषण किया। किन्तु ११वीं शती में भोजराज, १२वीं शती में रामचन्द्र, गुणचन्द्र, १४वीं शती में भानुदत्त, विश्वनाथ कविराज १६वीं शती में रूपगोस्वामी तथा १७ वीं शती में पण्डितराज जगन्नाथ का नाम ही महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है। भोज राज ने रस को सर्वोपरि मानकर शृंगार प्रकाश ग्रंथ में उसका गम्भीर एवं व्यापक विवेचन किया है।[४०५]

३८६- आ०ग्रं० पृ० ६१ | ३८७- आ०ग्रं० पृ० ११८

३८८- आ०ग्रं० पृ० ३८७ | ३८९- आ०ग्रं० पृ० ६५३

हिन्दी में रस-विचार का प्रचलन संस्कृत के भरत के नाट्यशास्त्र, भानुदत्त की 'रसमंजरी' तथा 'रसतरंगिणी' केशव के 'शृंगार प्रकाश' एवं विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के आधार पर हुआ। 'कुलरस प्रकाश' ग्रंथ में अकिशोर कवि(१७८० ई०) ने केवल नौ रसों की प्रतिष्ठा की। ग्वाल कवि ने (१८४७ ई०) रसरंग ग्रंथ में शृंगारादि नौ रसों का वर्णन किया है।[४०६]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं का भाव निरूपण

डा० गोविन्द सिंह त्रिगुणायत लिखते हैं, 'नाथ पंथियों की प्रायः सभी वाणियों में जितनी ही अधिक रूक्षता और नीरसता है, सन्तों की अधिकांश रचनाएं उतनी ही अधिक रस और लोक प्रभावी हैं।[४०७] आदि ग्रंथ के कवियों, विशेषकर गुरुओं की कविताओं में भाव निरूपण अधिक सुचारू रूपेण हुआ है। आदि ग्रंथ के काव्य का मुख्य विषय भक्ति-मार्ग की धर्मसाधना ही है। दार्शनिक विचार, साधना के अन्तर्गत ही प्रस्तुत हुए हैं। दर्शन निरूपण आदि ग्रंथ का मुख्य विषय नहीं है। क्रियात्मक-धर्मसाधना-परक-जीवन से दर्शन स्फुटित हुआ है। अतः जीवन को सदाचार-परक-साधना के अंतर्गत रखकर दर्शन एवं साधना में गहरा संबंध स्थापित किया गया है। इस संबंध को दृढ़ करने के लिये साधना में दाम्पत्य-भाव को स्थान देकर, सन्त कवियों ने अपने काव्य को इतना भावपूर्ण बना दिया है, कि वह काव्य एक साधक को तो आनन्दातिरेक प्रदान करता ही है, उस के साथ साधारण व्यक्ति भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। गुरु ग्रंथ की कविता में भाव है, संगीत है, विचार है, और उस के साथ लोक भाषा की सरल एवं सरस शैली है, जिसने इसे यथार्थ शब्द[में 'गुर की बाणी जाई। तिनि सबदी सचि मिलाई॥'[४०८] के पद पर आसीन किया है।

३९०-आ०ग्र० पृ० १०३६
३९१- आ०ग्र०पृ० १३५
३९२- आ०ग्र० पृ० ४८
३९३- आ०ग्र० पृ० ६६२
३९४- आ०ग्र० पृ० १३४
३९५- आ०ग्र० पृ० १५२
३९६- आ०ग्र० पृ० १२६
३९७- आ०ग्र० पृ० ६६०
३९८- आ०ग्र० पृ० ७५१
३९९- आ०ग्र० पृ० ७८
४००- आ०ग्र० पृ० २५२
४०१- आ०ग्र० पृ० ७१३
४०२- आ०ग्र० पृ० २४३
४०३- आ०ग्र० पृ० ५२०
४०४- आ०ग्र० पृ० १०७४
४०५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६३२

सन्तों का सब से प्रिय प्रतीक दाम्पत्य भाव अथवा पति-पत्नी का प्रेम ही माना गया है।[४०६] इस भाव का प्रतीक हमारे यहां बहुत पहले से चला आता आया है। उपनिषदों तक में इस के दृष्टांत को महत्व दिया गया है, जैसा बृहदारण्यक उपनिषद् के एक उल्लेख से पता चलता है। उस उपनिषद में वर्णन किया गया है, 'व्यवहार में जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्या को आलिंगन करने वाले पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है और न भीतर का, इसी प्रकार यह पुरुष प्रिज्ञात्मा से आलिंगित होने पर न कुछ बाहर का विषय जानता है और न भीतर का। यह इसका आप्तकाम, आत्मकाम, अकाम और शोकशून्य रूप है।'[४१०] दक्षिण भारत की प्रसिद्ध भक्त कवियित्री गोदा की रचनाओं द्वारा प्रकट होता है कि उन्होंने अपने इष्टदेव को पति वरण सा कर लिया था। उसे वे सदा पतिवत् मान कर उसकी प्रेमोपासना करती रहीं। राजस्थान की प्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीरां बाई की भक्ति भी उसी कोटि की था।[४११] आदि ग्रंथ के कवियों ने भी दाम्पत्य-भाव को अपनी अनुभूति का मुख्य भाव माना है, और उनके काव्य का भाव निरूपण इसी भाव के गिर्द हुआ है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं: दाम्पत्य भाव के प्रति प्रदर्शित सन्तों का दृष्टिकोण बहुत कुछ सूफियों के समान था।[४१२] परन्तु डा० मोहन सिंह दीवाना लिखते हैं: सन्तों का दाम्पत्य भाव सूफी प्रेम से भिन्न कोटि का है।[४१३] हमारा विचार है कि दाम्पत्य भाव के दो विचार भगवान् को पति रूप और उसे ही महबूबा के रूप में देखना भिन्न भिन्न कालों की देन है। भगवान् को पति रूप में देखना यह विचार तो भारतीय साधना में परंपरागत है। ऋग्वेद में सृष्टा की कल्पना हो चुकी थी तथा उसे पुरुष हिरण्यगर्भ विश्वकर्मा एवम् प्रजापति की संज्ञा दी जा चुकी थी।[४१५] भगवान् को स्त्री रूप में प्रतिष्ठित करके प्रेम करने की भावना सूफी साधना में विशेष तौर पर प्रसिद्ध हुई, परन्तु इस भावना के अंकुर भी भारतीय धर्म साधना की पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। अथर्ववेद में हम उन सभी भावनाओं के अंकुर पाते हैं जो पीछे जा कर शैवमत, शाक्तमत, और तंत्रमत के रूपों में विकसित हुई और जिस में छन कर जिन्होंने सन्त मत के सिद्धान्तों को जन्म दिया।[४१६] अथर्ववेद में स्त्री देवताओं को प्रधानता मिली।[४१७] दाम्पत्य भावना के विचार को आदि ग्रंथ में स्पष्ट रूप में वर्णन करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस संसार में सब स्त्रियां ही हैं, पति एक ही है:-

---

४०६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४३२

४०७- नाथ पंथ और निर्गुण सन्त काव्य-२६२

४०८- आ०ग्रं० पृ० ६२८

४०९- सन्त काव्य-पृ० ५८

'ठाकुर एकु सबाई नारि। म: १ दखणी ओंकार।[418]

गुरु नानक देव के पश्चात् गुरु अमरदास ने भी एक अकालपुरुष को ही पुरुष माना है, अन्य को पुरुष है ही नहीं। अर्थात् पुरुष नाम उसे ही शोभा देता है जो सब का ठाकुर है:-

एको पुरखु, एक प्रभ आता, दूजा अवरु न कोई। म:३[419]

आदि ग्रंथ में रस निष्पत्ति

आदि ग्रंथ में रस-संयोजन मुख्यत: इसी दाम्पत्य भावना के अन्तर्गत हुआ है। रस आस्वादरूप में एक होकर भी उपाधि भेद से मुख्यत: आठ प्रकार का माना गया है। शृंगार, हास्य, रौद्र, वीर, करुण, वीभत्स, भयानक तथा अद्भुत। बाद में शान्त भी जोड़ दिया गया।[420] अब हम इन रसों के संयोग का आदि ग्रंथ से अध्ययन प्रस्तुत करते हैं:-

१- शृंगार रस : शृंगार रस को आचार्यों द्वारा 'रस-राज' की उपाधि प्रदान की गयी है। शृंगार का मूल भाव रति अथवा काम समस्त विश्व में व्याप्त है। आदि ग्रंथ के कवियों ने दाम्पत्य-भावना को उस भगवान् के साथ स्थापित संबंधों में से मुख्य संबंध माना है। इस विचार का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं।

शृंगार रस की सरस धारा हिन्दी साहित्य में प्रारंभ से ही प्रवाहित रही है। रासो ग्रंथों में शृंगार चित्र उपलब्ध होते हैं। पर शृंगार का उन्मुक्त प्रवाह, विद्यापति की पदावली में ही सबसे पहले प्रवाहित हुआ है। संस्कृत के गीत गोविन्द का सा गहरा माधुर्य यदि हिन्दी साहित्य में मिलता है, तो वह विद्यापति की रचना में ही है।[421]

४१०- अध्याय ४, ब्राह्मण ३(२१) से सन्त काव्य भूमिका पृ० ५१ पर उद्धृत

४११- सन्त काव्य पृ० ५८-५६

४१२- वही पृ० ५६

४१३- नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य पृ० २६५

४१४- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ० ७८

४१६- वही पृ० ७८ पर संत कवि दरिया पृ० ५१ से उद्धृत

४१७- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना- पृ० ७८

४१८- आ०ग्रं० पृ० ६३३

४१९- आ०ग्रं० पृ० १२५६

४२०- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६२६

४२१- वही पृ० ७ २

भक्ति काव्य का शृंगार, (विशेषकर संत-भक्ति-काव्य) लोकोन्मुख न होकर अध्यात्मिक है। संत कवियों में सुंदर दास जैसे कवियों ने संत काव्य में भी रीति-काल जैसे शृंगार के दर्शन होते हैं।[422] गीत गोविंद के रचयिता की भी इस संस्कृत ग्रंथ में शृंगारी शैली काव्य-बहुल है।[423] लौकिक धरातल पर चलता हुआ जायसी का शृंगार पद्मावत में अलौकिक होता हुआ भी एक विशेष प्रकार का है, जो भक्ति काव्य के अन्य शृंगार वर्णनों से भिन्न है।[424] परन्तु आदि ग्रंथ का शृंगार सांसारिक धरातल पर न चल कर शुद्ध सात्त्विक होता हुआ पारलौकिक धरातल पर चलता है। शृंगार के दोनों प्रकार संयोग शृंगार तथा विप्रलंभ शृंगार के सुन्दर उदाहरण आदि ग्रंथ में उपलब्ध हैं। सन्तों की साधना का परम लक्ष्य उस परम पुरुष से हृदय-भेंट है। जब तक यह भेंट नहीं होती तबतक यह जीव-रूप-स्त्री उसके वियोग में दुखी रहती है। इसी लिये हम विप्रलंभ शृंगार को पहले लेते हैं।

<u>विप्रलंभ शृंगार</u>: यह जीव रूप-स्त्री उस परम-पुरुष से बिछुड़ कर संसार के बीहड़ बन में भटक रही है। इस भांति के शृंगार का रूप आदि ग्रंथ में कितना संयमित एवं सात्त्विक है, इसके उदाहरण देखिए:-

१- कबहु मुन प्रानपति मिलहु मेरी माई। रहाउ।
हउ हीन बुधि बल होनी मोहि परदेसनि दूरते आई।
नाहिन दरबु न जोबन माती मोहि अनाथ की करहु समाई।
खोजत खोजत भई बैरागनि। प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई। म:५ [425]

गुरु नानक की कविता में वर्णन शैली संयमित होते हुए भी काव्य-कौशल के सब गुणों से ओत प्रोत है:-[426]

सावण २- सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।।
मै मनि तनि सहु भावै, पिर परदेसि सिधाए।।

४२२- कुंजर है गति कटि केहरि को मद जमै, बेनी काली नागिनीऊ फन को धरतु है।
कुच है पहार कामबोर रहे जहां, सांपिके कटाक्षबान प्रान को हरतु है।
सुन्दर दास एक और उर तामै, रावला बदन खाऊं खाऊं सो करतु है।
सुन्दर दास ग्रंथावली पृ० ४३० से मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ० ७५ पर उद्धृत।

४२३- हिन्दी साहित्य- डा० द्विवेदी पृ० ११८ ४२४- हिन्दी साहित्य कोश- पृ०७७२

४२५- आ०ग्र० पृ० २०४

पिरुघरि नही आवै मरीऐ हावै, दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए।
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी, कापड़ु तनि न सुखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए।

भादउ: भादउ भरमि भुली भरि जोबनि पछुताणी।
जल थल नीरि भरे बरस रुते रंगु माणी।
बरसै निसि काली किउ सुखु बाला दादर मोर लवंते।
प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा बोले भुइअंगम फिरहि डसंते।
मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि किउ सुखु पाईऐ।
नानक पूछि चलउ गुर अपुने जह प्रभु तह ही जाईऐ। तुखारी छन्त म:१ [४२७]

गुरु नानक की कविता के विप्रलंभ शृंगार के उदाहरण किसी भी अन्य भाषा के सर्वोत्तम उदाहरणों से बढ़ चढ़ कर दिखाई देते हैं:-

भोरी रुण झुण लाइआ भैणे सावण आइआ।
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लोभाइआ।
तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहु कुरबाणो ।
जा तू ता मैं माणु कीआ है, तुधु बिनु केहा मेरा माणो।
चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे, सणु बाही सणु बाहा।
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा।
ना मनीआरु न चूड़ीआ न से वंगुड़ीआहा।
जो सह कंठि न लगीआ, जलनु सि बाहड़ीआहा।
सभि सहीआ सहु रावणि गईआ, हउ दाधी कै दरि जावा।
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एकि न भावा।
माठि गुंदाई पटीआ, भरीऐ मांग संधूरे।
अगै गई न मंनीआ, मरउ विसूरि विसूरे।
मै रोवंदी सभु जगु रुना, रुंनड़े वणहु पखेरू।
इकु न रुनां मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी।

४२८- प्रेम की दो दशाएं संयोग और वियोग। संयोग काल में प्रिय के सान्निध्य में सुख और आनन्द प्रदान करने वाली वस्तुएं वियोग में दुःख और त्रास प्रतीत होती हैं। वर्षा ऋतु में बादलों का उमड़-घुमड़, दामिनी की दमक और भी वेदना प्रद होती है। (मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना-६०)

सुपनै आइआ भी गइआ, मै जलु भरिआ रोइ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ।
आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ।
तै साहिब की बात जि आखै, कहु नानक किआ दीजै।
सीसु वढे करि बैसणु दीजै, विणु सिर सेव करीजै।
किउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै, जा सहु भइआ विडाणा। वडहंस म:१ [428]

[illegible] के आगमन पर अश्रुओं ने हर्ष एवं उल्लास से भरी भोली बोली बोलना आरम्भ कर दी है। हे रसिक प्रिय कान्त! तेरे कटु-कटाक्षों के कोप ने मुझ अबला-स्त्री का हृदय पीड़ित कर भंग किया है। तेरे दर्शनों पर मैं बलि बलि जाती हूं और तुम्हारे नाम पर कुर्बान जाती हूं। तू मेरा है- इस कारण मैं ने गर्व किया है नहीं तो तेरे बिना मेरा मान ही क्या? यदि कोई स्त्री ने (बाह्य आडंबर के) कितने भी शृंगार किये हों, परन्तु उस का कान्त उसे छोड़ कहीं और अनुरक्त हो, तो उसे अपनी बांह का चूड़ा पलंग की बाही के साथ फोड़ देना चाहिए। उस चूड़ा वाले तथा चूड़ियों का क्या लाभ, यदि वे बाहों को सुशोभित कर प्रिय के गले का हार न बन सकीं? ऐसी बाहों का तो कट जाना ही ठीक है। सब सखियां अपने प्रियतम को मिलने गई हैं, मैं विरहाग्नि में जलती हुई किधर जाऊं? आडम्बर तो मैं ने बहुत किया है परन्तु उस स्वामी को मैं तनिक भी नहीं भाती। मैं ने अपने केशों को संवारा है और मांग में सिंदूर भरा है परन्तु मेरा कान्त मुझे चाहता ही नहीं अतः मैं झूर झूर मर रही हूं। मेरे रोने को सुन कर समस्त जगत् रोने लगा, यहां तक कि बन के पक्षी भी रो पड़े परन्तु मेरे विरह की आंख में आंसू तक न आया, जिसने मुझे प्रिय से पृथक् किया हुआ है। अब तो स्वप्न-मिलन की ही आकांक्षा है यदि भाग्यवश निद्रा में भेंट हो जावे। यदि कोई मुझे मेरे प्रिय की बात सुनाए तो मैं उसे क्या दूं? सिर काट कर आसन के लिये दूं और बिना सिर के सेवा करूं। यदि प्रियतम बेगाना हो गया तो फिर क्या जीना?

४२७- आ०ग्रं० पृ० ११०८

४२८- आ०ग्रं० पृ० ५५७-५८

संयोग श्रृंगार

१- मैं बउरी मेरा रामु भतारु। रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु।
अब कीआ जानि ऐसी बनि आई। मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई।
उसतुति निंदा करै नरु कोई। नामे स्री रंगु भेटल सोई। भैरउ नामदेव। ४२९

२- तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ पाचउ तत बराती।
राम राइ सिउ भावरि लैहउ, आतम तिह रंगि राती।
गाउ गाउ री दुलहनी मंगलचारा। मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा।
नाभि कमल महि बेदी रचि ले ब्रहम गिआन उचारा।
राम राइ सो दूलहु पाइओ, अस बडभाग हमारा।
सुरि नर मुनि जन कउतक आए, कोटि तेतीस उजाना।
कहि कबीर मोहि बिआहि चले हैं, पुरख एक भगवाना। कबीर। ४३०

३- फलगुनि मनि रहसी प्रेमु सुभाइआ। अनदिनु रहसु भइआ आपु गवाइआ।
हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीगारी। नानक मेलि लई गुरि
अपणै, घरि वरु पाइआ नारी। म:१ ४३१

४- मैं कामणि मेरा कंतु करतारु। जेहा कराए तेहा करी सीगारु।
जां तिसु भावै तां करे भोगु। तनु मनु साचे साहिब जोगु। रहाउ।।
भनति नानकु करे किआ कोइ। जिस नो आपि मिलावै सोइ।। म:३ ४३२

५- यार वे पिरु आपणा भाणा किछु नाही छंदा।
यार वे तै राविआ लालनु मू दसि दसंदा।
लालनु तै पाइआ आपु गवाइआ जै धन भाग मथाणे।
बांह पकड़ि ठाकुरि हउ घिधी गुण अवगुण न पछाणे।
गुणहारु तै पाइआ रंगु लालु बणाइआ तिसु हभो किछु सुहंदा।
जन नानक धंनि सुहागणि साई जिसु संगि भतारु वसंदा।
यार वे नित सुख सुखेदी सा मै पाई। वरु लोड़ीदा आइआ वजी वाधाई।
महा मंगलु रहसु थीआ पिरु दइआलु सद नव रंगीआ।
वडभागि पाइआ गुरि मिलाइआ साध कै सतसंगीआ।
आसा मनसा सगल पूरी प्रिअ अंकि अंकु मिलाई।
बिनवंति नानकु सुख सुखेदी सा मै गुर मिलि पाई। म:५ ४३३

६- नउ निधि आई, वजी वाधाई, वाजे अनहद तूरे।
कहु नानक मैं वरु घरि पाइआ, मेरे लाथे जी सगल विसूरे। म: ५[434]

७- नामक हार तंबोल रसि किछु साजिआ।
सोलह कीए सीगार कि अंजन पाजिआ। फुनहे म: ५[435]

२- <u>हास्य रस</u> : हास्य रस का स्थायी भाव हास और विभाव आचार, व्यवहार, वेश विन्यास, भाषा तथा कर्म आदि की विकृति है, जिसमें विकृत वेषालंकार, धाष्टर्य कौतुक, कलह, असत्प्रलाप, व्यंग्यदर्शन दोषोदाहरण आदि की गणना की गयी है।[436]

गुरु ग्रंथ का काव्य गंभीर-काव्य है, तो भी हास्य रस के ऐसे उदाहरण जिन में भाठा व्यंग्य होता है, आदि ग्रंथ में उपलब्ध हैं। तीक्ष्ण व्यंग्य का गुरु ग्रंथ की रचना शैली में सर्वथा अभाव है। इस ग्रंथ में जिस स्थल पर भी व्यंग्यात्मक पद रचना मिलती है उस में व्यक्ति विशेष को लक्ष्य नहीं किया गया वरन् दूसरे व्यक्ति के साथ व्यंग्य का लक्ष्य स्वयं रचयिता भी हुआ दिखाई पड़ता है। जैसे गुरु नानकदेव जी शैख सज्जन को उस के ठग होने का दोषी नहीं ठहराते। उसने जो ठग्गी का ढोंग रचाया हुआ था, उसका वर्णन करते हुए, अपने को भी साथ ही सम्मिलित कर लेते हैं:-

उजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालड़ी मसु।
धोतिआ जूठि न उतरै, जे सउ धोवा तिसु।।
सजण सेई नालि मैं चलदिआ नालि चलंनि।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दसंन।
बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसंन्हि।
घुटि घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअन्हि।
सिमल रुखु सरीरु मैं मैजन देखि भुलंन्हि।
से फल कंमि न आवन्ही ते गुण मै तनि हंन्हि।।
अंधुले भारु उठाइआ डूगर वाट बहुतु।
अखी लोड़ी ना लहा हउ चड़ि लंघा कितु। सूही म: १[437]

४२९- आ०ग्र० पृ० ११६४
४३०- आ०ग्र० पृ० ४०२
४३१- आ०ग्र० पृ० ११०६
४३२- आ०ग्र० पृ० ११२८
४३३- आ०ग्र० पृ० ७०१,७०४
४३४- आ०ग्र० पृ० ७०९

यहाँ ऊपर के वेषधारी सज्जन के पाखंड का आवरण हास्यपूर्ण भी व्यंग्य से करते हुए, सज्जन (शेख) को ऐसा नहीं कहा, वरन् ऐसे भाव उनके साथ छेड़ गढ़ि धंधा किंतु - तथा 'वे गुण मैं तनि हान्हि' कह कर अपने आप को भी साथ सम्मिलित कर लिया है।

कहीं कहीं हास्य के ऐसे उदाहरण भी उपलब्ध हैं, जहाँ हास्य-रस का स्वतंत्र चित्रण मिलता है, परन्तु वहाँ भी व्यक्ति विशेष को हास्य का लक्ष्य नहीं बनाया, अपितु व्यंग्य का साधारणीकरण प्रस्तुत किया गया है।

१- गज साढे तै तै धोतीआ, तिहरे पाइनि तग।

गली जिन्हा जपमालीआ, लोटे हथि निबग।

ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग। कबीर[438]

यहाँ वेश भूषा तथा आचार व्यवहार के आधार पर हास्य की निष्पत्ति हुई है। 'बानारसि के ठग' तो हास्य पूर्ण लोकोक्ति ही बन गया है। एक ऐसा ही और पद देखिए:-

२- धोती खोलि विछाए हेठि। गरधप वांगू लाहे पेटि। म: १[439]

ब्राह्मण जो श्राद्ध खाने जाता है, धोती खोल कर बिछा लेता है और पेट को नंगा कर के गधे की भांति भरता है।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त आदि ग्रंथ में कबीर जी, नामदेव जी, तथा गुरु अर्जुन की उलटबासियां हास्य रस के सुन्दर उदाहरण हैं। यथा:

बैल कउ नेत्रा पाइ दुहावै। गाऊर कै कामधेनु करि पूजी। म: ५[440]

३- रौद्र रस: काव्यगत रसों में रौद्र रस का महत्वपूर्ण स्थान है, भरत ने नाट्यशास्त्र में शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स, इन चार रसों को ही प्रधान माना है, अथ च इन्हीं से अन्य रसों की उत्पत्ति बताई है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है, तथा इसका वर्ण रक्त और देवता रुद्र है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि यद्यपि रुद्र का रंग श्वेत माना गया है, तथापि रौद्र रस का रंग लाल बताया गया है, क्योंकि क्रोधाविष्ट दशा में मनुष्य की आकृति शोणित के आधिक्य से रक्त वर्ण की हो जाती है:-[441]

४३५- आ०ग्रं० पृ० ११६०

४३६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ८८५

४३७- आ०ग्रं० पृ० ९२६

४३८- आ०ग्रं० पृ० ४७५

४३९- आ०ग्रं० पृ० २०१

४४०- आ०ग्रं० पृ० ११८

४४१- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६३१

आदि ग्रंथ में रौद्र रस के कई उदाहरण तो नहीं मिलते, फिर भी गुरु नानक की रचना में इस रस के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं:-

१- जा सुध मारे तेग वगावहि, सिर मुंडी कटि जावहि।। म:१[442]

२- एती मार पई कुरलाणे, तैं की दरद न आइआ। म:१[443]

३- राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइनि बैठे सुते।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।
जिथै जीआ होसी सार। नकीं वढी लाइतबार। म: १[444]

४- कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिआ। म:१

५- पाप की जंज ले काबलहु धाइआ, जोरी मंगै दानु वे लालो।
काजीआ बामणा की गल थकी, अगदु पड़ै सैतान वे लालो। म:१[445]

६- काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसा, हिंदुसतान समालसी बोला। म:१[446]

७- रतन विगाड़ि विगोए कुतीं, मुइआ सार न काई। म: १[447]

यहां क्रोध के उत्पन्न होने के दो मुख्य कारण हैं, एक तो विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध घृणा, तथा दूसरे स्वदेशीय शासकों की दयनीय दशा को देख कर, जिन्हों ने हिन्दुस्तानजैसी सुन्दर धरती को विदेशियों के पैरों तले रौंदवाया और इतने निर्दोष लोगों को जानों की आक्रमणकारियों से हाथों हत्याकरवाई।

४- करुण रस: भरत के नाट्य शास्त्र (३ शती ई०) में प्रतिपादित आठ रसों में शृंगार और हास्य के अनन्तर तथा रौद्र से पूर्व करुण की गणना की गई है। 'रौद्रात्तु करुणो रसः' कहकर करुण रस की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी गई है।[448] भवभूति ने अपने 'उत्तर राम चरित' में इसका बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। तथा इसका बहुत कुछ श्रेय भी उसको है। उन्हों ने काव्य में करुण- रस की महत्ता और व्याप्ति का मुक्त उद्घोष किया है। 'एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद् भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्' (३-४७)[449] एक ओर जहां करुण- रस को इतनी व्यापक महत्ता प्रदान की जाती है, वहीं दूसरी ओर आचार्यों ने उस की सीमाओं का भी निर्देश शृंगारादि अन्य रसों की तुलना में सूक्ष्म रीति से किया है। अनुभावों और संचारियों की दृष्टि से विप्रलंभ-श्रृंगार, करुण के सब से निकट पड़ता है, इसलिए भरत से लेकर वर्तमान काल तक काव्य के तत्त्वज्ञों को दोनों का मौलिक अन्तर स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान देना पड़ा है। नाट्यशास्त्र में करुणा को निरपेक्ष और विप्रलंभ को सापेक्ष कह कर दोनों का पार्थक्य प्रदर्शित किया गया है।[450]

राम चन्द्र शुक्ल ने करुणा और विप्रलंभ का अंतर बताते हुए लिखा है कि वियोग में प्रिय के न होने से मिलने की व्याकुलता प्रधान होती है, किन्तु शोक(करुणा) में अपने कष्ट की भावना उतना काम नहीं करती, जितना प्रिय के कष्ट की वेदना जा को जलाता है।[451]

आदि ग्रंथ में करुणा-रस के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। परन्तु भक्ति-भावना के इस ग्रंथ में प्रिय के कष्ट तथा अपने कष्ट दोनों का ऐसा वर्णन है, कि वर्ण्य-विषय की अनुभूति प्राप्त होने के पश्चात् कष्ट व्यर्थ लगता है। तथा कष्ट से उत्पन्न हुई करुणा शान्ति में परिणित हो जाती है:

१-दिन थोड़े थके भइआ पुराणा बोला। रहाउ।
सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जाराणि।
हंभी वंजा डुमणी रोवा कीणी बाणि।
को न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ।
लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ। म:१[452]

२- सपना साहुरै वंजणा सभि मुकलावण हार। म:५[453]

३- घनुं सिरंदा सचा पातिसाहु, जिनि जगु धंधै लाइआ।
मुहलति पुनी पाई भरी जानीअड़ा घति चलाइआ। वडहंस म:१[454]

४- बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला।
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला।
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला। रहाउ।
इक आपीनै पतली सह केरे बोला।
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला।
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाएसी।
हंसु चलसी डुमणा अहि तनु ढेरी थीसी। सूही फरीद[455]

५- जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूरु।
से सिर काती मुंनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।
महला अंदरि होदीआ, हुणि बहिणि न मिलन्हि हदूरि। म:१[456]

---- --

४५२- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६७०
४५३- आ०ग्र०पृ० ३६०
४५४- आ०ग्र० पृ० १२८८
४५५- आ०ग्र० पृ० ७९२
४५६- आ०ग्र० पृ० ७२३
४५७- आ०ग्र० पृ० ३६०
४५८- हिन्दी साहित्य कोश पृ० १९५
४५९- वही पृ० १९६

५- वीर रस। शृंगार के साथ स्पर्धा करने वाला वीर रस है। शृंगार, रौद्र, तथा बीभत्स के साथ वीर रस को भरत ने मूल रसों में परिगणित किया है। वीर रस से ही अद्भुत रस की उत्पत्ति बतलायी गई है। वीर रस का वर्ण स्वर्ण अथवा गौर, तथा देवता इन्द्र कहे गए हैं। यह उत्तम प्रकृति वालों से सम्बद्ध है, तथा इसका स्थायी भाव उत्साह है। (अथ वीरो नाम उत्तम प्रकृतिरुत्साहात्मक- नाट्यशास्त्र-६-६६७)[४५७]

आदि ग्रंथ में वीर रस के उत्तम उदाहरण उपलब्ध हैं। गुरु ग्रंथ की वारों में से नौ के आरंभ में लोक-वीर-काव्य की ध्वनियों के आधार पर गाए जाने का संकेत है। डा० चरण सिंह ने इन वीर काव्य की वारों के काव्य के कुछ उदाहरण गुरमत संगीत (भाग ४) में पृ० १-१६ पर दिये हैं। गुरु ग्रंथ की वारों का विषय भी सांसारिक विषय-वासनाओं के विरुद्ध विद्रोह है। आदि ग्रंथ का भक्ति मार्ग भी खड्गधार मार्ग है:-

१- वाट हमारी खरी उडीणी। खनिअहु तिखी बहुतु पिईणी। बाबा फरीद[४५८]

२- गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ।
खेतु जु मांडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ।
सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेत। भगत कबीर[४५९]

३- कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरै मन आनंदु।[४६०]

४- मरने ते किआ डरपना, जब हाथि सिधउरा लीन।[४६१]

५- सूरु कि सनमुख रन ते डरपै, सती कि सांचै भांडे?[४६२]

६- जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारगि पैरु धरीजै सिरु दीजै काणि न कीजै। म:१[४६३]

७- खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा। म:३[४६४]

८- पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पासि। म:५[४६५]

४५०- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१९६ ४५१- वही
४५२- आ०ग्रं० पृ० २३ ४५३- आ०ग्रं० पृ० ५०
४५४- आ०ग्रं० पृ० ५७६ ४५५- आ०ग्रं० पृ० ९६४
४५६- आ०ग्रं० पृ० ४१७ ४५७- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७३२
४५८- आ०ग्रं० पृ० ९६४ ४५९- आ०ग्रं० पृ० ११०४
४६०- आ०ग्रं० पृ० १३६५ ४६१- आ०ग्रं० पृ० १३६८

९- हउ गोसाई दा पहिलवानड़ा। मैं गुर मिलि उच दुमालड़ा।
सभ होई छिंझ इकठीआ दयु बैठा वेखै आपि जीउ।
वात वजनि टमक भेरीआ। मल लथे लैदे फेरीआ।
निहते पंजि जुआन मै गुर थापी दिती कंडि जीउ।
हउ बाहुड़ि छिंझ न नचऊ, नानक अउसरु लधा भालि जीउ। १:५ [४६६]

(मैं गोसाई (परमात्मा) का पहलवान हूं। गुरु ने मुझे विजय की शिल्लत बख्शी है। मल्ल-युद्ध हो रहा है। मेरा देव स्वयं बैठा देख रहा है। बाजे और नगारे बज रहे हैं। मल्ल फेरियां लेते हैं। मैं ने पांच योधाओं (कामादि) को चित कर दिया है, और गुरु ने मेरी पीठ पर थपकी दी है। अब मैं ने इस मल्ल युद्ध को जीत लिया है, अत: मैं अब फिर इस युद्ध में नाच नाचने (सांसारिक भ्रमण) नहीं आऊंगा मैंने यह सुअवसर गुरुकृपा से ढूंढ लिया।)

१०- आपे छिंझ पवाइ मलाखाड़ा रचिआ। लथे भड़थू पाइ गुरमुखि मचिआ।
मनमुख मारे पछाड़ि मूरख कचिआ। आपि भिड़ै मारे आपि कारजु रचिआ। [४६७]
म:१

६- <u>बीभत्स रस:</u> बीभत्स रस काव्य में मान्य नव रसों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी स्थिति दु:खात्मक रसों में मानी जाती है। इस दृष्टि से करुण भयानक,तथा रौद्र ये तीन रस इसके सहयोगी या अनुचर सिद्ध होते हैं। शान्त रस से भी इसकी निकटता मान्य है, क्योंकि बहुधा बीभत्सता का दर्शन वैराग्य प्रेरणा देता है, और अन्तत: शान्त रस के स्थायी भाव शम का पोषण करता है।

भरत के नाट्यशास्त्र में बीभत्स रस को चार मुख्य उत्पत्ति हेतुक रसों में माना गया है। उन्होंने 'बीभत्साच्च भयानकः' (६:३६) कहकर, भयानक रस का उत्पादक कहा है। बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है, जो भयानक रस के स्थायी भय का मूल प्रेरक रहता है। भय यद्यपि आतंक आदि अनेक कारणों से भी उत्पन्न हो सकता है, पर सूक्ष्म दृष्टि से भयजनित पलायन के मूल में ऐसी किसी न किसी स्थिति की कल्पना अवश्यनिहित प्रतीत होती है, जो भीतर से घृणा या जुगुप्सा का भाव जगाती है।[४६८]

४६२- आ०ग्रं० पृ० ३३८
४६३- आ०ग्रं० पृ० १४१२
४६४- आ०ग्रं० पृ० ६१८
४६५- आ०ग्रं० पृ० ११०२
४६६- आ०ग्रं० पृ० ७४
४६७- आ०ग्रं० पृ० १२८०
४६८- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ५१६

हिन्दी काव्यों में बीभत्स रस मुख्यतया युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में मिलता है। पौराणिक परम्पराओं की कथाओं के अंतर्गत राक्षसों और दानवों के क्रिया-कलाप तथा नरक आदि के चित्रण में भी बीभत्सता का विशेष समावेश रहता है और काव्य में उनका वर्णन भी प्राय: बीभत्स रस की कोटि में आता है।[469]

आदि ग्रंथ में बीभत्स का प्रयोग करते हुए इसके रचयिताओं ने मनुष्य के दुष्कर्मों के प्रति जुगुप्सा भाव को जन्म दिया है, और सांसारिक विषयवासनाओं के प्रति वैराग्य की प्रेरणा प्रदान की है।

वैष्णव की कुतिया को शाक्त की मां से अच्छा कहकर कबीर जी शाक्तों की साधना पद्धति के व्यभिचार के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं:-

१- कबीर बैसनउ की कूकरि भली, साकत की बुरी माइ।
ओहु नित सुनै हरि नाम जसु, ओहु पाप बिसाहन जाइ। ५२।।[470]

कहना न होगा कि राजाओं के तो बहुपत्नी प्रथा थी, उस प्रथा ने रानियों का धर्म-पत्नी वाला सम्मान नष्ट कर दिया था, बहुपत्नी प्रथा में पत्नी, पत्नी नहीं रह वेश्या की दशा को प्राप्त हो चुकी थी। कबीर जी कहते हैं:-

कबीर न्रिप नारी किउ निंदीऐ, किउ हरि चेरी कउ मानु।
ओहु मांग सवारै बिखै कउ, ओहु सिमरै हरि नामु।। ६०।।[471]

वाम-मार्गियों की साधना पद्धति के घृणित कर्मों की ओर संकेत करते हुए कबीर जी कहते हैं:-

इकतु पतरि भरि उरकट कुरकट इकतु पतरि भरि पानी।
आसि पासि पंच जोगीआ बैठे बीचि नकट दे रानी।
नकटी को ठनगनु बाडड़ा। किनहि बिबेकी काटी तूं। कबीर।[472]
नाम विहीन व्यक्ति से घृणा करते हुए गुरु राम दास जी कहते हैं:-
हरि के नाम बिना, सुन्दरि है नकटी।
जिउ बेसुआ के घरि पूतु जमतु है, तिसु नामु परिओ है ध्रकटी।
जिनके हिरदै नाहि हरि सुआमी, ते बिगड़ रूप बेरकटी।
जिउ निगुरा बहु बाता जाणै ओहु हरि दरगह है भ्रसटी। ५:४[473]

469- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ५१७
470- आ०ग्र० पृ० १३६७
471- आ०ग्र० पृ० १३७३
472- आ०ग्र० पृ० ४७६
473- आ०ग्र० पृ० ५२८

गुरु राम दास जी का उपर्युक्त पद गुरु अमरदास जी के निम्नांकित पद, जो उन्होंने झूठे मनुष्यों के विषय में कहा है, से प्रभावित दिखाई देता है:-

कूड़ु बोलि बोलि निवण कदे, किउ ताणे दूजे भाइ।
बिनु भाखिआ कारणि नरपदे फिरि घरि घरि पति गवाइ।
बेटुआ मेरे मूल जिउ, लिता नामु विसु खाइ।
हरि हरि नामु न चेतनी करते आपि खुआइ। म:३ [474]

गुरु नानक देव जी ने सरेवड़े (जैन) साधुओं का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह बीभत्स रस की मुंह-बोलती तसवीर है। [475]

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी[476], जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि[477] भड़ासा पाणी देखि सगाही।
भेडा वागी सिरु खोहाइनि, भरीअनि हथ सुआही।
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि, टबर रोवनि धाही।
ना ओइ जोगी, न ओइ जंगम, ना ओइ काजी मुंला।
दयि[478] विगोए फिरहि विगुते फिटा वतै गला।
जीआ मारि जीवाले सोई अवरु न कोई रखै।
दानहु ते इसनानहु वंजे भसु पई सिरि खुथै।
मुइआ जीविदिआ गति होवै जा सिरि पाईऐ पाणी।
नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी।
गुरु समुंदु नदी सभि सिखी, नातै जितु वडिआई।
नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई। म:१ [479]

सब से अधिक घृणा गुरु जी को झूठ से थी:-

१- जिउ जोरु सिरनावणी आवै वारो वार।
जूठे जूठा मुखि वसै नित नित होइ खुआरु।
सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ।
सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ। म:१ [480]

२- मनका सूतकु लोभु है, जिहवा सूतकु कूड़ु। [481]

474- आ०ग्रं० पृ० ११२१

475- सिरी गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यिक विशेषता- पृ० १६७

476- मैला पाणी

477- फजीहत (फारसी)-गंदगी

७- भयानक रस: भानुदत्त के अनुसार भय का परिपोष, अथवा संपूर्ण इन्द्रियों का विक्षोभ भयानक रस है। अर्थात भयोत्पादक वस्तुओं के दर्शन या श्रवण से अथवा शत्रु इत्यादि के विद्रोहपूर्ण आचरण से हृदयस्थ भय स्थायी परिपुष्ट होकर आस्वाद्य बनता है, तब वहां भयानक रस होता है, इसमें संपूर्ण इन्द्रियों में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। हिन्दी के आचार्य सोमनाथ ने- रसपीयूषनिधि में भयानक रस की यह परिभाषा दी है- सुनि कवित्त में व्यंगि भय जब ही परगट होय। तहीं भयानक रस बरनि कहै सबै कवि लोय। भरत मुनि ने इसका रंग काला तथा देवता काल देव को बताया है। भानुदत्त के अनुसार इसका वर्ण श्याम और देवता यम बताया है।[४८२]

हिन्दी के आचार्य कुलपति ने सभी उपादानों को एक साथ समेट कर भयानक रस का यों वर्णन किया है। भय कृपाल विकराल रण, सुनौं बन गृह देव। ते रावर अपराध सुनि, भय विभाव सब लेव। कम्प रोम स्वरभेद सुनि यह अनुभाव बखानि। मोह मूरछा दीनता, ए संचारी जानि। इनते तृष्य कवित्त में अति भय परगट होय। कवि सहृदय को मन मगन करैं भयानक सोय। (रस रहस्य)[४८३]

आदि ग्रंथ में भयानक रस की निष्पत्ति कम हुई है। परन्तु फिर भी भय तथा भाव दोनों को एक साथ परमपद की प्राप्ति का साधन माना गया है। अधिक बल भाव-भक्ति पर ही दिया गया है।[४८४] आदि ग्रंथ में भयानक रस की निष्पत्ति दो प्रकार से हुई है। प्रथम रूप सर्व सृष्टि का परमात्मा के भय अथवा अनुशासन के अंतर्गत कार्य करना है। दूसरा रूप मनुष्य को अपने कुकर्मों के बदले भयानक कष्टों की प्राप्ति होने का वर्णन है। दोनों रूप परंपरागत हैं।

उपनिषद् साहित्य में सारे संसार को भगवान् के भय के अन्दर कार्य करता बताया है। तैत्तरीयोपनिषद् में वर्णन है:-

भीषाऽस्माद्वात: पवते। भीषोदेति सूर्य:।

भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पंचम इति।[४८५]

४७९- देव- रसविलास

४८०- आ०ग्रं० पृ० ४०२

४८१- आ०ग्रं० पृ० १४६-५०

४८१- आ०ग्रं० पृ० ५७२

४८२- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१३३

४८३- वही पृ० १३४

४८४- श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यकविशेषता पृ० १०७

४८५- तैत्तरीयोपनिषद् -२-८-१।

गुरु नानक देव जी ने इसी विचार को इस प्रकार व्यक्त किया है:-

१- भै विचि पवणु वहै सद वाउ। भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि अगनि कढै वेगारि। भै विचि धरती दबी भारि।
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि। भै विचि राजा धरम दुआरु।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु। कोह करोड़ी चलत न अंतु।
भै विचि सिध बुध सुर नाथ। भै विचि आडाणे आकास।
भै विचि जोध महाबल सूर। भै विचि आवहि जावहि पूर।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकार सच एक। म:१ [४८६]

२- गुरु अर्जुन देव भी उपर्युक्त विचार परंपरा को स्वीकार करते हुए, गुरु नानक के स्वर में स्वर मिलाते हुए भयानक रस की निष्पत्ति करते हैं:-

डरै धरति अकासु नखत्रा सिर ऊपरि अमरु करारा।
पउणु पाणि बैसंतरु डरै, डरै इंद्रु बिचारा।
देहधारि जत देवा डरपहि, सिध साधिक डरि मुइआ।
लख चउरासीह मरि मरि जनमे, फिरि फिरि जोनी जोइआ।
राजसु सातकु तामसु डरपहि, केते रूप उपाइआ।
छल बपुरी कउला डरपै, अति डरै धरमराइआ।
सगल समग्री डरहि बिआपी, बिन डर करणैहारा।
कहु नानक भगतन का संगी, भगत सोहहि दरबारा। मारू म:५ [४८७]

३- यदि समस्त प्रकृति तथा देवगण उसके भय के अन्तर्गत कार्य करते हैं, तो मनुष्य उसके भय से कैसे छूट सकता है। कबीर जी ने मनुष्य को भी उसके भय से कांपता बताया है:-

थरहर कंपै बाला जीउ। ना जानउ किआ करसी पीउ।
रैनि गई मत दिनु भी जाइ। भवर गए बग बैठे आइ।
काचै करवै रहै न पानी। हंस चलिआ काइआ कुमलानी। कबीर [४८८]

४- साधारण मनुष्य क्यों न उस के भय में रहें, जब बड़े बड़े सुल्तान समय की चक्की में पिस गए। गुरु नानक देव जी कहते हैं:-

भै तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह।
नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह। सिरी राग म:१ [४८६]

४८६- आ०ग्र० पृ० ४६४ ४८७- आ०ग्र० पृ० ६९८-९९९

४८८- आ०ग्र० सूची कबीर पृ० ७९२ ४८६- आ०ग्र० पृ० १६

भयानक रस का दूसरा रूप है, ईश्वर के हुक्म को न मानकर मनमानी करते हुए विषयों में आसक्त होकर जीवन यापन करते हुए भयानक एवं कष्टदायक अवस्था को प्राप्त होना। इसके रूप हैं, तिलों की तरह पीड़े जाना, धर्मराज के न्याय से यातनाओं की चक्की में पिसना आदि। इस प्रकार के वर्णन आदि ग्रंथ में कई स्थानों पर मिलते हैं:-

१- यमराज के आतंक से भयभीत हुए जीव की अन्तिम यात्रा का वर्णन बाबा फरीद जी के शब्दों में:-

जितु दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाइ॥
मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ॥××
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ॥
फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ॥ सलोक शे० फरीद[४६०]

२- पापियों के भयानक परिणाम का वर्णन करते हुए नाम देव जी कहते हैं:-

जैसे सिंबलु देखि सूआ बिगसाना। अंत की बार मूआ लपटाना।
पापी का घरु अगने माहि। जलत रहै मिटवै कब नाहि।
जिउ बेस्वा के परै अखारा। कापरु पहिरि करहि सींगारा।
पूरे ताल निहाले सास। वा के गले जम का है फास। गउड नाम देव[४६१]

३- पाप कर्म करने वालों के भयानक परिणाम का वर्णन गुरु अर्जुन देव ने इस प्रकार किया है:-

पाप करेदड़ सरपर मुठे। अजराईलि फड़े फड़ि कुठे।
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ। मारू म:५[४६२]

४- गुरु नानक देव जी ने जिस प्रकार सारी सृष्टि को ईश्वर के हुक्म के अंतर्गत कार्य करते बताया है, उसी प्रकार उन्होंने ईश्वर के हुक्म को न मानने तथा अंहकारवश कर्म करने वालों के भयानक फल का इस प्रकार वर्णन किया है:-

अंतरि चोरु मुहै घरु मंदरु इनि साकति दूतु न जाता हे।
दुंदर दूत भूत भीहाले। खिंचोताणि करहि बेताले।
सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता हे।
कूड़ु कलरु तनु भसमै ढेरी। बिनु नावै कैसी पति तेरी।
बाधे मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे।

४६०- आ०ग्रं० पृ० १३७८ ४६१- आ०ग्रं० पृ० ११६५

जम दरि बाधे मिलहि सजाई। तिसु अपराधी गति नहीं काई।
करण पलाव करै बिललावै। जिउ कुंडी मीनु पराता है।
साकतु फासी पड़ै इकेला। जम वसि कीआ अंधु दुहेला।
राम नाम बिनु मुकति न सूझै, आजकालि पचि जाता है। मारू म:१ [463]

राम नाम के बिना तो इस मनुष्य के खाने पीने तथा रहने के लिये धधकती हुई ज्वालाओं की ज्वाला है और कुछ नहीं:-

काल बलाए बंनि कोइ न रहसी। गुर वखाणा किंन्हि वडिआनवसी।
सतिगुरु बोहिथु बेड़ु सचा रहसी। अगनि नसै पहराउ अनदिनु मरसी।
काइआ कुंभ बोल भुखी दुखी। करता करे सु होगु कूड़ु निखुटसी। म:१ [464]

आदि ग्रंथ में भय की निष्पत्ति के स्थायी भाव का वर्णन गुरु नानक देव की रचना में मिलता है, इसी भाव को सम्मुख रखकर भयानक रस का संयोजन हुआ है:-

भै बिनु कोइ न लंघसि पारि। भै भउ राखिआ भाइ सवारि।
भै तनि अगनि भखै भै नालि। भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि।
भै बिनु घाड़त कचु निकच। अंधा सचा अंधी सट। म:१ [465]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं के इस भय-सिद्धान्त का निरूपण मनुष्य के कठोर न्याय का आतंक पैदा करने के लिये नहीं किया गया। इस सिद्धान्त को समझने के लिये में गुरु नानक देव के निम्नलिखित विचार को इस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करना होगा:-

मन रे सचु मिलै भउ जाइ।
भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ।। म: १ [466]

८- अद्भुतरस: भानुदत्त ने अद्भुत रस की परिभाषा देते हुए कहा है, विस्मयस्य सम्यक्समृद्धिरद्भुत: सर्वेन्द्रियाणां ताटस्थ्यं वा (रस तरंगिणी) अर्थात् विस्मय की सम्यक् समृद्धि अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियों की तटस्थता अद्भुत रस है। कहने का अभिप्राय

४६२- आ०ग्र० पृ० १०१६
४६३- आ०ग्र० पृ० ९०१
४६४- आ०ग्र० पृ० १२६०
४६५- आ०ग्र० पृ० १५१
४६६- आ०ग्र० पृ० १८

यह है कि जब किसी रचना में विस्मय स्थायी भाव इस प्रकार पूर्णतया प्रस्फुट हो कि संपूर्ण इन्द्रियाँ उससे अभिभावित हो कर निश्चेष्ट बन जायें तब वहाँ अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है।[497]

विद्यापति, सूरदास, तथा तुलसीदास की रचनाओं में इस रस की उत्कृष्ट निष्पत्ति हुई है। रीति काल में बिहारी, मतिराम, घनानंद, इत्यादि की रचनाओं में अद्भुत रस का निर्वाह सुन्दर हुआ है।[498]

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में तो समूची सृष्टि आकार भी एक विस्मयजनक (विस्मादपूर्ण) रचना माना गया है। इस रचना के विषय में जब कवि के मन में विचारों का संघर्ष पैदा होता है तो प्रभु की अनन्त सत्ता को समझने के लिये असमर्थ होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा दिखाई देता है। इस अवस्था में कहे हुए वचन ही अद्भुत रस का निष्पत्ति करते हैं।[499]

आदि ग्रंथमें अद्भुत रस के प्रयोग के बारे में डा० गोपाल सिंह कहते हैं, 'अद्भुत रस तो इस कविता में इस प्रकार समाया हुआ है, जैसे हमारे शरीर की नसों में रक्त का संचार हुआ है। क्योंकि हमारा आराध्य प्रभु विस्मय-स्वरूप है, इसलिये उसका प्रकृति का विस्तार भी विस्मय-स्वरूप है। न केवल पवण, पानी, अग्नि धरती तथा समस्त प्राणियाँ हमें विस्मित करती हैं, वरन प्रत्येक नाद और वेद भी हमें विस्मित करते हैं। समस्त जीव जन्तु तथा उनके भेद, जीवों द्वारा किए जाने वाले कर्म किसी कर्म विशेष का अनुसरण तथा अन्य का बहिष्कार आदि सब हमें विस्मित करते हैं। संयोग-वियोग, निकटता तथा दूरी, भगवान् की सृष्टि का अनुशासन-विशेष, मनुष्य की अल्पज्ञता आदि सब आश्चर्यजनक बातें हैं।'[500]

प्रभु के परमपद की उच्चता, तीन लोक में उनके एक छत्र राज्य एवं विस्मय विमुग्ध करने वाले गुणों तथा अगाध शब्द का वर्णन गुरु नानक ने इस प्रकार किया है:-

> थिर उचरीजै पाइडीजै तिहु लोका सिरताज राम।
> हउ बिसम भई देखि गुणा अनहद सबद अगाज राम।
> सबदु बीचारी करणी सारी रामनामु नीसाणो। ५:१[501]

४९७- हिन्दी साहित्य कोश पृ० १६   ४९८- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१८

४९९- श्री गुरु ग्रंथ दर्शन प्रो० जोगिंद्र सिं - १४२

५००- श्री गुरु ग्रंथ साहिब की साहित्यिक विशेषता पृ० १६३

५०१- आ०ग्रं० पृ० ७६५।

(प्रियतम ऊंची माड़ी में निवास करता है, और त्रिलोकी का नाथ है। मैं उसकी इस लीला को देखकर उसके गुणों तथा अनहद शब्द के प्रकटीकरण से अधिक विस्मयविमुग्ध हुई हूं। मैं ने शब्द का विचार करके करणी को श्रेष्ठ माना है, और उस शब्द को राम नाम का ही पोषक माना है।)

गुरु नानक देव जी की रचना में अद्भुत रस की निष्पत्ति का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है:-

विसमादु नाद विसमादु वेद। विसमादु जीअ विसमादु भेद।
विसमादु रूप विसमादु रंग। विसमादु नागे फिरहि जंत।
विसमादु पउण विसमादु पाणी। विसमादु अगनी खेडहि विडाणी।
विसमादु धरती विसमादु खाणी। विसमादु सादि लगहि पराणी।
विसमादु संजोग विसमादु विजोगु। विसमादु भुख विसमादु भोगु।
विसमादु सिफति विसमादु सालाह। विसमादु उझड़ विसमादु राह।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि। विसमादु देखै हाजरा हजूरि।
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु। नानक बुझणु पूरै भागि। म:१ [502]

जब सिद्धों ने सृष्टि रचना के विषय में गुरु नानक से प्रश्न पूछा, तो उन्हों ने सृष्टि के आरंभ का इस प्रकार वर्णन किया है:-

आदि कउ विसमादु बीचारु कथीअले सुंन निरंतरि वासु लीआ। म:१ [503]

गुरु अर्जुन देव जी की रचना में अद्भुत रस के इतने सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं, कि डा० गोपाल सिंह की यह उक्ति कि अद्भुत रस आदि ग्रंथ में इस प्रकार संचारित है, जिस प्रकार शरीर में रक्त, पूर्णरूपेण परिपुष्ट दिखाई देती है। भगवान् के स्वरूप का वर्णन देखिए:-

१- हउ बिसम भई मा, हरि दरसनु देखि अपारा।
मेरा सुंदरु सुआमी जी हउ चरन कमल पग छारा। म:५ [504]

२- सुपनै ऊपमा नहीं, गाफिलो जो न संमला।
सुंदर पुरख बिराजित पेखि मनु बंचला। म:५ [505]

५०२- आ०ग्र० पृ० ४६३ ५०३- आ०ग्र० पृ० ६४०

५०४- आ०ग्र० पृ० ७८४ ५०५- आ०ग्र० पृ० १३६२

कबीर जी जब भगवान् की लीला का वर्णन करते हैं, तब उसकी अगणित, अमित, अपार तथा अनंत लीला के लिये वे अद्भुत भाषा शैली का प्रयोग करते हैं:-

कोटि सूर जा के परगास। कोटि . देव . कविलास।
दुरगा कोटि जाके मरदनु करै। ब्रह्मा कोटि वेद उचरे।
. मावउ तउ केवल राम। आन देव सिउ नाही काम।
कोटि चंद्रमे करहि चराक। सुर तेतीसउ जेवहि पाक। -- आदि पूरा पद
दृष्टव्य है। [506]

गुरु ग्रंथ से अद्भुत रस के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, कि यहां उनके अधिक वर्णन से विस्तार का भय है। अतः केवल एक ही उदाहरण और प्रस्तुत करके इस वक्तव्य को समाप्त करते हैं:-

गगन मै थाल रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती। अनहता सबद वाजंत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ, सहस मूरति नना एक तोही।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही। म१ [507]

६-शान्त रस: शान्त रस साहित्य में प्रसिद्ध नौ रसों में अन्तिम रस माना जाता है। शान्तोऽपि नवमो रस: (मम्मट-काव्य प्रकाश ४-३५)। इस का कारण यह है कि भरत के नाट्य शास्त्र में जो रस विवेचन का आदि ग्रोत है, नाट्य रसों के रूप में केवल आठ रसों का ही वर्णन मिलता है। [508]

परन्तु आदि ग्रंथ का अधिक स्वरूप शांत रस का ही है। [509] अत: रस को आदि ग्रंथ का प्रधान रस माना गया है। [510] आदि ग्रंथ में इस रस की निष्पत्ति का मुख्य कारण इस ग्रंथ का आध्यात्मिक विषय है। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन ग्रन्थों में शांत रस को बाद में मान्यता प्राप्त हुई। परन्तु कालान्तर में इस रस का महत्त्व अन्य रसों की तुलना में सर्वोपरि सिद्ध होता है। [511] कन्हैयालाल पोद्दार लिखते हैं, "अष्टनाट्य रसों का स्वरूप निरूपित करने के पश्चात नाट्यशास्त्र में शान्त रस की संभावना का निर्देश निम्नलिखित शब्दों में किया गया है, और नव रस शब्द का भी उल्लेख सर्वप्रथम यहीं हुआ है। अत: शान्तो नाम.... । मोक्षाध्यात्मसमुत्थ.... शान्तरसो नाम संभवति।.... एवं नव रसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विता: अर्थात मोक्ष और अध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है, उसको शान्त रस नाम देना संभाव्य है।" (संस्कृत साहित्य का इतिहास- द्वि.भाग) [512]

नाट्यज्ञ लोगों की दृष्टि में इस प्रकार विविध कारणों से युक्त नौ रस होते हैं। उक्त अंश के अतिरिक्त नाट्य शास्त्र में ही एक स्थान पर यह भी प्रतिपादित किया गया है, कि शान्त रस से ही रति आदि आठ स्थायी भावों की उत्पत्ति होती है और शान्त में ही उनका विलय हो जाता है- स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भाव: प्रवर्तते। पुनर्निमित्तापायेच शान्त एवोपलीयते (६-१०८) इस प्रतिपत्ति से शान्त रस का महत्त्व अन्य रसों की तुलना में सर्वोपरि सिद्ध होता है।[५१३] अत: श्री गुरु ग्रंथ में शांत रस की अधिक निष्पत्ति इस लिये हुई है, कि आध्यात्मिक काव्य के लिये इस रस की उपयोगिता का भरत मुनि ने भी संकेत कर दिया था, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है।

आदि ग्रंथ में शान्त रस की प्रधानता के इस विचार की पुष्टि में प्रो० जोगेन्द्र सिंह लिखते हैं, 'श्री गुरु ग्रंथ साहब में शान्त रस की प्रधानता का एक कारण यह है, कि यह काव्य ग्रंथ शांत-महान्-आत्माओं के वचनों का ग्रंथ है। क्योंकि गुरु आत्मायें शांत-मंडलों की वासी हैं, अत: उनके काव्य-वचनों में से वही शांतप्रवाह फूट पड़ना स्वाभाविक ही है।[५१४] आदि ग्रंथ में शान्त रस की निष्पत्ति के विषय में डा० गोपाल सिंह लिखते हैं, 'शांत रस के उदाहरण प्रस्तुत करते समय कतिपय समीक्षाकार इस रस की निष्पत्ति वहां ढूंढते हैं, जहां 'शांत भाए गुर सतिगुर पूरे। वाजे अनहद अनाहिद तूरे' आदि शब्दों में शांति अथवा स्थिरता के विचारों का उल्लेख हो। परन्तु वास्तव में रस विचारों अथवा शब्दों में ही केवल अवस्थित नहीं होता। रस तो शब्दों, विचारों के अतिरिक्त भावों को मूर्तिमान करने वाला वह आत्मिक दिग्दर्शन है, जो अवर्णनीय होता हुआ भी आत्मा को रस विभोर कर देता है। शान्त रस जहां प्रमुख होता है वह ऐसी रचना होती है, कि पढ़ते पढ़ते ही मन में शांति का स्वरूप सुन्दर स्थिर, सुडौल एवं स्थायी प्रभाव संचारित हो जाता है।[५१५]

उदाहरणार्थ कुछ पद आदि ग्रंथ से प्रस्तुत हैं:-

५०६- आ ग्र० पृ० ११६२ ५०७- आ०ग्र० पृ० ६६३

५०८- हिन्दी साहित्य कोश - पृ० ७६२

५०९- श्री गुरु ग्रंथ साहब की साहित्यिक विशेषता पृ० १६५

५१०- श्री गुरु ग्रंथ दर्पण- प्रो- जोगेन्द्र सिंह पृ० १३८

५११- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७६२

५१२- वही पृ० ७६२ ५१३- वही

१- बंदु सूरजु दुइ समकरि राखउ ब्रह्म जोति मिलि आउगो।
तारण देखि न जल मधि पैसउ जीअ जंत न सतावउगो।
अठसठि तीरथ गुर दिखाए घट ही भीतरि नहाउगो।
पंच सहाई जनकी सोभा भलो भलो कहाउगो।
नामा कहै चितु हरि सिउ राता, सुंन समाधि समाउगो।नामदेव[५१६]

२- उदक समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे।
सुंनहि सुंन मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे।
बहुरि हम काहे आवहिगे। कबीर[५१७]

३- तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा, कनक कटिक जल तरंग जैसा।
जउपै हम न पाप करंता, अहे अनंता, पतित पावन नामु कैसे हुंता। रविदास[५१८]

४- जिनी सची गहु राखिआ से अंबो मायहुरेरहि जोड।
किआ गुण तेरे विथरा, हउ किआ किआ घिना तेरा नाउ जाउ।
रहतु टोलि ना अंबड़े छड सद कुरबाणी तेरे जाउ जीउ। म:१[५१९]

५- मुंध नवेलड़ीआ गोइलि आई राम। मटुकी डारि धरी, हरि लिव लाई राम।
जाउ न जाउ कहो अपने सहि नाली राम। ग्री वर मोहिअड़ी पिर संगि सूती राम।
गुर कै भाइ चलो, साचि संगूती राम।भिनड़ी रैणि भलो दिनस सुहाए राम।
नानु अलोनड़ीए वोलै गुरबाणी राम। म:१[५२०]

६- किसही कोई कोइ, मंञु निमाणी इकु तू।
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही।
जां सुख ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ।
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ।। म:२[५२१]

७- अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ।
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ।
राग रतन परवार परीआ, सबद गावण आईआ।
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ।
कहै नानकु अनंद होआ सतिगुरू मैं पाइआ। म: ३[५२२]

५१४- श्री गुरु ग्रंथ दरपण- १३८
५१५- श्री गुरु ग्रंथ साहिब की साहित्यिक विशेषता- पृ० १६६
५१६- आ०ग्रं० पृ० ६९३ ५१७- आ०ग्रं० पृ० ११०३
५१८- आ०ग्रं० पृ० ९३ ५१९- आ०ग्रं० पृ० ७६२

८- अब हम चली ठाकुर पहि हारि।

जब हम सरणि प्रभू की आई, राखु प्रभू भावै मारि। म: ४ [५२३]

९- हरि अंम्रित भिने लोइणा, मनु प्रेमि रतंना राम राजे।

मनु रामि कसवटी लाइआ, कंचन सोविंना।

गुरमुखि रंगि चलूलिआ, मेरा मनु तनो भिंना।

जन नानक मुसकि झकोलिआ, सभु जनमु धनु धंनां। म:४ [५२४]

१०- मिठ बोलड़ा जी, हरि सजणु सुआमी मोरा।

हउ संमलि थकी जी, ओहु कदे न बोलै कउरा। म:५ [५२५]

११- प्रभ मिलबे कउ प्रीति मनि लागी।

पाइ लगउ मोहि करउ बेनंती, कोऊ संतु मिलै बडभागी।

मनु अरपउ धनु राखउ आगै, मन की मति मोहि सगल तिआगी। म:५ [५२६]

१२- सुनहु सहेरी मिलन बात कहउ।

सगरो अहं मिटावहु। तउ घर ही लालनु पावहु।

तब रस मंगल गावहु। आनदु रूप धिआवहु। म:५ [५२७]

१३- काहे रे बनि खोजनि जाई। सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।

पुहप मधि जिउ बासु बसत है मुकर माहि जैसे छाई।

तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई। म:९ [५२८]

शांत रस के उदाहरणों से संपूर्ण आदि ग्रंथ परिपूर्ण है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निस्संदेह कह सकते हैं कि आदि ग्रंथ में सब रसों की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। प्रो० जोगेन्द्र सिंह कहते हैं, 'समूचे तौर पर रसात्मक पक्ष से गुरु ग्रंथ साहब की कविता श्रेष्ठ और प्रभावोत्पादक है। भारतीय रस-परंपरा का यह पूर्णरूपेण अनुसरण करती है।' [५२९]

६- <u>शैली की दुरूहता, सुगमता एवं प्रभाव।</u>

<u>उपसंहार:</u> जहां तक शैली-दुरूहता का संबंध है, हमें केवल आदि ग्रंथ काव्य ही नहीं, समस्त आध्यात्मिक साहित्य की शैली के मनन के विषय में विचार करना उचित होगा।

५२०- आ०ग्रं० पृ० ८४३
५२१- आ०ग्रं० पृ० ७९१-९२
५२२- आ०ग्रं० पृ० ६९७
५२३- आ०ग्रं० पृ० १२७
५२४- आ०ग्रं० पृ० ४४८
५२५- आ०ग्रं० पृ० ७८४
५२६- आ०ग्रं० पृ० २०४
५२७- आ०ग्रं० पृ० ८३०

प्रो० संत सिंह सेखों लिखते हैं: ग्रंथ-काव्य का एक त्रुटिपूर्ण लक्षण यह होता है, कि उसमें दार्शनिक विचारों को ऐसी शैली में प्रस्तुत किया होता है कि उनमें श्रद्धा रखने वाले के अतिरिक्त अन्य लोगों को यह बहुत कम प्रभावित कर सकता है। रामायण महाभारत, गीता, डांटे तथा मिल्टन की कविता का वही रस-स्वादन कर सकते हैं, जो इस काव्य के सिद्धान्त पक्ष के अतिरिक्त इसकी कल्पना रचना में निर्दिष्ट घटनाओं को भी सत्य मानते हैं।[५३०] अपने इस विचार के संदर्भ में वे आदि ग्रंथ की शैली के विषय में विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं: गुरुवाणी के विषय में हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि गुरुवाणी साधारण समझ के लिये पर्याप्त दुर्गम एवं कठिन है।[५३१] हमारा विचार है कि इस में कोई सन्देह नहीं कि गुरुवाणी ही नहीं समस्त आध्यात्मिक साहित्य की शैली में जो प्रतीकात्मकता की विशिष्टता होती है, वह काव्य को साधारण अर्थों की अपेक्षा एक विशेष अर्थ प्रदान करती है।[५३२] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में प्रतीक को सादृश्यमूलक दीखपड़ने के कारण कभी कभी उपमानों का स्थान दे दिया जाता है, जो उचित नहीं है, यह उससे कहीं अधिक व्यापक है। इसकी सहायता ऐसे अवसरों पर ली जाती है, जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त सी बन कर मौन धारण करने लगती है, और जब अनुभवकर्ता के विविध भाव शिला से बुद्धि के टकराने वाले स्रोतों की भांति फूट निकलने के लिये मचलने से लग जाते हैं। ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिये उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं।[५३३] कबीर गुरु नानक, तथा उनके परवर्ती गुरु व्यक्तियों के काव्य में ऐसी शैली के दर्शन होते हैं। यह शैली केवल उन प्रतीकों को, जो केवल उपमान न होकर, बहुत कुछ अधिक व्यापक अर्थ रखते हैं, समझने के लिए ग्राह्य बन सकती है। इस लिये यह शैली साधारण अथवा अपढ़ समाज के लिये नहीं, अपितु, जिज्ञासु साधकों के लिये उपयोग में लाई गई है। यह अवस्था तब उपस्थित होती है, जब कोई बात कहना हो और कही न जा सके।[५३४] यह दशा गूंगे के गुड़ के स्वाद वाली होती है।

५२८- आ०ग्रं० पृ० ६८४ ५२९- श्री गुरु ग्रंथ दर्पण पृ० ११३

५३०- पंजाबी काव्य शिरोमणी पृ० ५६ ५३१- वही

५३२- " an epithet-... conveying to our imagination something more than the accurate reflection of an external reality." Quoted from "The Poetic Image by C Dey Lewis, at page 116 of A Critical Study of Adi Granth by Dr. S.S. Kohli.

५३३- कबीर-साहित्य की परख पृ० १४६-४७

आदि ग्रंथ की शैली का एक दूसरा रूप है, जो साधारण व्यक्ति के लिये सरल, सुगम एवं पूर्ण होने ग्रा है। साधारण जन-जीवी के लिये आदि ग्रंथ के संदेश को साधारण लोगों की भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है:- कुछ तथा उसकी दृष्टि क्या है? इस के विषय में इन सरल शब्दों में बात कही गई है:-

कहु नानु सबै की कोठड़ी सबै ना मिथि वासु।

इकना हुकमि समाइ लए इकना हुकमे करे विणास। [५३५]

जीवन क्या है? इस का समाधान अति सरल एवं सुगम शब्दों में प्रस्तुत किया है। कठिन केवल साधना पक्ष होता है, परन्तु उसको इतना सरल कर दिया है, कि आदि ग्रंथ के संदेश को साधारण व्यक्ति भी ग्रहण कर लेता है। जीवन सदाचार है:-

मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार। केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर।

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु। [५३६]

साधारण व्यक्ति भी जानता है कि सत्यमार्ग पर चलने से मनुष्य को सम्मान मिलता है, अत: इसी को साधना पक्ष का महान् लक्ष्य बताया है:-

सभे धारणि चलदिआं उसतति करे जहानु। [५३७]

नाम स्मरण को सच्ची भक्ति कहा है, और नाम स्मरण का स्वरूप इन शब्दों में प्रस्तुत किया है:-

हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि। [५३८]

सत्यमार्ग की बाधाओं को भी बड़े ही सरल शब्दों में वर्णन किया गया है:-

मन का सूतकु लोभु है, जिहवा सूतकु कूड़। अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ परधन रूपु।

कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि। नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि। [५३९]

म: १

गुरु ग्रंथ की शैली का महान् गुण यह है, कि इस में निहित संदेश किसी ऐसे व्यक्ति के मुख से नहीं निकले, जो साधारण व्यक्ति को अपने से हीन मानता हो, तथा अपने आप को भगवान् का उच्चाधिकारी समझता हो। इस महान् ग्रंथ के संदेश-वाहक अपने विषय में कहते हैं:-

१- कबीर सभ ते हम बुरे, हम तजि भलो सभु कोइ। [५४०]

२- हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ। प्रणवति नानक तारे सोइ।म:१ [५४१]

५३४- कहु कबीर गूंगै गुड़ खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ- आ०ग्रं० पृ० ३३४

(२) हरि गुन कहते कहनु न जाई। जैसे गूंगे की मिठिआई।। भीखन- आ०ग्रं० ६५९

५३५- आ०ग्रं० पृ० ४६३ ५३६- आ०ग्रं० पृ० ६२

आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने जन साधारण के हितों की रक्षा करना अपना ध्येय बनाया हुआ था:-

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।

नानकु तिनके संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस। म:१ [542]

आदि ग्रंथ में सामंतवादी प्रथा के विरुद्ध भी प्रबल विरोध है, जिस ने इसे जनसाधारण का अपना गुरु ग्रंथ होने का सम्मान दिया है:-

जिन सिकदारी तिनहि खुआरी, चाकर केहे डरणा।

जा सिकदारि पवै जंजीरी ता चाकर हथहु मरणा। म:१ [543]

आदि ग्रंथ के रचयिताओं के यह उपदेश जिन के लिये हैं, उनको उन्होंने अपना मित्र अथवा सज्जन कहकर संबोधन करते हुए, अपने आप को उनसे इतनी निकटता स्थापित कर ली है, कि यह उपदेश सुभाषित एवं सुमधुर मंत्रणा के रूप में प्रकट होते हैं:-

१- यार मीत सुनि साजनहु बिनु हरि छूटन नाहि। [544]

२- यार वे पिर आपण भाणा किउ नारी होता।

यार वे तै राविआ लालनु मू दसि दसंदा।

यार वे नित सुख सुखेंदी सा मैं पाई।

वरु लोड़ीदा आइआ वजी वाधाई। [545]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां आदि ग्रंथ की शैली में कुछ स्थलों पर प्रतीकात्मक दुरूहता है, वहां समूचे गुरु ग्रंथ का शैली का स्वरूप सरल, सुगम एवं सर्व-ग्राह्य है।

५३७- आ०ग्रं० पृ० १३६ ५३८- आ०ग्रं० पृ० १०७६
५३९- आ०ग्रं० पृ० ४६३ ५४०- आ०ग्रं० पृ० १३६४
५४१- आ०ग्रं० पृ० ७२८ ५४२- आ०ग्रं० पृ० १५
५४३- आ०ग्रं० पृ० ६०२ ५४४- आ०ग्रं० पृ० २५६
५४५- आ०ग्रं० पृ० ७०३-७०४।

८- श्री दुर्गा गुंज लाल के लोक काव्य प्रकार एवं छन्द:

"उत्तर मध्यकाल का हिन्दी साहित्य प्रधान रूप से लोक-साहित्य है। उसके यथार्थ अध्ययन के लिये लोक प्रचलित काव्य-रूपों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

विचार और वितर्क-इलाहाबाद-१९५४ ई० पृ०२१४

श्री गुरु ग्रंथ के काव्य प्रकार एवं छन्द योजना

(क) काव्य प्रकार

भारतीय छन्द शास्त्र का उद्गम वैदिक साहित्य में मिलता है। छन्द वेदांग हैं, और इन्हें वेदों का चरण माना गया है: छन्दः पादौ तु वेदस्य। सांख्यायन के श्रौतसूत्र (७-२७) में, निदान-सूत्र में, ऋक्प्रातिशाख्य के आठवें पटल में, कात्यायन कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद की अनुक्रमणी में तथा स्फुट रूप से अन्य वैदिक ग्रंथों में प्रयुक्त छन्दों का विवरण मिलता है, किन्तु छन्द शास्त्र की व्यवस्थित परंपरा का सूत्रपात पिंगलाचार्य के छन्द सूत्र से ही होता है। जिनका समय ई०पू० २०० के लगभग अनुमानित किया जाता है।[1] विद्वानों का अनुमान है, कि छन्दों का प्रयोग संभवतः ऋग्वेद से भी पुराना है। कारण कि ऋग्वेद के छन्द छांदस रचना की पर्याप्त विकसितावस्था के द्योतक हैं। अवश्य ही उस अवस्था तक पहुंचने से पहले छन्द-निर्माण के अनेक प्रयोग हुए होंगे, जो क्रमशः विकसित होकर ऋग्वैदिक छन्दों की पूर्णता तक पहुंच पाये।[2] ऋग्वेद में साधारणतया तीन और चार पाद वाले छन्द हैं, परन्तु कहीं कहीं एक दो और पांच पाद वाले छन्द भी मिलते हैं। अनुक्रमणीकारों के अनुसार ऋग्वेद में सात प्रधान छन्दों का प्रयोग हुआ है। उनके नाम ये हैं:- गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती। इन में गायत्री और उष्णिक की तीन पंक्ति के पांच और शेष के चार पाद होते हैं।[3] कविता के लिये छन्द प्रबंध भारतीय विचारधारा में प्राचीन एक प्रकार की धर्म-तुला है। जिस कविता में छंद भंग, शब्द-भंग, अर्थ भंग, भाव्य भंग, रस भंग, क्रम भंग अथवा अन्य किसी का दोष हो, वह कविता नहीं कहला सकती। हमारे काव्य शास्त्र की यह सब से बड़ी परख कसौटी है। श्री आदि ग्रंथ की वाणी परख के इस दृष्टिकोण से अपने

१- हिन्दी साहित्य कोश - छन्द शास्त्र पृ० २६१

२- हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ४

३- हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५,६।

आप में हर तरह पूरी है।[4] जिस प्रकार वेद, पुराण, रामायण तथा अन्य काव्य ग्रंथों में छन्दों के नामों का उल्लेख नहीं, किन्तु विद्वान पाठक छन्द की गति से समझ लेते हैं कि यह अमुक जाति का छन्द है, वैसे ही गुरु ग्रंथ साहब में छन्दों के नाम (दो चार स्थानों को छोड़ कर,कहीं और) नहीं मिलते। कई विद्वानों का विचार है, कि गुरुवाणी छन्द-नियमों का परित्याग करती है, परन्तु यह उनकी भूल है।[5]

विकास परंपरा की दृष्टि से वेद के मूल छन्द वस्तुत: तीन हैं:- गायत्री, त्रिष्टुप और जगती। गायत्री के अष्टाक्षरी तीन पादों में एक पाद की वृद्धि कर के जब उसे भी अन्य छन्दों की समानता पर लाया गया, तब वही अनुष्टुप नाम से अलग छंद गिना गया। वस्तुत: वह गायत्री का ही परिवर्धित रूप है। संहिताओं में गायत्री की प्रधानता है, और ब्राह्मणग्रंथों में अनुष्टुप की प्रचुरता मिलती है। ब्राह्मण ग्रंथों का अनुष्टुप वैदिक स्वरों से नियन्त्रित न हो कर ताल संगीत के अनुशासन में बद्ध है। गाया जाने के कारण इसे गाथा कहते हैं। यही गाथा छन्द पीछे कालमात्रा से नियंत्रित होकर संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश में आर्या कहलाया। हिन्दी में पहुंच कर यही दोहा बन गया है। इसी का विपरीत रूप सोरठा है। यही वैदिक अनुष्टुप वर्णक्रम से नियंत्रित होकर संस्कृत में श्लोकवृत्त अनुष्टुप के नाम से प्रचलित है। विचित्र बात यह है कि वर्णवृत्त बन कर भी यह मात्राओं से नियुक्त है।[6]

गुरुवाणी में छन्द

गुरु वाणी में छन्दों के विषय में विद्वानों का भ्रमवश होने का कारण यह है कि वे संगीत के नियमों से अपरिचित हैं। गुरु वाणी के छन्दों की पंक्तियों के कई स्थानों पर न्यूनाधिक होने का कारण यह है कि राग के आलाप, टेक, अंतरा, भोगादि के नियमों को मुख्य मान कर शब्द (पद) रचना की गई है।[7] गुरु वाणी संगीत का परिचय ही गुरुवाणी के छन्द प्रबन्ध का यथार्थ ज्ञान करवा सकता है। नहीं तो हमें गुरुवाणी के छन्द प्रबंध में कई स्थानों पर विषमताएं दृष्टिगोचर होंगी। नवीन शोध ने इस बात को स्वीकार

४- पंजाबी दुनिया- गुरमति साहित्य विशेषांक पृ० ७३-७४

५- गुरछन्द दिवाकर पृ० २१

६- हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ६

७- गुरछन्द दिवाकर पृ० २३

किया है। सरदार शमशेर सिंह अशोक लिखते हैं, 'गुरु वाणी संगीत रूप होने के कारण इस में मात्राओं अथवा वर्णों की प्रधानता नहीं, अपितु ध्वनि एवं स्वर की प्रधानता है।'[८] प्रिंसीपल संत सिंह सेखों ने भी इसी विचार की पुष्टि करते हुए कहा कि गुरुवाणी में मात्राओं के न्यूनाधिक होने का कारण .... भांति से इस की संगीतकता है।[९] अत: गुरुवाणी छन्दों के विषय में संगीतक आवश्यकताओं की पूर्ती के लिये कुछ स्वतंत्रता का अनुसरण अवश्य करती है, परन्तु इस रचना का आधार छन्द-योजना ही है, जिसका संबंध सीधा प्राचीन भारतीय परंपरा से है।

यह कहना बहुत ही भ्रम पूर्ण है कि पुराने छन्दों में नवीन जीवन का उल्लास व्याप्त नहीं किया जा सकता। छन्द कभी पुराना नहीं होता, नवीन उल्लास को भरते ही वह स्वत: नवीन हो जाता है।[१०] गुरुवाणी के छन्दों की परंपरा का सीधा संबंध प्राकृत और अपभ्रंश भाषा की छन्द योजना से है। सर्वप्रथम प्राकृत एवं अपभ्रंश के छन्दों को बौद्ध सिद्धों तथा जैन मुनियों ने अपनाया था। बौद्ध कवियों की दोहावली और जैन कवियों में आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शता ई०) की रचना इस संबंध में प्रसिद्ध हैं।[११] हिन्दी, पंजाबी, तथा ब्रज भाषा के छन्द प्राकृत अथवा अपभ्रंश से लिये गये हैं संस्कृत से नहीं।[१२] इस विचार की पुष्टि अपभ्रंश साहित्य के शोध कार्य के आधार पर प्रकट किये कतिपय विद्वानों के विचारों से होती है। डा० हरिवंश कोछड़ अपने ग्रंथ अपभ्रंश साहित्य में लिखते हैं, 'अपभ्रंश साहित्य का जो हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पड़ा, उसमें छन्दों का विशेष महत्त्व है। संस्कृत में वर्णवृत्तों का अधिकतर प्रयोग होता था। प्राकृत में वर्णवृत्तों के बंधन को हटा कर मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया। प्राकृत का गाथा छन्द मात्रिक छन्द ही है। अपभ्रंश कवियों ने भी उस प्रवृति को बनाये रखा। उन्होंने भी मात्रिक छन्दों का बहुतायत से प्रयोग किया। अपभ्रंश की यह प्रवृति हिन्दी साहित्य में भी आई।

अपभ्रंश छन्दों की दूसरी विशेषता है कि इन में

८- पंजाबी दुनिया गुरुमति साहित्य विशेषांक पृ०८८

९- पंजाबी काव शिरोमणी पृ० ६६

१०- जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त पृ० ४६

११- पंजाबी दुनिया गुरमति साहित्य विशेषांक- पृ० ७४

१२- वही पृ० ७६

अन्त्यानुप्रास का प्रयोग मिलता है। इस प्रवृत्ति का संस्कृत में भी प्रायः अभाव था और प्राकृत में भी यह अपभ्रंश कवियों की अपनी सूझ थी। हिन्दी छन्दों में यह प्रवृत्ति अपभ्रंश छन्दों से ही आई।[१३] गुरुवाणी के छन्द संगीत-प्रधान क्यों हैं? इस प्रश्न का उत्तर केवल यही नहीं कि गुरुवाणी की रचना संगीत अथवा रागों के आधार पर हुई है। अपितु इस प्रवृत्ति का संबंध अति प्राचीन भारतीय परंपरा से है। संस्कृत के छन्द वार्णिक छन्द हैं, जिन्हें वृत्त छन्द कहा जाता है। प्राकृत अथवा अपभ्रंश के छन्दों को मात्रिक अथवा जाति छन्द कहा गया है। गुरुवाणी साहित्य में इन्हीं जाति छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इन जाति छन्दों की प्रवृत्ति के विषय में विद्वानों का विचार है, कि जाति छन्द जो प्रकृति से मात्रिक एवं संगीत प्रधान हैं, लोक भाषाओं के छन्द हैं। इन की परंपरा लौकिक रही है। अभिजात कोटि के काव्य साहित्य में जहां कहीं इनका उपयोग किया गया है, इन्हें लोक प्रचलित काव्यों से लिया गया है। कीथ महोदय ने संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त वार्णिक वृत्त छन्दों को अभिजात परंपरा की वस्तु कहा है, किन्तु मात्रिक जाति छन्दों को लौकिक काव्य (Folk Poetry) की ही उपज माना है।[१४] गुरुवाणी छन्द योजना के विषय में फ्रैडरिक पिन्कोट संत सिंह सेखों के विचार उपर्युक्त विचार से मिलते हैं। गुरुवाणी उसी प्रामाणिक छन्द प्रबंध के अनुसार रची हुई है, जिस के अनुसार इस से कोई प्राचीन भारतीय रचना अथवा पुरातन कविता; यदि कुछ भेद है तो उस स्वतंत्रता का है जो छन्द प्रबन्ध का पालन करते हुए भी गुरुवाणी अथवा गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने ली है। एक सीमा तक यह स्वतंत्रता हमारे लोक-गीतों के स्वभावानुसार है, और यह बात निश्चय ही प्रतीत होती है कि गुरुवाणी की छन्द योजना की यह स्वतंत्रता लोक गीतों की स्वाभाविक स्वतंत्रता के कारण है। अथवा यूं कहना उचित होगा, कि जहां गुरुवाणी का कलेवर छन्द का है, वहां इसने लोक-गीतों के स्वभावानुसार स्वतंत्रता ली है। गुरु ग्रंथ की वारों के आरंभ में कतिपय लोक-वारों की ध्वनियों पर उन्हें गाये जाने के शीर्षक संकेतों के अन्तः साक्ष्य से यह बात स्वतः सिद्ध है यथा आसा की वार को टुंडे असराजे की ध्वनि, तथा माझ की वार को मलक मुरीद तथा

१३- अपभ्रंश साहित्य पृ० ४०३

१४- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- १६४

चंद्रहड़ासोहीआ की ध्वनि पर गाने का संकेत है।[१४] यह काव्य जिसमें छन्दों की स्वतंत्रता का रुचि पाई जाती है, छन्द-रहित नहीं कहा जा सकता। हिन्दी भक्ति साहित्य में लौकिक मात्रिक छन्दों का ही विशेष उपयोग किया गया है। गुरु ग्रंथ में कतिपय ऐसी काव्य शैलियों का उपयोग हुआ है जो स्पष्टतया लोक गीतों पर आधारित हैं, अथवा इन शैलियों के विषय में यूं कहना और भी युक्ति संगत होगा, कि यदि इन में से जीवात्मा, परमात्मा अथवा मायादि वर्ण्य-विषय को अलग कर दिया जावे तो यह लोक गीत ही हैं। इन शैलियों की नामावली इस प्रकार है: बावन अखरी, थिति तथा वार(सतवारा) का प्रयोग कबीर की रचना में हुआ है। कबीर के पश्चात् गुरु नानक देव जी हैं, जो लोक काव्य की धुनियों से अधिक प्रभावित हुए हैं। उनके विषय में तो विश्वास है कि माझ राग की संगीत रचना माझे प्रदेश की कतिपय लोकध्वनि के आधार पर उन्होंने की थी। उनकी रचना में, पहरे, पट्टी, अलाहणीआं, आरती, सुचज्जी, कुचज्जी, थिति, ओंकार, सोहले, बारहमाह आदि की रचना लोक गीतों के आधार पर हुई है।[१५(क)] उपर्युक्त काव्य शैलियों में से गुरु अर्जुन देव ने पहरे, बारह माह, बावन अखरी, थिति तथा सोहले का प्रयोग किया है। इस के अतिरिक्त रुति, अंजुलियां, गाथा, फुनहे, चउबोले आदि काव्य शैलियों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। सुखमनी, तथा मंदावणी नामक भी उनकी विशिष्ट रचनाएं हैं। श्री राग (पृ० ९३ पर, आ०ग्रं०) में भी भगत बेणी की वाणी को 'पहरिआ के घरि गावणा' का संकेत है।

मात्रिक छन्दों के बारे में जिनका प्रयोग आदि ग्रंथ में हुआ है, और जिन के नाम हमें काव्य शास्त्र के ग्रंथों में मिलते हैं, विचार करने से पूर्व काव्य की उपर्युक्त शैलियों पर विचार करना अच्छा होगा। क्योंकि सन्त-काव्य की शैलियों का सीधा संबंध लोक-काव्य से है, और उपर्युक्त नाम लोक-गीतों की धारणाओं के ही हैं। डा० रवीन्द्र भ्रमर इस संबंध में लिखते हैं, 'सन्त-काव्य पर लोक-गीतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, सन्त कवियों के लिखे हुए पद या सबद लोक गीतों से बहुत भिन्न नहीं हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग के

१५- पंजाबी भाव शिरोमणी- पृ० ६५

१५(क). थिती, पट्टी तथा आरती का उपयोग कबीर ने भी किया है। पट्टी, अलाहणीआं, वार(सतवारा) तथा सोहले का प्रयोग गुरु अमरदास ने भी किया है। 'अनंद' नाम का एक रचना भी राग रामकली में उन्होंने की है। गुरु रामदास ने पहरे, वणजारा, करहले तथा घोड़ियां की रचना लोक गीतों के आधार पर की है।

संपूर्ण देशी भाषा के साहित्य को लोक साहित्य मान लेने के पक्ष में हैं।"[16] आगे [illegible] ने लिखा है, "इन पदों में [illegible] ध्रुव, आभोग, और गुरु के आलौकिक संकेतों को अलग कर देने पर शैलीगत शिल्प की दृष्टि से इन्हें लोक गीतों की ही कोटि में रखा जा सकता है।"[17] संत कवियों ने लोक गीतों की केवल सरल शैली ही नहीं अपनाई है वरन् कतिपय प्रचलित लोक गीतों को भी ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।[18] इस संबंध में गुरु ग्रंथ में कुछ गीत-पद्धतियाँ दृष्टव्य हैं। इन गीत पद्धतियों को भी रागों के अधीन रखा गया है, यथा गुरु अर्जुन देव का बारहमाहा माझ राग से संबंधित है, तथा गुरु नानक का बारहमाहा तुखारी राग से संबंधित है। गुरु रामदास के करहले तथा गुरु अर्जुन देव की बावन अखरी गउड़ी राग से संबंधित है। गुरु अर्जुन के बिरहड़े (विरह गीत) आसा राग के अधीन हैं, और रविदास, गुरु नानक, श्री सैन तथा भगत धन्ना की आरतियाँ धनासरी राग के अंतर्गत हैं, और कबीर दास की आरती प्रभाती राग से संबंधित है। बाबा सुन्दर जी की सद्द रामकली राग में है। गुरु अर्जुन देव की अंजुलियाँ राग माझ में हैं। अस्तु: अनेक लोक गीतों पर आधारित काव्य पद्धतियाँ भी रागों से संबंधित हैं।

विवेच्य विषय में सर्व प्रथम भाषा लोक काव्य से संबंध रखने वाले आदि ग्रंथ में व्यवहृत काव्य रूपों को लेना उचित होगा।

(१) <u>वर्णमाला- परक काव्य- बावन अखरी, पट्टी</u> : आदि ग्रंथ में गौड़ी राग में संत कबीर[19] तथा गुरु अर्जुन देव[20] की बावन अखरी नाम की रचनाएं हैं, और आसा राग में गुरु नानक[21] तथा गुरु अमरदास की पट्टियाँ हैं। कबीर की बावन अखरी का आरंभ मुसलमानों तथा हिन्दुओं के लिये अल्लाह तथा ओंकार की समन्वयात्मक दृष्टि से व्याख्या करते हुए किया गया है। अक्षर क्रम देवनागरी लिपि वाला है, परन्तु उच्चारण गुरु-मुखी लिपि वाला है, 'ष' के स्थान पर 'ख' और 'श' के स्थान 'स' का प्रयोग हुआ है। गुरु नानक देव की पट्टी

१६- [illegible] भारती खंड १ अंक १ पृ० ७१ हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व। पृ० १८४ पर उद्धृत।

१७- वही पृ० १८५

१८- वही पृ० १८६

१९- आ०ग्रं० पृ० ३४०

२०- आ०ग्रं० पृ० ४३२

२१- आ०ग्रं० पृ० ४३२

से अक्षर से आरंभ होता है। इसमें गुरु-मुखी लिपि वाले ही अक्षर क्रम
म, इ, ३, ड, र, ष, म, ग, ... ३, ५ रहे हैं। इस पट्टी के अन्त में नानक शायर इव कहितु है इस प्रकार गुरु जी ने शायर की पदवी को अपने लिये स्वीकार किया है। ऐसा जान पड़ता है, गुरु जी को अपने शायर होने पर गर्व था, आसी रागु के सलोकों में भी कहा है: नानकु शायरु एव कहतु है, सचे परवरदगारा।[23]
गुरु अमरदास की पट्टी भी आसा राग में है, और गुरु नानक की पट्टी के पीछे लिखी गई है। इस पर स्पष्टतया गुरु नानक की पट्टी का प्रभाव है। इस में केवल ड़, ल, स, ग, क, ठ, ध, प, न, व, फ, ग, छ, र इन १५ अक्षरों का प्रयोग किया गया है। गुरु अर्जुन देव की बावन अखरी कबीर जी की बावन अखरी से प्रभावित है, और यह दोनों रचनाएं गौड़ी राग में हैं। इन रचनाओं की छन्द-योजना पर विचार करने से गुरु ग्रंथ के संपादक की अतीव प्रतिभा का पता चलता है। गुरुनानक और गुरु अमरदास की पट्टियों में केवल दवैया अथवा सार छन्द है। गुरु नानक की पट्टी के विषय में प्रिंसीपल सन्त सिंह सेखों लिखते हैं: इस पट्टी में पैंतीस पद हैं, और पहले पद के पश्चात् दो तुकों का रहाउ (टेक) है, ये दोनों पंक्तियां अन्य पदों के साधारण मात्रिक तोल से भिन्न हैं। पट्टी में दवैया (१६ + १२) मात्राओं अथवा (१६ + १४) मात्राओं का है। रारै रवि रहिआ सभ अंतरि जेते कीए जंता (१६ + १२) तथा ससै सोई स्रिसटि जिनि साजी, सभना साहिबु एकु भइआ (१६ + १४)।[24] यह दोनों पट्टियां एक तोल और लय में होने के कारण ही आसा राग में हैं। कबीर जी और गुरु अर्जुन देव की बावन अखरियां गौड़ी राग में हैं। दोनों का छन्द दोहा-चौपाई है। कबीर ने दोहों तथा अष्टपदियों का प्रयोग किया है। गुरु अर्जुन देव ने दोहों तथा अष्टपदियों का प्रयोग किया है। सन्त-काव्य में बावन अखरी के लिये दोहा- चौपाई का प्रयोग प्राय: किया गया मिलता है। हिन्दी साहित्य कोश में इस के बारे में लिखा है: दोहा एवं चौपाई छन्दों का एक साथ प्रयोग सूफी कवियों ने

२३- आ०ग्र० पृ० ६६०

२४- पंजाबी काव शिरोमणी- संत सिंह सेखों पृ० ८३

अपने प्रेम गाथाओं में किया है, जिनका न कतिपय शब्दों का रोमनों में भी पता पड़ता है। इन शब्दों के प्रयोग वाला एक दूसरा अन्य प्रकार ग्रंथ बावनी नाम से मिलता है, जिसकी चिपाइयों का आरम्भ क्रमशः नागरी लिपि के बावन अक्षरों से होता है, और जिस की पक्ति पर निर्मित अक्षरावली, चौंतीसा, ककहरा आदि तथा फारसी लिपि के अक्षरानुसार लिखे जाने वाले अलिफ नामा, सीहर्फी आदि पाए जाते हैं।[२५] आदि ग्रंथ का पट्टी तथा बावनअखरी रचनाएं भी इस परंपरा में हैं, जिस प्रकार आदि ग्रंथ में बावन अक्षरों में 'श' के स्थान पर 'स' और 'ष' के स्थान पर 'ख' का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार जायसी की अखरावट में हुआ है। जायसी ने जो 'ङ' 'ञ' और 'ण' (के लिए न) और 'श' के स्थान पर 'स' लिखा है।[२६] यह भी लोक भाषा की उच्चारण प्रवृत्ति के अनुकूल हुआ है।

जहां तक इस वर्णमाला परक काव्य-प्रकार की परंपरा का संबंध है, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "वर्णमाला के अनुसार काव्य रचना करने की परंपरा कुछ नयी नहीं था और इस के उदाहरण योरोप के साहित्य में भी मिल सकते हैं। जैसा कवि चौसर (मृत्यु १४०० ई०) ने अपनी एक ऐसी ही रचना (ABC...) द्वारा वर्जिन मेरी के प्रति अपना भक्ति प्रदर्शित की है। कहा जाता है, कि वह भी सन् १३३० ई० में किसी फ्रेंच साधु द्वारा लिखी गयी कविता के आधार पर है।"[२७] पाश्चात्य साहित्य में इसे अलफाबेट सांग कहा गया है।[२८] साहित्य में वर्णमाला परक काव्यों को शैली लोक से आई है ऐसा जान पड़ता है। लोक जीवन में इस प्रकार की गीत या वार्ता-शैलियां बहुत अधिक प्रचलित रही हैं।[२९]

२- आचार परक काव्य: आरती-पहरे थिती, दिनरैण, सप्तवार, सुचा, कुचजी और गुणवंती।

गुरु ग्रंथ में कतिपय काव्य-कृतियां इस प्रकार की भी मिलती

२५- हिन्दी साहित्य कोश-संत काव्य- ३११

२६- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- पृ० १३३

२७- I Iailavoix- Geoferery Chaucer-London-page 68

पर से उत्तर भारत की संत परंपरा द्वितीय संस्करण पृ० १६८ पर उद्धृत।

२८- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १३२

२९- वही पृ० १३२

जिन का संबंध सन्त मतों के समाज और उनकी साधना-पद्धति में प्रचलित आचार-विधान से है। उदाहरण के लिये सगुण भक्ति में विभिन्न संस्कारों में प्रयुक्त वस्तुओं थाल, दीपक, मोती, धूप, चवर, फूलादि की सामग्री जुटा कर आरती उतारने का विधान था। परन्तु सन्त कवियों ने उस प्रभु की आरती उतारने के लिये इन संस्कार-वस्तुओं की आवश्यकता नहीं समझी। जैसे गुरु नानक गगन को थाल, रवि-शशि को दीपक, तारक-मण्डल को मोती, मलयानिल को धूप, पवन को चवर, तथा सकल वनस्पति को फूल मानता समझता है।[30] सन्तों को यह आरती-प्रकार नाथ योगियों से प्राप्त हुआ। गोरखनाथ ने गोरखबानी में ऐसी ही शैली में अनेक स्थानों में आरती लिखी है।[31] आदि ग्रंथ में कबीर[32] की प्रभाती राग में तथा गुरु नानक,[33] रविदास,[34] सेण तथा धन्ना की धनासरी राग में आरतियां हैं। आरती की परंपरा तो गोरखनाथ से भी प्राचीन है। परन्तु सन्तों की आरती तथा उस प्राचीन आरती में भेद यह है कि वह सांसारिक वस्तुओं का आश्रय लेती थी, परन्तु सन्तों ने उस महानदेव की आरती उतारने के लिये इन सांसारिक वस्तुओं को जो उसी की दी हुई हैं, आवश्यक नहीं माना और उस प्रभु के गुण स्मरण वाणी को सर्वव्यापक कर दिया। गुरु नानक, कबीर, रविदास की आरतियों का एक ही छन्द है। इसे आरती का कहना उचित है। यह अपनी तरह का विशेष छन्द है। इस की पंक्तियों में [illegible] रूपता हुआ राग है, और सबद भी बहुत रागमयी हैं। श्री सेण और धन्ना की आरतियां चौपाई छन्द में हैं।

पहरे आदि ग्रंथ के काव्य प्रकारों में एक हैं। आदि ग्रंथ में श्री राग में गुरु नानक देव, गुरु राम दास तथा गुरु अर्जुन देव के पहरे हैं। पहरे लोक-काव्य का रूप है और इन में विचार, पंक्तियों, शब्दावली तथा टेक की पुनरावृत्ति की गई है। इस काव्य रचना में मनुष्य की आयु को चार पहरों अथवा भागों में विभक्त किया गया है, यथा गुरु नानक देव के पहरे:

३०- आ०ग्रं० पृ० १३ तथा ६६३

३१- गोरखबानी पृ० १५[illegible]-१५[illegible]

३२- आ०ग्रं० पृ० १३५०

३३- आ०ग्रं० पृ० ६६[illegible]

३४- आ०ग्रं० पृ० [illegible] तथा पृ० ४३।

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु।xx।

दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मैमति।xx।

तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ।xx।

चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणा।[37]

गुरु राम दास के पहरे तथा गुरु अर्जुन देव के पहरे भी इसी शैली में हैं।[38]

लोक- काव्य का एक रूप दिन रैण है, जिस का प्रयोग गुरु अर्जुन देव की रचना में हुआ है। इस में मनुष्य को दिन-रात में जो शुभ-कार्य करने चाहिएं उनका निर्देश किया गया है। यथा:-

सेवी सतिगुरु आपणा हरि सिमरी दिन सभि रैणि।[39]

यह रचना माझ राग में है, जो पंजाब का देशी राग है, और अपने नाम के अनुसार माझे प्रदेश से संबंधित है। इस की रचना गुरु नानक देव ने किसी लोक ध्वनि के आधार पर की होगी। गुरु अर्जुन देव ने दिन रैन की लोक-काव्य पद्धति की रचना इसी राग में की है।

सन्त काव्य में साधना-परक आचार की व्याख्या के लिये एक और काव्य प्रकार प्रसिद्ध है। इसे पंद्रह तिथि कहते हैं। जिस प्रकार बावन-अखरी में अक्षर क्रम से तथा पहरों में पहले पहरे से क्रम आरंभ करके काव्य रचनाएं की गई हैं, इसी प्रकार अमावस अथवा एकम से आरम्भ करके पंद्रह तिथियों के आधार पर आचार-परक काव्य की रचना हुई है। गुरु ग्रंथ में इसे थिति लिखा गया है। कबीर[40], गुरु नानक[41], तथा गुरु अर्जुन देव की इस प्रकार[42]

३७- श्री राग म: १ आ०ग्र० पृ० ७५-७६

३८- आ०ग्र० पृ० ७६-७७ तथा पृ० ४३

३९- माझ म: ५ आ०ग्र० पृ० १३६

४०- आ०ग्र० पृ० ३४३

४१- आ०ग्र० पृ० ८३८

४२- आ०ग्र० पृ० २९६

की रचनाएं आदि ग्रंथ में हैं। कबीर तथा गुरु अर्जुन देव की 'थिती' गउड़ी राग में हैं। यह रचना संतों के सर्व प्रिय छन्द चौपाई में हैं। रचना में संगीत की सरलता एवं शब्दों की सरलता के कारण यह वाणी बहुत मधुर है। वैसे भी रचना संक्षिप्त है:-

अमावस महि आस निवारहु। अंतरजामी राम समारहु।
पूनिउ पूरा चंद आकास : पसरहि कला सहज परगास।

गुरु अर्जुन देव की रचना 'थिती' कबीर की रचना से अधिक विस्तृत है, परन्तु कबीर का प्रभाव इस पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस रचना में छन्दों की भी विविधता है। दोहा चौपाई (सलोक- पउड़ी) दोनों का प्रयोग किया गया है। कबीर की रचना ने आदि ग्रंथ का लगभग एक पृष्ठ लिया है। गुरु अर्जुन देव की रचना चार पृष्ठों से भी कुछ अधिक है। कविता का विषय कबीर की वाला ही है। गुरु अर्जुन देव जी ने जहां भी किसी पूर्ववर्ती सन्त का प्रभाव स्वीकार किया है उस विचार की आदि ग्रंथ में विशद् विवेचना प्रस्तुत कर दी है, यह उनकी उस विचार के प्रति श्रद्धा तथा दृढ़ आस्था के कारण हुआ है। दूसरा कारण यह है, कि वे गुरु ग्रंथ का मनन करने वाले के लिये उस विचार को स्पष्टतम रूप में प्रस्तुत कर देना आवश्यक समझते थे। जैसे कबीर का शबद : 'असथावर जंगम कीट पतंगा। अनिक जनम कीए बहुरंगा,' रहाउ की चार पंक्तियों तथा अन्य छः कुल दस पंक्तियों का पद चौपाई छन्द में है।[४३] गुरु अर्जुन देव का इस राग (गउड़ी) में इस विचार पद्धति का अनुसरण करता हुआ एक विस्तृत पद है, जिसका छन्द भी चौपाई है। 'कई जनम भए कीट पतंगा, कई जनम गज मीन कुरंगा।'[४४] गुरु अर्जुन की रहाउ की छः और उस के पश्चात् बारह कुल अठारह पंक्तियां हैं। गुरु अर्जुन की 'थिती' भी इसी प्रकार कबीर से चौगुनी हो गई है। इस में एकम तिथि से लेकर 'अष्टमी' तक का वर्णन दोहा छन्द में हुआ है। सलोक तथा पउड़ी दोनों दोहा छन्द में हैं।

एकम एकंकारु प्रभु करउ बंदना धिआइ।
गुण गोबिंद गुपाल प्रभ, सरनि परउ हरि राइ।[४५]

४३- आ०ग्रं० पृ० ३२५-३२६   ४४- आ०ग्रं० पृ० १७६

४५- आ०ग्रं० पृ० २९६

नवमी तिथि से पउड़ी का छन्द चौपाई हो गया है, और श्लोक दोहा छन्द में ही रहते हैं।

नउमीं नवे छिद्र अपवीत। हरिनाम न जपहि करत बिपरीति।
पर-त्रिय रमहि बकहि साध निंद। करन न सुनही हरि जसु बिंद।[४६]

प्रिंसीपल संत सिंह सेखों लिखते हैं: गुरु अर्जुन की थिती १७ श्लोकों तथा १७ पउड़ियों की है। तीस श्लोकों तथा पउड़ियों, दोनों का दोहरा है।[४७] संभवत: उन्होंने नवमी तिथि तक यह रचना पढ़ कर नहीं देखी, नहीं तो इस से उपरान्त आने वाली पउड़ियों का छन्द स्पष्टतया चौपाई ज्ञात हो जाता।

गुरु नानक देव की रचना 'थिती' बिलावल राग में है। गुरु नानक की रचना भी कबीर से प्रभावित है और यह भी पर्याप्त विस्तृत है। यह रचना आदि ग्रंथ के पूरे दो पृष्ठों तथा तीन पंक्तियों को घेरती है।[४८] इसमें कबीर की रचना की भांति केवल चौपाई छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। इस में एक प्रभु के नाम सुमरण पर बल देते हुए द्वैत भावना का त्याग करने, परमात्मा को सर्वव्यापक मान कर तीनों अवस्थाओं से विरक्त हो कर 'तुरिया' अवस्था में निवास करने का आदेश है, तथा सिद्धों एवं पाखंडी साधुओं की साधना के बाह्याचार का निषेध कर के, 'आप पछाणै का सतिगुरु पावै', तथा 'ममता जाल ते रहै उदासा', पर बल दिया गया है।[४९]

जहां तक तिथियों के क्रम पर आधारित रचना करने की पद्धति का संबंध है, इस की परंपरा बहुत पुरानी है। गोरखबानी में 'पंद्रह तिथि' नाम की रचना इसी प्रकार की रचना है। कबीर ने यह रचना सम्भवतः जोगियों की पद्धति पर की है। जोगियों में इस की गणना अमावस से शुरू होती है, फिर दुतिया, तृतीया- इस प्रकार क्रमशः चलते हुए पंद्रह तिथि की गणना है। कबीर की रचना में भी यही क्रम है। गोरखबानी की इस रचना के अंत में 'पंद्रह तिथि कला की संधि। मछींद्र वादे थिर भया कंध', कहा है, कबीर ने 'पंद्रह तिथि' के स्थान पर 'पूनिउ पूरा चंद आकास। पसरहि कला सहज परगास।'

४६- आ०ग्रं० पृ० २६८

४७- पंजाबी काव्य शिरोमणी पृ० १७७

४८- आ०ग्रं० पृ० ८३८-४०

४९- आ०ग्रं० पृ० ८४०

में पूनिउ (पूर्णिमा) शब्द का प्रयोग किया है। गुरु नानक तथा गुरु अर्जुन देव की रचना में एकम से आरंभ कर चौदह तिथि के पश्चात् पंद्रहवीं तिथि अमावस रखी गई है। योगियों ने भी यह पद्धति अपने पूर्ववर्ती सिद्ध साधकों से ग्रहण की जान पड़ती है।

थिति से मिलती जुलती रचना सतवार है, आदि ग्रंथ में यह रचना थिति के पश्चात् ही दी गई है। कबीर की थिति रचना में जो सातवार है, सतवार उसी में ही सम्मिलित कर दिया गया है। यथा: राग गउड़ी थिती कबीर जी की।। सलोकु।। पंद्रह थितीं सातवार।[50] इसी प्रकार गुरु नानक की बिलावलु म: १ थिती घर १० जति[51] के समाप्त होने पर ही बिलावलु महला ३ वार सत घरु १० का आरंभ होता है। दोनों रचनाएं एक ही राग तथा एक ही ताल में हैं, जैसे कबीर की थिती तथा वार दोनों एक ही राग और ताल में हैं। जबकि कबीर की रचना केवल आधे पृष्ठ पर है, गुरु राम दास की रचना दो पृष्ठों से अधिक है। दोनों रचनाएं आदित (आदित्य) अथवा ऐतवार से आरंभ होती हैं, तथा शनिवार पर समाप्त होती हैं। कबीर ने शनिवार अथवा शनिश्चरवार के स्थान पर थावर का प्रयोग किया है।[52] गुरु रामदास ने छनिछरवारि का प्रयोग किया है, जो पंजाबी प्रभाव के कारण है। गुरु अमरदास ने सतवार की रचना एक पृष्ठ में समाप्त कर एक पृष्ठ पंद्रह थिति से सत वार। माहा रुति आवहि वार वार। दिनसु रैणि तिवै संसार। आवागउणु कीआ करतारि, की व्याख्या पर लिखा है, और तिथियों-वारों की शुभ-अशुभ भावना के अन्धविश्वास का आवरण इन शब्दों से दूर किया है: थिती वार सभि सबदि सुहाए। सतिगुरु सेवे ता फलु पाए। थिती वार सभि आवहि जाहि। गुर का सबदु निहचलु सदा सचाहि।[53]

सप्तवार (सतवार) लिखने की परंपरा भी प्राचीन है। कबीर के पूर्ववर्ती नाथ योगी साधक ऐसे ही लोकप्रिय काव्य प्रकारों में अपनी रचनाएं करते थे। गोरख बानी के कर्त्ता के समक्ष सप्तवार लिखने की प्रथा थी। कबीर की इस रचना की शैली तथा गोरखबानी की शैली में आश्चर्यजनक साम्य है। प्रथम तो गोरखबानी में भी कबीर की भांति शनिश्चरवार के लिये थावर थिर

50- आ०ग्र० पृ० ३४३

51- आ०ग्र० पृ० ८३८

52- आ०ग्र० पृ० ३४४

53- आ०ग्र० पृ० ८४२

का आसण देहु का प्रयोग हुआ है। कबीर की शैली से गोरखबानी अथवा गोरखनाथ के सप्तवार का तुलनात्मक अध्ययन अति रोचक है:-

गोरखनाथ (सप्तवार श्री गोरख कत)	कबीर (बार कबीर जी के)
१- सोमवार मन धरिबा सुंनि।	१- सोमवार ससि अंम्रित झरै।
छिबत काया पावन पुंनि।	चाखत बेगि सगल बिष हरै।
ससिहर बरिखा अंबर झरै।	बाणी रोकिला रहे दुआरि।
तौ सोमवार गुण एता करै	तब मन मतवारो पीवन हारि।
२- बुधवार गुर दीन्ही बुधि।	२- बुधवारि बुधि करै प्रगासु।
बिचरौं काया पावौ सिधि	हिरदै कमल महि हरि का बासु।
सिव घरि सकती पाणी भरै।	गुर मिलि दोऊ एक सम धरै।
तौ बुधवार गुन एता करै।	उरध पंक लै सूधा करै।
३- थावर थिर करि आसण देहु।	३- थावर थिर करि राखै सोइ।
बारह सोलह[५४] गिण गिण लेहु।	जोति दीवटी घट महि जोइ।
ससिहर के घरि आवै भांण।	बाहरि भीतरि भइआ प्रगास।
तौ दिनदिन थावर गगन मंडाण।	तब हुआ सगल करम का नासु।
सातौ बान्धा एकै रासा।	जब लग घट महि दूजी आन।
काला मीरा बैसे पास	तउ लउ महलि न लाभै जान।
चढै प्राणी परचा भया।	रमत राम सिउ लागो रंग।
सप्तवार श्री गोरख कह्या	कहि कबीर तब निरमल अंग

उपर्युक्त तुलना से पता चलता है कि कबीर ने गोरखनाथ के सप्तवार की शैली का ही अनुसरण नहीं किया, अपितु एक ही छन्द में, एक एक

५४- सूर्य का बारह और चन्द्रमा का सोलह कलायें "द्वादस दल भीतरि रवि सकति, ससि षोडस सिव थान।" गोरखबानी पृ० ११०।

धार को उतनी ही वरीयता दी है, किन्तु गोरखनाथ ने। योगियों ने पारिभाषिक शब्दों को सुगम ढंग से प्रस्तुत करते हुए हठ योग के स्थान पर सुरति शब्द योग की व्याख्या करते हुए 'रमत राम सिउ लागो रंगु', कहकर राम नाम सुमिरन पर जोर दिया है। इतना होते हुए भी कबीर जी की रचना से स्पष्ट पता चलता है कि अपने सम्प्रदाय की रचना उन्होंने गोरखनाथ के सम्प्रदाय को समक्ष रख कर की है।

व्यवहारपरक काव्य के अधीन ही आदि ग्रंथ में गुरु नानक की रचनाएं कुचजी- सुचजी हैं जो सूही राग में निबद्ध है। 'कुचजी' शीर्षक के अंतर्गत पति परमेश्वर से बिछुड़ी हुई जीव रूप स्त्री को व्यवहारहीन स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पति के उपकारों को भूलकर अपना अहमन्यता में खोई रहती है। सुचजी शीर्षक के अंतर्गत परमेश्वरोन्मुख निष्ठापूर्ण व्यक्ति को एक सुलक्षिणी नारी के रूप में व्यक्त किया गया है। इसी राग में गुरु अर्जुन देव की रचना गुणवंती है, जिसमें इस शीर्षक के अन्तर्गत ऐसी सुहागिनी स्त्री का वर्णन है, जो एक पूर्ण साधक अथवा गुरु का अवतारधान शिष्य है। गुरु नानक ने मारू राग की गुरु अमरदास की वार में 'सुचजी कुचजी' का वर्णन किया है। (आ. ग्रं. १०८८)

३- <u>यात्रा परक काव्य (वणजारा- करहले)</u>

इन दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत गुरु राम दास की रचना है। श्री राग में 'वणजारा' की रचना में इस जीवात्मा को प्रवासी जीव के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपने प्रदेश से इस लोकमें हरिनाम का व्यापार करने के लिये आया है। यदि यह जीव अपने इस कार्य में सफल होता है तो यह सफल वणजारा (व्यापारी) है- यथा:

> जिन कउ पूरबि लिखिआ से आइ मिले गुर पासि ।
> सेवक भाइ वणजारिआ मित्रा गुरु हरि हरि नामु प्रगासि।
> धनु धनु वणजु वापारीआ जिन वखरु लदिअड़ा हरि रासि।
> गुरमुखि हरि दरि उजले से आइ मिले हरि पासि।[५१]

५१- आ. ग्रं: पृ० ८२

गउड़ी राग में गुरु राम दास की इस रचना करते हैं। यह भी एक यात्रा-परक गीत है। इसमें पुनः इस जीव को प्रवासी कहा गया है, जो व्यापारार्थ

इस लोक में आया है, यदि यह हरि नाम की पूंजी एकत्रित करके लाभान्वित होकर जाता है तो उसका स्वदेश (ब्रह्मलोक)में महान् प्रतिष्ठा एवं स्वागत होता है:-

करहले मन परदेसीआ किउ मिलीऐ हरि माइ ।
मन करहला वाडभागीआ हरि राम नामु धिआइ।
जिथै लेखा मंगीऐ हरि आपे लए छडाइ।
घरु जाइ पावहि रंग महलि गुरु मेले हरि मेलाइ।[५६]

करहला के अर्थ ऊँट होते हैं। इस गीत के विषय में प्रिंसीपल संत सिंह सेखों लिखते हैं,

करहला शब्द संभवतः सिंधी करहो अर्थात ऊँट का रूपांतर है अथवा उस से बना है। इस के अर्थ ऊँट अथवा ऊँटों वाले तथा काफिले के साथ गाये जाने वाले गीत के हो सकते हैं। गुरु रामदास ने मन को करहला (ऊँट) कह कर संबोधन किया है।[५७] इस गीत के विषय में आदि ग्रंथ (शबदार्थ) के संपादकों ने उत्कृष्ट टिप्पणी दी है। ऊँटों वाले ऊँटों पर माल लाद कर सुदूर देशों में फिरते हैं,और साथ साथ एक विशेष स्वर वाला गीत भी गाते जाते हैं। प्रस्तुत गीत उसी लोक गीत की पद्धति से प्रभावित है।[५८]

४-५ संस्कार-परक काव्य

सोहिले, घोड़ियां, अलाहणीआं, लावां, छंद तथा अंजुलीआं।

सोहिले- विवेच्य साहित्य में कुछ काव्य प्रकार लोक जीवन में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों से संबद्ध मिलते हैं। इस दिशा में जन्म संस्कार, सगाई तथा विवाह संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों ने धार्मिक काव्य के निर्माण में यत्किंचित योग प्रदान किया है।

५६- आ. ग्रं -पृ.२३४ ५७- पंजाबी काव शिरोमणी पृ०१६७

उदाहरणार्थ जन्मोत्सव तथा ब्याह आदि विवाहोत्सव मैंगाए जाने वाले सोहर (सोहले) को लिया जा सकता है। 'सोहर' शब्द से सोहिला बना है। 'सोहर' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सूतिका-गृह', और प्राकृत के 'सुइहर' से हुई है। इस गीत में ह का यह नाम व्यवहृत होता है, जैसे 'बाजे लागे अनंद बधइया उठन लागे सोहर'। इसे 'सोहिलों' या 'सोहला' भी कहते हैं। संस्कृत- शोभायत- प्राकृत- सोहलम्, हिन्दी: सोहला। यह गीत इस देश का एक अत्यन्त प्राचीन लोक गीत है।[60] जायसी ने अपने पद्मावत में इसका उल्लेख किया है। "सब कविलास किया सोहिला"। यह उस समय का वर्णन है जब रत्नसेन सिंहल द्वीप को बरात लेकर जाता है।[61] इस से स्पष्ट है यह विवाह संस्कार का गीत है। पंजाबी में एक लोकोक्ति है: 'डूमां दे घर सोहिले, मन भाउंदे ही गाण, (डूमों के घर सोहिले, मन भावें वही गावें)। डूमों को जन्मोत्सव तथा विवाहोत्सव अथवा सगाई आदि पर बुलाकर गाने बिठाना पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में एक आम रिवाज रहा है। गांवों में यह अब भी प्रचलित है। पंजाबी कवि दामोदर गुलाटी ने हीर की सगाई का वर्णन करते हुए कहा है: 'आख दमोदर डूमां ताईं आपणे घर मिजमान बणाए।(हीरदी कुड़माई)

गुरु ग्रन्थ में राग मारू में सोलह पदों वाले सोहले हैं जिन के छन्द बड़े लम्बे हैं। किसी किसी सोहले में एक आध पद अधिक भी है। यह पद छंद की भांति बड़े संगीतमयी हैं। इनका तोल माफ राग के पदों का सा है। यथा 'साचा सच सोई अवरु न कोई',[62] जिनि सिरजी तिन ही फुनि गोई।' जिउ भावै तिउ राखहु रहणा, तुम सिउ किआ मुकराई हे। 'आई हे' का यह तुकांत पहले 9: सोहिलों में सब पदों में है। इस के पश्चात् ई के स्थान पर 'ना', 'रा', 'ता' आदि ध्वनियां बदल गई हैं। परन्तु अन्त में हे वाले सोहिलों में भी स्थिर है। इसके पश्चात् पांच सोहिलों में तुकांत 'आइदा' तथा अगले पांच में 'आइआ' हो गया है। यह गुरु नानक के सोहिले हैं। गुरु अमरदास गुरु राम दास तथा गुरु अर्जन देव के भी इस राग में सोहिले हैं और इन में

60- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- 140 हिन्दी साहित्य कोष-864

61- पद्मावत,जायसी 283,6 संपादक डा० माता प्रसाद गुप्त।

62- आ. ग्र. पृ० 1020

तुकांत का यही अनुपात चलता है। जैसे कि म: १ आदि ग्रंथ पृ० १०२० से १०४३ तक; म: ३, पृ० १०४३ से १०६६ तक; म: ४, पृ० १०६६ से १०७१ तक तथा म: ५, पृ० १०७१ से १०८६ तक में।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं सोहिला जन्मोत्सव अथवा विवाहोत्सव का गीत है। मारू राग में गुरु साहिबान के सोहलों में सृष्टि तथा उसके विविध पदार्थों की अस्तित्व प्राप्ति (जन्म) का वर्णन है। किस प्रकार शून्यावस्था से जब गहन अंधकार था उस में से प्रभु ने अपने आप का सृजन किया और फिर उसी शून्य से सारी सृष्टि की रचना का जो वर्णन है उसका मंगल गान इन सोहिलों का विषय है। इन सोहिलों में शिव (पुरुष) तथा शक्ति (प्रकृति) के मांगलिक संयोग का सोहर गाया गया है। सोहिलों की छन्द गति धीमी चाली धारा की भांति लंबे स्वर वाली है। यथा:-

> हेठ पताल सपत नहीं सागर, नदी न नीरु वहाइदा।[63]
>
> अगनि पाणी जीअजोति तुमारी सुंने कला रहाइदा।
>
> आपे कुदरति करि करि देखै सुंनहु सुंनु उपाइदा।[64]

२- घोड़ियां: यह विवाहोत्सव का पंजाब का लोकप्रिय गीत है। जब दूल्हा ब्याहने के लिये जाता है, तब घोड़ी पर सवार होता और बहिनें घोड़ी की लगाम पकड़ कर घोड़ियां गाती हैं। जैसे:- वे वीर घोड़ी चढ़ंदिआ बागां सिर कलंगिआ। तेरे जोबण लोगे दे शगन मना लैंदीआं। शब्दार्थ गुरु ग्रंथ के संपादकों ने गुरु राम दास की आदि ग्रंथ में घोड़ियां नाम की रचना के बारे में टिप्पणी देते हुए लिखा है। दूल्हे के घोड़ी चढ़ते समय यह गीत गाया जाता है। इस गीत की ध्वनि पर दो शब्दों की रचना की गई है। इन में शरीर रूपी घोड़ी पर सवार होकर, साधु संगति की बरात

६३- आ. ग्र. पृ० १०३५

६४- आ. ग्र. पृ० १०३७

लेकर, संसार का दुर्गम तथा दुस्तर पंथ लांघ कर प्रभु-मिलन का वर्णन है। दोनों पदों में पहले शरीर को सुन्दर-सजीली घोड़ी से उपमा दी गई है। तत्पश्चात् गुरु-शब्द अथवा राम-नाम सुमिरिन को ज़ीन बनाया है। मन को वश करने वाले साधनों का लगाम तथा चाबुक बनाया है। इस प्रकार की घोड़ी पर सवारी करने वाली जीवात्मा को धन्य कहा है।[65] याद रहे घोड़ी गीत इतना लोकप्रिय है कि सूई-धागा बेचने वाली बाजीगरनियां ग्राम-फेरी में कुछ अनाज सूई धागा का और कुछ नन्हें-मुन्नों की घोड़ियां गाने का भी एकत्रित कर लेती हैं। जिस की धारणा इस ~~एक~~ प्रकार होती है:-

घोड़ी वे ! लटकंदे वाल सुहणे वे।
घोड़ी तों वारी दमड़ी वे! जोर्ने केहां करेंदी तेरी अंबड़ी वे! लटकंदे ...
घोड़ा नूं लगदे लाडू वे, जिहड़े नानीयां नचावे पेड़ा बापू वे,
लटकंदे वाल सुहणे वे ।

उपर्युक्त प्रकार की कितनी ही घोड़ियां यह घुमक्कड़ बाजीगरनियां एक कान पर हाथ रख कर गा गा कर सुना जाती हैं। सुहाग लड़की वालों के घर में और घोड़ियां लड़के वालों के घर में विवाह से कुछ दिन पूर्व रात को बैठ कर गाए जाने आरम्भ हो जाते हैं।

गुरु राम दास की घोड़ियां वडहंस राग में हैं। प्रत्येक घोड़ी की पहली दो पंक्तियां कोई २२-२२ मात्राओं की हैं, और अगली चार में ३२ से ३४ तक मात्राएं हैं। प्रत्येक घोड़ी की दूसरी पंक्ति में से कुछ विचार-परक पदों को लेकर घोड़ी की तीसरी पंक्ति में उस की संगीतमयी पुनरावृत्ति की गई है। तथा उस विचार पर टिप्पणी दी गई है। यथा:-

देह तेजणि जी रामि उपाईआ राम।
धनु माणस जनमु पुंनि पाईआ राम ।।
माणस जनमु वडपुंने पाइआ, देह सुइनंन रंगड़ीआ।
गुरमुखि रंगु चलूला पावै हरि हरि हरि नवरंगड़ीआ।।

देह (शरीर) को तेजाण (घोड़ी) बना कर इस पर अच्छी सूझ बूझ का ज़ीन डालने को कहा है। गुरू ज्ञान की कड़ीआल (लगाम) देकर

हरि प्रेम का चाबुक लगाने का आदेश है। इस प्रकार इस घोड़ी पर हरि रंग (में रंगी हुई आत्मा) को चढ़ाने को कहा है: जन नानक हरि किरपा धारी देह घोड़ी चढ़ि हरि पाइआ।[66]

३- अलाहुणीआं: यह एक शोक गीत है, जो मृत्योपरान्त बड़ी हीं हृदयग्राही एवं दोर्घलिम में विलाप-स्वर में गाया जाता है। इसी गीत पर आधारित यह विलाप-गीत रचे गए हैं। आदि ग्रंथ के पृष्ठ ५७१ से ५८२ तक गुरु नानक द्वारा रचित अलाहुणीआं हैं तथा पृ०५८२ से ५८५ तक गुरु अमरदास की रचनाएं इसी शोक गीत के आधार पर हैं। रचना वडहंस राग में है। एक स्थान पर वडहंस के साथ 'दखणी' रागिनी' को मिलाकर अलाहुणी गाने का निर्देश है।[67]

लोक गीतों में अलाहुणीओं में मरने वाले की बातों को स्मरण करके तथा परिवार के लिये उसकी उपादेयता को सम्मुख रख कर उसका नाम ले ले कर विलाप किया जाता है जैसे पुत्र की मृत्यु पर:

वाह मेरा वाह ।

तेरेह सुने विछड़े तुर गिओं देस बिछड़े ?
तेरी अंबड़ी रोवे रो रो धाल लोवे।
तेरे रोंदे बीर नहींओं घर दे धोर
तेरी रोंदी परदी पुट पुट वाल परदी
हाये । हाय ।। हाय ।।।
हाये । हाय ।। हाय ।।।

तेरे रोंदे आवे, खट्टीआं कौण लुआए।
किल्थे तुर गिओं मखणा घर सुण सजणा सजणा।
कर गिओं जोगी फेरा मिट गई मूरत तेरी
ध दे तांह नू फंकन कोन्हं पाईआ । आतणा?
हाये । हाय ।। हाय ।।।
हाये । हाय ।। हाय ।।।

इस प्रकार लड़की की मृत्यु पर विलाप किया जाता है।

६६- आ० ग्रं०पृ० ५७५

६७- आ. ग्रं. ५८०

तेरे लमे लमे वाल,चाचे भोरनीएं।
हाय, हाय, चाचे मोरनीएं।

परन्तु गुरु साहिब ने समाज के इस आचार पर लोक-काव्य की इसी ध्वनि में ही टिप्पणी की है। इस रोने धोने को व्यर्थ कहा है। क्यों कि अपनी अवधि समाप्त होने पर जीव ने इस शरीर को अवश्य छोड़ना है।
मुहलति पुनी पाई भरो जानीअड़ा घति चलाइआ।[६८]

इस शरीर को बनाने और बिगाड़ने वाला वही परमात्मा है, जो उसे अच्छा लगता है, वही अटल है, यह संसार तो बहाना है:
ढाहे ढाहि उसारे आपे हुकमि सवारण हारो।
जो तिसु भावै संम्रथ सो थीवै हीलड़ा एहु संसारो।[६९]

यदि मृत्यु पर रोने को दिल करता है तो उस प्रभु में प्रेमासक्त ~~-----~~ होकर रोईए। मरने वाले द्वारा जुटाए जाने वाले पदार्थों को स्मरण करके रोना व्यर्थ है:

नानक रुंना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो।
वालेवे कारणि बाबा रोईऐ रोवणु सगल बिकारो।[७०]

मरना कोई बुरी बात नहीं है। यदि किसी को मरना आता हो:-

मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे मरि जाणै ऐसा कोइ।
मरना तो शूरवीरों का अधिकार है। वही शूरवीर कहलाने योग्य हैं जो परलोक में सम्मानित किए जाते हैं:

मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो।
सूरे सेइ आगै आखीअहि दरगह पावहि साची माणो।[७१]

गुरु जी ने बताया है कि रोना किसको है? यह संसार तो एक

६८- आ. ग्र. पृ० ५७९ ६९- वही- ५७९
७०- वही- ५७९ ७१- आ. ग्र. ५७९-५८०

मेल है।

नानक किलनी बाबा रोइवै बाजी है प्रभु संसारो।[72]

यदि रोने को बहुत दिल करता है तो --- ऐ जाय रूप लिखतो'.
पति परमेश्वर के गुणों को स्मरण करके प्रेम सहित रोवो।

रोवहु कंत महेलीहो सचे के गुण सारे।[73]

४- **लावां:** संस्कार परक गीतों मे लावों (भांवर) का भी विशेष स्थान है। यह एक मंगल-गीत है। विवाह के समय वेदी के गिर्द भांवर लिये जाते थे, इसी संस्कार को 'लावां' अथवा 'फेरे' भी कहा गया है। गुरु साहब (म:४) ने जीवन का आदर्श प्रभु-प्राप्ति अथवा पति-परमेश्वर से जीव-स्त्री का अभिसार माना है। इस मिलन को अन्तिम रूप देने के लिये, इस जीवन में प्रभु-मिलनार्थ की गई तैयारी को 'लावों' द्वारा वर्णन किया गया है। भांवर लेकर व्यक्ति विवाह-बन्धन में बंध कर गृहस्थ बनता है, तथा संसार में प्रवृत्त होकर कर्म करता है। अत: लावों के द्वारा प्रवृत्ति-मार्ग का संदेश दिया गया है। गृहस्थ जीवन को उच्च माना गया है। साधना मार्ग में सन्त-महात्माओं से पूर्व निवृत्ति मार्ग को श्रेष्ठ माना गया था। परन्तु गुरमति ने एक उत्तम संदेश दिया, जिसे भाई गुरदास ने अपने शब्दों में बहुत स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है:

होये अतीत, गृहस्थ तज,
फिर उन्हूं के घर मंगण जाई।

अत: लावें इन दोनों मार्गों में श्रेष्ठ मार्ग प्रवृत्ति का पहचानने तथा चुनने का आदेश है।

परविरती नरविरति पछाणै गुरु कै संगि सबदि घरु जाणै।[74]

परन्तु प्रवृत्ति मार्ग में सांसारिक पदार्थों में उलझ जाने से यहां व्यक्ति पथ-भ्रष्ट हो जाता है। वह कर्मों से केवल कर्म, कर्म के लिये मात्र सिद्धान्त में उलझ जाता है:-

परविरति मारगु, जेता किछु होईऐ लोग पचारा।
जउ लउ रिदै नही परगासा, तउ लउ अंध अंधारा।[75]

७२- आ. ग्र. पृ ५८०　　७३- आ. ग्र ५८०

७४- आ. ग्र. १०२७　　७५- आ. ग्र. १२४५

जब तक हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता तब तक दोनों मार्गों के रहबर अथवा मार्ग-दर्शक भी भटकते ही फिरते हैं।

परविरति निरविरति हाठा दोवै विचि धरमु फिरै रैबारिआ।
मन-मुख कचे कूड़िआर तिनि निहचउ दरगह हारिआ।[76]

यदि प्रवृत्ति-मार्ग में भी रहकर गोविन्द-भजन तथा साधु-समागम नहीं किया, तो ... स्थिरगति नहीं प्राप्त होती क्योंकि सांसारिक पदार्थ भी तो नाशवान् हैं।

प्रविरति मारग वरतंति बिनासनं।
गोबिंद भजन साध संगेण असथिरं नानक भगवंत भजनासनं।[77]

इस छिरे लावों में स्त्री-पुरुष के विवाह-परक आदर्श का वर्णन करते हुए, आध्यात्मिक मिलन का वर्णन किया गया है। जैसे परमार्थ में पहले निवृत्ति का त्याग करके प्रवृत्ति सिखाई जाती है। वैसे ही दंपती का विवाह, गृहस्थ में प्रवेश होने की पहली कड़ी है। जिस प्रकार परमार्थ में पहले भय, फिर प्रेम, फिर वैराग्य, तथा अंत में सहजावस्था की प्राप्ति बताई जाती है, इसी प्रकार दंपति जीवन के लिये भय-प्रेम-वैराग्य तथा सहज का आदर्श बताया गया है" यथा :[78]

१- हरिपहिलड़ी लाव परविरती करम दिड़ाइआ बलिराम जीउ।
२- हरि दूजड़ी लाव सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलिराम जीउ।
निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलिराम जीउ।
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ, हरि वेखै सदा हदूरे।

७६- आ. ग्र. १२८०

७७- आ. ग्र. १३५० नोट- अश्वमेध आदि यज्ञ कर्मों का अनुष्ठान प्रवृत्ति-मूलक है तथा अपनी तपश्चर्या द्वारा भगवान के दर्शन करना, निवृत्ति मूलक है। (भक्ति का विकास-पृ० ३७३) आदि ग्रन्थ ने संसार का त्याग करके तपश्चर्या द्वारा भगवद् प्राप्ति की अपेक्षा संसार में रहकर उसके मायावी प्रभाव से निर्लेप होकर शुद्ध-सात्त्विक- जीवन से परमात्मा से ऐक्य स्थापित करने को कहा है। अतः आदि ग्रंथ में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्ग की व्याख्या है।

७८- शब्दार्थ आ. ग्र. (७७३-७४) पादटिप्पणी।

३- हरि तीजड़ी लाव मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलिराम जीउ ।

४- हरि चउथड़ी लाव मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि-राम जीउ ।।

दूसरी लाव में निर्भय करने वाले भय, जिसे निर्मल-भय कहा है उसको धारण करने का आदेश है। इसका रूप गुरु अंगद देव ने भी स्पष्ट किया है:

जिना भउ तिन नाही भउ, मुच भउ निभविआह।[79]

५- **अनंद**- यह भी मिलन गीत है, जिसमें मिलन के आनंद से उपार्जित हर्षोल्लास का वर्णन है। इस मिलन की खुशी में बधाइयां मिलती है। यह रचना राम कली राग में है।

गुरु अमरदास जी ने इस रचना में पहली पांच पउड़ियों में प्रभुमिलन के हर्षोल्लास का वर्णन किया है। इसी कारण इन पांच पउड़ियों को अंतिम ४०-वीं पउड़ी के साथ सम्मिलित करके आनंद-कार्य (विवाह संस्कार) तथा अन्य रीति परक अवसरों पर पढ़ा जाता है।

बताया जाता है कि यह वाणी गुरु अमरदास ने अपने पौत्र, मोहरी जी के पुत्र अनंद जी के जन्मोत्सव पर १५५४ ई० में उच्चारण की थी। साधारण सांसारिक खुशियों के समय राग-नाद किये जाते हैं। आत्मिक-हर्ष को मानवीय अनुभव में आने वाली खुशी की घड़ियों के साथ उपमा दी गई है। सारा वर्णन अलंकारिक है। वाहिगुरु से मिलन एक अकथनीय आनंद देता है। इसी कारण इस रचना का शीर्षक 'अनंद' रखा गया है। यह आनंद प्रभु से मिलन कराने वाली गुरुवाणी से मिलता है, इसी कारण इस रचना में गुरुवाणी की महिमा बताई गई है।[80] यही अवस्था सहज- आनंद की अवस्था है। यहां जीव वासनाओं की चेष्टा से मुक्त हो जाता है।

सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ।

राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ।

७९- सलोक म: २, आ. ग्र. पृ. ७८८

८०- शब्दार्थ आ. ग्र. पृ० ६१८

सबदो त गावहु हरि केरा मनि जिनी वसाइआ।

कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरू मै पाइआ।[81]

९- **अंजुलीआं** - यह भी एक संस्कार-परक रचना है। आदि ग्रंथ में इस काव्य प्रकार की रचना केवल गुरु अर्जुन देव की है। यह मारू राग में है। पहली अंजुली पृष्ठ १००७ पर है। पृष्ठ १००८ पर पुन: मारू म: ५ लिखा है। जो करतारपुर वाली बीड़ में नहीं है। यहां मारू म: ५ शीर्षक देने से दूसरी अंजुली बन जाती है। परन्तु पृष्ठ १००७ पर दोनों बीड़ों में शीर्षक अंजुली है, अंजुलीआं नहीं। अत: इसे एक ही अंजुली मानना चाहिए। पृष्ठ १०१९ पर म: ५ की दो अंजुलीआं हैं। यहां शीर्षक भी 'मारू म: ५ घर ८ अंजुलिआं' है।

'अंजुलीआं' करबद्ध-विनति-गीत हैं। हम व्यक्ति के संस्कारों को गर्भाधान संस्कार से आरंभ करते हैं। इस रचना में प्रथम एक ऐसे संस्कार का वर्णन है, जिसे हम 'वियोग-संस्कार' से अभिहित कर सकते हैं। जीवात्मा अपने मूल परमात्मा से विलगता प्राप्त कर पंच भूत से निर्मित गर्भाधान संस्कार को प्राप्त होता है। पुन: इस का जन्म-संस्कार होता है, और फिर संसार के अन्य संस्कारों को प्राप्त हुआ जीव मरण-संस्कार तक पहुंचता है। यथा:

संजोगु विजोगु धुरहु ही हूआ ।××।

साहै के फुरमाइड़े जी देही विचि जीउ आइ पइआ।××।

सासि सासि समाले सोई ओथै हथि उठाई लइआ ।

बिबहु गरभै निकलि आइआ। खसमु विसारि दुनी चितु लाइआ।××।

जनमु पदारथु जिणि चलिआ नानक आइआ सो परवाणु थीआ।

इस प्रकार जन्म उसी का सफल समझा जाता है, जिसने नाम-पदार्थ जीत लिया है।[82]

८१- आ ग्र. ९१७

८२- आ ग्र १००७

५- ऋतु-परक गीतों पर आश्रित काव्य: वसंत, हिंडोल, बारहमाह, रुती

ऋतु-परक गीतों के आधार पर आदि ग्रंथ में बारहमाह तुखारी मं० १ तथा बारहमाह माझ म: ५, एवं रुती म: ५ की रचनाएं की गईं हैं। हिन्दी-लोक-गीतों तथा अन्य भाषाओं के लोक-गीतों का एक बहुत बड़ा भाग विभिन्न ऋतुओं से संबद्ध है। किसी विशेष ऋतु में विशेष प्रकार के ही गीत गाए जाते हैं, और इन में सम्बद्ध ऋतु की प्राकृतिक छटा का उल्लेख एवं उल्लास समाविष्ट रहता है। चैत में चैता गाया जाता है। ग्रीष्म की तपन समाप्त होने पर वर्षा-ऋतु में अनेक प्रकार के सरस एवं करुण-गीतों की रागिनियां गूंज उठती हैं। विभिन्न ऋतुओं में गाए जाने वाले इन गीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

१- एक तो वे गीत जिनका संबंध केवल ऋतुओं से है।
२- दूसरे वे गीत जो इन ऋतुओं में पड़ने वाले पर्वों एवं उत्सवों से संबद्ध हैं।

प्रस्तुत अनुक्रम के अंतर्गत आदि ग्रंथ में समाविष्ट प्रथम कोटि के गीत रूपों पर विचार किया जाये गा। ये गीत रूप मुख्यत: तीन हैं:

१- वसंत
२- हिंडोल
३- बारहमासा।

वसन्त नामक काव्य प्रकार का आदिग्रंथ में प्रचुर प्रयोग हुआ है। गुरू नानक देव ने 'वसन्त' काव्य प्रकार को राग बसन्त में ही निबद्ध किया है। इसी प्रकार अन्य रचयिताओं ने भी किया। वैसे वर्ष में बसन्त ऋतु दो महीने ही रहती है। परन्तु बसन्त ऋतु की जितनी प्रतीक्षा की जाती है, वही इसकी महत्ता की परिचायक है। बारह महीनों में इन बसन्त के महीनों को उत्तम गिनते हुए हरि स्मरण करने वालों के लिये सहजानंद अथवा सर्वदानंद की अवस्था को प्राप्त होने के कारण 'सदा-बसन्त' कहा है:-

भाइ भाइ सुभारखी वड़िआ सदा बंसत । परफुड़ चित समारि सोई सदा सदा गोविंद।[८३]

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वर्ष के आरंभ में प्रथम बसन्त ऋतु आती है, और सारी वनस्पति फलती फूलती है। परन्तु इससे भी पूर्व वह हरि स्वयं फलता फूलता है, जिस के कारण समस्त जगत पर बसन्तोल्लास(आनंद) छा जाता है। उसे खिलाने वाला कोई नहीं, सब उसी के कारण खिलते हैं:

पहिले बसन्ते आगमनि पहिला मउलिओ सोइ।
जितु मउलिऐ सभ मउलीऐ तिसहि न मउलिहु कोई।[८४]

गुरु अंगद देव ने इसी कारण वर्ष के आरंभ में जब प्रथम बसन्त आती है, तो पहले हरिनाम का विचार करने का परामर्श दिया है, क्योंकि उसकी ही स्तुति करनी योग्य है जो सर्वाधार है:

म: २ । पहिले बसन्ते आगमनि तिसका करहु बीचारु।
नानक सो सालाहीऐ जिसहि सदे आधारु।[८५]

गुरु अमरदास जी कहते हैं कि बसन्त आगमन से सारी वनस्पति फूलती है, परन्तु प्रभुनाम में लिवलीन होने से सब जीव-जन्तु फूलते हैं:

बसन्तु चड़िआ फूली बनराइ।
एहि जीअ जंत फूलहि हरि चितु लाइ।[८६]

इसी विचार को बसन्त ऋतु का विशेष गीत मानकर आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने गुरु नानक देव द्वारा स्थिर की गई परंपरा का पुन: पुन: उल्लेख किया है। गुरु अमरदास जी एक और स्थान पर कहते हैं, कि वनस्पति बसन्त में फूलती है, परन्तु इस मन का विकास गुरु शरण में

८३- आ. ग्र. ११६८

८४- आ. ग्र. ७९१

८५- आ. ग्र. ७९१

८६- आ. ग्र. पृ० ११७६

होता है। क्योंकि वही हरि से मेल कराता है:-

'बनसपति मउली चड़िआ बसंतु।इहु मन मउलिआ सतिगुरू संगि।'[87]

इस लिये उन लोगों के लिये सदा बसन्त है, जिन का मन प्रभु नाम स्मरण में लग गया है।

म:३ ।। माहा रुती महि सद बसंतु। जितु हरिआ सभु जीअ जंतु ।।[88]

गुरू अमरदास जी ने तो बसन्त केवल उन्हीं के लिये बताई है जो शबद में लीन हो सतिगुरु की शरणमें हरिनाम का सुमरिन करते हैं:-

म: ३ सबदे सदा बसंत है, जितु तनु मनु हरिआ होइ।
नानक नाम न वीसरै जिनि सिरिआ सभु कोइ।[89]

म: ३ सदा बसंत गुर सबद वीचारे राम नामु राखै उरधारे।[90]

म: ३ तिन बसंतु जो हरि गुण गाए।[91]

गुरू अंगद देव ने तो उन्हीं जीव-रूप-स्त्रियों के लिये बसन्तोत्सव शुभ कहा है जिनके हृदय में पतिपरमेश्वर का नाम है। जिनका कन्त अर्थात परमात्मा परदेसी है, अर्थात जिनके पास उसका नाम नहीं, वे रातदिन आग में जलती रहती हैं:-

म: २ ।नानक तिना बसंत है जिन घरि वसिआ कंतु।
जिन के कंत दिसा-पुरी से अहिनिसि फिरहि जलंत।।[92]

म: ३ नानक तिना बसन्तु है, जिन गुरमुखि वसिआ मनि सोइ।[93]

उपर्युक्त विचार को गुरू अर्जुन देव जी ने भी अपने पूर्ववर्ती गुरूओं की परंपरा का अनुसरण करते हुए उन्हीं शब्दों में व्यक्त किया है:-

---

८७- आ. ग्र. ११७६
८८- आ. ग्र. ११७२
८९- आ. ग्र. १४२०
९०- आ. ग्र. पृ० ११७६
९१- आ. ग्र. ११७६
९२- आ. ग्र. ७९१
९३- आ. ग्र. १४२०

म:५ तिसु बसंतु जिसु प्रभु क्रिपालु । जिसु बसंतु जिसु गुरु दइआलु।
मंगलु तिसकै जिसु एकु कामु । तिसु सद बसंत जिसु रिदै नामु।
ग्रिहि ताके बसंत गनी। जाकै कीरतनु हरि धुनी।[९४]

गुरु रामदास ने भी बसन्त राग में 'नानक सांति होवै मन अंतरि नित हिरदै हरि गुण गावै।'[९५] का संदेश दिया है। गुरु तेग बहादुर भी बसन्त राग में 'माई मै धन पाइओ हरि नामु। मनु मेरा धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु,'[९६] का संदेशदिया है।

आदि ग्रंथ में ही गुरुओं से पूर्व बसन्तोत्सव का इस भांति का वर्णन भक्त कबीर द्वारा वर्णित मिलता है, जिस से स्पष्ट है कि गुरु कवि कबीर जी से प्रभावित थे:

मउली धरती मउलिआ अकासु। घटि घटि मउलिआ आतम प्रगासु।
राजा रामु मउलिआ अनत भाइ। जह देख उतह रहिआ समाइ॥ रहाउ।।
संकरु मउलिओ जोग धिआन । कबीर को सुआमी सब समान।[९७]
वृक्ष के विकसित होने पर ही सब सृष्टि विकसित होती है।

आदि ग्रंथ से पूर्व के भक्त, कवियों में गीति-काव्य के क्षेत्र में विद्यापति का नाम स्मरणीय है। बसन्त आगमन से स्त्रियाँ किस तरह शृंगार करती हैं, उनके इस गीत से पता चलता है:-[९८]

नाचहु रे तरुनी तजहु लाज आएल बसन्त रितु बनिक राज।
हस्तिनि, चित्रिनी, पदु मिनी नारि। गोरी, सामरी, एक बुढ़ि बारि।
विविध भाँति करालन्हि सिंगार। पहिरल पटोर गुंथ फूलहार ।।

डा० रवीन्द्र भ्रमर लिखते हैं, कि बसन्त ऋतु में गाए जाने वाले आधुनिक-हिन्दी-लोक-गीत ठीक उसी प्रकार के नहीं उपलब्ध होते, जिस

९४-आ. ग्रं. ११८०
९५- आ. ग्रं ११७८
९६- आ. ग्रं. ११८६
९७- आ. ग्रं ११९३
९८- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व-१४५

प्रकार के बसन्त नामक पद भक्त कवियों ने लिखे हैं। किन्तु चैता, भाटों चौताल या फाग नामक जो गीत आज प्रचलित हैं वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि लोक का प्राणी किसी न किसी रूप में बसन्त के गीत गाता आ रहा है। बसंत नाम के काव्य प्रकार का मूल प्रेरणा इन्हीं लौकिक गान शैलियों से ली गई होगी।[६६] गुरु ग्रंथ के बसन्त-काव्य से स्पष्ट होता है कि सन्त-भक्तों ने बसंत-लोक-गान की शैली का अनुसरण करके इस गीत में वर्णित शृंगार एवं हर्षोल्लास वस्तुत: केवल उनके लिये ही माना है, जो प्रभु-प्राप्ति के लिये उसका नाम स्मरण करते हैं। अत: लोक-गीतों के तथा भक्तों के बसन्त गान में विषय-वस्तु में थोड़ा अन्तर आ गया है। जहां तक मूल तत्त्व का संबंध है, शैली, स्वर एवं शब्दावली का मूल स्रोत लोक गान ही है। आदि ग्रंथ में चैता, हिंडोला, फाग, होरी आदि लोक गानों के प्रकारों को पृथक् पृथक् रूप में नहीं ढूंढा जा सकता, क्योंकि सन्त कवियों का मूल उद्देश्य गीत-विनोद अथवा उससे उपार्जित हर्षोत्फुल्लता नहीं था। वे तो इन ऋतुत्सवों से प्राप्त खुशी एवं आनंद का गान जो लोक-गीतों में किया गया था, उसे भक्ति काव्य में आरोपित करना चाहते थे। उन्होंने इस आनंदोल्लास के भागी केवल उन्हीं को माना जिन के हृदय में प्रभु नाम का सुमरिन बसता हो। गुरू अर्जुन देव ने बसन्त राग में, मंगलाचार, अनंद, बसंत, फाग तथा होली, इन समस्त त्योहार-परवों का उल्लेख किया है और सब ऋतुओं में बसन्तोत्सव माना है, यदि गुरु शरण में जाकर प्रभु मिलन किया जाये:-

गुरु सेवउ करि नमसकार। आजु हमारै मंगलाचार।
आजु हमारै महा आनंद। चिंत लथी मेरे गोबिन्द।
आजु हमारे ग्रिहि बसंत। गुन गाए प्रभु तुम बेअंत। रहाउ।।
आज हमारे बने फाग। प्रभु संगी मिलि खेलन लाग।
होली कीनी संत सेव। रंगु लागा अति लाल देव।
मनु तनु मउलिओ अति अनूप। सूकै नाही छाव धूप।
सगली रुती हरिआ होइ। सद बसंत गुर मिले देव।

६६- वही- १४६-४७

बिरह जगावै है परभात। फूल भी फाग रंग भांति।

निपटहि उपाने हरि गुण गाय। जन नानक हरि हरि हरि भा।[100]

इसके अतिरिक्त 'फाग' आदि गानों का प्रयोग, हिन्दी के भक्त-कवियों ने ही नहीं, जैन-मुनियों ने भी किया था। जिन-पद्म-सूरि की 'थूलभद्द फागु' नामक पुस्तक प्रसिद्ध है।[101] प्राचीन गुर्जर काव्य में भी 'फागु' काव्यों के उदाहरण उपलब्ध हैं। लक्ष्मी वल्लभ की 'अध्यात्म फागु' और जयवंत सूरि की 'स्थूलिभद्र कोशा-प्रेमविलास-फागु' नामक रचनाएं इसी कोटि की हैं। जयवंत सूरि ने अपने 'फागु' में वसंत ऋतु का वर्णन अत्यन्त सरस और सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। निम्नलिखित पंक्तियां उल्लेखनीय हैं:-

ऋतु वसन्त नवयौवनि, यौवनि तरुणी वेश।
पापी विरह संतापइ तापइ पिउ परदेश।।

ऋतु वसंत वनि आव्युं महकाति। प्रेम कुंठ कुसुमावलि पमती।
मलया वाय बनासिर वाजि, प्रिउ नहिं छुटे मान किम भाजि।[102]

'फाग' के इस प्राचीन उदाहरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार गुरु ग्रंथ के कवियों ने फाग, होली, बसंत आदि गीतों का बसंत राग में उल्लेख किया है। परन्तु उनका नाम 'पद' अथवा 'शबद' रहा है।

प्राचीन गुर्जर-काव्य के उपर्युक्त उदाहरण की ध्वनि आदि ग्रंथ के रचयिताओं की रचनाओं में स्पष्ट सुनाई देती है। गुरु नानक देव जी का बसन्त-वर्णन देखिये:-

चेत बसंत भला, भवर सुहावड़े।
बन फूले मंझ बारि, मैं पिरु घरि बाहुड़े।
पिरु घरि नहीं आवै, धन किउ सुखु पावै, बिरहि बिरोध तनु छीजै।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै, किउ दुखु अंकि सहीजै।
भवरु भवंता फूली डाली, किउ जीवा मरु माए।
नानक चेति सहजि सुखु पावै, जे हरि वरु घरि धन पाए।[103]

१००- आ०ग्रं० बसंत म: ५, १ ८०

१०१- विचार और वितर्क- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी १९४९ पृ० २४०

गुरु नानक का उद्धृत पद जयवंत सूरि का फागु से कितना साम्य रखता है। जहां तक लोक-गान तथा उनके प्रकारों का संबंध है, वह बारहमासे का चैत का वर्णन तो है ही, परन्तु इसे फागु, बसन्त, चैता, तथा बारहमासा सब नामों से अभिहित किये जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस परंपरा का अनुसरण समस्त आदि ग्रंथ के कवियों ने किया है। गुरु अमरदास की बोध रूपी-कामिनियां भी तभी बसंतोत्सव मना सकती है यदि उसके प्रियतम-प्रभु उसके पास घरमें हों। नहीं तो कांत के प्रवास में होने से तो अहिनिशविरहाग्नि में दग्ध रहती है।

नानक तिना बसंत है, जिन घरि वसिआ कंतु।
जिनके कंत दिसा-पुरी से अहिनिसि फिरहि जलंत।[१०४]

जब घर में ही कमला कांत है तो फिर घर में बसन्त भी है और फाग भी। गुरु अर्जुन देव भी प्रभु मिलन को यथार्थ महोत्सव मानते हैं।

आज हमारे ग्रिह बसंत।
गुन गाए प्रभ तुम बेअंत।
आज हमारै बने फाग।
प्रभु संगी मिलि खेलन लाग।[१०५]

१०२- सम्मेलन पत्रिका प्रयाग भाग ४२, संख्या ३, पृ० ४८ से हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व पृ० १४७ पर उद्धृत।

१०३- आ. ग्र. ११०८

१०४- आ. ग्र. ११७६

१०५- आ. ग्र ११८०

गुरु राम दास ने भी आसाराग के छन्तों में बसन्त का वर्णन पुनेर-मार्ग्य के स्वर में ही किया है। प्रियतम के बिना बसन्त ऋतु में भी आंगन में धूल उड़ती है:-

बहि नेहु मंत मेरे पिआरे भलीअ रुते।
पिर बाझहु बसहु मेरे पिआरे आंगणि धूड़ि लुते।[109]

'बसन्त' के साथ 'बसन्त- हिन्डोल' राग में कुछ पदों की रचनाएं आदि ग्रंथ में संगृहीत हैं। ऐसा मालूम होता है कि 'बसन्त' राग के साथ 'हिंडोल' रागिनी को मिला कर गाने का आदेश ऋतु-परक-गीत होने के कारण हिंडोल की प्रेरणा 'हिंडोल गीत' से ली गई है। लोकगीतों में हिंडोले (झूला) की प्रकृति-क्रीड़ा और हिंडोले के गीत लोक में प्रचलित हैं। सन्त-भक्त-कवियों ने 'हिंडोला' शीर्षक वाले पदों की प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त की है।[107]

<u>बारहमासा</u> : बारहमासा के लोक प्रचलित ऋतु परक गीतों के आधार पर आदि ग्रंथ में दो महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। एक गुरु नानक की 'तुखारी छंत महला १ बारहमाहा',[108] तथा दूसरी गुरु अर्जुन देव का 'बारहमाहा माझ महला ५ घरु ४'[109] है। यह वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला अत्यन्त लोक प्रिय गान है। इस में बारह महीनों की प्रकृति का सहज स्वाभाविक वर्णन रहता है। साथ ही प्रकृति के विविध चित्रों और उसकी घटनाओं की पृष्ठभूमि में किसी विरहिणी की विरह-व्यथा भी अंकित रहती है। डा० रघुवंश के शब्दों में इन गीतियों का भाव धारा में वियोगिनी की व्यथा के साथ परिवर्तित होते काल का रूप और उसकी वियोग की प्रतीक्षा मिलकर आई है। प्रत्येक मास की प्रमुख रूपरेखा के आधार पर वह अपने प्रिय को याद कर लेती है और उसके लिये विकल हो उठती है।[110]

आदि ग्रंथ के इन दोनों बारहमासों का विषय जीवात्मा-रूप विरहिणी की अपने प्रिय-पति परमेश्वर से मिलने की तीव्र आकांक्षा है। गुरु नानक के बारहमाह के विषय में डा० तारन सिंह लिखते हैं:-

---

१०६- आ०ग्रं० पृ० ४५२

१०७- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व- पृ० १४८

१०८- आ०ग्रं० पृ० ११०७

'बारह माह वियोग-श्रृंगार की कविता होती है। तुखारी राग में यह रचना तुखार पीड़ित अथवा वियोग-पीड़ित-आत्मा का विरह-गीत है। इस रचना के विषय में गुरु ग्रंथ (शब्दार्थ) के टिप्पणीकारों ने लिखा है कि यह वाणी गुरु नानक देव ने अपने देव-लोक सिधारने के समय श्री करतारपुर साहब में उच्चारण की। यह उनकी अन्तिम रचना बताई जाती है। अपने को भगवान् की ओर से बुलावा आने के समय ऐसा अनुभव करते है, जैसे पीहर में रहती स्त्री अपने पति को मिलने जाने के लिये तैय्यारी करती है। प्रथम उस में विरह- भाव जागृत होता है, तथा 'प्रिय बाकु दुहेली' अनुभव करती हुई पपीहे की भांति 'पी-पी' करती हुई पति की बाट जोहती है। जब यह अभिलाषा पूरी होती दिखाई देती है, तो अपने पीहर की घटनाएं स्मरण कर वह और भी प्रिय-वियोग में विह्वल हो उठती है। विरह- विह्वलता से आरंभ करके अंत में मधुर मिलन का सुन्दर एवं हृदय-विदारक दृश्य प्रस्तुत किया गया है।'[११२] जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि विद्वानों ने गुरु नानक के उपर्युक्त बारहमासा को उनकी अन्तिम एवं देहावसान काल के निकट आने की रचना माना है। अतः इसका समय १५३८ ई० हुआ। मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत १५४० ई० में संपूर्ण हुआ और उनका देहावसान १५४२ ई० में हुआ। जायसी एक प्रसिद्ध सूफी साधक थे, जिन्होंने अपने पद्मावत में परमात्मा को स्त्री एवं पुरुष दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है। नाग मती का बारहमासा उसकी

१०९- आ ग्र १३३
१११- डॉ० रघुवंश: प्रकृति और हिन्दी काव्य (मध्य युग): पृ: ४०६
विशेषांक: पृ० २७५
१११- श्री गुरु ग्रंथ की साहित्यिक (डा० गोपाल सिंह)

११२- शब्दार्थी आ. ग्र. ११०७

प्रसिद्ध रचना है, जिसे उसके शिष्य एक छोर पर गाते फिरते रहते थे। इन दोनों रचनाओं के सावन-भादों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त रुचिकर है। दोनों में विचारों एवं भावना का तात्त्विक साम्य है:

जायसी[२२३]

१-सावन बरिस मेह अति पानी।
भरन परी हौं बिरह झुरानी।
लागु पुनरबसु पीउ न देखा।
भै बाउरि कहँ कंत सरेखा।

२- भा भादौं दूभर अति भारी।
कैसे भरौं रैनि अंधियारी।
मंदिर सून पिय अनतै बसा।
सेज नाग भै धै धै डसा।
रहौं अकेलि गहे एक पाटी।
नैन पसारि मरौं हिय फाटी।
चमकि बीज घन गरजि तरासा।
बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरिसै मघा झकोरि झकोरी।
मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी।
पुरवा लाग पुहुमि जल पूरी।
आक जवास भई हौं झूरी।

गुरु नानक[२२४]

१-सावण सरस मना घण बरसहि
रुति आए।।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि
सिधाए।।
पिर घरि नहीं आवै मरीऐ हावै
दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ
दुखु माए।।

२-भादउ भरमि भुली भरि जोबनि
पछुताणी। जल थल नीरि भरे
बरस रुते रंगु माणी।।
बरसै निसि काली किउ सुखु बाली
दादर मोर लवंते।।
प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा बोले भुइअंगम
फिरहि डसंते।
मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि
किउ सुखु पाईऐ।
नानक पूछि चलउ गुर अपुने जह प्रभु
तह जाईऐ।

२२३- पद्मावत- चौपाई ३४५-३४६ पृ० [illegible]४

२२४- आ०ग्र०पृ० ११०८

घन गूजि भर भादों भाखां।
अबहु आन न नौवति नाखां
जल थल भरे अपूरि सब गगन धरति
मिलि एक।
धनि जोबन औगाह मा देबूत
पिय टेक।

जहां तक विचार एवं पदावली का संबंध है दोनों रचनाओं में पर्याप्त समता है। दोनों सम-सामयिक भी हैं। गुरु नानक का प्रत्येक मास वर्णन छ: पंक्तियों में समाप्त हो जाता है किन्तु जायसी का प्रत्येक मास का वर्णन सात अर्धालियों तथा एक दोहे वाले चौपाई छन्द में हुआ है। अत: जायसी की रचना में विस्तार है, इसलिये उनमें वर्णन व्याख्यापरक है। परन्तु गुरु नानक की रचना संक्षिप्त होती हुई भी थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता रखती है। कुछ विशेष अध्ययन प्रस्तुत करना युक्ति संगत होगा।

जायसी	गुरु नानक

१-सावन की पंक्तियों में दोनों की रचनाओं में साम्य है, जिस का ऊपर उल्लेख है। अब के साथ ही जायसी के भादों की एक पंक्ति का गुरु नानक के सावन से तुलना देखिए:

जायसी	गुरु नानक
२-चमक बीज घन गरज तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।	२-पिर घरि नहीं आवे मरीये हावे दामनि चमक डराए।
३-मंदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।	३-सेज अकेली खरी दुहेली, मरण भइआ दुखु माइ। हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए।
४-भर भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अंधियारी। घन गूजि भर भादों भाखा।	४-बरसै निसकाली किउ सुख बाली, दादर मोर लवंते। मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि किउ सुखु पाइ ऐ।

अबहूं ग्राउ न लींचसि नाग्रां।
जल थल भरे भरपुरि ... गंगन धरति मिलाक।
धनि जोबन सोगाह पंक दे कुहुक पिय टेक।

छप्पर नं० ४ में जायसी ने जो विचार विस्तार किया है वह गुरु नानक की एक पंक्ति में ही आ गया है: 'साहुर घर सुभर जिन लहि किउ सुख पाइये।'

इसी प्रकार जायसी के जेठ के वर्णन तथा गुरु नानक के जेठ-माह के वर्णन में बहुत कुछ एकता है।

जायसी	गुरु नानक
१-जेठ जरै जग चलै लुआरा।	१-माहु जेठ भला प्रीतमु किउ बिसरै
उठे बवंडर परै पछारा।	थल तापहि सर भार साधन बिनउ करै।
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा।	आसाड़ भला सूरजु गगनि तपै।
लंका दाहि करै तन लागा।	धरती दूख सहै सोखै अगनि भखै।
२-चारिहुँ पवन झकोरै आगी।	२-अगनि रसु सोखै मरीऐ धोखै।
लंका दाह पलंका लागी।	पी सो किछु न हारे।
३-परवत समुंद मेघ ससि दिनअर,	३-थल तापहि सर भार साधन बिनउ करै।
सहि न सकहिं वह आगि।	धन निवि कहंदी गुण सारंदी, गुण
मुहम्मद सती सराहिए,	सारो प्रभ भावा।
जरै जो अस पिउ लागि।	

जबकि जायसी का बारहमासा कथा-काव्य के संदर्भ में आया है, गुरु नानक का बारह-माहा स्पष्ट रूप में वियोगी जीव-आत्मा की मिलन के लिये तड़प है। अतः प्रत्येक माह के वर्णन के अन्त में गुरु नानक देव इसी मिलन का वर्णन प्रायः करते हैं। यथा: 'निमाणी निताणी हरि बिनु किउ पावै सुख महली। नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण

गयी है।[११५] विरह-वर्णन में बारहमासा का विशेष स्थान है। कुछ ऋतु का मानव-मन में [illegible] कुछ [illegible] में दिखा [illegible] है। कुछ [illegible] गुणों से [illegible] [illegible] आध्यात्मिक [illegible] [illegible] है। [illegible] वर्णन [illegible] मे [illegible] मासा[११६] में है। परन्तु कुछ ऋतु का [illegible] प्रेरणा [illegible] हुआ [illegible] होता है [illegible] होता है। फिर भी [illegible] में [illegible] के [illegible] विशेषताएं [illegible] हो सकते हैं। यथा:-

१- [illegible] न [illegible] विरहान।
[illegible] न [illegible] नगर मे ग्राम।
[illegible] सिंगार [illegible] देखि [illegible]।
प्रभु [illegible] बिछुणा [illegible] सजण [illegible]।।

२- बैसाखि [illegible] किन [illegible] बिना प्रेम विछोहु।

३- [illegible] बिन [illegible] न बिना [illegible]।

४- सावणि [illegible] पिआर।

५- भादु [illegible] कुलाण [illegible] बूंद [illegible] बैणु।
[illegible] सिंगार [illegible] नागि [illegible]।

६- [illegible] प्रेम [illegible] मिलीये [illegible]।
[illegible] सावण मिलावे [illegible]।

७- [illegible] कंछा [illegible] पिर [illegible]।

८- [illegible] न [illegible] बिलिआ [illegible]।

९- फलगुणि [illegible] सजण [illegible]।

[illegible] बारहमासा भी प्रसिद्ध है। [illegible] भांति [illegible] काव्य में [illegible] बारहमासा [illegible] है।

बारहमासा के [illegible] में [illegible] में

११५- ना०ग्रं० पृ० [illegible]
११६- ना०ग्रं० पृ०२३३

उपलब्ध हैं।[११७] इन बारह मासों की भाषा, भाव, विचार और छन्द के व्यापक विस्तार को देखकर डा० श्याम परमार लिखते हैं: इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इसकी परंपरा बड़ी पुरानी है। इन्होंने एक देश से दूसरे देश में एक युग से दूसरे युग की लम्बी यात्रा पार की है। हमारे साहित्य में बारहमासा वर्णन की जो पद्धति ग्रहण की गई है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह इन्हीं लोक प्रिय बारह-मासा-गीतों का अनुकरण है।[११८]
हिन्दी साहित्य के आदि काल से ही लौकिक काव्य का उदाहरण मिलने लगता है। संस्कृत में जो षड् ऋतु वर्णन की प्रणाली थी, हिन्दी काव्य में बारहमासा में विकसित हुई। यहां से बारह महीनों की प्रकृति के वर्णन की परंपरा आरम्भ होती है। जैन कवि विजयचंद सूरि (१२०० ई०) उस परंपरा के प्रारंभिक कवियों में हैं। उनका 'राजुल देवी' का बारहमासा प्रसिद्ध है। यह बारहमासा विरह वर्णन की दृष्टि से लिखा गया है और श्रावण मास से शुरू होता है।[११९] जैसे पुरानी प्रथा आषाढ़ मास से आरंभ करने की थी। जायसी का नागमती का बारहमासा अषाढ़ से आरंभ होता है परन्तु आदि ग्रंथ में दोनों बारहमासे चैत से आरम्भ होते हैं। बारहमासा की परंपरा को अनुसरण करते हुए विद्यापति ठाकुर, नंद दास और परम दास ने भी रचनाएं की हैं। आदि ग्रंथ के अन्दर कबीर का भी बारहमासा मिलता है। गुरु नानक का बारह माहा भी छन्द में है। गुरु अर्जुन देव के बारहमासा का छन्द दोहा है।

ऋतुएँ- ऋतु-परक काव्य प्रकार में षड्-ऋतु वर्णन संस्कृत काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। जायसी ने भी नागमती का बारहमासा लिखने से पूर्व छः ऋतुओं पर आधारित काव्य रचना की है। यह रचना वसंत से शुरू होती है। बाद रचे गए भजन चैत-बैसाख से होते हैं। चैत फागु भल भवार गुजावहिं।[१२०] बारहमासा का विकास इन्हीं ऋतुओं के वर्णन करने वाले काव्य

११७- राहुल सांकृत्यायन- आदि हिन्दी की कहानियां और गीत पृ० २२५-२२, डा० कृष्ण देव उपाध्याय भोजपुरी गीत पृ० ३२१-३० डा० श्याम परमार- भारतीय लोक साहित्य पृ० ११२-११४।

११८- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक-तत्व- ११६

११९- वही पृ० २४६

१२०- आ०ग्रं० पृ० ११०८

के आधार पर हुआ। आदि ग्रंथ में बारह माहा इसी कारण चेतु से शुरु होता है। जैसे ऊपर गुरु नानक के बारह माहा की एक तुक दी गई है। गुरु अर्जुन देव भी चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा, से बारहमाहा आरंभ करते हैं। गुरु अर्जुन देव ने भी आदि ग्रंथ में राम कली राग में षड ऋतु वर्णन की पद्धति का अनुसरण किया है। यह वर्णन भी जायसी की भांति बसन्त ऋतु से आरम्भ होता है: रुति सरस बसंत माह चेतु वैसाख सुख मासु जीउ।[121] जायसी तथा गुरु अर्जुन देव के ऋतु-वर्णन में विषय की तथा पदावली की समता, संभवत: इसके परंपरागत होने के कारण है। अन्तर दोनों में केवल यह है कि गुरु अर्जुन की नायिका जीवात्मा का परमात्मा से मिलन दिखाया गया है, और जायसी ने पद्मावती तथा रत्न सेन के अभिसार का वर्णन किया है। यहाँ पर जायसी की पद्मावती भी जीवरूप स्त्री है और रत्नसेन (नाम रतन) परमात्मा है, चाहे जायसी ने, हौं रानी पद्मावती सात सरग पर बास - वाली पद्मावती को परम ज्योति और रत्नसेन को नाम रत्न (परम ज्योति) का साधक भी प्रस्तुत किया है। दोनों रचनाओं का साम्य दृष्टव्य है:

जायसी	गुरु अर्जुन देव
१- प्रथम बसंत नवल रितु आई सुरति चैत बैसाख सोहाई	१- रुति सरस बसंत माह चेत-वैसाख सुख मासु जीउ।
२- भौर सुवेती फूलन्ह डारी। धनि औ कंत मिले सुखबारी। पिउ संजोग धनि जोबिन बारी भंवर पुहुप संग करहिं धमारी। होइ फागु भलि चांचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जस होरी।	२- हरि जीउ नाहु मिलिआ मउलिआ मन तन सासु जीउ। घरि नाहु निहचलु अनंदु सखीए चरन कमल प्रफुलिआ। सुंदरु सुघड़ु सुजाणु वेता गुण गोबिन्द अमुलिआ। वडभागि पाइआ दुखु गवाइआ भइ पूरन आस जीउ। बिनवंत नानक सरणि तेरी मिटी जमकी त्रास जीउ।।

१२१- आ. ग्र ९२७

इस समता के होते हुए भी जायसी के षड्-ऋतु-वर्णन में सब ऋतुओं में रत्नसेन तथा पद्मावती के मिलन सुख तथा केलि-क्रीड़ा का मादक वर्णन है, जबकि गुरु अर्जुन देव के बारहमाह के वर्णन में, उन जीवात्माओं के लिये ग्रीष्म ऋतु ताप एवं दुःख-दायक बताई है, जिनके पास (अनत्) नाथ नहीं। और उनके बारहमाहे की भांति [illegible] सदा [illegible] सहु न मिलाँ चाहिए [illegible] विचार व्यक्त किया है। वर्षा-ऋतु में उनको जो सुख प्राप्त होता है, वे सर्व-व्यापक-नाथ को अपने घर में देखती हैं। इस प्रकार सारे ऋतु वर्णन का सारांश यही भाव गुरु जी की गुण उनकी सी रचना रीति से बताया गया है। यह रचना श्लोकों (दोहों) तथा छंदों में है।

४- अन्य फुटकर काव्य रूप - ओंकार, गोष्टि, गाथा, फुनहे, पद, दखणी, बिरहड़े, बारा।

ओंकार: दखणी ओंकार[122] नाम की ग्रन्थ रचना की रचना गुरु नानक देव द्वारा राम-कली राग में निबद्ध है, जो जोगियों की प्रिय रागिनी है। यह रागिनी अन्य दखणी (दक्षिणी) रागिनीयों के साथ मिलाकर गाए जाने का आदेश है, यथा प्रभाती दखणी, वडहंस दखणी, बिलावल दखणी, मारू दखणी। अत: दखणी शब्द रागिनी से सम्बद्ध है, ओंकार से नहीं। गोरखनाथ की ओंकार नाम की रचना गोरखबाणी में संगृहीत है।[123] दोनों रचनाओं में पर्याप्त साम्य है।

गोरखनाथ	गुरु नानकदेव
१- अविगत उतपनां ॐ। ॐ उतपनिले [illegible]। [illegible] उतपनी [illegible]। [illegible] उतपन्ना [illegible]।	१- ओंकार ब्रह्म उतपति। ओंकारु कीआ जिनि चीत। ओंकार सैल जुग भए, ओंकार बेद निरमए ओनम अखर सुणहु बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवण सारु।

१२२- आ०ग्र०पृ० ९२९

१२३- गोरखबाणी- पृ० २१४

२- इस रचना में केवल ओंकार से सृष्टि रचना की विवेचना है।

२- इस रचना में "हाटा नामु पूंजी वेसाहु। नानक नवो पाति उधा पतिमाहु," की विशद विवेचना है।

गोष्टी : आदि ग्रंथ में सिध गोसटि नाम की गुरु नानक देव की रचना भी रामकली राग में निबद्ध है। इस रचना के विषय में शबदार्थ (गुरु ग्रंथ) के टिप्पणीकारों ने लिखा है: गुरु नानक देव जी की सिद्धों के साथ अचल बटाले[१२४] तथा गोरख हटड़ी में जो विचार विमर्श हुआ उसी का सारांश इस सिद्ध गोष्टि में निबद्ध है। इस में हठ-योग-साधना तथा नाम-सुमरिन-साधना की तुलनात्मक विवेचना है। आश्चर्य की बात है कि गुरु नानक की सिद्ध गोष्टि की पदावली तथा गोरख-मछिन्द्र-बोध में अत्यधिक साम्य है, जिसका अध्ययन एक पृथक विस्तृत विवेचना का विषय है। यहां केवल उदाहरणार्थ कुछ तुलनाएं प्रस्तुत हैं।अवश्य ही गुरु नानक ने इस गोरखबानी की रचना से प्रेरणा ली है। किसी रचना के लिये प्रेरणा के हम तीन अर्थ लेंगे- विचार अथवा विषय की प्रेरणा, साहित्यिक रूप जिस में कोई रचना ढाली जाती है, उस के लिये प्रेरणा, तथा रसिक शैली जो किसी कलाकार ने अपनाई हो, उसके लिये प्रेरणा। साहित्य-रूप तथा शैली की प्रेरणा के भाव तो स्पष्ट ही हैं, परन्तु विचारों में दोनों रूप खंडन तथा मंडन हमें मानने पड़ेंगे।[१२५]

गुरु नानक देव ने सिद्धों के प्रश्न प्रस्तुत करते हुए गुरमति के अनुसार उनका उत्तर प्रस्तुत करते हुए सिद्ध गोसटि की रचना की। गोरख नाथ की गोरख-मछिंद्र-बोध, गोरख (शिष्य) मछींद्र (गुरु) की गोष्टी तथा गुरु नानक की सिद्ध गोसटि की तुलना देखिए:-

---

१२४- मेला सुण शिवरात दा बाबा बटाले आई (भाई गुरदास- वार-१ पौड़ी- ३६-४४)

१२५- पंजाबी साहित ते साहितकार- डा० तारन सिंह पृ० २०

१- गोरखनाथ:
न्याधा तुल्ँ तुरा ँ तु ि्रा।
(रुाद ना मुिखा) क्षा मरि कमिबा।
मनमि न करिबा रोस।
गारंमि लिा कै रखै।
वकुत्पोई मो कुरवाहै।

२- मर्गेन्द्र प्रभाव-
वायु रषिता ह गै भातँ,
रपा विष मी भाा।
तजिवा काम क्रोध तृष्णा संसार की माया।
बाप रहाँ गोष्टा संग विचार।
घंगित सिद्धा सुभि भारा।[126]

१- गुण गुणामी सरणाि भ्भारी
गुरु ानु प्रवारो।
रोस न कीजै पाा दोजै छिपाउजै
गुरद्वारो।
इक मनु काा ना मरि मैं नानक
नाम अारो।
ापी मेति मिलाय रिखा लागी
मादि मिरारो।

२- ाटो ाटो ख्ाि मिराा ्मि
विरि दिखानो।
कंद मूल अाागे ा बै बायु धीरे
गिानो।
ीरथि ना ेे ु फलु पावै
मैलु न ल ानहीं।
गोरख पूा, लोहारीपा बोले जोग
जुगाति बिधि साई।
(गुरु नानक) गाले ाले नादन
बाधे, पर मनि बिा न कुाई।
विन नावै मनु टेक न टिकई नानक
भूख न जाई।
ाद सरणु रु गुरु दिखाइआ मनूले
मनु मायारो।
घंगित सिद्धा अलप अचारं नानक तनु
गीखारो।[127]

१२६- गोरखवानी- पृ० १२६
१२७- ग्रा०ग्र० पृ० ६३८-३९

गोरख नाथ	गुरु नानक
३- गोरख-	३- सुन निरंतरि दीजै बंधु।
स्वामी कौण मुषि लागै समाधि।	उडै न हंसा पडै न कंधु।
कौण मुषि छूटै उपाधि।	सहज गुफा घर जाणै साचा।
कौण मुषि लै पुरिबा बंध।	नानक साचे भावै साचा।
कौण मुषि अजराव कंध।	
मछीन्द्र :	
अवधू मन परचै माया मोह टूटै।	
पवन परचै ससि घरि फूटै।	
ग्यान परचै लागै बंध।	
गुरु परचै अजरावर कंध।	
४- गोरख	सिद्ध
स्वामी आदेस का कौन उपदेस,	४- आदि कउ कवन, बीचार कथीअले सुंन कहा घर वासो।
सुंनि का कथं वास?	गिआन की मुद्रा कवन कथीअले घटि घटि कवन निवासो।
सबद का कौन गुरु,	कहा ते आवै कहा इहु जावै कहा इहु रहै समाई।
पूछत गोरष नाथ?	एसु सबद कउ जो अरथावै तिस गुर तिलु न तमाई।
मछींद्र:	गुरुनानक
अवधू आदेस का अनूप उपदेस,	आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले, सुंन निरंतरि वासु लीआ।
सुंनि का निरंतरि वास।	अकलपत मुद्रा गुरगिआनु बीचारीअले, घटि घटि साचा सरब जीआ।
सबद का परचा गुरु,	गुर बचनी अविगति समाईऐ ततु निरंजनु सहजि लहै।
कथंत मछींद्र नाथ ।।	नानक दूजी कार न करणी सेवै सिखु स(खोज लहै)

इन दोनों रचनाओं में पारस्परिक संबंध कई पृष्ठों में प्रस्तुत किया जा सकता है। हम यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि डा० तारन सिंह ने प्रेरणा के अर्थों में खंडन-मंडन शैली का अनुसरण करते हुए, तथा पदावली का अनुकरण करते हुए गुरु नानक देव ने गोरख- मछींद्र बोध से प्रेरणा ली है। वैसे गोष्टियां लिखने की परंपरा औपनिषद-काल से भी प्राचीन है। उपनिषदों में इस शैली का बहुत उपयोग हुआ है।

गाथा

गुरु ग्रंथ में गाथा छंद में गाथा नाम की रचना म:५ की है। इसे किसी राग के अंतर्गत नहीं रखा गया। गाथा के २४ श्लोकों में विषय यह है, कि मनुष्य को देही तब तक किसी अभिमान की अधिकारी नहीं जब तक प्रभु -भक्ति में लीन नहीं। सुख माया में नहीं नामवचन में है। इस गाथा की भाषा प्राकृत के अधिक निकट है। गाथा लोक भाषा का छन्द है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं: जिन दिनों जटिल छन्दो-बन्ध लौकिक संस्कृत में बहुत सफलता पूर्वक लिखा जाने लगा था, उन्हीं दिनों लोक भाषा एक नये छोटे से छन्द की ओर मुड़ गई। जिस प्रकार श्लोक संस्कृत की ओर मोड़ का सूचक है, उसी प्रकार गाथा प्राकृत की ओर के झुकाव का व्यंजक है। आगे चलकर श्लोक संस्कृत का और गाथा प्राकृत का प्रतीक हो गया। सन् ईसवी के आरंभिक दिनों में गाथा का साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश हो चुका था। हाल का गाथा- कोश या सतसई अपने ढंग की बिल्कुल नवीन रचना थी। इसमें जिस प्रकार की लौकिक रस प्रधान कविता का दर्शन होता है वह संस्कृत साहित्य में अपरिचित थी। परन्तु सतर्कता और सावधानी जो संस्कृत कविता की जान है, वह 'गाथा' में भी पाई जाती है। एक क्रोड़ गाथाओं से चुनकर सात सौ रत्नों को निकालने की अनुश्रुति उसी सतर्कता और सावधानी की सूचना देती है। इसलिये गाथा को इस विदग्ध --- स्वीकृत रूप में आते आते निश्चय ही कुछ शताब्दियों की यात्रा करनी पड़ी होगी।[१२८] हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है, 'गाथा लोक साहित्य का वह प्रकार है, जिस में गयता के साथ ही कथानक की प्रधानता रहती है। कार्ट्रीज ने इस की परिभाषा बतलाते हुए

१२८- हिन्दी साहित्य का आदि काल - ६७-६८

लिखा है, कि गाथा वह लोक-गीत है, जिसमें किसी कथा का वर्णन हो, अथवा यह वह कथा है, जो गीतों में कही गयी हो - (कादोज) । सर्वप्रथम गाथा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है। (ऋग्वेद- ८-३२-१) यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा उस समय प्रचलित थी। इन के गाने वालों को 'गाथिन' कहा जाता था। (ऋग्वेद - १-७-१)। जातकों में श्लोक का रचना को 'गाथा' नाम दिया गया है। (बटुक नाथ शर्मा - पाली जातकावली -पृ: ६)[१२९] इस संबंध में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार उल्लेखनीय है, संस्कृत में भी दोहे लिखे गए हैं और गाथाएं भी लिखी गई है, और प्राकृत में भी तथा संस्कृत छन्दों का व्यवहार हुआ है, दोहे का भी कहीं न कहीं मिल ही जायगा। परन्तु सचाई यही है कि श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है।[१३०]

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में बहुत मत-भेद है। कोई इसे व्यक्ति विशेष की रचना मानता है, तो कोई इसे समुदाय-विशेष की कृति स्वीकार करता है। इस संबंध में निम्नांकित पांच मत-भेद हैं- (१) ग्रिम का सिद्धान्त- समुदायवाद (२) स्टेन्थल का मत- जनतावाद (३) श्लेगल का- व्यक्तिवाद (४) बिशप पर्सी का-चारणवाद। (५) चाइल्ड का व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद। ग्रिम का मत है कि किसी समुदाय विशेष के लोग सामाजिक उत्सवों पर सामूहिक रूप से गीत गाते हैं। एक व्यक्ति गीत की कोई एक कड़ी बनाता है तो दूसरा दूसरी जोड़ता है। इस प्रकार सब के सामूहिक प्रयास से गाथाओं का निर्माण होता है। स्टेंथल का जनता-वादी-सिद्धान्त, ग्रिम के सिद्धान्त का विशेषीकरण है। परन्तु श्लेगल का मत है, कि गाथाएं व्यक्ति विशेष की रचनाएं हैं। जिस प्रकार इलियड, ऑडेसी आदि महाकाव्यों का लेखक एक व्यक्ति था, उसी प्रकार वैसे गाथाएं भी किसी व्यक्ति की ही रचना हैं। यह दूसरी बात है कि अधिक काल बीत जाने के कारण उन लेखकों का नाम आज हमें ज्ञात नहीं है।

१२९- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० २५८

१३०- हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ० ९८

विशप पर्सी का कथन है कि इन गाथाओं के रचयिता चारण लोग थे, जो राजदरबारों में काव्यों की रचना कर राजाओं का मनोरंजन किया करते थे। थार्नल्ड इस मत का समर्थक है कि इन गाथाओं का रचयिता कोई व्यक्ति तो अवश्य है, परन्तु उसके व्यक्तित्व का इन गीतों में अभाव है। परन्तु सत्य बात तो यह है कि गाथाओं की उत्पत्ति में इन सभी सिद्धान्तों का समन्वय उपलब्ध होता है।[१३१]

गुरु ग्रंथ साहब में गुरु अर्जुन देव की गाथा की प्रकृति इस प्रकार है:

(१) इस गाथा में हरि-यशोगान की कथा को गूंथा गया है। इस कथा के गान एवं मनन से अंधकार का नाश होता है। पांच कामादि शत्रु नाश होते हैं, जिसके लिये शस्त्र हरि नाम का बाण है। (... संजेणं। नानक हरि बाणे प्रहारणह ।।)

(२) इस कथा का विषय है: मानव देही जिस पर मनुष्य गर्व करता है, नाशवान् है। सत्य वस्तु तो हरि का ---- सत्यनाम है, जिसका ---- कीर्तन करना चाहिए। इस लिए साधु समागम, हरि कथा तथा मोह माया के त्याग में ही परम सुख है।

(३) इस रचना में छन्द सीधा सादा है और सरल है, और तुकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। प्रथम दो तीन छन्दों में तुकांत भिन्न है। यथा (१) 'क्षीणं' और 'आगणो' (२) 'सिक्ताणह' और 'सिमते'। परन्तु कई श्लोकों में तुकांत मिलता है। जैसे नवां श्लोक 'असमागणह' और 'बिलापणह' तथा दसवां श्लोक 'चिरका-जनह' और 'साथ संगम' है।

(४) यह गाथा किसी शास्त्रीय राग पर आधारित नहीं है, परन्तु इस में एक विशेष गेयता है, जो शास्त्रीय संगीत से भिन्न, सरल एवं सहज है।

(५) इस रचना में भाषा और विचारों की सरलता है, तथा नैसर्गिकता तो ऐसी है जो केवल प्रारंभिक मानव समाज में ही मिलती है। भाषा प्राकृत तथा अपभ्रंश के संक्रांति-काल की है।

(६) इस में रूढ़, अस्वभाविक और श्रम-साध्य अलंकारों और शब्दों का

१३१- डा० कृष्ण देव उपाध्याय- हिन्दी साहित्य और पृ० २५८ पर उद्धृत

अध्याय है। इसमें प्रयुक्त अलंकार और शब्द व्यावहारिक जीवन से गृहीत हैं। इसमें कुछ विशेष अलंकारों मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति बार बार हुई है। जैसे:

(क) साधु समागम:

१- बिना साधू न सिधते ।।२।।

२- कीरति साधि करते मणंति नानक साध संगेण ।।३।।

३- लब्धं साध संगेण नाना गुन अमानं ।।४।।

४- बचन साध गुर पंथा ।।७।।

५- भावनी साध संगेण लभंतं ।।६।।

६- नानक गोबिंद रमणं साध संगमः ।।१०।।

७- सुमंत्र साध बचना कोटि दोस बिनासनह ।। ११।।

८- लभणम् साध संगेण ।। १५।।

९- सुभ बचन रमणं गवणं साध संगेण उधरणह । १९।

१०- लबधिअं साध संगेणि ।।२१।।

११- लबधेणि साध संगेणि नानक मसतकि लिखणः ।।२२।।

१२- साधु सतम जाणौ । २३।।

(ख) यह साधु समागम बड़े भाग्यों से मिलता है :

(१) बचन साध गुर पंथा लंहथा बड करमणह ।।७।।

(२) भावनी साध संगेण लभंतं बडभागणह ।। ११

(३) नानक लबधं बड भागणह ।। १२।।

(४) बड भागी नानक को तारं ।।२०।।

(५) नानक वडभागी भेटंति दरसनह ।। २१।।

(६) नानक मसतकि लिखणः ।।२२।।

(ग) इसी प्रकार साधु समागम में हरि कथा करने अथवा सुनने की बात श्लोक संख्या ३,४,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१७,१८,२० तथा २१ में कही गयी है।

(घ) माया का त्याग करने को श्लोक संख्या १,२,४,८ तथा २४ में कहा गया है।

(ङ) यह गाथा हरि कथा की ही है। इस गाथा को कोई विरला व्यक्ति ही समझ सकता है, जिसने सांसारिक कामनाओं का त्याग किया हो। इस गाथा को श्रेष्ठ-लोक परंपरा से गाते चले आये हैं। अतः यह गाथा हरि गीत-गाने वाली वह कथा है, जिसे पूर्व कर्मों के उत्तम फलस्वरूप ही गाया जा सकता है। इन बातों को भी बार बार इस गाथा में दुहराया गया है।

(१) गाथा गुंफ गोपाल कथं मथंमान मरदनह। हतं पंच सत्रेण नानक हरि बाणे प्रहारणह।।६।।

(२) गाथा गूड़ अपारं समझणं बिरला जनह। संसार कामतजणं।। नानक गोबिंद रमणं साध संगमह।। १०।।

(३) गाथा गावंति नानक भबं परा पूरबणह। १८ ।।

(च) इस गाथा में हरि-नाम तथा साधु-समागम को चन्दन, ओंकार को बांस कहा है। नीम के पेड़ में जैसे चंदन की खुशबू, चंदन के निकट होने से आ जाती है, ऐसे ही साधु संगति पतित को पुनीत कर देती है। ऐसे अलंकारों का इस गाथा में उपयोग हुआ है।

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन के आधार पर हम गुरु अर्जुन देव की 'गाथा' की प्रेरणा निश्चय ही 'लोक-गाथाओं' से मान सकते हैं, क्योंकि 'लोक-गाथा' की जो विशेषताएं ए०बी० गम्मिर ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड इंगलिश बैलेड्स' की भूमिका में दी हैं, और जिनको डा० रघुनाथ सिंह, काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने 'हिन्दी साहित्य कोश' में उद्धृत किया है, वे उपर्युक्त विवेचन से बिल्कुल मिलती हैं।[१३२]

१३२- हिन्दी साहित्य कोश- ६८८-८६

फुनेः :

इस काव्यप्रकार की रचना जो गाथा के पश्चात् है, गुरु अर्जुन देव ने की है। इस रचना का छन्द ११ + १० मात्रा का है जिस को हम अरिल्ल का नाम दे सकते हैं। प्रत्येक पद में चार पंक्तियां हैं और चौथी पंक्ति के आरंभ में हरिहां पद अधिक है। फुनहे में कुल २३ छन्द हैं।[133] डा० तरण सिंह हरिहां पद को इन छन्दों की प्रत्येक चौथी पंक्ति में पुनरावृत्ति के बारे में कहते हैं, रागात्मकता के लिये निरर्थक अथवा किसी अन्य शब्द को जिसमें पुनरावृत्ति हो उसे फुनहे कहते हैं, जैसे इस रचना में हरिहां की की गई है। पुनह (पुन:) का भाव है, फिर, बार बार।।[134] डा० महोदय का विचार शब्दार्थ के टिप्पणीकारों की टिप्पणी नं २४, पृ० १३६१ पर आधारित है। परन्तु हमारा विचार है कि शब्दार्थ गुरु ग्रंथ के टिप्पणीकारों ने हरि हां की पुनरावृत्ति के आधार पर इसे फुनह (पुनह) अवश्य कहा है, किन्तु हरिहां को निरर्थक पद नहीं कहा। इसके अर्थ - हे हरि । अथवा हे राम है।[135] हम तो इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि फुनहे भी लोक-गाथा की भांति लोक-काव्य के समूह-गान के किसी काव्य-प्रकार का अनुकरण है। जिस प्रकार लोक गीतों में बनड़ा (दूल्हा) गीत प्रसिद्ध है, तथा गाया जाता है, और उसमें बार बार बनड़े का नाम लिया जाता है, उसी प्रकार इस रचना में हरि हां पद का उपयोग हुआ है:

लोक गीत

मत्थे ते चमकण वाल, मेरे बनड़े दे।

हे वे बना। बन्ने इसनां दा गानां।

तेरे घरावां नाल, मेरे बनड़े दे।

१३३- पंजाबी कवि शिरोमणी- पृ०- १७७

१३४- श्री गुरु ग्रंथ साहब का ऐतिहासिक इतिहास- ४१३

१३५- देखिए पृ ० १३६१, टिप्पणी ३०।

हे वे बनां। [illegible] पाविंदा।
चूड़े ते चारे लाल, मेरे बनड़े वे।

हे वे बना। वद्द लगनोंदी घोड़ी।
बनो आई देखो लाल, मेरे बनड़े वे।

इस लोक गान में 'हे वे बना!' तथा 'मेरे बनड़े वे' पदों की पुनरावृत्ति है। साथ ही यह ढोलक गीत समूह गान में गाया जाता है। एक स्त्री ==== 'हे वे बना' वाली पंक्ति बोलती है। बाकी सब मिलकर उसके पीछे कहती हैं, इस प्रकार इसी पंक्ति को दो या तीन बार कहा जाता है और पुनः सब मिलकर 'मेरे बनड़े वे' वाली पंक्ति को गाती हैं। गीत की इस चाल को हम गुरु अर्जुन देव की रचना 'फुनहे' में स्पष्ट देख सकते हैं। क्रमशः पहली दो पंक्तियों को लंबी धारणा में एक व्यक्ति बोलता है, और अन्य व्यक्ति उसके पीछे उसी लय तथा स्वर में गाते हैं। पुनः तीसरी पंक्ति को फिर उसी लंबी लय में कहा जाता है। फिर तीसरी पंक्ति को सब मिलकर लंबी धारणा में उच्चारण करते हुए चौथी, 'हरिहां' पद वाली पंक्ति को इसी लंबी लय में उच्चारण करते हुए 'हरिहां' पद का कुछ ऊंचे स्वर से उच्चारण करते हुए इस पर विशेष बल देते हैं। अतः यह काव्य-प्रकार किसी शास्त्रीय गायन के आधार पर नहीं लिखा गया, परन्तु स्पष्टतया लोक-गान की पद्धति का अनुकरण है। 'हरिहां' पद उसी प्रकार प्रयुक्त हुआ है, जिस प्रकार कई लोक काव्य प्रकारों में 'हो मेरे राम!' का प्रयोग होता है।

विषय के पक्ष से भी जिस प्रकार 'बनड़ा' में सांसारिक दूल्हे की स्तुति एवं अर्चना है, उसी प्रकार भक्ति-काव्य के इस काव्य-प्रकार में 'हरि-दूल्हे' का यशोगान एवं अर्चना है।

जे धिरि आवै कंतु त धन पिरु पाईऐ।
'हरिहां' कंते बाझु सीगार सभ बिरथा जाईऐ ॥३॥
सुपने ऊभी भई, गहिओ की न अंचला।
सुंदर पुरख बिराजित पेखि मन बंचला।

सोइउ तांके चरण कहहु कत पावैि।
'हरिहां' सोई जतनु बताइ सखी प्रिउ पावैि ।।३।।

गुरु नानक की तुखारी रा म: १ बारह-माह की रचना की भांति विप्रलंभ-शृंगार एवं संयोग-शृंगार की यह अद्वितीय रचना है।

विरह तड़प

नातिक चित सुचित सुरागन चाहीवै।
जिस संगि लागे प्राण तिसै कउ आहीवै।
वन वन फिरत उदास बूंद जल कारणो।
'हरि-हां' तिउ हरि जनु मांगै नाम नानक बलिहारणो।

मिलन वेला

जिस घरि वसिआ कंतु सा वडभागणे ।
तिस बणिआ हभु सीगारु साई सोहागणे।
हउ सुती होइ अचिंतमनि आस पुराईआ।
'हरि-हां' जा घरि आइआ कंतु त सभु किछु पाईआ ।। ४।।

सद

यह रचना श्री अनंद जी के पुत्र बाबा सुंदर जी की है। श्री अनंद जी के पिता मोहरी जी थे और श्री मोहरी जी गुरु अमरदास के सपुत्र थे।

शब्दार्थ गुरु ग्रंथ के टिप्पणीकारों का विचार है कि यह रचना बाबा सुन्दर जी ने गुरु अमरदास के देहावसान पर लिखी है। बाबा जी ने सिख संगतों को गुरु अमरदास जी का अन्तिम संदेश इस रचना द्वारा दिया है। जिस प्रकार 'अनंद' कोई ऐतिहासिक वार्ता नहीं है, इस प्रकार 'सद' भी ऐतिहासिक वार्ता न होकर शोक-समय में गुरुवाणी की महत्ता दर्शाती रचना है। अनंद, मंगल-गायन है, और मंगल-अवसर पर गुरुवाणी की महत्ता दर्शाता है।[१३६]

१३६- शब्दार्थ - आ. ग. ९२३

डा० तारन सिंह इसी विचार का आश्रय लेकर 'सद्द' को शोक-गीत कहते है और 'सद्द' को मृत्यु का आह्वान कह कर अभिहित करते हैं।[137]

इधर कुछ विद्वानों ने 'सद्द' को केवल शोक-गीत न कहकर इसे लोक-काव्य की परंपरा में भी रखा है। प्रिंसीपल स०सि० कोहली लिखते हैं: "कई विद्वानों का विचार है कि 'सद्द' एक ऐसी काव्य (रचना) है, जो 'मरसिये' की भांति किसी के देहावसान अवसर पर लिखी जाती है। 'सद्द' को वार-काव्य प्रकार की कोटि में रखते हुए वे कहते हैं: हमारा विचार है कि प्रत्येक वार अपने नायक की मृत्यु के पश्चात् ही लिखी जाती है। इसलिये 'सद्द' का उपर्युक्त लक्षण कोई समीचीन लक्षण नहीं है। हमारा विचार है कि 'सद्द' वह 'वार' है, जिसमें कुछ पौड़ियों के अंत में 'वार' के नायक को ऊंची टेर लगा कर पुकारा जाता है। जैसे, 'ओ मिरज़िया जट्टा ओए!' आदि कह कर मिरज़े की गाये जाने वाली सद्दें, इसी कारण इसी नाम से अभिहित की जाती हैं। गुरु ग्रंथ साहब में भी राम कली राग में एक सद्द है।"[138]

'सद्द' में गुरु अमरदास के देहावसान पर शोक न करने तथा गुरुवाणी कीर्तन का उपदेश है तथा गुरु राम दास के गुरु गद्दी पर स्थापित किये जाने का वर्णन है।

मत मै पिछै कोई रोवसी सो मै मूलि न भाइआ।

अंते सतिगुरु बोलिआ मै पिछै कीरतनु करिअहु निरबाणु जीउ।
केसो गोपाल पंडित सदिअहु हरि हरि कथा पड़हि पुराणु जीउ।।
हरि कथा पड़ीऐ हरि नामु सुणीऐ बेबाणु, हरि रंगु गुर भावए।

हरि भाइआ सतिगुरु बोलिआ हरि मिलिआ पुरखु सुजाणु जीउ।।
राम दास सोढी तिलकु दीआ गुर सबदु सचु नीसाणु जीउ।।
सतिगुरु पुरखु जि बोलिआ गुरसिखा मंनि लई रजाइ जीउ।।
मोहरी पुतु सनमुखु होइआ रामदासै पैरी पाइ जीउ।।
कहै सुंदरु सुणहु संतहु सभु जगतु पैरी पाइ जीउ।।[139]

१३७- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक इतिहास- ४५७

१३८- पुरातन पंजाबी कवि दा विकास- पृ० ५५

१३९- आ. ग्र. ९२३-२४

हमारा विचार है कि इस सद्द का उपर्युक्त शैली लोक-काव्य की इस प्रकार की रचनाओं से कुछ भिन्न है। परन्तु इसका प्रेरणा के लिये लोक-काव्य को स्रोत मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रामकली राग में निबद्ध होते हुए भी यह रचना प्रशांत वातावरण वाली समूहगान की शैली की रचना है।

मुंदावणी

यह रचना गुरु अर्जुन देव द्वारा की गई है।[१४०] इस रचना को शब्दार्थ टीकाकारों ने 'मुकारत' अथवा 'पहेली' कहा है। और कहा है कि यह शैली पहेली है जिस में पूछा है; वह थाल कैसा है, जिसमें तीन वस्तुएं हैं- सत्य, संतोष तथा विचार। इन तीनों के मिश्रण से भोजन बनाने के लिये जल के स्थान पर हरि का अमृत नाम पड़ा है। इस प्रकार एक भोजन तैयार हुआ है, जिसे समस्त संसार की क्षुधाग्नि को प्रशांत करना है। अन्य भोजनों के बिना निर्वाह हो सकता है, परन्तु इस भोजन के बगैर मानव जाति जीवित नहीं रह सकती। (एहु वसतु तजी न जाई) हे संसारिक प्राणियों। यह वस्तु आप त्याग नहीं सकते। अतः सदैव इसको हृदय में धारण करके रखो। यह थाल कौन सा है? इसका उत्तर है: गुरु ग्रंथ साहब- जिसकी यहां समाप्ति होती है।[१४१]

पहेली

थाल विचि तिनि वसतू पईओ- सतु संतोखु वीचारो।
अंम्रितनामु ठाकुर का पइओ जिसका सभसु अधारो।
जे को खावै जे को भुंचै तिस का होइ उधारो।
एह वसतु तजी न जाई नित नित रखु उरि धारो।
तम संसारु चरन लगि तरीऐ सभु नानक ब्रहमपसारो।

पहेली की शैली में काव्य रचना की प्रेरणा तो सीधी लोक-काव्य से प्राप्त हुई है। पहेलियां अथवा उलटवांसियां तो सन्तों ने भी

१४०- आ. ग्र. पृ० १४२९
१४१- शब्दार्थ आ. ग्र. पृ० १४२९

लिखी हैं और कबीर ने विशेषत: सिद्धों योगियों के प्रभाव के अंतर्गत इन की पर्याप्त रचना की है। आदि ग्रंथ में अन्य स्थानों पर भी इन के उदाहरण मिल जाते हैं:-

गउड़ी कबीर जी नालि रलाइ लिखिआ महला ५

(यह रचना कबीर की है, जिसे म: ५ ने अपनाया है)

ऐसो अचरजु देखिओ कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीरु। रहाउ॥
हरि अंगूरी गदहा चरै। नित उठि हासै हीगै मरै।
माता भैसा अंमुहा जाइ। कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ।
कहु कबीर परगट भई खेड। लेले कउ चूघै नित भेड।।[१४२]

आसा कबीर

पहिला पूतु पिछैरी माई। गुरु लागो चेले की पाई।
एकु अचंभउ सुनहु तुम भाई। देखत सिंघु चरावत गाई। रहाउ।।
जल की मछुली तरवरि बिआई। देखत कुतरा लै गई बिलाई।
तलै रे बैसा ऊपरि सूला। तिसकै पेडि लगे फल फूला।
घोरै चरि भैस चरावन जाई। बाहरि बैलु गोनि घरि आई।
कहत कबीर जु इस पद बूझै। राम रमत तिसु सभु किछु सूझै।[१४३]

गुरु अर्जुन ने पहेली लिखने की प्रेरणा कबीर से ही प्राप्त की होगी, क्योंकि कबीर की उपर्युक्त पहेलियों के आधार पर ही उन्हों ने रचनाएं की हैं। गउड़ी राग तथा रामकली राग में गुरु अर्जुन की दो पहेलियां उल्लेखनीय हैं:-

---

१४२- आ०ग्र० पृ० ३२६

१४३- आ०ग्र० पृ० ४८१

गउड़ी

मन [illegible] कैसे [illegible]। [illegible] पुकारे [illegible]।
[illegible] नैया [illegible]। [illegible] पावै।
[illegible] है [illegible] पूजि। [illegible] बिन [illegible]। [244]

रामकली

[illegible] बारे [illegible] हुआ [illegible]।
[illegible] प्रति पावै। [illegible] निआरे। [245]

टोडी

जल की माछुली चरै खजूरि।। नामदेव [246]

सोरठ नामदेव

अणमड़िआ मंदलु बाजै।
बिनु सावण घनहरु गाजै।
बादल बिनु बरखा होई
जउ ततु बिचारै कोई।। (आ० ग्रं० पृ० ६५७)

विद्वानों ने इस प्रकार की भाषा को संध्या भाषा का नाम दिया है। सिद्धों की उलटबांसियों में इसका प्रयोग हुआ है। कबीरादि साधकों ने यह भाषा-शैली सिद्धों से प्राप्त की। इस शैली के विषय में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, 'उलट-बांसी' शब्द का व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ जो भी रहा हो और इसका प्रयोग चाहे जिस समय से होता आ रहा हो, इसमें संदेह नहीं कि ऐसे पद्यों के रचने की परम्परा बहुत प्राचीन है और इसके प्राचीन वैदिक साहित्य तक में मिले मिलते हैं।[247] कबीर साहित्य की परख नामक ग्रंथ में इस संबंध में वैदिक साहित्य से उदाहरण देकर उन्होंने अपने वक्तव्य की पुष्टि की है।

२४४- आ०ग्रं० पृ० ३२८
२४५- आ०ग्रं० पृ० ९८०
२४६- आ०ग्रं० पृ० ७२८
२४७- कबीर साहित्य की परख पृ० २१६ (द्वितीय संस्करण)

वारें

गुरु ग्रंथ में वार-काव्य की पद्धति पर वारों का भी निर्माण हुआ है। वारें स्पष्टतया लोक-काव्य की ध्वनि पर आधारित हैं। इस का प्रमाण तो गुरु ग्रंथ के अंत: साक्ष्य से ही मिल जाता है। जैसे गुरु ग्रंथ की भी वारों को उस समय की प्रचलित लोक-वारों की पौड़ियों की ध्वनियों पर गाए जाने का संकेत है:[148]

नाम वार	नाम लोक ध्वनि
१- वार माझ की तथा सलोक म:१	मलक मुरद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनि गावणी।
२- गउड़ी की वार मा:५	राइ कमालदी मौजदी की वार की धुनि।
३- वार सलोका नाल सलोक म: १(आसा)	टुंडे असराजे की धुनी।
४- गूजरी की वार म: ३	सिकंदर बिराहिम की वार की धुनी।
५- वडे हंस की वार म: ४	ललां बहलीमा की धुनी।
६- रामकली की वार म: ३	जोधे वीरै पूरबाणी की धुनी।
७- सारंग की वार म:४	राइ महमे हसने की धुनी।
८- वार मलार म: १	राणे कैलाश तथा मालदे की धुनी।
९- कानड़े की वार म: ४	मूसे की वार की धुनी।

डा० चरण सिंह ने इन लोक वारों के काव्य के जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उन में कुछ पाठ भेद अथवा आधुनिकता अवश्य आ गई है परन्तु ऐसा इन के लिपि बद्ध न होने तथा मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आने से स्मृतिकारों की अपनी भाषा के विकार के कारण हुआ है। कुछ भी हो लोकवारों के आधार पर इन गुरु ग्रंथ की वारों के गाये जाने के संकेतों के आधार पर यह बात बहुत स्पष्ट है कि इन वारों की काव्य-रूप शैली का आधार यही लोक-काव्य है। इस संबंध में प्रिंसीपल संत सिंह सेखों का विचार उल्लेखनीय है। वारों के काव्य-रूप के संबंध में वे लिखते हैं, गुरु वाणी

१४८- आ. ग्र. पृ० १३७,३१८,४६२,५०६,५८५,६४७,१२३८,१२७६,१३१३

१४९- गुरमति संगीत भाग- ४ पृ० ६

ने लोक-गीतों के स्वभावानुसार कुछ स्वच्छन्दता ग्रहण की है, चाहे इसका कलेवर छन्द योजना का ही है। इस का साक्ष्य में कई स्थानों पर लोक-वारों से उद्भूत ध्वनियों से मिलता है। साधारणतया प्रत्येक वार के आरंभ में किसी लोक वार की ध्वनि पर गाये जाने का संकेत है।[१२०]

भक्ति काव्य में लोक-काव्य की इस पुट के विषय में कुछ अन्य विद्वानों के विचार भी इस बात की पुष्टि करते हैं, कि सन्त भक्त-कवियों ने अपनी रचनाओं को अधिक जनवादी बनाने के लिये इसके संगीत-ताल-एवं रूप को जनजीवन से ही अवरोहन का निर्माण किया। संत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, संत-काव्य की परंपरा तत्वतः उस काव्य रचना पद्धति की ओर संकेत करती है जो मानव समाज की मूल प्रवृत्तियों पर आश्रित है। यह किसी समय आपसे आप चल पड़ी थी और वह उसी रूप में विकसित होती गई। यह उस काल से विद्यमान है जबकि भाषा के ऊपर किसी व्याकरण शास्त्र का नियंत्रण न था और न उसके काव्य रूप की व्यवस्था के लिये किन्हीं छन्दों-नियमों की ही सृष्टि हो पाई थी। अतः स्वभावतः स्वच्छन्द रूप में ही वह अग्रसर हुई थी। इस कारण उसको कविता को काव्य सौष्ठव प्रदर्शित करने के लिये किसी रस व अलंकारादि संबंधी शास्त्र की भी आवश्यकता नहीं था। व्याकरण पिंगल तथा काव्य-कला विषयक अन्य शास्त्रों की रचना क्रमशः पीछे होती गयी। उनके नियमों उपनियमों का अनुसरण करने वाली शास्त्रीय पद्धति की कविता की एक पृथक परंपरा भी चलने लगी और दोनों समानान्तर चलीं। किन्तु शिष्ट समाज अथवा सभ्य लोगों द्वारा अधिक अपनायी जाने के कारण दूसरी को क्रमशः अधिक योगदान मिलने लगा और स्वाभाविक प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करने के कारण पहिली का आदर सदा साधारण जन समाज तक ही सीमित रहता आया। पहिली की भी शृंखला कभी नहीं टूटी और वह अधिकतर अपने मौखिक रूप में जीवित रही। लिखित रूप में उसका केवल वही अंश पहिले संचित किया जा सका जिसमें या तो ज्ञान विज्ञान

१२०- पंजाबी कवि सिरोमणि - ५२१

की गंभीरता थी अथवा जिसे सर्व साधारण के प्रति उपदेश का भी रूप दिया गया था। संसार के प्राचीन धार्मिक साहित्य अथवा काव्य मूलत: उक्त पहिली परंपरा के उदाहरणों में आते हैं। उन्हें लिखित रूप मिल गया है, किन्तु इस प्रकार की रचनाओं का एक बहुत बड़ा अंश अभी तक मौखिक रूप में भी विद्यमान है और उसे बहुधा लोक- गीत के नाम से अभिहित किया जाता है।'[१५१]

वस्तुत: लोक गीतों ने संत काव्य को ही प्रभावित नहीं किया। इस संबंध में महा महोपाध्याय श्री गोपी नाथ कविराज कहते हैं, 'भारतीय संस्कृति में पौराणिक कथाओं, तीर्थाटन, व्रत, उत्सव और पर्वों की जो प्रणाली परंपरागत चली आ रही है, उसी से लोक संस्कृति का संपादन हुआ है। इस प्रशस्त प्रणाली ने भारतीय जीवन, भारतीय संस्कृति और भारत देश को प्राणवान एवं जाग्रत बनाए रखने में बड़ा योग दिया है।'[१५२] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'भोजपुरी-गद्दी लोक गीतों का परिचय' की भूमिका में लिखा है, 'ग्राम गीतों का समस्त महत्त्व उनके काव्य-सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है, एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई या ग़लत समझ ली गई है।......आज भी लोकाचार, स्त्री-आचार, पौराणिक परंपरादि के रूप में वर्तमान है। ग्राम-गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपने आरंभिक युग में श्रुति कहलाते थे। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतर कर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे लोक-गीत अब भी श्रुति ही हैं, जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य-सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्राम-गीतों द्वारा आर्य-पूर्व-सभ्यता का ज्ञान होता है। ईंट पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो ज़ोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम-गीत का महत्त्व मोहेंजोदड़ो से कहीं अधिक है। मोहेन्जोदड़ो सरीखे भग्न-स्तूप ग्राम-गीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं।'[१५३]

लोक काव्य तथा संत काव्य- मूलभेद

इतना होते हुए भी लोक गीतों तथा संत-काव्य में एक मूलभूत अंतर है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, 'संत-काव्य की परंपरा प्राकृत-काव्य

१५१- कबीर साहित्य की परख डि०सं० अध्याय-संत-काव्य की परंपरा, पृ २०-२१

१५२- लोक गीतों की सामाजिक व्याख्या- पृ० १६ पर उद्धृत।

१५३- वही पृ० २० पर उद्धृत।

की परंपरा है, और अभिजात काव्य अधिकतर कल्पनाप्रसूत रचनाओं की प्रणाली है। काव्य प्रथम में जहां हमारी आदिम मनोवृत्तियों का सरल और विशुद्ध रूप दीख पड़ता है, वहां द्वितीय में बहुत कुछ कृत्रिमता का समावेश रहता है। प्राकृत-काव्य तथा शिष्ट या कलात्मक काव्य के बीच इस प्रकार का अन्तर देख कर ही संत-काव्य को प्रथम परिगणित कोटि में रखने की प्रवृत्ति होती है। फिर भी यह काव्य प्राकृत-काव्य के उस वर्ग में आता नहीं जान पड़ता, जिसे लोक-गीत कहा करते हैं। कुछ आलोचकों की धारणा है, कि हिन्दी साहित्य की निर्गुणधारा की संज्ञा से अभिहित संपूर्ण बानी एक लोक-गीत वर्ग का है। और वे अतिपय कारणों की ओर लक्ष्य करते हुए यहां तक कह डालते हैं, कि हमारा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी साहित्य की निर्गुणधारा लोक-गीतों का ही विकसित रूप है। किन्तु ऐसे लेखक लोग लोक-गीत की उन विशेषताओं की ओर कदाचित पूरा ध्यान नहीं देते, जो उसे सन्त-काव्य से भिन्न सिद्ध कर देती हैं। लोक-गीत वस्तुतः किसी समाज विशेष के हृदय और मस्तिष्क की अभिव्यक्ति करता है, और उसमें काव्य-निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहा करता है। जहां संत-काव्य स्वभावतः किसी संत की स्वानुभूति का निदर्शन करता है, इस कारण प्राकृत काव्य का रूप धारण करता हुआ भी वह अपनी कर्तृ-प्रधानता एवं आत्माभिव्यंजना (subjectivity and self expression) की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का सर्वथा त्याग नहीं कर पाता। इसके सिवाय लोक गीत का नाम रूप बहुधा श्रुति और मौखिक परंपरा द्वारा उपलब्ध होता है और उसमें अधिकतर प्रेम-परक या रसात्मक स्थलों का भी समावेश रहा करता है, जहां संत-काव्य के लिये ये बातें आवश्यक नहीं हैं, और इस में बहुधा धार्मिकता का पुट भी मिल जाया करता है।[१५४]

आदि ग्रंथ का बहुत सा काव्य जिस के प्रकारों का ऊपर उल्लेख किया गया है लोक-काव्य के प्रकारों से प्रेरणा लेता हुआ भी अ-लौकिक मंडलों में विहार करता है, और इसी परंपद की प्राप्ति के लिये विधि-विधान प्रस्तुत करता है, और इसी कारण वह वाणी गुरु की बाणी आई। जिनि सगली चिंत मिटाई,[१५५] की पदवी को प्राप्त होती है। जब कि

१५४- कबीर साहित्य की परख- पृ० २१

१५५- सोरठ म: ५ आ०ग्रं० पृ० ६२८

लोक काव्य लौकिक जीवन से प्रस्फुटित होकर, उसी जीवन के सामाजिक सांस्कृतिक तथा सम्प्रदायिक आचार-व्यवहार की अभिव्यंजना करता है। आदि ग्रंथ के रचयिताओं की स्वानुभूति एवं साधना का प्रभाव इस काव्य पर प्रत्यक्ष परिलक्षित है जैसा कि अन्तः साक्ष्य से सिद्ध होता है। सन्तों ने अपने पूर्ववर्ती सन्तों का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया है और भाट-कवियों ने गुरु व्यक्तियों का स्तुति गान किया है। सन्त-काव्य की लोक प्रियता उसके काव्यत्व की प्रचुरता पर निर्भर नहीं। वह जन साधारण के अंग बने कवियों (या क्रान्ति-दर्शी व्यक्तियों) की स्वानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति है और उसकी भाषा जन साधारण की भाषा है। उसमें साधारण जन-सुलभ प्रतीकों के ही प्रयोग हैं और वह जनजीवन को स्पर्श करता है। वह सभी प्रकार से जन काव्य कहलाने के योग्य है जिस कारण उसकी परंपरा की छोरें अमित आत्मक उपलब्धि समझी जा सकती हैं।[१५६]

१५६- कबीर साहित्य की परख पृ० २१-२२

(ख) गुरु ग्रंथ की छन्द योजना।

लोक काव्य से अधिकाधिक प्रेरणा प्राप्त करता हुआ भी गुरु ग्रंथ-काव्य शास्त्रीय छन्दानुशासन का पालन करने में किसी शिष्ट अथवा अभिजात काव्य रचना से पीछे नहीं। लोक-काव्य अथवा प्रकृत-काव्य प्रकृति का धारणीय होने के कारण संत-काव्य छन्दानुशासन के बन्धनों से कहीं कहीं स्वच्छन्दता अवश्य ग्रहण करता है। फिर भी जहां तक अध्यात्मक-साहित्य का संबंध है, जिस काव्य-सौष्ठव से संगीत-रस-ताल तथा नाद की सहायता आदि ग्रंथ के काव्य में ली गई है, उसके उदाहरण और कहीं नहीं मिलते। हिन्दू पिंगल का कोई छन्द ऐसा होगा, जिसका चमत्कार यहां प्रकाशित न हुआ हो।[१५७] जिस प्रकार वेद, पुराण, रामायण और अन्य काव्य ग्रंथों में छन्दों के नामों का उल्लेख नहीं, किंतु विद्वान पाठक छंद की गति से जान लेते हैं कि यह अमुक जाति का छन्द है, वैसे ही श्री गुरु ग्रंथ साहिब में छन्दों के नाम (विशेष दो-चार स्थानों को छोड़कर) लिखे नहीं मिलते। छन्द शास्त्र के ज्ञाता ही इन छन्दों को पहचान कर गुरुवाणी का अधिक रसास्वादन कर सकते हैं।[१५८]

गुरु ग्रंथ काव्य में लोक तत्वों अथवा लोक गान शैलियों की परंपरा पर विचार करते समय हम गुरु ग्रंथ के छन्दानुशासन के विषय में इसके रचयिताओं की स्वच्छन्द रुचि का वर्णन करते हुए संकेत कर चुके हैं, कि कहीं कहीं जो मात्राओं की न्यूनाधिकता है, उसकी विषमता स्वर-लय-ताल अथवा संगीतक आलाप के कारण है। प्रिंसीपल तेजा[१५९] तथा भाई कान्ह सिंह नाभा[१६०] इस विषय पर सहमत हैं।

छन्द दो प्रकार के हैं। पहला वर्ग संस्कृत के वर्णिक छन्दों का है, जिन्हें वृत-छन्द की संज्ञा प्रदान की गई है और दूसरा वर्ग प्राकृत अथवा

१५७- श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्तिक विशेषता- डा० गोपाल सिंह- पृ०१२८
१५८- गुरु छन्ददिवाकर- कान्ह सिंह नाभा पृ० २१
१५९- पंजाबी कवि शिरोमणी पृ ६६
१६०- गुरु छन्द दिवाकर पृ० २२

मात्रिक छन्दों का है जिन्हें जाति-छन्द कहा गया है।[१६१]

वृत्त-छन्द प्रत्येक चरण अथवा पंक्ति में प्रयुक्त वर्णों की गणना के आधार पर निर्मित होते हैं। इन्हें वार्णिक छन्द भी कहा जाता है। इनके तीन प्रकार माने गए हैं। (१) सम-वृत्त (२) अर्धवृत्त (३) विषम वृत्त। जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में प्रयुक्त वर्णों की संख्या समान हो उन्हें सम-वृत्त, जिनके पहिले-तीसरे एवं दूसरे चौथे चरणों की वर्ण-संख्या असमान अथवा विषम हो उन्हें विषम-वृत्त कहा जाता है। जाति-छन्दों की रचना प्रत्येक चरण अथवा प्रत्येक पंक्ति में प्रयुक्त मात्राओं की गणना के आधार पर की जाती है। इनके दो भेद हैं। गण-छन्द तथा मात्रा-छन्द। गण-छन्द में चरणों के क्रमविधान पर ध्यान दिया जाता है। इन में मात्रा के साथ वर्ण-न्यास के एक पूर्व-निश्चित नियम का पालन किया जाता है। मात्रा-छन्द, शुद्ध रूप में मात्रिक होते हैं। चरणों की दृष्टि से ये मुक्त और स्वच्छन्द कहे जा सकते हैं।[१६२]

सिख गुरुओं तथा आदि ग्रंथ के भक्त कवियों की वाणी में अधिकतर मात्रिक छन्दों की प्रधानता है। और हिन्दी तथा पंजाबी काव्य में भी इन्हीं मात्रिक छन्दों की ही परंपरा का अनुकरण हुआ है।[१६३] भारतीय भाषाओं में अपभ्रंश कालोत्तर मात्रिक छन्दों का ही विशेष उपयोग किया गया है। दोहा, चौपाई, रोला, सोरठा, और छप्पय आदि का व्यवहार प्रबंध काव्यों की रचना में किया गया है। दोहा, कुंडलिया छप्पय एवं सवैया आदि छन्द मुक्तक काव्यों की रचना में प्रयुक्त हुए हैं।[१६४] यह छन्द सन्त काव्य के भी प्रिय छन्द थे। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, 'पदों-साखियों (दोहों) एवं रमैनियों के पीछे जिन छन्दों का अधिक प्रचार संत काव्य में पहले पहल आरम्भ हुआ, वे सवैया, कवित्त, छप्पय, अरिल्ल कुंडलिया और निभंगी थे।[१६५] अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य की परंपरा में श्री हंस राज अग्रवाल लिखते हैं, 'संत-साहित्य की रचनाओं में साखी और शब्द को अपनाया गया है। साखी (साक्षी) का छन्द

१६१- एस०एच० केलाग: द ग्रामर आव द हिंदी लैंग्वेज लन्दन- १९३८ पृ० [illegible]
परसे हिन्दी भक्ति काव्य में लोक तत्त्व पृ० १६३ पर उद्धृत।

१६२- हिन्दी भक्ति काव्य में लोक तत्त्व पृ० १६३-१६४।

दोहा है, जिसका प्रयोग प्राचीन हिन्दी तथा अपभ्रंश साहित्य में पर्याप्त किया गया है। शुद्ध साहित्यिक शैली न होकर प्रादेशिक शैली थी और इसका अधिक प्रयोग जन-साहित्य में लोक गीतों के लिये हुआ है। भाषा, छन्द तथा वर्णन शैली की दृष्टि से संत कवि अपने समय की प्रचलित साहित्यिक शैली का अनुसरण नहीं कर रहे थे।[१६६] उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है, कि किस प्रकार आदि ग्रंथ के बाहिर के सन्त-काव्य में मात्रिक छन्दों का उपयोग हुआ है। इन छन्दों की परंपरा का जो अनुकरण आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने किया है, उसका अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) दोहा

गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं:-

संस्कृत में भी दोहे लिखे गए हैं और गाथाएं भी लिखी गई हैं, और प्राकृत में भी संस्कृत छन्दों का व्यवहार हुआ है। दोहे का भी कहीं न कहीं मिल ही जायेगा। परन्तु सचाई यही है कि श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है। माइल्ल धवल नामक कवि ने दव्वसहावपयास (द्रव्यस्वभावप्रकाश) नामक ग्रंथ को पहले दोहा बंध (अर्थात अपभ्रंश) में देखा था। लोग उनकी हंसी उड़ाते थे (शायद इसलिये कि अपभ्रंश गंवारू भाषा थी), तो उन्होंने गाहाबंध (प्राकृत) में कर दिया। स्पष्ट ही दोहाबन्ध का अर्थ अपभ्रंश है और गाहाबंध का प्राकृत।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने उपर्युक्त वक्तव्य को जारी रखते हुए दोहा-छन्द के विषय में कहते हैं: पहले पहल यह सहज छन्द कब बना था- यह कहना कठिन है। विक्रमोर्वशीय में दोहा-छन्द अपभ्रंश भाषा में ही निबद्ध है:-

---

१६३- गुरुमति साहित्यांक - पंजाबी दुनिया-जनवरी फरवरी,१९६५,शमशेर सिंह अशोक (गुरु ग्रंथ का छन्द प्रबंध, पृ० ७०)

१६४- हिन्दी भक्ति काव्य में लोक तत्व- १६५

१६५- संत काव्य-पृ० १ ५ (भूमिका)

१६६- हिन्दी साहित्य की परंपरा- ८०

मइं जाणिअं मिअलोयणी णिसअरु कोई हरेइ।

जाव ण णव तलि सामल, धाराहरु वरसेइ।

विक्रमोर्वशीय, चतुर्थ अंक

अर्थात मैं ने समझा था कि कोई निशाचर मृगलोचनी को हरण किए जा रहा है, लेकिन यह मेरी गलती थी। इस गलती को मैं ने तब महसूस किया जब कि नवीन विद्युत से संयुक्त श्यामल मेघ बरसने लगे।

जैकोबी का कहना था कि यह भाषा कालिदास की नहीं हो सकती। अर्थात यह प्रक्षिप्त है। भाव के बारे में भी किसी- किसी को संदेह है। इसी शब्दावली से मिलता जुलता दोहा हेम चन्द्र के व्याकरण में भी है।

मइ जाणिउं प्रियविरहियहं, कवि धर होइ विआलि।

णवर मियंकु वि तिह तवइ, जिह दिणयरु खयगालि।

हेम चन्द्र ०४

अर्थात मैं ने समझा था कि प्रिय-विरहिता नारियों को कम से कम सायंकाल कुछ सहारा मिल जाता होगा। पर यहां तो मृगांक भी इस भांति तपता है जैसे प्रलय काल में सूर्य हो।[१६७]

कालिदास के अपभ्रंश के दोहे को प्रक्षिप्त मानने का विचार हमें तो युक्तिसंगत नहीं लगा। कालिदास संस्कृत ग्रंथों के रचयिता था, परन्तु इसका यह भाव नहीं कि उसकाल में अपभ्रंशका यह रूप विद्यमान् नहीं था। और संस्कृत काव्य (गीत गोविंद) का रचयिता जयदेव यदि आदि ग्रंथ वाले अपभ्रंश के पद लिख सकता है, तो कालिदास का दोहा प्रक्षिप्त कैसे हो सकता है। द्विवेदी जी कहते हैं, यह दोहा कालिदास में प्रक्षिप्त हो या न हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि अपभ्रंश का साहित्य पांचवीं- छटी शताब्दी में काफी मात्रा में वर्तमान था।[१६८]

डा० नामवरसिंह अपने एक ग्रंथ में लिखते हैं, जो हो कालिदास के नाटक मे उन ललित छन्दों का स्थान पाना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, और दीर्घ

१६७- हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ६८-६९

१६८- वही० पृ० ६६

परंपरा से उन्हें विक्रमोर्वशीय नाटक का अंग, समझा जा रहा है। ईसा की पांचवीं शताब्दी में वैसी भाषा में नाटक का पाया जाना कोई असंभव बात नहीं है। संभव है यह कोई लोक-गीत रहा हो जिस के माधुर्य से प्रभावित होकर कवि ने अपने नाटक में उसका उपयोग कर लिया हो।[१६६]

दोहा छन्द का आदि ग्रंथ में बहुत उपयोग किया गया है। आदि ग्रंथ की आरंभ की रचना जो गुरु नानक देव की है, दोहा छन्द (१३ + ११) मात्राओं में है।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।

गुरु ग्रंथों की वारों की पौड़ियों के साथ जितने श्लोक आये हैं, उनमें अधिक का छन्द दोहा ही है, वाहे अन्य छन्द भी इन श्लोकों में आये हैं। कई वारों की पौड़ियों का छन्द भी दोहा है, जैसे आसा की वार (म:१) की २४ पौड़ियों का मूल छन्द १३ +११ मात्राओं का दोहा छन्द है। परन्तु कुछ पंक्तियों को छोड़कर पिछले चरण से आगे पीछे दो दो मात्राएं बढ़ाकर १५ कर दी गई हैं। अन्तिम पंक्ति आधी १५ मात्राओं की है- यथा:

नानक जीआ उपाइ कै (लिख) नावै धरम बहालिआ १३+(२)+१३
ओथै सचो ही सचि निबड़ै (चुणि) वखकढे जजमालिआ १३+(२)+१३

माझ राग में गुरु अर्जुन देव के बारहमाह का छन्द भी दोहा है। गौड़ी राग में बावन अखरी के सलोकों का छन्द दोहा है। सुखमनी के सलोकों का छन्द भी दोहा है। सलोक फरीद, कबीर तथा सलोक वारां तो वधीक का तोलदोहा है। चौबोले ११ हैं, जिनके रचयिता भी गुरु अर्जुन देव हैं, इनका प्रत्येक पद एक दोहा है।[१७०]

ऊपर हम देख चुके है कि आदि ग्रंथ में दोहा छन्द का उपयोग मुख्यत: दो प्रकार से किया गया है- एक तो स्वतंत्र रूप से काव्य रचना के लिये, दूसरे प्रबंध काव्यों में यथा सुखमनी तथा वारों की पौड़ियों के अन्त में। गुरु

१६६- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, नामवर सिंह १९५४ पृ० २०

१७०- पंजाबी काव शिरोमणी पृ० १३३, ३४

71- This (Doha) is at present the most popular and common of ---- metres. It is much used by Tulsi Das, Kabir (cont).

अंगद देव ने केवल ६२ दोहे ही लिखे हैं और उनकी कोई रचना नहीं।

दोहा हिन्दी साहित्य का एक अत्यन्त प्रिय और सर्वाधिक प्रचलित छन्द रहा है।[१७१] आदि ग्रंथ में दो चरण, प्रति चरण २४ मात्राएं (१३+११) तथा अंत गुरु लघु वाले दोहे का सब से अधिक उपयोग है। अपभ्रंश का जो दोहा साहित्य जो आज उपलब्ध है, वह हिन्दी के परवर्ती साहित्य के प्रत्येक रूप की वास्तविक पृष्ठभूमि है। वीरगाथा काल के वीर-रस-प्रधान एवं दर्पोक्ति पूर्ण दोहे, भक्तिकाल के नीति, धर्म और ज्ञानोपदेश परक दोहे, रीतिकाल के शृंगार रस की मधुर भावनाओं से ओत प्रोत दोहे, सब के सब भावाभिव्यक्ति और छन्दसिक पद्धति की दृष्टि से अपभ्रंश के ऋणी हैं।[१७२] उदाहरण के लिये अपभ्रंश साहित्य से वीरता व्यंजक, शृंगार व्यंजक, शृंगार परक और ज्ञानोपदेश संबंधी कुछ दोहे दिए जाते हैं।[१७३]

१- <u>वीरता परक</u>

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जई भग्गा घरु एन्तु। (३५१-१)

(हे बहिन ! अच्छा हुआ कि मेरे कान्त मारे गए।
यदि वे भाग कर घर आते तो मैं समवयस्काओं (सखियों)
के बीच लज्जित होती)

२- <u>शृंगार परक</u>

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति। (३५२-१)
(कौए को उड़ाती हुई (प्रिया) ने अचानक अपने प्रियतम को सम्मुख देखा तो, उसका आधा वलय धरती पर गिर गया और आधा तड़क कर फूट गया)

१७१-

१७२- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक-तत्व पृ० १६६

१७३- सिद्ध हेम चन्द्र प्राकृतव्याकरण, बी०ओ०आर०आई, पूना-१९३६ से हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १६६ उद्धृत

३- ज्ञानोपदेश संबंधी

जे गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु ।
तसु हउं कलिजुगि दुल्लहइ हो बलि किज्जउं सुजणस्सु ।। (३३८-१)
(जो अपना गुण छिपाता है और दूसरे का प्रकट करता है,
कलियुग में उस सुजन की मैं बलि जाता हूं।)

विद्वानों ने इन अपभ्रंश के दोहों को लोक भाषा में होते हुए भी एक साहित्यिक परंपरा की वस्तु माना है। किन्तु दोहे की कोई लौकिक परंपरा उपलब्ध न हो ऐसी बात भी नहीं है। राजस्थान में प्रचलित अनेक दोहागान इस छन्द की किसी विशाल मौखिक परंपरा की ओर संकेत करते हैं। राजस्थानी लोक काव्य ढोला-मारू मुख्यत: दोहा छन्द में ही उपलब्ध है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'ढोला-मारू रा-दूहा' के संपादकों ने इसे एक जनप्रिय लोक-गीत कहा है।[१७४] पंडित मोती लाल मेनारिया ने डिंगल में प्रचलित दोहों के पांच भेद बतलाए हैं।[१७५] इन के नाम इस प्रकार हैं- दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो, तंबूरी दूहो और खोड़ो दूहो। ये सभी प्रकार के दोहे राजस्थानी साहित्य की अमूल्य निधि है, और वहां के लोक-मानस का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें लोक जीवन की सहजता और सरसता समान रूप से सुरक्षित है। ढोला-मारू के कुछ दोहे यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं:

(क) सखि ए सज्जण वल्लहा, जइ अण दिट्ठा तोइ ।
खिण-खिण अन्तर संभरइ नहीं विसारइ सोइ- २३
(हे सखि- यद्यपि वल्लभप्रिय अदेखे हैं, तो भी मेरा हृदय
उन्हें क्षण क्षण स्मरण करता रहता है, और उन्हें
भुलाता नहीं)

१७४- ढोला-मारू रा-दूहा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं०१९९१-
पृ० ४१,५७

१७५- राजस्थानी भाषा और साहित्य, प्रयाग सं० २००८ पृ० ८१

(ख) बाबहियउ नइ विरहणी, दुहवां एक सहाव।
जबहि बरसइ घण घणउ, तब ही कहइ प्रियाव ।। -२७

(पपीहा और विरहिणी दोनों का स्वभाव एक ही है,
मेघ जब जब बरसता है, तब तब ये दोनों प्रिय ! प्रिय !!
पुकारते हैं।)

(ग) पंथी एक संदेसड़उ, लग ढोलइ पैहच्याइ।
जोबन खीरसमंद हुअ, रतन कुकाढ़इ आइ ।। १३१

(हे पथिक एक संदेश ढोला तक पहुंचा दो, यौवन क्षीर सिंधु हो गया है, वह आकर रत्न को निकाले)

प्रश्न यह उठता है कि क्या दोहा कोई लोक-छन्द है? विद्वानों ने अपभ्रंश का प्रिय छन्द होने के कारण उसे लोक-भाषा का छन्द भी कहने की अनुमति दी है।[१७६] जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, राजस्थान के जीवन में उसकी एक विशाल मौखिक परंपरा भी सुरक्षित है, किन्तु यह बतला सकना कठिन है कि प्रस्तुत छन्द का मूल स्रोत कहां है, और कब से इसने सहृदयों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया? संस्कृत के वर्णिक छन्दों से टक्कर लेने वाले इस तुकपूर्ण नवीन मात्रिक छन्द की कारीगरी का प्रचलन सबसे पहले अपभ्रंश ने किया था। संस्कृत प्राकृत में तुक मिलाने की प्रथा नहीं थी। दोहा, वह पहला छन्द है, जिसने इस नवीन ... शैली का अविष्कार किया। आगे चलकर एक भी ऐसी अपभ्रंश कविता नहीं लिखी गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा नवीन छन्द लेकर ही नहीं आई, बिल्कुल नवीन साहित्यिक कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई।[१७७] कीथ महोदय का मत है, कि यह काव्य-शैली लोक गानों से आई हुई जान पड़ती है। क्योंकि उन्होंने मात्रिक छन्दों को लोक काव्य और लोक गानों की उपज माना है। दोहा अपभ्रंश भाषा की देन होने के कारण तथा अपभ्रंश लोक भाषा होने से दोहा छन्द[१७८] को मात्रिक छन्दों में सब से पहला

१७६- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व-पृ० १६८

१७७- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी -हिन्दी साहित्य का आदिकाल पटना, १६५७ पृ० १००

१७८- ए०बी०कीथ: ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, लंदन १६४८ पृ० ४१८

आया माना जा सकता है।[१७६] जैसे पहले कहा जा चुका है अपभ्रंश का साहित्य पांचवी छठी शताब्दी में काफी मात्रा में वर्तमान था। नाट्य शास्त्र में जिस उकारबहुला भाषा को आभारों से संबंधित किया गया है, वह अपभ्रंश ही थी। दण्डी ने भी आभीरादि की वाणी को अपभ्रंश कहा है, तथा प्राकृत पैंगलम में एक विशेष छन्द को आभीर या अहीर नाम दिया गया है। इस आभीर या अहीर छन्द में दोहा के द्वितीय और चतुर्थ चरण समान ग्यारह मात्राओं के चार समान चरण होते हैं। इस छन्द का लक्षण इसी छन्द में इस प्रकार है:

ग्यारह मत्त करीज, अन्त पयोहर दीज।
एहु सुछंद अहीर, जंपइ पिंगल धीर ।। प्राकृत पैंगलम् ।

सो इस का कुछ संबंध दोहे से जोड़ा जा सकता है। आधुनिक अहीरों के अत्यन्त प्रिय विरहा गान का आधार मूलत: दोहा छन्द ही है।[१८०]

डा० रवीन्द्र भ्रमर ने, लोक गीतों के साथ पंक्तिबद्ध किये जाने वाले इस लोक भाषा तथा लोक परंपरा के छन्द को लोक- छन्द माना है।[१८१]

लोक- कल्याणहित संपादित आदि ग्रंथ में इस लोक छन्द की इतनी लोक प्रियता इस बात से सिद्ध है कि आदि ग्रंथ का आरंभ दोहा से होता है।

सोचै सोचि न होवई, जे सोची लखवार ।।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार ।।[१८२]

तथा इस महान् ग्रंथ की समाप्ति भी इसी छन्द में रची वाणी से हुई है। रागमाला से पूर्व जहां गुरुवाणी समाप्त होती है। उस से पूर्व की रचनाएं दोहा छन्द में हैं।

(१) सलोक सेख फरीद तथा श्री कबीर एवंम:५ के पउलोके दोहा छन्द में हैं।[१८३]
(२) सलोक वारां ते वधीक म: १,३,४,५,६ अधिक का छन्द दोहा छन्द है।[१८४]
(३) मुंदावणी म:५ (पहेलो) दोहा छन्द में है।[१८५]

१७६- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- पृ०१६६
१८०- हिन्दी साहित्य का आदिकाल- ६६
१८१- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- १६६
१८२- आ०ग्र० पृ० १

२- चौपाई

आदि ग्रंथ का यह सर्वप्रिय छन्द, जिसका दोहे के पश्चात नाम लिया जा सकता है, वह चौपाई है। जपुजी साहब जो गुरु ग्रंथ में आरम्भ के पृष्ठों पर संकलित है, उसकी पहली दो पौड़ियों का छन्द दोहा है, परन्तु तीसरी पौड़ी का छन्द चौपाई है। लोक गातों से संबंध होने के कारण गुरुवाणी छन्दानुशासन के विषय में कुछ स्वछन्दता ग्रहण करती है।[१८६] अत: जपुजी की तीसरी पौड़ी में व्यवहृत चौपाई छन्द में कुछ अधिक स्वछन्दता ली गई है। जपुजी की पांचवां पौड़ी की प्रथम छ: पंक्तियां चौपाई छन्द में हैं। जपुजी की सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ से आरंभ होने वाली (८-११) चार पौड़ियां तथा मंने की गति कही न जाइ वाली (१२-१५ चार पौड़ियां चौपाई छन्द में निबद्ध हैं। १६-२० तक फिर चौपाई छन्द का उपयोग है। इसी प्रकार पौड़ी संख्या २४,२५,२६,३१ (पहली चार पंक्तियां) तथा ३३ से ३८ सब चौपाई छन्द में हैं। गुरु नानक की सिध गोसट (११वें पद से) तथा दखणी (दक्षिणी) औंकार में भी चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है। म: १ की आसा राग की २२ अष्टपदियों में से पहली दस, राग सूही में पांच अष्टपदियों में से प्रथम अष्टपदी, बिलावल की दो अष्टपदियाँ ——— तथा रामकली राग में नौ अष्टपदियों में से २ से ६ तक, चौपाई छन्द में निबद्ध हैं। उनकी आसा की वार में चौपाई छन्द का पर्याप्त उपयोग हुआ है। बिलावल राग में म: १ की रचना थिति का तोल भी चौपाई छन्द का ही है। म: १ का प्रथम सहसकृती सलोक भी चौपाई छन्द में है। यह सलोक आसाकी वार में भी आया है।

पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं । सिल पूजसि बगुल समाधं।

राग गउड़ी में जहां तक देखा गया है, चौपाई छन्द का सब से अधिक उपयोग हुआ है। म: ५ की 'गउड़ी सुखमनी' तथा 'गउड़ी बावन अखरी' की पौड़ियों का यही छन्द है। गुरु अर्जुन के छन्द प्रबंध पर टिप्पणी करते हुए सन्त सिंह सेखों

१८३- १३६३ से १३८५ तक ।

१८४- आ. ग्र. पृ० १४१०-१४२६।

१८५- थाल विचि तिनि वसत पइओ, सतु संतोख वीचारो। अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिसका सभसु अधारो ।। आ. ग्र. पृ: १४२६

लिखते हैं, 'राग गउड़ी में तोल चौपाई का है।[187]

आदि ग्रंथ में इस प्रकार चौपाई छन्द का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। दोहे, सलोकों के रूप में पृथक भी आये हैं और दोहा-चौपाई का एक साथ भी प्रयोग हुआ है जैसे बावनी, असुपदी, गउड़ी सुखमनी, सिध गोसटि आदि रचनाओं में। यह सब प्रबंध काव्य के उदाहरण हैं। आदि ग्रंथ में सूफी अथवा सगुण भक्त कवियों की भांति किसी चरित काव्य की परंपरा का अनुसरण नहीं हुआ, किन्तु उक्त प्रबन्ध काव्य की दोहा-चौपाई शैली की रचनाओं का इसी परंपरा के अंतर्गत सृजन हुआ। चौपाई छोटा छन्द है, वह कथानक को सहज ही जोड़ देता है। अपभ्रंश के आरंभ काल से ही इस छन्द के इस गुण को समझा जाने लगा था, परन्तु इसकी ठीक ठीक प्रकृति जानने में कुछ समय लगा।[188] जायसी आदि सूफी कवियों ने इस प्रथा का अवलंबन किया था, परन्तु बीजरूप में यह प्रथा बौद्ध-सिद्धों की रचना में मिल जाती है। सरहपा ने लिखा है:

पंडिअ सअल सत्थ बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसन्त ण जाणइ।
गमणागमणन तेन विखण्डिअ। तो विणिलज्ज भणइ हउं पण्डिअ।
जीवन्तह जो नउ जरइ, सो अजरामर होइ।
गुरु उवएसे विमल मइ, सो पर धण्णा होइ।

(पंडित सकल शास्त्रों को ले बखानता है, पर देह में जो बुद्ध बसते हैं, यह नहीं जानता। उसने आवागमन को तो खंडित नहीं किया तो भी वह निर्लज्ज कहा करता है कि मैं पंडित हूं। जो जीते जी जीर्ण नहीं होता, वही अजर अमर है, गुरु उपदेश से जो विमल गति को प्राप्त होगया है वही धन्य है।)[189]

१८६- पंजाबी काव की काव शिरोमणी सेखों-६६

१८७- पंजाबी काव शिरोमणी- १७०

१८८- हिन्दी साहित्य का आदि काल- पृ० १०१

१८९- हिन्दी साहित्य का आदि काल। पृ: १०१

दोहा चौपाइयों का एक अन्य काव्य रूप भी नाथ पन्थी बानियों तथा कबीर पंथी ग्रंथों में मिलता है। वह है प्रश्नोत्तरी। गुरु और शिष्य दो समान प्रतिष्ठा के आचार्यों में तत्व-दर्शन साधना-पद्धति आदि के गहन तत्वों पर जो वार्ता होती है, उसे प्रश्नोत्तरी के रूप में दोहा-चौपाइयों में प्रस्तुत किया जाता है। मछींद्र-गोरख-बोध तथा गोरख-दत्त-गुष्टि(गोरखबानी में संगृहीत) इसी प्रकार की कृतियां हैं।[१९०] डा० धर्मवीर भारती इसकाव्य शैली के संबंध में सन्त-साहित्य पर विचार करते हुए लिखते हैं, 'सन्तों के भी तक उपलब्ध साहित्य में यह प्रश्नोत्तरी शैली नहीं मिली है, किन्तु पश्चिमी तथा पूर्वी लौकिक अपभ्रंश साहित्य में यह शैली बहुत प्रचलित थी।[१९१] संभवत: डा० भारती का ध्यान आदि ग्रंथ में गुरु नानक की 'सिध गोसटि' की ओर नहीं गया। जिसका कलेवर एवं प्रेरणा मछीन्द्र गोरख बोध से प्राप्त हुए हैं, जैसा कि हम लौकिक काव्य रूपों में, 'गोष्टी' शीर्षक के अन्तर्गत दोनों रचनाओं की पारस्परिक तुलना करके सिद्ध कर चुके हैं। गुरु ग्रंथ की इस गोष्टी में भी दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है। गुरु ग्रंथ की यह गोष्टी तथा गोरख बानी की यह काव्य शैली दोनों किसी दीर्घकालीन प्राचीन परंपरा का अनुसरण करती हैं। इन नाथों की रचनाओं से पूर्व ७९० ई० में स्वयम्भू देव की रामायण चौपाई छन्द में ही है। इसमें आठ-आठ पंक्तियों (अर्धालियों) के पश्चात् दोहे या किसी अन्य छन्द में घत्ता होने की प्रथा का पालन किया गया है। इस रचना से कुछ अर्धालियां उदाहरण स्वरूप अवतरित की जा रही हैं।[१९२]

अक्खर वास- जलोह- मणोहर । सुअलंकार छंद-मच्छोदर।
दीह समास पवाहा वंकिय ।सक्कय पायय पुलिणालंकिय।

कुछ विद्वानों ने स्वयंभु रामायण की-ये अर्धालियां वस्तुत: अरिल्ल छन्द में मानी है। और कहा है कि अपभ्रंश साहित्य में चौपाई के नाम पर अधिकतर 'अरिल्ल' का ही व्यवहार किया गया है। किन्तु छन्द की दृष्टि से अरिल्ल और 'चौपाई' में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों छन्दों के प्रत्येक चरण में मात्राएं

१९०- सिद्ध साहित्य- डा० धर्मवीर भारती पृ० ४७१-७२

१९१- वही पृ० ४७२

१९२- राहुल सांकृत्यायन: हिन्दी काव्य धारा, इलाहाबाद पृ २२ तथा २६

सोलह होती है। अरिल्ल के अन्त में दो लघु (।।) होते हैं जबकि चौपाई के अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होने चाहिएं। हिन्दी में लघ्वंत चौपाइयों के उदाहरण भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं, पर वे अपवाद हैं।[163]

लघ्वंत तथा गुर्वन्त चउपई अथवा चौपाई छन्द के विषय में डा० नामवर सिंह का वक्तव्य भी उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं जिनचन्द्र सूरि की चउपई हिन्दी में जायसी आदि द्वारा प्रयुक्त तथा पिंगलाचार्य द्वारा स्वीकृत चौपई ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार 'चौपई' शब्द में एक मात्रा बढ़ा कर चौपाई शब्द बना लिया गया, उसी प्रकार चौपई छन्द के अन्त में एक मात्रा बढ़ाकर 'चौपाई' छन्द गढ़ लिया गया। आरंभ में यह छन्द संभवत: चौपई ही था, परन्तु गाने के क्रम में संभवत: यह लघ्वंत से गुर्वन्त हो गया। जायसी में तो प्राय: लेकिन तुलसी में कहीं कहीं चौपाइयों के बीच में एकाध अर्धाली चौपई की भी आ जाती है।[164] अवधी की लघ्वंत प्रवृत्ति के अनुसार आरंभ में शायद उस भाषा में चौपई का ही प्रचार रहा होगा।[164]

आदि ग्रंथ में चौपाई तथा चौपई दोनों का उपयोग हुआ है। एक ही छन्द की भिन्न भिन्न अर्धालियां चौपाई तथा चौपई छन्द में लिखी गई हैं। यथा:

सिध गोसट

१- कवनु सु गुपता कवन सु मुकता। कवनु सु अंतरि बाहरि जुगता।
चौपाई

२- कवनु सु आवै कवनु सु जाइ। कवनु सु त्रिभवणि रहिआ समाइ।
चौपई

३- घरि घरि गुपता गुरमुखि मुकता। अंतरि बाहरि सबदि सुजुगता।
चौपाई

163- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व- १७१

164- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग: पृ:३०२-३०३

165- आ.ग्र. सिध गोसट म: १ पृ:९३६।

४- मनमुखि बिनसै आवै जाइ। नानक गुरमुखि साचि समाइ ।
॥ चौपई ॥

यह प्रवृत्ति जायसी तथा गुरु नानक में ही नहीं उनके समसामयिक कबीर में भी विद्यमान् है। उसने भी 'चौपाई' तथा 'चौपई' दोनों का एक साथ उपयोग किया है, और इस प्रवृत्ति की उनमें पर्याप्त प्रचुरता है।[१६६]

गउड़ी कबीर

जो जन परमिति पर मनु जाना। बातन ही बैकुंठ समाना। चौपाई॥
ना जाना बैकुंठ कहा ही। जानु जानु सभि कहहि तहही । चौपाई॥
जबलगु मनि बैकुंठ की आस। तब लगु होइ नही चरन निवास। चौपई ॥
कहु कबीर इहकहीऐ काहि। साध संगति बैकुंठै आहि॥ चौपई ॥

यह प्रवृत्ति आदि ग्रंथ के परवर्ती रचयिताओं की रचनाओं में भी देखी जा सकती है। जैसे गुरु अर्जुन देव की रचना गउड़ी सुखमनी को लीजिये:-

म: ५ सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु। भगत जना के मनि बिस्रामु। चौपाई॥
प्रभकै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभु के सिमरनि दूखुजमुनसै। चौपाई॥
प्रभु कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै। चौपाई॥

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि। सरब निधा नानक हरि रंगि। चौपई ॥
प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउनिधि। प्रभ कै सिमरनि गिआन
धिआन ततु बुधि। चौपई ॥

अन्तिम अर्धाली में मात्राएं पहिलियों की अपेक्षा अधिक हैं। चौपाई में १५ + १५ मात्राएं हैं। परन्तु कहीं १५ + १६ और अन्तिम में १६+ २० मात्राएं तथा लब्ध्वंत हैं। आदि ग्रंथ की यह छन्दों की मात्राओं की विषमता इसकी संगीतकता का कारण है। इस महान ग्रंथ में गुरु अर्जुन देव भैरउ राग में तथा बसन्त राग में दुपदे तथा चउपदे चौपाई छन्द में हैं। मलार राग में सात चउपदे एक तिपदा और बारह दुपदे हैं, जिनका छन्द चौपाई है। सारंग के १७ चौपदे

१६६- अ. ग. पृ ० ३२५

और १२२ दुपदे भी चौपाई छन्द में हैं। कानड़ा में चउपदे, दुपदे और तिपदे हैं जिनका तोल चौपाई का है। कलिआन में दस दुपदे भी चौपाई छन्द में हैं। परभाती में १२ चउपदे और तीन दुपदे चौपाई छन्द में हैं।[१९७] गुरु ग्रंथ में दुपदे, तिपदे, चउपदे पंचपदे अथवा छिपदे घरु तथा महले के अनुसार क्रमानुसार हैं। अष्टपदियों का भी उपयोग हुआ है।[१९८]

काव्य रूपों तथा शैलियों का इस रूप में प्रयोग अपभ्रंश कवियों द्वारा किया गया भी बताया जाता है। अपभ्रंश कवियों ने जिन मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है उनमें उन्होंने स्वतन्त्रता का परिचय दिया है। चतुष्पदी छन्दों का कहीं छिपदी के समान कहीं आष्ट-पदी के समान, स्वेच्छा से प्रयोग किया है। किसी बंधन को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।[१९९] आदि ग्रंथ के कवियों द्वारा छन्दों सम्बंधी बंधनों को स्वकार न करके कई स्थानों पर स्वतंत्रता को प्रदर्शित करना इसी परंपरा के अंतर्गत है।

३- सोरठा

आदि ग्रंथ में इस छन्द का प्रयोग भी अन्य छन्दों के बीच बीच में ही हुआ है। इसके लक्षण, तोल एवं गति को देखकर इसे भी पर्याप्त मात्रा में इस महान् ग्रंथ में ढूंढा जा सकता है। भाई कान्ह सिंह नाभा तथा हिन्दी साहित्य कोश में इस की परिभाषा इस प्रकार बताई गई है:-

'प्राकृतपैंगलम में सोरठा (सोरट्ठा) अथवा सौरष्ट्रम को दोहे का विपरीतकहा है। इसकेविषम पादों में ११ -११ और सम पादों में १३ -१३ मात्राएं होती है। दोहे के समान इसके भी भेद हो सकते हैं। सोरठा काफी लोक प्रिय छन्द रहा है। प्राय: सभी प्रसिद्ध कवियों ने दोहे के साथ इस का प्रयोग किया है। कथात्मक प्रबन्धों में सोरठे के द्वारा कथा के नवीन सूत्रों की स्थापना में सुगमता होती है। तुलसी ने राम चरित मानस में इसका सुन्दर प्रयोग किया है। जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन।[२००]

१९७- पंजाबी काव शिरोमणी- १७४

१९८- गुरमति साहित अंक, पंजाबी दुनिया- जनवरी फरवरी- १९६५ पृ०२३०

१९९- अपभ्रंश साहित्य- डा० हरिवंश कोछड़ -पृ० ४०६

२००- गुरछन्द दिवाकर- १२१ तथा हिन्दी साहित्य कोश- सोरठा- ८६३।

राजस्थान में सोरठा छन्द बड़ा लोक प्रिय रहा है। वहां एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

सोरठियो दूहो भलो भलि मरवण री बात।
जोबन छाई धण भली तारा छाई रात।

अर्थात दोहों में सोरठा श्रेष्ठ है, मरवाणी की बात अर्थात ढोला मारू की कथा सब कथाओं में उत्तम है, जैसे नारियों में यौवनवती तथा रातों में तारांकित रात्रि उत्तम होती है।[201]

जैसे दोहे में सोरठे को उत्तम कहा है, आदि ग्रंथ में भी सोरठा छन्द पृथक रूप में नहीं आया है, इसका उपयोग भी दोहों चौपाइयों में बीच बीच ही हुआ है। दोहे तथा चौपाई का प्रयोग आदि ग्रंथ की प्रथम रचना जपुजी जो सिख पंथ के प्रवर्तक गुरु (म: १) की है, में पर्याप्त हुआ है। इस प्रबन्ध काव्य की रचना में सोरठे का प्रयोग भी बड़ी सुन्दरता से हुआ है। जैसे हिन्दी साहित्य कोश में ऊपर लिखा है, कि कथानक को आगे चलाने में यह छन्द अत्याधिक उपयोगी है, ऐसे ही शास्त्रों के ज्ञान अथवा पाठ का उतनी देर कोई लाभ नहीं जब तक नाम-सुमरिन में मन न लगाया जाए।- इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये वर्णित योग के नये प्रसंग का जपु की बाईसवीं पौढ़ी से सोरठा छन्द से आरंभ किया गया है।

सालाही सालाहि ऐती सुरति न पाईआ।
नदीआ अतै वाह, पवहि समुंद न जाणीअहि।[202]

प्राय: सोरठा दोहा का विपरीत होता है।[203] पिंगल की पुरानी पुस्तकों में इसकी इस प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है:

जद दोहा विपरीत, तद सोरठा छन्द है।
जाने इसी रीत, चतुर गुणी सब आखदे।[204]

२०१- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी साहित्य का अतीत: पृ० ८६

२०२ आ. ग्र. पृ० ५

२०३- हिन्दी साहित्य कोश- ८६३ (सोरठा)

२०४- स: स. अशोक, पुरातन पंजाबी कविता विकास। पृ: ५०

दोहे का तुकान्त पीछे होता है। परन्तु दोहे को उलटने से सोरठा बन जाता है। जैसे ऊपर वाले सोरठे को उलटने से दोहा बन जाता है।

तवे सोरठा छन्द है, जब दोहा विपरीत।
चतुर गुणी सब आखहे, जानी ऐसी रीत।

सोरठे के पहले चरण में ही अनुप्रास होता है। (आठाहि- कीवाह।।) परन्तु आदि ग्रंथ में सोरठा की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करके इस अनुप्रास का त्याग कर केवल संगीत को ही मुख्य रखा गया भी देखा गया है। यथा-

समुंद साह सुलतान, गिरहा सेती मालु धन ।। (११+१३)
कीड़ी तुलि न होवनी, जे तिसु मनहु न वीसरहि।। (१२+१३)

जहां अन्य सांसारिक वस्तुओं की चर्चा बीच को अपेक्षा प्रभुभक्ति पर विशेष बल दिया गया है और हर समय हृदय में नाम सुमरिन का माहात्म्य बताना अभीष्ट था, वहां सोरठे से काम लिया गया है। माफ़ राग में गुरु नानक की वार में सांसारिक - वस्तुओं की असारता पर बल देते हुए, नाम सुमरिन को दृढ़ कराने के लिये सलोक म० १ के रूप में यह सोरठा मिलता है:

<u>सलोक म: १</u>

तुमी तुमा विसु, अकु धतूरा निमु फलु।
मनि मुखि वसहि जिसु, जिसु तूं चिति न आवही।[२०५]

सोरठा छन्द, दोहों अथवा सलोकों के नाम से ही आदि ग्रंथ में आया है। गुरु तेग बहादुर के सलोकों में भी सोरठा मिल जाता है, जिस की प्रकृति का मूल सांसारिक मोह-माया की उलझनों से दामन को बचाना तथा नाम सुमरिन में लीन होना है।

नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई।
चितवत रहिओ ठगउर, नानक फासी गलि परी।[२०६]

इस सोरठे के पूर्व का प्रसंग मनु भाइला मै रचि रहिओ निकसत नाहि

२०५- आ. ग्र. पृ० १४७
२०६- सलोक म: ६ आ. ग्र. १४२८।

न भीत का है। और सोरठे के पश्चात् का वर्णन 'हरि भावै सो होई तथा 'प्रभु नानक मन चितव तिए पूरन होवहि काम' का है। यह प्रवृत्ति गुरु ग्रंथ के अन्य कवियों में भी इसी प्रकार है। भाट कवियों ने भी (सवईया के नाम पर) सोरठे की रचना की है। विषय उन्होंने नाम-सुमरिन का महात्म्य ही रखा है।[२०७]

सवईए महले पंजवे के

भव जलु साइरु सेतु, नाम हरी का बोहिथा।
तुझ सतिगुर सं हेतु, नाम लागि जगु उधरउ ।। २।।

कवि मथुरा।

जैसे अपभ्रंश-काव्य में नये प्रसंग को आरम्भ करने के लिये सोरठा प्रयुक्त हुआ। संत-काव्य में इसका प्रयोग सामान्यतः सांसारिक पदार्थों की क्षण भंगुरता का बोध कराने के पश्चात् नाम-महात्म्य प्रसंग आरंभ करने के लिये, तथा उसपर विशेष बल देने के लिये हुआ है। यह बात महाकवि तुलसी दास में भी इस प्रवृत्ति की पुष्टि करती है।

जेहि सुमरित सिधि होइ, गणनायक करिवर वदन।[२०८]

सोरठा का प्रयोग हमें संत-काव्य की पृष्ठभूमि में अपभ्रंशकाव्य में पर्याप्त मिल जाता है। प्रबन्धकारों ने अपने काव्यों में कहीं कहीं दोहा के समान सोरठा का भी प्रयोग किया है। अपभ्रंश के कडवक बद्ध शैली में रचित चरित-ग्रन्थों में छन्दों की विविधता प्रायः नहीं मिलती। प्रबन्ध चिन्तामणि में अपभ्रंश काव्य के सोरठों का उदाहरण मिलता है:

को जाणइ तुह नाह, चीतु तुहालउं चक्कवइ।
लहु लंकह लेवाह, मग्गु निहालह करणउ ।
धाई धोअइ पाय, जेआल जलनिहि ताडिला।
तई जीता रवि राय, एक विभिषणु मिलिउ मड़।।[२०९]

२०७- आ. ग्र. १४०८

२०८- हिन्दी साहित्य कोश - सोरठा- ८६३ ।

इसी प्रकार योगींद्र के परमात्म प्रकाश में भी सोरठा मिलता है।[209]

४- छप्पय

छ: चरण का होने के कारण इस का नाम षटपद एवं छप्पय है। इस छन्द की तीन जातियां प्रसिद्ध हैं:-

(क) पहले रोला, अंत में दो चरण दोहा।

(ख) पहले रोला, अंत में दो चरण उल्लाला जिस की प्रति चरण २६ मात्राएं होती हैं।

(ग) पहली चार पंक्तियां रोला, प्रति चरण २४ मात्राएं, ११-१३ पर विश्राम। अंत की दो पंक्तियां उल्लाला छन्द, जिसमें प्रति चरण २८ मात्राएं, १५-१३ पर विश्राम। कुल मात्राएं १५२, छप्पय की यह जाति प्रथम दो की उपेक्षा अधिक सर्वप्रिय है।

गुरु लघु अक्षरों के न्यूनाधिक होने के कारण छप्पय के ७१ भेद बताए जाते हैं।[210]

भाई कान्हसिंह नाभा का ऊपर का वक्तव्य, प्राकृत पैंगलम् पर आधारित है, और यह कथन अन्य ग्रंथों से मिलता है। हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है कि छप्पय संयुक्त छन्द है, जो रोला (११ + १३) चार पद और उल्लाला (१५ + १३) के दो पाद के योग से बनता है। उल्लाला के दो भेदों के अनुसार छप्पय के पांचवें और छटे पाद में २६ या २८ मात्राएं हो सकती हैं। प्रधान रूप से २८ मात्राओं वाले भेद को कवियों ने अपनाया है। भानु ने इसके ७१ भेदों का उल्लेख किया है।[211]

आदि ग्रंथ में छप्पय का प्रयोग बड़ी काव्य कुशलता सहित है। छप्पय के अनेक रूप दर्शन हमें इस ग्रंथ में होते हैं। इनका प्रयोग अधिकतर भाट कवियों ने किया है। इन के गुरु-व्यक्तियों के स्तुति गान में कम से कम पांच प्रकार के छप्पय के दर्शन होते हैं।[212]

२०९- अपभ्रंश साहित्य- डा० हरिवंश कोछड़- ४०५

२१०- गुर छन्द दिवाकर- पृ० १७९-१८०

२११- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २९२

२१२- गुर छन्द दिवाकार कान्ह सिंह नाभा- १८३-८७

(१) मकर्ष प्रकार का छप्पय जिसमें २५ गुरु तथा १०२ लघु होते हैं।[२१३]

गुरु जिनकउ सुप्रसंन नामु हरि रिदै निवासै।
जिन कउ गुरु सुप्रसंनु दुरतु दूरंतरि नासै। .... कुगति कुगति सम गुरु अम[२१४]

(२) करतल प्रकार का छप्पय जिसमें २८ गुरु तथा ९६ लघु होते हैं।[२१५]

द्रिसटि धरत तम हरन दहन अघ पाप प्रनासन।
सबद सूर बलवंत काम अरु क्रोध बिनासन।
.... राज जोग लहणा करै।। (पर्यन्त) कलसहार[२१६]

(३) सारस प्रकार का छप्पय जिसमें ३४ गुरु, ८४ लघु होते हैं।[२१७]
गुण गावै रविदासु भगतु जैदेव त्रिलोचन।
नामा भगतु कबीर सदा गावहि सम लोचन।
...... नित नवतनु जगि छाजओ।।८।। कवि कल्य[२१८]

(४) बाण प्रकार का छप्पय जिसमें ४१ गुरु तथा ७० लघु होते हैं।[२१९]
गुण गावहि नवनाथ धंनि गुरु साचि समाइओ।
मांधाता गुणरवै जेन चक्रवै कहाइओ।
गुण गावै बलिराउ, सपत पातालि बसंतो।
..... सहजि समाइओ।।१०।। कवि कल्य।[२२०]

(५) रोलसा नाम का छप्पय जिसके प्रथम चार चरण रोला छन्द तथा अन्तिम दो चरण दोहाके हों। इसकी कुल १४४ मात्रायें होती हैं।[२२१]

२१३- गुरु छन्द दिवाकर- १८३
२१४- आ०ग्रं० पृ० १३९८ सवैया ५: ४ के।
२१५- गुरु छन्द दिवाकर पृ० १८४
२१६- आ०ग्रं० पृ० १३९१ सवैया ५: २ के।
२१७- गुरु छन्द दिवाकर- १८६
२१८- सवैये ५: १ के आ०ग्रं० पृ० १३९०
२१९- गुरु छन्द दिवाकर पृ० १८७

कपिल डिसटि कुमकौ रै जब पाप सकल नठ।
कामक्रोध अरु लोभ मोह बलिकै सबै कठ।
.... जनम मरण दुख जाइ।। १०।।[222]

छप्पय को जो यह विविधता आदि ग्रंथ में प्राप्त होती है, उसकी परंपरा बहुत पुरानी है। छप्पय अपभ्रंश और हिन्दी में समान रूप से प्रिय रहा है। इसका प्रयोग हिन्दी के अनेक कवियों ने किया है। चन्द (पृथ्वीराज रासो) तुलसी (कवितावली) केशव (रामचन्द्रिका) नाभा दास(भक्तमाल), भूषण (शिवराज भूषण) मतिराम (ललित ललाम) सूदन (सुजान चरित), पद्माकर (प्रताप सिंह विरुदावली) तथा जोधराज (हम्मीर रासो) ने इस छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द के प्रारंभ में प्रयुक्त रोला में गति का चढ़ाव और अन्त में उल्लाला में उतार है। इस कारण युद्ध आदि के वर्णन में भावों के उतार-चढ़ाव का इसमें अच्छा वर्णन किया जाता है। पर नाभादास, तुलसी दास तथा हरिश्चन्द्र ने भक्ति-भावना के लिये इस छन्द का प्रयोग किया है।[223]

डिगति उर्वि अति गुर्वि,सर्व पब्बै समुद्रसर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयन्द लरखरत, परत दस कण्ठ मुक्खभर।
सुर बिमान हिम भानु, भानु संघटित परस्पर।
चौंकि बिरंचि शंकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मण्ड खण्ड कियो चण्ड धुनि, जबहि राम शिव धनु दल्यौ।
(कवितावली तुलसीदास)

छप्पय की प्राचीनता के संबंध में श्री विपन विहारी त्रिवेदी लिखते हैं: छप्पय अपभ्रंश का संकीर्ण वृत्त है। छप्पय का प्रयोग दसवीं शताब्दी से पूर्व

२२०- सर्वेक्षण भ: १ के आ०ग्र० पृ० १३६०
२२१- गुरु छन्द दिवाकर पृ० १९०
२२२- सर्वेक्षण भ: २ के पृ० १३६२ , आ०ग्र०
२२३- हिन्दी साहित्य कोश में पृ० २६२ पर डा० राम सिंह तोमर का वक्तव्य।

नहीं हुआ। स्वयंभू छन्द में इसका लक्षण मिलता है।[२२४] कुमारपाल प्रतिबोधा-न्तर्गत अपभ्रंश पद्यों में इस का प्रयोग मिलता है। इस ग्रंथ में दशार्ण भद्र कथा (पृ० ४७१-४७२) में आठ छप्पय छन्दों में पाश्र्वनाथ की वन्दना की गई है। उदाहरणार्थ एक छप्पय प्रस्तुत है:-

गयण-मग्ग-संलग्ग-लोल-कल्लोल-परंपरु।
निक्कारणुवकड-नवक-नक्क-चंकमण-दुहंकरु।
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ-रिंछोलि निरंतरु।
विलसंतग्ग-जाला-जडाल-वडवानल-दुत्तरु।
आवत्त सयायलु जलहि लहु गोपउ जिम्व ते नित्थरहि।
नीसेस-वसण-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहि।
(अर्थात जो लोग पार्श्वनाथ का स्मरण करते हैं, वे इस भयानक संसार-सागर को गोपद के समान पार कर जाते हैं।)[२२५]

जहां तक छप्पय का लोक जीवन से संबंध होने का विचार है, इस के विषय में विद्वानों का मत है कि इस छन्द के लौकिक उत्स की कहीं कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती, किन्तु इतना अनुमान तो किया ही जा सकता है, कि लोक-भाषा के मात्रिक छन्द के रूप में इसकी उत्पत्ति लोक-प्रचलित काव्यों से हुई होगी।[२२६]

कवित्त-सवैया

५- कवित्त-

कवित्त नाम के छन्द का भी आदि ग्रंथ में प्रयोग हुआ है। इस छन्द को मुक्तक दण्डक का एक भेद माना गया है और इसे घनाक्षरी तथा मनहर

२२४- विशाल भारत अक्तूबर १९५० से अपभ्रंश साहित्य पृ० ४०६ पर उद्धृत।
२२५- अपभ्रंश साहित्य - पृ० ३६४-६५
२२६- हिन्दी साहित्य में लोक तत्त्व, १७४-१७५

भी कहा है। इसे मुक्तक वर्णिक छन्द की कोटि में माना जाता है। इसमें ३१ अक्षर होते हैं, १६ और १५ अक्षर पर यति होती है। इसका गुर्वन्त होना आवश्यक है। घनाक्षरी वृत्तों में ३१ वर्ण का कवित्त छन्द अन्य कवित्तों से सर्वाधिक प्रचलित और लोक-प्रिय है। हिन्दी ब्रज-भाषा का यह अपना छन्द है। कवित्त-सवैया की प्रथा कब चली, यह कहना भी कठिन है। मूलत: यह वन्दोजन छन्द है। संभवत: उसी परंपरा में इसका मूल भी मिले। जिस प्रकार श्लोक लौकिक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का, और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है, उसी प्रकार कवित्त-सवैया ब्रजभाषा के अपने छन्द हैं। जिसे हिन्दी-साहित्य का आदि-काल कहा जाता है, उसमें इस छन्द का प्रचार निश्चय ही हो गया था।[२२८] इधर कुछ विद्वानों ने कवित्त अथवा घनाक्षरी छन्द के आविर्भाव के बारे में कुछ निश्चयपूर्वक बात भी कही है। डा० पुत्तुलाल शुक्ल तथा श्री हरिमोहन हिन्दी साहित्य कोश में लिखते हैं: चौदहवीं शताब्दी में मार्दगिसेन कवि ने इस छन्द का आविष्कार किया था। यह छन्द ध्रुपद में ठीक बैठता है। भक्तिकालीन कवियों विशेषत: सूरदास(सूरसागर) और तुलसीदास(विनय पत्रिका) ने पदों में इस छन्द का प्रयोग किया है। सूरदास के पूर्व किसी ने कवित्त लिखा था, इसका उदाहरण प्राप्त नहीं होता। इसका प्रारंभिक प्रयोग अकबर दरबार के कवि गंग, कवितावली और रामचन्द्रिका में मिलता है। ऐसा माना जाता है कि चारणों और भाटों ने इस छन्द का प्रयोग किया है। परन्तु रासो-ग्रंथों (पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो) में इसका प्रयोग नहीं हुआ है। कवित्त संज्ञा का प्रयोग छप्पय छन्द के लिये भी किया गया है। इस छन्द के निर्माण में अनुष्टुप वर्णिक छन्द की प्रेरणा विद्यमान है। वस्तुत: ये छन्द वैदिक छन्दों के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं, जिनमें गण, मात्रा आदि का कोई बंधन नहीं होता।[२२६] परन्तु सरदार समशेर सिंह अशोक घनाक्षरी अथवा कवित्त के संबंध में लिखते हैं: आश्चर्य की बात है कि इसका संस्कृत के किसी छन्द से साम्य नहीं दिखाई पड़ता, फिर यह संस्कृत के किसी छन्द का विकसित रूप कैसे माना जा सकता है?[२३०] हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० ६८ पर कवित्त को ही छप्पय कहा गया है।

२२७- हिन्दी साहित्य कोश- घनाक्षरी- पृ० २८३

२२८- हिन्दी साहित्य का आदि काल-द्विवेदी जी पृ०११०

२२६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २८३

हमारा विचार है कि वर्णिक छन्द होने के कारण कवित्त के आविष्कारिक ने वर्णिक वृत्तों की परंपरा से अवश्य प्रेरणा ली होगी। जहां तक आदि ग्रंथ में घनाक्षरी अथवा कवित्त के प्रयोग का संबंध है, विद्वानों का यह कथन है कि इस छन्द का अधिक प्रयोग आरंभ काल में भाट अथवा चारण कवियों ने किया, युक्ति संगत प्रतीत होता है। इस छन्द में रचना करने की परंपरा भाट कवियों में परंपरा रूप में चलती रही होगी जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इस छन्द में ३१-३२ वर्णों में प्राय: १६ और १५ पर या, १६ और १६ पर यति का प्रयोग होता है। परन्तु समस्त चरणों में ८, ८, ८, ७ (या ८) वर्णों के बाद यति का प्रयोग भी होता है। प्रथम प्रकार के कवित्त का उदाहरण आदि ग्रंथ में इस प्रकार है।

(१) तिह जन जाचहु जगत्र परजानीअहु बासुर रयनि बास जाको हित
नाम सिउ।
परम अतीत परमेसुर के रंगि रंगिओ, बासना ते बाहरि पै
देखीअतु धाम सिउ।।

कवि मथुरा।[231]

(२) जाकउ मुनि ध्यानु धरै फिरत सकल जुग, कबहू क कोऊ पावै
आतम प्रगास कउ।
बेद बाणी सहित बिरंचि जसु गावै, जा को सिव मुनि गहि न
तजात कबिलास कउं ।।

सवैइए म: ४ के कवि मथुरा।[232]

२३०- गुरमति साहित्य विशेषांक - पंजाबी दुनिया, जनवरी फरवरी- १९६५
२३१- आ. ग्र सवैइए म: ५ के पृ० १४०८
२३२- आ. ग्र. पृ० १४०४ ।

६- सवैया:

भाई कान्ह सिंह नाभा लिखते हैं, यह चार चरणों का सर्वप्रिय छन्द भिन्न भिन्न नामों का देखा गया है, परन्तु विशेषत: इसको सवैया से अभिहित किया गया है। मात्रिक सवैये में चार चरणों का पदांत अनुप्रास मिले तो उत्तम है, नहीं तो दो चरणों का अवश्य मिलना चाहिए। वर्णिक सवैये के चारों चरणों का अन्त्यानुप्रास समान होने का कवियों ने विधान किया है।[२३३] भाई साहब ने सवैया के कोई ... प्रकारों का प्रयोग आदि ग्रंथ से खोज निकाला है:

(१) बीर: इस का लक्षण है, चार चरण, प्रति चरण ३१ मात्राएं, पहली यति १६ पर, दूसरी १५ पर, अंत गुरु लघु इसे मात्रिक सवैया भी कहते हैं:

म: १ नाभि कमल ते ब्रह्मा उपजे, वेदपड़हि मुखि कंठ सवारि।
ता का अंतु न जाई लखणा, आवत जात रहै गुबारि।

[२३४]

गूजरी म: १

(२) बाण- प्रति चरण ३१ मात्राएं १६ तथा १५ पर यति, अन्त दो गुरु।

म: ५ अंम्रित नामु तुम्हारा ठाकुर एहु महारसु जनहि पीओ।
जनम जनम के मै भारे, दुरतु बिनासिओ भरमु बीओ।

[२३५]

आसा म: ४

(३) चंद्रकला- १८-१४ मात्राओं पर दो यतियां अन्त सगण (॥ऽ)

भाटकवि - सतगुर मति गूढ़ बिमल सत संगति आतमु रंगि चलूल भया।
जाग्या मनु कवलु सहजि परकास्या अभै निरंजनु घरहि लहा।
सवैये म: ४ कवि कल्ह।

(४) मिलिंद- प्रति चरण ३२ मात्राएं १६-१६ मात्राओं पर दो यतियां,[२३६] अन्त यगण (ISS).

२३३- गुरछन्दादिवाकर पृ० ८८

२३४- आ. ग्र. पृ० ४८६

२३५- आ. ग्र. पृ० १३९६-९७

२३६- आ. ग्र. पृ० ८३३

म:४ आपे साधु साई मेटे, अनदिनु हरि रस गीत गवईआ।
गुरमुखि परसै कंचन काईआ, निरभउ जोती जोति मिलईआ। २३७

(बिलावल राग)

म:४ ते साधू हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होइ हमारी।
तिनका दरसु देखि मनु बिगसै, खिनु खिनु तिन कउ हउबलिहारी।।

(भैरउ राग) २३८

म: ५ गुण समूह फल सगल मनोरथ, पूरन होई आस हमारी।
अउखध मंत्र तंत्र पर दुखहर, सुरब रोग खंडण गुणकारी। २३९

(सवये स्रीमुख बाक म:५)

(५) समान - प्रति चरण ३२ मात्राएं, १६-१६ मात्राओं पर दो यतियां,
अन्त भगण- SII.

ब्रह्मादिक सिव छंद मुनीसुर रसिक रसिक ठाकुर गुन गावत।
इंद्र मुनिंद्र खोजते गोरख, धरणि गगन आवत फुनि धावत।

(सवये स्रीमुख बाक म:५)

(६) मदिरा- चार चरण, प्रति चरण सात भगण, अन्त एक गुरु,

कवि मथुरा : संतन ही सत संगति संगु सुरंग रते जसु गावत है। २४१

(सवैये म: ४ के)

(७) दुर्मिल : (चन्द्रकला) चार चरण, प्रति चरण आठ सगण: IIS, IIS, IIS, IIS, IIS, IIS, IIS, IIS.

कवि मथुरा : मथुरा मनि भाग भले उनके मन इंछित ही फल पावत है। २४२

(सवैये म: ४ के)

२३७- आ. ग्र. पृ० ८३३

२३८- आ. ग्र. पृ० १३३५

२३९- आ. ग्र. १३८८-८९

२४०- आ. ग्र. पृ० १३८८

२४१- आ. ग्र. पृ० १४०४

२४२- आ. ग्र. पृ० १४०४

परंपरा

सवैयाकी परंपरा के संबंध में विद्वानों का विचार है कि कवित्त-घनाक्षरी के समान ही हिन्दी रीति काल में विभिन्न प्रकार के सवैया भी प्रचलित रहे हैं। संस्कृत में -- ये समस्त भेद वृत्तात्मक हैं। परन्तु कुछ विद्वान् हिन्दी के सवैयाको मुक्तक वर्णिक के रूप में समझते हैं। जानकी नाथ सिंह ने अपने खोज निबंध 'दिकण्ट्रीब्यूशिन ऑव हिन्दी पोयटेस टु प्राज़ेडी' के चौथे प्रकरण में इस विषय पर विस्तार से विचार किया है, और उनका मत है कि कवियों ने सवैया को वर्णिक सम-वृत्त रूप में लिया है। उसमें लय के साथ गुरु मात्रा का जो लघु उच्चारण किया जाता है वह हिन्दी की सामान्य प्रवृत्ति है। इसके हृस्व ए और ओं के उच्चारण के लिये लिपि चिन्ह का अभाव भी है। परन्तु हिन्दी में मात्रिक छन्द के व्यापक प्रयोग के बीच प्रयुक्त इस वर्णिक छन्द पर उनका प्रभाव अवश्य पड़ा है। जिस प्रकार कवित्त एक विशेष लय पर चलता है, उसी प्रकार सवैया भी लयमूलक ही है।

रीतिकाल की मुक्तक शैली में कवित्त और सवैया का महत्वपूर्ण योग है। वैसे भक्ति काल में ही इन दोनों छन्दों की पुष्टि हो चुकी थी और तुलसी जैसे प्रमुख कवि ने 'कवितावली' की रचना प्रधानता इन्हीं दो छन्दों में की है। भगणात्मक (मदिरा) जगणात्मक (सुमुखि) तथा सगणात्मक (दुर्मिल) की लय क्षिप्र गति सेचलती है। और यगण, तगण तथा रगणात्मक सवैये की लय मन्द गति होती है। यह छन्द शृंगार रस तथा भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के लिये बहुत उत्कृष्ट रूप में प्रयुक्त हुआ है। रसखान, घनानन्द, आलम जैसे प्रेमी-भक्त कवियों ने भक्ति भावना के उद्वेग तथा आवेग की सफल अभिव्यक्ति सवैया में की है। आधुनिक कवियों में हरिश्चन्द्र, लक्ष्मण सिंह, नाथू राम शर्मा 'शंकर' आदि ने इस का सुन्दर प्रयोग किया है। जगदीश गुप्त ने इस छन्द में आधुनिक लक्षण शक्ति कासमावेश किया है।[२४३]

जहां तक आदि ग्रंथ में सवैया के प्रयोग का संबंध है, हम देख चुके हैं, कि गुरु नानक से लेकर परवर्ती रचयिताओं ने भी इस का प्रयोग

२४३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ८२१

किया है। परन्तु भाट-कवियों ने तथा गुरु अर्जुन देव ने कवित्त-सवैया का अधिक प्रयोग किया है। सवैये श्री मुखबाक महला ५ (गुरु अर्जुन देव की रचना)[244] तथा सवैये, म:१,म:२,म:३,म:४ तथा म:५ के (भाट कवियों की रचना)[245] इसकी उदाहरण हैं। इन में सवैया, कवित्त तथा छप्पय का भी प्रयोग है। गुरु नानक का समय पंद्रहवी शती का उत्तरार्ध तथा सोलहवी शती का पूर्वार्ध है। इस काल से पहले ही १४ वीं शती में कवित्त-सवैया छन्दों का सफल प्रयोग होना आरम्भ हो चुका था।[246] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कवित्त सवैया को ब्रज भाषा के अपने छन्द मानते हैं और कहते हैं कि जिसे हिन्दी का आदि काल कहा जाता है उसमें इन छन्दों का प्रचार निश्चय ही हो गया था। उन्होंने इन दोनों छन्दों को 'बन्दी जन छन्द' कहकर भाटकवियों की कृति माना है।[247] कहा जाता है कि बन्दीजन अर्थात चारण कवि हिन्दी की प्रारंभिक कविता के जन्मदाता रहे हैं। बहुत संभव है कि उन्होंने लोक प्रचलित = किसी गीत-प्रणाली के आधार पर १३वीं शताब्दी के आस पास इन छन्दों का प्रचार किया हो। भक्ति काल में ये छन्द अचानक बहुत लोक प्रिय हो उठे थे।[248]

सवैया की उत्पत्ति के विषय में डा०नामवर सिंह के विचार भी उल्लेखनीय हैं। उनका कथन है कि सवैया स्पष्ट रूप से वर्णिक गणवृत्त है, इसलिये इसकी प्राचीनता अनिवार्य है, और संस्कृत में ही इसका मूल उत्स मिलना चाहिए। यह तो सही है कि सात-आठ गण के चार चरणों का ऐसा कोई वर्णिक वृत्त संस्कृत में नहीं है, लेकिन इसको लंबाई देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह संस्कृत के किसी वर्णिक वृत्त के गणों को द्विगुणित करके बनाया गया है। संस्कृत का जो वर्णिक वृत्त द्विगुणित किए जाने से आसानी से दुमिल सवैया हो जाता है, वह है चार चरण वाला त्रोटक छन्द। लेकिन यह सुपष्ट रहना चाहिए कि त्रोटक संस्कृत का लोक-प्रिय छन्द नहीं है, और इसका विकास निश्चित रूप से बहुत बाद का है। पृथ्वी राज रासो में सवैया तो नहीं मिलता लेकिन त्रोटक छन्द काफी है।[249]

२४४- आ. ग्र. पृ० १३८५ से १३८६

२४५- आ. ग्र पृ० १३८६ से १४०६

२४६- हिन्दी साहित्य कोश- २८३

२५७- हिन्दी साहित्य का आदि काल- ११०

हमारा विचार है कि आचार्य हजारी प्रसाद का कवित्त-सवैया को बन्दीजन छन्द अथवा चारण या भाट कवियों की देन कहना बहुत उचित है। तदोपरंत, भाटकवियों ने इस त्रोटक छन्द को द्विगुणित करके सवैयाकी रचना की। इस छन्द में ------- विशेषत: भाट कवियों तथा गुरु अर्जुन देव के सवैये आदि ग्रंथ में संकलित हैं। वैसेइस छन्द का उपयोग गुरु नानक देव ने भी किया है। उन्हों ने इसे प्रचलित परंपरा से ही ग्रहण किया होगा।

७- सार छन्द : यह मात्रिक सम छन्द है। भानु के अनुसार इस के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं, १६-१२ की यति से आती हैं और अन्त में दो गुरु (SS) रहते हैं। अन्त में दो गुरु का नियम कर्णमधुरता की दृष्टि से रखा गया है अन्यथा 'ग' तथा 'र ल' भी हो सकता है।[२५०] आदि ग्रन्थ में सार-छन्द की इन दोनों जातियों का प्रयोग हुआ है। प्रथम जाति को भाई कान्ह सिंह ने 'सार' का नाम दिया है, इसके अन्त में दो गुरु (SS) हैं। परन्तु अन्त में एक गुरु वाले सार को उन्हों ने 'दुवैया' नाम दिया है।[२५१] परन्तु प्रिंसीपल संत सिंह सेखों ने इन दोनो जातियों के 'सार' छन्द को 'दुवैया' ही कहा है।[२५२] गुरमति दर्शन के एक अन्य विद्वान श्री शमशेर सिंह अशोक ने इसे सार छन्द ही कहा है, और उन्हों ने अपने निबंध 'श्री आदि ग्रंथ जी का छन्द प्रबंध' में दुवैया का नाम नहीं लिया। हमारा यहां अनुमान है कि उन्हों ने अन्त में एक गुरु वाले इस छन्द की जाति को भी 'सार' के अन्तर्गत लिया है, जैसे भानु ने।[२५३]

२४८- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १७५

२४९- हिन्दीकेविकास में अपभ्रंश के योगदान- ३०४

२५०- छन्द प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद भानु- पृ० ६६

२५१-गुर छन्द दिवाकर- पृ० १०८ तथा २१०

२५२- पंजाबी काव शिरोमणी- पृ० ७३

२५३- श्री गुरमति साहित्य अंक पंजाबी दुनिया, जनवरी- फरवरी, १९६५ पृ० ८१

'सार' छन्द का प्रयोग कबीर तथा अनेक समसामयिक आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने प्रचुरता से किया है। प्रथम अन्त में दो गुरु वाले 'सार' को देखिए:

कबीर: जोगी कहहि जोगु भल मीठा, अवरु न दूजा भाई।
रुंडित मुंडित एकै सबदी इह कहहि सिधि पाई।
गउड़ी कबीर।[२५४]

म:१ किव करि आखा किव सालाही? किउवरनी किन जाणा?
नानक आखणि सभ को आखै, इकदू इकु सिआणा।।
म:१ जपु[२५५]

म:१ गुर कै संगि रहै दिनु राती रामु रसनि रंगि राता।
अवरु न जाणसि सबदु पछाणसि अंतरि जाणि पछाता।।
गउड़ म: १[२५६]

प्रिंसीपल सन्त सिंह सेखों ने जिस छन्द को दवईया (दुवैया) कहा है, वह १६ + १२ मात्रा तथा अंत दो गुरु वाला सार छन्द ही है।

नानक गुरमुख नदरी आइवा, (हरि)इको सुघड़ सुजाणीवै। म:१[२५७]
१६ १२ ऽऽ

भाई कान्ह सिंह ने सार के जिस भेद को 'दुवैया' माना है, उसके अन्त में एक गुरु (ऽ) माना है।[२५८] परन्तु 'दुवैया' की एक दूसरी प्रकार 'सार' कहाई है, जो प्रसिद्ध छन्द 'सार' है। इसका तात्पर्य यह है कि छन्द-शास्त्र के ग्रन्थों में जो प्रसिद्ध छन्द 'सार' है, उसे ही 'दवैया' नाम दिया गया।[२५९]

२५४- आ. ग्र. ३३४

२५५- आ. ग्र पृ० ४

२५६- आ. ग्र. पृ० ११२६

२५७- प्रिं० सेखों: पंजाबी काव सिरोमणी- ७३

२५८- गुरु छन्द दिवाकर- २११

२५९- वही- २११

ऊपर जो अंक (२५६) में सार का जो उदाहरण प्रिंसीपल तेजा ने सवैया के लिये प्रस्तुत किया है, इस में उन्होंने (हरि) तथा (वै) को दूसरे चरण में अधिक माना है। यदि ध्यान से देखा जाये तो यह उदाहरण 'सार' की १६ + १२ अन्त ऽऽ की परिभाषा पर पूरा उतरता है। अत: यह प्रसिद्ध छन्द 'सार' ही है। जिसका प्रयोग आदि ग्रंथ में बहुत हुआ है। भैरउ असटपदीआं महला १ घरु २ में सार का १६ + १२, तथा अन्त में लघु गुरु (। ऽ) वाला रूप मिलता है।

गुरु मुखि साचा सबदि सलाहै, मनि साचा तिस रोगु गवाइ।[२६०]

अष्टपदियों में 'सार' छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है, गुरु नानक की भैरउ की अष्टपदी, सारंग की प्रथम दो अष्टपदियां, तथा प्रभाती राग में चौथी और सातवीं अष्टपदियां, सब का छन्द 'सार' है। इसी प्रकार अन्य अष्टपदियां में भी इसी छन्द का प्रयोग हुआ है। अष्टपदियों में चौपाई छन्द भी आया है।[२६१] परन्तु कई स्थानों पर थोड़े से अपवाद के साथ सार छन्द बिल्कुल परिभाषा के अनुकूल प्रयुक्त हुआ है।

लीला प्रसंग को आगे चलाने के लिये यह छन्द पदशैली के अधिक अनुकूल है। सूर ने मान-लीला प्रसंग में इसका सुन्दर प्रयोग किया है।

पापी पायी है रे मैया, कुंज कुंज में ठाली।। (सूर सागर)

आदि ग्रंथ में 'सार' छन्द में प्राय: 'हरि-कथा' एवं 'साधु समागम' की महत्ता का उल्लेख है और गुरु के उपदेश से शब्दाभ्यास पर बल दिया है।[२६२]

इन छन्दों के अतिरिक्त अनेक अन्य छन्दों का प्रयोग आदि ग्रंथ में मिलता है। 'झूलना' और 'रड' का नाम तो भाटों के सवैयों में आता है।

८- झूलना - इस छन्द के वर्णिक सम-वृत्त के भेद भी हैं,[२६३] परन्तु आदि ग्रंथ में प्राय: मात्रिक-सम-दण्डक-छन्दों के भेद-रूप-झूलना के ही दर्शन होते हैं। प्राकृत-पैंगलम-अनुसार 'झूलना' छन्द के प्रत्येक चरण में १०,१०,१७ की यति से ३७ मात्राएं होती हैं। यति के स्थलों पर तुक मिलता है। भानु ने यति के लिये

२६०- आ. ग्र. ११५३

२६१- पंजाबी काव्य शिरोमणि- ७८

२६२- आ. ग्र. अष्टपदियां म:३- १२३३

२६३- हिन्दी साहित्य कोश, ३११। गुरु छन्द दिवाकर १६२।

१०,१०,१०,७ और अन्त में यगण (।ऽऽ)का निदेश किया है। इसी छन्द के चरण में जब २०,१७ पर यति होती है तब इसे 'झूलना' कहते हैं।

आदि ग्रंथ में १०,१०,१७ पर यति तथा अन्त में यगण (।ऽऽ) वाले 'झूलना' का प्रयोग श्री जयदेव (१२वीं शती) की रचना में मिलता है।[२६४]

चंदसत भेदिआ, नादसत पूरिआ, सूरसत खोड़सादतु कीआ।
अबल बल तोड़िआ, अचल चलु थपिआ अघड़ु घड़िआ तहां अपिउ पीआ।

'झूलना' के एक 'कलेना' का रूप आदि ग्रंथ में भाट कवियों की रचना में मिलता है। वहां 'कलेना' शब्द का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है, इस में प्राकृत-पैंगलम वाले 'झूलना' से भिन्नता एवं विषमता है। यह एक नवीन रूप लगता है, जिसे भाट कवियों ने स्वयं गढ़ा होगा। इसमें पांच पाद हैं, जिनमें क्रमानुसार २१,४१,४६,४१ तथा ४१ मात्राएं हैं।[२६५]

कलेना।। गुरू गुरु गुरू गुरु गुरू जपु प्रानीअहु।
सबदु हरि हरि जपै नाम नवनिधि अपै रसनि अहिनिसि रसै सति करि जानीअहु।
फुनि प्रेम रंग पाईऐ गुरमुखहि धिआईऐ अंन मारग तजहु भजहु हरि गयानी अहु।
बचन गुर रिदि धरहु पंच भू बसि करहु जनमु कुल उधरहु द्वारि हरि मानीअहु।
जउत सभ सुख इत उत तुम बंछवहु गुरू गुरु गुरू गुरु गुरू ... जपु प्रानीअहु।।
सवैये म: ४ के, कवि दास।

भाट कवि, गुरू अर्जुन के समसामयिक थे। गुरू अर्जुन की रचना में भी झूलना का प्रयोग मिलता है। जिस रूप का उन्हों ने प्रयोग किया है, उस में अन्त में यगण (।ऽऽ) के स्थान पर केवल दो गुरू (ऽऽ) हैं, यथा:

हलति सुखु पलति सुखु, नित सुख सिमरनो, नामु गोबिंद का सदा लीजै।[२६७]
धनासरी म: ५

२६४- आ. ग्र. राग मारू जयदेव- ११०६
२६५- आ. ग्र. सवैये म: ४ के पृ० १४००
२६६- गुरू छन्द दिवाकर- १६३
२६७- आ. ग्र. पृ० ६८३

तुलसी दास ने यति के नियम का प्राय: अनुसरण नहीं किया है। २०,१७ पर यति दी है और मध्य तुक का प्रयोग भी नहीं किया है:

कनक गिरि शृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक, बदत मन्दोदरी परम पुनीता।
सहसभुज मत्त गजराज रनकेसरी, परसुधर गर्व जेहि देखि बीता।। ५।।

(गीतावली)

इसमें प्रथम चरण में यति का प्रयोग नियमानुकूल है, पर दूसरे चरण में यति २०,१७ पर है। अत: तुलसी के प्रयोग में फूलना और झूलना का संयोग समझना चाहिए।[२६८]

इसी प्रकार गुरु अर्जुन के उपर्युक्त फूलना में १०,१०,१७ की यति का पालन केवल प्रथम पंक्ति में हुआ है, अन्य पंक्तियां १७ +१५ की हैं।

मिटहि कमाणे पाप चिराणे, साध संगति मिलि मुआ जीजै। रहाउ।।

(१७ + १५)

राज जोबन बिसरंत हरि माइआ, महा दुखु एहु महांत कहै। (१७ + १५)
आस पिआस रमण हरि कीरतनु, एहु पदारथु भागवंत लहै। (१७+ १५)

इस से स्पष्ट है कि भक्ति काव्य में छन्दों के शास्त्रोक्त रूप को महानता न देकर राग तत्व की ओर अधिक ध्यान देते हुए न्यूनाधिक मात्राओं का प्रयोग किया गया है। भक्ति-काव्य की छन्दोनुशासन की यह स्वछन्दता सन्त कवियों के स्वतंत्र एवं स्वछन्द स्वभाव की भी परिचायक है, जिनके सम्मुख काव्य-कुशलता से कहीं बढ़कर भावोद्रेक की महानता थी।

९- रड्ड छन्द : इस छन्द का उल्लेख आदि ग्रंथ में भाट कवियों ने किया है। अत: कवित्त सवैये की भांति यह भी बन्दी जन छन्द प्रतीत होता है। भाट कवियों ने ही इस का अविष्कार किया होगा और परंपरा रूप में आदि ग्रंथ के भाट कवियों ने इसका प्रयोग किया। इसमें चार चरण, पहले में ४१ मात्राएं १५,११ तथा १५ पर तीन यतियां अन्य तीन चरणों की २६ मात्राएं ११-१५ पर यति तथा अन्तिम दो चरण दोहा के होते हैं। यह विषमतर छन्द है।[२६९]

२६८- हिन्दी साहित्य कोश- ३११

२६९- गुरु छन्द दिवाकर- २९९ ।

जिसहि धारिउ धरति अरु विउमु, अरु पवण ते नीर सर,
अवर अनल अनादि कीअउ।
(१५ + ११ + १५)
ससि रिखि निसि सूर दिनि, सैल तरुव फल फुल दीअउ।
(११ + १५)
सुरि नर सपत समुद्र किअ, धारिओ त्रिभवण जासु। (११ + १५)
सोई एकु नामु हरि नामु सति पाइओ गुर अमर प्रगासु ।।१ ।।
(११ + १५)
कवि नल्ह[२७०]

कुछ अन्य छन्दों का जो प्रयोग आदि ग्रंथ में है, उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :-

१०- <u>उगाहा</u>: लक्षण: दो चरण, प्रति चरण २६ मात्राएं, १५,११ पर यति, अंत में गुरु लघु (S I)[२७१]

<u>सलोक म:४</u>

मै मनि तनि प्रेमु पिरंम का आठे पहर लगंनि।
जन नानक किरपा धारि प्रभ सतिगुर सुखि वसंनि ।।१।।[२७२]

११- <u>उल्लाला अथवा चंद्रमणि</u>: मात्रिक अर्द्धसम छन्द है, प्राकृत पैंगलम् तथा अन्य अपभ्रंश छन्द ग्रंथों में उल्लाला का विवेचन किया गया है। इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य में इस का प्रयोग निश्चित रूप से अनुमित किया जा सकता है।[२७३] गुरु छन्द दिवाकर में इसका लक्षण इस प्रकार है: चार चरण, प्रति चरण १३ मात्राएं, ८,५ पर यति।[२७४] परन्तु हिन्दी साहित्य कोश में इसका लक्षण इस प्रकार है: पहले और तीसरे पद में १५,१५ और दूसरे और चौथे में १३, १३ मात्राएं होती हैं।[२७५] भाई कान्ह सिंह नाभा लिखते हैं, कि कई कवियों

२७०- आ. ग्र. १३९९
२७१- गुरु छन्द दिवाकर- ५१
२७२- आ. ग्र. वार गउड़ी म:४- ३०१
२७३- प्राकृत पैंगलम- १-११८ से हिन्दी साहित्य कोश पृ०१६७ पर उद्धृत।
२७४- गुरु छन्द दिवाकार- ५५
२७५- हिन्दी साहित्य कोश- १६७

ने भ्रमवश उल्लाल को ही उल्लाला लिख दिया है। भाई साहब ने उल्लाल का लक्षण इस प्रकार दिया है : दो चरण, प्रति चरण २८ मात्राएं और १५,१३ पर यति। कई कवियों ने उल्लाल की २६ मात्राएं भी मानी हैं।[२७६] हिन्दी साहित्य कोश में डा० राम सिंह तोमर को भी यही भ्रम हुआ है। उन्होंने भानु के उल्लाल को ही उल्लाला समझकर कहा है, उल्लाला का प्रयोग स्वतंत्र भी मिलता है, किन्तु छप्पय जैसे छन्दों के साथ इसका प्रयोग बहुत प्रचुरता के साथ हुआ है। भानु ने इसका नाम उल्लाल दिया है। भानु के छन्द प्रभाकर (पृ० ८६) से जिस उदाहरण को उन्होंने उक्त कोश में उद्धृत किया है वह उल्लाल का ही है, उल्लाला का नहीं। देखिये :

हरिहर भगवत सुन्दर स्वामी, सबके घट को तुम जानो। (१५ + १४)
मेरे मन की कीजे पूरी, इतनी हरि मेरी मानो ।। (१६ + १४)

अत: हिन्दी कोश के संपादकों ने उल्लाल और उल्लाला को एक मान कर उल्लाला के आगे उल्लाल का लक्षण लिख दिया है। उल्लाला का लक्षण जैसे ऊपर दिया गया है, चार चरण, प्रति चरण १३ मात्राएं ८,५ पर यति है। इसका प्रयोग गुरु नानक की वाणी में मिलता है, इसे 'सलोक' करके लिखा गया है। हम पहले देख चुके हैं कि आदि ग्रंथ में 'सलोक' कोई छन्द नहीं, न ही यह दोहे का परिचायक है। 'सलोक' के अंतर्गत, दोहा, चौपाई, सार, उल्लाला आदि छन्दों का प्रयोग हुआ मिलता है। 'उल्लाला' का उदाहरण:-

सलोक म:१

सिदकु सबूरी सादिका,
सबरु तोसा मलाईका।
दीदार पूरे पाईसा,
थाउ नाही खाइका ।।२।।[२७७]

२७६- गुर छन्द दिवाकर-५४
२७७- सिरी राग की वार म. ४, पृ० ८३ आ. ग्र. ।।

१२- अष्टपदी: जैसे कि पहले कहा जा चुका है, 'अष्टपदी' छन्द की विशेष जाति नहीं है। जिस प्रबंध में आठ छन्द एक स्थान पर हों, उसे अष्टपदी कहते हैं। भारतीय राग रागनियों के आधार पर अष्टपदी के रूप में बाह्य अभिव्यंजना का स्वरूप जयदेव ने ही दिया।[278] श्री गुरु ग्रंथ साहब में अष्टपदियों में अनेक जातियों के छन्द लिये गए हैं। इस ओर हम पहले संकेत कर चुके हैं, और सब जातियों का निर्णय करने के लिये बहुत विस्तार हो जाता है। उदाहरणार्थ कुछ नमूने दिये जाते हैं।[279] (१)

(१) उपमान: (निशानी) इस छन्द का रूप मांझ राग में गुरु नानक की अष्टपदी है।

दुख भंजनु तेरा नामु पुरि फाटे चीरे।
पहु मनु अकुलिण बाधिआ जहु देह सरीरे। मांझ म:१[280]

(२) सार छन्द: इसका रूप मलार राग में गुरु नानक की अष्टपदी है।

चकवी नैन नींद नहि चाहै बिनु पिर नींद न पाई।
सूरु चरै प्रिउ देखै नैनी निवि निवि लागै पाई।।[281]

(३) चौपाई: गउड़ी राग में म: १ की अष्टपदी चौपाई है:

न मनु मरै न कारजु होइ,
मन वसि दूता दुरमति दोइ।।[282]

(४) सुखमनी में सब अष्टपदियां रूप- चौपई तथा चौपाई एवं चौपई इस प्रकार से आई हैं। चौपाई तथा चौपई का पीछे वर्णन हो चुका है। रूप-चौपई देखिए:
(प्रति चरण १६ मात्राएं अंत में जगण तथा तगण का निषेध है।)

१- सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। (१६- ऽ।।)
२ कलि कलेस तन माहि मिटावउ।।[283]
३- [illegible] कोटि मुकति जन मजना।
जनम मरन दुख भ्रम नजना। (१६- ।।ऽ)

२७८- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास-पृ० १६३
२७९- गुरु छन्द दिवाकर पृ० ५७
२८०- आ०ग्र० पृ० १०१२
२८१- आ०ग्र० पृ० १२७३
२८२- आ०ग्र० पृ० २२२
२८३- आ०ग्र० पृ० २६२।

अतिगीता : चार चरण प्रति चरण ३२ मात्राएं, १५-१७ पर यति, अंत गुरु लघु (   )

जिन हरि हरि नामु न चेतिओ, (मेरी जिंदुड़ीए)
ते मनमुख मूढ़ इआणे राम ।
जो मोहि माइआ चितुलाइदे, (मेरी जिंदुड़ीए)
से अंति गए पछुताणे राम ।
हरि दरगाह ढोई न लहनि, (मेरी जिंदुड़ीए)
जो मन मुख पापि लुभाणे राम।
जन नानक गुर मिलि उबरे, (मेरी जिंदुड़ीए)[२८४]
हरि जपि हरि नाम समाणे राम।।

इस उदाहरण में मेरी जिंदुड़ीए पाठ गायन की लय का है, यह पद छन्द की मात्राओं की संख्या से अतिरिक्त है।

१४- गीता: चार चरण, प्रति चरण २६ मात्राएं, १४,१२ पर यति, अंत गुरु लघु (ऽ।)

मोती त मंदर ऊसरहि, रतनीत होहि जड़ाउ ।
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि, लीपि आवै चाउ ।।[२८५]

इस छन्द का प्रयोग 'पृथ्वी राज रासो' में कवि चन्द ने किया है। केशव ने इसका प्रयोग 'राम चन्द्रिका' तथा भूषण ने 'शिवा बावनी' में किया है। भूषण ने इस का प्रयोग हरिगीतिका के नाम से किया है। (मनिमय महल सिवराज के, इमि रायगढ़ में राजही।) (शिवाबावनी-१६) यहां मात्राएं केवल २६ हैं, भिखारी दास ने भी अपने 'छन्दोर्णव' में इसका वर्णन इसी रूप में किया है, 'लै संग मत्ति मलाह करि, आलप सोलै जाउ'।। (छन्दो० पृ० ३६)[२८६] गुरु गोबिंद सिंह ने हरि गीतिका में २८ मात्राएं तथा १६-१२ पर यति, और अन्त लघु गुरु रखा है। 'सम द्रोण गिरिवर सिखर तर नर पाप करम मए मनो। उठ भाज धरम समरम ले नवकंत दामनि सो मनो।'[२८७]

२८४- आ. ग्र. बिहागड़ा म:४ पृ० ४५०

२८५- राग सिरी राग म: १, पृ० १४

२८६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २६०

२८७- गुर छन्द दिवाकर पृ. १२७

गुरु नानक ने, जैसा कि ऊपर उदाहरण दिया है, इस छन्द के 'गीता' रूप का अधिक प्रयोग किया है।

पक अरज़ गुफतम पेसि तो दरगोस कुन करतार।
हक्का कबीर करीम तू बेऐब परवरदगार ।। १ ।। [२८८]

जगन्नाथ प्रसाद भानु ने छन्द प्रभाकर में 'गीतिका' छन्द में प्रति चरण २६ मात्राएं, तथा अंत में लघु गुरु (।ऽ) का निर्देश किया है। यति १४-१२ पर ही है। [२८९] इस प्रकार 'गीता' और 'गीतिका' में केवल गौण अंत है। अर्थात गीता के अंत में (ऽ।) है और 'गीतिका' के अन्त में (।ऽ)। 'गीतिका' का जो रूप आदि ग्रंथ में मिलता है, उसमें चार चरण प्रति चरण २५ मात्राएं, १४-११ पर यति, अंत में लघु गुरु (।ऽ) है। इसे जयदेव ने अपनी रचना में प्रयुक्त किया है।

परमादि पुरख मनोपिमं सति आदि भावरतं।
परमद्भुतं परक्रितिपरं जदि चिंति सरब गतं।।१।। [२९०]

१३-१३ पर विश्राम, २६ मात्राओं, तथा अंत गुरु-लघु (ऽ।) वाले गीता छन्द का प्रयोग आदि ग्रंथ के जयदेव के परवर्ती रचयिताओं ने भी किया है। गुरु अर्जुन देव की रचना में इस काउदाहरण मिलता है:

सेवी सति गुरु आपणा, हरि सिमरी दिन सभि रैणि।
आपु तिआगि सरणी पवां, मुखि बोली मिठड़े बैण। [२९१]
(दिन रैणि)

१५- घनकला(क) इस छन्द को 'त्रिभंगी' भी कहते हैं। चार चरण, प्रति चरण ६३ मात्राएं तीन यतियां १६-१६-१६ पर, चौथी १५ पर, तथा अन्त में गुरु लघु (ऽ।) (प्रथम तथा द्वितीय यतियों का अनुप्रास एक होता है। गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुन देव का रचना में इसका प्रयोग मिलता है। [२९२]

२८८- तिलंगम: १- ७२१
२८९- हिन्दी साहित्य कोश- २६०
२९०- आ. ग्र. ५२६
२९१- आ. ग्र. पृ६१३६
१९२- गुरु छन्द दिवाकार- १५६

(१) म: ४ हरि हरि सिमरहु अगम अपारा।
जिसु सिमरत दुखु मिटै हमारा।
हरि हरि सतिगुरु पुरखु मिलावहु,
गुरि मिलिऐ सुखु होई राम ।।१ ।।[२६३]

(२) म:५ सुणि सुणि जीवा सोइ तुमारी।
तूं प्रीतमु ठाकुरु अति भारी।
तुमरे करतब तुम ही जाणहु।
तुमरी ओट गोपाला जीउ ।।१।।[२६४]

(ख) चनकला का दूसरा रूप, १६-१६-१६-१४, कुल ६२ मात्राओं तथा अंत दो गुरु (ऽऽ) वाला है।[२६५] गुरु नानक की रचना में इसका प्रयोग मिलता है, जिस से स्पष्ट है, उनके अनुयायियों ने एक मात्रा चौथी यति १४ के स्थान पर १५ पर कर दी और इस यति के अन्त में दो गुरु के स्थान पर ग ल (ऽ।) रख लिया। गुरु नानक की बाणी में इस के प्रयोग का उदाहरण इस प्रकार है:-

केती केती अंत उपाए।।
दुइ पंथी दुइ राह चलाए।
गुर पूरे विण मुकति न होई,
सचु नामु जपि लाहा हे।[२६६]

(ग) चनकला का चौथा रूप १६,१६,१६ तथा १३ वाला है। इसमें चौथी यति के अन्त में लघु गुरु (।ऽ) तथा कुल ६१ मात्राएं होती हैं। इस का उपयोग गुरु अर्जुन देव ने किया है।

२६३- आ. ग्र. पृ० ६६८
२६४- आ. ग्र १०४
२६५- गुरु छन्द दिवाकर- १५६
२६६- मारू सोलहे म: १, पृ० १०३२

जो दीसै सो एको तू है।
बाणी तेरी स्रवणि सुणीऐ।
दूजो अवर न जापसि काई,
सगल तुमारी धारणा ।। १।।[२९७]

गुरु अमर दास के मारू सोलहे में भी गुरु नानक वाले घनकला का अधिक प्रयोग है। चौथी यति १४ मात्रा पर और अन्त दो गुरु (ऽऽ) हैं, कुल ६२ मात्राएं हैं:

सति गुरु पूरा साधु दिखाए।	(१६)
सचै सबदि सदा गुण गाए ।	(१६)
गुण दाता वरतै सभ अंतरि,	(१६)
सिरि सिरि लिखदा साहा हे।।१।।	(१४) (ऽऽ)[२९८]

इस प्रकार इस छन्द के प्रयोग की परंपरा गुरु नानक काल से चली, और मारू राग में जो गुरु नानक ने सृष्टि आरंभ का वर्णन किया है, संभवत: उसी से इस घनकला का आरंभ भी होता है:

आपे दाना आपे बीना।	(१६)
आपे आपु उपाइ पतीना।	(१६)
आपे पउण पाणी बैसंतरु,	(१६)
आपे मेलि मिलाई हे।	(१४) -(ऽऽ)[२९९]

मात्राओं की कमी-बेशी करके किसी छन्द का प्रयोग करना, तथा उस में गुरु-लघु का फेर बदल करना कवियों में साधारण बात थी। जैसे 'गीतिका' के अन्त में लघु गुरु (।ऽ) के स्थान पर गुरु-लघु (ऽ।) करके 'गीता' छन्द बना दिया गया।[३००]

१६- चौबोला - मात्रिक सम- छन्द का एक भेद है। प्राकृत पंगलम् में इस का लक्षण इस प्रकार है(१ : १३२) द्वितीय और चतुर्थ चरण में १४ मात्राएं

२९७- आ. ग्र. मारू सोलहे म: ५, पृ०१०७६

२९८- आ. ग्र. २५५

२९९- आ. ग्र. १०२०

३००- हिन्दी साहित्य कोश- २६०

और प्रथम तथा तृतीय में १६ मात्राएं। इस दृष्टि से तो यह अर्द्धसम-छन्द माना जायगा। परन्तु हिन्दी का चौबोला छन्द सम-चरण है। संभवतः इस पर चौपाई का प्रभाव है। भानु के अनुसार यह १५ मात्राओं का सम-चरण छन्द है, जिसके अन्त में लघु गुरु (।ऽ) रहता है। केशव (वीर सिंह देव चरित), सूदन (सुजान चरित) तथा रघुराज (राम स्वयंवर) ने इसका प्रयोग किया है।[301] भाई कान्ह सिंह ने चौबोले का भानु वाला लक्षण दिया है और इसे चौपाई का एक रूप कहा है।[302]

श्री गुरु ग्रंथ में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग तो नहीं मिलता, परन्तु रागों से बाहर गुरु अर्जुनदेव की रचना चौबोले हैं। जिनका छन्द तो दोहा है परन्तु इन्हें लिखा चौबोले है। प्रिंसीपल तेजा सिंह लिखते हैं, "चौबोले ११ हैं। प्रत्येक का छन्द दोहा है। पता नहीं इन पदों को चौबोले क्यों कहा गया है।"[303] भाई कान्ह सिंह लिखते हैं, "गुरु ग्रंथ साहब में चार प्रेमियों के बोल (वचन) जिस वाणी में उल्लिखित हैं, उसे चौबोला संज्ञा दी गई है। वास्तव छन्द इस का दोहा ही है।"[304] शब्दार्थ गुरु ग्रंथ के संपादकों ने लिखा है, चौबोला वह छन्द है, जिस में चार पुरुषों (सम्मन, मूसन, जमालक तथा पतंग) के प्रति उच्चारण किए गए बोल (वचन)हैं। इसका उदाहरण निम्नांकित है:-

मूसन मसकर प्रेम की रही जु अंबरु छाइ।[305]
बीधे बाधे कमल महि भवर रहे लपटाइ।।"

इस चौबोले की परंपरा लोक-गीतों में भी ढूंढी जा सकती है। दसम ग्रंथ में चार भाषाओं के मिश्रित छन्द को चौबोला कहा गया है।[306]

१०- उलखणा: यह कोई छन्द नहीं है। आदि ग्रंथ में गुरु अर्जुन देव जी ने इस शीर्षक से काव्य रचना की है। श्री राग के छन्त म: ५[307] में तथा

३०१- वही

३०२- गुरु छन्द दिवाकर- १६५

३०३- पंजाबी कावि शिरोमणी- १९७

३०४- गुरु छन्द दिवाकर- १६७

३०५- चौबोले म: ५- १३६४

३०६- गुरुछन्द दिवाकर पृ॰१६६-६७ ३०७- आ॰ग्रं॰ पृ॰ ८०

मारू की बार म:५[308] में क्रमश: 'डखणा' और 'डखणे' शीर्षक से रचनाएं की गई हैं। श्री राग में पृ० ८०-८१ पर म:५ के पांच छन्त हैं। प्रत्येक छन्द (छन्त) के पूर्व में एक एक डखणा है। डखणा अथवा दखणा ऐसा काव्य प्रकार है, जो दोहा अथवा सोरठा छन्द में ही आदि ग्रंथ में मिलता है। मारू की बार में सलोकों के स्थान पर 'डखणे' हैं। वहां पर एक से अधिक दोहे अथवा सलोक हैं, इस लिये शीर्षक 'डखणे' (बहुवचन) है। गुरु अर्जुन देव की जैतसरी की बार[309] में भी डखणे मिलते हैं, परन्तु वहां शीर्षक श्लोक (सलोक) ही है। इन डखणों का रूप भी दोहा तथा सोरठा है। आदि ग्रंथ के अन्त में पृ० १४२४ पर म:५ के सलोकों में 'डखणे' मिलते हैं। दोहों के रूप में अन्य आदि ग्रंथ के रचयिताओं द्वारा भी 'डखणे' लिखे गए हैं। बाबा फरीद के सलोकों में 'डखणे' बड़ी आसानी से ढूंढे जा सकते हैं।

म: ५ के श्री राग और मारू राग के डखणों में विषय तथा भाषा की समता है। दोनो रागों में आरंभ वाला एक एक डखणा देखिए:-

श्री राग: डखणा

छठ मकाहू मा पिरी, पसे किउ दीदार।
संत सरणाई लभणे, नानक प्राण अधार ।।१।।[310]

मारू राग

तू चउ संजण मैडिआ, डेई सिस उतारि।
नैण महिंजे तरसदे, कदि पसी दीदार।[311]

दोनों डखणे दोहा छन्द में हैं। आदि ग्रंथ में गुरुमुखी लिपि वाली अद्धक (अर्धक- ˇ) का प्रयोग नहीं है। अत: पाठकों को स्वयं इसे जोड़ना पड़ता है। मकाहूं = मज्झाहू, पसे = पस्से, तथा सजण= सज्जण

३०८- आ. ग्र. पृ० १०६४
३०९- आ. ग्र. ७०६
३१०- आ. ग्र. पृ० ८०
३११- आ. ग्र. १०६४

सिन=जिल्स, मनी-अंडी और फलों= फसी करके पढ़ना चाहिए, क्योंकि इनका भावार्थों की गणना छूट गई है। पंजाबी भी आदि ग्रंथ का भावार्थों का निर्णय कर सकते हैं।

ऊपर के डखणों की भाषा 'डखणी पंजाबी' है। अर्थात जिस प्रदेश की यह भाषा है, पंजाब के दक्षिण में है। इस लिये इसे डखणा (दखणा) कहते हैं। भाई कान्ह सिंह नाभा[312] तथा शब्दार्थ गुरु ग्रंथ[313] के संपादकों ने इस संबंध में लिखा है: गुरु नानक देव जी की जन्म भूमि से दक्षिण की ओर की भाषा, अर्थात मुलतान, बहावलपुर के प्रदेश की भाषा में जो रचना है, वह डखणे नाम से गुरु वाणी में प्रसिद्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि डखणों की भाषा पंजाब के दक्षिण की है, परन्तु यह व्याख्या तो तभी समीचीन है, यदि गुरु नानक से पूर्व डखणे, दोहे अथवा लिखे न जाते रहे हों। डखणे तो फरीद, गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं ने भी लिखे हैं, परन्तु उनका शीर्षक सलोक है। यह नाम गुरु अर्जुन देव ने ही सलोकों के स्थान पर अपनाया है। गुरु अर्जुन ने इस महानग्रंथ का संपादन करते समय डखणों के प्रचलित लोक-काव्य प्रकार के आधार पर इस रचना का नाम आदि ग्रंथ में भी यही रखा, जैसे अन्य काव्य प्रकारों के नाम लोक-काव्य के प्रकारों के नामानुसार रखे हैं, जो कि वारों में निबद्ध हैं। विद्वानों ने नवीन शोध के आधार पर सिद्ध कर दिया है, कि मुलतान तथा सिंध प्रदेश में डखणे रचे जाने की परंपरा बड़ी पुरानी है, और इसका लोक-काव्य एवं लोक जीवन से घनिष्ठ संबंध है। मि० जुक्स, जो चर्च मिशनरी सुसाइटी, डेरा गाजी खां का मिशनरी था, उसने ए डिक्शनरी आफ दि जटकी एंड वेस्टर्न पंजाबी लैंग्वेज में डखणा का अर्थ मूर्ख शुतरबान (A stupid Camel Driver)[314] किया है, और ग्राहम ने भगवती

३१२- गुरु शब्द रत्नाकर- पृ० १६५, महान कोश पृ० ४३७

३१३- आ०ग्रं० पृ० [illegible] (शब्दार्थ)

३१४- ए डिक्शनरी आफ दि जटकी एंड वेस्टर्न पंजाबी पृ० १६० पर पंजाबी दुनिया, नवंबर, १९६५ के पृ० ३४ पर उद्धृत।

आव मुल्तानी लैंग्वेज में डक्खणा का अर्थ ऊंट वाला अथवा शुतरवान दिया है।[315] किशन दास ने अपनी पंजाबी डिक्शनरी में दकनो का अर्थ ढोलक- जो गले में डाल कर बजाए जाए दिया है। ओ. ब्राइन इसे (KETTLE DRUM) कहता है। इस विवेचना के आधार पर श्री प्यारा सिंह पदम ने निष्कर्ष निकाला है कि जहां पश्चिमी पंजाबी में डक्खणे का अर्थ शुतरवान है, वहां से यह संकेत लिया जा सकता है, कि बोलियां अथवा दोहे (डक्खणे) ऊंटों वाले आते जाते गाते होंगे, तो इनका नाम उसी प्रकार डक्खणे पड़ गया जैसे करहे (ऊंट) वालों के गीतों से आदि ग्रंथ में करहले की रचना मिलती है। ढोलक पर गाए जाने वाले दोहों को भी डक्खणे कह दिया गया होगा।[316]

'डक्खणे' आदि ग्रंथ में अवश्य ही लोककाव्य के आधार पर रचे गए हैं, क्योंकि इसी नाम की रचनाएं हस्त लिखित प्रतियों में मिलती हैं। भाषा विभाग पटियाला में एक प्राचीन गोष्टि संग्रह (नं०३५६) की बहुत पुरानी हस्त लिखित प्रति है, जिसमें गुरु नानक काल की पुरानी गद्य प्राप्त है। इसमें कुछ गोष्टियों की गद्य को गुरु नानक से पूर्व की रचना माना जा सकता है, जिसके प्रबल प्रमाण उपस्थित हैं। इन गोष्टियों में एक का शीर्षक है, 'गोसटि डाखणी पीर मुरीदों की'। जिस पीर की यह गोष्टि है इस को दक्षिण का, अथवा डाखणी कहा गया है, और साथ ही इसे सिन्धी फकीर भी कहा गया है। यह फकीर अपनी बात की पुष्टि के लिये जो दोहा बोलता है, उसे डाखणा नाम दिया गया है। यह डाखणे सब से पुराने कहे जा सकते हैं।[317] 'डखणे', डाखणे का ही भाषकी (केंद्री) पंजाबी रूप है।

सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला की हस्त लिखित प्रति नं-५२५ में रुबाई जैसी गति वाले छन्द में भी डक्खणे लिखे मिलते हैं। इन में हीर-रांझा की प्रेम कथा के प्रतीकों द्वारा सच्ची एवं अलौकिक प्रेम-साधना का वर्णन है।[318] इस प्रकार हम देख चुके हैं कि डक्खणों में दोहा, सोरठा, रुबाई, आदि छन्दों में रचनाएं मिलती हैं। डक्खणों का कोई निश्चित

३१५- गलासरी आव मुल्तानी लैंग्वेज-पृ० १६, पंजाबी दुनिया नवम्बर,१९६५ पृ० ३४ पर उद्धृत।

३१६- पंजाबी दुनिया- नवम्बर- १९६५, पृ० ३४

३१७- पंजाबी दुनिया-नवम्बर,१९६५, निबंध श्री प्यारा सिंह पदम पृ०३४

छन्द नहीं था, यह तो एक लोक-काव्य प्रकार था, जिस में जो भी लोक प्रिय छन्द आया उसमें रचनाएं की गईं। भक्ति काव्य में दोहा- तथा सोरठा को विशेष प्रधानता रही है, अत: यह सुगम काव्य छन्द इस काव्य प्रकार के लिये प्रयुक्त हुए।

श्री राग में सोरठा छन्द में डखणा[319]

सहंदड़ो हभ ठाइ, कोइ न दिसै डूजड़ो। (११ + १३)
खुल्हड़े कपाट , नानक सतिगुर भेटते। (इस पंक्ति में मात्राएं कम हैं। ९ + १३)

मारू राग में सोरठा छन्द में डखणा[320]

दुखीआ दरद घणे, वेदन जाणे तू धणी। (११ + १३)
जाणा लख भवे, पिरी डिसंदो ता जीवसा। (१०+ १४)

सलोक म:५ में सोरठा + दोहा छन्द में डखणा[321]

(सोरठा) सुखड़े सुती सवंन्हि, जो रते सह आपणे। (११ + १३)
(दोहा) प्रेम विछोहा धणी सउ, अठे पहर लवंन्हि।।१।। (१३ + ११)

दूसरी पंक्ति में दूसरे चरण को पहले लेने से यह डखणा सोरठा बनता है। अठे पहर लवंन्हि, प्रेम विछोहा धणी सउ ।

इन सलोकों में इस प्रकार का डखणा सलोक नं० १८ में है।[322]

(सोरठा) तिहटड़े बाजार सउदा करनि वणजारिआ। (११ + १३)
(दोहा) सच वखरु जिनि लदिआ, से सचड़े पासार ।।१।। (१३ + ११)

सिरी राग के एक डखणे[323] तथा सलोक म:५[324] के डखणे का विषय द्रष्टव्य है:-

---

३१८- वही पृ० ३५
३१९- आ. ग्र. पृ० ८०
३२०- आ. ग्र. १०९७
३२१- आ. ग्र. १४२५
३२२- वही पृ० १४२५
३२३- आ. ग्र. ८० ३२४- आ. ग्र. १४२४

(दोहा) धूड़ी मंजनु साध के, साईं थीए क्रिपाल । (१३ + ११)
लधे हभे थोकड़े, नानक हरि धन मालु ।।१।। (१३ + ११)

सलोक: म: ५

(सार छन्द)धणी विहूणा पाट पटंबर, भाही सेती जाले। (१६ + १२)
धूड़ी विच लुडंदड़ी सोहां, नानक तै सह नाले।।२।।(१६+१२)
सिखरू मूठिन धुड़ींदो, जिचरू, आपि क्रिपाल । (१३+ ११)
सबद अधुंद बाबा नानका, साहि सरवि धन मालु।।२०।। (१६+ ११)

मात्राओं का न्यूनाधिक होना, संगीत तथा लय के कारण है।

जिन गुरु नानक से पूर्वकालीन डखणों की ओर पहले संकेत किया जा चुका है, उन्हीं की परंपरा के विकसित रूप में गुरु अर्जुन देव तथा उनके पूर्ववर्ती गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने डखणे लिखे। इनका उदाहरण इस प्रकार है:-

सिंधी फकीर के डखणे[325]

दोहा पिरी तकिजे नांव के, अट्ठे पहिर लवंनि।
पी सालाह न अंबड़ा, संदी सु पिरोवनि। ६।।

(पुरातन गोसटि संग्रहि प्रति- ३८६)

गुरु अर्जुन के डखणे[326]

सोरठा सुतड़े सुखी सुवंन्हि, जो रते सह आपणे।
दोहा: प्रेमविछोहा धणी सउ अट्ठे पहर लवंनि।। १२।।

सिंधी फकीर[327]

सोरठा :पहिला पाणी वंजाई, पाणी वंजाई सो लहै। (११+१३)
अंदरि काती पाई, जि ताहू अंदरि सुपिरी। (११+ १३)

३२५- पंजाबी दुनिया- ३६ (नवंबर- १९६१)

३२६- आ. ग्र. १४२५

३२७- पंजाबी दुनिया- ३५

गुरु अर्जुन[328]

दोहा हठ मंझाहू मा पिरी, पस्से किउ दीदार। (१३+११)
संत सरणाई लभणे, नानक प्राणाधार । (१३+११)

सिंधी फकीर[329]

सोरठा लोहे लक्ख किवाप, पस्सण से पाण पिरी। (११+१३)
मंके पिरी लगामि, अंजाण दे उंकिअमु । (११+१३)

गुरु अर्जुन[330]

दोहा तू कउ सज्जण मैंहिवा, डेई सिस्सु उतारि।
नैण महिंज्जे तरसदे, कदि पसुसी दीदार ।।१।।

श्री प्यारा सिंह पदम ने अपने निबन्ध में किसी अज्ञात कवि के उक्लेण भी उद्धृत किए हैं०। इनका छन्द दोहा तथा सोरठा दोनों हैं।

अज्ञात कवि[331]

दोहा जा जा सज्जण संपलां, तां मू लग्गनि तीर। (१३+११)
पंछी होवां यह मिलां, सहां न झूरो पीर । (१३+११)

अज्ञात कवि के इस उक्लेण की शैली का बाबा फरीद के श्लोकों में पाए जाने वाले उक्लणों से तुलना द्रष्टव्य है:-

दोहा फरीदा जि दिहि नाला के पिवा जे गल कपाहि चखु ।
पवनि न झूरो भामले उहां न झूरो दुख । (आ. ग्र.पृ: १३८१)

गुरु अर्जुन[332]

दोहा संप विकांदड़े जे लहां, पिन्नां सांवी तोलि। (१३-+११)
तंनि जड़ाई आपणे, लहां सु सज्जणु टोलि।।२।। । १३+११)

अज्ञात कवि[333]

देहा असां तुसाडी सज्जणों, बट्ठे पहिरि संभाल ।। (१३+११)
डोहे वस्सहु मन महि, राती सुतिआं नालि ।।३।। (१३+११)

३२८- आ. ग्र. पृ० ८०

३२९- पंजाबी दुनिया-पृ:३५ NOV, 1965.

गुरू अर्जुन[324]

सोरठा सुतड़े सुखो संवन्हि, जो रते सह आपणे। (११+१३)
दोहा प्रेम विछोहा, धणी सउ, अठे पहर लवंन्हि।।१२।। (१३+११)

इन इकसणों का गुरु अर्जुन के इकसणों से इसी प्रकार विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। उपर्युक्त सिन्धी फकीर तथा अज्ञात कवि के इकसणों के अतिरिक्त गुरुमुखी इकसणे भी उक्त निबंध में उद्धृत हैं, परन्तु जैसा कि इनके शीर्षक से सुस्पष्ट है, यह इकसणे गुरू अर्जुन के पूर्व के हो सकते हैं, परन्तु गुरु नानक के पश्चात् के हैं, क्योंकि गुरू-मुखि लिपि पहले अस्तित्व अवश्य रखती थी, परन्तु इसका यह नाम गुरू नानक के पश्चात् पड़ा। फिर पंजाबी के मुलतानी रूप को गुरुमुखी (पंजाबी) कहना भी गुरू नानक के बाद की ही बात हो सकती है। इस लिये सिन्धी फकीर तथा अज्ञात कवि के इकसणों की परंपरा में बाबा फरीद, गुरू नानक, गुरु अर्जुन देव आदि ने इकसणे लिखे। गुरु मुखि इकसणे भी इसी परंपरा के अंतर्गत रचे गये होंगे। इनमें छोर के प्रतीकों से भगवद्भक्ति विषयक इकसणे हैं। गुरुमुखी इकसणे एक विशेष काव्य प्रकार की रचना है, जो न दोहा है न सोरठा। श्री प्यारा सिंह पद्म के अनुसार इनकी रुबाई जैसी बनावट है। उदाहरण इस प्रकार है:

भठि कुशालो बेड़िआं वाला, मारू! जितु दम थोवै ना रजी।
अंदरि दिल दे उठति विहुगां, बांगू आतशबाजी।
लख लख मुल्लां ते लख मउलाणे, मर्चां दें दें हाजी।
तित वल सिजदा करसां मारू! जिस इह उम्मत साजी।।२।।[335]

330- आ. ग्र. १०६४
331- पंजाबी दुनिया- ३८ Nov. 1965.
332- आ. ग्र. १४२६
333- पंजाबी दुनिया- नवम्बर, १९६५ पृ० ३८
334- आ. ग्र. पृ० १४२५
335- पंजाबी दुनिया- नवम्बर, १९६५- ४०

हमारा विचार है, कि गुरुमुखी इक्सणों में कोई भी निश्चित छन्द नहीं है। यह प्रेमाभक्ति की काव्य रचना है, इसमें तो प्रत्येक मुक्तक में पंक्तियों का भी निश्चित रूप में नहीं लिया गया। कई मुक्तक तिपदे, चउपदे, पंचपदे और षाठपदे हैं। अधिक में सार छन्द का प्रयोग हुआ है। सार छन्द में १६-१२ पर यति अन्त लघु गुरु (। ऽ) अथवा दो गुरु होते हैं। इन पदों में कहीं कहीं अन्त में दोनों लघु भी हैं। यथा:-[336]

सार छन्द (१) रेते दे बन्नि बंध न कोई, पे फिघे लिस्से बन्हे। (१६-१२-।ऽ)
सार छन्द (२) तित वल रिजदा करसां भारा! किस इह उम्मत साजी। (१६-१२-ऽऽ)
सार छन्द (३) वट्ठे भरि रहिन खुशहाली, कतरा मूल न रोवनि । (१६-१२-।।)

इन अनेक पाद वाले पदों का रूप आदि ग्रंथ के छन्तों जैसा अथवा पौड़ियों जैसा है। जैसे पउड़ियों में (वार माझ म:५) और छन्तों में (छंत म:५-श्री राग) इक्सणे आए हैं, इस प्रकार गुरुमुखी इक्सणे दोहों में न होकर सार छन्द में अधिक हैं। कहीं कहीं छन्तों जैसे अधिक लंबे छन्द हैं, यथा:[337]

जित दिन बिरद सम्भाली अनि अपणा, तां दोसु न कतरा धरसी।

(१६+१४)

इन अनेक रूपी इक्सणों में एक स्थान पर सलोक भी है, जो दोहा है, और आदि ग्रंथ वाले इक्सणों के तोल का है-[338]

दोहा चोट जि लागी प्रेम की, बिसर गई सभ जेब। (१३+ ११)
आपि कहूं आसा कहूं, कहूं तस्बी कहूं सेब । (१३+ १४)

इस दोहे का पहला पाद ठीक है, दूसरे पाद का पहला चरण ठीक है, परन्तु दूसरे में तीन मात्राएं अधिक हैं।

इस प्रकार हम देख चुके हैं, 'इक्सणा' के लिये 'दोहा', -------- 'सोरठा तथा 'सार' छन्द का प्रयोग होता रहा है। कहीं कहीं इन छन्दों में मात्राएं न्यूनाधिक हैं। आदि ग्रंथ के इक्सणे गुरु नानक तथा बाबा फरीद से भी पहले के प्रचलित लोक-काव्य के इक्सणों के आधार पर रचे गए हैं। बाबा फरीद जी तो इक्सणों के प्रदेश में हुए हैं। उनके एक दो इक्सणे भी द्रष्टव्य हैं:-

---

336- पंजाबी दुनिया, नवम्बर, १९६५ पृ० ४०-४१

337- वही- पृ० ५६

सलोक [339]

दोहा: तनु तपै तनूर जिउ, बालणु हड बलंन्हि।
पैरी थकां सिरि जुलां, जे मुं पिरो मिलंन्हि।।११९।।

सोरठा इकु फिका ना गालाइ, सभना मै सचा धणी।
हिआउ न कैही ठाहि, माणक सभ अमोलवे।

यह भाषा तथा छन्द अवश्य ही फरीद जी को तत्कालीन लोक-काव्य तथा लोक-भाषा से प्राप्त हुए होंगे। अत: इसलणे कोई विशेष छन्द न होकर एक लोक प्रचलित काव्य रूप था, जिस में दोहा, सोरठा, सारादि छन्दों का अधिक प्रयोग होता रहा। आदि ग्रंथ में इसी लोक-काव्य की परंपरा में इसलणे लिखे मिलते हैं।

१८- छन्त (छन्द)

पद्य काव्य का नाम छन्द है। इस शीर्षक के अन्तर्गत आदि ग्रंथ में अनेक जातियों के छन्द पाए जाते हैं, परन्तु उन सब का शीर्षक छन्त (छन्द) ही है। इन सब छन्दों (छन्त) में एक बात समान है कि छन्दों की विविधता होते हुए भी। कुंडलिया का प्रभाव इन पर दिखाई देता है। समस्त छन्तों में छन्त की तीसरी पंक्ति का प्रथम चरण, छन्द की द्वितीय पंक्ति के अन्तिम चरण के पद्यांश से आरंभ होता है। छन्त में कुल पंक्तियां छ: हैं। कुंडलिया में भी छ: पंक्तियों में निबद्ध होता है, प्रथम दो, दोहा तथा अगली चार रोला की पंक्तियां होती हैं।

छन्त म:५ चरन कमल सिउ प्रीति रीति संतन मनि आवए जीउ।
दुतीआ भाउ बिपरीति अनीति दासा नह भावए जीउ।
दासा नह भावए, बिन दरसावए इकु खिनु धीरजु किउ करै।
सिरि राग के छंत म: ५ [340]

---

[338]- वही पृ० ४५

[339]- आ. ग्र. पृ० १३८४

[340]- आ. ग्र. पृ० ८०

छन्त म: ४ रामो राम नामु गु रामु गुरमुखे जाणे राम।।
इहु मनूआ जिन उरम पड़वाली परमदा कतु घरि आणे राम।।
मनु इकतु घरि आणे, सभगति मिति जाणै, हरि रामो नामु रसाऐ।।[341]
आ. सा. म: ४

छन्त म: ३ उम घरे साचा सोहिला, साचै स बदि सुहाइआ राम।
धन पिर मेलु भइआ प्रभि आपि मिलाइआ राम।
प्रभि आपि मिलाइआ सचु मंनि वसाइआ कामणि सहजे माती।[342]
आसा :म: ३

छन्त म:१ तित जाम तित जाम पुरे कहु कितु बिधि जाईऐ राम।
सचु संजमो सारि गुणा गुरसबदु कमाईऐ राम।
सच सबदु कमाईऐ, निज घरि जाईऐ पाईऐ गुणी निधाना।[343]
आसा म:१

भाई कान्ह सिंह नाभा ने छन्दों में 'हुल्लास' तथा 'सुगीतिका' सरीखे छन्दों के भेद ढूंढे हैं:-

हुल्लास (उल्लास) अथवा कलश:

अनदो अनद घणा मै सो प्रभु डीठा राम
(चौपाई + त्रिभंगी)[344]
आसा छन्त म: ५

सुगीतिका: प्रति चरण २५ मात्राएं, १५-१० पर यति, अन्त दो (SS)।
हरि अंम्रित भिन्ने लोइणा, मन प्रेम रतना।
मनु राम कसवटी लाइआ, कंचन सोविंना।[345]
आसा छन्त म: ४

३४१- आ. ग्र. पृ० ४४३
३४२- आ. ग्र. पृ० ४३६
३४३- गुरु छन्द दिवाकर - १६०
३४४- आ. ग्र. ४३६
३४५- वही- १६१

१६- तार्टक: इस छन्द का भी आदि ग्रंथ में रूप विद्यमान है। यह मात्रिक सम छन्द का एक भेद है। इसका लोक प्रचलित नाम भानु ने लावनी दिया है। इसके प्रत्येक चरण में १६,१४ की यति से ३० मात्राएं होती हैं और अन्त में मगण (ऽऽऽ) रहता है।[३४६] भाई कान्ह सिंह ने आदि ग्रंथ से इस छन्द का उदाहरण इस प्रकार दिया है।[३४७]

जिउ जिउ जपै सुखु पावै, सतिगुरु सेवि समावैगो।
भगत जनां की खिनु खिनु लोचा, नामु जपत सुख पावैगो।
अन रस साद गए सभ नीकरि, बिनु नावै किछु न सुखावैगो।
गुरमति हरि हरि मीठा लागा। गुरु मीठे बचन कढावैगो।[३४८]

कानड़ा असट पदीआं ५:४

आदि ग्रंथ में इस छन्द की परंपरा कबीर तथा नाम देव तक पुरानी है। नामदेव ने कबीर से भी पहले इस छन्द का प्रयोग किया। इन दोनों सन्त कवियों ने इस छन्द को १६-१४ की यति से अन्त में मगण (ऽऽऽ) के स्थान पर सगण (।।ऽ) रख कर प्रयोग किया है।

नामदेव (राम कली)[३४९]

बेद पुरान सासत्र आनंता, गीत कबित न गावउगो। (१६+१४-।।ऽ)
अखंड मंडल निरंकार महि, अनहद बेनु बजावउगो।।१।। (१६+१४-।।ऽ)

इस छन्द में ऐसे तीन पद और हैं। राम-कली - बाणी नाम देउ जीउ की।

कबीर: (मारू)

उदक समुंद सलल की साखिआ, नदी तरंग समावहिगे। (१६+१४-।।ऽ)
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी ...., पवन रूप होइ जावहिगे।।१।।
(१६+१४-।।ऽ)

इस शबद में इस एक पद के अतिरिक्त तीन और पद हैं। कुल चार पद हैं।

सूदन ने इस छन्द (तार्टक) के नाम से १४,१४ की यति से २८ मात्राएं लेकर अन्त में मगण का प्रयोग किया है जो परंपरा से भिन्न है।

३४६- हिन्दी साहित्य कोश। पृ० ३२२

यह छन्द लावनी के रूप में सूर और तुलसी द्वारा भी पद-शैली में प्रयुक्त हुआ है। लावनी को लोक-प्रचलित छन्द के रूप में भारतेन्दु काल के कवियों द्वारा। ग्रहण किया गया है। लोक-छन्द के रूप में लावनी का विशेष महत्व है। परन्तु लावनी में गुरु लघु का विशेष नियम नहीं रहता। नामदेव या कबीर का यह रूप लावनी वाला है। शुद्ध-ताटंक वाला नहीं।

गुरु नानक ने भी इस छन्द का प्रयोग करते समय अन्त में (ऽऽऽ)- मगण रखने की अवश्यकता नहीं समझी और (।।ऽ)- सगण रखा है।[351]

ऊंरि सबदु निरंतरि मुद्रा हउमै ममता दूर करी। (१६+१४-।।ऽ)
काम क्रोध अहंकार निवारै गुर के सबदि सु समझ परी।
खिंथा झोली भरि पुरि रहिआ, नानक तारै एकु हरी।
साचा साहिब साची नाई, परखै गुर की बात खरी।। १०।।

सिध गोसटि: म: १[352]

आधुनिक कवियों ने इसको शास्त्रीय रूप में भी अपनाया है।
देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहु मूल्य भेंट, वे कई रंग की लाते हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान।[353]

२०- तोमर - इसे चार चरण वाला वृत्त छन्द माना गया है जिसके प्रति चरण में सगण जगण जगण (।।ऽ , ।ऽ।, ।ऽ।) होते हैं।[354] प्राकृत पैंगलम (२:८६) में तोमर वृत्त ही माना गया है। दामोदर मिश्र (वाणी भूषण- २:६०) और देव (शब्दरसायन: प्रकाश १०) ने भी इसे वृत्त माना है।[355] हिन्दी में इसका मात्रिक रूप प्रचलित है। आदि ग्रंथ में भी इसका मात्रिक रूप ही मिलता है। भिखारी दास के छन्दोर्णव में इसका उल्लेख है। भानु के अनुसार यह १२ मात्राओं का छन्द है, जिसके अन्त में ग-ल (ऽ।) होता है (छन्द प्रभाकर- पृ०४४)। हिन्दी कवियों, तुलसी (राम चरित मानस) केशव (राम चन्द्रिका), सूदन(सुजान चरित)

३४७-गुरु छन्द दिवाकर- १६६
३४८- आ ग. पृ० १३०८
३४९- आ ग. ६७२
३५०- आ ग. ११०३

भी घर (अंग नामा) और रघुराज (रामस्वयंवर) ने इसका प्रयोग किया है। प्राय: वीर-रस के वर्णन के लिये इसका प्रयोग हुआ है।[356] आदि ग्रंथ में भक्ति के शांत रस के लिये इसका प्रयोग हुआ है:

मनि प्रीति दरसन पिआस।
गोबिंद पूरन आस ।
प्रभ तुझ बिना नही होर।
मन प्रीति चंद चकोर।। बिलावल म: ५ असटपदी घर १२[357]

२१- हाकलि : भाई कान्ह सिंह ने इसका नाम 'सुधाकर' भी दिया है।[358] यह मात्रिक सम छन्द का भेद है। प्राकृत पैंगलम (१: १७३) के अनुसार इसमें १४ मात्राएं प्रति चरण होती हैं।[359] भाई कान्ह सिंह ने १४ मात्राओं की ६-५ पर यति तथा अन्त में दो गुरु का विधान बताया है।[360] भानु ने तीन चौकल के बाद एक गुरु के प्रयोग कोप्रधान लक्षण स्वीकार किया है। (छन्द प्रभाकर-पृ० ४६) भिखारी दास ने इसका नाम 'हाकलिका' दिया है। (छन्दोर्णव-पृ०२२) केशव (वीर सिंह देव चरित) ने इसी नाम से प्रयोग किया है। पद्माकर ने इस छन्द का व्यापक प्रयोग 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' में किया है। इन्होंने ने अनेक स्थलों पर स्वतंत्रता बरती है। युद्ध-यात्रा-वर्णन तथा प्रशंसा आदि में इसका प्रयोग किया गया है।[361]

३५१- गुरू छन्द दिवाकर- १६६
३५२- आ. ग्र. ६३६
३५३- हिन्दी साहित्य कोश- २२०
३५४- गुर छन्द दिवाकर २०३
३५५- हिन्दी साहित्य कोश- ३३०
३५६- हिन्दी साहित्य कोश- ३३०
३५७- आ. ग्र. ८३८
३५८- गुरु छन्द दिवाकर- १२६
३५९- हिन्दी साहित्य कोश- ८८३
३६०- गुरु छन्द दिवाकर- १२६
३६१- हिन्दी साहित्य कोश- ८८३

आदि ग्रंथ में इसका प्रयोग सबसे पहले प्रथम नामदेव की रचना में मिलता है। गुरु नानक ने भी इस का प्रयोग किया है। इन दोनों सन्तों ने १४ मात्रा, ६-५ पर यति और अन्त दो गुरु (ऽऽ) का विधान स्वीकार किया है।

सोरठ नामदेव[362]

अणमड़िआ मंदलु बाजै।
बिन सावण घनहर गाजै।
बादल बिनु बरखा होई।
जउ ततु बिचारै कोई।

सलोक सहसक्रिति म:१

गलि माला तिलक लिलाटं।
दुइ धोती बसत्र कपाटं ।

२२- सरसी: मात्रिक सम छन्दों में एक भेद है। भिखारी दास ने इसे २७ मात्राओं के चरण वाला छन्द बता कर इस का नाम हरिपद कहा है। अन्त में ग-ल (ऽ।) भी है। भानु द्वारा इसका यही लक्षण दिया गया है (छन्द प्रभाकर- पृ६६)[364] इस छन्द का नाम बाबा सुमेर सिंह जी ने गुरुपद प्रेम प्रकाश में सुथरा लिखा है।[365] भाई कान्ह सिंह ने भिखारी दास तथा भानु वाला ही लक्षण दिया है।[366] और १६-११ पर यति और अन्त (ऽ।) बताया है।

आदि ग्रंथ में गुरु नानक की रचना में इस का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है जिससे यह पता चलता है, कि यह सर्व प्रिय छन्द है।

मारुती[367]

एका माई जुगति विआई, तिनि चेले परवाणु। (१६+११- ऽ।)
इकु संसारी इकु भंडारी, इकु लाए दीबाणु ।

वार आसा म:१[368]

मुसलमाना सिफति सरीअति, पड़ि पड़ि करहि बीचारु। (१६+११- ऽ।)
बंदे से जि पवहि विचि बंदी, वेखण कउ दीदारु ।

३६२- आ. ग्र. पृ० ६५७
३६३- आ. ग्र. पृ० १३५३

मलार म:१ [369]

पर दारा परधनु परलोभा, हउमै बिखै बिकार। (१६+११- ऽ।)
दुसट भाउ तजि निंद पराई, काम क्रोध चंडार।

हिन्दी साहित्य कोश में भी लिखा है, [370] कि हिन्दी की पद-शैली का यह सर्व प्रचलित छन्द माना जा सकता है। इस का प्रयोग सूर, तुलसी मीरां तथा नंद दास ने किया है।

२३ हंस गति: मात्रिक छन्द, जिसके प्रति चरण २० मात्राएं, ११-६ पर यति, अन्त ल-ग (।ऽ)। कई छन्द ग्रंथों में अन्त रगण (ऽ।ऽ) रखने का विधान है। [371]

आदि ग्रंथ में इस छन्द का प्रयोग गुरु ग्रंथ के सर्व प्रथम सन्त कवि बाबा फरीद जी की रचना में मिलता है। गुरु नानक की रचना में भी इस का उदाहरण मिलता है।

बाबा सेख फरीद जीउ की [372]

तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी। (११+६) - (ऽ।ऽ)
सेख फरीदै खैरु, दीजै बंदगी।

वार माझ म:१- पउड़ी [373]

केते कहहि वखाण, कहि कहि जावणा। वेद कहहि वखिआणा, अंतु न पावणा। (११+६ - ऽ।ऽ)

३६४- हिन्दी साहित्य कोश- ८१८
३६५- गुरु छन्द दिवाकार- ८४
३६६- वही- ८५
३६७- आ. ग्र. ७
३६८- आ. ग्र. ४६५
३६९- आ. ग्र. १२५५
३७०- हिन्दी साहित्य कोश- ८१८
३७१- गुरु छन्द दिवाकर- १३२
३७२- आ. ग्र. ४८८
३७३- आ. ग्र. पृ० १४८

२४- सुलखा छन्द - चार चरण प्रति चरण २२ मात्राएं, १२-१० पर यति। अन्त में एक ग (ऽ)।[३७४] गुरु नानक की रचना में इसका उदाहरण मिलता है।

उतंगी पैओहरी, गाहिरी गंभीरी। (१२-१०- ऽ)

ससुड़ि सुहीआ किव करी, निवणु न जाइ थणी।

गचु कि लगा गिड़वड़ी, सखीए धउलहरी।। (१२-१०- ऽ)

सलोक वारां ते वधीक म:१[३७५]

२५- सुकाव्य: चार चरण, प्रति चरण २४ मात्राएं, १३-११ पर यति, अन्त ग-ल (ऽ।)। गुरु नानक की बाणी में इसका उदाहरण मिलता है।

आवत वंकउ ढुमणी, किती मित्र करेउ। (१३-११-ऽ।)

साधन ढोइ न लहै, वाढी किउ धीरेउ।

२६- निशानी - चार चरण, प्रति चरण २३ मात्राएं, १३-१० पर यति, अन्त दो गुरु (ऽऽ)। भाई कान्ह सिंह ने इस का दूसरा नाम उपमान भी दिया है।[३७८] गुरु अर्जुन देव की रचना में इस का प्रयोग मिलता है।

(१) आसा म:५[३७९]

नाम धिआवहु सद सदा, हरि हरि मनु रंगे। (१३-१०- ऽऽ)

जीउ ::: प्राण धनु गुरु है, नानक कै संगे।।४।।२।।

सूही म: ५[३८०]

भली सुहावी छापरी, जा महि गुन गाए। (१३-१०- ऽऽ)

कितही कामि न धउलहर, जितु हरि बिसराए।।१।।

३७४- गुरु छन्द दिवाकर-११५

३७५- आ. ग्र. पृ० १४१० से गुरमति साहित्यांक पृ० ८० पर उद्धृत

३७६- गुरु छन्द दिवाकर- ११४

३७७- आ. ग्र. १०१४

३७८- गुरु छन्द दिवाकर-२२६

३७९- आ. ग्र. ३६७

३८०- आ. ग्र. ७४५

२७- **पउड़ी** : पउड़ी यति का नाम है। इस छन्द में वीर-काव्य का वर्णन होता है। गुरु हरि गोविंद साहब ने पुरानी ध्वनियों के अनुसार गुरुबाणी की पौड़ियां गान का संकेत ढाढियों अथवा चारणों को दिया था। गुरु ग्रंथ की ६ वारों के आरंभ में प्राचीन लोक प्रचलित वारों की लय के अनुसार उन्हें गाने का संकेत है।

वैसे पउड़ी, कोई छन्द नहीं है, इस शीर्षक के अंतर्गत गुरु ग्रंथ में -- दोहा, चौपाई, हंस गति, आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

दोहा: रैमन बिन हरि जहि रहउ, तहि तहि बंधन न पाहि।[३८१]
जिह बिधि कतहु न छूटीऐ, साकत तेउ कमाहि ।।

चौपाई: ममा भरमु मिटावहु अपना। इहु संसारु सगल है सुपना।।[३८२]

पौड़ियों में २० (११+९), २१ (११+१०),२२(१३+९), २३(१३+१०) २४(१३+११), २५ (१३+१२), २७(१३+१४), २८(१३-१५), २९(१३-१६) ३०(१४+१६),३१(१५+१६) मात्राओं वाले चरणों के छन्द मिलते हैं। बिलावलराग में एक पउड़ी विषम दंडक है। जिसमें प्रथम चरण में ४६ मात्राएं अन्त दो गुरु हैं।

जितने पातसाहि साह राजे खान उमराव, सिकदार हहि, तितने सभि हरि के कीए।[३८३]

उपर्युक्त पौड़ियों के भिन्न भिन्न चरणों के अन्त में गुरु-लघु का विधान भी भिन्न है।[३८४]

२८- **पुनहा**: छन्द ग्रंथों में यह कोई छन्द नहीं, आदि ग्रंथ में फुनहे नाम की गुरु अर्जुन की रचना है। जिसका वर्णन लोक-काव्य-प्रकाराधीन, आदि ग्रंथ के काव्य प्रकारों में हो चुका है। इस फुनहे नाम की रचना में जो छन्द है, उसे भाई कान्ह सिंह ने पुनहा (हरिहां, चांद्रायण, परिहा, फुनहा) कहा है। इसका लक्षण इस प्रकार है। चार चरण प्रति चरण २१ मात्राएं, पहली यति ११ पर जगणांत (।ऽ।) दूसरी यति १० पर रगणांत (ऽ।ऽ)[३८५]

३८१- आ. ग्र. गउड़ी बावन अखरी- म: ५-पृ.२५२

३८२- आ. ग्र. २५८

३८३- बिलावल की वार, आ. ग्र. पृ० ८५१ पर गुरु छन्दिवाकर पृ० २५० पर उद्धृत

फुनहे म:५ चाह्उ दसा अनेक, प्रेम प्रभु कारणे।

पंच सतायहि दूत, कवन बिधि मारणे।

प्रिंसीपल तेजों ने इसे अरिल्ल का ही रूप माना है।

(देखिए पंजाबी काव शिरोमणी पृ०१७)

२९- पंचानन: चार चरण प्रति चरण ४८ मात्राएं, १२,१२,१२,१२ पर यतियां, अन्त गुरु लघु (।)[३८६] आदि ग्रंथ में इस छन्द का प्रयोग भाट-कवियों के सवैयों में मिलता है:-

वाहि गुरु, वाहिगुरु, वाहिगुरु, वाहि जीउ ।

कवल नैन, मधु बैन, कोटि सैन, संग सोभ ।

कहत मा जसोद जिसे दही भातु खाहि जीउ।

देखि रूपु अति अनूपु मोह महा मग भई।

किकनी सबद झनतकार खेल,पाहि जीउ।

काल कलम हुकमु हाथि कहहु कउनु मेट सकै,

ईसु बंम्ह गयान ध्यान धरत हीऐ चाहि जीउ।

सति साचु श्री निवासु आदि पुरखु सदा तुही।

वाहि गुरु, वाहि गुरु, वाहिगुरु वाहि जीउ।[३८७]

३०- प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी- वर्णिक छन्दों में सम वृत्त का एक भेद है। भरत ने इसे मतचेष्टित (नाट्य शास्त्र- १६-१५), विरांक ने नाराचक, दामोदर मिश्र, जयदेव तथा देव ने प्रमाणिका नाम दिया है। तुलसी ने अरण्यक काण्ड में इसका संस्कृत में प्रयोग किया है।[३८८] भाई कान्ह सिंह ने प्रमाणिका का लक्षण इस प्रकार दिया है- चार चरण, प्रति चरण लघु गुरु क्रम से आठ अक्षर, अथवा ज,र,ल,ग (।ऽ। , ऽ।ऽ , ।ऽ)[३८९]

३८४- देखिए: गुरु छन्दविवाकर- पृ० २२७से २४० तक।

३८५- गुरु छन्द दिवाकर- २५५

३८६- वही-२५६

३८७- आ. ग्र. सवैइए म:४ के - १४०२

३८८- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४८३

३८९- गुरु छन्द दिवाकर-पृ० २६०

आदि ग्रंथ में गुरु नानक की रचना में इसका प्रयोग मिलता है:-

न देव दानवा नरा न सिद्ध साधिका धरा।
कला धरै फिरै तुही।।)
एकु तुई एकु तुई ।।) वार माझ म: १ [३६०]

हिन्दी साहित्य कोश में भाई कान्ह सिंह वाली परिभाषा को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रति चरण लघु गुरु क्रम से आठ वर्ण होते हैं। (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ) केशव ने राम चन्द्रिका में इसे बरता है।

भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइहै। न देवलोक पाइहै। (राम चन्द्रिका-१:१६)[३६१]

३१- राधिका: चार चरण प्रति चरण २२ मात्राएं, १३-६ पर यति।[३६२]

आदि ग्रंथ में गुरु नानक तथा गुरु अर्जुन की रचनाओं में इस का प्रयोग मिलता है।

म:१ इकि भसम चढ़ावहि अंगि, मैल न धोवही।
इकि जटा बिकट बिकराल, कुलु घरु खोवही।
मलार की वार म:१[३६३]

म:५ माटी ते जिनि साजिआ करि दुरलभ देह।
अनिक छिद्र मन महि ढके, निरमल द्रिसटेह।।
बिलावल म: ५[३६४]

३२- रूपमाला: मात्रिकसम छन्द का भेद है। भानु के अनुसार प्रत्येक चरण में २४ मात्राएं, तथा अन्त में गुरु लघु रहता है।[३६५] भाई कान्ह सिंह ने २४ मात्राओं की १४-१० पर यति भी बताई है।[३६६] इसका नाम मदन भी दिया

३६०- आ. ग्र. १४३-४४
३६१- हिन्दी साहित्य कोश- ४०३
३६२- गुरु छन्द दिवाकर- ३०१
३६३- आ. ग्र. १२८५
३६४- आ. ग्र. ८१२
३६५- हिन्दी साहित्य कोश-६७१

गया है। गुरु ग्रंथ में गुरु नानक की वाणी में इसका प्रयोग मिल जाता है:

कूड़ु राजा कूड़ु परजा, कूड़ु सभु संसार।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी, कूड़ु बैसण हार।

वार आसा : ५:१ [३९७]

इस छन्द का उपयोग पद-शैली में प्राय: मिलता है। सूर, तुलसी तथा मीरां ने इसका प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त केशव(रामचन्द्रिका) तथा रघुराज (रामस्वयंवर) में यह छन्द मिलता है।[३९८]

३३- रेख़ता: रेख़ता शब्द फारसी मूल 'रेख़तन' से बना है, जो फारसी में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। बनाने, ईजाद करने, किसी चीज़ को क़ालिब में ढालने, नयी वस्तु बनाने, उपयुक्त बनाने अथवा मौजुं करने आदि के अर्थों में यह शब्द आता है। शेरानी के अनुसार जहां ख़ुसरो ने ईरानी और भारतीय छन्द-शास्त्र के समन्वय से अनेक नयी चीजें तैयार कीं, वहां उन्होंने 'रेख़ता' का भी अविष्कार किया। जिसमें फारसी ख्याल हिन्दी के मुताबिक हों और जिसमें दोनों ज़बानों के सरूद एक राग और एक ताल में बंधे हों, उसको रेख़ता कहते हैं। इस प्रकार रेख़ता छन्द या गीत की एक नयी शैली था, जिसमें फारसी और हिन्दी मिसरे ताल और राग के ऐतबार से छन्द होते थे, यथा: ज़हाल मस्कीं मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियां' (ख़ुसरो)[३९९]। भाई कान्ह सिंह ने भी रेख़ता की ऐसी ही परिभाषा दी है: 'यह कोई छन्द की जाति नहीं। प्राकृत भाषा(हिन्दी उर्दू का मिश्रण) की कविता का नाम फारसी में रेख़ता है। विशेष कर फारसी हिन्दी पद जिस छन्द में मिश्रित हों, उसे रेख़ता की संज्ञा दी जाती है।[४००] श्री प्यारा सिंह पद्म ने गुरु अर्जुन देव की वाणी से रेख़ता की निम्नांकित उदाहरण दी है:-

---

३९६- गुरु छन्द दिवाकर- ३०५

३९७- आ. ग्र. ४६८

३९८- हिन्दी साहित्य कोश- ८७१

३९९- हिन्दी साहित्य कोश- ६७१

४००- गुरु छन्द दिवाकर- ३०५

हाक नूर करदं, आलम दुनीआइ।
आसमान जिमी दरख्त पैदाइसि खुदाइ।१।।
बंदे। चश्म दीदं फनाइ।
दुनिया मुरदरि खुरदनी गाफल हवाइ।। ४०१

नामदेव, कबीर तथा गुरु नानक की रचनाओं में भी रेख्ते मिलते हैं:-

नामदेव
करीमां रहीमां अलाह तूं गनीं।
हाजरा हजूरि दरि पेसि तू मनीं।
दरीआउ तू दिहंद तू बिसीआर तू धनी।
देहि लेहि एकु तूं दिगर को नहीं। ४०२

कबीर:
बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ।
टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूरि खुदाइ।
बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि।
इह जु दुनीआ सिहरु मेला दसतगीरी नाहि। ४०३

गुरु नानक: यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बे ऐब परवरदगार ।। ४०४

ये सब रचनाएं आदि ग्रंथ में तिलंग राग में निबद्ध हैं। अत: रेख्ता के लिये जिस शब्द, राग तथा ताल का निर्देश है वह तिलंग राग है। इसमें गुरु नानक की वाणी घरु १, घरु २, तथा घरु तीसरा में निबद्ध है। इसी प्रकार गुरु अर्जुन का उक्त पद घरु पहला में है। नामदेव तथा कबीर की रचनाओं के लिये घरु का निर्देश नहीं।

अकबर कालीन फारसी कवि सादी (१५६६ ई०) भी रेख्ता से गीत का अर्थ ही लेते हैं; सादी कि गुफ्त: रेख्त: दर रेख्त: दररेख्त:। शीरां शकर आमे ख्त: हम रेख्त: हम गीत है। यही दक्षिण में इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता कहे जा सकते हैं। ४०५ रेख्ता हिन्दी छन्दों में भी पहुंच गया। नामदेवादि

४०१- आ. ग्र. पृ० ७२३ से गुरू अर्जुन देव की वाणी(भाषा विभाग) पृ०२६ पर उद्धृत।

४०२- आ.ग्र.पृ.७२७

निर्गुण सन्तों ने जो रेखते लिखे हैं, उनमें खड़ी बोली तथा अरबी फारसी के प्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। धीरे धीरे छन्द के क्षेत्र से निकल यह शब्द ऐसी पद्य शैली के लिये प्रयुक्त होने लगा, जिस में दो भाषाओं का मिश्रण हो। आगे चलकर वली दकनी, हातिम (१७४६ ई०) मीर, सौदा, गालिब तक ने इस शब्द का प्रयोग किया है। वली दकनी: वली इस हुस्न की तारीफ में जब रेखता बोले। यहां से खड़ी बोली को फारसी गर्भित करके उर्दू ज़बान का आगाज़ होता है। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद उर्दू के विषय में कहते हैं, इस ज़बान को रेखता कहते हैं, क्योंकि मुख्तलिफ जबानों ने इसे रेखता किया, जैसे दीवार को ईंट मिट्टी, चूना, सफेदी वगैरह पुख्त: करते हैं।[४०६] गालिब ने गज़ल के लिये रेखता शब्द का प्रयोग किया है। गज़लों के सम्राट कवि मीर के संबंध में उन्होंने ने लिखा था रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब, कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था। रेखता शब्द गज़ल के लिये ही प्रयुक्त होने लगा। इसका प्रमाण ज़ौक की इस उक्ति से मिलता है: न हुआ पर न हुआ मीर का अंदाज़ नसीब, ज़ौक़ यारों ने बहुत ज़ोर गज़ल में मारा।[४०७]

आदि ग्रंथ में छन्दों को ढूंढने के लिये राग, लय, ताल का ज्ञान अनिवार्य है। इस महान ग्रंथ में लोक-काव्य के प्रकारों के अतिरिक्त छन्दों के अनेक भेदों का प्रयोग हुआ, जिनका कुछ प्रमाण उपर्युक्त विवरण में प्रस्तुत किया गया है। अनेक स्थानों पर आदि ग्रंथ में जन, दास, कहु, कहै नानक, कबीर, फरीदा आदि पद, छन्द के वज़न से बाहर हुआ करते हैं, जैसे अरिल्ल तथा पुनह: आदिक छन्दों में संबोधक पद गिनती से बाहर होता है।[४०८]

४०३-आ. ग्र ७२७

४०४-आ. ग्र. ७२१

४०५-हिन्दी साहित्य कोश- ६७१

४०६- हिन्दी साहित्य कोश-६७२

४०७- वही पृ० २५२

४०८- गुरु छन्द दिवाकर- २४

लोक-काव्य से संबंध होने के कारण छन्द के बन्धन गुरुवाणी पर उतने अधिक कठोर नहीं हैं, जितने छन्द-बद्ध-कविता पर होते हैं। छन्द के बन्धनों से स्वच्छन्दता एवं स्वतंत्रता का परिणाम गुरुवाणी के संगीतक गुणों के लिये अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। अत: इसकी रसमयता बढ़ गई है। परन्तु इन रसमयी स्वच्छन्दताओं के कारण हमें गुरुवाणी के छन्द प्रबंध को भूल नहीं जाना चाहिए।[४०९] गुरुवाणी उसी प्रामाणिक छन्द(प्रबंध) के अनुसार रची हुई है, जिसके अनुसार कोई पुरातन भारतीय रचना अथवा प्राचीन कविता।[४१०] अत: इस में लगभग उन समस्त छन्दों भेदों को ढूंढा जा सकता है, जो गुरु ग्रंथ के रचयिताओं के समय में प्रचलित थे। यदि कुछ अनियमितताएं हैं, तो आदि ग्रंथ में राग तत्व तथा लोक-काव्य की ध्वनियों एवं शैलियों के अनुसरण के कारण हैं, जिसका विवेचन उपर्युक्त वक्तव्य में किया जा चुका है। छन्द प्रबंध की भक्ति-काव्य में अनियमितताएं, सिद्धों से चली आई हैं।[४११]

४०९- पंजाबी काव शिरोमणी- सेखों- ६६

४१०- वही- ६५

४११- सिद्ध साहित्य- पृ० २६४।

६- श्री गुरु ग्रंथ साहिब का राग पक्ष:

सभना रागां विचि सो भला भाई, जितु वसिआ मनि आइ ।
रागु नादु सभु सचु है, कीमति कही न जाइ। श्लोक म:४, आ०ग्रं०पृ०१४२३

आदि ग्रंथ में राग तत्त्व

आदि ग्रंथ का संपादन रागों के आधार पर किया गया है। इस विषय पर टिप्पणी करते हुए डा० शेर सिंह लिखते हैं, सिक्खी मार्ग नाम-मार्ग है। इस मार्ग की कुंजी विस्माद है। विस्मादी अवस्था पैदा करने के लिये राग अथवा कीर्तन जरूरी है। नाम की कुंजी विस्माद है और विस्माद उत्पत्ति का कार्य राग-कीर्तन तथा कविता से संपन्न होता है। गुरु ग्रंथ को रचने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन आनंद प्राप्ति तथा चित्त को शांत एवं शुद्ध मन अवस्था में ले जाना था। गुरु वाणी की कविता का राग, सुर तथा लय से प्रेम सहित पाठ करने से भक्त ईश्वर के नाम रूप में लीन हो जाता है।[१]

भक्ति मार्ग में ईश्वर स्तुति तथा भगवद्भजन में राग तत्त्व की महानता को वैदिक काल से माना गया है। वैदिक युग में इस जाति ने वेदों में जो कुछ भी कहा, भावमय संगीत में कहा (निराला: गीतिका, १९३४, भूमिका पृ० १)[२] वैदिक ऋषि स्वयं इस विचार को प्रकट करते हुए लिखते हैं- देवताओं का आश्रय न तो ऋक् था, न यजुः। देवताओं का आश्रय केवल साम अर्थात् संगीत था (देवा वै नर्चि न यजुष्य श्रयन्ते ते सामन्नेवाश्रयन्त। तैत्तिरीय संहिता, सातवलेकर संस्करण सं० २०२१)[3] भक्ति मार्ग में संगीत के साथ भगवद्भजन करने से मन शीघ्र ही ईश्वर के नाम रूप में लीन हो जाता है। इसके दो कारण हैं। संगीत के बिना नामोच्चारण मात्र करते समय मुंह सिर्फ नाम का रटन करता रहता है, मन तो दसों दिशाओं में फिरता रहता है। पर संगीत के साथ नाम जप या गुण गान करते समय संगीत की मनोहर शक्ति एक दृढ़ रज्जु बनकर भगवान् के नाम रूप को मन से साथ बांध देती है।

---

1) (a). Music consequently plays a great part in this system. It is the poetry and the music of the contents of the Granth revealing simple and direct truths which charm a reader of GURBANI-Philosophy of Sikhism P-51 & Gurmat Darshan page 59, by Dr. Sher Singh.

(b). Mental solace and spirtual peace was the end in view of the Guru, while composing Granthic Hymns. This he conceived to be most easily realisable through Music. So music forms the basic classification of the Granth. (Order of Poetry-Philosophy of Sikhism Page 52, also quoted in 'A Critical Study of Adi Granth, by Dr. S.S.Kohli at page-10.

2. Geet Govind, Vinay Mohan Sharma, Prastavana-page iii.

3. Ibid-page iv. Also see page 156 of " Kavya Roopon Ke Mool Srot Aur Unka Vikas by Dr. Shakuntala Dube- Samved men Askar Kavya Aur Sangeet ka Sunder samanvay ho gaya.".

दूसरा कारण यह है कि ईश्वर संगीत से जितना प्रसन्न होता है उतना दूसरे उपचारों से नहीं। संगीत समस्त जीवसमूह को आनंद का वरदान देकर अपनी ओर खींच लेता है।[4] श्री रूप गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथ भक्ति-रसामृत-सिन्धु (२:६२) में राग के द्वारा भगवान से संबंध सर्वथा स्थापित करने वाली भक्ति को रागनुराग-संबंध-रूपा भक्ति कहा है। और गौणी भक्ति के उपभेद के अंतर्गत ही इस भक्ति प्रकार को रखा है।[5] भूतकाल में संगीत-विलासी योगियों एवं सन्तों ने संगीत को ही आत्मा एवं परमात्माका ज्ञान तथा भान करने कराने एवं भक्ति और मोक्ष का परमोपयोगी साधन मान कर ही संगीत का सदुपयोग किया था और योग सिद्धियों को अल्पायास द्वारा प्राप्त करने का अद्वितीय साधन माना था।[6] कहा जाता है कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों में संगीत की विशेष महानता थी, क्योंकि कोई भी धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाज संगीत के बिना संपन्न नहीं होता था।[7] ऐसा कहा जाता है कि हिन्दुओं के विचार से रागोत्पत्ति का कारण स्वयं ब्रह्म है। अत: राग, यथार्थ में ब्रह्म ही है।[8] प्राचीन भारतीय संगीत के आज कुछ अंश मात्र अवशिष्ट हैं जिनका कि प्रादुर्भाव सृष्टि के आदि काल से पाया जाता है। सृष्टि का आदि रचयिता या आदि पुरुष (अकाल पुरुष) नाद-ब्रह्म ही है। जिसके विषय में गायत्री उपनिषद् में उल्लेख मिलते हैं, नाद से व्याहृति, व्याहृति से गायत्री, गायत्री से वेद, वेदों से जगत् की सृष्टि हुई। वही नाद-ब्रह्म उदात्त अनुदात्त स्वरित भेदों से त्रिविध बना, जिसमें से २२ श्रुतियां एवं ७ शुद्ध स्वर उत्पन्न हुए जो सामवेद के प्राणभूत एवं वेदों के सृजन कर्ता माने गये हैं, और ये पुरुष रूप है। प्रकृति देवी की रचना ताल अधीन है।[9]

४- संगीत शास्त्र के वासुदेव शास्त्री- पृ० २

५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६३६

६- भारतीय संगीत आचार्य उत्तम राम शुक्ल- पृ० २१४

७- History of Indian Music-Page 18

८- भारत संगीत शास्त्र भाग ३ - पृ० ३४

९- वही पृ० २१

इसी कारण संतों ने भावोत्पादक गीति काव्यात्मक वाणी द्वारा परमपद की प्राप्ति की।[१०] गीतिकाव्य की परंपरा जैसे कि पहले संकेत किया गया है बहुत पुरानी है।[१०(क)] भक्ति मार्ग में राग तत्व की महानता के बारे एक मुसलमान अरबी फकीर ने कहा है कि राग परमात्मा की ओर से आत्मा को आह्वान है। आत्मा का उत्तर उसके लिये क्या है? रस- विभोर हो जाना एवं आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना।[११]

श्री गुरु ग्रंथ साहब की रचना एवं संकलन पर टिप्पणी करते हुए गुरमति संगीत के संपादक ने कहा है, गुरु ग्रंथ जी प्रथम परमात्म-मंडलों में ज्ञानरूप धारण कर निर्मल गुरु हृदय में प्रकाशित हुए और वहां से महान उच्च-काव्य एवं अलौकिक संगीतमय वाणी का रूप धारण कर प्रकट हुए और उसी संगीतक क्रम में गुरु जी ने दैवी ज्ञान को शब्द-ब्रह्म के सगुण स्वरूप से साकार करके मूर्तिमान किया।[१२] जिस प्रकार इस शरीर में ही आत्मा की खोज का आदेश वेदांत का सर्वोच्च संदेश है, और वह आत्मा ही परमात्मा-रूप है, इसी प्रकार इस शरीर में शब्द-ब्रह्म की पूर्ण सृष्टि है। मनुष्य शरीर में समस्त रसों से ऊंचा रस, संगीत-रस है, और समस्त स्थूल रसों से वैराग्य उत्पन्न कर संसारक रसों से ऊंचा उठकर विस्माद की अवस्था में ले जाने वाला भी संगीत है।[१३] गुरमति संगीत के संपादक के इस विचार की पुष्टि संगीत ग्रंथों से होती है। आचार्य उत्तम राम शुक्ल लिखते हैं: वेदों में प्रकाशवान अनाहत-नाद द्वारा जिसे सत-चित-आनंद, स्वयं ज्योति, अजन्मा, निर्विकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् कहते हैं, वही नाद-ब्रह्म स्वेच्छया विविध एवं अनन्त सृष्टि का रचयिता पालक एवं संहारक, स्वयं जगत रूप में प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, उससे फिर वायु, वायु

---

10). The emotional or lyrical prayers take the mind out of itself, and lift it to Divinity." PATHWAY TO GOD IN HINDI LITERATURE- R.D. Ranade page-119.

१०(क) वैदिक काल के अनन्तर वाल्मीकि रामायण जैसा ग्रंथ भी जो गाये जाने के लिये लिखा गया था। लव-कुश ने भी गा कर राम को सुनाया था (पृ० १४५) लौकिक संस्कृत में कालिदास का मेघदूत गीतात्मकता के लिये प्रसिद्ध है, चाहे यह गीतात्मकता शास्त्रीय विधान पर आधारित नहीं। (पृ० १४६) - काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास। डा० शकुन्तला दुबे।

11). Music is a call from God to the souls, and ecstacy is the answer of the souls to the call, while swooning means the merging of souls in God." (Simon Mohib) Translation from Arabic quoted in Gurmit Sangeet-Part I-page 54, published by Chief Khalsa Dewan Amritsar).

12. Gurmat Sangeet-Bhumika-page(म). 13)- राग नादु सबदु सचु है कीमति कही न जाइ। आ० ग्रं० पृ० ९५८.

से अग्नि और अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी- इस प्रकार पंच भूतों का प्राकट्य हुआ- जो कि सर्व-समष्टि-रूप-विराट-ब्रह्म के रूप में परिणित हुआ।[१४] इसी कारण गुरुवाणी में हरि-कीर्तन को बहुत महत्त्व है।[१५] अनेक प्रमाण एवं उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्रभु को प्रसन्न करने के हेतु गायन, वाद्य और नृत्य की आज्ञा विविध धर्मग्रन्थों में दी गई है जिसे प्रभु प्राप्ति का परम साधन बताया है। भगवान् विष्णु ने नारद को कहा था कि मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। इस गायन प्रथा को जैन बौद्ध आदि अनेक धर्मावलम्बी व्यक्तियों ने अपनाया है।[१६-ख]

रागों पर आधारित ग्रंथ संपादन की परंपरा

रागों के आधार पर हमें संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य की जयदेव की रचना गीत-गोविन्द उपलब्ध है। यह रचना एक ही कवि की है। इसमें कुल १२ सर्ग हैं, जो २४ प्रबन्धों में विभक्त किए हुए हैं। इन प्रबन्धों में कुल १२ रागों एवं ५ तालों का प्रयोग हुआ है। यह राग मालव-गौड, वसन्त, गुर्जरी, रामकली, कर्णाट, देशाख, देशी वराड़ी, गुणकरी, मालव, भैरवी, वराड़ी तथा विभास हैं। पांच ताल हैं: रूपक, तार, यति, एक ताली, अष्ट ताली। परन्तु ग्रंथों का राग-रागनियों के आधार पर वर्गीकरण करने की परंपरा इससे भी पूर्व मिलती है। "गीत और गीतिकाव्य का विकास लोक गीतों से हुआ। जयदेव कृत गीत-गोविंद के गीतों को इसका आदि स्रोत मानने का भ्रम होता रहा है। बौद्धों ने लोक भाषा को अधिक मान्यता दी थी, यद्यपि संस्कृत में लिखे गये बौद्ध-साहित्य का अभाव नहीं है। सिद्धों ने लोक-भाषाओं को आधार बनाया, उनके 'चर्या-गीत' लोक गीतों के उपदेशात्मक अभियान हैं। चर्यागीत शास्त्रीय राग-रागनियों के अंतर्गत वर्गीकृत हैं, किन्तु राग रागिनियों के नाम सूचित करते हैं कि इनके वर्गीकरण में स्वतंत्रता थी और देश विशेष में भिन्न भिन्न राग प्रचलित थे। देशविशेष में प्रचलित लोक-गीतों की व्यापक पद्धति का नामकरण उस

१४- भारतीय संगीत- पृ० २५

१५- कीरतन निरमोलक हीरा। आनंद गुणी गहीरा। आ. ग्र. पृ० ८९३ म० ५

१६- भारतीय संगीत- पृ० २६, तथा काव्य रूपों के मूल स्रोत- पृ० १६०
-क (उद्धरण अगले पृष्ठ पर)।

देश के नाम पर हुआ। राग गुर्जर, सोरठ, गौड़ आदि इसी वर्ग के हैं।[१६(ख)] गुरमति संगीत में मारू राग को देशी राग कहा है और बताया है कि संगीत ग्रंथों में इसका अधिक विवरण प्राप्त नहीं। मारू देश का होने से इसका नाम मारू है।[१७]

भक्ति काव्य की राग रागनियों की परंपरा।

राजा सर एस० एम० टागुर ने अपने ग्रंथ Universal History of Music के ७७-७८ पृष्ठ पर जयदेव और विद्यापति को क्रमश: १२वीं और १४वीं शताब्दि का माना है।[१८] श्री भातखंडे ने लिखा है, "जयदेव द्वारा जो राग लिये गये, शास्त्रीय पद्धति में उनका मूल उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में किसी दिशा में नहीं मिलता, और उनके गाने का आदेश जिन तालों पर किया गया है, उनकी स्वर पद्धति उपलब्ध नहीं।"[१९] संभवत: इसी से हताश होकर कतिपय विद्वानों ने गीत-गोविंद काव्य की राग पद्धति से संगीत के लिये कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं माना। उदाहरणत: काशी विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अनुसंधान प्राध्यापक दानीएलू ने अपने १३-१-५१ के पत्र में लिखा- "गीत गोविंद ने भारतीय संगीत शास्त्र में एक नये युग का संचालन कर दिया, इसका कोई प्रमाण नहीं।" इसी प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत १९५१ के लेखक प्राध्यापक ग०ग० रानाडे अपने ३-१-५१ के पत्र में लिखते हैं, "गीतगोविंद ने संगीत शास्त्र की वृद्धि पर कोई विशेष छाप नहीं डाली। संगीत की दृष्टि से गीतगोविन्द का स्थान गौण ही है। शार्ङ्गदेव ने अपने संगीत-रत्नाकर में

"गीतिकाव्य का बीजारोपण तो कालीदास द्वारा हो गया, किन्तु उसकी धारा को प्रवाहित करने वाला समकालीन अन्य कोई भी कवि न था। प्राकृत-काल के अन्त में बौद्ध सिद्धों और जैन आचार्यों का काल आया। इन सिद्धों ने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिये काव्य का माध्यम अपनाया और दोहे और चौपाईयों की रचना की। इन्होंने ने एक अनोखे संगीत को जन्म दिया और राग रागिनियों के आधार पर पदों की रचना भी की। इन्ही पदों का प्रभाव हिन्दी कविता पर भी पड़ा, और परवर्ती गीतों की रचना में मूल प्रेरणा कवियों को यहीं से मिली।"

१६(ख) हिन्दी साहित्य कोश पृ० २६०-६१

१७- गुरमति संगीत भाग ४- डा० चरन सिंह पृ० १९

१८- उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास-भातखण्डे-पृ०२९

१९- वही पृ०६

इसका नाम लेने की परवाह नहीं की - प्रो० दानाव्लू ने अपने उपर्युक्त पत्र में आगे लिखा, 'यह गीत गोविन्द संभवत: उन पुराने ग्रन्थों में से है जिनमें कविता को संगीत में विशेष स्थान दिया गया था, परन्तु संगीत की दृष्टि से इसे निस्संदेह मानदंड की अधोगति समझना चाहिए।'[20] बात यथार्थ रूप में यह है कि पक्के राग के विशेषज्ञ जो प्रचलित भाषा से स्वतंत्र हो रहना चाहते हैं, उनकी प्रकृति यह है कि वे एक दो शब्दों को लेकर उन्हीं को भिन्न-भिन्न रूप से तोड़ मोड़ कर गाते हैं। इस से यह प्रतीत होता है कि गीत गोविंद का संगीत शास्त्रीय संगीत से स्वतंत्र होता हुआ एक सर्वसाधारण ग्राह्य स्वरूप रखता था, जिसका आधार लोक गीत समझना चाहिए।[21] श्री भातखंडे अपने ग्रंथ उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास में जयदेव का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि लोचन-कवि ने अपने ग्रंथ राग तरंगिणी (रचना काल ११६२ई०) में दो प्रसिद्ध पूर्ववर्ती ग्रंथकारों जयदेव और विद्यापति का उल्लेख किया है। राग तरंगणी एक संस्कृत ग्रंथ है, इस में ६२ पृष्ठ हिन्दी भाषा का मैथिली बोली के स्थानीय यशस्वी विद्यापति कवि के गीतों की छन्द- शास्त्रीय आलोचना है। देशी रागों के गीतों को उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया गया है। इसके बाद कवि विद्यापति की वंशावली आरंभ होती है। तत्पश्चात् कुछ पंक्तियां छन्द शास्त्र के तत्वों पर हैं और इसके बाद विद्यापति के गीतों का विस्तृत समूह है। इन गीतों में छन्दनियम का पालन हुआ है और इन पर राग रागिनियों के नाम लिखे हुए हैं। एक गीत का नमूना इस प्रकार देते हैं:-

अथ देशाख नाम रागिणी।अत्र तु जय देव देशाख:।
देश देशाख इति भेद द्वयम। जयदेव देशाखे तु ओजय देव:।

२०- गीत गोविंद-विनयमोहन शर्मा- प्रस्तावना पृ० (१)-(३)

२१-वही पृ० (३) - यह अवश्य है कि स्वतंत्र रूप में गीति काव्य की रचना द्वारा संगीत और काव्य का सम्मिलन जयदेव ने ही कर दिखाया। जयदेव के पीछे सिद्धों की परंपरा भी चली आ रही थी और इस में कोई संदेह नहीं कि वे इस परंपरा से अवश्य परिचित थे, किन्तु लोकगीतों के आधार पर अपने गीतों की रचना करने पर भी उनके इस काव्य में जहां वैदिक परंपरा से भिन्नता पाई जाती है, वहां इन सिद्धों से भी उसमें पर्याप्त भिन्नता मिलती है। (काव्य रूपों के मूल स्रोत- पृ०१६४)

नमूना देते हुए वे कहते हैं कि मैं नहीं समझता कि यह गीत आप के लिये अधिक उपयोगी होंगे।[२२]

शास्त्रीय पद्धति को विद्यापति तथा जयदेव के गीतों से खोज निकालने वाले कतिपय संगीतज्ञों को निराशा हुई। अत: उन्हों ने जयदेव के गीतों को संगीत के विकास में योगदान के लिये महत्वपूर्ण ही नहीं माना।[२३] इन विद्वानों ने जयदेव की रचनाओं की परंपरा तथा विकास की ओर ध्यान ही नहीं दिया। हिन्दी गेयपदों की परंपरा के उद्भव और विकास में लोक-गीतों का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आरंभ में बौद्ध सिद्धों के जिन चर्यापदों और वज्रगीतियों की चर्चा की गई है, वे लोक भाषा की रचनायें हैं। जयदेव को गीतिकाव्य की मूल प्रेरणा बंगाल के लोक जीवन में प्रचलित यात्रा गानों से प्राप्त हुई थी। देशी भाषा (देसिल बयना) की मिठास का अनुभव करने वाले कवि विद्यापति तो निश्चित रूप से लोक-गीतों से प्रभावित हुए हैं। अपने पदों में वे लोक-गीतों की परम्परा के बहुत अधिक समीप हैं।[२४] भारतीय-संगीत के रचयिता आचार्य उत्तमराम शुक्ल तो इस विषय में यहां तक कहते हैं कि 'असाधारण योग-सिद्धिदात्री राग-शिक्षण-शैली के आधार पर रागों के सर्वांग प्रभावों आदि के सदैव स्मरण रखने तथा आत्मा को उनमें तल्लीन करने के हेतु से रागों के ध्यानों का विकास निर्माण सहित किया गया था। जिसे हम आज भी आलेख्य चित्रों एवं ध्यानों के रूप में प्राप्त कर रहे हैं।

२२- भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास- पृ० ६-७

२३- गीतगोविंद विनयमोहन शर्मा- प्रस्तावना -(३)

२४-(१) हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व-पृ० १८३

(२) विद्यापति का अभिनव जयदेव कहलाना ही संकेत करता है कि विद्यापति में जो कुछ है, वह जयदेव के गीतिकाव्य में पाए जाने वाले तत्वों से परिपूर्ण है। गीत गोविंद के अनुरूप विद्यापति ने राग-ताल समन्वित अपनी पद रचना की। अष्टछाप के कवियों पर जयदेव तथा विद्यपति का प्रभाव अवश्य पड़ा। पृ० १६०। — — — — — (काव्यरूपों के मूल स्रोत)

जिसे वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक तथा भारतीय तत्व ज्ञान (फिलोसोफी) की दृढ़ नींव पर आधारित एवं प्राचीन उक्त सिद्धान्तों के पूर्ण परिचय रूप में पाते हुए या भूले हुए हैं। इस विषय में उच्च विद्वान गुणिगणों को कदापि सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसकी परंपरा भगवती शारदा एवं श्री नारद मुनि से लेकर भक्ति-कालीन एवं रीतिकालीन ब्रज के संगीतज्ञों व कवियों के इतिहास पर्यन्त हम भलि भांति प्राप्त कर सकते हैं। तानसेन और बैजू बावरा जैसे गुणी तो केवल उन संगीतज्ञ भक्तों और सन्त कवियों के मात्र कृपापात्र ही थे।[25] इसी ओर संकेत करते हुए डा० धर्मवीर भारती लिखते हैं, "उत्तर भारत में भारतीय संगीत की जो परंपरा प्रचलित है, शास्त्रीय पद्धति में उसका संगठन प्राकृत- अपभ्रंश काल में ही हुआ है और विभिन्न जातियों और प्रान्तों के लोक- संगीत को अपना कर उन्हें स्वर ग्रामों के एक नियम में आबद्ध कर दिया गया है। पूर्वागत-वैदिक-संगीत-पद्धति को मार्ग या गन्धर्वप्रणाली का नाम देकर उसे देवोचित संगीत कहकर नए मानवोचित देशी संगीत को प्रमुखता दी गई। उसका देशी नाम संगीत शास्त्र के सभी ग्रंथों में मिलता है। इस प्रकार उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि सिद्धों के इन पदों के राग मूलतः लोक-संगीत से लिये गये थे, किन्तु उस समय तक शास्त्रीय पद्धति में स्वीकृत होकर नियमानुशासित हो गये थे।"[26] जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि सन्त कवियों ने भी लोक-गीतों के प्रभाव को स्वीकार किया। इस विषय पर टिप्पणी करते हुए डा० रवीन्द्र भ्रमर लिखते हैं, "सन्त-काव्य पर लोक-गीतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। सन्त-कवियों के लिखे हुए पद या शब्द लोक-गीतों से बहुत भिन्न नहीं हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग के संपूर्ण देशी-भाषा के साहित्य को लोक-साहित्य मान लेने के पक्ष में हैं। जहां तक सन्त-साहित्य में :::::::::: लिये गए गेय पदों का प्रश्न है, उन्हें लोक-साहित्य या लोक-गीत-साहित्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता। लोक-कण्ठ की साधारण भाषा में लिखे गये ये पद- जिनका संगीत और जिनकी अभिव्यंजना पद्धति भी

२५- भारतीय संगीत पृ० २१५

२६- सिद्ध साहित्य- पृ० २६६

'लोक' की ही है, जनता में प्रचलित सामान्य प्रकार के चलते गीतों की अनुकृति जान पड़ते हैं। इन पदों में आरोपित ब्रह्म, ज्ञान और गुरु के अलौकिक संकेतों को अलग कर देने पर शैलीगत शिल्प की दृष्टि से इन्हें लोक गीतों की कोटि में रखा जा सकता है।[२७] कबीर काव्य पर विवेचन करते हुए डा० सरनाम सिंह शर्मा लिखते हैं, "जो हो, भाषा की सरलता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, जीवन-सम्पर्क, प्रवाह-द्रुति, प्रभाव-तीव्रता आदि के आधार पर कबीर-वाणी को लोक-काव्य के अन्तर्गत रख सकते हैं।[२८] गुरु नानक काव्य पर टिप्पणी करते हुए डा० तारन सिंह लिखते हैं, यह तो पता नहीं लग सका कि गुरु नानक साहब ने कौन सी राग-माला को अपनाया है, या उन्होंने किस राग-प्रबंध (हनुमंत मत, पारिजातिक, पार्वतिक, मतंग या भरत-राग-प्रबंध) को अपनाया है। संभवत: इन में से किसी राग-प्रबन्ध को उन्होंने पूरी तरह नहीं अपनाया, परन्तु यह बात प्रत्यक्ष है कि उन्होंने प्रत्येक राग को पंजाबी जीवन की पृष्ठभूमि प्रदान की है, और उसके रूप में अपनी रचना द्वारा पंजाबी-पन उत्पन्न किया है।[२६] भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त राग-रागनियों की पृष्ठभूमि में किसी निश्चित शास्त्रीय संगीत पद्धति को खोज निकाल सकने की असमर्थता का कारण उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, क्योंकि जिस मार्ग अथवा देशी-संगीत पद्धति का सन्त कवियों ने अनुसरण किया, उसे, विभिन्न जातियों तथा प्रान्तों के लोक-संगीत को अपना कर, उन्हें स्वर ग्रामों के एक नियम में आबद्ध करने के पश्चात् मान्यतोचित देशी-संगीत का प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।[३०] इसकी परंपरा वैदिक काल तक है और यह परंपरा भगवती शारदा एवं श्री नारद मुनि से लेकर भक्ति-कालीन एवं रीतिकालीन ब्रज के संगीतज्ञों व कवियों के इतिहास पर्यन्त हम भली भांति प्राप्त कर सकते हैं।[३१] इस परंपरा के विकास के बारे में 'निर्गुण-धारा' नामक पुस्तक में कतिपय आलोचकों का विचार प्रस्तुत करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "हिन्दी में निर्गुण-धारा की संज्ञा से अभिहित संपूर्ण साहित्य लोक-गीत वर्ग का है।[३२] इस पुस्तक में तो यहां तक दावा किया गया है, 'हमारा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी साहित्य की

२७- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व पृ० १८४

२८- कबीर एक विवेचन- पृ० १६६

२६- गुरु नानक चिंतन ते कला- पृ- २३६

३०- सिख साहित्य- २६६

निर्गुणधारा लोक-गीतों का ही विकसित रूप है।[33] इस विकास पर भी आगे विचार किया जायेगा।

संत काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियों के प्रकार तथा उनकी विकास परंपरा

गेय-पदों की परंपरा बड़ी पुरानी है। रागों के समुचित निर्देश के साथ पद लिखने की प्रथा दसवीं शताब्दी ई० में भी वर्तमान थी। बौद्ध-सिद्धों और नाथों के चर्यापद तथा वज्रगीत राग-रागिनियों से युक्त मिलते हैं। सरहपाद, भूसुकपाद, लुइपाद और कण्हपाद आदि के पद विभिन्न राग रागिनियां के आधार पर लिखे गये हैं। इन पदों के साथ राग गुंजरी, राग भैरवी, राग कामोद, राग मल्लारी, राग गौड़, आदि रागों का निर्देश है।[34] डा० धर्मवीर भारती ने इन रागों की संख्या १८ बताई है, जो कि सिद्धों के चर्यापदों में प्रयुक्त हुए हैं। इस ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं, संभवत: चर्यापदों में से प्रत्येक पद के साथ उसके राग का नाम दिया है, जो उनके तिब्बती रूपान्तरों के साथ भी मिलता है। ये राग संख्या में कुल १८ हैं, अरु, कामोद, गउड़ा, गुंजरी गुर्जरी, देशाख, देवक्री, धनसी, पटमंजरी, बंगाल-भैरवी, मल्लारी, मालसी (श्री) मालशी गवुड़ा, रामक्री, वलाड्डि, वराड़ी, शबरी। भारतीय संगीत के विकास से संबन्धित सामग्री इतनी कम है कि इन रागों के तत्कालीन रूप के विषय में हमें कुछ सूचनाएं नहीं मिलती हैं। संगीत रत्नाकर (१२१० ई० के लगभग) संगीत शास्त्र का पुराना प्रामाणिक ग्रंथ है। उसके द्वितीय अध्याय- 'राग विवेक' में पायें इनमें से कामोद, बंगाल, वराटी, गुर्जरी आदि रागों का उल्लेख मिलता है। चतुर कल्लिनाथ की टीका से यह भी आभास मिलता है कि यह राग वास्तव में विभिन्न प्रान्तों और जातियों में प्रचलित थे।[35] 'संगीत-रत्नाकर' से भी अधिक पुराना एक ग्रंथ नारद का 'संगीत - मकरन्द' मिलता है। उसमें चर्यापदों में उल्लिखित बहुत से रागों का नाम है। धनसी (धन्नासी) गुर्जरी, बंगाल, पटमंजरी, भैरवी मल्लार (मल्लारी) इन रागों को प्रात:काल गाने का विधान है। शबरी (सावेरी)

३१- भारतीय संगीत पृ० २१५

३२- निर्गुण धारा (मानसरोवर प्रकाशन, गया पृ०२) से कबीर की साहित्य परख पृ० १० पर उद्धृत।

३३- वही पृ० १०

मध्यान्ह में गायी जाती थी। इसी प्रकार रामक्री (रामकृति) गौड़, बराटी, देवक्री (देवक्रिया) धनाश्री, कामोद आदि का विभाजन स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक रागों में भी किया गया है।[36] ऊपर हम कह चुके हैं कि रागों का शास्त्रीय पद्धति में संगठन प्राकृत-अपभ्रंश-काल में ही हुआ। तब तक सिद्धों द्वारा प्रयुक्त राग भी शास्त्रीय पद्धति में लिये जा चुके थे।

सिद्धों द्वारा प्रयुक्त जिन १८ रागों का उल्लेख डा० धर्मवीर भारती ने किया है, उससे मिलती जुलती १८ रागों की राग-माला, प्रत्येक राग के साथ उसके पर्वतक सिद्ध का नामोल्लेख कर, प्रो० बी०एस० टंडन ने दी है, परन्तु उन्होंने अपनी इस राग-नामावली एवं सिद्ध नाम के उल्लेख का आधार नहीं बताया।[37] यह राग इस प्रकार हैं:-

क्रम	राग का नाम	सिद्ध नाम
१	गौंड	विरूपा
२	मारू	गुंडरीपा
३	गुंजरी	गुंडरीपा
४	पटमंजरी	भुसुक
५-	देवक्री	भुसुक
६	देशाख	कण्हपा
७-	भैरवी	सरहपा
८	कामोदी	भुसुक
९	धनाश्री	डोम्बीप
१०	रामक्री	शांतीपा
११	बराटी	भुसुकपा
१२	शिवारी (सावेरी)	शांतीपा
१३	बरांडी	सरहपा
१४	मल्लारी	भुसुकपा

३४- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- पृ० १७९

३५- सिद्ध साहित्य पृ० २८६

३६- वही पृ० २९०

३७- गुरमति साहित्य अंक पंजाबी दुनिया पृ० ६३

१५	मालश्री	सरहपा
१६	मालशी गौड़	कणहपा
१७	बंगाला	भुसुकपा
१८	रागनी वेद	जालंधरपा

प्रो० टंडन इस राग नामावली के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, उपर्युक्त सिद्ध-राग-नाम-राग-माला, आदि ग्रंथ में दी गई राग-माला के अनुसार पारिवारिक नहीं है, अपितु कीर्तन-गायन के अनुसार है।[३८]

सिद्धों एवं सन्तों की वाणियों में प्रयुक्त राग-रागिनियों की, किसी राग-माला तथा राग-पद्धति के आधार पर स्वीकृति को ढूंढना हमारे विचार में निष्फल प्रयास है। सिद्धों तथा सन्तों ने भक्ति-काव्य में उस देशी-गायन पद्धति का अनुसरण किया जो पुराण-युग के भी प्राचीन-काल से भारत के अनेक प्रदेशों में गंभीर गति से गंगाधार की तरह बड़े ही वेग से प्रचलित हुई थी, जिस में सिन्धी-मुलतानी-दक्षिणी-कर्नाटकी-उत्तरभारतीय आदि विविध प्रादेशिक भेद पड़ चुके थे, उस अन्तत संगीत पद्धति को काल-प्रभाव ने अपने आक्रमण द्वारा नष्ट-प्राय कर दिया।[३९] इस देशी-संगीत-पद्धति का विकास-क्रम तथा उसकी पूर्ण परंपरा उपलब्ध नहीं, इसी कारण हिन्दू-पद्धति के प्राचीन (संगीत रत्नाकर आदि) ग्रंथों में परस्पर विरूद्ध अनेक शंकाएं और विवाद-ग्रस्त-मत पाए गए[४०] इसी कारण संगीत-रत्नाकर आदि ग्रंथों में जयदेव के गीत-गोविन्द-काव्य का वर्णन तक नहीं हुआ, क्योंकि इस काव्य-रचना में प्रयुक्त रागों को शारंगदेव भी समझ नहीं पाए। ४१ परन्तु यह बात सर्वमान्य है, कि जयदेव को रागात्मक-अनुभूति की तीव्रता को देख गीत-गोविन्द को गीति-काव्य के विकास में सुदृढ़ परंपरा चलाने का श्रेय मिलता है।[४२]

३७-(२) जैसे सिद्धों की भाषा अपभ्रंश है, वैसे उनके रागों के नामों पर भी लोक-काव्य से अपनाये जाने के कारण अपभ्रंश का प्रभाव है, किन्तु इन नामों को शास्त्रीय देशी अथवा मार्ग पद्धति से थोड़े से अन्तर को देख कर कतिपय विद्वानों ने इन्हें प्रचलित शास्त्रीय पद्धति से लिये जाने का विचार प्रकट किया है। 'धनसी' को धनाश्री, रामक्री को रामकली तथा मालसी को मालकौंस बताया है। (काव्य रूपों के मूल स्रोत- पृ०१६२) परन्तु डा० धर्मवीर भारती की उपर्युक्त शोध के आधार पर उन्हें पता होना चाहिए कि सिद्धों द्वारा

सिद्धों द्वारा जो १८ राग चर्यापदों में लिये गए हैं, उनमें से गुर्जरी, देशाख, रामकरी, वराड़ी, इन चार रागों को जयदेव ने गीतगोविन्द काव्य में लिया है। सिद्धों ने दो और राग गउड़ी और मालसी गवुड़ा लिये हैं। गीतगोविन्द में मालकौशिक राग लिया गया है। जयदेव का समय १२वीं शताब्दी का है। सन्त-काव्य में इस गीति-काव्य की परंपरा का विकास जयदेव के पश्चात् हम संत नामदेव की रचनाओं में देख सकते हैं। सन्त नामदेव जी के विषय में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि संत नामदेव के लिये कहा जाता है कि वे पंढरपुर में तथा अपनी यात्राओं में भी सदा भजन गाते रहा करते थे।[४३] आदि ग्रंथ में नामदेव का जो भी वाणी संगृहीत है, उसे निम्नलिखित रागों के अधीन संकलित किया गया है। गउड़ी, आसा, गुजरी, सोरठ, धनासरी, टोडी, तिलंग, बिलावल, गौड, रामकली, माली गौड़ा, मारू, भैरउ, बसंत, सारंग मलार, कानड़ा, प्रभाती। यह कुल १८ राग हैं।[४४] नामदेव जी का आविर्भाव-काल १२७० ई० तथा निधन १३५० ई० में बताया गया है। जयदेव से पूर्व के सन्त जिनकी रचना आदि ग्रंथ में है, वे शेख फरीद हैं, उनका समय ११७३-१२६६ ई० है। इनकी रचना आसा तथा सूही एवं आसा राग में है।[४५] बादशाह नासिर-उद्दीन महमूद (गुलामवंश) के काल में जिसकी सपुत्री हुजबरा से फरीद की शादी हुई थी, के काल में संगीत का पर्याप्त प्रचार था।[४५(क)]

नामदेव जी एक नाथयोगी सन्त बिसोबा खेचर जी के शिष्य बताए जाते हैं। उनकी रचनाओं पर नाथ योगियों तथा सिद्धों का प्रत्यक्ष प्रभाव है। नामदेव जी ने जिन १८ रागों में वाणी की रचना की है, उनमें से गउड़ी, गूजरी

प्रयुक्त रागों को जो लोक काव्य से लिये गये, बाद में शास्त्रीय पद्धति में स्वीकार कर लिया गया था।

३८- पंजाबी दुनिया-जनवरी-फरवरी १९६५ पृ० ९३

३९- गीत गोविन्द प्रस्तावना - (३)

४०- वही पृ० ५४

४१- गीत गोविन्द प्रस्तावना। (iii)

४२- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास- पृ० १६७

४३- संत काव्य पृ० १०८

४४- श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का साहित्यिक इतिहास-डा० तारन सिंह पृ०१५६

४५- वही पृ० १५६ ४५(क) सूफी मत और हिन्दी साहित्य पृ०२६३

गौंड राम कली मलार, धनाश्री राग जयापिदों से होते हुए सन्तों के पास आए। मालो गौड़ा, बसन्त गुजरी, रामकली भैरवी, यह पांच राग जयदेव के गीत-गोविंद में भी हैं। आसाराग में फरोद जी की रचना आदि ग्रंथ में है। यह तो हम विचार कर चुके हैं कि सन्तों ने उस लोक-काव्य-पद्धति का प्रभाव स्वीकार किया जिसका राग तत्व कहीं प्राकृत अपभ्रंशकाल में ही आकर एक प्रतिष्ठित संगीत-पद्धति के रूप में व्यवस्थित हुआ। इसका नाम मार्ग अथवा देशी संगीत-पद्धति के रूप में व्यवस्थित हुआ, इसका नाम मार्ग अथवा देशी संगीत पद्धति रखा गया। सन्तों ने इसी पद्धति से कतिपय लोक-प्रिय रागों को अपनाया, जिनमें अपने भावों को विशेष प्रभावोत्पादक एवं रसोद्रेक रूप में प्रस्तुत कर सके। जिस प्रकार सन्त मत-मतांतरों के विरुद्ध थे और केवल मानव-धर्म के पोषक थे, इसी प्रकार राग-मतों के परस्पर विरोधी विचारों में से किसी एक मत का अनुसरण एवं अन्य मतों का बहिष्कार वे कैसे कर सकते थे। उन्हें तो जो अच्छा लगा, वही विचार उन्होंने अपनाया और यह बात राग तत्व के बारे में भी उसी प्रकार बलपूर्वक कही जा सकती है।

आदि ग्रंथ और राग

यद्यपि गुरु ग्रंथ साहब में ३१ रागों का उल्लेख है फिर भी सन्त कवियों की सर्वप्रियता की दृष्टि से कुछ एक रागों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "संतों की रचनाएं लगभग सभी प्रसिद्ध रागों के अंतर्गत संगृहीत पाई जाती हैं। फिर भी उनकी अधिकांश रचनाएं राग गौड़ी, राग बिलावल, राग सोरठा, राग बसंत, राग सारंग, तथा राग धनाश्री के अंतर्गत दीख पड़ती हैं और इनके अनंतर राग मारू, राग भैरव, राग टोडी, राग आसावरी, राग राम कली, तथा राग मलार के नाम आते हैं। अन्य प्रमुख रागों में राग कल्याण, राग कान्हड़ा, राग केदारा, तथा राग नट या नट नारायण के भी नाम लिये जा सकते हैं।"[४६]

राग तत्व की परंपरा को आदि ग्रंथ में स्वीकृति तथा उसके विकास को देखने के लिये नामदेव के पश्चात् सन्त कबीर का नाम उल्लेखनीय है। कबीर जी की रचनाएं जिन रागों के अंतर्गत आदि-ग्रंथ में संगृहीत हैं, वे इस प्रकार हैं:-

---

४६- संत काव्य पृ० १०८-११०

सिरी, गउड़ी, आसा, गूजरी, बिहागड़ा, सोरठि, धनासरी, तिलंग, सूही बिलावल गौंड, रामकली, मारू, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग तथा प्रभाती हैं।[47] इन रागों में से भी सबसे अधिक पदों की रचना जो कि ७३ है, गउड़ी राग में निबद्ध है। आसा में ३७ पद, भैरउ में १८, रामकली में १४, बिलावल में तथा मारू में बारह बारह, गौंड तथा सोरठि में ग्यारह ग्यारह, तथा बसन्त, केदारा में क्रमशः सात और छः पद, धनासरी, सूही, प्रभाती में पांच पांच, गूजरी तथा सारंग में तीन तीन, सिरीराग में दो, बिहागड़ा और तिलंग में एक एक पद निबद्ध हैं। प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि गउड़ी आसा, भैरउ, रामकली, बिलावल, मारू गौंड, सोरठ, बसन्त, केदारा, धनासरी, सूही, प्रभाती आदि राग सन्तों के सर्व-प्रिय राग थे।

गुरु नानक जी की रचना, गौंड और केदारा रागों को छोड़कर उन सभी रागों में निबद्ध है, जिनमें कबीर जी की रचनाएं निबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त गुरु नानक देव ने माझ, वडहंस तथा मलार रागों में भी रचनाएं की है। उन्होंने नाम देव द्वारा प्रयुक्त टोडी, गौंड, माली गौड़ा तथा कानड़ा रागों को छोड़ अन्य सभी रागों में रचनाएं की हैं, जिन का उल्लेख आदि ग्रंथ में मिलता है। इस प्रकार १६ राग नामदेव वाले, और सिरी राग, सूही तथा बिहागड़ा कबीर वाले, तथा अन्य राग, माझ, वडहंस तथा तुखारी राग, गुरु नानक द्वारा लिये गये हैं। कबीर तथा रविदास समसामयिक थे। रविदास जी कबीर से आयु में कुछ बड़े थे। रविदास की रचनाएं आदि ग्रंथ में जिन रागों में निबद्ध हैं, वे इस प्रकार हैं: सिरी, गउड़ी, आसा, गूजरी, सोरठि, धनासरी, जैतसरी, सूही, बिलावल, गौंड, रामकली, मारू, केदारा, भैरउ, बसंत, मलार, इन में सिरी, जैतसरी तथा सूही रागों के अतिरिक्त शेष सभी रागों में नामदेव की रचनाएं निबद्ध हैं। सिरी तथा सूही रागों में कबीर जी की रचनाएं भी निबद्ध हैं। जैतसरी राग भक्त कवियों की रचनाओं में सर्व प्रथम रविदास की रचना में मिलता है।

४७- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहितक इतिहास- १८३-८४

जहां तक गुरु नानक की रचना में धनासरी राग के आने का संबंध है, यह एक देशी राग है, जो स्थानीय लोक-काव्य से प्रभावित है, और गुरु नानक की स्वयं की रचना प्रतीत होता है। इस का संबंध धनासरी प्रदेश से है। डा० तारन सिंह लिखते हैं, धनासरी राग निश्चित: बिल्कुल पंजाबी राग है, और धनासरी देश का होने से इस में पंजाब की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं धार्मिक गिरावट और खींचातानी का वर्णन है।[४८] धनासरी को गुरमति संगीत अनुसार भिन्न रागिनी माना गया है। धनासरी देश का होने से संकीर्ण है।[४९]

गुरु अंगद देव की रचना के केवल ६२ श्लोक ही गुरु ग्रंथ में अंकित हैं, जो दस वारों में विभिन्न स्थानों पर रखे गए हैं। गुरु अमरदास की रचना जिन १७ रागों में है, वे सभी गुरु नानक देव जी वाले ही हैं। तिलंग तथा तुखारी राग में उनकी कोई रचना नहीं।

गुरु रामदास की वाणी का रचना काल १५७४-१५८१ ई० बताया जाता है।[५०] गुरु ग्रंथ में कुल ३१ रागों में विभिन्न सन्त कवियों की रचनाएं निबद्ध हैं। गुरु नानक देव जी ने १९ रागों में रचना की। दो श्लोक बिहागड़ा राग में हैं। इनमें से १५ राग उनके पूर्ववर्ती सन्तों की वाणियों में उपलब्ध हैं। तीन राग, जैसाकि ऊपर उल्लेख हो चुका है, उन्होंने नये लिये, और धनासरी राग संभवत: उन्होंने ने स्वयं रचा। गुरु रामदास की वाणी जैजावंती राग को छोड़, आदि ग्रंथ के अन्य सभी रागों में निबद्ध है। जैजावंती जो आदि ग्रंथ का ३१ वां राग है, इसमें गुरु ग्रंथ के रचयिताओं में से केवल गुरु तेग बहादुर जी के चार पद आदि ग्रंथ में सम्मिलित हैं। डा० तारन सिंह लिखते हैं, गुरु रामदास की वाणी गुरु ग्रंथ का एक बड़ा भाग है और महान् रचना है। वाणी के आकार, स्वर, रूप, रस तथा शैली-गत विशेषता के कारण भी यह महान् रचना है। आपने गुरु ग्रंथ की योजना को इस पक्ष से भी विशालता प्रदान की कि उस की राग-सीमा को विस्तीर्ण किया। यह पता नहीं कि आपने राग विद्या में निपुणता किस प्रकार तथा कहां साधना करके प्राप्त की, परन्तु आपने गुरु ग्रंथ साहब के रागों की संख्या १९ से एक दम ३० तक पहुंचा दी। ११ राग और लेकर उनमें अपनी रचना की। यह राग देव-गंधारी, बिहागड़ा, केदारा, टोडी,

---

४८- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक इतिहास- पृ० २५२ (पंजाबी)

४९- गुरमति संगीत प्रथम खण्ड-पृ० २४

५०- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक इतिहास-पृ० ३६१ (पंजाबी)

बैराड़ी, गौंड, नट नारायण, मारी गउड़ा, केदारा, कानड़ा और कल्याण थे।[51]

गुरु राम दास ने 30 रागों में ही रचना करने की प्रवीणता कहाँ से प्राप्त की? यह अवश्य खोज का प्रश्न है। परन्तु हम पहले कह चुके हैं कि सन्त कवि न केवल भक्त थे अपितु संगीतज्ञ भी थे। कतिपय संगीतज्ञों ने तो इस परंपरा को तो भगवती शारदा तथा श्री नारद मुनि से लेकर भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन ब्रज के संगीतज्ञों व कवियों के इतिहास पर्यन्त खोजी जा सकने का संकेत करते हुए कहा है कि तानसेन और बैजू बावरा जैसे गुणी तो केवल उन संगीतज्ञ भक्तों और सन्त कवियों के मात्र कृपापात्र ही थे।[52] तान सेन तथा बैजू बावरा अकबर के समय में हुए, और गुरु रामदास भी अकबर के सम सामयिक थे। डा० तारन सिंह ने उनकी रचना का समय 7 साल 1574-1581 बताया है।[53] जब भारतीय संगीत के लेखक श्री उमाचार्य अकबर काल में तान सेन तथा बैजू से भी बढ़ कर संगीतज्ञ भक्त-कवियों के होने के बारे में संकेत करते हैं, तो गुरु राम दास का उन्हीं में से किसी संगीतज्ञ भक्त कवि से समस्त रागों की प्रवीणता प्राप्त कर लेना कोई बड़ी बात नहीं, और उसी काल में उनमें से एक होना सिद्ध होता है। भारतीय संगीत के कर्ता की राय की पुष्टि गुरु ग्रंथ के अन्तः साक्ष्य एवं अन्य प्रमाणों से भी होती है। गुरु नानक की रचना 19 रागों में है। वे स्वयं एक संगीतज्ञ थे। जो और 11 राग गुरु राम दास ने लिये और उनमें अपनी रचना की, उनमें से सात राग तो गुरु ग्रंथ में उल्लिखित पूर्ववर्ती सन्त-संगीतज्ञों की रचनाओं में उपलब्ध हैं, जो काल क्रम अनुसार इस प्रकार हैं। टोडी, माली गौड़ा, गौंड तथा कानड़ा रागों में नामदेव की रचनाएं आदि ग्रंथ में हैं। बैराड़ी राग में रविदास की रचना भी निबद्ध है। और उन्हों ने गौंड तथा केदारा रागों में भी रचनाएं की। बिलावल राग में कबीर की रचना का आदि ग्रंथ में है। केदारा तथा गौंड रागों में भी उन की रचनाएं हैं। इस प्रकार टोडी, माली गौड़ा, गौंड, कानड़ा, नामदेव की रचनाओं में और बैराड़ी, केदारा, तथा बिलावल रविदास और कबीर की रचनाओं में आदि ग्रंथ में ही प्रयुक्त हैं। जयदेव के गीत गोविन्द में गुरु ग्रंथ के माली गउड़ा, बसन्त, गूजरी, रामकली तथा भैरव रागों के अतिरिक्त बराड़ी राग का उल्लेख है। राग गौंड

51- वही-पृ० 360-61

52- भारतीय संगीत- 215

53- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक इतिहास-361

नाट, गूजरी, भैरवी, धनासरी, रामकली, वराड़ी आदि का सिद्ध संगीतज्ञों से विशेष संबंध था।[५४] सिद्धों का समय ८०० से ११०० तक अनुमानित किया गया है।[५५] इस परंपरा की शृंखला के विषय में अधिक महत्वाकांक्षी न होते हुए हम कह सकते हैं कि, सिद्ध संगीतज्ञों से जयदेव ने संगीत विद्या प्राप्त की। जयदेव-विद्यापति से तथा नाथ योगी संगीतज्ञों से होती आई यह भक्ति काव्य संगीत की परंपरा नामदेव, रविदास, कबीर, जायसी, गुरु नानक, गुरु रामदास तथा तुलसी दास, सूरदास तक आई। तुलसी दास तथा सूरदास अकबर समकालीन थे। इसी परंपरा में गुरु राम दास जी हैं, जो अकबर के समकालीन थे। अकबर के राज्यकाल में संगीत अपनी उन्नति पराकाष्ठा पर था। सूरदास तथा तुलसीदास अकबर के समय में उत्कृष्ट भक्त-संगीतज्ञ थे। अकबर की इन के विषय में श्रद्धा का उल्लेख डा० राम कुमार वर्मा ने किया है। वे लिखते हैं, सूरदास का निर्देश आईने अकबरी और मुंशियात अबुल फजल में विशेष रूप से है। इस निर्देश से यह ज्ञात होता है कि सूरदास गायक थे और अकबर के दरबार में अपने पिता बाबा राम दास ग्वालेरी गोयंदा (गवैया) के बाद उसी पद पर नौकर थे। यदि अकबर के दरबार में नौकर न होते तो उनके नाम निर्देश की आवश्यकता नहीं थी। तुलसी दास जी भी अकबर के समकालीन उत्कृष्ट कवि और गायक थे। पर उनका निर्देश आईन अकबरी में नहीं है।[५६]

५४- पंजाबी दुनिया- गुरमति अंक- ६३

५५- हिन्दी साहित्य कोश- ८५३ कुछ विद्वानों के विचार अनुसार यह परंपरा ७०० सं० से आरंभ होकर ५०० वर्षों तक आगे चलती रही। संत काव्य की परंपरा की अब तक की खोज के आधार पर यह निश्चय हो चुका है कि सन्त-साहित्य का आदि काल बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा के चौरासी सिद्धों से आरंभ होता है। इसे नाथपंथी परंपरा के नाम से भी अभिहित किया गया है। नाथ पंथ का स्वर्ण युग १२वीं तथा १४वीं शती के बीच माना जाता है। जयदेव के पास इन्हीं सिद्धों की संगीत परंपरा चली आ रही थी-

(संत संगीत अंक- पृ० ३)

५६- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० ५२१

गुरु अर्जुन देव जी ने उन्हीं ३० रागों में वाणी की रचना की है, जिनमें उनके पिता जी की वाणी है। रागों के आधार पर गुरु ग्रंथ का संपादन करना और सन्त वाणी की इस निधि को इस रूप में सुरक्षित करने का कार्य उन्हीं के द्वारा संपन्न हुआ। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि गुरु अर्जुन देव के पश्चात एक और राग में वाणी की रचना गुरु तेग बहादुर ने की, वह जैजावंती राग है। इन रागों के अतिरिक्त कुछ एक लोक काव्य की ध्वनियां भी आदि ग्रंथ में मिलती हैं, और इस आध्यात्मिक काव्य को यथार्थ रूप में लोक-काव्य सिद्ध करके लोकहित की रचना होने की पुष्टि करती है। यह ध्वनियां इस प्रकार हैं कबीर की रचनाओं में बावन अखरी, थिति, वार; गुरु नानक देव की रचनाओं में पहरे, पट्टी, अलाहणीआं, आरती, कुचजी, सुचजी, थिति ओंकार, गोसटि (सिध) सोहले, बारहमाहा; गुरु अमरदास जी ने भी, पट्टी, अलाहणीआं, तथा सोहले लिखे। गुरु रामदास जी ने पहरे वणजारा, करहले, तथा घोड़ियां लिखीं; गुरु अर्जुन देव जी ने पहरे, बारहमाहा, दिन रैण, बावन अखरी, सुखमनी, थिति, बिरहड़े, गुणवंती, रुती, अंजुलीआं, सोहले तथा गाथा काव्य रूपों में रचना की। इस रचना की परंपरा का सीधा संबंध लोक गीतों से है।

गुरु ग्रंथ की वाणी तथा उसका राग तत्व से संबंध

भक्ति काव्य के पदों को गुरुओं तथा उनके पूर्ववर्ती सन्तों, नाथ योगियों, सिद्धों, तथा आचार्यों द्वारा भावमय रूप प्रदान करने के लिये संगीत का आश्रय लिया गया। नाथ-योगियों ने भी अपना सबदियां हृदय को द्रवित कर देने वाले संगीत में कहीं। गोरखवाणी में योगियों का परमप्रिय राग रामकली प्रयुक्त है।[५७] गुजरी तथा आसावरी रागिनियां भी प्रयुक्त हुई हैं। गुरमति संगीत अथवा गुरुवाणी के संपादन में श्री राग को सर्व प्रथम रखा गया है। विद्वानों का विचार है कि गुरु नानक की समूची रचना आदि ग्रंथ में संगृहीत है। यह वाणी गुरु अर्जुन देव तक अवश्य किसी हस्तलिखित पुस्तक रूप में प्राप्त हुई होगी और इस में भी राग को प्रथम रखा गया होगा। गुरु अमरदास जी का एक श्लोक सिरी राग की वार ४:४ के आरंभ में है, उसमें रागों में श्री राग को प्रथम माना गया है:-

---

५७- रामकली योगियों का प्रिय राग है- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यक इतिहास पृ० १६८

रागा विचि स्री रागु है, जे सचि धरे पिआरु।[५८]

गुरु वाणी में भिन्न भिन्न रागों के लिये जाने का प्रयोजन भी गुरु अमरदास जी की वाणी से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने राग को तब ही प्रधान समझा है जब उसमें प्रभु-यशोगान तथा नाम-स्मरण की मुख्यता हो। रागों के विषय में उनके विचार दृष्टव्य हैं:-[५९]

गूजरी जाति गवारि जा सहु पाए आपणा।।

सबद रते वडहंस है सचु नामु उरिधारि।

सोरठि सदा सुहावणी जे सचा मनि होइ।

धनासरी धनवंती जाणीऐ भाई, जां सतिगुर की कार कमाइ।

हरि उतमु हरि प्रभु गाविआ करि नादु बिलावलु रागु।

रामकली रामु मनि वसिआ ता बनिआ सीगारु।

केदारा रागा विचि जाणीऐ सबदे करे पिआरु।

गुरु ग्रंथ साहब में प्रयुक्त रागों तथा काव्य का संयोग-विवरण प्रस्तुत करते हुए डा० तारन सिंह लिखते हैं:[६०] (१) श्री राग में वैराग्य पूर्ण रचनाएं निबद्ध हैं। (२) राग वडहंस में गुरु नानक तथा गुरु अमरदास ने अलाहणीआ लिखीं हैं। यह गीत मृत्यु संबंधी लोक-गीत की धारणा पर है। (३) राग धनासरी में विभिन्न रचयिताओं के आरती पद हैं। (४) तिलंग राग मुसलमानी सिद्धान्तों संबंधी विषयों की विवेचना है, और इस की शब्दावली पर फारसी भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष है। (५) राग गउड़ी गौड़ देशका राग है, इस राग में गुरु ग्रंथ के सब कवियों ने गहन एवं गंभीर विषयों पर विचार प्रकट किये हैं, यथा, आत्मा, ब्रह्म, प्रकृति तथा नैतिक तत्त्व विषयक सिद्धान्तिक विचारधारा। (६) राग आसा गुरुवाणी में प्रातः कालीन राग है, और इस में आसावादी भावुकता का विधान हुआ है। (७) राग गूजरी कृष्ण पूजा का राग माना जाता है परन्तु गुरु साहिबान ने भक्तों के चंदन, कुंकुम, धूप, नैवेद्य आदि की पूजा के स्थान पर हृदय-पूजन का विधान किया है, और ईश्वरीय उपासना का नया ढंग बताया है।

५८- आ०ग्र०पृ० ८३

५९- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यिक इतिहास-३४७, तथा सभनां रागां विचि सो भला भाई, जितु वसिआ मनि आइ।। सलोक म:४ आ०ग्र० पृ० १४२३

(८) राग सू ी को सूफियों का प्रिय राग भी कहा जाता है। इस राग में सारी रचना घरेलू जीवन तथा दाम्पत्य जीवन की सफलता के विषय में है। (६) बिलावल राग में म:४ तथा म:५ में मंगल गान ... किया है। यह हर्ष एवं प्रभु उपमा का राग है। (१०) राग गौंड में प्रभु को विरद-पालक मान कर उसका यशोगान है। (११) राग रामकली योगियों का प्रिय राग है। गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने इस राग में योगियों के बाह्याचार तथा भेष-शृंगार का निषेध कर उसके स्थान पर सदाचार-शृंगार करने को कहा है। सिद्ध साधना तथा गुरमति साधना संबंधी गोष्टी (सिध गोसटि) जो गुरु नानक की रचना है, तथा गुरु अमरदास जी की भक्ति साधना की व्यावहारिक विवेचना अनंद साहिब, रामकली राग में निबद्ध हैं। (१२) नट नारायण तथा (१३) माली गउड़ा में थोड़ी थोड़ी वाणी है। दोनों उत्पत्ति के राग हैं। (१४) राग मारू युद्ध वातावर्ण विषयक राग है। इसमें लिखी वाणी में संसार की शून्यावस्था संबंधी सुंन (सुनसान) अवस्था तथा तदोपरान्तु शून्य से उत्पत्ति का वर्णन है। (१५) तुखारी राग देशी राग है। इस में विरह तथा संयोग का वर्णन है। गुरु नानक की प्रसिद्ध रचना तुखारी छन्त म:१ बारहमाह इसी राग में है। (१६) राग केदारा में हर्ष एवं वियोग दोनों प्रकार की रचनाएं हैं। (१७) राग देव गंधारी तथा (१८) राग बिहागड़ा में बहुत थोड़ी थोड़ी रचनाएं हैं। (१६) राग सोरठि रात्रिकाल की रागिनी है। इसमें ऐसी रचनाएं हैं जिनमें पाखंड तथा अज्ञानता के अंधकार का वर्णन है। (२०) राग जैतसरी (२१) टोडी तथा (२२) बैराड़ी छोटे छोटे राग हैं। (२३) राग भैरव में मन की सबलता का वर्णन है। भैरव राग में ही हिरण्यकशिपु एवं उसके पुत्र प्रह्लाद तथा असुर पुरोहितों शण्ड-मर्क की कथा का वर्णन, नामदेव तथा गुरु अमरदास जी की रचनाओं में है। (२४) राग बसंत, बसंत ऋतु का राग है। इसमें बसंत ऋतु के वायुमंडल की रचनाएं हैं। (२५) सारंग वर्षा ऋतु का राग है। (२६) मलार भी वर्षा ऋतु का राग है। इसमें वर्षा ऋतु के उपमानों द्वारा दाम्पत्य संयोग का वर्णन है। (२७) राग कानड़ा ग्रीष्म ऋतु का राग है। (२८) राग कल्याण वर्षा ऋतु का राग है। नाम-स्मरण कल्याणकारी-साधना है। यही इस राग में निबद्ध रचना का परम-तत्व है। (२६) राग प्रभाती प्रात:कालीन राग है। इसमें किसी अभिनव युग का नई नवेली उषा के प्रकाश का वर्णन है, जो माया के पाखंड के अंधकार को दूर हटा देती है। (३०) राग जैजावंती में केवल म:६ की वाणी है। संसार की असारता तथा भगवद्भजन के केवल चार पद इस राग में निबद्ध हैं। (३१) माझ रागदेशी राग है, और माझे देश का राग है।

इस की रचना गुरु नानक देव द्वारा की गई प्रतीत होती है। पंजाबी वातावर्ण का, इस राग में निबद्ध रचना पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। मिलन की तीव्र इच्छा वाले पद इस राग में लिखे गए। गुरु नानक देव का माझ की वार में उस समय के हिन्दू मुसलिमसंघर्ण का वर्णन है। गुरु अर्जुन देव का बारह माह इसमें है।

गुरु ग्रंथ में राग क्रम तथा उसका राग माला से संबंध

गुरु ग्रंथ में श्री राग को प्रथम लेना[61] और राग मालाओं में से 'प्रथम राग भैरउ वै करही' वाला राग माला का स्वीकार किया जाना, दोनों तथ्य ही भक्तिकाव्य में राग तत्त्व की प्राचीन परंपरा से संबंध रखते हैं।

श्री राग को सोमेश्वर मत (शिव मत) में प्रथम राग माना गया है।[62] कानूने मौसीकी पुस्तक से गुरमति संगीत पुस्तक में जो कल्लिनाथ मत की राग पद्धति उद्धृत है, उसमे भी श्री राग को प्रथम रखा गया है।[63] संगीत शास्त्र में जिन बीस रागों या शुद्ध रागों का विवरण दिया गया है, उसमे श्री राग प्रथम है, भैरव राग की क्रम संख्या १० तथा नट्ट नारायण अन्तिम अथवा बीसवां राग है। उस सूची में पहली तीन राग आदि ग्रंथ में आये हैं।[64] यह २० रागों वाली सूची संगीत रत्नाकार से ली गई है, जिसमें इन बीस प्रकार के रागों को ==== दिव्य (मार्ग) राग कहा है।[65] श्री भातखंडे अपने संगीत शास्त्र में लिखते हैं, "श्री राग अपने यहां एक बहुत ही प्राचीन और प्रसिद्ध राग समझा जाता है। अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में यह एक अति मधुर और स्वतंत्र प्रकार है, ऐसा भी कहते हैं।"[66] भातखंडे जी ने जिन ग्रंथों के मत की ओर संकेत किया है, उनका वर्णन करते हुए आगे चलकर उन ग्रंथों में से श्री राग की प्रधानता एवं पूर्णता का वर्णन करतेहुए इसकी प्रसिद्धि के विषय में उन ग्रंथों का मत उद्धृत करते हुए लिखते हैं।

६०- श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यक इतिहास- पृ० ६०-८२

६१- रागा विच स्री राग है जे सचि धरे पिआरु १- पृ० ८३ तथा पृ० १४२६

६२- संगीत शास्त्र- के० वासुदेव शास्त्री पृ० १८५, पर संगीतदर्पण से उद्धृत।

६३- गुरमति संगीत खंड १ पृ० १३

६४- संगीत शास्त्र पृ० ७६

६५- भारतीय संगीत पृ० १८८

६६- भातखंडे संगीत शास्त्र- भाग तीसरा- पृ० ४१

राग मेलों में श्री राग हमारे यहाँ सब से प्राचीन राग है। तथा श्री राग पूर्ण सर्वगुण-सम्पन्न विख्यात राग है, और रागों में प्रथम राग है।[67] हमारा विचार है कि श्री राग को रागों में इसी विशेषता को सम्मुख रखते हुए आदिग्रंथ में भी प्रथम राग माना गया है।

रागमाला

गुरमति-संगीत-पद्धति की अन्य संगीत-पद्धतियों से विभिन्नता दर्शाते हुए डा० चरण सिंह लिखते हैं, श्री गुरु ग्रंथ साहब की रागमाला अन्य सब संगीत-पद्धतियों से भिन्न है, और इस बात की परिचायक है कि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी की संगीत-पद्धति अन्य संगीत - पद्धतियों से भिन्न है। राग माला का प्रयोजन बताते हुए लिखते हैं, गुरु ग्रंथ की संगीत पद्धति का प्रयोजन उन रागों का परिचय है जिनमें निबद्ध करके शबदों को गाया जाना चाहिए, तथा इस पद्धति की अन्य प्राचीन पद्धतियों से भिन्नता दिखाना है। उन्हों ने इस पद्धति को नवीन-पद्धति बता कर इसे गुरमति-संगीत-पद्धति का नाम दिया है, और गुरु ग्रंथ की राग-माला को इसी गुरमति-संगीत-पद्धति के प्रकारों आदि का स्पष्टीकरण बताया है, ताकि गुणीजन किसी भ्रमवश गुरमति-संगीत को किसी प्राचीन-पद्धति का अंधानुकरण न समझ लें।[68] अपनी शोध का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्हों ने विभिन्न संगीत-पद्धतियों जैसे शिवमत, कल्लि-नाथ-मत, भरत-मत, हनुमन्त-मत, सिद्ध-सारस्वत-मत तथा रागार्णवमत की राग-मालाओं का विवरण प्रस्तुत किया है।[69] जहाँ तक रागों के परिवारों का संबंध है, उनको प्राचीन भिन्न भिन्न ग्रंथकारों ने मत भेद से वर्णन किया है। जैसे हनुमन्त मत की पद्धति का संगीत शास्त्र (के वासुदेव शास्त्री पृ० १८८) तथा बुद्ध प्रकाश-दर्पन, संगीत-विनोद एवं राग-दीपिका में भिन्न भिन्न वर्णन है।[70] परन्तु राग क्रम के लिहाज से गुरु ग्रंथ की राग-माला, भरत-मत, हनुमन्त-मत तथा सिद्ध-सारस्वत-मत से मिलती है।[71] जहाँ तक कवि आलम के माधवानल नामक ग्रंथ में पाई जाने वाली गुरु ग्रंथ से मिलती जुलती राग-माला का संबंध है, डा० चरण सिंह ने अपनी शोध के आधार पर बताया है कि आलम का जन्म १६५५ ई० में हुआ, जिस से उसके ग्रंथ की रचना का काल गुरु ग्रंथ के संपादन काल १६०४ ई० के बहुत पीछे का है, अतः आलम कवि द्वारा यह राग माला गुरु ग्रंथ से लिये जाने

६७- मेकोद्भवेषु रागेषु श्री रागेड्य विराजते:। (सारामृते) (शेष अगले पृष्ठ पर)

की संभावना की ओर संकेत किया गया है।[७२]

गुरु ग्रंथ की राग-माला की ओर जब हमारा ध्यान जाता है, तो पता चलता है कि यह रागमाला गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं अपनी ओर से रचना करके अथवा कहीं से उद्धृत नहीं की, अपितु यह राग-माला इसी रूप में गुरु नानक देव जी की वाणी के साथ उनके अनुयायियों को प्राप्त हुई और फिर गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु ग्रंथ का संपादन करते हुए इसे संपूर्ण ग्रंथ के अन्त में रखा। यह रचना गुरु नानक देव जी की भी अपनी नहीं, और यह अन्य सन्तों की वाणियों की भांति उन्हें कहीं से प्राप्त हुई, इसकी महत्ता संत वाणी से कम नहीं। यह गुरुओं की रचना नहीं। इसका प्रमाण हमें गुरु नानक के जीवन काल में लिखी जाने वाली मलिक मुहम्मद जायसी की कृति पद्मावत, जो १५४० ई० में संपूर्ण हुई, के संदर्भ से मिलता है। इस रचना में ५१८ वीं सप्तपदी में एक राग-माला का विवरण है, जिसकी शब्दावली तथा राग क्रम बहुत कुछ गुरु ग्रंथ की राग-माला सा है। गुरु ग्रंथ की राग-माला में दीपक राग चौथे स्थान पर है और मेघ राग छटे पर, परन्तु जायसी के ग्रंथ की राग-माला में इसके विपरीत है, अर्थात मेघ राग छटे पर न हो कर चौथे पर है और दीपक राग छटा है। गुरु ग्रंथ की राग-माला में ३० रागिनियों के साथ ४८ राग पुत्रों का विवरण है। जायसी वाली रागमाला में कुल ३६ रागिनियों का उल्लेख है, रागिनियों के नाम अथवा राग पुत्रों का कोई उल्लेख नहीं। ऐसा लगता है, जायसी को भी यह राग क्रम किसी अन्य स्रोत से प्राप्त हुआ, वैसे जायसी के संगीतज्ञ होने में मैं संदेह नहीं होना चाहिए, जबकि उसके पश्चात के कवि तुलसी दास ने भी ऐसी ही भाषा-शब्दावली तथा काव्य-रूप में रचना की, परन्तु उनके संगीतज्ञ होने के उल्लेख मिलते हैं। जायसी

श्री राग स च विख्यात: षड्जेणविभूषित:। पूर्ण: सर्वगुणोपेतो मूर्छना प्रथमा मता (संगीत दर्पण) पृ० ५६ भातखंडे संगीत शास्त्र।

६८- गुरमति संगीत- प्रथम भाग पृ० १०

६९- वही पृ० ११-२२०

७०- वही पृ० १६, इन तीन मतों से हनुमन्त मत का राग विवरण गुरमति संगीत पृ० १६,१७,१८ पर देखिए।

७१- वही पृ० १४-२०

७२- वही पृ० ३६ ७३- पद्मावत पृ० ४३८

की रागमाला इस प्रकार है।[७३]

> प्रथम राग भैरौं ते कीन्हा। दोसरे मालकौस पुनि लीन्हा।
> पुनि हिंडोल राग भल गाए। चौथे मेघमलार सोहाए।
> पुनि उन्ह सिरी राग भल किया। दीपक कानूः उठा बरि दिया।
> छवउ राग गावन भल गुनो। औ गावन छत्तीस रागिनि। -५२८

इस सप्तपदी के पूर्व वाली ५२७वीं सप्तपदी में भिन्न भिन्न बाजों के नाम हैं। जिन में अनेक बाजों, तूतियों तथा डफों आदि का विवरण है।

जहाँ तक राग मालाओं में भैरव राग को 'प्रथम राग भैरउ के करहीं' का संबंध है, इसका कारण यह है कि बहुत से राग मतों में यह राग प्रथम लिया गया है। जैसे हनुमन्त मत, सिद्ध सारस्वत मत तथा रागार्णवमत इसे प्रथम राग मानते हैं। श्री राग के विषय में उनका मत इस प्रकार है- वे छः रागों में इसको आदि राग मानते हैं और इसको उन्होंने सबका जनक आदि राग कहकर माना है।[७४] इधर भैरव राग को भी प्रधान बताते हुए भारतीय संगीत में ही लिखा है, 'शास्त्रों में जिसे मालव गौड़ थाट कहा है वही हमारा भैरव थाट है। आप जिसको राग देख रहे थे, उस प्रसिद्ध भैरव राग का सेवन एवं परिचय करिये। यह प्रधान थाट है।'[७५] इस ग्रंथ में भैरव थाट से उत्पन्न होने वाली तथा आदि ग्रंथ में लिये जाने वाली कुछ रागिनियों का यहां परिचय देना इस बात का प्रमाण होगा कि भैरवराग, भी प्रधान थाटों में से है। भैरव थाट से उत्पन्न होने वाली रागिनियों में, रामकली, विभास, प्रभात, गौरी, आसावरी, धनाश्री, भूपाल आदि का नाम लिया गया है।[७६]

'भातखण्डे संगीत शास्त्र' में श्री राग तथा भैरव राग में अंतर बताया गया है। यहां तक कभी कभी एक दूसरे में अभिन्नता का भ्रम होता है। सा-रे-रे-सा" इस स्वर समुदाय में उस राग (श्री)का मुख्य अंग समाविष्ट हुआ है, ऐसा समझते हैं। ये स्वर भैरव में भी हैं, परन्तु उस राग में इनका उच्चारण कैसा होता था, यह मैं बता चुका हूं। श्री राग में यही स्वर एक विशिष्ट तरह से उच्चारित

७४- भारतीय संगीत पृ० ३०२

७५- भारतीय संगीत पृ० २५५

७६- वही पृ० २५४-२७२

७७- भातखण्डे संगीत शास्त्र भाग तीसरा पृ० ६

किये जाते हैं। कोई कहे कि श्री राग संध्याकाल का उत्कृष्ट होने से यह स्वर किसी तरह भी उच्चारण किये जायें तो श्रोताओं को भैरव राग की भ्रांति उस संध्याकाल में कभी नहीं होगा। भैरव और श्री रागों में 'सा-रे-रे-सा' ये स्वर भिन्न भिन्न तरह से गाये जाते हैं।"[७७] एक अन्य स्थान पर इसी ग्रंथ में लिखा है, श्री राग सिखाते हुए 'रे-रे-सा' 'ध ध प' में दो स्वर समुदाय विद्यार्थीगण खूब रटकर तैयार करते हैं।..... ये दो समुदाय मींड से 'रे रे सा ध ध प' इस तरह जोड़ने में आये कि वहां श्री राग लुप्त होकर भैरव राग उत्पन्न होगा।"[७८]

भैरवराग के राग माला में प्रथमराग होने तथा श्री राग के गुरु ग्रंथ के संपादन में प्रथम राग होने के विषय में गुरमति संगीत में एक पठनीय विचार का उल्लेख है। "भैरव राग राग माला में इस लिये पहला है कि क्रमबंदी के समय प्रातः काल का प्रथम राग है। श्री राग अपने प्रभाव के कारण शांत रसी रचना के आरंभ में शांत रस का राग है। श्री राग के पहले पद अत्यंत वैराग्यमयी भाव वाले रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि पंचम गुरु ने जिस समय भाई गुरुदास से जपुजी, रहिरास, तथा सोहिला लिखवा लिया तो जब राग क्रम के अनुसार वाणी लिखने लगे तो समय श्री राग का था।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की रचना के आरंभ में 'रागां विचि सिरी राग है' के वाक्यानुसार श्री राग की वाणी पहले लिखी जा चुकी थी। समाप्ति पर जब राग रागिनियां राग रतन परिवार परीआं के रूप में शुद्ध गाने आए तो उन्होंने पहले भैरव राग का आलाप किया, जिस क्रम में आलाप हुआ उसी क्रम में राग-माला लिखी गई।"[७९]

गुरु ग्रंथ के संपादन में श्री राग के प्रथम आने तथा रागमाला में भैरव राग के प्रथम होने के बारे में यह विचार युक्ति-युक्त नहीं। हमारा विचार है कि रागमाला गुरु अर्जुन देव की रचना नहीं है, जैसा कि कुछ लोग दावा करते हैं, जैसे गुरमति संगीत की रागमाला संवत १६६१ में श्री गुरु अर्जुन देव ने आदि ग्रंथ में लिखी।[८०] यह समय गुरु ग्रंथ के संपादन का है। यह रचना यदि गुरु अर्जुनदेव की होती तो म:५ इसके आरंभ में होता और अन्त में नानक नाम जरूर आता। परन्तु यह रचना मलार वाणी के साथ जो गुरु नानक देव ने कहां से प्राप्त की और उसे अपनी रचना तथा अन्य भक्तों की रचनाओं के सहित जोड़ गए, जिसे

७८- वही पृ० ४५

७९- गुरमति संगीत पृ० ४८ प्रथम खण्ड

८०- वही पृ० २२

उचित राग माला जान गुरु अर्जुन देव जी ने इसे उसी प्रकार महत्वपूर्ण समझा जिस प्रकार गुरु नानक देव द्वारा एकत्रित अन्य भक्ति काव्य को। रागमाला में रागक्रम उसी रूप में रखा, जिस रूप में वह प्राप्त हुई, परन्तु आदि ग्रंथ के रचयिताओं तथा संपादकों ने गुरु ग्रंथ में श्री राग को परंपरा के आधार पर प्रथम राग के रूप में स्वीकार कर लिया था।

गुरु ग्रंथ में ३१ रागों के अतिरिक्त कतिपय रागमेलों का भी वर्णन आया है, जो रागमेल गुरु ग्रंथ के रचयिताओं के संगीतज्ञ होने के नाते राग-विद्या संबंधी निजी सूझ बूझ एवं जानकारी पर आधारित मौलिक राग-मेल हैं, जिनका उदाहरण किसी अन्य संगीत ग्रंथ में नहीं मिलता। इन राग- मेलों की तालिका इस प्रकार है:-[८१]

नाम रागों के मेल का	गुरु ग्रंथ के रचयिताओं के नाम
१- राग गउड़ी गुआरे री	रविदास, गुरु नानक (म:१)
२- राग गउड़ी दक्खणी	गुरु नानक (म: १)
३- राग गउड़ी चेती।	नामदेव, कबीर, गुरु नानक (म:१)
४- राग गउड़ी बैरागणि	कबीर, रविदास। गुरु नानक (म:१)
५- राग गउड़ी दीपकी।	गुरु नानक (म:१)
६- राग गउड़ी पूरबी दीपकी	गुरु नानक (म: १)
७- राग गउड़ी पूरबी।	कबीर, रविदास। गुरु रामदास (म:४)
८- राग गउड़ी माझ	यह मेल गुरु राम दास द्वारा रचित प्रतीत होता है। तथा केवल उन्हीं की रचना में आया है। (म:४)
९- राग गउड़ी रागि सुलखणी	गुरु रामदास(म:४)
१०- राग गउड़ी मालवा	गुरु अर्जुन देव। (म: ५)
११- राग गउड़ी माला	कबीर जी।
१२- राग गउड़ी गुआरेरी श्री	कबीर जी।
१३- राग गउड़ी भी सोरठि भी	कबीर जी।
१४- राग वडहंस दक्खणी	गुरु नानक (म:१)

८१- देखिए आदि ग्रंथ में संगीत और उसके ३१ रागों के नामों के साथ मिश्रित हो रहे अन्य राग- पंजाबी दुनिया गुरमति अंक - भाषा विभाग पटियाला पृ० १००-१०२

१५- राग तिलंग काफी	गुरु तेग बहादुर (म:६)
१६- राग सूही काफी	गुरु नानक, गुरु अर्जुन देव।
१७- राग सूही ललित	फरीद जी, कबीर जी।
१८- राग बिलावल दक्षणी	गुरु नानक (म:१)
१६- राग बिलावल मंगल	गुरु राम दास। गुरु अर्जुन देव (म:४,५)
२०- राग रामकली दक्षणी	गुरु नानक देव।
२१- राग राम कली अनंद	गुरु अमरदास (म:३)
२२- राग मारू काफी	गुरु नानक देव (म: १)
२३- राग मारू दक्षणी	गुरु नानक देव (म: १)
२४- राग बसंत हिंडोल	कबीर, म:१,३,४,५,६ ।।
२५- राग कुसम बसंत	भट बाणी।
२६- राग कलिआण भोपाली	गुरु रामदास (म: ४)
२७- राग प्रभाती दक्षणी	गुरु नानक देव (म:१)
२८- राग प्रभाती बिभास	गुरु नानक, गुरु राम दास, गुरु अर्जुन देव (म: १,४,५)
२६- राग बिभास प्रभाती	कबीर जी।
३०- राग बिलावल गौंड	नाम देव जी।

राग नट नाराइण को संगीत रत्नाकार में बीस शुद्ध रागों में एक माना है।[८२] यह राग गुरु ग्रंथ के ३१ रागों में है। अकेले नट राग में भी गुरु राम दास तथा गुरु अर्जुन देव की रचना है।

उपसंहार :

रागों तथा राग-मेलों के अतिरिक्त कतिपय लोक-काव्य की ध्वनियां पर कुछ एक वारों को गाने का गुरु ग्रंथ में संकेत है। यथा: (१) आसा म:१, वार सलोका नालि सलोक भी महले पहिले के लिखे टुंडे अस राजे की धुनी (२) गूजरी की वार म:३ सिकंदर बिराहिम की वार की धुनी गउणी। ।। (३) वडहंस की वार म:४ लला बहलीमा की --- धुनि गावणी। (४) रामकली की वार म:३ जोधै वीरै पूरबाणी की धुनि (५) सारंग की वार म: ४, राइ

८२- संगीत शास्त्र के० वासुदेव पृ०८६

महमे हसने की धुनि। (७) वार मलार की महला १, राणे कैलास तथा मालदे की धुनि (८) कानड़े की वार म:४ मूसे की वार की धुनी। (८) वार माझ की तथा सलोक म:१ मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी। (९) गउड़ी की वार म:५ राइ कमालदी मोजदी की वार की धुनि उपरि गावणी। गुरमति संगीत में डा० चरण सिंह लिखते हैं, धुनि तथा गायक राग की जान होते हैं। गुरु हरि गोविंद जी ने ढाढियों (चारणों) से इन लोक-वार-काव्य की वारों को सुना और उनके आधार पर गुरु ग्रंथ की वारों के गाये जाने का संकेत किया।[83] उन्हों ने इन लोक-काव्य की रचनाओं के उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गुरु ग्रंथ के राग-तत्त्व पर लोक-काव्य की ध्वनियां का विशिष्ट प्रभाव है। सन्त काव्य का लोक-काव्य से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि यह रचनाएं लोक-हित की मुख्य भावना को सम्मुख रख कर रची गईं। डा० भ्रमर लिखते हैं, सन्त भक्त कवियों ने लोक-गीतों की सरल शैली ही नहीं अपनाई है, वरन् कतिपय प्रचलित लोक-गीतों को भी ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। कुल मिला कर इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि हिन्दी के गेय पदों की परंपरा के उद्भव और विकास में लोक-गीतों के विभिन्न उपादान भक्ति-काव्य की निर्मिति में ग्रहण किए गए हैं। सन्त भक्त कवियों की अनेक गीति-रचनाएं लोक-कंठ की मौखिक परंपरा में प्रचलित लोक-गीतों की अनुकृति मात्र जान पड़ती हैं।[84] यह कथन गुरु ग्रंथ की वारों की इन ध्वनियों, तथा विभिन्न राग-भेदों के संबंध में अक्षरश: सुनिश्चित संगत प्रतीत होता है। आलाहुणियां, घोड़ियां, बिरहड़े, थितीं, वारें, दिन रैन, पहरे, बारहमाहा आदि काव्य-रूप, जिन का पहले वर्णन किया जा चुका है, तो लोक-गीत ही हैं, जिन में भक्ति-तत्त्व को व्यक्त किया गया है। लोक-काव्य के प्रकारों में इन का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

८३- गुरमति संगीत अंक- ४ पृ० ५

८४- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्त्व पृ० १८७

१०- श्री गुरु ग्रंथ साहब की भाषा:

दूजा मांग निवाज मुसला नाल रूप बनवारी ।
हरि हरि मीआं रुपना जीआं बोली अवर तुम्हारी।।म:१
आदि ग्रंथ पृष्ठ ११६१.

* आदि ग्रंथ की भाषा के क्षेत्र में मुख्य श्रेष्ठता है। यह पुरातन हिन्दवी भाषाओं की निधि है। डा० ट्रंप

ठठठ

गुरु ग्रंथ की भाषा

भाषा का स्वरूप

गुरु ग्रंथ की भाषा के विषय में डा० गोपाल सिंह लिखते हैं: गुरु ग्रंथ की भाषा एक अद्भुत प्रकार की मिली जुली बोली है। यह नहीं कि इस में कहीं पर शुद्ध, टकसाली तथा ठेठ भाषा का प्रयोग नहीं हुआ। पंजाबी का ठेठ रूप-लहिंदी, पूर्वी, तथा केन्द्री के रूप में, वार जैतश्री, मारु, दक्खणी, आदि रचनाओं में प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी भारूप, जिस का प्रयोग सधुक्कड़ी भाषा के रूप में हुआ है उसे हिन्दवी कहना अधिक समीचीन है, और यह समस्त उत्तर भारत में समझी जा सकती है। खड़ी बोली के वेष में ब्रज, अवधी, मागधी, अपभ्रंश, फारसी तथा अरबी की विकृत शब्दावली की मिलावट से घड़ी हुई इस भाषा का स्वरूप आदि ग्रंथ में प्राप्त है। परन्तु साधारणतया विशेषकर प्रथम चार गुरु साहिबान ने, और पर्याप्त मात्रा में गुरु अर्जुन देव ने एक ऐसी भाषा को सौभाग्यवती बनाया, अथाव उचित अर्थों में उसका सृजन किया, जिस का आधार केन्द्रीय-पंजाबी है, परन्तु जो अपभ्रंश के नियमों पर संस्कृत, फारसी तथा अरबी की शब्दावली में पंजाबीपन को लाती है। इसमें लहिंदी पंजाबी की अधिक मिलावट है, विशेषकर क्रियापदों की। इस प्रकार गुरु ग्रंथ न केवल महान् काव्य की अपितु उत्तर भारत की समस्त उप-भाषाओं की अमूल्य निधि है।[१] डा० तारन सिंह लिखते हैं: इस महान् पुस्तक में उन प्रान्तों के भक्तों की वाणी है जिन की भाषाएं संस्कृत-प्राकृत- अपभ्रंश -पड़ावों से होती हुई वर्तमान प्रांतिक भाषाओं के रूप में पहुंच रहीं थीं। जिन भक्तों की वाणी आदि ग्रंथ में सम्मिलित है, वे सारे १२वीं से १५ वीं शती में महाराष्ट्र, बंगला, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, सिंध तथा पंजाब में हुए। गुरु साहिबान तथा उनके निकटवर्ती सन्त या भट्ट १६वीं तथा १७वीं शती में पंजाब में हुए। इन सब संतों की भाषा तथा शब्दावली में आश्चर्यजनक साम्य है।[२] अपनी पुस्तक पंजाबी साहित ते साहितकार में वे लिखते हैं : इन भक्तों की शैली का स्रोत संस्कृत एवं प्राकृत की भारतीय रहस्यवादी बिंबावली तथा संत-भाषा थी, जिसमें अवश्य ही फारसी शब्दावली की अधिक पुट थी। सिद्धांतक शब्द इन्होंने सब के सब संस्कृत-प्राकृत से लिये थे,

---

१- श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहितक विशेषता- पृ० १६८-१६६

२- गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यक इतिहास पृ० १२४

परन्तु कहीं कहीं आगमी सिद्धान्तपरक शब्दों तथा पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी होना आरंभ हो गया था।[3]

भाषा की परंपरा: इस ओर बहुत समय पूर्व गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था: कबीर दास आदि साधकों ने नाथ पंथियों और सहजयानियों से बहुत से शब्द, पद और दोहे ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिये थे। इन में यत्र तत्र नाम मात्र के परिवर्तन भी हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि कबीर आदि ने अनेक बातें पूर्ववर्ती साधकों से ग्रहण की थीं।[4] अतः पारिभाषिक एवं अन्य प्रचलित शब्दावली के लिये सन्त तथा भक्त कवि अपने पूर्ववर्ती नाथों-योगियों तथा सिद्ध साधकों के ऋणी हैं। फिर भी इन साधकों की साधना एवं शैली वही नहीं थी, जो इन योगियों या सहजयानियों की थी। कबीर आदि ने योगियों और सहजयानियों के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या अपने ढंगपर की।[5] इस व्याख्या के लिये इन सन्त भक्तों ने अपने उपदेशों और अपनी भक्ति-ज्ञान-मूलक वाणी को सामान्य जनता के बीच प्रचारित किया। इसके लिये इन्हों ने भाषा भी जनता की चुनी। अभिजात-वर्गीय-भाषा- संस्कृत- जो कुएं के जल की तरह बंधकर अपना लोक-प्रवाह खो चुकी थी। लोक-कण्ठ में सोचित सामान्य बोल चाल की भाषाएं बहते नीर के समान निर्मल और मधुर थीं। सन्त भक्तों ने उसी लोक भाषा को ग्रहण किया। इस प्रकार लोक-धर्म से उत्पन्न और लोक-चित्त को आंदोलित करने वाले भक्तों के साहित्य को भाषा भी लोक की ही मिली। कुल मिलाकर हिन्दी का भक्ति साहित्य लोकोन्मुख अधिक है, शास्त्रोन्मुख कम। लोक-धर्मी लोक-चित्त, और लोक भाषा का साहित्य होने के कारण उसकी लोक-प्रियता निर्विवाद है।[6] इसी लोक-काव्य से प्रभावित होने की परंपरा का अनुसरण करते हुए हमें [illegible] आदि ग्रंथ के रचयिता दिखाई देते हैं। कबीर आदि भक्तों द्वारा लोक-भाषा के प्रयोग के बारे में ऊपर विवेचन हो चुका है। जहां तक गुरु कवियों का संबंध है, पंजाब में हिन्दी काव्य को प्रसारित एवं हिन्दी कवियों को प्रोत्साहित करने का श्रेय मुख्यत: सिख गुरुओं को ही है। उन्होंने स्वयं ब्रजभाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया पंजाब-बाहर पूर्वीकालीन भक्त कवियों की हिन्दी रचनाओं का प्रचार पंजाब में किया, पंजाब-बाहर तत्कालीन कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया तथा उनकी प्रतिभा-

---

३- पंजाबी साहित्य दे इतिहासकार- [illegible] सिंह पृ० ३४

४- हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ४३

५- हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ४३

संपन्न पंजाबी शिष्य भाई गुरुदास को हिन्दी में काव्य रचना करने के लिये प्रोत्साहन दिया।[७] आदि ग्रंथ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पंजाबी-गुरु पंजाबी-काव्य-परंपराओं का परित्याग किए बिना हिन्दी काव्य परंपराओं को अपनाने में कितने उदार थे। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में पंजाब में रचित हिन्दी काव्य का प्रधान-स्रोत आदि ग्रंथ है।[८] संक्षेप में सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ तक पंजाब में हिन्दी काव्य रचना और काव्य श्रवण की परंपरा दृढ़ हो चुकी थी।[९] गुरुग्रंथ साहब की वाणी के विषय में प्रिंसिपल संत सिंह सेखों का विचार भी उल्लेखनीय है: गुरुवाणी के विषय में हमें यह तथ्य सर्वदा अपने समक्ष रखना होगा कि गुरुवाणी साधारण बुद्धि के लिये पर्याप्त दुर्बोध एवं कठिन है। एक तो इसका विषय सूक्ष्म एवं ज्ञानमयी है, दूसरे इस की भाषा पुरातन, बहुरूपी, राजस्थानी-ब्रजी का मिश्रण है। तीसरे इस की शैली इसकी विभक्तियों का प्रयोग जो आगे अति वैज्ञानिक एवं व्याकरण के नियमानुकूल है, जो दुरूह बना देता है। इसकी सूत्रक शैली भी इसकी दुर्बोधता का कारण है।[१०] अपने वक्तव्य को आगे स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं: विद्वानों-ज्ञानियों वाले शब्द, पुरातन संस्कृत तथा इसकी निकटतम अपभ्रंशों के शब्दों का प्रयोग भी बहुत हुआ है, जिन के कारण भाषा बड़ी कठिन हो गई है।[११] निश्चय ही आज लगभग चार सौ वर्षों के पश्चात् हम उस रचना के विषय में ऐसे ही विचार प्रकट करने लगे हैं। क्योंकि वह हमारी आज की भाषा से बहुत दूर हो गई है। परन्तु जिस समय वे जीवन तथा समाज के कल्याणार्थ इस का रचना हुई थी, उस समय के अनुयायियों को यह हृदय-तंत्री का नाद था, तथा उन्हें इसकी दुरूहता का तनिक भी आभास न होता होगा, क्योंकि भिन्न भिन्न समय-स्थान तथा व्यक्ति विशेष के प्रति उच्चारण की गई वाणी की शैली-एवं भाषा तत्समयानुकूल थी। इस संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का विचार मननीय है। सन्तों का जीवन सदा निष्कपट तथा स्वाधीन रहा और उनकी विचार-धारा का मूल स्रोत उनकी गहरी स्वानुभूति से संपन्न था। अतएव जो कुछ भी भाव उन्होंने व्यक्त किये वे प्राकृतिक निर्झरधारा की भाँति फूट कर स्वाभाविक शब्दों द्वारा ही प्रकट होते दीख पड़े। संतों ने सर्वप्रथम स्वभावतः उसी माध्यम को स्वीकार किया, जिसमें वे अपने बचपन से अभ्यस्त

६- हिन्दी साहित्य में लोक तत्त्व पृ० १७

७- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृ० ४ ८- वही पृ० ५

९- वही पृ० ५ १०- पंजाबी काव शिरोमणी-सेखों-५७

११- वही पृ० ५८

थे, अथवा जिससे उनके अनुयायी पूर्णतः परिचित जान पड़े और उसका भी प्रयोग उन्होंने भरसक किसी अकृत्रिम एवं उपयुक्त रूप में ही करने की चेष्टा की। उन्होंने साधारण से साधारण कोटि के प्रयोगों के प्रयोग किये, अति प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों से काम लिया और अपने अत्यंत गंभीर विषय का प्रतिपादन करते समय भी, उसका अपनी भाषा का व्यवहार किया जिसका उनको पूर्ण अधिकार रहा। आवश्यकता के अनुसार उनके वचनों में अपरिचित शब्दों के प्रयोग भी आते थे, जिन्हें वे अपने देश में रहते हुए भी नित्य संसार वालों से अधिकारी न रहकर अपूर्व बातों या बातचीतों में भी आना रहता था, जिन्हें वे पर्याप्त समझते थे। किन्तु या उन्होंने ने (उन्हें) अलंकार विशुद्ध व कवीन नहीं लाया और न किसी छन्द या रीति की मर्यादा रखना ही अपना ध्येय समझा, अथवा किसी ग्रंथ के वर्णन में कुशलता लाने के लिये ही ... उन्होंने कोई अनूठा रूप का प्रदान किया। उन्होंने की अभिव्यक्तियों के पीछे भी आनन्द या ... साथ बहता हुआ प्रवाह होता है।[12] यह कथन गुरुग्रंथ के कवियों के विषय में भी अक्षरशः लागू रहता है। गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने कहीं पर अपनी रचना में कुशलता लाने अथवा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करने का यत्न नहीं किया। जनसाधारण के लिये कही गई वाणी उन्हीं की भाषा शैली के अनुरूप कही गई हैं। जहां कहीं पंडित अथवा ज्ञानी से संबंध में बात है, वहां भाषा में कठिनता का आना स्वाभाविक ही था, क्योंकि उस शैली में जन-साधारण की भाषा तथा विद्वानों की भाषा में समन्वय स्थापित हुआ है। ... अलंकार कठिनाई को नहीं लाया गया। संत कवि थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने अथवा गागर में सागर भरने की क्षमता रखते थे। ऐसे वाक्यांश गुरु ग्रंथ में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यथा:

१- मधु पीवै मधु ... । कबीर आ०ग्रं० पृ० ११०३
२- नारि कुलखणी दोसती ... न ... राखि। म:१ आ०ग्रं० पृ०४७४
३- जिस नारि ... दोसती ... ... । म:१ आ०ग्रं०पृ०४६८
४- पढ़ि पढ़ि पंडित मोनी थाके ... । म:३ आ०ग्रं० पृ० २७
५- नानक ... ... । म:१ आ०ग्रं० पृ० ४६७

आदि और ऐसे उदाहरण हैं जिन मुहावरों से गुरु ग्रंथ की साकार स्वरूप वाणी भरपूर है।

भाषा की विविधता: आदि ग्रंथ में भाषा की विविधता के कारण, भिन्न प्रान्तों की भाषाओं के शब्दों से बनी एक अद्भुत भाषा होने से, जिसे इस भाषा में अथवा संतरीत तत्व के पहचानने वाले सब प्रान्तों के भाषा-भाषी समझते थे।

१२- सन्त काव्य पृ० १२६

डा० ट्रंप सरीखे विद्वानों ने आदि ग्रंथ की भाषा के क्षेत्र में महत्ता स्वीकार की थी और इसे प्राचीन हिन्दवी अपभ्रंशों की निधि माना था।[१३] डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने आदि ग्रंथ के आरंभिक गुरुओं की भाषा को हिन्दुस्तानी कहा है। वे लिखते हैं: यद्यपि पंजाब में प्राचीन अपभ्रंश की परंपरा से आई हुई ब्रजभाषा का बड़ा जोर था, तो भी पंजाब के कवियों को यह हिन्दी या हिन्दुस्तानी अधिक मनोनुकूल सिद्ध हुई। सिक्ख पंथ के आरंभिक गुरुओं की भक्ति-विषयक-कविताओं की भाषा इसकी साक्षी है। कबीर की भाषा तथा पंजाब के कवियों की पंजाबी-हिन्दुस्तानी-ब्रजभाषा की मिश्रित सी भाषा से हिन्दुस्तानी का साहित्य के लिये उपयोग पूर्णतया निश्चित सा हो चुका था।[१४]

गुरु ग्रंथ की भाषा का परंपरागत विकास

<u>बाबा फरीद की भाषा:</u> श्री गुरु ग्रंथ में सब से प्राचीन रचना बाबा फरीद की है। सोयीरल-औल्या पुस्तक के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यह वाणी फरीद शकरगंज (११७३-१२६६ ई०) की है।[१५] डा० तारन सिंह लिखते हैं, फरीद ने पंजाबी-मुलतानी में रचना की है। फरीद जी की भाषा में स्थानक रंग है। चाहे उनकी भाषा पंजाबी समझी जाती है, तो भी उस पर लहिन्दी बोली का स्थानक प्रभाव बहुत है, जिसने लोकजीवन के निकट होने के कारण भाषा में मिठास पैदा कर दी है।[१६] डा० हरि भजन सिंह ने बाबा फरीद जी के सूही राग में निबद्ध पद- 'तपि तपि लुहि लुहि, हाथ मरोरउ' में 'सहि' (फारसी, शौह, पति) शब्द के अतिरिक्त शेष सभी शब्दावली को हिन्दी भाषा से चिर-परिचित शब्द माना है। क्रिया पद कीआ और संयोजक भी, मैं, मरोरउ लोरउ पाई आदि शब्द इस पद में ब्रज बोली-मिश्रित-ब्रज रूप के साक्षी हैं। इस पद का हिन्दी रूप इसी कवि की पंजाबी रचना से तुलना करने पर और भी उभरता है।[१७] इस प्रकार पंजाब में हिन्दी (ब्रज) साहित्य का आरंभ पंजाबी साहित्य के साथ ही हुआ।[१८] बाबा फरीद जी की भाषा विशेषकर उनके दोहों (श्लोकों) में स्थानक प्रभाव के कारण ही पंजाबी जीवन के अधिक निकट है।

१३- ' But the chief impotance of the Sikh Granth lies in the linguistic line, as being the treasiry of the old Hindvi dialects. Dr.Trump-Preface p-viii quoted in Gurbani Kosh of Prof.Piara Singh Padm-P-15.

१४- भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृ० २११

१५- फरीद दर्शन- प्रो० दीवान सिंह पृ० १२ तथा श्री गुरु ग्रंथ साहब का साहित्यक इतिहास पृ० ३६ x(सरबो, उल्लास के बारे नाम प्रो० गुलवंत सिंह को भ्रम हुआ बताते हैं। पंजाबी भाषा विज्ञान। पृ० २२.)

<u>जयदेव की भाषा:</u> जहां तक भाषा के ऐतिहासिक विकास का संबंध है, आदि ग्रंथ में भाषा का सब से पुराना नमूना भक्त जयदेव के दो पद हैं। एक राग गूजरी में है, दूसरा राग मारू में। राग गूजरी वाले पद में चाहे सन्धि के नियमों का पालन किया गया है तो भी यह पद संस्कृत नहीं। डा० ट्रंप इस पद को संस्कृत तथा गंवार भाषा का मिश्रण कहते हैं। .... इस पद तथा दूसरे पद में भाषा की ऐसी विशेषताएं मिलती हैं जो डा० तागरे (हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश) के अन्वेषणानुसार पूरबी अपभ्रंश की विशेषताएं हैं।[19] सन्त जयदेव की भाषा पर टिप्पणी करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं: सिक्खों के आदि ग्रंथ में सन्त जयदेव के दो पद संगृहीत हैं, जिनमें से एक में पंडिताऊ भाषा द्वारा भक्ति की प्रशंसा की गई है और दूसरे का विषय कतिपय योग-संबंधी बातें हैं जो नाथपंथियों अथवा अन्य सन्तों की भाषा में लिखी गई हैं। विषय की दृष्टि से दोनों पद संत मतानुकूल कहे जा सकते हैं और वर्णन-शैली के अनुसार पहला पद कवि जयदेव की अन्य कृतियों से मेल खाता है। पदों के पाठ, उक्त ग्रंथ के अंतर्गत पूर्णतः शुद्ध नहीं जान पड़ते और उनके कई शब्द बहुत कुछ विकृत एवं अस्पष्ट हो गए हैं।[20] कुछ भी हो यह बात तो पूर्ण रूप से विश्वसनीय है कि उक्त पदों में गुरु साहिबान के साथ रखने के पश्चात् कोई फेर बदल नहीं हुआ। यह पद स्वयं गुरु नानक देव जी द्वारा अपनी प्रथम उदासी में बरदवान से उत्तर पश्चिम की ओर ५० मील के फासले पर से जयदेव के स्थान से प्राप्त किये गए बताये जाते हैं। इन की भाषा मिली जुली है, ऐसा प्रो० रतनीर सिंह का विचार है। और उनका विश्वास है कि जयदेव ने मानव मानस की समानता के विषय में बहुत सी रचनाएं की थीं, जिनमें से उक्त दो पदों लिये गये।[21] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा जयदेव की आदि ग्रंथ वाली रचना को विकृत एवं अस्पष्ट मानने का कारण इन पदों का असंस्कृत होना ही प्रतीत होता है। परन्तु संस्कृत में उपलब्ध जयदेव की रचना गीत गोविन्द भी पर अनेक विद्वानों ने अपभ्रंश की शाखा में माना है।[22] फिर आदि ग्रंथ वाले पद तो डा० तागरे के अनुसार स्पष्टतया ही पूर्वी अपभ्रंश से प्रभावित हैं।[23] वज्रयानी सिद्धों की साधना-पद्धति तथा उनकी भाषा शैली का उक्त पदों पर प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस तथ्य को स्वयं चतुर्वेदी जी ने स्वीकार किया है। डा० तारन सिंह, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा प्रकाशित अपने ग्रंथ: 'श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्तक इतिहास', में जयदेव की आदि ग्रंथ की भाषा को संस्कृत बताते हैं।[24] जिस से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे संस्कृत भाषा से अपरिचित हैं, और उन्होंने शब्दों की कठिनता को लेकर इसे संस्कृत कह दिया। सिख पंथ की ऐसी महत्वपूर्ण संस्था

द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में यह एक भारी भूल कही जा सकती है, जिसे पाठक व्यंगात्मक दृष्टि देख सकते हैं। संभवतः ऐसे ही विद्वानों ने जयदेव की आदि ग्रंथ की भाषा को संस्कृत बताया होगा तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पर भी विद्वानों के मत के विकृत होने का संभवपूर्ण भ्रम हुआ होगा।

नामदेव की भाषा: भाषा मूलक अध्ययन के दृष्टिकोण से जयदेव की भाषा के पश्चात् नामदेव की रचना का स्थान आता है। नामदेव नरसी बामणी गांव (महाराष्ट्र) में पैदा हुए। इस कारण मराठी भाषा के शब्द आपकी रचना में बहुत हैं। पंजाब में बहुत समय रहने के कारण पंजाबी भाषा को उसी प्रकार अपनाया जिस प्रकार फरीद ने विदेशी होते हुए भी अपने विचारों के प्रसार के लिये अपने संपर्क में आने वाले लोगों की लोक-भाषा को ग्रहण किया। विसोबा खेचर जो एक नाथ योगी थे, उनके शिष्य होने के कारण नाथ योगियों की शब्दावली का सब से अधिक प्रयोग प्रायः इन्हीं की रचना में मिलता है। वे जयदेव भी नाथ योगियों की साधना पद्धति एवं भाषा शैली के क्षेत्र में प्रभावित हैं। दर्जी (छीपा) होने के कारण अपने व्यवसाय संबंधी शब्दावली के प्रयोग द्वारा अपना साधना-पद्धति का विवेचन करते हुए मन को गज, जिह्वा को कैंची, कतरकर हृदय-चित्त से नाम स्मरण द्वारा नाप नाप कर जम की फांसी काटने का वर्णन उन्होंने राग आसा के एक शब्द में किया है।[25] डा० तारन सिंह नाम की भाषा शैली के विषय में लिखते हैं: नामदेव जी की जो रचना श्री गुरु ग्रंथ साहब में है, वह चाहे पंजाबी तो नहीं, कही जा सकती पर उस में मराठी और संत-भाषा के संयोग में पंजाबीपन है। इस रचना से पंजाब में समझने में कोई कठिनाई नहीं। ना केवल यह रचना पंजाब में समझी ही जा सकती है, अपितु उसका रसास्वादन भी किया जाता है। इसके भाव पंजाबी गुरुओं से समानता रखते हैं। इस में कल्पना तथा भावुकता का बल है। इस के अलंकार सर्वसाधारण की झांकी भारतीय परंपरागत प्रणाली से लिये गये हैं। भारतीय भक्ति के इतिहास के नायकों के चरित्र चित्रण की ओर भी ध्यान दिया गया है तथा राग तिलंग में फारसी शब्दावली का भी प्रयोग बड़ी सुगमता से हुआ है।[26] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने आदि ग्रंथ के अन्तर्गत नामदेव की रचना

१६- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्यक इतिहास पृ० १३६,१४६।

१७- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- पृ० १

१८- वही

१९- पंजाबी दुनिया गुरमति साहित अंक-पृ०२३१

की भाषा को हिन्दी ही कहा है। वे कहते हैं कि उनकी भाषा पर पंजाबीपन का भी कुछ प्रभाव आ गया है। किन्तु उन से अधिक शुद्ध एवं प्रामाणिक पाठों का संकलन अभी तक उपलब्ध नहीं है।[27] जहां तक नामदेव की हिन्दी रचना का संबंध है, गुरु ग्रंथ में उनकी संगृहीत वाणी से अधिक प्रामाणिक संकरण की आशा नहीं हो सकती। कबीर जैसे भक्त की वाणी (जिसके कई संस्करण प्राप्त हैं) का गुरु ग्रंथ से अधिक प्रमाणिक संस्करण प्राप्त नहीं हो सका।[28] फिर नामदेव तो कबीर से भी पूर्ववर्ती थे। कबीर पर नामदेव का प्रभाव ही नहीं अपितु कबीर ने नामदेव की रचनाओं का प्रयोग भी किया है। ऐसा लगता है, गुरु ग्रंथ साहब से पूर्ववर्ती सन्तों के काव्य के संकलन में सिद्ध हुए हैं। नामदेव की सम्पूर्ण वाणी जो आदि ग्रंथ में संगृहीत है, गुरु नानक देव ने एकत्रित की और इसका प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। नामदेव का कबीर, गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुन देव की रचनाओं पर प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नामदेव से परवर्ती गुरु ग्रंथ के रचयिता विचार-धारा, साधना-पद्धति तथा भाषा-शैली के लिये ही उनके ऋणी नहीं अपितु उनके पदों का थोड़े बहुत फेर बदल से उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है। प्रो० साहिब सिंह लिखते हैं, पंढरपुर के विट्ठल के मन्दिर में गुरु नानक देव जी ने पहुंच कर अपनी प्रथम उदासी में नामदेव की मिली जुली भाषा की रचना उनके शिष्यों से प्राप्त की।[29] जहां तक नामदेव की रचना में पंजाबीपन के प्रभाव के आने का कारण है, यह उनके पंजाब प्रान्त में रहने के कारण है। इस लिये उनकी रचना में पंजाबीपन होने से वह प्रामाणिकता से दूर नहीं कही जा सकती। कबीर की रचना भी पंजाबीपन को लिये हुए है। प्रो० रानाडे का मत है कि नामदेव की कविता बहुत दिनों तक मौखिक रूप में जनता के बीच में प्रचलित रही और सुदूर तक पंजाब में निवास करने के कारण कविता की भाषा संबंध-क्रम से परिवर्तित होती गई। जनता के प्रेम और प्रचार ने भी कविता की भाषा को आधुनिकता का रूप दे दिया।[30] गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव की संगृहीत रचना का संकलन गुरु नानक देव द्वारा प्रथम

२०- संत काव्य पृ० १३५

२१- भाषा इतिहास पृ० ५७

२२- अपभ्रंश साहित्य-पृ० ३८६

२३- पंजाबी दुनिया जनवरी, १९६५-पृ०२३१

२४- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्यक इतिहास पृ० १५१

२५- मधु मेरी मधु जिह्वा मेरी बानी- आ०ग्रं० पृ० ४८५

२६- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्यक इतिहास पृ०१६६

उदासी में १५०७ तथा १५१५ के बीच हो चुका था। जब कि नामदेव की मृत्यु (१३५० ई०) से लगभग एक सौ साठ वर्ष पहले हो चुकी है। इस समय में भी नामदेव की यह रचना अवश्य ही हस्तलिखित रूप में विद्यमान होगी। फिर गुरु नानक देव तथा उनके अनुयायियों के हाथों में पहुँचने पर रचनाओं के आने के पश्चात् इनमें किसी फेर बदल का प्रश्न ही नहीं उठता। इस वाणी की शुद्धि तथा प्रामाणिकता की ओर इतना ध्यान दिया जाता रहा है कि एक एक अक्षर को मंत्र शक्ति से युक्त समझ कर इसे पूजित ही लिखने और बांचने का नियम चला आया है। इसमें एक वर्ण का अंतर नहीं हो सकता। अतः इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है।[31] १६०४ ई० में जब गुरु ग्रंथ का संपादन हुआ तब तक गुरु नानक की प्रथम उदासी (१५०७ ई०) का, जब कि उन्होंने नामदेव की वाणी को संग्रहित किया, एक सदी और बीत चुकी थी। इस प्रकार नामदेव की मृत्यु तथा गुरु ग्रंथ के संपादन के बीच का लगभग २५० साल का समय है। इस समय में वाणी में कुछ फेर बदल हो सकता था, यदि यह इस प्रकार सुरक्षित न रखी जाती, जिस प्रकार इसे गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने रखा। गुरु अर्जुन देव ने किसी भी भक्त की वाणी को अपनी ओर से गुरु ग्रंथ में नहीं चढ़ाया और न किसी वाणी को स्वयं उन्होंने इस ग्रंथ में चढ़ाने के लिये संग्रहित किया। उन्होंने उन भक्तों की वाणियाँ ली जो गुरु नानक देव के समसामयिक अथवा पूर्ववर्ती थे। और जिन की वाणी संकलित रूप में पूरी पोथी के रूप में गुरु नानक देव जी से उन के अनुयायियों को प्राप्त हुई। गुरु अर्जुन देव ने भक्तों की आत्मा से वाणी को सुना, या नामदेव आदि गुरु जी के पास आए और उनके पास आने पर उनकी रचना को सुनकर उनके जीवन दर्शन को मुख्य समझकर उनकी वाणी को स्वीकार अथवा अस्वीकार किया- यह सब कल्पनाएं हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि समस्त भक्त वाणी गुरु नानक देव ने ही प्राप्त की थी। गुरु अर्जुन देव ने नहीं। डा० तारन सिंह ने गुरु अर्जुन देव को भ. नामदेव की कुछ रचना प्राप्त करने वाले बताया है।[32] हमारा विचार है कि कबीर के पूर्ववर्ती जयदेव तथा

२७- संत माला पृ० ९४४-

२८- संत कबीर पृ० २१.

कबीर की रचनाओं ... मेरे सामने अधिक से अधिक विश्वसनीय पाठ श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब का आता है। (रामकुमार वर्मा)

२९- भाषा [illegible] पृ० ७५

३०- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-रामकुमार-२३६

३१- डा० त्रिगुणायत- कबीर की विचारधारा पृ० ५१

३२- श्री गुरु ग्रंथ साहब दा साहित्यिक इतिहास पृ० १६०

नामदेव जैसे सन्तों की वाणी। कुरान में गुरु नानक देव का कबीर से पर्याप्त लाभ उठाया होगा, क्योंकि उनकी प्रायः उदासियों में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में घूमते हुए वे भिन्न भिन्न फिरकों के सम्पर्क में क्रमशः रहे थे, उनके विचार विनिमय किया, और उनकी रचनाओं को भी ग्रहण किया।[33] हमारा विचार है कबीर के पास भी नामदेव की रचनाएं हस्तलिखित थीं, क्योंकि उन्होंने कई पदों तथा पंक्तियों का अनुकरण किया है। इस प्रकार आधार मिल जाता है जिससे भी नामदेव के परवर्ती गुरु ग्रंथ के रचयिता उनके अत्यंत ऋणी हैं।

कबीर की भाषा:

नामदेव के पश्चात् आदि ग्रंथ के रचयिताओं में कबीर का भाषा के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर की भाषा के संबंध में सब विद्वानों ने अपना अपना मत से विचार प्रकट किये हैं। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं: गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कबीर के पाठ का व्याकरण पूर्वी हिन्दी का ही रूप लिए हुए है। उसमें स्थान स्थान पर पंजाबी का प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है, किन्तु प्रधान रूप में वे रूप पूर्वी हिन्दी (अवधी) व्याकरण से ही मिलते हैं। संस्कृत से आए हुए संज्ञा-प्रातिपादिकों (stems) के स्वरांत यद्यपि अवधी और पंजाबी में व्यंजनांत हो गए हैं तथापि पंजाबी में जो संयुक्त व्यंजन दिखाई पड़ते हैं, वे अवधी में नहीं हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत का 'अग्नि' पंजाबी में 'अग्ग' या 'अग्गी' हो गया है, किन्तु अवधी में 'आगि', आग या आगि है। कबीर ने 'आगि' का ही प्रयोग किया है। 'अग्गी' या 'अग्ग' नहीं। 'आगि भी फूटी पानी पर फूटा' (अंग ७)[34] डा० वर्मा कहते हैं, कबीर वाणी में कहीं कहीं खड़ी बोली और ब्रजभाषा की विभक्तियां हैं, किन्तु पंजाबी का नूं (को) ने (कारण) तों (अपादान) दा (संबंध) विच (अधिकरण) की विभक्तियां कहीं नहीं हैं। क्रियाओं के संबंध में कबीर ने पूरी स्वतंत्रता ली है। कहीं खड़ी बोली कहीं ब्रजभाषा और कहीं अवधी की क्रियाओं के रूप कबीर की कविता में पाये जाते हैं।[35] पंजाबी उच्चारण और शब्दावली का भी प्रयोग कुछ स्थलों पर हुआ है, किन्तु वह सब प्रभाव कबीर की कविता पर गौण रूप से पड़े हैं, जैसे प्रभाव किसी प्रान्त पर खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रभाव। वस्तुतः कबीर की कविता पूर्वी हिन्दी में ही रूप लिये हुए है, और यह देखकर आश्चर्य होता है कि पंजाबी भाषा[36] की धर्म पुस्तक श्री आदि ग्रंथ साहब में कबीर की कविता का पंजाबी संस्करण नहीं हुआ, वह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है।[37] आचार्य

३३- [illegible] पृ० ८३ ३४- संत कबीर- डा० वर्मा पृ०२२

३५- वहीं पृ० २४

३६- पंजाबी भाषा के स्थान पर पंजाबी भाषा भाषियों होना चाहिए था।

परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर की आदि ग्रंथ की रचनाके विषय में लिखा है, कि सिक्खों के आदि ग्रंथ में कबीर साहब के लगभग सवा दो सौ पद एवं ढाई सौ साखियां संगृहीत हैं, जिनका पाठ प्राचीन है। उनमें दीख पड़ने वाली भाषा की प्राचीनता तथा भावों की सादगी व स्वाभाविकता उनके कबीर कृत होने मानने में सहायता पहुंचाती है। परन्तु इस संग्रह में आए हुए, सभी पदों की प्रामाणिकता में भी हमें तब संदेह होने लगता है, जब हम देखते हैं कि इनमें से कुछ वाक्य दूसरों की रचनाएं होंगी, जिन्हें संग्रह कर्ताओं ने भ्रमवश कबीर-कृत मानकर इनमें स्थान दे दिया होगा।[38] ऐतिहासिक ग्रंथों तथा नवीन शोध के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि, गुरु नानक देव, जो कबीर के समसामयिक थे, उन्होंने काशी जाकर उदासी में कबीर के स्थान पर मिले, उनसे विचार विमर्श किया और उनकी वाणी को लिपिबद्ध करवाई,[39] जिसे उन्होंने अपने पास सुरक्षित रखा और उसका अपनी रचना में प्रयोग किया। जिन सन्तों की वाणी आदि ग्रंथ में सम्मिलित है, उनकी वाणी का गुरु ग्रंथ के अतिरिक्त कोई और प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध होने की आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि जिस विश्वास एवं निष्ठा से वाणी के शब्दों, अक्षरों तथा विराम चिन्हों के पूर्ण रूप से सुरक्षित रखने की परम्परा का पालन इस ग्रंथ के विषय में हुआ है, शायद ही किसी अन्य ग्रंथ का हुआ हो। इसी कारण डा० राम कुमार वर्मा ने कबीर की आदि ग्रंथ वाली रचना को प्रामाणिक माना है, अन्य संस्करणों को नहीं। वे कहते हैं: "मैं ने संत कबीर का संपादन श्री गुरु ग्रंथ साहब के पाठ के अनुसार ही बड़ी सावधानी से किया है। कबीर की वाणी संबंधी सभी सामग्री को देखते हुए संत कबीर के पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए।"[40] डा० गोविंद त्रिगुणायत का मत है कि कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया। उनकी वाणियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता है, साथ साथ खड़ी भाषा, ब्रज, भोजपुरी, पंजाबी मारवाड़ी आदि उप-भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है। कबीर की भाषा की पहली विशेषता पंजाबीपन है। कबीर ग्रंथावली और सन्त कबीर दोनों की भाषा में पंजाबीपन आ गया है। इसका कारण कबीर का अपने जीवन का बहुत

३८- संत कबीर- पृ० २६

३९- भारत इतिहास पृ० १३

३८- सन्त भाषा पृ० ८५६

४०- संत कबीर पृ० २७

बहुत भाग वे पंजाब में व्यतीत करना है।[41] डा० दास के मतानुसार सन्तों के सत्संग के कारण कबीर को पंजाबी का यथेष्ट ज्ञान हो गया था और उन्होंने स्वयं उसी रूप में अपने पदों की रचना की जिस रूप में वह प्राप्त है।[42] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखते समय तो डा० वर्मा, डा० दास के विचार से सहमत न थे, परन्तु सन्त कबीर का संपादन करते समय, अपने विचारों में, नवीन शोध के आधार पर वे डा० दास के विचार के पास तक खिसक गये और आदि ग्रंथ में संगृहीत कबीर वाणी के पाठ को ही अधिकाधिक प्रामाणिक कहा। कबीर की भाषा के विषय में स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक के विचार बहुत ही युक्ति संगत हैं। नागरी प्रचारणी पत्रिका के एक लेख - राजस्थानी हिन्दी और कबीर - में वे लिखते हैं: कबीर ने जिस भाषा में रचना की है, वह उस काल की प्रचलित साहित्य-भाषा है जो किसी प्रांत विशेष की बोल चाल की भाषा नहीं थी, बल्कि साहित्य रचना के लिये समस्त उत्तर भारत में प्रयुक्त होती थी, बहुत कालेन देश भ्रमण होने के कारण और सिद्धान्ततः संकुचित प्रांतीयता और बहुत मतमतांतरों के विरोध के कारण कबीर ने इसी व्यापक देश भाषा को साहित्य-रचना के लिये उपयुक्त समझा, यह युक्ति संगत भी है। फिर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी जब अनुसंधान करते हैं तो प्राचीन हिन्दी के प्रायः सभी ग्रंथों में उस व्यापक साहित्य-भाषा का रूप मिलता है। पारीक जी के इन शब्दों से डा० सरनाम सिंह ने अपना विचारसाम्य प्रकट किया है,[43] तथा आगे चलकर कहा है कि कबीर की भाषा को 'सन्ध्या-भाषा' से संबोधित कदापि नहीं किया जा सकता क्योंकि सन्ध्या भाषा के प्रयोगों का जो ध्येय था, उससे कबीर का लक्ष्य सर्वथा भिन्न था।[44] डा० पारीक का मत गुरु ग्रंथ की भाषा के विषय में भी अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। गुरु ग्रंथ के संपादक का लक्ष्य इन महान् रचना की पंक्तियों अथवा केवल सिक्खों के लिये सुरक्षित करना नहीं था, अपितु संतों तथा गुरुओं के संदेश समस्त भारत भूमि में प्रेषित करना था। इसी लिये गुरुओं की वाणी भी पंजाबी नहीं, पर पंजाबी भाषा का कुछ स्थानक प्रभाव अधिकाधिक है। डा० हरिभजन सिंह लिखते हैं, 'गुरु अपने प्रचार क्षेत्र को पंजाब तक ही सीमित

४१- कबीर की विचारधारा पृ० ३७३।

४२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २६२।

४३- कबीर एक विवेचन पृ० २६८।   ४४- वही पृ० २६६

न रखना चाहते थे। पंजाबेतर क्षेत्र में मेल स्थापित करने का काम गुरु परिवार सदैव करता है। इसी अभिप्राय से उन्होंने ने कबीर, जयदेव, त्रिलोचन, नामदेव, परमानंद, पीपा, रविदास, रामानंद आदि और पंजाबी कवियों की वाणी को आदिग्रंथ में स्थान देकर उसे गुरुवाणी के समान ही वन्द्य एवं आदरणीय ठहराया।......

.................गुरु न केवल पंजाब बाहर कवियों की रचना को पंजाब में प्रचारित करना चाहते थे बल्कि हिन्दी क्षेत्र को भी पंजाब में होने वाले कार्यों के स्वरूप और गतिविधि से परिचित कराना चाहते थे, इस अभिप्राय के लिये उन्होंने अपने प्रचारक हिन्दी क्षेत्र में भेजे। भाई गुरुदास जैसे जो प्रचारक थे जो बहुत दिनों तक बनारस और आगरा में रहे।[45] वस्तुतः नामदेव की भाषा से कबीर तक उनके समस्त सम-सामयिक भक्त कवि तथा गुरु साहिबान प्रभावित थे, और इन सब की वाणी की भाषा उस समय का एक ही साहित्यिक भाषा है। प्रत्येक रचयिता की मातृभाषा का पुट उस में मिलता है। गुरु नानक देव की भाषा में असंस्कृत शब्दों को देख कर भाषा विज्ञान से अपरिचित होने के कारण स्वामी दयानंद ने गुरु नानक के विचारों एवं भाषा शैली पर आक्षेप किया था।[46] परन्तु उन्हें पता नहीं था कि बाबा जी की भाषा जनता के कल्याण हित की गई रचना की अपने समय को चित्रित करने वाली परम-तत्व का रहस्योद्घाटन करने वाली उस समय की जनता के धड़कते दिलों की परिचायक है। अतः गुरु नानक की प्रतिभा जन सर्वसाधारण की मिली जुली भाषा में प्रस्फुटित हुई।[47]

गुरु ग्रंथ की भाषा यथार्थ रूप में बात यह है कि जिस भाषा का प्रयोग गुरु नानक तथा उनके अनुयायियों ने किया, इस के पीछे एक विशेष ऐतिहासिक परंपरा है, जिसका अनुसरण भक्ति-काव्य में निश्चित होता रहा। नानक-वाणी के विषय में यह कहना उचित है, कि त्रिलोचन तथा नामदेव (दक्षिण) कबीर तथा रविदास (बनारस) जयदेव (बंगाल) सधना (सिंध) की वाणियों का ज्ञान गुरुवाणी के समझने में सहायक सिद्ध होगा।[48] तभी तो पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने गुरमति निरणय सागर में कहा था: 'गुरुग्रंथ में गुर कही, भाषा देस अनेक। संस्कृत पुन पारसी, तिनको तो विवेक।'[49] इसी विचार को प्रो० प्यारा सिंह पदुम ने इस प्रकार कहा है:

४५- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ० ४

४६- सत्यार्थ प्रकाश- पृ० ३५०।

४७- गुरुनानक भाषा- पृ०५३ डा० के० स० बेदी

४८- महाकवि गुरु नानक-भाषा विभाग, पटियाला में प्रो० सीता राम शास्त्री का लेख, 'गुरु नानक देव जी दी बोली' पृ० १६५।

गुरु ग्रंथ साहब की भाषा पंजाबी-हिन्दी मिली जुली संत-भाषा है, और कहीं कहीं भाषा, संस्कृत, फारसी और अन्य प्रांतिक भाषाओं का पुट भी है।[५०] गुरु नानक की भाषा के संबंध में डा० श्याम सुन्दर दास के विचार भी महत्वपूर्ण हैं- महात्मा नानक की भाषा में पंजाबीपन स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जो उनके पंजाब निवासी होने के कारण है। परन्तु साथ ही अन्य प्रांतीय प्रयोग भी कम नहीं हैं, जो उनके पर्यटन के परिचायक हैं। गुरु नानक ने घर बार छोड़ कर जब सन्यास ग्रहण किया, कहा जाता है कि तब उनकी भेंट महात्मा कबीर से हुई थी। कबीर के उपदेशों का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था। उनके ग्रंथ साहब में कबीर की वाणी भी संगृहीत है।[५१] कबीर की भाषा भी उन्हों ने मिली जुली सन्तभाषा कही है।[५२] डा० हरदेव बाहरी का मत है, सन्त काव्य में खड़ी बोली का प्राधान्य है। सन्तों का ध्येय था ईश्वर भक्ति प्रचार और इस के लिये जन समाज की भाषा उपयुक्त थी। इस में ब्रज भाषा और अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी यत्र तत्र आ गये हैं। संत लोगों का सम्पर्क भिन्न भिन्न जातियों-प्रदेशों और संप्रदायों से होता था। उनके प्रभाव से और उधार प्रभाव डालने के लिये वे सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग करते थे। कबीर की खड़ी बोली में राजस्थानी और पंजाबी मिली हुई है। गीतों में ब्रजभाषा और कहीं कहीं पूरबी भाषा भी है। गुरु नानक ने भी हिन्दी में पंजाबी भाषा और खड़ी बोली का प्रयोग किया है। सन्तों की कविता हिन्दू और मुसलमान सब के लिये है, इस लिये उस ने अरबी, फारसी का भी स्वतंत्र प्रयोग किया है।[५३] गुरु नानक काव्य के संबंध में डा० तारन सिंह ने ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं: गुरु नानक साहब अपने शीन पंजाबियों के लिये लिख रहे थे, परन्तु सारे भारतीय राष्ट्र के हितों का उनको ध्यान था। इस सामने हित के लिये सब की सांझी शब्दावली तथा पंजाबी मुहावरेदार भाषा का उन्हों ने प्रयोग किया।[५४] डा० हरिभजन सिंह लिखते हैं- अपने धर्म और संस्कृति का आधार लेकर हिन्दू सिक्ख जनता में एक नव चेतना उदित हो रही थी, और वे शासक वर्ग से राजनीतिक युद्ध करने का भी आह्वान कर रहे थे। इस नवोदय के अभिन्न साधन थे, हिन्दी भाषा और गुरुमुखी लिपि। मुसलमान शासकों की पंजाबी भाषा और फारसी लिपि से इनका अन्तर विशेष रूप से दृष्टव्य है। भाषाओं एवं लिपियों

४९- गुरुवाणी कोश - प्यारा सिंह पदुम पृ० २७ पर उद्धृत।

५०- वही पृ० १५

५१- हिन्दी साहित्य पृ० १६०

५२- वही पृ० १५८

५३- हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास पृ० ६५

था यह ध्रुवीकरण ही तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक ध्रुवीकरण की स्पष्ट प्रतिछाया है। पंजाब के हिन्दू कवियों द्वारा भी पंजाबी भाषा में पर्याप्त रचना हुई है किन्तु प्रारम्भ से ही वे तीन भाषा शैलियों में रचना करने की रुचि रखते रहे हैं- पंजाबी, हिन्दी और मिश्रित। प्रथम पांच गुरुओं द्वारा इन तीनों भाषा-शैलियों का प्रयोग हुआ है। गुरु नानक के पश्चात् उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ता जाता है। पंचम गुरु तक पहुंच कर पंजाबी और मिश्रित भाषा शैली की अपेक्षा हिन्दी भाषा शैली का प्रयोग स्पष्टतः अधिक हो जाता है।[५५] गुरु अंगद देव तथा गुरु अमरदास की भाषा शैली मिश्रित रही है। जहां तक गुरु रामदास की भाषा का संबंध है, उन्होंने शुद्ध साधु भाषा का प्रयोग किया है और उनकी इस सन्त भाषा में पंजाबी का अंश अधिक प्रधान है। पंजाबी में भी कहीं कहीं मुलतानी का रंग पाया जाता है और सरलता के कारण प्रवाहमय है।[५६] जहां तक गुरु अर्जुन देव की भाषा शैली का संबंध है, इसमें ग्रामीणता कम है और इसकी प्रवाह अधिक परिलक्षित होता है। रचना में संश्लिष्टता अधिक है। हिन्दी संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है। अलंकारादि का प्रयोग भी अधिकतर पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित है।[५७] गुरु अर्जुन देव पंजाब के मुख्य संत कवि हैं, जिन्होंने अधिकतर संत भाषा में और कुछ पंजाबी में वाणी रचकर हमारे साहित्य की वृद्धि तथा समृद्धि की है।[५८] स्मरण रहे कि गुरु वाणी में प्रयुक्त शब्द भण्डार का अधिकांश भाग समान रूप से हिन्दी और पंजाबी शब्द भंडार कहलाने का अधिकारी है। गुरुओं ने भाषा भेद को दूर करने के लिये 'क्रिया-पदों' का प्रयोग कम से कम किया है। समान शब्दावली वाले और क्रियापद हीन पाठ्य के विषय में कई बार निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वे हिन्दी पाठ्य के उदाहरण हैं कि पंजाबी पाठ्य के। मिश्रित शब्दावली वाले पाठ्य में तो स्थिति और भी कठिन हो जाती है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिश्रित शैली का उत्तरोत्तर लोप होता जाता है, ... सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हमें दो भाषा शैलियों का ही प्रचलन दृष्टिगत होता है। गुरु ग्रंथ के लिपिकार भाई गुरदास ने स्पष्टतः दो भिन्न शैलियों में रचना की। उनकी वारें ठेठ पंजाबी और उनके कवित्त

५४- गुरु नानक चिंतन ते कला पृ० २४८-

५५- गुरु मुखी लिपि में हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन-पृ० १२

५६- गुरु रामदास की वाणी, संपादक प्यारा सिंह पद्म-भाषा विभाग, पटियाला। भूमिका

५७- श्री गुरुग्रंथ साहब दा साहित्क इतिहास पृ० ४२६

सवैया (विशुद्ध ब्रज) में लिखे गये हैं। नवें गुरु साहब के पश्चात् हिन्दू-सिख के नामों में केवल एक ही भाषा हिन्दी में काव्य रचना की प्रवृत्ति का उदय हुआ। अब सभी कवि हिन्दी (ब्रज) को अपनी काव्य रचना का माध्यम बनाते हैं। बीच बीच में कहीं बोली और पंजाबी का भी प्रयोग किन्तु निर्भ्रांत हुआ है।[58] गुरु अर्जुन के पश्चात् गुरु व्यक्तियों में केवल गुरु तेग बहादुर की है, जिनकी रचना आदि ग्रंथ में गुरु गोविंद सिंह द्वारा यथा स्थान संगृहीत की गई। इस प्रकार ज्ञात हुआ है, कि गुरु अर्जुन देव के बाद आने वाले गुरुओं द्वारा शुद्ध हिन्दी में लिखने की परंपरा स्थिर हो चुकी थी। गुरु तेग बहादुर जी शुद्ध-भाषा-परंपरा के अनुगामी हैं। उन्होंने न केवल मिश्रित भाषा में रचना नहीं की, बल्कि ठेठ पंजाबी को भी काव्य रचना का माध्यम नहीं बनाया। इस प्रकार वे प्रथम सिक्ख गुरु हैं, जिन्होंने विशुद्ध और केवल हिन्दी में रचना की है। पूर्ववर्ती गुरुओं से प्राप्त परंपरा को पुष्ट करने में उनके योग के कारण हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में विचार का निरपेक्ष भाव रहा होगा। गुरु तेग बहादुर की भाषा पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा अधिक केन्द्रोन्मुख है। उसमें पंजाबीपन का विशेष आग्रह नहीं है। उन की भाषा स्वभाव प्रधान होती हुई भी पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा तत्सम की ओर अधिक झुकाव रखती है। पहले गुरुओं की भाषा की मुख्य विशिष्टता है लहंदी और देशज शब्दों का प्रचुर प्रयोग। गुरु तेग बहादुर की संपूर्ण रचना में भी देशज और लहंदी शब्दों का पूर्ण अभाव है। देशज शब्द फारसी शब्द अपभ्रंश रूप में भी दिखाई नहीं देते। एक और स्पष्ट अन्तर यह है कि किसी शब्द का रूप विकृत नहीं हुआ है। अतः उनकी भाषा में शब्दों का वह ग्राम्य रूप दिखाई नहीं देता, जो पूर्ववर्ती गुरुओं की मुख्य विशेषता रही है। तेग बहादुर की भाषा स्पष्टतः अधिक नागरिक, अधिक केन्द्रोन्मुख है। अपवाद रूप में कुछ शब्द ऐसे आ गये हैं, जो उनका संबंध पूर्व परंपरा से स्थापित कर देते हैं। 'चिरिया', 'निंदिआ', 'सरीर', 'कमावै', 'कहुँ'। हिन्दी में इन शब्दों के प्रायः 'चिड़िया', 'निंदा', 'शरीर', है तथा 'कमावे' पंजाबी भाषा (बोली) का अपना रूप है। 'कहुं' शुद्ध हिन्दी पंजाबी दोनों का है, परन्तु इसे कहुँ लिखना (कहुँ से) पंजाबी का है।[60] गुरु गोबिन्द सिंह

58- गुरु तेग बहादुर जी की वाणी, भाषा विभाग, पटियाला पृ० 26

59- गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ०26-27

60- वही पृ० 54

ने भी अपने सिद्धान्त स्थापित परंपराके अनुकूल भाषा शैली का प्रयोग किया है। पंचवाणी में इनकी साखा शैली भी आदर्श पर भी ब्रज भाषा का स्पष्ट प्रभाव है।

<u>वज्रयानी शब्दों की परंपरा :</u> नीचे हम भाषा के प्रयोग के आधार पर भाषा शैली तथा शब्दों के विकास की परंपरा का क्रमानुसार प्रस्तुत करते हैं। वज्रयानी शब्दों की परंपरा से कुछ ऐसे शब्द सन्त साहित्य में आए, जिन का प्रयोग आदि ग्रंथ के रचयिताओं ने भी किया, परंतु पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या सन्तों ने अपने ढंग से की। इन शब्दों में शून्य, खसम, सहज, ..., ..., अनहद शब्द, ..., सुरति, उलटा साधना, गंगा-जमुना-संगम, चंद्र-सूर्य-संगम, ..., ..., हंस, भंवरा, मृग, ..., ..., ..., ..., नारी (माया), ..., ..., आदि कुछ नाम योगियों की रचनाओं में भी आए हैं और सन्तों ने उनका प्रयोग किया है। जिस प्रकार सिद्धों व योगियों ने भिन्न साधना पद्धति को सन्तों ने प्रस्तुत किया, उसी प्रकार इन शब्दों की अपने ढंग से भी सन्तों ने व्याख्या प्रस्तुत की।

<u>शून्य :</u>

नागार्जुन: <u>शून्यामिति</u> न ... शून्यामिति ...। (सिद्ध साहित्य की भूमिका-३६)

... : ... <u>शून्यो</u> ... <u>शून्य</u>: शून्य ...। (सिद्ध साहित्य-३३८

गोरखनाथ : <u>शुंनि</u> न ... <u>शुंनि</u> न ...। <u>शुंनि</u> निरंजन ...। (गोरखबाणी- ७३)

नामदेव : ... शून्य समाधि ...। (आ०ग्रं० ६७३)

कबीर : <u>शुंनहि शुंनु</u> ... ...। (आ०ग्रं० पृ० ११०३)

गुरु नानक : ... <u>शुंनहु शुंनु</u> उपावणा। (आ०ग्रं० पृ० १०३७)

गुरु अर्जुन देव : <u>शुंन</u> समाधि ... (आ०ग्रं० पृ० ...) <u>शुंन</u> समाधि ... (म:५-६०४)

<u>शुंन</u> समाधि ... (म:५ पृ० १०३८)

<u>खसम :</u>

...: ... तहिं खसम ...। <u>खसम</u> ... भणावि परिज्जइ। दोहा कोश पृ०३२

तिलोपा: भणइ ... खसम ...। दिवा राति सहजे रहिअइ। ... दोहा-५५

गोरखबाणी में स्थान स्थान पर गगन शिखर या गगन मंडल का उल्लेख है परन्तु खसम शब्द का प्रयोग नहीं। सिद्ध-साधना में खसम शब्द मन को शून्य या खसम समान धारण करने के अभ्यासार्थ प्रयुक्त हुआ है।[६२]

६१- सिद्ध साहित्य पृ० ३६३

कबीर: १-काम किवारि भाटी संगि रहै। (आ०ग्रं० पृ० ९६३)

२-काम भरे तउ नारि न रोवै। (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु नानक: १-कामै के दरबार। (आ०ग्रं०पृ० १४८) २- काम की नदरि। (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु अमर दास: कामै का [illegible]। (आ० ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु अर्जुन देव: कामु तू है [illegible]। (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने 'काम' शब्द [illegible], पति के अर्थों में लिया है। उनकी रचना में काम शब्द [illegible] का [illegible] है।

सहज: सहज शब्द उन्हीं अर्थों में नाथ तथा संत-योगियों द्वारा गृहण किया, जिस अर्थों में वज्रयान, सिद्ध [illegible] प्रयोग करते थे।[62]

गोरखनाथ: ऐसा [illegible] पांचौं तत राखु सहजि समाना।[63]

[illegible] गोरखा [illegible] निरंजन जाना।

[illegible]: सहजै गगन सहजै पवना। सहजै सहजै [illegible]।[64]

गोरख: [illegible]: [illegible] रात्रि न सोवंत [illegible] पे खाया। [illegible] राति न सोवंत दिन सहज आया।[65]

नामदेव: सहजि अवलि धूड़ि मणी गाडी चालणी। (आ०ग्रं० पृ० ११६[illegible])

कबीर: सहजि त्रिलोकी में [illegible] न [illegible] सहज [illegible] रहै [illegible]। (आ०ग्रं० [illegible])

रविदास: सहज समाधि उपाधि रहत होइ बडे भागि लिव लागी। आ०ग्रं० ११०६

गुरुनानक: (१) सहजे सहजे मिलिआ रहै [illegible] पावे। आ०ग्रं० [illegible]

(२) सहजि [illegible] नाम (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु अमरदास: (१) सहजे प्रभु मिलिआ (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

(२) सहजे सांति मिलि (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु रामदास: सहजे ही हरिनामि (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु अर्जुन देव: सहज सुख आनंद (आ०ग्रं० पृ० [illegible])

गुरु ग्रंथ के रचयिताओं में सहज शब्द निर्विकारावस्था का द्योतक है।

गुरु: गुरु शब्द का प्रयोग साधना पद्धति में अति प्राचीन है। साधना-पद्धति में गुरु शब्द परंपरागत रूढ़ि सा बन गया है। सभी सन्तों ने गुरु के महत्व को बराबर स्वीकार किया है:

गोरखनाथ: गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुरु बिन ग्यान न पायला रे भाईला।[66]

रामानंद: गुरु का सबदु काटै कोटि करम।[67]

नामदेव: [illegible] सतिगुरु [illegible] तारे केसवा।[68]

६२- सिद्ध साहित्य पृ० ३६८   ६३- गोरखबानी पृ० १००

बेणी: गुरु की साखी राखै चीत तउ गुर गमि कोने बिरला कोई। ६९

कबीर: गुरसेवा ते भगति। ७०

गुरु नानक : (१) गुर ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई। ७१

(२) गुर साखी जोति परगटु होइ। ७२

गुरु अंगद: जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।

एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार। ७३

गुरु अमरदास: गुरु सेवहु ... ... । ७४

गुरु रामदास: गुर ... ... जन नानक ... ... । ७५

गुरु अर्जुन: गुरु परमेसरु पूजीऐ मनि तनि लाइ पिआरु। ७६

गुरु तेग बहादुर: नाम रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंदु।

कहु नानक इह जगत महि किन जपिओ गुरमंतु। ७७

अस्तु। ... गुरुओं, ... , ... , ... , ... आदि की दृष्टि से गुरु ग्रंथ के रचयिताओं में इस परंपरा के अक्षुण्ण क्रम, ... को ढूंढना बहुत ही सुगम कार्य है। ... के कारण ... के विवेचन ... ध्यान नहीं किया जा सकता। ... भी ... नाथ ... से मिलती जुलती ... हैं। नाथों के ... , ... मार्ग, ... , नाद-बिन्दु, दसम द्वार, त्रिकुटी, गुरमुख-मनमुख, अजपा जाप, पवन, अनहद ... , ब्रह्मज्ञानी, जोगी, जिह्वा, अग्नि-नागिन, लोहा ... , ... गंगा, मानुष जन्म, नाम, दान, स्नान, ... , ... , ... आदि ऐसे ... पद में ... नाथों जोगियों ने भी अपनाये किया है और सन्तों ने भी। परन्तु दोनों की व्याख्या में अन्तर है। इस परंपरा ... के लिये आचार्य ... प्रसाद द्विवेदी की ... : कबीरदास आदि साधकों ने नाथ पंथियों और सहजयानियों से बहुत से शब्द, पद और ... ग्रहण किये थे। ... नाथ ... के परिवर्तन भी हैं। इस प्रकार यह ... स्पष्ट है, कि कबीर आदि ने ... पुराने साधकों से ग्रहण की थीं। फिर भी कबीर की ... नहीं थी जो इन जोगियों या सहजयानियों की थी। कबीर आदि साधकों ने जोगियों और सहजयानियों के पारिभाषिक शब्दों की ... व्याख्या की।[७८] ... सन्तों-साधकों

७८- हिन्दी साहित्य पर पृ० ३४६ ... प्रवाह पृ० ... से उद्धृत ।

की साधना पद्धति इन योगियों से सर्वथा भिन्न एवं नवीन था। जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त व्याख्या का संबंध है, गुरु ग्रंथ के रचयिताओं ने स्थान-स्थान एवं परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। अत: यह भाषा लगभग सब की रचनाओं में कुछ स्थानक प्रभाव के कारणों के अपवाद को छोड़कर एक सी रूप में प्रयुक्त हुई है, जिसके परंपरागत विकास क्रम तथा भाषा के स्वरूप को हम गुरु ग्रंथ के भक्त कवियों तथा उनके पूर्ववर्ती सन्तों से लेकर गुरुओं तक की रचनाओं में देख चुके हैं। गुरु ग्रंथ में गुरुओं के पूर्व के सन्तों की भाषा, प्रांतीय भाषाओं की शब्दावली से प्रभावित है। परन्तु उनकी आत्मा एक है। गुरु नानक से गुरु राम दास तक मिली जुली भाषा का प्रयोग की, जिस में पंजाबी का व्यापक प्रभाव है। गुरु अर्जुन ने एक ऐसी साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है, जो सिद्धों वाली संत भाषा है। पंजाबी का प्रभाव बहुत कम है। गुरु तेग बहादुर तथा गुरु गोबिंद सिंह (जिन की वाणी आदि ग्रंथ में नहीं है) की रचनाएं अपने पूर्ववर्ती गुरुओं से विशिष्ट हैं। क्योंकि गुरु अर्जुन देव के पश्चात् सुखमनि-साहिब-शबद में ही इस भाषा शैली का प्रयोग नहीं किया गया। गोरखनाथ और कबीर [illegible] गुरुवाणी का भाषा की दृष्टि से परंपरागत [illegible] आनन्द और प्रसार प्रवाह के रूप में दृष्टिगत होता है। गुरुओं की भाषा के संबंध में [illegible] सिंह दोनों का विचार भी उल्लेखनीय है: सिख गुरुओं में गुरु नानक देव की भाषा सबसे अधिक पंजाबी है, जिसपर लहँदा का व्यापक प्रभाव है। ब्रज भाषा अथवा हिन्दवी का प्रभाव बहुत कम है। [illegible] की भाषा में संस्कृत शब्द [illegible] रूप में बहुत मिलते हैं। ब्रज भाषा के रूपों का लगभग अभाव ही है। गुरु अंगद देव तथा गुरु अमरदास की बोली पंजाबी ही है। परन्तु गुरु अरजनदेव की भाषा पर ब्रज का प्रभाव प्रत्यक्ष है।[७६] गुरु राम दास की भाषा पर ब्रज का प्रभाव [illegible] हो गया है। जहाँ तक

६५- सिद्ध साहित्य पृ० ३१६ ६६- गोरखबाणी पृ० १२८

६७- आ०ग्रं० पृ० १३५१ ६८- आ०ग्रं० पृ० १३६६

६९- आ०ग्रं० पृ० ६९१ ७०- आ०ग्रं० पृ० १३१६

७१- आ०ग्रं० पृ० २ ७२- आ०ग्रं० पृ० १३

७३- आ०ग्रं० पृ० ४६३ ७४- आ०ग्रं० पृ० ७६

७५- आ०ग्रं० पृ० २३४ ७६- आ०ग्रं० पृ० १२

७७- आ०ग्रं० पृ० १४२६ ७८- हिन्दी साहित्य की भूमिका-४३

उन की रचना में हिन्दी अथवा पंजाबी होने की रेखा खींचना कठिन है। गुरु अर्जुन देव की वाणी में ब्रज भाषा का प्राधान्य है। गुरु तेग बहादुर की सारी वाणी ब्रज भाषा अथवा हिन्दवी रूप में है। दशम गुरु गोविन्द सिंह जी की वार अकुल और केवल चंडी दी वार पंजाबी में है, शेष समस्त रचना ब्रज भाषा में है। इसी परंपरा में सन्तोख (सूर्य प्रकाश प्रताप ग्रन्थ) रत्न सिंह भंगू (पंथ प्रकाश) ज्ञानी ज्ञान सिंह, संत गुलाब सिंह, भाई दित सिंह तक अपनी कविता पंजाबी प्रभाव वाली ब्रज भाषा में लिखते रहे।

आदि ग्रंथ की भाषा का

वैज्ञानिक विवेचन।

मात्रा भेद	दीर्घ से ह्रस्व होना
१- आनंद- अनंद	अनंद भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाइआ-म:३ [८०]
२- आधार-अधार	तउ जीआ कुछु नाहि भेटेक अधारु तूं।म:१ [८१]
३- पाटांबर-पटंबर	पाणी डूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले।म:५ [८२]
४- आकाश-अकासु	धुंधहु धरति अकासु उपाए। म:१ [८३]
५- धरती-धरति	पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।म:१-पृ०८
६- शून्य- सुन्न	सुन्न कला अपरंपर धारी। म: १ आ-ग्र-पृ०१०३७

अ -आ	ह्रस्व से दीर्घ होना
१- पंथ - पंथा	पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि। म:५ [८४]
२- गोर- गोरा	गोरहि गोरा गोर। म: १ [८५]
३- अपना- आपना	आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ। म:१ [८६]
४- जपै- जापै	परन सहित जो जापै नाम्। रविदास [८७]

इ- ई	
१- बिजली- बीजल-बीजली	चमकार बीजुल वही। नामदेव [८८]
२- विचार-वीचार-वीचारो	१- थाल विचि तिनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो। [८९] २- पड़ि पड़ि करहि वीचारु। म: ३
३- जित- जीति	कोटनमसि नानक कोऊ नाराइणु जिह जीति। म:६ [९०]
४- नित्य-नीत	उपजै बिनसै नीत- प्रानी होत्त नीत। म:६ [९१]

उ-ऊ	
१- वस्तु- वसतू	थाल विचि तिनि वसतू पईओ। :५ [९२]

२- गुरु - गुरु	मानस गुरु गिरि ... पातकि नल्ल।[९३]
३- उपजै-उपजै	नानक नामे ... उपजै।। म:३[९४]
४- दुख-दूख	कर्म ... ठाकुर ... दूख ... म:५[९५]
५- पुत्र- पूत	पूत पूत ... म:१[९६]
२- विपर्यय:	स्वर विपर्यय (स्वरों का स्थानांतर)
१- आनन्द-अनन्दा	... अनंदा, ... परि जाए।[९७]
२- आश्चर्ज-अचराउ	... अचराउ।।म:५[९८]
३- कुछ- कछु	... कछु न ... उपाइ।। म:६[९९]
४- बिन्दु-बुंद	कबीर निरमल बुंद ... की परि गई भूमि बिकार।[१००]
५- कपड़ा-कापड़	कापड़ु पहिरसि म:१ पृ० ११८७
६- बारा- बराबा	गोबिंद ... की ... बराबा पृ० १२
	व्यंजन विपर्यय (व्यंजनों का स्थानांतर)
१- डूबा-बूडा	बूडा ... कबीर ...।[१०१] बूडे ... म:१[१०२]
	बूडि मुए ...। (सधना)[१०३] बूडा दुरजोधनु।[१०४]
२- डूबत-बूडत	बूडत ... म:१[१०५] बूडत ... काढि।म:५[१०६]
३- ब्राह्मण-बाम्हन	बाम्हन ... (नामदेव)[१०७] कहु रे पंडित बाम्हन कब के हुए। (कबीर)[१०८]
४- लपेटे- पलेटे	... पलेटे। म:१[१०९] ... पलेटि ...।[११०]
५- विकल- बिलक-बिलख	जिनि मन ... न जानिआ, ... बिलख बदन कुमलानी।म:१[१११]

(३) लोप: शीघ्रता से बोलने तथा सुविधा के लिये कभी कभी लोप हो जाता है। कभी कभी स्वराघात से भी ऐसा होता है।

९६- नानक ने हिन्दी रचना कम की है, उनकी अधिकांश रचनाओं पर पंजाबी का प्रभाव है। यो कि उनके पंजाबी होने का परिणाम है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी मिल जाते हैं। भाषा ... और सरल है। (हिन्दी साहित्य की परम्परा पृ० ६२) पंजाबी काव्य शिरोमणी-सेखों-पृ०३०-३१

८०- आ०ग्रं० पृ० ६१७	८१- आ०ग्रं० पृ० ४२८
८२- आ०ग्रं० पृ० १४२४	८३- आ०ग्रं० पृ० १०३७
८४- आ०ग्रं० पृ० १४२५	८५- आ०ग्रं० पृ० ७८६

३-स्वरलोप

आदि स्वरलोप

१- अभ्यंतर- भीतरि — बाहरि ढूंढन जाऊं भीतरि भरो भंडार। कबीर [११२]

मध्य स्वरलोप

२- दिशि-दिस — दह दिस ढूंढी पवनु। [११३] कबीर। दह दिस ढूढि घरी। म:१ [११४]

३- निमिष-निमख — १- बेद पुरान साध मग जानिहि निमख न हरि गुन गावै। [११५] २- निमख निमख हरि हरि हरि धिआऊं। [११६]

४- मंदिर-मंदर — १-ऊचे मन्दर साल रसोई। कबीर [११७]
२-ऊचे मंदर सुंदरा। [११८] रविदास तथा म: ५ [११९]

अंतस्वर लोप

१- जहां-जह — जह देखा तह सोई (म:१) [१२०] जह नहीं आपु तहा। [१२१]

२- आतमा-आतम — आतम का निरणा न(नामदेव) [१२२] आतमु राम संसार। म:१ [१२३]

३- गुरु- गुर — गुर सबदी मन बेधिआ। म:१ [१२४] गुर सबदि रते सदा। [१२५]

४- गुण-गुन — गुन कबीर ग्रंथ। कबीर [१२६]

४- व्यंजनलोप

आदि व्यंजन लोप:

१- स्कंध-कंधि-कंध — कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा। फरीद [१२७]
उठे न मंसा पड़े न कंध। म:१ [१२८]

२- शिखर-सिर — सिर नाऊ कापि। म:१ [१२९] सिर भी तंती तूल। कबीर [१३०]
सिर धरि केसु। म:५ [१३१]

३- स्थान-थान — सोई सुहावा थानु। म:५ [१३२] जिथै जाइ बहै मेरा सतिगुरु सो थानु सुहावा रामराजे। म:४ [१३३]

८६- आ०ग्र० पृ० ४०६ — ८७- आ०ग्र० पृ० ११५७
८८- आ०ग्र० पृ० ६५७ — ८९- आ०ग्र० पृ० १४२६ तथा १२७७
९०- आ०ग्र० पृ० १३२९ — ९१- वही।
९२- आ०ग्र० पृ० १४२६ — ९३- आ०ग्र० पृ० १३००
९४- आ०ग्र० पृ० १२७७ — ९५- आ०ग्र० पृ० १२०४
९६- आ०ग्र० पृ० १३८८ — ९७- आ०ग्र० पृ० ७४६

४- स्पर्श-परस — पारसु परसि परम पद पावै। म:१[१३४]
पारसु परसि लोहा कंचनु। कबीर[१३५] ।। पारसु परसै दुबिधा न होई। रविदास[१३६]

५- सुगंध-गंध — बिनु गंधा ताते मधु कर पाए।म: १[१३७]

मध्य व्यंजन लोप

१- लक्षण-लखण — पूरा के किआ लखण है। म:१[१३८]

२- उच्चार- उचर — उचरहु राम नामु लख बारा। म:५[१३९]

३- प्रियतम-प्रीतम — प्रीतम गुण अंके।म:१[१४०] , प्रीतम चरणी जो लगे। म:५[१४१]
प्रीतम जानि लेहु। म: ६[१४२]

४- कालनिशि- कालनिसि — कालिनिसि बाजे अनहद। कबीर।।[१४३] कालिनिसि राम रिदै। म:२[१४४]

अंतव्यंजन लोप

१- उपाध्याय-पाधा — पाधा गुरमुखि आखीऐ चाटड़िआ मति देइ।म:१[१४५]

९८- आ०ग्रं० पृ० ७०
९९- आ०ग्रं० पृ० ११२६
१००- आ०ग्रं० पृ० १३७४
१०१- आ०ग्रं० पृ० १३७०
१०२- आ०ग्रं० पृ० ६३६
१०३- आ०ग्रं० पृ० ८५८
१०४- आ०ग्रं० पृ० २१५
१०५- आ०ग्रं० पृ० ४१४
१०६- आ०ग्रं० पृ० ८६२
१०७- आ०ग्रं० पृ० ७१८
१०८- आ०ग्रं० पृ० ३२४
१०९- आ०ग्रं० पृ० १ ८४
११०- आ०ग्रं० पृ० ३१२
१११- आ०ग्रं० पृ० १२५५
११२- आ०ग्रं० पृ० १३७२
११३- आ०ग्रं० पृ० ३३३
११४- आ०ग्रं० पृ० ६३२
११५- आ०ग्रं० पृ० ० ०
११६- आ०ग्रं० पृ० १८०
११७- आ०ग्रं० पृ० ७६४
११८- आ०ग्रं० पृ० ६५६
११९- आ०ग्रं० पृ० १७५
१२०- आ०ग्रं० पृ० ४२०
१२१- आ०ग्रं० पृ० ११५६
१२२- आ०ग्रं० पृ० ६७३
१२३- आ०ग्रं० पृ० १३६०
१२४- आ०ग्रं० पृ० १०११
१२५- आ०ग्रं० पृ० १२६०
१२६- आ०ग्रं० पृ० २०३
१२७- आ०ग्रं० पृ०

२- असंख्य-असंख   असंख भगत गुण गिआन बीचारि।म:१[१४६]
[illegible] कोटि अपूजा करी। नामदेव[१४७]

३- पुण्य- पुंन   सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे। म:३[१४८]

४- पंचतत्त्व- पंच तत   [illegible] मन पंच तत [illegible] जीउ। कबीर।।[१४९]
इहु मनु पंच ततु ते जनमा।म:१[१५०]

५- आगम
=====

आगम की प्रक्रिया [लोप] [illegible] प्रतिकूल है। जहाँ शब्द में नई ध्वनियों का आगमन होता है। यह आगम स्वर और व्यंजन दोनों ही के आदि मध्य और अन्त के रूपों में देखा जाता है। आदि ग्रंथ की भाषा में इस के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं:

(१)स्वरागम

आदि स्वरागम

१- स्नान- असनान   असनानु करि [illegible] तपं। म:१[१५१]

२- स्नान-इसनान   नामु दानु इसनानु।म:१[१५२]   नामु दान इसनान।म:५[१५३]

३- स्थूल- असथूल   सूखम असथूल सगल भगवान। म:५[१५४]

४- स्वार-असवार   मन असवार जैसे तुरी सीगारी।म:५[१५५]

१२८- आ०ग्रं० पृ० ६३६
१२९- आ०ग्रं० पृ० ६३४
१३०- आ०ग्रं० पृ० ३३५
१३१- आ०ग्रं० पृ० २०१
१३२- आ०ग्रं० पृ० १०६६
१३३- आ०ग्रं० पृ० ४५०
१३४- आ०ग्रं० पृ० ४११
१३५- आ०ग्रं० पृ० ४८१
१३६- आ०ग्रं० पृ० ११६७
१३७- आ०ग्रं० पृ० १०३७
१३८- आ०ग्रं० पृ० ६५३
१३९- आ०ग्रं० पृ० १६०
१४०- आ०ग्रं० पृ०१४०६
१४१- आ०ग्रं० पृ० १३३
१४२- आ०ग्रं० पृ० ६३४
१४३- आ०ग्रं० पृ० ३४४
१४४- आ०ग्रं० पृ० १५४
१४५- आ०ग्रं० पृ० ६३८
१४६- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
१४७- आ०ग्रं० पृ० ११६३
१४८- आ०ग्रं० पृ० ६[illegible]०
१४९- आ०ग्रं० पृ० ३४२
१५०-आ० ग्रं०पृ० ४१५
१५१- आ०ग्रं० पृ० ५०५

मध्य स्वरागम

१- लकड़ी- लाकड़ी — कबीर [illegible] कि लाकरी।[१५६]

२- साजु- साजुण — दे साजुण [illegible] मोहु मोइ। म:१[१५७]

३- प्रगट-परगट — परगट [illegible] आपदा।[१५८] परगट पसारा आपदा।[१५९]

४- गायत्री-गायत्री — पांडे तुमरी गायत्री [illegible] नामदेव[१६०]

अंतस्वरागम

१- संस-संसा — संसा [illegible] म:१[१६१] संसाइडु संसार है।[१६२]

२- प्रभात- प्रभाता — [illegible] निस [illegible]। म:१[१६३]

३- निस्तार-निस्तारा — गुरु [illegible] निस्तारा। म:५[१६४]

४- मल-मलु — मलु [illegible]। म:३[१६५] मलु [illegible]। म:४[१६६]

५- कारण-कारने — एक बूंद जल कारने [illegible] पावै। सधना[१६७]

६- बिल्ली-बिलईआ — [illegible] बिलईआ [illegible] रे। कबीर

आ०ग्रं०पृ०८५५

(२) व्यंजनागम

आदि व्यंजनागम : इस के उदाहरण प्राय: नहीं मिलते। [illegible] वैज्ञानिक ग्रंथों में इस के भी उदाहरण सर्वत्र पाए जाते हैं।

मध्य व्यंजनागम

१- बीर-बवर — अवर भरत [illegible] मन बोले। बेणी[१६८]

[illegible] [illegible]।।[१६९] अवर न दूजा। म:१[१७०]

१५२- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

१५३- आ०ग्रं० पृ० ८३,११०१

१५४- आ०ग्रं० पृ० २६६

१५५- आ०ग्रं० पृ० १६८

१५६- आ०ग्रं० पृ० १३६६

१५७- आ०ग्रं० पृ० ४

१५८- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

१५९- आ०ग्रं० पृ० ३०६

१६०- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

१६१- आ०ग्रं० पृ० १०४३

१६२- आ०ग्रं० पृ० ३६

१६३- आ०ग्रं० पृ० [illegible]४

१६४- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

१६५- आ०ग्रं०पृ० ३६

१६६- आ०ग्रं० पृ० ६५

१६७- आ०ग्रं० पृ० ८५८

२- सोनी-सोवनी   सोइी सुधि न होवनी, जै तिसु मनहु न वीसरहि। म:१ [१७१]

३- सोना-सोवणा   सुणी रावहु रोवण आवयो। म:१ [१७२]

४- सोना-सोवन   इस दिन सोवहु सोवणा लांबे पैर पसारि। कबीर [१७३]

५- झूला-झंझुला   भरमि भुलाणा झंझुला फिरि फिरि आवै जाइ। म:३ [१७४]

६- झूली- झुलियो   बहु झूलिओ कंत पर कहु न मोत उपाइ। म:६ [१७५]

अंत व्यंजनागम

१- सनकादि-सनकादिक   ब्रह्मादिक सनकादिक सनक सनंदन सनातन सनतकुमार [१७६]
  तिन्ह कउ महलु दुलमावउ।। म:५

२- ब्रह्मादि- ब्रह्मादिक   ब्रह्मादिक सनकादि सेव गुण अंतु न पार। म:५ [१७७]

३- उतारै- उतारहि   गहु नानक तिन प्रभु मना सा निधि उतारहि पारि। म:६ [१७८]

४- कूलनै-कुलावनि   जा पहि माउ आपु कूलकावनि ते जाचै बहु फांगा। कबीर [१७९]

(६) मनोभावों के आधार से विकृत होने वाले शब्दों के रूप

१- मन-मनुआ   मनुआ अ थिरु सबदे राता। म:१ [१८०]
  मनुआ उलटि सुंन महि गहै। वेणी [१८१]

२- केशव- केसवा   आज मंदर केसवा। कवि सदाला केसवा। नामदेव [१८२]

३- गागर-गगरीआ   गाव गगरीआ मे मफराआ। म:५ [१८३]

१६८- आ०ग्रं० पृ० ६३   १६९- आ०ग्रं० पृ० ११०६
१७०- आ०ग्रं० पृ० ८३६   १७१- आ०ग्रं० पृ० ५
१७२- आ०ग्रं० पृ० ५८०   १७३- आ०ग्रं० पृ० १३७८
१७४- आ०ग्रं० पृ० ३५   १७५- आ०ग्रं० पृ० १४२६
१७६- आ०ग्रं० पृ० ६०१   १७७- आ०ग्रं० पृ० १३८६
१७८- आ०ग्रं० पृ० ९०६   १७९- आ०ग्रं० पृ० ३३४
१८०- आ०ग्रं० पृ० १०८   १८१- आ०ग्रं० पृ० ९७४
१८२- आ०ग्रं० पृ० ११६१   १८३- आ०ग्रं० पृ० ३६२

४- जोगी- जोगीआ जोगीआ मन-वारो रे। म:४ [१८४]

५- दिया-दीअरा उनमु दीअरा निरमल बाती। श्री सैणु। [१८५]

६- संदेसा-संदेसरा सुणि साजन प्रेम संदेसरा। म:४ [१८६]

७- भेस(भेष) भेसवा करि अबदाली भेसवा। नामदेव [१८७]

८- भगवान-भगवाना कहि कबीर भगति मिलाहि करे है पुरख एक भगवाना। [१८८]

९- रमजान-रमजाना बरतन रखे न मास रमजाना। कबीर तथा म:५ [१८९]

१०-रहमान-रहमाना भिस्तु नजीक राखु रहमाना। कबीर [१९०]

(७) सादृश्य मूलकता एवं विरोध मूलकता।

शब्दों के प्रयोग में सादृश्यमूलकता की प्रक्रिया भाषा-सौष्ठव के संवर्धन में विशेष योग प्रदान करती है। समान ध्वनियां श्रवण-सुखद होती हैं। उनसे मन पर एक प्रकार का आकर्षक प्रभाव पड़ता है। सादृश्यमूलक शब्दों के अनुरूप ही विरोध मूलक शब्दों का भी मन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्रयोगों द्वारा भाषा में एक विशिष्ट प्रकार की गरिमा का निदर्शन होने लगता है। आदि ग्रंथ की भाषा में ऐसे शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं। केवल कुछ को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है:-

सादृश्य मूलक:

१- उकति सिआनप(युक्ति सिआनप)- उकति सिआणप सगली तिआग। म:५ [१९१]

२- अनंद बिनोद- अनद बिनोद चोज। [१९२]

३- अनंद मंगल- अनंद मंगल गुन- [१९३] अनंद मंगल कलिआण। [१९४]

४- अपर अपार- अपर अपार अगंम अगोचर। [१९५] अपर अपरंपर पुरख सिउ प्रेम। [१९६]

५- अविगत अगोचर- अविगत अगोचरु अपर पारु मनि गुर सबद कमाउ।। [१९७]

६- अरधु दरधु- अरधु दरधु सभु तो किछु दीजै संगि न कछु जाई। [१९८]

७- आस पिआस- आस पिआसी सेजै। [१९९] आस पिआस सफल। [२००]

८- आसा मनसा- आसा मनसा सगल। [२०१] आसा मनसा पूरन। [२०२]

९- आखण वेखण- आखण वेखण बोलण। [२०३]

१०- आदि जुगादि- आदि जुगादि सच्चा। [२०४] आदि जुगादि सगल। [२०५]

११- आदि पुरख- आदि पुरख अपरंपर। [२०६] आदि पुरखाएं। [२०७]

१८४- आ०ग्रं० पृ० ८८६ १८५- आ०ग्रं० पृ० ६६५

१२- आदि निरंजन- आदि निरंजन [illegible]। २०८

१३- [illegible]- [illegible] [illegible] न [illegible] न [illegible] नाहिं। २०९

१४- [illegible]- [illegible] संजम करणी। २१०

१५- [illegible]- [illegible] संगति [illegible]। २११ [illegible] संगति [illegible]। २१२

१६- [illegible]- [illegible] संतोष [illegible]। २१३ [illegible] संतोषु [illegible]। २१४

[illegible] प्रयोग हुआ है। ढूंढने से [illegible] है। [illegible] दिये जाते हैं।

[illegible] आनंद, [illegible], [illegible] निरमल, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] दरसन, [illegible] मूरति, [illegible], [illegible], [illegible] सुख, [illegible], [illegible], [illegible] निरंतर, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] परम, [illegible], [illegible] संगि, [illegible] संगति, आदि आदि।

विरोध मूलक [illegible]।

१- [illegible] निंदा- [illegible] निंदा [illegible]। २१५ [illegible] निंदा [illegible] [illegible]। २१६

२- [illegible]- [illegible]। २१७

३- [illegible]- [illegible] [illegible]। २१८ [illegible] [illegible]। २१९

४- [illegible]- [illegible] [illegible]। २२० [illegible] न [illegible]। २२१

५- [illegible]- [illegible]। २२२ [illegible]। २२३ [illegible] नाम। २२४

६- [illegible]- [illegible]। २२५ [illegible] [illegible]। २२६

७- [illegible]- [illegible]। २२७ [illegible]। २२८ [illegible]। २२९

१८६- आ०ग्रं० पृ० ३०२ १८७- आ०ग्रं० पृ० ११६७

१८८- आ०ग्रं० पृ० ४८२ १८९- आ०ग्रं० पृ० ११३६

१९०- आ०ग्रं० पृ० ११६ १९१- आ०ग्रं० पृ० २७०,२६६,२६०

८- आस निरास- आस निरास रहै बनिवासी।[२३०] आस निरास रहै बैरागी।[२३१]

९- आदि अन्त- आदि अंति की सीषन।[२३२] आदि अंति दइआल।[२३३]

आदि अन्तै सधि।[२३४]

१०- आवण जाणा- आवण जाण न होवै।[२३५] आवण जाण रहै।[२३६]

११- आवत जावत(जात)- आवत जावत जन।[२३७] आवत जात।[२३८]

१२- औरै औरै- औरै औरै मुकति है।[२३९] औरै औरै राजा प्रभु।[२४०]

आदि ग्रंथ के वाणी- सौष्ठव में ऐसे उदाहरणों की भी प्रचुरता है। कुछ एक और युग्म प्रस्तुत हैं:-

अंतरि बाहरि, उरवौ परौ, ईत ऊत, ईंहा-ऊहा, घर- अघर, गुण-अगुण, दिनसु रैनि, दुख-सुख, नरक-सुरग, सिमरनि-दीपक, गुरमुखि-मनमुख, नीच-ऊच, आदि।

कुछ शब्दों का प्रयोग आवृत्तिमूलक है। यह भावोद्रेक तथा संगीत की लय के कारण हुआ है। विचार की पुष्टि के लिये भी ऐसा हुआ है:-

१- रति रति रति रति रति, गरदेव। फुरहु फुरहु फुरहु, फुरहु आन तम सेव।[२४१]

२- झुठु झुठु झुठु झुठु झुठु मेरा नाम। फुरहु फुरहु फुरहु फुरहु इनी गुमानु। म:५[२४२]

३- उतभुज अपार।[२४३]

४- रति रति रति।[२४४]

५- क्रिपा क्रिपा क्रिपा करि।[२४५]

१९२- आ०ग्रं० पृ० १००

१९३- आ०ग्रं० पृ० ९२८

१९४- आ०ग्रं० पृ० १०४,१३४०

१९५- आ०ग्रं० पृ० ९३४

१९६- आ०ग्रं० पृ० १४०८

१९७- आ०ग्रं० पृ० १३९७

१९८- आ०ग्रं० पृ० १२३७

१९९- आ०ग्रं० पृ० १३९१ ,३५७

२००- आ०ग्रं० पृ० १३०५

२०१- आ०ग्रं०पृ० ६३३,७०४

२०२- आ०ग्रं० पृ० ८९५

२०३- आ०ग्रं० पृ० ३५,१४४

२०४- आ०ग्रं० पृ० ६८६

२०५- आ०ग्रं० पृ० १३९४

२०६- आ०ग्रं० पृ० १२६,१८७,४२२,४३६

२०७- आ०ग्रं० पृ० ८४२

२०८- आ०ग्रं० पृ० १०७५

२०९- आ०ग्रं० पृ० १,४०,१५१,२८७

२१०- आ०ग्रं० पृ० २६,६१,८४१,१२६०

२११- आ०ग्रं० पृ० २८,१३१३,१३१६,१४२४

२१२- आ०ग्रं० पृ० ११३४,११७९

२१३- आ०ग्रं० पृ० ९१९

२१४- आ०ग्रं० पृ० ७६४

२१५- आ०ग्रं० पृ० २१९

अन्य प्रयोग: सखि-सखा, सदा सदा, साखि साखि, कोटि कोटि, जनम जनम। जपि जपि, देखा-देखी, दै दै कोटि, धंन धंन- आदि।

(८) आदि ग्रंथ में विभिन्न भाषाओं के शब्द तथा पद।

आदि ग्रंथ में उत्तरी भारत की लगभग सभी भाषाओं की शब्दावली पाई जाती है।[२४६] इन भाषाओं के कुछ उदाहरण भाषा मूलक अध्ययन के लिये प्रस्तुत करना उचित होगा। किस प्रकार सब प्रांतिक भाषाएं संत साहित्य में मिलकर एक हो गई थीं, यह आदि ग्रंथ के परिशीलन से पता चलता है। ऐसा करने का मुख्य कारण सन्त-भक्तों का अपने संदेश को लोक-व्यापी बनाना था।

आदि ग्रंथ में ब्रज भाषा के शब्द।

ब्रज प्रदेश केवल मथुरा का अथवा इसके आस पास का क्षेत्र ही नहीं, परन्तु इसमें मथुरा, अलीगढ़, आगरा, भरतपुर, और धौलपुर नामक स्थान भी शामिल किये जाते हैं। ब्रज भाषा का बुन्देलखंडी पर भी प्रभाव बताया जाता है।[२४७] पंजाब में गुरु नानक के पश्चात् सिक्ख गुरुओं की भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट है। उत्तरोत्तर यह बढ़ता ही गया। गुरु अर्जुन देव तथा गुरु तेग बहादुर की भाषा हिन्दी ही है, जिसपर ब्रज का पर्याप्त प्रभाव है।

सर्वनाम- उत्तम पुरुष।

१-हउ: हउ तउ एकु रमईआ लैहउ। (नामदेव-८७४), हउ हरि बिन अवरन (कबीर-६५५)
२-मो: मो सउ कोउ न कहै। रविदास-३४६, मो कउ तारि ले रामा। नामदेव-८७३

२१६- आ०ग्रं० पृ० ११२३
२१७- आ०ग्रं० पृ० १०४१
२१८- आ०ग्रं० पृ० ३८७
२१९- आ०ग्रं० पृ० ८६२
२२०- आ०ग्रं० पृ० १०३७
२२१- आ०ग्रं० पृ० १०३५
२२२- आ०ग्रं० पृ० ३२,३५८
२२३- आ०ग्रं० पृ० १३३०,१३३१
२२४- आ०ग्रं० पृ० ४१६,४२१,४३८,५६७
२२५- आ०ग्रं० पृ० ११६२
२२६- आ०ग्रं० पृ० ३३३
२२७- आ०ग्रं० पृ० ३६१
२२८- आ०ग्रं० पृ० ८२६
२२९- आ०ग्रं० पृ० १६६
२३०- आ०ग्रं० पृ० १०१३
२३१- आ०ग्रं० पृ० ६३४
२३२- आ०ग्रं० पृ० ७४१
२३३- आ०ग्रं० पृ० ६७५

३- मोहि: मोहि कै मन कित गाहा न गाज। (कबीर-११६४) मोहि न
        बिसारहु।। ।। (रविदास-३४१)

४- मोरी-मोरी को गाह दरसन पावनहै। म:५- ८३०

५- हम- हम नही कौ बुरा नाही कोइ। म:१- ७२८

६- हमरा-हमरा फगारा रहा न कोइ- (कबीर-११५८), हमरो करता राम
        (नामदेव-६६२)

मध्यम पुरुष

१- तोही- तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा। (रविदास-९३)

२- तूं- तब तूं है हम नाही (कबीर-६५७), तू ठाकुर हम नाव (म:१-१२२)

३- तेरो- तेरो जनु गोइ गोइ (कबीर-८५६) नाम तेरो आरती नाम तेरो
        दरसा (रविदास-६६४)

४- तै- तै सम मन मधि काजा रोस (फरीद-७६४), तै मैं कीआ सु मालूम
        (नामदेव-१३५१), तै सह पासहु (म:१-१२४३), तै सम बात न पुछी-६४७
                                                                                म:३

अन्य पुरुष

१- यह- यह मन नैक न कहिआ करै (म:६- ५३६) यह माला अपनी लैजै। कबीर-६५६

२- वा- वाहि रिदै वरे भगवान (कबीर-८७१)

३- इन- इनु कुंआ ... मेरा गरु मुंगरावा (कबीर-४८४) इन बिधि राम (म:१-८६६)

४- वा- या मोहि तु राम कात है। (म:६- ११८६) या जुग मधि एकहि (म:५-२५१)

संबंध वाचक

१- जिन- जिनि सीगारी तिनहि पिआरी (म:१-११०९) जिन सचु पलै सचु। म:३-११२

२- जासु- जासु जपत मै अपना हरी। नादेव -८७४

३- जा- जा ... ... जाल जागान (म:१-४६५) जा के कुटंब के ढेढ सम ढोर
        ढोंवंत (रविदास)१२६३।

२३४- आ०ग्र० पृ० ३४१,४५८,६८८   २३५-आ०ग्र० पृ० १६१,३६४,८२५,११११

२३६- आ०ग्र० पृ० २६६   २३७- आ०ग्र० पृ० २६६

२३८- आ०ग्र० पृ० १६०,५१०,८८१   २३९- आ०ग्र० पृ० १०८८

२४०- आ०ग्र० पृ० १०३१   २४१- आ०ग्र० पृ० ११६६

२४२- आ०ग्र० पृ० ११३८   २४३- आ०ग्र० पृ० १००३,१३५६

४- जो- जो दीसै सो सगल धावणा तणो। म:१-१०२१, जो दीसै सो सोइ बिनासा। रविदास-१३४९।

५- जिह- इस संबंध-वाचक के प्रयोग के लिये कबीर जी का ६९१ पृष्ठ पर जिह सिमरनि सोइ मुकति दुआरु वाला सारे पृष्ठ का पद तथा सुखमनी म:५ की गउड़ी राग का जिह प्रसादि से आरंभ होने वाली अष्ट-पदियाँ दृष्टव्य हैं।

६- जिनि- जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ। कबीर-६५० जिनि सिरजी तिन ही फुनि गोई। म:१- १०२०

७- जित- जित मिलिऐ नाम(म:१-७२)

नित्य सम्बंधी

इस सर्वनाम के एकवचन में तथा बहुवचन में सो,ता,ताहि तथा बहुवचन में से,ते,तिन,तिन्ह रूप होते हैं। आदि ग्रंथ में इन रूपों के कतिपय प्रयोगों के उदाहरण इस प्रकार हैं:-

१-सा+ई-साई(वही)-सा "सुणि सा… साई भागणि म:१-६५६।साई सार कमाणी।म:१-६३२-५०५।साई प्रीति जि आपे लाए।नामदेव-११६४

२-सो- (वह)-सो उदासी जि पाले उदासु।म:१-६५२।सो ऐसा राजा श्री गोविंद।नामदेव-१२६२।

३-ता (उस)-ता सिउ टूटो जिउ मनि जा के जीअ परान।कबीर-१३७६ ता सिउ पूरा मन नहीं लावै।म:१-२६७।

४-ताहि(उसको)- ताहि छाडि आपु बधावा।कबीर-३४०।ताहि कहा परवाह। सवैये म:४ के-१४०५।

५-ताहू(तुम्हारे)-ताहू संगि न धनु कै।म:५-२५६।ताहू से सुजान कंता रतो अपरो। म:१-१४१०

६-याहू(जिस)-याहू जतन कर होत छुटारा।उआहू जतन साध संगारा।म:५-२५६।

७-उआ-उआहू-उआ रस महि उआहू सुखु पाइआ।म:५-२५६।

८-से-(वे)-से भगत से सेवक।म:४-५११,७३३।से विरला कोई पावले जो गुरमुखि रहै समाइ। म:१-१२८२

२४४- आ०ग्रं० पृ० १०,२५६,३८१   २४५- आ०ग्रं० पृ० १३०६,१३२३

२४६ "The Chief importance of the Sikh Granth lies in the linguistic line, as being the treasury of old Hindvi dialects.Dr. Trumpp,as quoted in 'A Critical Study of Adi Granth-page 27(Dr.S.S. Kohli).

९- ते- (वे) ते तिन संमाल। बेणी-९३, ते पर नसटट। कबीर-१३७४, ते कबहु न मारिए। म:१-४३८

१०- तिन (उन) तिनकी सोभा किआ गणी। म:५- १३५

११- तिना (उनके)-केति तिना जहीआ (म:५- १३५)

१२- तिनही (उसने भी) तिनही कीआ पिआरु (म:१-२३६) तिनही जैसि थी रहा। म:३- ३७।

प्रश्न वाचक सर्वनाम

इस सर्वनाम के रूप ब्रज भाषा में सामान्यतः कौन, को, का, काहि, कौने, कहा तथा काहे होते हैं। आदि ग्रंथ में इनका प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है।

१- कौन- (कउण) कउण नर्का नानका। म:१-१०९१, कउन करम मेरा। कबीर-११५६

२- को - (कउन)- को आणि मिलावै म्रुउ मै पिरु दिखावए।म:४-१४२१, को उआरै को ड्रिडै ।म:५-३००

३- का- (का का भाई का को बाप।म:५-१८८), का का मात पिता सुत। कबीर-१२३१ का की माति पिता सुत। म:५-२५३, का की मन धन संपति।म:६-१२३१

४- काहि- (काहे) काहे को कुलाता।कबीर- २३७६, काहे कलरा सिंचहु-म१-१९९१।

५- कवने-(किस) कहु नानक बिनु, हरि भजन जावन कवने काम। म:६-१२२७।

६- कहा- (यहाँ) फूटे भानु कहा करै, कहु तुमरे बिउ जान। म:६-१४२८।

७- किआ- किआ जपु किआ तपु। कबीर-३२४, किआ जाणा किआ आगे होइ।म१-१५४

अनिश्चय वाचक सर्वनाम

ब्रजभाषा में अनिश्चयवाचक सर्वनाम के चिन्ह प्राय: कोऊ, काहु, कोई, कछु, कछुक, केई, एक, एक आध, औरन आदि प्रयुक्त होते हैं। आदि ग्रंथ में इन के कतिपय प्रयोग इस प्रकार हैं:-

१- कोऊ- कोऊ हरन न कोऊ पूरा। कोऊ अरु न कोऊ पुरा।म:५-२९८ कोऊ हरि समान न। कबीर-६८०

२- काहु- काहु बिगावै जोग तप पूजा।म:१-६१४, सारे पद में काहु का प्रयोग प्रत्येक पंक्ति में द्रष्टव्य है।

३- कोई- कोई गावै को सुणै। कबीर-३३५,म:४-१३१८म:५-३००।

४- कोइ- कोइ न रहि है राजा। कबीर-११५७। कोइ ने केली कोइ तेरा।म:५-५४६

५- कछु, कछु - कछु संगि न चाले, कछु किरिरिधो नामनि कछहु जाग।म:६-१२८७

कछु सिआनप उकति न मोरी।म:५-७५६

६- केई- केई [illegible] है [illegible] मूढ़ गवारा। म:२-१२३८

७- इक- इकि [illegible] मूढ़ गवारा।म:[illegible]-१२३८, इकि उदासी इकि [illegible]।म:५-१०७६

एक आनंदि प्रभु [illegible] राम कै रंगि [illegible]।म:५-५४३

८- एकसाथ- मेरा मन एकसाथ कोरी। कबीर-११२३

९- औरन: प्रभु नानक [illegible], औरन [illegible]। म:६-१४२८।

आत्मवाचक सर्वनाम।

ब्रजभाषा में 'आप', 'आपु', 'आपुन', 'आपनड़ो' आदि शब्द इस कोटि के हैं। आदि ग्रंथ में इनका [illegible] भी उपलब्ध है:-

१- आप- आप निरालम। म:१-५८१,१०३७,१०६१।

२- आपु- आपु निवारि [illegible]। म:१-२[illegible]।

३- आपन- आपन लाहि गुमान। म:५-८९६। कहु नानक आपन तरै।म:६-१४२७

४- आपनड़ा- आपनड़ा प्रभ।म:१-७[illegible],म:५-५[illegible]१। आपनड़े प्रभ। म:५-३९९,५६१,

आपनड़े प्रभ।म:५-७८२।

प्रकार वाचक सर्वनाम

ब्रजभाषा में इनके रूप ऐसे, ऐसे, ऐसो, वैसो, कैसे, कैसो, जैसो, पाये जाते हैं। आदि ग्रंथ में इनका भी प्रयोग मिलता है:

१- ऐसे- ऐसे [illegible] सहहु [illegible]। कबीर-३२६, ऐसे जन विरले। म:१-१०३९,१३४५।

२- ऐसी- ऐसा लाल तुझ बिनु कउनु करै। रविदास-११०६, ऐसा दरगह साचा।म:१-८७८

३- ऐसो- ऐसो परचउ पाइओ। म:५- २०५। ऐसो रे हरि रसु।म:५-८७६।

४- कैसो- कैसा [illegible] तुझ सुणीजा कैसो [illegible] मैं [illegible]। म:५-६[illegible]७

५- जैसो- जैसो सा तैसो दिखारी- म:५-१२६६।

६- कैसे कैसे [illegible]।कबीर-३२६, कैसे पूज करउ। रविदास-५२५

परिमाण वाचक तथा संख्या वाचक सर्वनाम।

केतो, केती, केता, केते, एते, एतो, जेता, जेतो, जेते, तेतो, तेता, तेते आदि शब्द ब्रजभाषा में इस कोटि के हैं। इनका प्रयोग आदि ग्रंथ में मिलता है:-

१- केता- केता आखणु आखी।म:१-१९,४२१, केता ताणु सुआलिहु रूप।म:१-३

२४७- संत साहित्य- डा० प्रेम नारायण शुक्ल- पृ० २८२

२- कैती-(कैती)मानक ने मुश रखते, कैती कुनी नालि।५:१-८, कैती दाति जाणेक।५:१-३
कैती कैती मांगन।५:५-२३२१।

३- कैते: कैते है है मुगक पाति। ५:१-४, मागति कैते कोते सुख।५:१-६

४- एते- एते काले भोति करेहि।५:१-६, एते तन सरीर कै।५:१-१५

५- एता: एता ताण्डु गावै मन।५:३-१४७ , ऐता गाति बाकाति न भावत।५:५-१३८८

६- एती- एती भार पर्ड करताणी तैं कीं दारदु न जाना।५:१-३६०

७- जेता- जेता उत्पत्ति दुःख पाणी नित दाकाहि नै किन्नाहि।५:३-६६

८- जेती- जेती है तेती सुखु दरि।५:१-१०३४।

९-जेते- जेते जीव तेते सभि तेरे। ५:५-१६३ तथा ५:१-३५४।

१०- तेता-जेता देखि तेता तन पाह। ५:१-२५

११- तेती-जेता है तेता सुख जाने।५:१-१०३४,१२७४।

१२- तेते- जेते जीव तेते लम्भाई। कबीर-११६०, जेते जीव तेते वणजारे।५:१-७८६

संकेत वाचक सर्वनाम

'जकै', 'जकी', जत-तत,तत-तत, उत-उत, उत्ताँ-तीताँ,कहाँ-तहाँ आदि सर्वनामों का प्रयोग भी आदि ग्रंथ में मिलता है। इन का-ता-ना का प्रयोग इकट्ठा ही आता है।

१- जकै- जकै तुटके तार न तारा गी। कबीर-३३७

२- जकी- जकी भार तारि। कबीर-११०४

३- जत कत- तत तत- जत कत देखउ तत रहिआ समाए।५:५-१६३, जत कत देखउ तत तत तुम ही। ५:५-२०५ । जत कत देखउ तत तत नाहीं। ५:५-१३५। जत कत देखा तत तत सोहि। ५:५-१२५०

४- उत-उत- इत उत किस का नाणि समाये। ५:१-६४३, इत उत कतहि न डोलई। कबीर-१३७५, इत उत जोति नोति प्रभु पावतो।५:५-१२६६

५- उत्ताँ-तीताँ- उत्ताँ जा पाईऐ तत तीताँ न भोड। रामानंद- ११६५।

६- कहाँ-तहाँ- जा पावत बैकुंठ कहाँहि। जान जान सभि कहहि तहा ही। कबीर-३२५

इसी प्रकार कारकों, क्रियाओं आदि का भी अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि ब्रजभाषा की लोक भाषा की शैली का आदि ग्रंथ के रचयिताओं पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

(६) अवधी तथा अन्य भाषाओं का प्रभाव।

ब्रज भाषा की तरह ही अवधी का भी आदि ग्रंथ की भाषा-शैली पर पर्याप्त प्रभाव है। डा० प्रेम नारायण शुक्ल लिखते हैं: सन्त साहित्य में अवधी भाषा का प्रयोग अपेक्षाकृत विशेष रूप से पाया जाता है। सन्त-जन इस प्रदेश में इधर उधर रमन करते हुए फिरते रहे। निरंतर सम्पर्क के कारण इस प्रदेश की भाषा से उनका सम्बंध स्थापित हुआ।[२४८] अवधी के भी दो रूप हैं। पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी अवधी के अन्त में व प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे, आउब, जाब, करब। पश्चिमी अवधी ब्रज भाषा के निकट है, इस में यह रूप क्रमश: आवन, जान, करन, होते हैं।[२४६] सन्तों की भाषा पर इसी अवधी का अधिक प्रभाव है, जो ब्रज भाषा में मिली जुली है। जायसी ने अवधी भाषा में पद्मावत लिखा। यही भाषा तुलसी ने अपने रामचरित मानस में अपनायी। परन्तु दोनों ही एक हो भाषा की रचनाएं होते हुए भी एक भिन्नता भी लिये हुए हैं। जहां जायसी संस्कृत से अनभिज्ञ होते हुए भी प्राकृत शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं, तुलसी पर संस्कृत के विद्वान होने के कारण संस्कृत का अधिक प्रभाव है।[२५०]

उपसंहार :

इसी प्रकार आदि ग्रंथ के रचयिताओं की भाषा में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, पंजाबी, मराठी, गुजराती, अरबी, फारसी के सर्वत्र प्रयोग मिलते हैं, परन्तु उनके अपने धर्म का प्रभाव इस भाषा पर स्पष्ट दिखाई देता है। इस का एक कारण तो सन्तों का लोक संपर्क में रहकर उनकी भाषा से प्रभावित होना है, और दूसरा महान् कारण एक सन्त का दूसरे ख्याति प्राप्त समसामयिक अथवा पूर्ववर्ती सन्त की रचनाओं में रस विभोर हो कर उस के पदों का यथेष्ट अनुकरण करना है। नामदेव, कबीर, तथा गुरु नानक ने अपने विचार व्यक्त करते हुए नाथ-साहित्य के लगभग सभी विचारों को स्वीकार कर लिया है, केवल उनके गृहस्थ जीवन के त्याग पर टिप्पणियां करते हुए, इस जीवन से भागने की अपेक्षा इसे जीने योग्य बताया है। यही सन्तों की नाथों से भिन्नता है। गोरख नाथ स्वयं हठयोग के विरुद्ध थे और रिद्धियों-सिद्धियों में भी विश्वास नहीं रखते थे, परन्तु हठयोग की प्रक्रियाओं और

२४८- संत साहित्य पृ० २६३ २४६- वही० पृ० २६५

२५०- भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी- १४६

भाषा-शिल्प आदि रूपों का सर्वथा त्याग नहीं कर पाये थे। अतः खंडन एवं मंडन, दोनों रूपों में नाथ-साहित्य के पदों के पद, पंक्तियों की पंक्तियां, इन तीन सन्तों की रचनाओं में उपलब्ध हैं। नाम देव की रचनाओं से कबीर तथा गुरु नानक प्रभावित हुए थे तथा परवर्ती अन्य सन्तों ने अपने पूर्ववर्ती साधकों में से नामदेव, कबीर और गुरु नानक के प्रभाव को स्वीकार किया। यह बात गुरु नानक के अनुयायियों के विषय में भी ठीक है। इसी लिये उनके पश्चात् के गुरु व्यक्तियों की भाषा पर आदि ग्रंथ के पूर्ववर्ती रचयिताओं, विशेषतः नामदेव, कबीर तथा उनका अपना अधिक प्रभाव है। उत्तरोत्तर यह भाषा पूरबी शैली और ब्रज भाषा के रूपों पर अधिकार करती गई। इसी कारण पंचम गुरु तक पहुंच कर पंजाबी और मिश्रित भाषा शैली की अपेक्षा, हिन्दी भाषा शैली का प्रयोग स्पष्टतः अधिक हो जाता है। गुरु अपने संघ पंजाबेतर प्रदेश में बनाये रखने के कितने इच्छुक थे, इसका प्रमाण गुरु नानक द्वारा पंजाब के बाहिर के सन्तों की रचनाओं का संकलन करने और गुरु अर्जुन देव द्वारा, उस निधि को आदि ग्रंथ में सम्मिलित कर के सदा के लिये अमर करने से मिलता है।[२५१] गुरु तेग बहादुर की भाषा गुरु अर्जुन देव से भी अधिक केन्द्रोन्मुख है। इसमें पंजाबियत का आग्रह नहीं। यह भाषा तद्भव प्रधान होते हुए भी पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा तत्सम की ओर अधिक झुकाव रखती है। पहले गुरुओं की भाषा की मुख्यविशिष्टता है फारसी और देशज शब्दों का प्रचुर प्रयोग। गुरु तेग बहादुर की संपूर्ण रचना में देशज और फारसी शब्दों का पूर्ण बहिष्कार है। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसे शब्द अवश्य आए हैं, जो पूर्ववर्ती परंपरा से संबंध स्थापित करते हैं-यथा: बिरथा, निंदिआ, कागरि, समानि आदि।[२५२]

सन्त-साहित्य की भाषा के क्रमिक-विकास के अध्ययन के लिये इस महान ग्रंथ में पूर्ण सामग्री उपलब्ध है। नामदेव से लेकर गुरु तेग बहादुर तक के सन्त-साहित्य की रचनाओं के भिन्न रूप इस में उपलब्ध हैं। इसी लिये भाषा के क्षेत्र में भी इस ग्रंथ की उतनी ही महत्ता है, जितनी विचार के क्षेत्र में। संभवतः डा० ट्रंप, विचार को ढूंढने में इसी लिये असमर्थ रहे थे, कि वे आदि ग्रंथ की भाषा की विविधता में ही खो गये थे।

ठठठ

२५१- गुरु मुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृ० १२

२५२- गुरु मुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृ० ५४

१९- श्री गुरु ग्रंथ साहब का अलंकार विधान:

मैं रोवंदी सभ जग रुंना, रुंनड़े वणहि पंखे ।
इकु न रुंना मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी।
तद्गुण अलंकार। म:१ पृ० ५५८

आदि ग्रंथ का अलंकार विधान

अलंकार की परंपरा : काव्यानन्द की उपलब्धि के लिए आचार्यों की दृष्टि से जिन विभिन्न संप्रदायों की सृष्टि हुई उनमें से एक संप्रदाय है, अलंकार-संप्रदाय। इस संप्रदाय के मूल प्रवर्तक थे भामह। काव्य के प्रति अलंकार की उपयोगिता को लगभग सभी ने स्वीकार किया है, परन्तु दंडी प्रथम व्यक्ति था, जिसने अलंकार को विशेष महत्व दिया। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि दंडी का अलंकार संप्रदाय इतना व्यापक है कि उसमें सभी कुछ आ जाता है। वामन, रुद्रट, राजशेखर, मम्मट, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ ने अलंकार को काव्य में उचित स्थान देने की चेष्टा की है।[१]

साधारणतया: यह विचार किया जाता है कि निर्गुणिया संतों की कविता में उक्तियों और अलंकारों का अभाव है। उन्हें अपनी उक्तियों पर आकर के अलंकारों का मुलम्मा लगाने का चाव नहीं था। जो अलंकार उनमें मिलते हैं वे उन्होंने खोज कर नहीं बिठाये हैं कला और कलात्मकता सन्त-साहित्य में नहीं है।[२] परन्तु आदि ग्रंथ के संत कवियों की रचनाओं में लगभग सभी अलंकारों को ढूंढा जा सकता है। इस में सन्देह नहीं कि सन्तों ने जोर लगाकर अलंकारों का प्रयोग नहीं किया, परन्तु सन्त कवि साधारण जनता के दिल की बात कहते थे, और सहज तथा सरल भाव से उनकी भावपूर्ण भाषा में अलंकारों का विधान स्वतः ही हो जाता था।

सन्त कवियों के काव्य में अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक मिलता है।[३]

अर्थालंकार

१-अतद्गुण: लोक न्यायमूलक अर्थालंकार, निकटवर्ती वस्तु के गुण ग्रहण करने की संभावना होने पर भी, ग्रहण न किये जाने को अतद्गुण अलंकार कहते हैं। इसका प्रथम प्रयोग मम्मट ने किया है- तद्रूपाननुहारश्चेदस्य तत्स्यादतद्गुण: अर्थात प्रस्तुत के संसर्ग में आकर भी प्रस्तुत का उसके गुण का अनुकरण न करना अतद्गुण है।[४]

१- सन्त साहित्य- प्रेम नारायण शुक्ल डा०- पृ० ३५७

२- हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास- पृ० ६३

३- सन्त काव्य- ७७

४- काव्य प्रकाश (१०-१३८) से हिन्दी साहित्य कोश पृ० ११ पर उद्धृत।

शिवराज भूषण में अजा रूप यह माना है: जहं संगति तें और को गुन कछु नहिं लेत।[5] भाई कान्ह सिंह ने आदि ग्रंथ में से इसके निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं:-

१- जैसे पाहन जल महि राखियो भेदै नहि तिह पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगति हीन जो प्रानी। बिलावल म:९[6]

२- पाथर रख बहु नीर पखारा। नहि भीगै अधिक सूकाना।
खट सासत्र मूरखै सुनाइआ। जैसे दह दिस पवन झुलाइआ। भैरउ म:५[7]

३- मै रोवंदी सभु जग रुंना, रुंनड़े वणहि पंखेरू।
इक न रुंना मेरे तन का बिरहा, जिनि हउ पिरहु विछोड़ी।
म:१ आ०ग्रं० पृ०१५८

२- अत्यन्तातिशयोक्ति: जयदेव के अनुसार 'पौर्वापर्यव्यतिक्रम', लक्षण है,[8] जिसके आधार पर हिन्दी के आचार्यों ने अपने लक्षण दिये हैं - होत हेतु, पाछे जहां, प्रथम होत ही काज।[9] तथा जहां हेतु ते प्रथम ही प्रकट होत है काज:[10]

आदि ग्रंथ से उदाहरण: पहिला पूतु पिछैरी माई।
आगनि बैल गौन भरि आई। कबीर[11]

३- अधिक: अतिशयोक्ति वर्ग का अलंकार, यदि आधार अथवा आधेय वस्तुत: छोटा हो, पर उसे अपेक्षाकृत बड़ा वर्णित किया जाये तो अधिक अलंकार होता है। संभवत: रुद्रट ने इसे सर्वप्रथम स्वतंत्र अलंकार माना। मतिराम ने प्रथम तथा द्वितीय भाग आधार की पृथक् पृथक् परिभाषाएं दी हैं- प्रथम: जहां बड़े आधार तें अनन्त कछु आधेय (ललित ललाम-२३६) तथा द्वितीय: जहां बड़े आधेय तें अनन्त बड़े आधार (ललित ललाम- २३८)[12]

आदि ग्रंथ: कवन बीज महि बसि रहिओ जा को तीनि लोक बिसथार।[13]
साखी कबीर।

५- शिवराज भूषण- २६५ से हिन्दी साहित्य कोश पृ० [illegible] पर उद्धृत
६- आ०ग्रं० पृ० ८३१ ७- आ०ग्रं० पृ० ११३७
८- चन्द्रालोक ५: ४२ से हिन्दी साहित्यकोश पृ० २५ पर उद्धृत।
९- ललित ललाम- मतिराम- १२८ से हिन्दी साहित्य कोश पृ० १५ पर उद्धृत
१०- शिवराज भूषण से महान कोश- कान्ह सिंह नाभा पृ० ४० पर उद्धृत
११- आ०ग्रं० बाणी कबीर पृ० ४८१

४- अनुज्ञा : विरोध मूलक विशेषालंकार। भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट और वामन का परवर्ती है। इसके पश्चात् रुद्रट (काव्यालंकार-९:५) मम्मट (काव्य प्रकाश १०-१३५-३६) और रुय्यक (अलंकार सर्वस्व पृ० १९०) में इस का उल्लेख है। मम्मट की बाल बोधिनी और नागेश्वरी व्याख्याओं में बताया गया है कि दोषपूर्ण वस्तु में भी गुण को देख कर उस दूषित वस्तु की इच्छा करने पर भी विशेष अलंकार होता है। (नागेश्वरी पृ० ६६४) यथा- 'विपद: सन्तु न: शश्वद्, यासु संकीर्त्यते हरि:' अर्थात् हमारे ऊपर विपत्तियां भी आवें जिससे हम भगवद्भजन तो करें। पर कुवलयानन्द में इसको विशेषान्तर्गत न मान कर इसे एक नया नाम 'अनुज्ञा' देकर परिभाषित भी करते हैं।[14]

आदि ग्रंथ से उपर्युक्त 'विपद: सन्तु' आदि से मिलता जुलता 'अनुज्ञा' का उदाहरण देखिए:-

भलो सुहावी छापरी जा महि गुनगाए।...
अनद गरीबी साध संगि जितु प्रभु चिति आए।...
पीसन पीसि ओढि कामरी सुखु मनु संतोखाए।...
नगन फिरत रंगि एक कै ओहु सोभा पाए। सूही म: ५[15]

५-अर्थान्तरन्यास: सादृश्यगर्भ गम्यौपम्याश्रय वर्ग का प्राचीनों से स्वीकृत चला आने वाला अर्थालंकार। सामान्यतया इसकी यह परिभाषा सर्वमान्य रही है, इस अलंकार में साधर्म्य और वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य का विशेष द्वारा और विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन किया जाता है। (काव्य प्रकाश- १०-११०)[16]

आदि ग्रंथ: १- नीचहु ऊच करै मेरा गोबिंद, काहू ते न डरै। रविदास[17]

२- कबीर साकत संग न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि।
बासन कारो परसीऐ तउ कछु लागै दाग।[18]

६- अर्थापत्ति: [illegible] न स्वीकृत अर्थालंकार, [illegible] का पर्याय है; इस अलंकार में जिसके द्वारा कठिन कार्य की सिद्धि होती हो, उसके द्वारा सुगम कार्य की सिद्धि क्या कठिन है? ऐसा वर्णन होता है। सोमनाथ ने 'रस-पीयूष-निधि' के अलंकार प्रकरण में इसकी परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट की है, 'जुगुति जाति लखी [illegible] और की [illegible]'। जैसे:- 'राम नाम सुमिरन से कोटिक अपराधी तर गये फिर अन्य क्यों न तरेंगे':-

---

१२- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० ७०   १३- आ०ग्रं० पृ० ३४०

आदि ग्रंथ   १- मधु परेत गुण ... मारे, पाखण्ड मारि उतारे। म: ५[20]

२- जा कउ ... उधरियो, ... गति पाई। म:६[21]

३- जो ... साधु को अपराधी ... तिन के ... पछरे। म:४[22]

७- अवज्ञा: विशेषोक्ति में ... होने वाला चमत्कार; जहां एक के गुण दोष से दूसरे के गुण दोष न होने का वर्णन हो वहां 'अवज्ञा' अलंकार होता है। यह अलंकार 'उल्लास' अलंकार के विपरीत है। उल्लास में अन्य के गुण दोषों का अन्य को ... । ... है, अवज्ञा में उसका असंगतत्व ... व्यर्थता। यद्यपि संस्कृत के आचार्यों ने इसे स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं माना, तो भी 'चन्द्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' में इसे स्वतंत्र अलंकार माना गया है। ... गाय, भूषण, दास तथा पद्माकर आदि हिन्दी के आचार्यों ने भी इसे स्वतन्त्र अस्तित्व दिया है। ... के अनुसार इस अलंकार की परिभाषा है, 'और के गुण दोष से और के गुण दोष' (ललित ललाम- ३१७)। दास ने इसके दोनों भेदों के अलग अलग लक्षण दिये हैं। 'और के गुन और नहि गुने', तथा 'औरें दोष न और को दोष' (काव्य निर्णय)[23]

आदि ग्रंथ से उदाहरण

१- ... ... , ... बिसराए।
जलि जाउ ... , ... ।
ऐसो ... , ... ।
पाट पटंबर ... , ... रचि ... । सूही म:५[24]

१८- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३३
१६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ...
१९- आ०ग्रं० पृ० १३०१
२०- आ०ग्रं० पृ० ८०२
२१- आ०ग्रं० पृ० ६६१
२२- आ०ग्रं० पृ० ७४५
११- आ०ग्रं० पृ० ७४५
१९- आ०ग्रं० पृ० ११०६
१६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७५८
२२- आ०ग्रं० पृ० १००८
२३- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० ६९८

२- बेद पुरान पढ़े का किआ गुन, खर चंदन जस भारा।
राम नाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरसि पारा। कबीर[25]

३- पाठ पढ़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे। म:५[26]

क्योंकि योनता यी वाणिस था कि विपुल गुण वैभव में उसे प्रदान करने वाले हरि को स्मरण किया जाता। बेद-शास्त्र पढ़ कर हरि का नाम स्मरण किया जाता, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। बेद पुरान पढ़े को इहु गुनु सिमरे हरि का नामा।[27] जहाँ कि बेदों का सार राम नाम ही है, 'बेदों महि नाम उतमु सो सुणहि नाही फिरहि जिउ बेतालिआ।'[28] असंगति अलंकार के जो उदाहरण अपर आदि ग्रंथ से दिये गये हैं, उनके स्पष्टीकरण के लिये प्रथमतः राम के 'ललित ललाम' से कविता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं:-

प्रथम रूप: मेरे दृग वारिद वृथा बरसत वारि प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर मांह। (ललित ललाम-३१६)[29]

इसी प्रकार आदि ग्रंथ में देखिए:

कबीर साचा सतिगुरु किआ करै, जउ सिखा माहि चूक।
अंधे एक न लागई, जिउ बांसु बजाईऐ फूक।१५८।।[30]

द्वितीय रूप: काम भरो जो तजत है, मलिन मधुप द्रुम मानि।
मुरझन लगत सुजान तुव, चंपक लगे न लानि। (ललित ललाम-३२०)[31]

आदि ग्रंथ: हमरै कपरै निंदकु धोवै।xx। निंदकु माहि हमारा चीतु।xx
हमरा जानु निंदकु लोरै।xx। निंदा हमरी करै उधारु।[32]

८- असंगति: विरोधमूलक अर्थालंकार। इस अलंकार की गणना मुख्य अलंकारों में है। इस के तीन भेद हैं। इस अलंकार का विवेचन संभवत: सर्वप्रथम रुद्रट ने किया, तथा उसी के आधार पर मम्मट ने इस का विवेचन किया है, 'असंगति अलंकार उसे कहते हैं, जिसमें कार्य कारण रूप से व्यवस्थित धर्मों का ऐसा प्रतिपादन किया जावे, कि भिन्न देश में भी अपने कभी उत्कर्ष विरोध से जाय, साथ साथ व्यवस्थित प्रतीत हो।' कुवलयानंद में इस के तीन भेद स्वीकार किये गए हैं, और हिन्दी के अन्य आचार्यों ने भी स्वीकार किया है:

२५- आ०ग्रं० पृ० ११०३ २६- आ०ग्रं० पृ० ६४१
२७- आ०ग्रं० पृ० २१० २८- आ०ग्रं० पृ० ८१६

(१) प्रथम असंगति : यदि कारण कहीं अन्यत्र और कार्य कहीं अन्यत्र वर्णित हो तथा उस वर्णन से विरोध का आभास हो वहां प्रथम असंगति अलंकार होता है। मतिराम के अनुसार और हेतु जहं और फल, काज और फल जाये। (ललित-ललाम-२१४) - उदाहरण: महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर, ग्रीवा जात नेकरि गनीम अतिबल की (शिवराज भूषण- २०१)[34]

आदि ग्रंथ : जिउ जिउ नाधा मरि गुण उचरै।
भगत जनां का देहुरा फिरै।[35]

(२) द्वितीय असंगति : जहां अन्यत्र किये जाने योग्य कार्य अन्यत्रकिया जाना वर्णित हो, वहां द्वितीय असंगति होती है। मतिराम, भूषण, दास आदि के लक्षण प्राय: समान हैं-थान और करनीय, सो करै और ही ठौर। (शिवराज भूषण-२०२) उदाहरण: विहंसि बुलाय बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रसघूमि। पुलकि पसीजत पूत को, पिय चूम्यौ मुहं चूमि। (बिहारी रत्नाकर)[36] चूमना चाहिए था प्रिय का मुंह, परन्तु प्रिय द्वारा पुत्र के चूमे हुए मुंह को चूम कर नायिका ने आनंद लिया।[37]

आदि ग्रंथ: नावि मजनु संति साधुआ, धूड़ी करि इसनानु।

जल से नहीं अपितु भाषी के पर्व का स्नान साधु समागम तथा, उनकी चरणधूलि में हो कर अधिक सुकर हुआ।

(३) तृतीय असंगति: यदि किसी कार्य को करने की प्रवृत्ति हो, किन्तु उसके करने से विरुद्ध कार्य का होना वर्णित हो तो वहां तृतीय असंगति होती है। जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण आदि के लक्षण प्राय: समान हैं- करन लगे और कछु, करै औरई काज (शिवराज भूषण- २०४) उदाहरण- उदित भयो है जलद तू, जग को जीवन दानि। मेरो जीवन लेत है, कौन बैर मन ठानि।[38] (ललित ललाम- ३२०)

आदि ग्रंथ: १- जीवते डूबे, मारो तिरे। कबीर[39]
(जो जीता था डूब गया, जो मारा वह पार हुआ)
२- गुरु लागी चेले की पाई। कबीर[40]

२९- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६८ पर उद्धृत।

३०- आ०ग्रं० पृ० १३७२

३१- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६९ पर

३२- आ०ग्रं० पृ० ३३९

३३- काव्य प्रकाश- १०-२११, से हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७८ पर उद्धृत।

९- असंभव: विरोधमूलक अर्थालंकार। अलंकार शास्त्र के प्राचीन लेखकों ने इसे पृथक न मान कर विरोध के अंतर्गत माना है। विरोध का वर्णन भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन एवं रुय्यक इत्यादि के लेखकों ने किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि असंभव का उल्लेख सर्वप्रथम चन्द्रलोक के लेखक पीयूषवर्ष जयदेव ने किया था। उनके अनुसार लक्षण है- 'असम्भवोऽर्थनिष्पत्तावसम्भाव्यत्ववर्णनम्' (चन्द्रलोक-५-७६) हिन्दी के आचार्यों ने इसी लक्षण को स्वीकार किया है। 'जहं अर्थ की सिद्धि को संभव वचन न होइ' (ललित ललाम मतिराम- २१२)[४१] भूषण ने भी यही लक्षण दिया है। 'अनहूंबे बात कछु, प्रगट भई सी जान' (शिवराज भूषण-२६७)।

आदि ग्रंथ: १- मसकं भगनंत सैलं, करदमं तरंत पपीलकह।
सागरं लंघंति पिंगं तम परगास अंधकह। म:५[४२]
(मच्छर पत्थर तोड़ दे, चींटी भी कीचड़ पार कर जावे,
सागर को पिंगल पुरुष लांघ जावे। अंधे को अंधेरे में प्रकाश हो जावे।)

२- कहहि त धरणि इकोडी करउ। कहहि त लै करि ऊपरि धरउ।
कहहि त मुई गऊ जीवाइ। सभु कोई देखै पतीआइ।
नामा प्रणवै सेलमसेल। गऊ दुहाई बछरा मेलि। नामदेव[४३]

३- गऊ कउ चारे सारदूलु। कउडी का लख हूआ मूलु।
बकरी कउ हसती प्रतिपाले। अपना प्रभु नदरि निहाले। म:५[४४]
(ऐसे अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं)

१०- उत्तर: लोकन्यायमूल अर्थालंकार। हिन्दी में इसे प्रश्नोत्तर (तथा गूढ़ोत्तर) भी कहा है। इसकी व्याख्या में पर्याप्त अन्तर रहता है। भूषण ने कहा है, 'कोई बूझे बात कछु कोउ उत्तर देय।' (शिवराज भूषण-३१२) पद्माकर ने केवल साभिप्राय उत्तर कह कर छुट्टी पा ली है। (पद्माभरण-३४६), मतिराम ने 'अभिप्राय सौं सहित जो उत्तर' (ललित ललाम-३०८) कहकर उत्तर संबंधी चमत्कार की ओर संकेत किया है। परन्तु आधुनिक काव्य शास्त्रियों में से कन्हैयालाल पोद्दार ने इसका विस्तार मम्मट के आधार पर किया है। मम्मट के अनुसार, उत्तर अलंकार में या तो उत्तर के सुनने मात्र से प्रश्न की कल्पना कर ली जाती है, या प्रश्न के रहते हुए भी ऐसे उत्तर की कल्पना की जाती है, जो कि सामान्यतः कोई संभावना नहीं होती (काव्य प्रकाश- १०-१२१)[४५]

३४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७६ ३५- आ०ग्रं० पृ० ११६४

(१) प्रश्न उत्तर: जहाँ प्रतिवचन के ज्ञान से प्रश्न अथवा प्रश्नविषय का अनुमान हो जाये। [illegible] (२) उन्नति प्रश्न में [illegible] उत्तर सुन कर प्रश्न की [illegible] हो जाता है।

आदि ग्रंथ: [illegible] 46

(बोल [illegible] उत्तर है।)

(२) निगूढ़ प्रश्न में [illegible] प्रश्न [illegible] पर प्रसिद्ध उत्तर दिया जाता है।

दास का उदाहरण: [illegible]

[illegible] (काव्यनिर्णय-१९)

आदि ग्रंथ: रावन [illegible]

[illegible]

[illegible] 47

(३) [illegible] उत्तर में प्रश्न में [illegible] उत्तर अथवा बहुत से प्रश्नों का [illegible] उत्तर होता है। [illegible] कन्हैया लाल पोद्दार ने [illegible] से उदाहरण लिया है- [illegible] प्रश्न का उत्तर [illegible] में [illegible] के उदाहरण में [illegible] प्रश्नों का उत्तर है: [illegible] उत्तर दियो, सिव नृप [illegible] (शिवराज भूषण- ३११) 48

उत्तर अलंकार [illegible] उदाहरण [illegible] रचना में आदि ग्रंथ में मिलता है, जो उपर्युक्त [illegible] के उदाहरण [illegible] देता है:-

आदि ग्रंथ: [illegible] निबेरहु [illegible]

[illegible] जानिबा।

[illegible]

[illegible] 49

३६- हिन्दी साहित्य कोश पृ०७६   ३७- आ०ग्रं० पृ० १३५

३८- हिन्दी साहित्य कोश पृ०७६   ३९- आ०ग्रं० पृ० ११६१

४०- आ०ग्रं० पृ० ५८१   ४१- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७६

४२- आ०ग्रं० पृ० १३५६   ४३- आ०ग्रं० पृ० १६६

११- उत्प्रेक्षा: सादृश्यमूलक अभेदप्रधान अध्यवसाय मूलक अलंकार, जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना होती है। भरत ने इस अलंकार का वर्णन नहीं किया। स्वतंत्र रूप में इसे अलंकार-पद दण्डी के बाद प्राप्त हुआ। भूषण ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है: आन बात को आन में जहाँ संभावना होय। (शिवराज भूषण -९९)[50]

आदि ग्रंथ: (१) [illegible] फिरि लिखि [illegible] [illegible] । [illegible] अनहद [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible]। मैं गुर [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।(नामदेव)[51]

(२) मेरे मुंध [illegible] जेवड़ा।[52]

'उत्प्रेक्षा' के काव्य ग्रंथों में कई भेद बताए गए हैं: वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा आदि। गम्योत्प्रेक्षा एक प्रसिद्ध रूप है। इसका उदाहरण आदि ग्रंथ से देखिए:

[illegible] किरणि [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] सूरज [illegible]।[53]

ऐसे ज्योति का प्रकाश हुआ कि हृदय कमल विकसित हुआ। मानो [illegible] के [illegible] सूर [illegible] [illegible] हो। यहाँ 'मानो' को लुप्त रखकर बात कही गई है। जहाँ 'जनु', 'मानो', 'मनु' आदि न हों, [illegible] उत्प्रेक्षा का प्रयोग हो, वहाँ गम्योत्प्रेक्षा अथवा लुप्तोत्प्रेक्षा (गूढ़ोत्प्रेक्षा) अलंकार होता है।

१२- उदात्त: यह प्राचीन परम्परा प्राप्त [illegible] अलंकार। इस अलंकार रुद्रट के 'काव्यालंकार' में दिये [illegible] और उस पर भी आगे रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' के 'उदार' से भिन्न है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बहुत प्राचीन अलंकार है। दण्डी भामह, उद्भट एवं रुद्रट ने [illegible] उल्लेख किया है। मम्मट ने 'काव्य-प्रकाश' में और [illegible] अनुकरण पर [illegible] [illegible] ने 'साहित्य-दर्पण' में [illegible] उल्लेख किया है। मम्मट ने उदात्त अलंकार की परिभाषा देते हुए कहा है, 'किसी भी वस्तु की समृद्धि तथा महान् व्यक्तियों को उस वस्तु का [illegible] [illegible] [illegible] अलंकार होता है।'[54]

आदि ग्रंथ: १- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।।[55]

४४- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

४५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० १३२

४६- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

४७- आ०ग्रं० पृ० ११०५

४८- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१३२

४९- आ०ग्रं० पृ० ३३१

५०- भूषण कोश- पृ० [illegible]

५१- आ०ग्रं० पृ० ३५९

(२)-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आवा [illegible] [illegible]।[illegible][५६]

(३)-[illegible] [illegible] मेरा [illegible] , [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

गुरु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] [illegible]।[illegible][५७]

१३-उपमा: [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रारंभ से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] प्रकार [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया [illegible] [illegible] [illegible] होता है:[५८]

गुरुमति ग्रंथ: १-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] , [illegible] [illegible] [illegible]।[५९] (पूर्णोपमा)

२-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] मैं [illegible] राम [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] अंबु [illegible],[illegible] मैं [illegible] राम [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] मैं [illegible] राम [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] जलधरा।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] मैं [illegible] राम [illegible]। नामदेव[६०]

([illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[६१] [illegible]- २०-[illegible])

१४-[illegible]: [illegible]- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुण [illegible] दोष [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[illegible] [illegible]: [illegible] [illegible] गुण दोष [illegible] [illegible] [illegible] गुण [illegible]। ([illegible] [illegible]- [illegible]), [illegible] [illegible] [illegible]: [illegible] दोष [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ([illegible]- [illegible])[६२]

गुरुमति ग्रंथ: (क)[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]:

१-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] [illegible] [illegible]।[illegible][६३]

२-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] साधु [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[६४]

(ख)दोष से गुण: [illegible] म:४

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दे [illegible]।[६५]

(ग)गुण से दोष:

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।[illegible] म:१[६६]

(ग) दोष में दोष

कुसंगति लागि सदा दुख पावहि, दुर्गे दुख भया जा। माझ ५:३[67]

१८- उल्लेख : सादृश्यगर्भ और प्रधान आरोपमूलक अलंकारों का एक भेद है। इस अलंकार पर प्राचीनों के साथ मम्मट ने भी विचार किया है। रुय्यक ने 'अलंकार-सर्वस्व' में संभवतः सर्वप्रथम विवेचन किया है- 'एकं वस्तु अनेकधा गृह्यते स उल्लेखः' (पृ० ५७) जहाँ किसी वस्तु को अनेक रूपों में ग्रहण किया जाये तो उसके इस प्रकार अनेक रूपों में कथन को उल्लेख कहा जायेगा।[68]

आदि ग्रंथ: (१) प्रणवै नानक बेनती तूं सरवर तूं हंस।
कमल तूं है कवीआ तू है, आपे वेखि विगास। श्री म: १[69]

(२) तुरु बीरधु तुरु पाखिआतु तुरु मनसा पूरनहारु।
गुर दाता परिनामु वेई अपरे सम संसारु। श्री म: ५[70]

१९- कारणमाला (अथवा गुम्फ) एक शृंखलामूलक अर्थालंकार, जिसमें शृंखला रूप में वर्णित पदार्थों में परस्पर कार्य-कारण-भाव संबंध होता है।[71] इसे हेतु-माला भी कहते हैं।[72]

आदि ग्रंथ: सुणिआ मंनिआ, मनि कीता भाउ।
अंतरगति तीरथि मलि नाउ।। जपु।। म:१[73]

(श्रवण मनन का कारण, मनन निदिध्यासन का कारण,
निदिध्यासन साक्षात्कार का कारण कहा गया है)।

२०- काव्य लिंग: तर्कन्यायमूल अर्थालंकार, 'काव्यलिंग' में दो शब्द हैं, 'काव्य' और 'लिंग'। लिंग का तर्क यहाँ 'हेतु' अर्थात 'कारण' है। सर्वप्रथम संस्कृत में उद्भट ने इसे माना है। उनके बाद मम्मट तथा रुय्यक ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है:

५२- बा०ज० पृ० ५५९
५३- बा०ज० पृ० १०३३
५४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० १३७-३८
५५- बा०ज० पृ० ८५८
५६- बा०ज० पृ० ११३५
५७- बा०ज० पृ० ४१०
५८- संत साहित्य-प्रेम नारायण 'शुक्ल' पृ०३६१
५९- बा०ज० पृ० १३६६
६०- बा०ज० पृ० ६६३
६१- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१५६-५७
६२- हिन्दी साहित्य कोश-पृ० १३८
६३- बा०ज० पृ ११२७
६४- बा०ज० पृ० १२६३
६५- बा०ज० पृ० १३७८
६६- बा०ज० पृ० ४४७
६७- बा०ज० पृ० १०६८
६८- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१६८
६९- बा०ज० पृ० २३

...ने बा...र्ग ...ा ...र्ग ...स हेतु का ...थन किया ...। (...तिस्मु ...तात्पर्य...) (काव्य प्रभा... १०-१२४)

आदि ग्रंथ ...निसा न ... ...ता न ...ड।

...रो ...निरंजन ...ड ।। ...: १ [74]

(न उ... ...ता ... ...ता है ... न उ... ...पि... किया ...

...ता है ...की पुष्टि के लिये दूसरी पंक्ति में ...न है कि:

...ने के कारण)।

१८- छेकोक्ति: ... लोकोक्ति में छेकोक्ति ... ...ता है। [75] यदि लोकोक्ति में ... ...ना हो, तो उसे छेकोक्ति कहते हैं। (छेक उक्ति लोकोक्ति ...ाय ...) (काव्य प्रभाकर) [76]

आदि ग्रंथ (१) ...राधी ...णा ...नि... ... ...।

... ...ना ...ने ... जाहि।म:१ [77]

(२) ...रि ...ातू ...ोगी ... ...ड। ... ... [78]

१९- तुल्य-योगिता: ...दृ...र्म ...गम्यौपम्याश्रया ...ा अलंकार। यह प्राचीनों (भामह, दण्डी आदि) से स्वीकृत रहा है। [79] ... ...ह सिंह ने इस के चार प्रकार ...ये हैं, जिनमें से एक है, ... से समदरसी व्यवहार होना। [80] भूषण ने ...से ... प्रकार ...लिया है। ... ...रसी ...ार (शिवराज भूषण) [81]

आदि ग्रंथ: ...नि ...ना की रीति।

चंदन ... ...ूर ...पन ... ... नहीं प्रीति।

...ट्टा ...ुत्र ...दि तिल, तिलु ...नि न ...नो विपरीति।

ऊच नीच ...िकार ...त ... ...।

...ित्र ... न ... जानें ... ...।

...रि ... ...ल ...टि... अंधकार विनास।

पवित्र अपवित्र किरण लागे, ...नि न ... ...ादु। म:५ [82]

७०- आ०ग्र० पृ० ५२ | ७१- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २२४
७२- ...न कोश-...ह सिंह पृ० २२६ | ७३- आ०ग्र० पृ० ४
७४- आ०ग्र० पृ० २ | ७५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २६८
७६- ...न कोश पृ० २६६ | ७७- आ०ग्र० पृ० ४७०
७८- आ०ग्र० पृ० ४७० | ७९- हिन्दी साहित्य कोश पृ०३२६

८०- दीपक: सादृश्य गर्भ गम्योपम्याश्रय [illegible] अर्थालंकार। यह दीपक न्याय पर आधारित है। एक स्थान पर रखा हुआ दीपक बहुत सी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। यह अलंकार भी इसी के अनुरूप रहता है। इस के अनुसार दीपक एक क्रिया द्वारा भिन्न अधिकरण वस्तुओं का चमत्कारी संयोग मात्र है। उद्भट तथा वामन ने दीपक अलंकार में उपमानोपमेय भाव का अंतर्भूत होना आवश्यक माना है।[83] आचार्य [illegible] सिंह ने इसकी विस्तृत परिभाषा प्रस्तुत की है। उपमेय और उपमान को यदि एक ही धर्म प्रकाशित करे, अथवा अनेक क्रियाओं का यदि एक ही कारक परिलक्षित हो, तो दीपक अलंकार होता है।[84]

(१) कारक दीपक : मम्मट तथा विश्वनाथ ने दीपक का एक रूप माना है। दास ने इसकी परिभाषा यों की है, एक भांति के वचन सों, [illegible] जहं होइ।[85] अर्थात अनेक क्रियाओं के लिये यदि कर्ता एक साथ एक बार ही आए, अथवा एक ही कारक परिलक्षित हो, तो कारक दीपक होता है।[86]

आदि ग्रंथ: जाके कुल [illegible] नारी। जाके धाम जाके [illegible]।
जाके [illegible] सु [illegible], जाके [illegible] है।
जाके [illegible]। जाके [illegible]।
जाके [illegible]। [illegible] है।
जाके [illegible], जाके [illegible] जाके [illegible]।
जाके [illegible]। जाके [illegible]।
जाके [illegible], जाके [illegible]। [illegible][87]

आदि ग्रंथ में इस शैली के आधार पर पृष्ठों के पृष्ठ भरे हुए हैं, क्योंकि एक ही भगवान की स्तुति-वर्णन के कारण 'कारक दीपक' का बहुत प्रयोग हुआ है।

(२) माला दीपक: मम्मट तथा रुय्यक ने इसका सर्वप्रथम विवेचन किया। मम्मट के अनुसार इस में पूर्व पूर्व वर्णित वस्तु उत्तरोत्तर[88] वर्ण्य वस्तु में उत्कर्ष का आधान करता प्रतीत हो। (काव्य प्रकाश- १०-१०४)

८०- [illegible]कोश पृ० ४४८
८१- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३२६
८२- आ०ग्रं० पृ० १०२७-२८
८३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३३६
८४- [illegible] कोश पृ० ४९८
८५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३३६
८६- [illegible] कोश पृ० ४९८
८७- आ०ग्रं० पृ० १०२०-२१
८८- हिन्दी साहित्यकोश पृ० ३३७

आदि ग्रंथ: आपे ते [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] ते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [89]

(३) आवृत्ति दीपक : जगदेव के अनुसार जहां दीपक पदों की आवृत्ति हो, वहां आवृत्ति दीपक होता है। (चन्द्रलोक ५-१४), पुराण के अनुसार [illegible] [illegible] लक्षण है, 'दीपक पद [illegible] [illegible], फिर फिर करत बखान' (शिवराजभूषण- १३०) [90] इसके दो भेद हैं। (१) पदावृत्ति दीपक (२) अर्थावृत्ति दीपक।

(१) पदावृत्ति:

१- तूं मेरा [illegible] तूं [illegible] मेरा [illegible]। तूं मेरा प्रीतमु तुम [illegible] [illegible]।
तूं मेरा पति तू है मेरा गहणा। तुझ बिनु निमखु न जाई रहणा।
तूं मेरे लालन तूं मेरे प्रान। तूं मेरे साहब तूं मेरे खान। म: ५ [91]
(ऐसे पदों के भी आदि ग्रंथ में बहुत दर्शन होते हैं)

२- हरिधन जाप, हरिधन ताप, हरि धन भोजन भाखिआ। गूजरी म:५ [92]

३- हरि मेरा सिम्रिति, हरि मेरा शास्त्र, हरि मेरा [illegible], हरि मेरा भाई। [93]

४- कोई गिआनी कोई धिआनी कोई पुरख [illegible]। [illegible] म:५ [94]

५- पंडित जन माते [illegible] पुरान। जोगी माते जोग धिआन।
संनिआसी माते अहंमेव। तपसी माते तप के भेव। [illegible] कबीर [95]

(२) अर्थावृत्ति : यदि पद भिन्न हों, परन्तु [illegible] एक हो [illegible], तब अर्थावृत्ति दीपक होता है: [96]

१- [illegible] मेरा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] के साजन। धनासरी म:५ [97]

२- [illegible] [illegible] पावन [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। भैरउ म:५ [98]

३- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
ना [illegible] बैरी नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। म: ५ [99]

८९- आ०ग्रं० पृ० १६
९०- हिन्दी साहित्य कोश पृ०३३६
९१- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
९२- आ०ग्रं० पृ० ४६५
९३- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
९४- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
९५- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
९६- [illegible] कोश पृ० [illegible]
९७- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
९८- आ०ग्रं० पृ० ११५०
९९- आ०ग्रं० पृ० [illegible]

२१- दृष्टांत: सादृश्यमूलक गम्यौपम्याश्रय वर्ग का अलंकार। प्राय उद्भट तथा रुद्रट ने इसका विवेचन किया। तत्पश्चात् मम्मट तथा रुय्यक ने इस का निरूपण किया। इन प्राचीनों के आधार पर हिन्दी के आचार्यों ने [illegible] के लक्षण दिये हैं: (क) जहँ दुहुँ वाक्यनि में, बिम्ब बिम्बित प्रतिबिम्ब (ललित ललाम- २९८) (ख) जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव, उपमेयोपमान। (काव्य निर्णय- [illegible])[100] [illegible] ने इन आचार्यों के आधार पर दृष्टांत को किसी ग्रंथ अथवा वस्तु का पूरा ज्ञान कराने के लिये, किसी समान धर्मा वस्तु का कथन, अर्थात उपमेय के प्रतिबिम्ब रूप उदाहरण का वर्णन बताया है।[101]

आदि ग्रंथ: (१) धराति अरु पिरु नाहु देह। पाणी पीवे [illegible] सेह।
बुग पलासा [illegible] कोइ। दे पाकूणा कड़ईऐ रोवहु पीउ।
नारोइ भाति [illegible] रंगि। रोवहु रंगि नालि के रंगि। म:१[102]

(२) रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि।
लहरी नालि पछाड़ीऐ, भी विगसै असनेहि।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि, जैसी मछुली नीर।
बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर।।
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह।
सर भरि थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह। म:१
इसी प्रकार जल-दूध, चकवा-सूर से सुन्दर दृष्टांत दिये गये हैं।[103]

(३) जिउ बारकु पी खीर अघावै, जिउ निरधन धन देखि सुखु पावै।
त्रिखावंत जल पीवत ठंढा, तिउ हरि रंगि इहु मन भीना जीउ।
जिउ अंधिआरै दीपक परगासा, भरता चितवत पूरन आसा।
मिलि प्रीतम जिउ होत अनंदा, तिउ हरि रंगि मन रंगीना जीउ।[104]

(४) सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा, सुआन तजत नहीं नित।
नानक इह बिधि हरि भजउ, इक मन हुइ इक चितु।
तीरथ ब्रत अरु दान करि, मन मै धरै गुमान।
नानक निहफल जात तिह, जिउ कुंचर इसनान। म: ९[105]

१००- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ३३६
१०१- मानक कोश पृ० ४६२
१०२- आ०ग्रं० पृ० [illegible]
१०३- आ०ग्रं० पृ० ६०
१०४- आ०ग्रं० पृ० १००
१०५- आ०ग्रं० पृ० १४२९

आदि ग्रंथ काव्य दृष्टांत अलंकार से भरपूर है, क्योंकि गुरु साहब द्वारा दृष्टांतों से कतिपय महत्वपूर्ण जीवन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

२२- निश्चय-अलंकार: अपह्नुति की जाति का अर्थालंकार। जहां पहले तो संदेह रहता है, परन्तु दूसरे ही प्रसंग से निश्चय होता है वहां निश्चय अलंकार होता है।[१०६]

आदि ग्रंथ: कोई आखै भूतना, को कहै बेताला।
कोई आखै आदमी नानकु वेचारा।
भइआ दिवाना साह का नानकु बउराना।
तउ देवाना जाणीऐ जा भै देवाना होइ।
एकी साहिब बाहरा दूजा अवरु न जाणै कोइ। मारू ५:१[१०७]

(कोई उन्हें भूतना, कोई बेताला (दीवाना) तथा कोई केवल आदमी कहता है। परन्तु दीवाना कहने वालों को क्या दीवाना होने का पता नहीं कि वह किस का दीवाना है? वह तो एक साहब का दीवाना है।)

२३- परिकर: [illegible] के समीपवर्ती [illegible] विशेषण वैचित्र्य संबंधी अर्थालंकार, अथवा अंकुरों के उपकरण, शोभा बढ़ाने वाली सामग्री। इसका विवेचन रुद्रट से प्रारंभ हुआ पाया जाता है। मम्मट के अनुसार: जिस में साभिप्राय विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत अर्थ का प्रतिपादन किया जाय। (काव्य-प्रकाश १०-११८) विश्वनाथ भी इसको दुहराते हैं। किन्तु कई आचार्यों ने साभिप्राय विशेष्यनाम (कुवलयानन्द -६०) कह कर परिकरांकुर का स्वतन्त्र अलंकार माना है।[१०८]

आदि ग्रंथ: परिकर

[illegible] सोचा मेरे [illegible] हरि [illegible]।
[illegible] मेरा [illegible], [illegible] प्रभु [illegible]।
[illegible] मेरा [illegible] रतनु पदारथु [illegible]।
[illegible] रोगु [illegible] देह [illegible]।
[illegible] भुगति [illegible] अगनारी [illegible] मादे [illegible] न [illegible]।
[illegible] सोचा मेरे [illegible] हरि [illegible]। ५:४[१०९]

१०६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ८३   १०७- आ०ग्रं० पृ० ९९१

२४- परिकरांकुर : परिकर में अंतर्भुक्त होने वाला [illegible] का अर्थालंकार। इसको रुय्यक, विश्वनाथ तथा अप्पयदीक्षित द्वारा स्वीकृति मिली है। चन्द्रालोक के अनुसार इसका लक्षण: साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत (५-४०)। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसी का अनुसरण किया है: साभिप्राय विशेष्य जब (भारती भूषण-६६, अर्जुन प्रसाद केडिया)[११०]

आदि ग्रंथ:

एक बूंद जल कारने चातकु दुख पावै।
प्रान गए सागरु मिलै, फुनि कामि न आवै।
प्रान जु थाके थिरु नहीं कैसे बिरमावउ।
बूडि मुए नउका मिलै कहु काहि चड़ावउ। बिलावल-सधना।[१११]

२५- परिणाम: सादृश्यगर्भ अभेद प्रधान के आरोपमूलक अर्थालंकार का एक भेद। इस का उदाहरण है अवस्थानान्तर होना। इसका विवेचन रुय्यक से प्रारंभ हुआ ऐसा जान पड़ता है।[११२] अप्पय दीक्षित ने चित्र मीमांसा में इस की परिभाषा स्पष्ट की है: जहां उपमान (आरोप्यमाण) किसी कार्य के उपयोग में असमर्थ होकर उस सामर्थ्य को प्राप्त करने के लिये उपमेय से अभिन्न रूप होता है, परिणाम अलंकार स्वीकार किया जाता है। (पृ०५१)[११३]

आदि ग्रंथ:

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।
पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए।
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए। तुखारी म:१[११४]

२६- परिवृत्ति: वाक्यन्यायमूल अर्थालंकार। जिस में पदार्थों का सम और असम के साथ विनिमय होता है। इसमें वस्तुओं का परस्पर आदान प्रदान किया जाता है। इसी को विनिमय भी कहते हैं। यह अलंकार प्राचीनों (भामह-दण्डी) से ही स्वीकृत चला आ रहा है। मम्मट ने इस की परिभाषा इस प्रकार की है :

१०८- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४४० १०९- आ०ग्रं० पृ० ७८

११०- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४४० १११- आ०ग्रं० पृ० ८५८

११२- हिन्दी साहित्य कोश पृ०४४० ११३- वही

११४- आ०ग्रं० पृ० ११०८

सम और असम वस्तुओं का विनिमय (काव्य प्रकाश- १०-१८३)[११५] हिन्दी के आचार्यों ने प्राय: सभी ने इस अलंकार को स्वीकार किया है। पदमाकर ने पद्माभ-रण (१८६-१८७) में इसका लक्षण इस प्रकार दिया है: दै औरों तिय अधिक जहं, कहत हैं लहु, औरों लेत जहं। थोड़ा देकर बहुत पाना अथवा बहुत देकर थोड़ा लेना।[११६] आदि ग्रंथ : (क) थोड़ा देकर बहुत लेना:-

१- पतित पुनीत कोटि जिन भीतरि पारब्रह्म के रंगि। म:५[११७]

२- कबीर एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूं ते आध।
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ। २३२ ।।[११८]

३- सरब बैकुंठ मुकति मोख पाए। एक निमख हरि के गुन गाए। म:५[११९]

(ख) बहुत देकर थोड़ा लेना:- आदि ग्रंथ में इस अलंकार भगवान् के थोड़ा लेने और प्राणी को बहुत देने के वर्णन रूप में बहुत प्रयुक्त हुआ है। जो भी प्राणी उसे क्या दे सकता है? सब कुछ उसी का दिया है। केवल समझाने के लिये बातें कहीं हैं:-

१- तीरथ तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु।

यदि कोई भगवान् का नाम लेता है, अर्थात् अपना आप उसे एक क्षण भर के लिये अर्पण कर उससे हजूर सनमान प्राप्त करता है, तो वह सनमान करोड़ों तप, दया, दानादि कर्मों के पुण्य फल के बराबर होता है।

२- तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ।
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ।
हरि नामै तुलि न पुजई जे लख कोटि करम कमाइ।
अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ।
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ।
हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ।
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआरु।
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु। म: १[१२०]

११५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४४१ ११६- वही
११७- आ०ग्रं० पृ० १३०० ११८- आ०ग्रं० पृ० १३७७
११९- आ०ग्रं० पृ० २९० १२०- आ०ग्रं० पृ० ६२

3- आदि ग्रंथ में नामदेव के पद 'प्रबोध मानें।'[121] तथा 'मारसी नाथु की उलटि ताका भरे, मानि दहि ताहजा वासु काजै।'[122] पूरे पद इस अलंकार के उत्तम उदाहरण हैं।

२७- <u>परिसंख्या:</u> वाक्यन्यायमूलक अर्थालंकार, जिसमें किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके किसी अन्य स्थान में स्थापन किया जावे। मम्मट ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है: पूछी गई अथवा न पूछी गई किसी बात का ऐसा शब्दत: प्रतिपादन हो जो अन्त में अपने समान किसी अन्य वस्तु के निषेध में परिणत हो जाय:[123]

आदि ग्रंथ: १- सुख नाही बहुतै धनि खाटे। सुख नाही पेखे निरति नाटे।

२- सुख नाही बहु देस कमाए। सरब सुखा हरि हरि गुण गाए।।म:५[124]

(प्राणी को धन-वैभव, नाटक चेटक, तथा सम्पत्ति में सुख प्रतीत होता है, और हरि नाम स्मरण करना कठिन लगता है, परन्तु वास्तव सुख इन वस्तुओं में नहीं राम-नाम सुमरिन में है।)

२- नह सीतलं चंद्र देवह, नह सीतलं बावन चंदनह।
नह सीतलं सीत रुतेण, नानक सीतलं साध स्वजनह।।म:५[125]

२८- <u>पूर्वरूप:</u> लोकन्यायमूलक अर्थालंकार। प्रतिहारेन्दु जयदेव के अनुसार पूर्वरूप दो प्रकार का है। मम्मट आदि ने तद्गुण से अलग नहीं माना। भिखारीदास और कन्हैयालाल पोद्दार ने इसे तद्गुण में अन्तर्भुक्त ही माना है। परन्तु मतिराम और भूषण ने इसे तद्गुण से भिन्न स्वीकार किया है। मतिराम का पूर्वरूप के दोनों रूपों की परिभाषाएं भूषण से अधिक स्पष्ट हैं:-[126]

<u>प्रथम पूर्वरूप</u>: जहं और तें रंग तजि प्रगटि आपनो जोत। (ललित ललाम-333)
अर्थात् दूसरे के आरोपित गुणों को त्याग कर पुन: अपने गुणों को प्रकट करना। जयदेव।

आदि ग्रंथ: कबीरा धूरि सकेलि कै पुरीआ बाधी देह।
दिवस चारि को पेखना अंति खेह की खेह।।२९८।।[127]
(धूलि एकत्रित करके भगवान ने ज्योति के द्वारा शरीर निर्मित हुआ था। मरणोपरांत फिर धूलि हो गई)

१२१- आ०ग्रं० पृ० ८७३ १२२- आ०ग्रं० पृ० ६९३
१२३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४१२ १२४- आ०ग्रं० पृ० ११४७

द्वितीय पूर्व रूप : प्रारंभिक पूर्व काल की क्रिया के अनुसार होगी। (ललित व्याकरण-१२५)

(इसके वर्तमान रूप से पहले जो जाने पर ही पूर्ण रूप वाले गुण युक्त होगा)

आदि ग्रंथ: मूलानाग में सृष्टि का लय होती है, जिस अवस्था में एक ओंकार ही अवस्थित रहता है। प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि उसी अवस्था को प्राप्त हो जाती है। अतः इसी में लय किया भी जाता है:-

[illegible] कैसे जाने पाई। नाना रूप में दिखलाई।

[illegible] धंधुकारा। तब [illegible] ओंकारा।

[illegible] ओंकारा। म:५ [128]

२९- उदाहरण: सम्बन्धोपमा अथवा वाक्यार्थ अलंकार और दृष्टांत अलंकार से मिलता जुलता है। कोई साधारण बात कहकर जैसे इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से उसकी समता दिखाई जाती है वहां 'उदाहरण' अलंकार होता है।[129] डा० प्रेम नारायण शुक्ल लिखते हैं, कि सामान्य रूप से कही गई बात को स्पष्ट करने के लिये उसका एक अंश लेकर उसके उदाहरण दिया जाता है वहां 'उदाहरण' अलंकार होता है।[130] 'उदाहरण' अलंकार में कवि का मुख्य लक्ष्य उपमेय वाक्य पर होता है। उत्तरार्द्ध केवल समानता के तौर पर होता है। दृष्टांत में मुख्य लक्ष्य उपमान वाक्य (उत्तरार्द्ध भाग) पर होता है। अर्थान्तरन्यास में साधारण का विशेष से और विशेष का साधारण से समर्थन होता है। परन्तु दृष्टांत में साधारण की साधारण से और विशेष की विशेष से समता की जाती है।[131]

आदि ग्रंथ १- [illegible] है, निसि दिनि [illegible] प्रानी।

[illegible] सिंचाइ है, फुनि [illegible] पानी। म:९ [132]

(यहां [illegible] के निसदिन रहने पर [illegible] किया और कहा है, कि [illegible] नहीं।)

२- जो रचना सब झूठ है, जानि लेहु रे मीत।

कहि नानक थिरु न रहे जिउ बालू की भीत। म:९ [133]

१२५- आ०ग्र० पृ० १३५९ | १२६- हिन्दी साहित्य कोश- पृ० ४६२
१२७- आ०ग्र० पृ० १३५९ | १२८- आ०ग्र० पृ० ९३६
१२९- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१३७ | १३०- रस साहित्य पृ० ३६२
१३१- हिन्दी साहित्य कोश पृ०१३७ | १३२- आ०ग्र० पृ० ९२६

३- [illegible] मान [illegible] हुंग [illegible], [illegible] न [illegible]।
जि[illegible] न फर [illegible] पितमि, [illegible] न [illegible]। [134]

४- [illegible] चरण परमहै, [illegible] [illegible] अवाइ।
[illegible] पुत्र [illegible], [illegible] नाम [illegible]। भ: ३ [135]

३०- <u>प्रस्तुतांकुर:</u> अप्रस्तुतप्रशंसा की [illegible] रीति का अलंकार। अप्रस्तुत से प्रस्तुत के बोध का नाम अप्रस्तुत प्रशंसा (प्रशंसा (प्रशंसा = कथन) है। इसमें अभिधा शक्ति से अप्रस्तुत वृत्त और व्यंजना शक्ति से प्रस्तुत वृत्त की प्रतीति होती है। परन्तु प्रस्तुतांकुर में एक प्रस्तुत अर्थ से दूसरे प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति होती है। प्रतिष्ठापक अप्पय दीक्षित के अनुसार प्रस्तुतांकुर का लक्षण है: प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुतांकुरः। (कुवलयानन्द: ६७) हिन्दी के आचार्यों ने भी इसी को आधार मान कर परिभाषा की है। 'प्रस्तुत करि प्रस्तुतहिं प्रकट होत मति राम।' (ललित ललाम-१९५)।

आदि ग्रंथ: तब गुन कहां [illegible] गुरा, जब करम न नारी।
[illegible] [illegible], [illegible] अंकुश मारे। बिलावल [illegible]। [137]

३१- <u>प्रहर्षण:</u> काव्य प्रकाश, साहित्य दर्पण आदि संस्कृत के ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं। जयदेव ने इसे अपने 'चन्द्रलोक' में स्वीकार किया है, और भूषण ने इसी के आधार पर इसकी परिभाषा की है। 'हिं मन [illegible] अर्थतें, प्रापति [illegible] अधिकाय।' (शिवराज भूषण-२१५)[138] भाषा [illegible] में भी ऐसी ही परिभाषा है। 'जहिं इच्छा ते फल अधिकाइ। सो भावै प्रहर्षण ताहीं।' (नरसिंजी)[139]

आदि ग्रंथ: १- [illegible] प्रीति पुत्र प्रति [illegible], [illegible] नारायण [illegible]।
मेरे ठाकुर के मनि [illegible] [illegible] कंकर मारि [illegible]। ५:४ [140]
(यहां बिना उपाय ही अर्थ की सिद्धि हो गई है। नाम पुत्र का लेकर प्रीति की, परन्तु वह नाम भगवान् का होने से अर्थ सिद्धि बिना यत्न के हुई। यह प्रथम प्रहर्षण है।- 'जहं उत्कंठित अर्थ की बिन उपाय ही सिद्धि।' ललित ललाम-३०२) [141]

१३३- आ०ग्र० पृ० १४२८
१३४- आ०ग्र० पृ० १३६६
१३५- आ०ग्र० पृ० १४१५
१३६- हिन्दी साहित्य कोश-४६०
१३७- आ०ग्र० पृ० ८५८
१३८- हिन्दी साहित्य कोश-४६०
१३९- भाषान कोश- ५६९
१४०- आ०ग्र० पृ० ६८१

- [illegible] दे [illegible], मेरा [illegible] ।
एक [illegible] मन [illegible] । [illegible] बंदन [illegible] ।
[illegible] । [illegible] ।
[illegible] [142]

' [illegible] सिद्धि [illegible] । [illegible] को [illegible] लेकर [illegible], उसने उस [illegible] को मन में [illegible] दिया।) ([illegible] सिद्धि की [illegible] फल [illegible] । ललित ललाम-३८८) [143]

३२- <u>प्रतिषेध:</u> इस अलंकार का उल्लेख अप्पय दीक्षित ने किया है। उन्होंने इस की परिभाषा इस प्रकार दी है: प्रतिषेध: प्रसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्तनम्। (कुवलयानन्द: १८) अर्थात् यदि कोई वस्तु पहले से ही निषिद्ध हो और वह निषेध प्रसिद्ध हो तो उस निषेध की पुनरुक्ति से यह अलंकार होता है। पद्माकर ने कुवलयानन्द के अनुसरण पर इसे स्वीकार किया है: जो प्रसिद्ध प्रतिषेध है, ताको अनुचित निषेध (पद्माभरण- २७४) [144] [illegible] भी [illegible] का अनुसरण है, [illegible] राम [illegible] निम्नांकित परिभाषा दी गई है: जहां प्रसिद्ध निषेध को अनुकीर्तन प्रकास (ललित ललाम-३८९) [145] परन्तु यह पहले से प्रसिद्ध निषेध का वर्णन तभी सार्थक होता है यदि चमत्कारपूर्ण हो।

<u>आदिग्रंथ:</u> १- आदि ग्रंथ में इस अलंकार के [illegible] चमत्कारपूर्ण प्रयोग उपलब्ध हैं। लोगों में सूतक मानने का जो विधान चला आता है, उसके अन्धानुकरण पर टिप्पणी करते हुए कई निषेध जो पूर्व प्रसिद्ध हैं, उनका अति सुन्दर वर्णन देखिए:-

मन का सूतकु लोभु है, जिहवा सूतकु कूड़ु।
अखी सूतकु वेखणा परत्रिअ परधन रूपु।
कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि।
नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि।
सभो सूतकु भरमु है। दूजै लगै जाइ।। [illegible] म:१ [146]

१४१- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४६१   १४२- [illegible] पृ० ११६५
१४३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४६१   १४४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४७१

२- ता की नारि सिगारी संगा। पतनारा सिउ जाके संगा। नामदेव [१४७]

३३- मिथ्याध्यवसित: कार्य कारणमूलक अर्थालंकार। जहां किसी बात को मिथ्या सिद्ध करने के लिये किसी अन्य मिथ्या की कल्पना की जाये। जयदेव ने 'मिथ्याध्यवसाय' नामक लक्षण का निरूपण किया है कि इसमें कार्य और कारण की मिथ्या कल्पना कर के कार्यसिद्धि का वर्णन होता है। (चन्द्रलोक-३-७) परन्तु अप्पयदीक्षित ने 'मिथ्याध्यवसित' अलंकार माना है। इसका लक्षण है: 'झूठ अर्थ की सिद्धि को झूठोवरनन आन' (शिवराज भूषण-२७२) [१४८] अथवा, 'एक झुठाई सिद्धि को झूठो आनन और'। (ललित ललाम-२६८) [१४९]

आदिग्रंथ: फील रबाबी बलदु पखावज कऊआ ताल बजावै।
पहिरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै।
बैठि सिंघु घरि पान जगावै। घीस गलउरे लिआवै।
घरि घरि मुसरी मंगलु गावहि, कछूआ संखु बजावै।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु, कीटी परबतु खाइआ।
कछुआ कहै अंगार भिलोरउ, लूकी सबदु सुनाइआ। आसा कबीर [१५०]

३४- मीलित: लोकन्याय मूल अर्थालंकार, जिसमें किन्हीं दो पृथक् वस्तुओं में स्वाभाविक अथवा आगन्तुक-तुल्य धर्म का कारण भेद लक्षित न हो, अर्थात् एक वस्तु का दूसरे में मिल जाना। इस में नीर-क्षीर-न्याय से एक वस्तु का दूसरी वस्तु में तिरोभाव हो जाता है। सर्व प्रथम प्रयोग रुद्रट के काव्यालंकार में हुआ। मम्मट का लक्षण इस प्रकार है: जिसमें किसी के द्वारा, एक वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में किसी स्वाभाविक अथवा आकस्मिक चिन्ह के कारण तिरोधान अथवा छिपाना वर्णित हो। (काव्य प्रकाश १०-१३०) [१५१]

आदि ग्रंथ: १- सूरज किरणि मिले, जल का जलु हुआ राम।
जोती जोति रली, संपूरनु थीआ राम। बिलावल म:४ [१५२]
२- जिउ जल महि जलु आइ खटाना।
तिउ जोती संगि जोति समाना। माझनी म: ५ [१५३]
३- नानक गुरु मेलि प्रभ संगा।
हम ओह मिलि होए इकरंगा। आसा म: ५ [१५४]
४- उदक समुंद सलल की साखिआ, नदी तरंग समावहिगे।
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी, पवन रूप होइ जावहिगे।
बहुरि हम काहे आवहिगे। मारू कबीर जी [१५५]

३५- मुद्रा : कुवलयानंद में अप्पय दीक्षित ने इस अलंकार का संभवतः प्रथम बार उल्लेख किया है। इस अलंकार की चर्चा इस तथ्य का प्रतीक है कि प्रायः साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त प्रत्यक्ष उदाहरणों पर आश्रित होते हैं। भास कृत प्रतिमा नाटक में इसका अति प्राचीन उदाहरण मिलता है। अप्पय दीक्षित ने इसकी परिभाषा की है कि मुख्यार्थाभिधान्वित शब्द के द्वारा जब सूच्य कथावस्तु की सूचना हो, तो मुद्रा अलंकार होता है। (कुवलयानन्द-७३)[१५६]

क) किसी वर्णनीय वस्तु का केवल नियत शब्द या चिन्ह से बोध कराना मुद्रा का एक रूप है।

सादि ग्रंथ: इकु परात्मा नानका, इस सूरत हम माहु।। साक :५:१[१५७]

(सूरत तथा माहु शब्दों द्वारा क्रमशः कुरान तथा हिन्दू का बोध कराया गया है।)

(ख) केवल क्रिया प्रस्तुत करके कर्ता का बोध कराना, मुद्रा का दूसरा रूप है:-

सादि ग्रंथ: एका माई जुगति विआइ तिनि चेले परवाणु।

इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ।५:१[१५८]

(संसारी-ब्रह्म, भंडारी- विष्णु, लाए दीबाण-शिव)।

३६- गूढ़ोक्ति : वाक्यार्थ-निष्ठ अर्थालंकार। अपने मर्म को छिपाने के लिये क्रिया द्वारा दूसरे का संकेत, युक्ति अलंकार है। जयदेव ने इसका लक्षण निरूपण करते हुए लिखा कि वस्तुतः मर्म के गोपन के प्रयोजन में क्रिया का प्रयोग किसी चमत्कारी कार्य का विधि युक्ति है। (चन्द्रालोक ३-६) अप्पय दीक्षित ने भी इसे स्वीकार किया है। और उसी के आधार पर दासादि ने हिन्दी में इसे स्वीकार करते हुए इस की परिभाषा इस प्रकार दी है। 'क्रिया चातुरी सो जहां, करे बात को गोप।' (काव्य निर्णय-१६)[१५९]

सादि ग्रंथ: १- जौ तूं ब्राह्मणु ब्राह्मणी जाइआ।

तउ आन बाट काहे नहीं आइआ।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद ।

हम कत लोहू तुम कत दूध। गउड़ी कबीर[१६०]

१५५- भगवान दो। पृ० ६९८
१५६- हि०सा० पृ० ३३६५
१५९- वही

१५७- हि०सा० पृ० ४७२
१५८- हिन्दी साहित्य कोश पृ०५६३
१६०- हि०सा० पृ० ४७७

२- जेकरि सूतकु मनीऐ सभ तै सूतकु होइ।
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ।
जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ।
पहिला पाणी जीउ है, जितु हरिआ सभु कोइ।
सूतकु किउकरि रखीऐ, सूतकु पवै रसोइ।
नानक सूतकु, एव न उतरै गिआनु उतारे धोइ।। सलोक म:१ [१६१]

३- नगन फिरत जौ पाईऐ जोगु।
बन का मिरगु मुकति सभु होगु।
मूंड मुंडाए जौ सिधि पाई।
मुकती भेड न गईआ काई।
बिंदु राखि जौ तरीऐ भाई।
खुसरै किउ न परम गति पाई। गउड़ी कबीर [१६२]

३८- रत्नावली : इस काव्यालंकार का अप्पयदीक्षित ने 'कुवलयानंद' में उल्लेख किया है। इस का लक्षण उन्होंने इस प्रकार दिया है: 'मुख्यार्थ-समन्वित शब्दों द्वारा क्रमानुसार किसी वस्तु का वर्णन करने से रत्नावली अलंकार होता है।' (कुवलयानंद-७४) [१६३]
भगवान् दीन 'भूषण' की यह परिभाषा उद्धृत है: 'क्रम से वर्णन कीजिये, प्रकृति अर्थ कुलराज। भूषण भन रत्नावली से प्रमान सिरताज।' (रामचन्द्र भूषण) [१६४]
आदि ग्रंथ:

१- असपति गजपति नरह नरिंद।
नामे के सुआमी मीर मुकंद। तिलंग नामदेव। [१६५]
(यहाँ नामदेव का स्वामी बड़े बादशाहों तथा नरों का पति कथन किया गया है। परन्तु इन विशेषणों से असपति (सूर्य) गजपति (इन्द्र) नरपति (कुबेर) अर्थ भी निकले, अर्थात नामदेव का स्वामी सूर्य, इन्द्र कुबेर आदि का पति है।)

१५१- हिन्दी साहित्य कोश-५६४ | १५२- आ०ग्रं० पृ० ८४६
१५३- आ०ग्रं० पृ० २७८ | १५४- आ०ग्रं० पृ० ३६१
१५५- आ०ग्रं० पृ० ११०३ | १५६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६०२
१५७- आ०ग्रं० पृ० १९१ | १५८- आ०ग्रं० पृ० ७
१५९- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६१० | १६०- आ०ग्रं० पृ० ३२४

३८- **रूपक:** सादृश्य गर्भ अभेद प्रधान आरोपमूल अलंकार, जिसमें अति साम्य के कारण प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप कर के अभेद दिखाया जाता है। रूप शब्द का अर्थ है एकता अथवा अभेद की प्रतीति। भरत ने जिन चार अलंकारों का वर्णन किया है, उनमें से यमक शब्दालंकार, दीपक वाक्यालंकार, साधारण सादृश्यमूलक अलंकार उपमा और रूपक हैं। गुण और आकृति दोनों के आधार पर सादृश्य का नाम उपमा है। रूपक में केवल गुण के आश्रय से किंचित सादृश्य को अपने विकल्प से रूप प्रदान किया जाता है। (नाट्य शास्त्र भरत १६-४४ तथा ५६-५८) दण्डी के अनुसार गुण, क्रिया, इत्यादि किसी भी प्रकार से उद्भूत सादृश्य का नाम उपमा है, और स्वरूपमात्र उपमेय का परस्पर भेद तिरोभूत हो जाता है तो उस सादृश्य को ही रूपक कह देते हैं। काव्यादर्श- २-१४ तथा ६६)[१६६]

हिन्दी के आचार्यों में केशव ने दण्डी के आधार पर रूपक का लक्षण अत्यंत प्राथमिक अवस्था का दिया है। उपमा ही की रूपकों मिलाते वरनिये रूप। (कविप्रिया- १३-१२) विश्वनाथ ने रूपक के भेदोपभेदों को स्पष्ट किया है। उन्होंने तीन भेद माने हैं परम्परित, सांग तथा निरंग। प्रथम के चार और अन्य दो के दो दो उपभेद बताए हैं। भाई कान्ह सिंह ने हिन्दी के आचार्यों के आधार पर रूपक के दो मुख्य भेद माने हैं । (१) तद्रूप (२) अभेद रूप। तद्रूप का अर्थ है वैसा ही रूप। जैसे कमल जैसे नयन, चंद्र जैसा मुख आदि, अभेद का अर्थ है, अभिन्न अर्थात उपमेय और उपमान में भेद नहीं।[१६७]

आदि ग्रंथ:

१- तद्रूप: गगन में थालु रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती। ध:१[१६८]

२- अभेदरूप: हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो, अनदिनो मोहि आही पिआसा।[१६९]

कवियों ने इन दो भेदों के आगे तीन भेद और किए हैं। सम, अधिक, न्यून।

(क) उपमेय और उपमान को तुल्य कहना, समरूपक है:

१६१- आ०रू० पृ० ४६२

१६२- आ०रू० पृ० ३२४

१६३- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६१४

१६४- महान् कोश पृ० ७६५

१६५- आ०रू० पृ० ७२७

१६६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६६७

१६७- महान् कोश पृ० ७८२

१६८- आ०रू० पृ० ६६३

१६९- आ०रू० पृ० ६६३

आदि ग्रंथ:

१-मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति।

खिंथा कालु कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति। जपु म:१ [190]

२- जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति, वेदु हथीआरु।

भउ खला अगनि तप ताउ। भांडा भाउ, अंम्रित तितु ढालि। म:१ [191]

3- पवणु गुरू पाणी पिता, माता धरति महतु।

दिवसु राति दुइ दाई दाइआ, खेलै सगल जगतु। म:१ [192]

(ख) उपमेय और उपमान की समता प्रकट करते हुए, एक की विशेषता प्रकट करना 'विशेष' रूपक है।

आदि ग्रंथ:

ऐसा [illegible] धनु [illegible] पाई।

भाहि न जालै, जलि नहीं डूबै, संगु छोडि करि कतहु न जाई।

तोटि न आवै निखुटि न जाइ। खाइ खरचि मनु रहिआ अघाइ। म:५ [193]

(ग) यदि उपमेय अथवा उपमान की समता में कुछ न्यूनता (कमी) वर्णित हो, तो 'न्यूनरूपक' होता है।

आदि ग्रंथ: कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसवै भाइ।

मन तउ मैगल होइ रहा निकसिआ किउ करि जाइ। कबीर [194]

३६- रूपकातिशयोक्ति: अतिशयोक्ति का एक भेद, जयदेव के अनुसार 'रूप्यं रूपकमध्यागं' (चन्द्रालोक ५-४६) और इसके अनुसरण पर हिन्दी के आचार्यों ने : 'जहं केवल उपमान ते प्रगट होत उपमेय।' (ललित ललाम-१११) अथवा 'उपमेयनि को कहत जहं साजि सुकवि उपमान' (पद्माभरण-६२) [195]

यहाँ नानक सिंह ने पूर्व आचार्यों का अनुसरण करते हुए कहा है, 'केवल उपमान के कथन द्वारा उपमेय का बोध कराना रूपकातिशयोक्ति है।' [196]

आदि ग्रंथ:

१- नानक तरवरु एकु फलु दुइ पंखेरू आहि।

आवत जात न दीसही ना पर पंखी ताहि। म:३, वार बिहागड़ा [197]

(यहां उपमेय (आत्मा) का सीधा कथन नहीं, उपमान (पंछी) के द्वारा इस का बोध कराया है, दूसरा पंछी परमात्मा, तरुवर शरीर, फल इसके भीतर स्थित हरि (रस)।

१९०- आ०ग्रं० पृ० ६

१९१- आ०ग्रं० पृ० ८

२- भीगी पाखें रैणि के वण तारिका विवा, नर कंठ कपाही आड।म:२ [178]

(जहाँ रात्रि तारका का उपमान है, नर देह का, और हंस श्वेत बालों का)

२- रैनि गई धा दिन भी गइ। भवर गए बग बैठे आइ।

नाचै करवै रहै न पानी, हंस चलिआ काइआ कुमलानी।कबीर [179]

(यहाँ रात्रि से भाव काले बालों वाली युवावस्था; दिन से भाव श्वेत बालों वाला बुढ़ापा; भवर गए, काले बाल गए; बग बैठे आए, सफेद बाल आ गए; काचा करवा (घड़ा) नश्वर शरीर; और हंस जीवात्मा का उपमान है।

४०- <u>ललित:</u> अर्थालंकार, जिसमें वर्णनीय वृत्तान्त का न कथन कर, उसका प्रतिबिंब वर्णित किया जावे, वहाँ 'ललित' अलंकार होता है। संस्कृत के प्रमुख आचार्यों ने ललित को स्वतन्त्र अलंकार नहीं माना है क्योंकि वे इसका अंतर्भाव निदर्शना में मानते हैं। संस्कृत आचार्यों में अप्पय दीक्षित ने इसे स्वतंत्र अलंकार माना है। 'कुवलयानंद' के आधार पर ही हिन्दी के आचार्यों ने प्रायः इसे स्वीकार किया है। मतिराम ने इस की परिभाषा इस प्रकार दी है: 'वर्न्यवाक्य के अर्थ को जहं केवल प्रतिबिंब। (ललित ललाम-300) [180]

आदि ग्रंथ:

१- भीत भीजि पाति है गई, अब कित आवै हालि? म:१ [181]

२- जैसा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु। म: ५ [182]

३- फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआ, किकरि बीजै जटु।
हंढै उंन कताइदा, पैधा लोड़ै पटु।।२३।। [183]

इन उदाहरणों की मतिराम के उदाहरण से तुलना कीजिए।

मतिराम: बोयो चाहत नाँद परि, सेज अंगार बिछाय। (ललित ललाम-३०१ [184]

१७२- आ०ग्रं० पृ० ८ 　 १७३- आ०ग्रं० पृ० ३७५

१७४- आ०ग्रं० पृ० ५०६ तथा १३६७ 　 १७५- हिन्दी साहित्य कोश पृ०९१४

१७६- मानक कोश पृ० ७८२ 　 १७७- आ०ग्रं० पृ० ५५०

१७८- आ०ग्रं० पृ० ७५ 　 १७९- आ०ग्रं० पृ० ७६२

१८०- हिन्दी साहित्य कोश पृ०६८१ 　 १८१- आ०ग्रं० पृ० ४६८

१८२- आ०ग्रं० पृ० १३४ 　 १८३- आ०ग्रं० पृ० १३७६

४१- लेश: सर्वप्रथम इस अलंकार का दण्डी ने उल्लेख करते हुए कहा-लेशमेके विदुर्निन्दां स्तुतिं वा लेशत: कृताम् (काव्यादर्श २-२६८) अर्थात् लेशमात्र निंदा की स्तुति एवं स्तुति की निन्दा करना लेश अलंकार है। हिन्दी के आचार्यों का लक्षण इस प्रकार है: 'जहां दोष गुण होत है, जहां होत गुन दोष।' (ललित-ललाम-३२४)[185] आर्य कान्ह सिंह ने शिवराज भूषण के आधार पर इस की परिभाषा की है : 'जहिं बरणत गुण दोष है, कहँ दोष गुण रूप। भूषण भाखे लेश कवि भावत सुकवि अनूप।'[186] इस अलंकार का उल्लास से इतना भेद है कि 'उल्लास' में किसी एक के गुण दोष से किसी अन्य को गुण दोष हुआ करते हैं, पर 'लेश' में गुण को दोष अथवा दोष को गुण माना जाता है।[187]

आदि ग्रंथ: कबीर जिनहु किछु जानिआ नहीं, तिन सुख नीद बिहाइ।

हमहु बु(बूझा)बूझना, पूरी परी बलाइ।। १८।। कबीर[188]

४२- लोकोक्ति: संभवत: इस को 'कुवलयानन्द' में सर्वप्रथम अप्पय दीक्षित ने परिभाषा की है: लोक विख्यात किसी कहावत के अनुकरण से लोकोक्ति अलंकार होता है। (कुवलयानन्द-६०) मतिराम ने कहे: 'जहं कहनावति अनुसरन लोकउक्ति।' (ललित ललाम-३६६)[189] आर्य कान्ह सिंह ने शिवराज भूषण का अनुसरन करते हुए कहा है: 'कहिनावत जो लोक की लोकोक्ति सो मान'[190]। इस की परंपरा तो तब से चली आती है जब से मानव ने बोलना आरंभ किया होगा, परन्तु अलंकार के रूप में इसकी स्वीकृति बाद में हुई। आदि ग्रंथ में इस को उदाहरणों से एक लोकोक्ति कोश बन सकता है। २५० के लगभग उदाहरण डा० गोपाल सिंह ने दिये हैं।[191] आर्य कान्ह सिंह ने केवल एक उदाहरण दिये हैं।[192] परन्तु यह केवल विस्तार भय के कारण हुआ है, वहीं तो इतने उदाहरण दिए जा सकते हैं कि पुस्तिका अनुसार एक पुस्तक का रूप तैयार हो सकता है। यहां कुछ लोक प्रसिद्ध लोकोक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

१- आपे बीजि आपे ही खाहु। जपु[193]

२- मनि जीतै जगु जीतु। जपु[194]

३- जित बोलिऐ पति पाईऐ, सो बोलिआ परवाणु।। श्री म:१[195]

१८४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६८१ १८५- वही पृ० ६८४

१८६- मानक कोश पृ० ८०२ १८७- वही

१८८- आ०ग्रं० पृ० १३७४ १८९- हिन्दी साहित्य कोश पृ०९६२

४- मानविना कुनाल नन मांदे लिवे वेरा। ग्री म: १[१९६]

५- मरणी नामकु तें वालि। ग्री म:१[१९७]

६- मनुमुग कुं न वेतला, बूनि भूए विनु पाणी।ग्री म:३[१९८]

७- कुँ मर ना पाहुणाचि आ ना निर नाम वीउ। ग्री म:३[१९९]

८- पिला नवे वाना, कलुा नपाजिआ नादु। ग्री म:५[२००]

९- मुण्ण विरि नानी मकु कुल नमाना। ग्री-मष्टपदी गं म:१[२०१]

१०- जि लिउ राता वैनां मंवै। ग्री मष्ट म: ३[२०२]

११- तोक वगान वम लिती मा- ग्री म:५[२०३]

१२- वरभी मानी नांदु न महली। माना म: १[२०४]

१३- नसीमा नानि विछुली मा मेला जोगी (नाम) माना छंत म:१[२०५]

१४- तती नाउ न नार्ई, विन नानि कुा नाइ। मारू म: ५[२०६]

१५- मनै मानवि वादिआ नवनि वै वानान। नानवापा मारू म:५[२०७]

१६- जिनी मोलणि मारोवै, तिनि वंनि बुझ। म: १ वार मारू[२०८]

१७- कुनानि मनकुा तनो मर्पै, नाने वि सांवै माले? गउड़ी कबीर[२०९]

१८- मा ना जरे नरि निपि माही, नानां नाणि लिपउरा। कबीर[२१०]

१९- विन पन वंदरि नानरि मुकह वने संनारि। वार माना[२११]

२०- नभिा वे है नीन संवाई। माना कबीर[२१२]

२१- वैसे नन्न न मी का मानवि। नानानिन वैसा नलकावरि। माना कबीर[२१३]

२२- मंडिजिआ जिन मान, कुदिनां विक विनो। माना फरीद।[२१४]

२३- मंदा विनै न माना कन्वा नानवा। नलंक छंत म: १[२१५]

२४- मंजन वैना जीवां, वेना पिरि नावै। (सूही छंत म:१)[२१६]

१९०- महान कोश पृ० ८०४

१९१- गुरु ग्रंथ साहब की नाविक विशेषता पृ० १५०-१६३

१९२- महान कोश पृ० ८०४

१९३- ना०ग्र० पृ० ४

१९४- ना०ग्र० पृ० [illegible]

१९५- ना०ग्र० पृ० १५

१९६- ना०ग्र० पृ० १६

१९७- ना०ग्र० पृ० २५

१९८- ना०ग्र० पृ० ३१

१९९- ना०ग्र० पृ० ३४

२००- ना०ग्र० पृ० ५०

२०१- ना०ग्र० पृ० ६१

२०२- ना०ग्र० पृ० ६५

२०३- ना०ग्र० पृ० ७४

२०४- ना०ग्र० पृ० ३८१

२०५- ना०ग्र० पृ० ४३९

२१- ऐसा आगु ते भोरी, किउ नायक न पाणी। सूही छंत म: १[217]

४३- वक्रोक्ति: इस अलंकार को शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों रूपों में माना गया है। भामह ने समस्त अलंकारों को वक्रोक्ति मूलक माना है। चिन्तामणि, भूपति, सोमनाथ तथा दास ने इसे शब्दालंकार माना है। भूपति की परिभाषा विश्वनाथ के साहित्यदर्पण के अनुकरण पर है। 'कहै आन औरै कछू, करै और ही और। वक्र उक्ति ताको कहैं, श्लेष काकु द्वै ठौर।' (रस रहस्य-४) परन्तु इसे अर्थालंकार मानने वालों की परिभाषा कुछ ऐसी ही है। केशव, जसवंत सिंह, मतिराम तथा भूषण ने इसे अर्थालंकार स्वीकार किया है।[218]

केशव: सूधी बात में बरनिये टेढ़ो भाव। (कवि प्रिया- १२-३)[219]

मतिराम: श्लेष काकु सों अर्थ की रचना और हु होय। (ललितललाम-३६६)[220]

भूषण: अर्थ फेर की कल्पना श्लेष काकु ते ठानि।
अलंकार वक्रोक्ति तहिं बरनत कवि गुण खानि। रामचन्द्रभूषण)[221]

इस प्रकार से श्लेष वक्रोक्ति तथा काकु वक्रोक्ति दो रूपों में माना गया है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार मानने वालों में बीच बचाव कराने की चेष्टा से इसकी व्यापक परिभाषा भी प्रस्तुत की गई है। अर्थात् श्लेष तथा काकु के बल से अन्य अभिप्राय से कहे हुए वाक्य के दूसरे के द्वारा भिन्न अर्थ की कल्पना।[222]

(क) श्लेष वक्रोक्ति: इस में बात के दो अर्थ निकलते हैं। बात देखने में सीधी तथा प्रशंसात्मक है, परन्तु वास्तव में जिसके विषय में कही जाए, उसकी किसी बुराई की ओर संकेत करती है। जैसे पिता पुत्र के किसी अपराध को देख कर कहे: तुमने तो कुल का सिर ऊँचा कर दिया है। वास्तव में उसे 'कुल-कलंक' कहा है। यह अलंकार संदर्भ में बात को समझने से प्रकट होता है। अतः इसे अर्थालंकार की कोटि में रखना ही उचित है:-

आदि ग्रंथ: निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ।
निंदा जन कउ खरी पिआरी,
निंदा बापु निंदा महतारी।
निंदा करै सु हमरा मीतु।
निंदक माहि हमारा चीतु।[223]
(यहां निंदा को मां बाप तथा निंदक को मित्र कह कर सत्कार किया है। निंदक में अनुरक्ति भी बताई है। परन्तु जब अन्त में यह बात कही है कि जन कबीर की निंदा सारु।

निंदा द्वारा ... पाहि। ... निंदा की ... स्पष्ट ... जाता है, कि वास्तव में यह ... है, कि निंदा की ... में ... किया)

(ब) काकुध्वनि अथवा काकु-वक्रोक्ति: वक्ता के ... कण्ठ ध्वनि की विशेषता ... अन्य अर्थ ... किया जाना। ... इस भेद ... अधिक अस्पष्टता है। वस्तुतः ... कण्ठ ध्वनि पर निर्भर ... का ... नहीं रह जाता, ... गया। ... ने विरोध किया कि ... पर भी वक्रता बनी रहे। ... और ... वक्रता नष्ट ... मानना चाहिए।[224]

... सिंह ने काकु वक्रोक्ति में ... द्वारा पदों के ... अथवा प्रश्न ... के विरुद्ध अर्थ निकलता ... है, और ... ग्रंथ ... से निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।[225]

१- ... बैठ, ... कि ... ? ...[226]

२- ... ? ५:१ (वार माफ)[227]

३- ... साधु ... , ... गुण ... ? ५:३[228]

४- विचित्र: ... ने ... अपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया। इस अलंकार की प्रथम विवेचना ... ने ... के रूप में की है (अलंकार सर्वस्व-पृ० १९३) ... आधार पर ..., विश्वनाथ आदि ने ... विवेचना की है। ... आचार्यों ने प्रायः प्राचीनों का अनुकरण ही किया है। ... (... पुराण-२१२)[229] ... में भी ... परिभाषा ... किया गया है:

२०८- आ०प्र० पृ० ३३२ | २०९- आ०प्र० पृ० ३३६
२०८- आ०प्र० पृ० ३४६ | २०९- आ०प्र० पृ० ३३८
२१०- आ०प्र० पृ० ३३८ | २११- आ०प्र० पृ० ४०३
२१२- आ०प्र० पृ० ४०४ | २१३- आ०प्र० पृ० ४०६
२१४- आ०प्र० पृ० ४०८ | २१५- आ०प्र० पृ० ५४४
२१६- आ०प्र० पृ० ५४४ | २१७- आ०प्र० पृ० ४६०
२१८- हिन्दी साहित्य को। पृ०६६२ | २१९- वही
२२०- वही | २२१- ... पृ० ८०८

जहां करत उपाय कुछ फल चाहत विपरीत। बरणत तहां विचित्र है जे कवि रस प्रीति।[230] (ललित ललाम -मति राम)

आदि ग्रंथ: १- मै बिन निरमल किउ थीवी, गुरमुखि मदि न्हाउ। म:१[231]

२- आपस कउ जो जाणै नीचा। सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा।म:५[232]

(नम्रता होने के लिये [illegible] धारण करना, तथा उत्थान के लिये विनम्र होना विप्रीत यत्न है)

३- गरीबी गदा हमारी। [illegible] रेन धारी।[233]

तिह [illegible] ते सिरै वैकारी। गोंड म: ५

(विजय प्राप्ति के लिये दारिद्र-भाव तथा चरण धूलि होने की याचना करना विप्रीत यत्न है)।

४५- विभावना: विरोधमूलक अर्थालंकार: का अलंकार अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रचलित अलंकारों में है। आदि ग्रंथ में इस का प्रचुर प्रयोग हुआ है। भामह दण्डी से लेकर मम्मट, विश्वनाथ आदि सभी संस्कृत के आचार्यों ने इस का प्रतिपादन किया है। इस के चार भेद माने गये हैं:-

प्रथम विभावना: जहं कारण बिन कार्य होइ। तहिं विभावना पहिलो जोइ।[234]

आदि ग्रंथ: १- [illegible] आखहु वेखणा, बिणु कन्नां सुनणा।

पैरां बाझहु चलणा, विणु हथां करणा।

जीभै बाझहु बोलणा, इउं जीवत मरणा।

नानक हुकमु पछाणिकै तउ खसमै मिलणा। म: २[235]

२- माइआ ममता मोहणी जिनि विणु दंता जगु खाइआ।म:३[236]

द्वितीय विभावना: कारण अपूर्ण रहने पर भी कार्य का पूर्ण होना विभावना का दूसरा रूप है: जहां हेतु पूर्ण नहीं, उपजत है पर काज। (शिवराज भूषण)[237]

आदि ग्रंथ: १- [illegible] निरंतरि [illegible], धार बिनि बरि हरि रसु पीजै। म:४[238]

तृतीय विभावना: प्रतिबंध के होते हुए भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होना, विभावना का तीसरा रूप है।

[illegible]- हिन्दी साहित्य कोश- ६६५ [illegible]- आ०ग्रं० पृ० ३३६

[illegible]- हिन्दी साहित्य कोश- ६६५ [illegible]- महान कोश ८०८

[illegible]- आ०ग्रं० पृ० २ [illegible]- आ०ग्रं० पृ० १५०

प्रतिबिंब के होत है कारज पूरन भान।(गरभगंजनी)भाई सोतापरिव [239]

आदि ग्रंथ: लंका सा कोट, समुंद सी खाई।
तिह रावन घर खबरि न पाई। बाणी कबीर [240]

चतुर्थ विभावना: जिस कार्य का जो कारण नहीं है, अकारण उस से कार्य की उत्पत्ति होना चतुर्थ विभावना है: [241]

'जो अकारण वस्तु ते कारज परगट होत।'(गरभगंजनी) [242]

आदि ग्रंथ: जैसे रे चीरल नाव अहं कुमि पैदु लाए। धनासरी म: ५ [243]

४६- विनोक्ति: सादृश्यगर्भ के गम्यौपम्याश्रय वर्ग का अलंकार। मम्मट तथा रुय्यक द्वारा सर्व प्रथम स्वीकार हुआ बताया जाता है। [244] मम्मट के अनुसार इसमें एक के बिना दूसरे के अशोभन होने अथवा शोभन होने का कथन अभिप्रेत होता है। (काव्य प्रकाश- १०-११३) [245] हिन्दी के आचार्यों ने प्राय: 'कुवलयानंद' के आधार पर इसकी परिभाषा की है: 'बिना कछू जहं बरनिये ,के हीनो के नीक।'(शिवराज-भूषण-१८१) [246] भाई संतो सिंह कृत 'गुरु प्रताप सूर्य' के अपने ग्रंथ गरभगंजनी में इसकी परिभाषा अधिक स्पष्ट दी है:- [247]

'प्रस्तुत वर्णनीय है जोइ। एक वस्तु बिन न्यून जि होइ।
ताहि विनोक्ति कहैं, विचार। कवि संतोखसिंह करे उचार।'

आदि ग्रंथ: १- बांधा बंधनु ना कपाउ। पाट पटंबरपहिरि हंढाउ।
बिन हरि नामु कहां सुख पावउ? किआ पहिरउ किआ ओढि दिखावउ।

बिन जगदीस कहां सुख पावउ?
कानी कुंडल गलि मोतीअन की माला।
लाल निहाली फूल गुलाला। बिन जगदीस कहा सुख भाला?म:१ [248]
(यह सारी अष्टपदी द्रष्टव्य है)

२- अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि ङिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका, जिह प्रीति नहीं भगवंत।म:५ [249]

२२८- आ०ग्रं० पृ० १३६६
२२९- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७१३
२३०- महान कोश पृ० ८२२
२३१- आ०ग्रं० पृ० ९८
२३२- आ०ग्रं० पृ० २६६
२३३- आ०ग्रं० पृ० ४२८
२३४- महान कोश पृ० ८२६
२३५- आ०ग्रं० पृ० १३६

३- जे सउ चंदा उगवहि, सूरज चड़हि हजार।
ऐते चानण होदिआं, गुर बिनु घोर अंधार। म:२[250]

४- काजलु हार तंबोलै किछु साजिआ।
सोलह कीए सीगार कि अंजनु पाजिआ।
जे घरि आवै कंतु त सभु किछु पाईऐ।
हरिहां! कंतै बाझु सीगारु सभु बिरथा जाईऐ।[251]

५- जगन होम पुंन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै।
राम नाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि लहै।
पुसतक पाठ बिआकरण वखाणै, संधिआ करम त्रिकाल करै।
बिन गुर सबद मुकति कहां प्राणी? राम नाम बिनु उरझि मरै।
डंड कमंडल सिखा सूतु धोती, तीरथि गवनु अति भ्रमनु करै।
राम नाम बिनु सांति न आवै, जपि हरि हरि नामु सु पारि परै।[252]

४७- विवृतोक्ति: व्याजोक्ति की कोटि का अर्थालंकार: शब्दार्थ है खुली हुई उक्ति। अप्पय दीक्षित द्वारा आविष्कृत सत्रह अलंकारों में से एक यह भी है।[253] इसकी परिभाषा उन्होंने यह की है: 'विवृतोक्ति श्लिष्ट गुप्तं कविनाविष्कृतं यदि' (कुवलयानन्द ८८-१०१) अर्थात् श्लिष्ट शब्दों या अर्थ उक्ति के चमत्कार से जब कवि किसी रहस्य को अभिव्यक्त करता है तो यह अलंकार होता है।[254] भाई कान्ह सिंह ने इस के तीन रूप बताए हैं।[255]

प्रथम विवृतोक्ति: यह भूषण के आधार पर वर्णित है, 'वचन श्लेष बखान के गुप्त बात विदतात। विवृत उक्ति भूषण तहां, कवि त्रिजेश बताय।'[256]

आदि ग्रंथ: तूं सुणि हरणा कालिआ, की वाड़ीऐ राता। आसा छंत म:१[257]

(यहां युवा पुरुष को काले बालों वाला है, उसे स्पष्ट कहा है: क्यों पर-स्त्री में अनुरक्त हो)

२३६- आ०ग्रं० पृ० ६४३ २३७- महान कोश पृ० ८०६
२३८- आ०ग्रं० पृ० १३०४ २३९- महान कोश पृ० ८०६
२४०- आ०ग्रं० पृ० ४८१ २४१- हिन्दी साहित्य कोश पृ०७०८
२४२- महान कोश पृ० ८२६ २४३- आ०ग्रं० पृ० ६८७
२४४- हिन्दी साहित्य कोश पृ०७१५ २४५- वही
२४६- वही २४७- महान कोश पृ० ८२५

द्वितीय विवृतोक्ति: जहां किसी बात को असंभव माने, उसको यदि शब्दों में असंभावी बताया जाये तो द्वितीय विवृतोक्ति होता है:- २५८

आदि ग्रंथ: १-ऊचे मंदर साल रसोइ। एक घरी फुनि रहनु न होई।
 इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी। जल गइओ घासु रलि गइओ माटी।
 भाई बंध कुटंब सहेरा। ओइ भी लागे काढु सवेरा।
 घर की नारि उरहि तन लागी। उह तउ भूतु भूतु करि भागी।
 कहि रविदास सभै जगु लूटिआ। हम तउ एक रामु कहि छूटिआ। २५९ मुही रविदास
 २-सभ किछु जीवत को बिवहार।
 मात पिता भाई सुत बंधप, अरु फुनि ग्रिह की नारि।।रहाउ।।
 तन ते प्रान होत जब निआरे, टेरत प्रेत पुकारि।
 आध घरी कोऊ नहि राखै, घर ते देत निकारि।
 म्रिगतिसना जिउ जग रचना यह, देखहु रिदै बिचारि।
 कहु नानक भजु राम नाम नित, जाते होत उधारु।। म:९ २६० (रामकली)

तृतीय विवृतोक्ति: अपने मन की बात किसी ढंग से स्पष्ट कह देना विवृतोक्ति का तीसरा रूप है। २६१

आदि ग्रंथ: १-भूखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै।
 माधो! कैसी बनै तुम संगे? आपि न देहु त लेवउ मंगे, -
 दुइ सेर मांगउ चूना। पाउ घीउ संगि लूना।
 अध सेरु मांगउ दाले। मो कउ दोनउ वखत जिवाले।
 खाट मांगउ चउपाई। सिरहाना अवर तुलाई।
 ऊपर कउ मांगउ खींधा। तेरी भगति करै जनु थींधा। कबीर २६२
 २-दाल सीधा मांगउ घीउ। हमरा खुसी करै नित जीउ।
 पन्हीआ छादनु नीका। अनाजु मगउ सत सी का।
 गऊ, भैस मगउ लावेरी। इक ताजनि तुरी चंगेरी।
 घर की गीहनि चंगी। जनु धंना लेवै मंगी। धनासरी धंना २६३

२४८- आ०ग्रं० पृ० ...
२४९- आ०ग्रं० पृ० २५३
२५०- आ०ग्रं० पृ० ६४३
२५१- आ०ग्रं० पृ० १३६१
२५२- आ०ग्रं० पृ० ११२७
२५३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ...
२५४- वही
२५५- मानक कोश पृ० ८७४
२५६- वही
२५७- आ०ग्रं० पृ० ४३८

४८- विशेष: विरोधमूलक अलंकार। जहाँ किसी विशेष विलक्षणता का वर्णन हो, वहाँ विशेष अलंकार होता है। रुद्रट को इस का प्रथम विवेचक माना जाता है। मम्मट तथा विश्वनाथ ने रुद्रट और रुय्यक के आधार पर इस का विवेचना की है।[264] यहाँ रुचोलसिंह तथा जसवन्त सिंह ने हिन्दी के आचार्यों भूषण-मतिराम आदि के आधार पर इस का विवेचना की है।[265]

इस के तीन भेद माने जाते हैं, और आदि ग्रंथ में इन तीनों के उदाहरण मिलते हैं:-

प्रथम विशेष: मतिराम आदि ने लक्षण दिया है: 'जहं आधेय बखानिये बिन प्रसिद्ध आधार।' (ललित ललाम- २४५)[266]

आदि ग्रंथ: १- जा कि माणा ता [illegible] उपाइआ।
माकू कला आडाणु रहाइआ। मारू सोलहे म: १[267]
(बिना किसी कला के पुत्तलादि की स्थिति दिखाई देती है)
२- धुंधू धरति अकासु उपाए। बिनु थंमा राखे सचु कल पाए।
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ, आपि उपाइ खपाइदा। म:१[268]
(यहां शून्य से धरती आकाश की उत्पत्ति बताई है। बिना स्तंभ के आकाशों का ठहरना बताया है। माइआ को न दिखाई देने वाली जंजीर त्रिभुवन के गिर्द पड़ी बताई है।)

द्वितीय विशेष: मतिराम आदि ने लक्षण दिया है: 'जहं अनेक थल में, कहु बात बखानत एक' (ललित ललाम-२४७)[269] अर्थात् एक ही वस्तु का अनेक स्थानों में एक समय वर्णन करना।[270]

आदि ग्रंथ: जलि थलि महीअलि पूरिआ, सुआमी सिरजनहारु।
अनिक भांति होइ पसरिआ, नानक एकंकारु। गउड़ी थिति म:५[271]

२५८- मानक कोश पृ० ८२४
२५९- आ०ग्रं० पृ० ७६४
२६०- आ०ग्रं० पृ० ५३६
२६१- मानक कोश पृ० ८२८
२६२- आ०ग्रं० पृ० ६५६
२६३- आ०ग्रं० पृ० ६६५
२६४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७२४
२६५- मानक कोश पृ० ८२६
२६६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७२४
२६७- आ०ग्रं० पृ० १०३६
२६८- आ०ग्रं० पृ० १०३५
२६९- हिन्दी साहित्य कोश ७२४
२७०- मानक कोश पृ० ८२६
२७१- आ०ग्रं० पृ० २९६

तृतीय विशेष: मतिराम आदि के अनुसार इसकी परिभाषा है: करत कछू आरम्भ ही जहं करन न कछु और। (ललित ललाम-२४८) अर्थात् जहां किसी कार्य के करते हुए किसी दूसरे अभाव्य कार्य का होना वर्णित हो।[२७२]

आदि ग्रंथ: नृप कौशिला के पालने कछु भक्ता है भारी।

भावानी सुआरथा वा [illegible] बिज न्यारी। बाणा लखना।[२७३]

४९- विपर्यय अथवा भ्रांतिमान: सादृश्यगर्भ भेद प्रधान, आरोपमूलक अर्थालंकारों का एक भेद। सर्वप्रथम रुद्रट ने औपम्य वर्गों में इसे स्वीकार किया बताया जाता है।[२७४] मम्मट ने इसे : प्रस्तुत के वर्णन में अप्रस्तुत के साथ उसके सादृश्य के कारण जहां अप्रस्तुत (उपमान) की प्रतीति निरूपित हो जावे, ऐसा माना है।[२७५] हिन्दी के आचार्यों, जसवन्त सिंह, दास, पद्माकर, मतिराम आदि ने जयदेव के आधार पर इसका लक्षण दिया है। परन्तु भूषण ने मम्मट का अनुसरण करते हुए कहा है: 'आन बात को आन में, होत जहां भ्रम आय(शिवराज भूषण)-[२७६]। याही कान्ह सिंह ने भूषण का ही अनुकरण किया है।[२७७]

आदि ग्रंथ: छोटे कउ खरा कहै, खरे सार न जाणै।

अंधे का नाउ पारखु, कलीकाल विडाणै।

सूते नो जागत कहै, जागत कउ सुता।

जीवत कउ मुआ कहै, मुए नहीं रोता।

आवत कउ जाता कहै, जाते कउ आइआ।

पर की कउ अपनी कहै, अपनो नहीं भाइआ।

मीठे नो कउड़ा कहै, कउड़े कउ मीठा।

राते की निंदा करहि ऐसा कलि महि डीठा।

चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नहीं दीसै।

पोखरु नीरु विरोलीऐ माखनु नहीं रीसै। गउड़ी म:१[२७८]

५०- विरोधाभास: विरोधमूलक अर्थालंकार, सब प्राचीनों से भी स्वीकृत चला आने वाला अलंकार है। मम्मट के अनुसार- 'अविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः'। (काव्य प्रकाश १०-११०) अर्थात् जहां विरोध न होकर भी ऐसा वर्णन हो कि विरोध की प्रतीति हो।[२७९]

२७२- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७२४   २७३- आ०ग्र० पृ० ८५८

२७४- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ५१८   २७५- वही

२७६- वही   २७७- महान कोश पृ०८२५

आदि ग्रंथ: १- कबीर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लागी आगि।
पंडित पंडित [illegible] मुए भूरा [illegible] भागि। १९[illegible] [280]
२- मुई [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible] कबीर [281]
([illegible] है [illegible] पर [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] विरोधी [illegible] हैं, पर [illegible] विरोध [illegible] नहीं, क्योंकि माया के प्रभाव की समाप्ति से मृत्यु का डर भी समाप्त हो गया है।)

५१- विषम: विरोधमूलक अर्थालंकार: लक्षण: जहां न [illegible] अनुरूप [illegible], तिन को घटना होय (ललित ललाम)।[282]

आदि ग्रंथ: १- [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाहीं संगु।
[illegible] [illegible], [illegible] राम [illegible] संगु। [illegible] म:५ [283]
२- हम नीचौं प्रभु अति ऊचा, किउकरि मिलिआ [illegible] रामा? म:३ [284]
३- हम अवगुण [illegible] [illegible] [illegible] तुम निरगुण दातारे।
तुम देवहु सभु किछु दइआ धारि, हम अकिरतघनारे। बिलावल म:५ [285]

५२- आक्षेप: प्राचीनों द्वारा स्वीकृत सादृश्य गर्भ के गम्यौपम्याश्रय वर्ग का अर्थालंकार।[286] [illegible] ने इसकी परिभाषा करते हुए कहा है: निज कथन को दूषण भूषण। (काव्य निर्णय-१२)[287] भाई [illegible] [illegible] ने कहा है कि अपने कहे हुए वाक्य में स्वयं ही दोषारोपण को आक्षेप कहते हैं।[288]

कबीर जी की रचना में इसका [illegible] सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है:

आदि ग्रंथ: कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का तजि मन का अभिमान।
ऐसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु।। (१४६)
कबीर रोड़ा हूआ त किआ भइआ पंथी को दुखु देइ।
ऐसा तेरा दासु है, जिउ धरनी महि खेह। (१४७)।।
कबीर खेह हूई तउ किआ भइआ जौ उडि लागै अंग।
हरि जनु ऐसा चाहीऐ जिउ पानी सरबंग।। (१४८)।।
कबीर पानी हूआ त किआ भइआ सीरा ताता होइ।
हरि जनु ऐसा चाहीऐ जैसा हरि ही होइ।। (१४९) [289]

२७९-आ०ग्र० पृ० [illegible]६ | २७९- हिन्दी साहित्य कोश पृ० [illegible]६
२८०- आ०ग्र० पृ० १३७३ | २८१- आ०ग्र० पृ० ४७६

शब्दालंकार

अर्थालंकारों के उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त कुछ शब्दालंकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

५३- अनन्वय: साहृश्यार्थ बोधक प्रधान शब्दालंकार। अलर्थ है, जिसका किसी अन्य से संबंध न हो।[२६०] भगवान् दीन ने इसे अर्थालंकार माना है, परन्तु लक्षण सहित उद्धृत किया है जो हिन्दी साहित्य कोश में है, जहां इसे शब्दालंकार लिखा है।[२६१] .... ने भूषण का लक्षण दिया है: 'जहां .... उपमेय है, उसमें उपमान।' (शिवराज भूषण: ३६)[२६२]

आदि ग्रंथ: १- कहि रहिए .... कहु .... कीजै?

जैसा तू .... तुझ, ... उपमा .... । (....)[२६३]

२- .... गुण तेरे, तेरी उपमा तुझि .... ।

(.... ५:३ ....)[२६४]

५४- <u>अनुप्रास</u>: एक शब्दालंकार, जिसमें वर्णों अथवा व्यंजनों का साम्य हो, शब्दार्थ है, अनु-वर्णनीय रस के अनुकूल, प्रकर्ष या निकटता- पास, बार-बार रखा जाना, अर्थात वर्णनीय रस की अनुकूलता के अनुसार वर्णों का बार बार और पास पास प्रयोग। इस अलंकार का सर्वप्रथम निश्चित उल्लेख भामह के काव्यालंकार में मिलता है। रुद्रट ने अविच्छिन्न स्वर व्यंजनों के अनेक बार निरंतर आवृत्ति को अनुप्रास कहा है। (काव्यालंकार)[२६५] इस अलंकार की पांच प्रसिद्ध जातियां हैं: छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट, अन्त्य।

(क) छेकानुप्रास: यदि कोई वर्ण पदों के आदि तथा मध्य में अनेक बार आये, तो छेकानुप्रास होता है:

आदि ग्रंथ: १- .... विदिआ विसमर्व .... । .... [२६६]

२- कुचिल कुरूपि कुनारि कुलखनी पिर का .... न जानिआ। म:१[२६७]

२८२- भगवान् दीन पृ० ८८१

२८३- आ०ग्र० पृ० ६६८

२८४- आ०ग्र० पृ० ७५२

२८५- आ०ग्र० पृ० ८०६

२८६- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ८८

२८७- वही

२८८- भगवान दीन पृ० ७०

२८९- आ०ग्र० पृ० १३७२

(ख) वृत्यानुप्रास: यदि एक ही वर्ण बार बार पदों के अन्त में आये तथा पदों का मेल समान हो तब वह अनुप्रास होता है:-

आदि ग्रंथ: १- दासन परसन सरसन हरसन रंगि रंगा करतारो रे। मारू म:५ [298]

२- नाम धिआईऐ सदा सदा साधू संगि गोबिंदा।

गणित मिटाई चूकी तां फिरि न विआपै मन चिंदा। मारू सो म:५ [299]

(ग) श्रुत्यानुप्रास: यदि सम-स्थान वाले वर्णों का संयोग होने के कारण अनुप्रास हो तो श्रुत्यानुप्रास होता है। जैसे कंठस्थान के वर्णों के उसी स्थान के वर्णों से और इसी प्रकार दंत स्थान के वर्णों का दंत स्थान के वर्णों से संयोग।

आदि ग्रंथ: १- जिनि बडीऐ सुरति सिखाई तुधि। जपु [300]

त-थ-द-ध- यह सब दन्त स्थानक वर्ण हैं।

(घ) लाटानुप्रास: पद वही हो परन्तु अन्वय करने से भाव में भेद हो जाये, तो लाटानुप्रास होता है।

आदि ग्रंथ १- गावै को ताणु होवै किसै ताणु। जपु [301]

इस तुक का पाठ: "गावै को? ताणु होवै किसै ताणु"। पढ़ने से अर्थ होता है? कर्तार का गुणगान कौन कर सकता है? उत्तर : "जिसे भगवान की कृपा से बल मिला हो, उसका बल (कह गा सकता है)। परन्तु साधारण पाठ से अर्थ है, यदि किसी को भगवान की कृपा से बल मिला है, तो वह भगवान के सर्व शक्तिमान होने का गुणगान करता है। (गाता है त्राण को भी, यदि किसी को त्राण प्राप्त हो)"

ङ - अन्त्यानुप्रास: इसके भी आचार्यों ने कई भेद किये हैं- हम आदि ग्रंथ से विषम अंत्यक-नुप्रास का उदाहरण मात्र के लिये प्रस्तुत करते हैं:-

सालाही सालाहि, एती सुरति न पाईआ।

नदीआ अतै वाह, पवहि समुंदि न जाणीअहि। जपु [302]

298- हिन्दी साहित्य कोश पृ० २३

299- महान कोश पृ०४४

29[illegible]- वही, तथा हिन्दी साहित्य कोश-२३

293- आ०ग्र० पृ० [illegible]

294- आ०ग्र० पृ० १०[illegible]

295- हिन्दी साहित्य कोश [illegible]-२६

296- आ०ग्र० पृ० २

297- आ०ग्र० पृ० १०८७

298- आ०ग्र० पृ० ४०४

299- आ०ग्र० पृ० ८१२

300- आ०ग्र० पृ० ८

301- आ०ग्र० पृ० १

302- आ०ग्र० पृ० ५

५४- यमक: अर्थ होता है 'युग्म या जोड़ा।' इसमें भिन्नार्थ के साथ वर्णावृत्ति या शब्दावृत्ति होती है। जसवन्त सिंह ने इस की परिभाषा करते हुए कहा है: जमक शब्द को फिरि श्रवन अर्थ जुदा सो जानि।[303]

आदि ग्रंथ में इस अलंकार के भी प्रयोग यत्र तत्र उपलब्ध हैं, चाहे इनकी प्रचुरता नहीं है।

आदि ग्रंथ: भांति भांति बन बन अवगाहे। मारू म:१[304]

(यहां भांति भांति बन [illegible] को प्रकार प्रकार के वेश धारण कर बन (जंगल) को छान मारना अर्थ भी बनता है, दूसरा अर्थ भांति भांति बन (जंगल), वन (जल अथवा पानी) में यत्न करना, भी बनता है।)
परन्तु ऐसे अलंकार आदि ग्रंथ में कहीं भी प्रयत्नपूर्वक नहीं रखे गए। ये तो सन्त भाषा के स्वाभाविक अलंकार स्वाभाविक हैं। उसी प्रकार जैसे कोई अति साधारण जन या ग्रामीण नित्य प्रति की बोल चाल में अलंकृत भाषा का प्रयोग करता दिखाई देता है।

५५- वीप्सा: इस शब्दालंकार में आदर, घृणा, हर्ष, शोक, विस्मयादि [illegible] भावों को प्रभावशाली रूपों में व्यक्त करने के लिये शब्दों का पुन: पुन: आवृत्ति होती है। सर्वप्रथम भिखारीदास ने 'काव्य निर्णय' में यह वीप्सानुप्रास के रूप में मिलता है। 'एक शब्द बहु बार जहं, अरथ अधिक [illegible]' (काव्यनिर्णय-१६)[305]
आदि ग्रंथ में इस अलंकार के बड़े सुन्दर प्रयोग मिलते हैं:-

१- पढ़ि पढ़ि गडी लदीअहि, पढ़ि पढ़ि भरीअहि साथ। म:१[306]
२- उतरि जपि भई निहाल निहाल निहाल। म:४[307]
३- जपि मन निरभउ। सति सति सदा सति। म:४[308]
४- सति सति हरि सति सुआमी सति साध संगो। म:५[309]
५- धनि धनि धनि धनि धनि गुरदेव।
फुट फुट फुट फुट [illegible] सेव। नामदेव।[310]
६- धुधु धु धुधु धुधु धुधु तेरा नाम।
फूट फूट फूट फूट इसा गुमानु। म: ५[311]

३०३- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७०७ ३०४- आ०ग्रं० पृ० ९८

३०५- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ७२८ ३०६- आ०ग्रं० पृ० ४६७

३०७- आ०ग्रं० पृ० १२६१ ३०८- आ०ग्रं० पृ० १२०१

७- क्रिपा क्रिपा क्रिपा करि हरि जीउ करि किरपा नाम लावैगो।
करि किरपा सतिगुरु मिलावहु मिलि सतिगुर नाम धिआवैगो।
संगति संत मिलहु सत संगति मिलि संगति हरि रसु आवैगो। म:४ [312]

८- क्रिपा क्रिपा किरपा करि पिआरे गुर सबदी हरि रसु पीजै।
काइआ नगरु नगरु ही नाले, विचि सउदा हरि रसु कीजै।
रतन लाल अमोल अमोलक, सति गुर सेवा लीजै।
सतिगुरु अगमु अगमु है ठाकुरु भरि सागर भगति करीजै।
क्रिपा क्रिपा करि दीन हम सारिंग इक बूंद नाम मुखि दीजै।
लालनु लालु लालु है रंगनु मन रंगन कउ गुर दीजै। म:४ [313]

राग कलिआन की सारी बाणी 'वीप्सा' अलंकार से अलंकृत है। संभवत: कलिआन शब्द जो स्तुति अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा राग कलिआण की ध्वनि पूर्ति करता है। और इस प्रकार 'वीप्सा' अलंकार राग कलिआण का विशेष अलंकार है। राग कलिआण में केवल म: ४ तथा म: ५ की बाणी है। म:५ की बाणी के उदाहरण देखिए:-

९- सफल सफल सफल दरसु रे परसि परसि गुन गाइओ।
नानक तत तत सिउ मिलीऐ हीरै हीरु बिधाइओ। म:५ [314]

१०- हरि हरि हरि हरि हरि जन ऊतम, किआ उपमा तिन्ह दीजै।
राम नाम तुलि अउरु न उपमा, जन नानक क्रिपा करीजै। म:५ [315]

'कानड़ा राग में म:४ तथा म:५ की बाणी में 'वीप्सा' के अद्भुत प्रयोग प्राप्त हैं।

५६- श्लेष: इस अलंकार के सुन्दर उदाहरण आदि ग्रंथ में उपलब्ध हैं। श्लेष शब्द श्लिष धातु से बना है। श्लिष्ट का अर्थ है- चिपकना, मिलना, अथवा संयोग। इस में एक शब्द के साथ अनेक अर्थों का संयोग रहता है। अर्थात एक शब्द के साथ अनेक अर्थ लगे रहते हैं।[316] डा० कान्ह सिंह ने इसी परिभाषा का अनुसरण किया है।[317]

आदि ग्रंथ: १- आधि बिआधि उपाधि रस कबहु न तूटै ताप।
पारब्रहम पूरन धनी नहि बूझै परताप। म: ५ [318]

(विषयासक्तों का आधि, व्याधि, उपाधि आदि का ताप कभी नहीं टूटता। वह पारब्रह्म पूर्ण धनी है, परन्तु माया ग्रस्त लोग उसके प्रताप को नहीं जानते। तथा पारब्रह्म पूर्ण धनी है, अत: विषयासक्तों का आधि व्याधि उपाधि आदि का ताप कभी नहीं टूटता और उनका संताप (परिताप) कभी नहीं मिटता।

३०९- आ०ग्रं० पृ१२२९ | ३१०- आ०ग्रं० पृ० ११९९
३११- आ०ग्रं० पृ० ११३८ | ३१२- आ०ग्रं० पृ० १३०९

२- गुरदरसन उधरै संसारा। मारू म:३[319]

(गुरु के दर्शन (देखने) से संसार का उद्धार हो जाता है, अथवा गुरु के दर्शन (विचारों) से संसार का उद्धार हो जाता है)

५७- सूक्ष्म : यह अलंकार तब होता है जब किसी इंगित या आकार से जाने हुए सूक्ष्म अर्थ को किसी युक्ति से सूचित किया जाए। इस अलंकार का प्रचलन भामह के पूर्व से रहा है। और प्राचीनों ने इसे गूढ़ार्थप्रतीतिमूल अर्थालंकार ही माना है।[320] परन्तु विशेष शब्दों के विशेष अर्थ निकाले जाने के कारण यह शब्द अलंकार भी हो सकता है। अतः यह अलंकार दोनों कोटियों में स्वीकृत हो सकता है। आदि ग्रंथ में गुरु नानक की रचना में सूक्ष्म अलंकार का सुन्दर उदाहरण मिलता है।

आदि ग्रंथ: है है करि कै ओहि करेनि, गल्हां पिटंनि सिर खोहेनि।

नाउलैनि अरु करनि समाइ। नानक तिनबलिहारै जाइ।। म:१[321]

स्त्रियां जब सियापा करती हैं, तो कपोलों और छाती को पीट पीट कर सिर को धुनती हैं और है! है! (हाय! हाय!) ओहि! ओहि! का विलाप करती हैं। गुरु जी कहते हैं: इन शारीरिक अंगों का स्पर्श कर वह इस बात का स्मरण करती हैं, कि इन में वही (ओहि) है। ऐसा अभ्यास करने वालों के मैं बलि बलि जाता हूं।

उपसंहार: अलंकार के प्रयोग का भाव से गहरा संबंध है, अतः आदि ग्रंथ की भावमय शैली में अलंकारों का प्रयोग चाहे विशेष प्रयत्न से न किया गया हो फिर भी उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अलंकार संप्रदाय के लग भग सभी मुख्य अलंकार इस महान ग्रंथ के भावों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। किसी एक काव्य ग्रंथ में अलंकारों का इस प्रकार का संयोजन बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टि आदि ग्रंथ की महत्वपूर्ण साहित्यिक विशेषता है।

३१३- आ०ग्रं० पृ० १३२३

३१४- आ०ग्रं० पृ० १२२

३१५- आ०ग्रं० पृ० १३२४

३१६- आ०ग्रं० हिन्दी साहित्य कोश-७७७

३१ - मानक कोश पृ० १२६

३१८- आ०ग्रं० पृ० ९६७

३१९- आ०ग्रं० पृ० ३६१

३२०- हिन्दी साहित्य कोश पृ०८५७

३२१- आ०ग्रं० पृ० १४१०

१२- उपसंहार: पूर्व-वर्णित परम्परागत तत्वों के आधार पर उपलब्धियां :

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि। श्लोक म: ३

वार बिलावल म:४ आदि ग्रंथ पृ० ८५३

ठ ठ

उपसंहार

सामान्य पृष्ठभूमि

विगत दो सहस्र वर्षों [illegible] परम्पराओं के [illegible] है। विचार और रुचि के क्षेत्र में [illegible] मंत्र-द्रष्टा ऋषियों से लेकर अन्यान्य आध्यात्मिक पुरुषों तथा लोकशिक्षा-प्रवण [illegible] आचार्यों की मान्यताओं ने [illegible] जन-मन का मार्ग प्रशस्त किया है। अनुभूति पर आधारित अभिव्यक्ति के प्रसार [illegible] आध्यात्मिक पुरुषों के प्रभाव में [illegible] को विशेष स्थान मिला है और आदि ग्रंथ [illegible] कवियों की वाणियों का संग्रह है। अतः इस दृष्टि से उस का महत्व निर्विवाद है। साधना-पथ में [illegible] जीवन एवं आचरण [illegible] महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि [illegible] है। और उसी से सद्गुरु, नाम व भक्ति की प्रतीति सम्भव है। अतः अनुभूति पर आधारित प्रवृत्ति [illegible] जीवन का [illegible] और उसी का संदेश देकर इन मध्यकालीन संतों एवं गुरुओं ने बहुमुखी रूप से [illegible] परम्परा का निर्वाह किया है।

सामाजिक क्षेत्र में जाति-पाँति, अमीर-गरीब, [illegible], स्त्री-पुरुष आदि [illegible] प्रकार के भेद-भावों का [illegible] मानव-मानव की समता [illegible] का [illegible] इन्होंने [illegible] दृष्टि फिर से जागृत की। [illegible] प्रकार [illegible], [illegible] आधार पर मानव की [illegible] गरिमा का [illegible] से [illegible]। [illegible] संदेश में [illegible] प्रसार तथा सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

पुराण भारतीय जन-जीवन का प्राण हैं। इनके [illegible] में [illegible] का अभाव [illegible] है, पर [illegible] ने बहुत [illegible] युग से भारत के जन-मन को परिचालित किया हुआ है। [illegible] कथा, जिनमें [illegible] उदाहरणों व [illegible] जीवन के महान् मूल्यों को [illegible] से प्रस्तुत न किया गया हो। आदि ग्रंथ में [illegible] पौराणिक तत्त्वों का [illegible] से समावेश हुआ है।

भारतीय साहित्य की अविच्छिन्न धारा [illegible] में [illegible] प्रधान है। जहाँ एक ओर इन्होंने 'सहज अनुभूति की [illegible] अभिव्यक्ति' पर बल दिया है, वहाँ [illegible] साहित्यिक तत्त्वों [illegible] की [illegible] है। [illegible] विचारों की [illegible] तथा [illegible] की [illegible] अभिव्यक्ति

प्रदान की है, जो जनागास की काव्य-प्रकार, भाषा, छंद व अलंकारों के अनुरूप बन गई है। यह शब्दावलि ही भारतीय साहित्य की परम्परागत दायाद है। इस प्रकार हम पहले देख ही आए हैं, कि आदि ग्रंथ में परम्परागत तत्त्वों का सभी दृष्टियों से विशेष निर्वाह हुआ है। संक्षेपत: उसकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत है:-

दर्शन पक्ष

ब्रह्म इस सृष्टि का मूल है, और वह स्वयंभू है। वह सत्य स्वरूप है। उसे किसी का भय नहीं, वह निर्वैर है, और गुरु की कृपा से जाना जा सकता है।[1] वह ब्रह्म एक है, और सर्वदा विद्यमान है, न वह कहीं जाता है न जायेगा।[2] ब्रह्म एक है, उसका कोई प्रतिद्वंद्वि नहीं।[3]

इस सृष्टि की रचना उस भगवान् ने की है।[4] अत: यह संसार भी उस सत्य स्वरूप भगवान् का निवास स्थान है।[5] वह इसे बना कर स्वयं बहुत आनंदपूर्वक इस में स्थित हो गया।[6] समस्त संसार उसी ब्रह्म की माया का प्रसार है। इस संसार के समस्त नाम रूप उसी में हैं, तथा वह उनमें रहता हुआ भी उनसे अलिप्त है।[7] सृष्टि रचना से पूर्व घोर अन्धकार था, तथा धरती, आकाश नहीं थे, दिन रात सूर्य और चान्द भी नहीं थे, केवल ब्रह्म की शून्य समाधिस्थ था।[8] यह रचना उसके हुक्म से हुई।[9] सृष्टि रचना कब हुई, कैसे हुई, इसको केवल वह ब्रह्म ही जानता है, अन्य कोई नहीं जानता।[10]

१- १ ओं सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि-१

२- है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई। म:१ आ०ग्रं० पृ० ६

३- आदि निरंजनु निरमलु सोई। अवरु न जाणा दूजा कोई। अम्रित पीआ सतिगुरि दीआ। अवरु न जाणा दूजा तीआ। म:१-मारू पृ० १०३४

४- कुदरति करि कै वसिआ सोइ- आ०ग्रं० पृ० ८४

५- इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु- आ०ग्रं० पृ० ४६३

६- आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ। दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ। म:१ पृ० ४६३

७- अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा। नाना रूप धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा। म:६ आ०ग्रं० पृ० ५३७

८- अरबद नरबद धुंधूकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा। ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा।। मारू म:१ आ०ग्रं० पृ० १०३५

आत्मा जो इस जीव में है वह उस ब्रह्म का रूप है।[11] यह आत्मा अमर है।[12] स्थान स्थान पर आदि ग्रंथ में यह बात कही गई है, सब जीवों में वह ब्रह्म ही निवासित है।[13] परन्तु माया अथवा हउमै के आवरण के कारण वह ब्रह्म इस शरीर के अन्दर होता हुआ भी अदृश्य है।[14] माया किसे कहते हैं? इसका उत्तर देते हुए गुरु अमरदास जी कहते हैं, "अंहकार वश जीव दुःखों तथा सुखों को अनुभव करता है, जब इसकी मनोकामनाएं पूर्ण होती जाती हैं, तो यह सुख अनुभव करता है, परन्तु जब इसे निराशा होती है, तो दुःखी होता है। इन सुखों दुःखों के बंधन में बंधा हुआ जीव जो कर्म करता है, वही माया है।"[15] यह हउमैं कैसे दूर हो सकती है? इसका उत्तर गुरु नानक देव जी इस प्रकार देते हैं: "हउमै कहां से उत्पन्न होती है, और किस यत्न से दूर होती है? हउमैं वाहिगुरु का हुकम है। मनुष्य के कर्मों का क्रम उसके चरित्र को एक विशेष प्रकृति को जन्म देता है, यह प्रकृति जब अंहकारयुत किए कर्मों के क्रम का परिणाम हो, तो उसके फलस्वरूप जीव को भटकना पड़ता है। इस प्रकार हउमै एक दीर्घ रोग है, परन्तु हउमै-रोग का उपचार भी इसके अन्दर ही निहित है। यदि भगवत्कृपा हो जाए, तो जीव गुरु की शरण में शब्दाभ्यास (नाम सुमरिन) करता है, और इस अभ्यास से यह रोग दूर हो जाता है।"[16] यदिजीव अंहकार वश कर्म करता रहता है, और इन कर्मों का क्रम उलझ जाता है, तो इस पर भगवत्कृपा न होने के कारण यह जीव जन्म मरन के चक्र में पड़ जाता है।[17] इस आवागमन के बंधन से मुक्ति आदि ग्रंथ की साधना का परम-लक्ष्य है।

९- (१) कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होए लख दरीआउ।। म:१ आ०ग्र०पृ०३

(२) सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ। पृ० ४

१०- थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई। जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।। म:१ आ०ग्र० पृ० ४

११- आतमा पारब्रहम का रूपु । म:५ आ०ग्र० पृ० ८६८

१२- आतमरामु सु नीअरा नाही (म:५)। आ०ग्र० पृ० १८८

१३- सभ महि इकु वरतदा एको रहिआ समाइ।। आ०ग्र० पृ० २७

१४- अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई।। म:५ आ०ग्र० पृ०२०५

१५- माइआ किस नो आखीऐ किआ माइआ करम कमाइ। दुखि सुखि एहु जीउ बधु है हउमै करम कमाइ। म:३ आ०ग्र० पृ० ६७

साधना पक्ष

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, कि आत्मा और परमात्मा इस शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं, परन्तु माया के आवरण के कारण इस मन्द भागी को साथ रहते परमात्मा के दर्शन नहीं होते।[18] इस परम तत्व की प्राप्ति के लिये इस जीव को अपने मूल का ज्ञान अनिवार्य है। जब इसे पता चल जाता है, कि वह उस ब्रह्मज्योति का ही स्वरूप है, तो अंहकार का नाश हो जाता है।[19] यह ज्ञान बिना गुरु की कृपा के प्राप्त नहीं हो सकता।[20] परन्तु सत्यगुरु दाता की पहचान उसे ही होती है, जिस पर भगवत्कृपा होती है।[21] जिन्हें अंहकारवश माया का मोह-पाश बांधे रखता है, वह सत्य गुरु की सेवा में मन नहीं लगाते।[22] बिना सतिगुरु की सेवा के उस ब्रह्म की प्राप्ति ही नहीं हो सकती। सत्य गुरु स्वयं ब्रह्मरूप है, और उसी के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। गुरु जी से भेंट होने से मोहपाश टूटता है, और जीव मुक्त होता है।[23]

१६- हउमै किथहु उपजै किनु संजमि इह जाइ। हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि।हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि। किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि। नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि।म:२-४६६

१७- हउमै माइआ मलु विचि पाइ। मुड़ि मुड़ि जनमि भ्रमि भउजल पाइ। मनमुख अंधा आवै जाइ। म:३ आ०प्र० पृ० १६१

१८- तूं नावकु एक पंथी आहि। मंद भागी तेरो दरसन नाहि। कबीर पृ० ३२३

१६-मन तूं जोति सरूपु है, अपणा मूलु पछाणु। मन हरि जी तेरै नालि है, गुरमती रंगु माणु। म:३ पृ० ४४१

२०-नामु भंडारु गुर ते पाइआ गुरू सबे भंडारी। म:३ पृ० ६११

२१- सतिगुरु दाता तिनै पछाता जिस नो क्रिपा तुमारी।म:३ पृ० ६११

२२- सतिगुरु न सेवहि माइआ लागे, डूबि मुए अंहकारी। म:३ आ०प्र० पृ० ६११

२३- बिनु सतिगुर किनै न पाइओ, बिनु सतिगुरु किनै न पाइआ।xx
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ।
उतमु एहु बीचारु है, जिनि सचे सिउ चितु लाइआ।
जग जीवनु दाता पाइआ। म: १ आ०प्र० पृ० ४६६

सत्य गुरु का शब्द क्या है?

गुरु वाणी में लिखा है: बड़े भाग्य के कारण गुरु की प्राप्ति होती है। गुरु के द्वारा परमपद की प्राप्ति होती है। सच्चा गुरु ही हरि-नाम में दृढ़-निश्चय स्थापित करवाता है। हरि नाम ही इस विष-मय संसार सागर से पार उतारने में सहायक होता है।[24] सति गुरु इसी हरि नाम (शब्द) में विश्वास को दृढ़ कर के प्रभु मिलन का मार्ग बताता है। हरि नाम तो अमृत-वृक्ष है, वहां पहुंच कर यह जीव रूपी पक्षी उसके फल का रसास्वादन करता है।[25]

सत्यगुरु द्वारा बताए गए नाम सुमरिन का स्वरूप

सर्व-पाप-नाशक-हरि-नाम-सुमरिन गुरु द्वारा बताए मार्ग पर चलने से दृढ़ होता है। यह हरि नाम ही पाप-मति की सारी मल को उतारता है।[26] इस नाम सुमरिन की व्याख्या करते हुए गुरु राम दास जी कहते हैं: संसार में शुभ-कर्म-रूप यशस्वी नाम-सुमरिन द्वारा प्रभु नाम-कीर्ति को मन में धारण करना चाहिए।[27] यह शुभ-कर्म-रूप नाम-जाप किसी समय विशेष की मर्यादित नहीं। शुभ-कर्मों का अनुष्ठान उठते बैठते, सोते-जागते सब कालों में समान रूप से करना ही नाम सुमरिन है।[28] जो व्यक्ति शुभ-कर्मों को करने रूपी नाम सुमरिन मनसा-वाचा कर्मणा श्वास श्वास जपता है, वह सब फल प्राप्त कर लेता है।[29] कबीर जी श्वास श्वास नाम सुमरिन की व्याख्या करते हुए कहते हैं, नाम देव जी ने त्रिलोचन को बताया था कि मुख से हरि -नाम सुमरिन करते हुए, चित्त को हरि चरणों में केन्द्रित कर के हाथ-पांव से काम करते रहना चाहिए। अर्थात प्रत्येक काम को प्रभु

२४- वडभागी गुरु पाइआ मेरी जिंदुड़ीए गुरि पूरै गति मिति पाई आराम।
गुरि सतिगुरि नामु द्रिड़ाइआ मेरी जिंदुड़ीए, बिखु भउजलु तारणहारी राम।
म:४, पृ० ५३६

२५- सतिगुरु सबदी मिलै विछुंनी तनु मनु आगै राखै। नानक अंम्रित बिरखु महारस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै। म:१ पृ० ११११

२६- सभ किलविख पाप दुख कटिआ मेरी जिंदुड़ीए मलु गुरमुखि नामि उतारे राम।
म:४ पृ० ५३६

२७- जगि सुक्रितु कीरति नामु है मेरी जिंदुड़ीए, हरि कीरति हरि मनि धारे राम।
म:४ पृ०५३६

२८- ऊठत बैठत सोवत जागत सासि सासि सासि हरि जपने। कानड़ा म:५,पृ०१२९८

नाम को सम्मुख रखते हुए उस से प्रेरणा प्राप्त करते हुए मंगन करना चाहिए। इस प्रकार हम हमारे कर्म गुण भी शुद्ध हो सकते हैं, और हम कुल-कर्म-धर्म रूप नाम-सुमरिन का अनुष्ठान कर सकते हैं।[30] जो व्यक्ति इस प्रकार से नाम सुमरिन करते हैं, वे शुभ-फल प्राप्त करते हैं, और यदि भक्ति को इस तरह जानकर भव-सागर से पार उतर जाते हैं। इस कोटि के भक्तों की सेवा भी एक उत्तम भक्ति है, परन्तु यह भक्ति भगवत्कृपा से प्राप्त होती है।[31] यदि भगवत्कृपा दुर्भाग्यवश उपलब्ध न हो, तो मनुष्य कितना ही प्रयत्न करे, उसे प्रभु-भक्ति तथा भक्तों की सेवा प्राप्त नहीं होती।[32] सब लोग ध्यान लगाते हैं, परन्तु होता वही है, जो भगवान् की इच्छा होती है।[33] भक्ति की इस नाम सुमरिन पद्धति को साधु-संगति से अधिकाधिक प्रेरणा प्राप्त होती है।[34] परन्तु कुसंगति इस भक्ति मार्ग में विशेष रूप से बाधक सिद्ध होती है।[35] इस प्रकार भगवद् प्राप्ति के साधनों में नदरि-भगवत्कृपया-का सब से अधिक महत्त्व है।

काव्य पक्ष

भाषा: आदि ग्रंथ में भाषा के प्रयोग के विषय में डा० हरिभजन सिंह कहते हैं: गुरु नानक के पश्चात् उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ता जाता है। अंतिम गुरु तक पहुंच कर पंजाबी और मिश्रित भाषा शैली की अपेक्षा हिन्दी भाषा शैली का प्रयोग स्पष्टतः अधिक हो जाता है। गुरु अपने सांस्कृतिक संबंध पंजाबेतर क्षेत्र से बनाये रखने के लिये कितने इच्छुक थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है, कि उन्होंने आदि ग्रंथ का संपादन करते समय कितने ही पंजाबेतर भक्तों की वाणी को भी स्थान दे दिया है। जो राष्ट्र भावना का स्पष्ट, सचेत प्रमाण भले ही न माना जाय, किन्तु यह स्वीकार करना ही होगा, कि गुरु जी के मन में पंजाब बाहर क्षेत्रों से ऐक्य की भावना प्रबल थी।[36]

२९- मन बच क्रम प्रभु एकु धिआए। सरब फला सोई जनु पाए। म:५, आ०ग्रं० ८६०

३०- नामा कहै तिलोचना मुख ते राम संभालि। हाथ पाउ करि कामु सभु, चीतु निरंजन नालि।२१३।। कबीर आ०ग्रं० पृ० १३७६

३१- जिनकै हिरदै तु सुआमी ते सुख फल पावहि ते तरे भव सिंधु, ते भगत हरि जान। तिन सेवा हम लाइ हरे, हम लाइ हरे जन नानक के हरि तू तू तू तू तू भगवान। म:४ पृ० १२९८

३२- अपणा लाइआ पिरमु न लगै जे लोचै सभु कोइ।। एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ।म:३ पृ० १३७८

छन्द: जैसे वेद, पुराण, रामायण और कई अन्य ग्रंथों में छन्दों के नाम नहीं दिये गये, किन्तु विज्ञ पाठक छन्द की गति से जान लेते हैं कि यह अमुक जाति का छन्द है, वैसे ही इस गुरु ग्रंथ साहिब में भी चार छन्दों के नामों [illegible] छन्दों के नाम कहीं नहीं मिलते।[34] अतः छन्दों का परंपरागत नामों तथा परिभाषाओं सहित प्राचीन आचार्यों के मतानुसार विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

अलंकार : प्रायः यह विचार किया जाता है कि संत काव्य में अलंकारों का अभाव रहा है। डा० [illegible] लिखते हैं, 'निर्गुणियां संतों की कविता में [illegible] और अलंकारों का अभाव है। उन्हें अपनी कविता को [illegible] अलंकारों का गुलदस्ता लगाने का चाव नहीं था। जो अलंकार उनमें मिलते हैं, वे उन्होंने खोज कर नहीं बिठाये हैं। रूप और नख-शिख संत-साहित्य में नहीं है। प्रतीकात्मक होने के कारण संत काव्य में रूपक का प्रयोग अधिक हुआ है। विषय को स्पष्ट करने के लिये 'उदाहरण', 'दृष्टांत' आदि अलंकार भी प्रयुक्त किये गये हैं। आलंकारिक में 'अतिशयोक्ति' और 'अनुप्रास' भी देखे जाते हैं।'[35] परन्तु ऐसे विचार विद्वानों ने [illegible] हैं, क्योंकि वे आदि ग्रंथ काव्य से संपर्क नहीं स्थापित कर सके। यहाँ तो आदि ग्रंथ के रचयिताओं के काव्य में लगभग सभी परंपरागत प्रसिद्ध काव्यालंकारों के प्रयोग के उदाहरण मिल जाते हैं। गुरु नानक-काव्य को किसी भी उच्च कोटि के उच्च-स्तरीय काव्य के समकक्ष रख कर विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। [illegible] सब काव्यालंकारों को अलंकार शास्त्र के नियमों के प्रकाश में आदि ग्रंथ से खोज कर उन का प्राचीन आचार्यों के मतानुकूल विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

लोक काव्य रूप: लोक-काव्य होने के नाते, आदि ग्रंथ काव्य पर लोक-काव्य-रूपों का बहुत प्रभाव है। संत कवियों ने अपनी रचनाओं को लोक के लिये लिखा और उनकी रचनाएं अधिक से अधिक लोक-काव्य-रूपों पर [illegible] आधारित हैं कि संत काव्य जन साधारण में लोक-काव्य-रूप पद गीतों में प्रसिद्ध हो सकता था। लोक-काव्य के इस तत्व के विषय में डा० रामकुमार लिखते हैं, 'सन्त भक्त कवियों ने लोक-भाषाओं को अपना माध्यम ही नहीं बनाया, वरन् अतिशय प्रचलित लोक [illegible] गीतों

33- [illegible] भाखीआ [illegible] रसना [illegible]। म:१ पृ० ९६६

34- [illegible] गुण [illegible]। [illegible] निरमल नानकु [illegible]। म:३, पृ० [illegible]

35- [illegible] पृ० १२५३, [illegible] नानकु [illegible]। म:५, पृ० १०८७

[illegible]

शैलीगत विशिष्टताओं में आदि ग्रंथ की [illegible] विलक्षणता यह है, कि इस ग्रंथ के रचयिताओं ने अपने पाठकों से ऐसा [illegible] संबंध स्थापित किया है, कि पाठक इस महान् ग्रंथ के अमृत वचनों को किसी [illegible] व्यक्ति के मुख से निकले हुए वचन नहीं समझते, अपितु अपने किसी सुहृद-सुजन मित्र के सुन्दर [illegible] मानकर अपने लिये [illegible] उनको ग्रहण करना अपना परम कर्तव्य समझने लगते हैं। इस शैली के सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

१- भाई रे [illegible] [illegible] [illegible] नानक [illegible]।म:५[४४]

२- भाई रे [illegible] [illegible]।म:३[४५]

३- भाई रे [illegible] [illegible]।म:१[४६]

४- भाई रे [illegible] [illegible]। म:५[४७]

[illegible] [illegible] परंपरागत-शैली-रूपों में से एक है। संत महात्माओं ने इसे विशिष्ट रूप से अपनाया। [illegible] कबीर की शैली [illegible] में अभिव्यक्त हुई है, [illegible]। परन्तु गुरु कवियों ने [illegible] अत्यन्त-सुन्दर ढंग से कहे हैं। उदाहरण के लिये [illegible] [illegible] लीजिये। कबीर जी कहते हैं।

कबीर [illegible] परमेसुर [illegible] रघु [illegible]।

[illegible] [illegible] ।। (१३६ ।।[४८]

गुरु अर्जुन देव जी [illegible] विचार को [illegible] सुन्दर शैली में व्यक्त कर गए हैं, [illegible] [illegible] अभिव्यक्त किया [illegible]। [illegible] की पूजा [illegible] वर्णन द्रष्टव्य है:-

---

४१- श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी [illegible] विशेषता। [illegible] सिंह पृ० १९२

४२- [illegible] [illegible]।

नानकु तिनकै संगि [illegible] [illegible]। म:१ पृ० १५

४३- [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]। म:१ पृ० ७२६

४४- आ०ग्रं० पृ० ९०४

४५- आ०ग्रं० पृ० २८

४६- आ०ग्रं० पृ० ५५

४७- आ०ग्रं० पृ० ४२

४८- आ०ग्रं० पृ० १३७१

[illegible]।
[illegible]॥
[illegible] बंक [illegible]॥
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥ [illegible] -८९-९० [illegible][६६]

[illegible]।
[illegible]।

[illegible]: [illegible] [20] [illegible] [illegible] [21] [illegible] रामचन्द्र [illegible],

---

६६- [illegible] पृ० ३३३

७०- [illegible] पृ० [illegible]

(१) [illegible]। [illegible] ६६

[illegible] की रचना नहीं [illegible], क्योंकि [illegible] रचना [illegible] सूरदास पूर्व रचना [illegible] है और पद्मावत में भी [illegible] है।[53] [illegible] रागों [illegible] नहीं है। [illegible] और [illegible] राग [illegible] है। आदि ग्रंथ की रागमाला में 30 रागिनियां हैं, [illegible] रागमाला में 36 रागिनियां [illegible] जायसी ने [illegible] राग [illegible] नाम दिये हैं, [illegible] रागिनियों के नाम नहीं दिये। [illegible] राग [illegible] रचना [illegible] और आदि ग्रंथ की [illegible] रचना [illegible] कि दोनों राग- [illegible] अलग [illegible] प्रेरित हैं। अतः आदि ग्रंथ की रागमाला [illegible] की रचना है और [illegible] रचना [illegible] है जितनी वाणी की।

[illegible] गुरु ग्रंथ की वाणी [illegible] प्राण [illegible] जाये तो ठीक है। राग-नाद की गुरुवाणी में [illegible] माना गया है [illegible] पूज्य माना गया है।[54] [illegible] बहुत [illegible] माना गया है और [illegible] आनंद [illegible] बताया गया है।[55] परन्तु [illegible] के [illegible] में [illegible] है।[56] क्योंकि [illegible] राग-[illegible] संगीत [illegible] [illegible] नहीं पहुंच [illegible]।[57]

<u>[illegible] और आदि ग्रंथ [illegible]</u>

[illegible] राग [illegible] आदि ग्रंथ [illegible] पृष्ठों में [illegible] किया [illegible] है, [illegible] आदि ग्रंथ [illegible] में [illegible]

(क) [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] रागमाला [illegible] । [illegible] 10 [illegible], [illegible] । [illegible] आदि ग्रंथ पृ० [illegible] पर [illegible]।

52- [illegible] राग 3, [illegible] । 53- [illegible] पृ० 36

53- पद्मावत [illegible] पृ० 438

54- [illegible] । [illegible], पृ० [illegible]

55- [illegible] । [illegible] । [illegible] पृ० 863

56- [illegible] । [illegible]

[illegible] दिया है। लोक भावना [illegible] का साधारण लोक [illegible] ग्रंथ है। विचारों का वैज्ञानिक [illegible] कारण [illegible] नहीं [illegible] हैं। [illegible] ग्रंथ किसी अलौकिक धरातल पर स्थित स्वर्ग-नरक [illegible] नहीं करता, अपितु मानव-धरातल के [illegible] दृष्टि से [illegible] विषयों पर [illegible] प्रस्तुत करता है: जीवन एक कृषि है: [illegible] एक खेती है, जैसा कोई बोता है, वैसा काटता है। अर्थात् [illegible] के फल [illegible] और [illegible] के फल [illegible], यहां पर मिल जाता है। यहां स्वर्ग है, यहीं नरक है:-

अमलु करि धरती बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी।

होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी।।म:१ [५८]

यह दृष्टि स्वर्ग नरकों के [illegible] पर निर्भर है, जैसा कोई बोता है, वैसा काटता है:-

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु।। म:५ [५९]

भगवान् के घर में किसी [illegible] नाम, अथवा जाति पांति के भेद भाव को कोई स्थान नहीं। जाति और [illegible] गौण हैं। जैसे जो कर्म करता है, वही उसकी जाति पांति है।

जाति जनमु नह पूछीऐ सच घरु लेहु बताइ।।

सा जाति सा पति है, जेहे करम कमाइ।। प्रभाती म:१ [६०]

परंपरागत तत्वों में से भारत [illegible] तथा सांस्कृतिक [illegible] को और जो संकेत इस महान् ग्रंथ में किए गए हैं, उनसे प्रत्येक [illegible] के हृदय में अपनी [illegible] तथा संस्कृति के प्रति श्रद्धा तथा सत्कार की भावना का विकास होता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं:-

कूजा बांग निवाज मुसला नील रूप बनवारी।

घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी।।म:१ [६१]

बादशाहों के प्रभाव के अंतर्गत जो हिन्दू जाति [illegible] की [illegible] अनुकरण करती हुई अपनी भाषा [illegible] अपनाने लगी [illegible] उद्धार करेंगे।

५७- [illegible] म:१ पृ० ३५०

५८- आ०ग्रं० पृ० २३   ५९- आ०ग्रं० पृ० १३४

६०- आ०ग्रं० पृ० १३३०   ६१- आ०ग्रं० पृ० ११९१

आदि ग्रंथ कोई धर्म-ग्रंथ नहीं है, जिसमें कतिपय सिद्धान्तों की क्रमानुकूल व्याख्या उपलब्ध हो सके। यह [illegible] भक्ति मार्ग से सुभक्ति साधना-प[illegible] या निर्गुण-मार्ग के काव्य का रूप देता प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। सिद्धान्तों को इस ग्रंथ में ढूंढ कर निकालना पड़ता है। कतिपय विद्वानों को यह भ्रम हुआ कि इस ग्रंथ में कुछ सिद्धान्तों का आपस में विरोध मिलता है। परन्तु यह उनका भ्रम ही है। गुरुवाणी की [illegible] व्याख्या न होना ही इसका कारण हो सकता है। एक सिद्धान्त को [illegible] [illegible] पूरा [illegible], विरोधी किसी प्रकार का नहीं। गुरुओं ने जहाँ [illegible] रचना में [illegible] एक विचार दिया, जो प्रत्येक कारण न [illegible], उसकी इन्होंने व्याख्या करते हुए [illegible][62] अपनी टिप्पणी दे दी है। [illegible] फरीद [illegible] आवागमन में विश्वास न [illegible] उनके अनुगामी सिद्धान्तों के अनुकूल है। [illegible] प्रकार केवल उनकी रचना में ही है, अन्य किसी [illegible] रचना पर नहीं।

आदिग्रंथ के सन्तों ने अपने सिद्धान्तों को किसी धर्म या जाति विशेष के लिये बोधित नहीं किया। वे न हिंदू थे न मुसलमान:-

[illegible] हिंदू ना मुसलमान। [illegible] राम के पिंड परान। कबीर।[63]

यदि कोई [illegible] एक परमात्मा से प्रेम करता है, और [illegible] दुविधाओं से मुक्त हो जाता है, तो चाहे वह किसी भी धर्म से संबंधित क्यों न हो [illegible] जीवन मुक्त है:-

कबीर प्रीति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दुविधा जाइ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।। २५।।[64]

दुःख की बात यह है कि जिस प्रकार पंजाबी भाषा के गुरुमुखी लिपि में होने के कारण केवल सिक्खों ने [illegible] मान लिया गया, हालांकि इसे सब पंजाबी लोग बोलते हैं, इसी प्रकार आदि ग्रंथ को [illegible] गुरुओं द्वारा गुरुमुखी लिपि में संपादित किए जाने तथा [illegible] में गुरु-रूप मान लिये जाने के कारण, सिक्खों से संबद्ध हो [illegible] गया हालांकि [illegible] समस्त मानवता के लिये समान है। जिस प्रकार पंजाबी भाषा वाला भ्रम दूर हो गया है, उसी प्रकार [illegible] [illegible]

62- [illegible] संख्या [illegible] पृ०१३८१ 63- आ०ग्रं० पृ० ११३६
64- आ०ग्रं० पृ० १३[illegible]५

है आदि ग्रंथ संबंधी भ्रम को दूर हो सका है। [illegible] प्रस्तुत किया जाने लगा है। डा० गोपाल सिंह ने अपना अंग्रेजी में [illegible] अनुवाद [illegible] के [illegible] में महत्वपूर्ण कार्य किया है। डा० [illegible] मिश्र का 'गुरु ग्रंथ दर्शन' डा० मनमोहन सहगल का 'संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' ([illegible]: गुरु नानक [illegible] के संदर्भ में), डा० [illegible] सिंह का 'गुरु नानक चिंतन और कला', [illegible] का 'गुरु ग्रंथ साहब का [illegible]', डा० [illegible] का 'गुरु ग्रंथ साहब का आलोचनात्मक अध्ययन' (हिन्दी) प्रो० जोगेन्द्र सिंह का 'गुरु ग्रंथ दर्शन' तथा प्रो० साहब सिंह का दस भागों में 'गुरु ग्रंथ साहब' (श्री गुरु ग्रंथ दर्पण-१-१०) इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न हैं।

सार्वभौमिक मानवता: श्री गुरु ग्रंथ के संदेश की व्यापकता [illegible] में निहित है, [illegible] भगवान् ग्रंथ किसी [illegible] को अपना धर्म छोड़ने की प्रेरणा नहीं करता, अपितु ईमान [illegible] निगुण: [65] [illegible] अपूर्ण [illegible] अपना धर्म [illegible] है- [illegible] को प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ में निज निज धर्म में [illegible] का अनुष्ठान करते रहने की प्रेरणा देते हुए सार्वभौमिक कल्याण की कामना की गई है:

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि।। सार [illegible] ४:४ [illegible] म:३ [66]
(हे भगवान्! सारा संसार [illegible] की अग्नि में जल रहा है। जिस मार्ग का अनुसरण करने से [illegible] सकता है, [illegible] मार्गों [illegible]
चाहिए।)

आज के युग में [illegible] के लिये [illegible] का महत्व बहुत अधिक है। [illegible] वैज्ञानिक प्रगति पर गर्व करने वाला [illegible] मानव [illegible] के [illegible] संदर्भ में ढूंढना। [illegible] मानव [illegible] है। श्री [illegible] जिगर मुरादाबादी लिखते हैं: हे भगवान्! मानव [illegible] ! [illegible] संसार का स्वामी, संसार का [illegible] है। [illegible] भगवान् के [illegible] है, [illegible] को दूर [illegible] [67] [illegible] है।

दु:ख की बात यह है कि आज मानव [illegible] आदि का दावा करने [illegible] है, परन्तु अपनी [illegible] में [illegible] उत्पन्न हुआ [illegible] है [illegible] परिस्थिति।

६५- [illegible]- ३-३१ ६६- [illegible] पृ० [illegible]

जिगर की शायरी पृ० १२ ६७- [illegible]

१३- सहायकग्रंथ सूची।

पीउ दादे का खोलि डिठा खजाना।
ता मेरै मनि भइआ निधाना॥ म: ५॥
आ० ग्रं० पृ० १८५.

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत ग्रंथ:

१-अष्टादश पुराण, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई - १९६३ वि०.
२-उपनिषद: ईशोपनिषद्, केनोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्, छांदोग्योपनिषद्, तैतरीयोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् ।
३- गीता रहस्य, बालगंगाधर तिलक,
४- गीत गोविंद (जयदेव), विनय मोहन शर्मा, आत्मा राम एंड संस, दिल्ली -६, १९५५.
५- गीत गोविंद -विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, भूमिका-श्रीयुनायवल्लभ गोस्वामी, बिहारीपुरा, वृंदावन धाम। मानिव पुस्तकालय, बनारस ।
६-ब्रह्म सूत्र, भाग १-२ (शंकरभाष्य) पं० शंकर लाल कौशल्य, वेदांत केसरी कार्यालय, बेलनगंज, आगरा, १९८८-वि० ।
७-विष्णु पुराण, अनुवादक, मुनि लाल गुप्त, गीता प्रेस, गोरखपुर-२०१४ वि० ।
८-वेद: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ।
९-श्रीमद्भगवद् गीता -राधाकृष्णन (अनुवादक विराज एम ० ए) राज पाल एंड संस, दिल्ली- १९६२ ।
१०-श्रीमद्भागवद् पुराण (दशम स्कंध) गीता प्रेस, गोरखपुर, २००८ वि० (अनुवाद).

संगीत ग्रंथ:

१- उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, अनुवादक अरुण कुमार सेन, संगीत कार्यालय हाथरस, (उ ० प्र), जुलाई - १९५४ ।
२- भातखंडे संगीत शास्त्र (भाग ३) , पं ० विष्णु नारायण भातखंडे, अनुवादक लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस - जुलाई १९५४ ।
३- भारतीय संगीत, आचार्य उत्तम राम शुक्ल, दुर्लभ प्रकाशन मन्दिर, तुलसी चबूतरा, मथुरा, अक्तूबर -१९५८ ।
४- संगीत शास्त्र, के ० वासुदेव शास्त्री, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९५८ ।
५- संत संगीत अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस(उत्तर प्रदेश)जनवरी १९४८, निबंध श्री विश्वंभर नाथ भट्ट, एम ० ए, संगीत विशारद ।

हिन्दी ग्रंथ:

१- अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड़, भारतीय साहित्य मन्दिर फव्वारा, दिल्ली-१९५६

२- अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद, डा० वासुदेव सिंह,काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२,१९६५ ।

३- आदि हिन्दी की कहानियां और गीत, राहुल सांकृत्यायन।,पटना-१९५१ .

४- आदि ग्रंथ (देवनागरी) शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी,अमृतसर द्वारा प्रकाशित ।

५- आदि कालीन हिन्दी साहित्य शोध, डा० हरीश, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद-१९६६ ।

६- उत्तरी भारत की संत परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद- १९६६ ।

७- कबीर, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर लिमिटेड, बंबई -१९५५ ।

८- कबीर की विचारधारा डा ०गोविंद त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन,कानपुर-२०१४ वि०।

९- कबीर साहित्य की परख, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद- वि० सं० ,२०२१ - वि० ।

१०-कबीर एक विवेचन, डा० सरनाम सिंह, हिंदी साहित्य मन्दिर,दिल्ली-६,१९६० ।

११- कबीर के धार्मिक विश्वास, डा० धर्म पाल मैनी, भारतेंदु भवन, चंडीगढ़ -३ ।

१२-कबीर और जायसी का रहस्यवाद। डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य सदन,देहरादून

१३-काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डा० शकुंतला दूबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ज्ञानवापी, वाराणसी -१.

१४-गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० हरिभजन सिंह, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली-१९६३ ।

१५-गुरु रामदास की वाणी (संपादित) प्यारा सिंह पद्म, भाषा विभाग, पटियाला १९६१ ।

१६-गुरु अर्जुन देव की वाणी(संपादित) प्यारा सिंह पद्म,भाषा विभाग,पटियाला, १९६१

१७-गुरु ग्रंथ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग,उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ,१९६० ।

१८-गोरखबाणी, डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, तृतीय संस्करण,सं० २०१७ ।

१९-गोरखनाथ और उनका युग, डा० रांगेय राघव, आत्मा राम एंड संज़, दिल्ली,१९६३

२०-जायसी ग्रंथावली, डा० माता प्रसाद गुप्त, लीडर प्रेस, इलाहाबाद,१९५२ ।

२१-जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत,लक्ष्मी नारायण सुधांशु, एम०ए, जनवाणी प्रकाशन १६१-१, १९६२.

२२-जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि,डा० प्रेम सागर जैन,भारतीय ज्ञानपीठ,काशी,१९६३ ।

२३-ढोला-मारू-रा-दूहा (संपादित)राम सिंह नरोत्तम स्वामी,काशी,१९९१-वि० ।

२४-धर्म तत्व, स्वामी रामतीर्थ, रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ,१९५८ ।

२५-नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य, डा० कोमल सिंह सोलंकी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६६ ।

२६-निर्गुण काव्य दर्शन, श्री सिद्धिनाथ तिवारी एम०ए० श्री अजंता प्रेस लिमिटेड, पटना-४, प्रथम सं- 1953.

२७-पद्मावत (जायसी) डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६० ।

२८-प्रकृति और हिन्दी काव्य, डा० रघुवंश, इलाहाबाद, २००५ वि० ।

२९-भक्ति का विकास, डा० मुंशी राम, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, १, १९५८ ।

३०-भक्ति आंदोलन का अध्ययन, डा० रतिभानु सिंह नाहर, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।

३१-भक्ति काव्य के मूल स्रोत, दुर्गा शंकर मिश्र, नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ, १९५८ ।

३२-भक्ति काव्य में रहस्यवाद, डा० राम नारायण पाण्डेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७, १९६६ ।

३३-भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप, डा० जयनाथ नलिन, भंसल एंड कंपनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली।

३४-भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, १९५७ ।

३५-भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डा० सत्य केतु विद्यालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी, जुलाई, १९५६ ।

३६-भारतवर्ष का वृहद् इतिहास, श्री भगवद् दत्त बी०ए०, द्वितीय संस्करण, २००३ वि० ।

३७-भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, डा० पाण्डेय और जोशी, साहित्य निकेतन कानपुर, प्रथम संस्करण ।

३८-भारतीय संत परंपरा और समाज, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद-बंबई, शकाब्द १८८४ ।

३९-भारतीय लोक साहित्य, डा० श्याम परमार, बंबई, १९५४ ।

४०-भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५७ ।

४१-भोजपुरी गीत, डा० कृष्ण देव उपाध्याय, प्रयाग, २००० वि० ।

४२-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, प्रथम संस्करण, अक्टूबर-1959.

४३-मध्यकालीन हिन्दी संत, विचार और साधना, डा० केशनी प्रसाद चौरसिया, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९६५ ।

४४-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डा० सत्येंद्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६० ।

४५-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, डा० सरला देवी त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन कानपुर ।

४६-मध्ययुगीन धर्म साधना, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, १९६२

४७-मराठी का भक्ति साहित्य, प्रो० भी०गो० देशपांडे, एम०ए०बी०टी, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९५९ ।

४८-रहस्यवाद, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, १९६६ ।

४९-रहस्यवाद, डा० राम रत्न भटनागर, किताब महल, इलाहाबाद, १९५१ ।

५०-लोक-गीतों की सामाजिक व्याख्या, श्री कृष्ण दास, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५६ ।

५१-विचार और वितर्क, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद, १९५४ ।

५२-संत सुधा सार (संक्षिप्त) वियोगी हरि, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५८ ।

५३-संत काव्य, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल , इलाहाबाद, १९५५।

५४-संत साहित्य , डा० प्रेम नारायण शुक्ल, ग्रंथम, राम बाग, कानपुर, १९६५।

५५- संत कबीर, डा० राम कुमार वर्मा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५७।

५६-सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानंद सरस्वती, सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, दरियागंज, दिल्ली, २०१९ वि० ।

५७-संत साहित्य का दार्शनिक विश्लेषण (गुरु नानक के संदर्भ में) डा० मनमोहन सहगल, भारतेंदु भवन , चंडीगढ़, १९६६ ।

५८-संत मत में साधना का स्वरूप, डा० जयदेव सिंह, प्रद्युम्न प्रकाशन, कानपुर ।

५९-संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, डा० ओम प्रकाश शर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९६५।

६०-संत साहित्य, डा० सुदर्शन सिंह मजीठिया, रूप कमल प्रकाशन, लखनऊ।

६१-साहित्य के तत्व, डा० गणपति चंद्र गुप्त, भारतेंदु भवन, चंडीगढ़-३ ।

६२-साधना और साहित्य ,डा० हर स्वरूप माथुर, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६३।

६३-सुगम साधना मार्ग, दण्डी स्वामी शिवानन्द जी, साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र०सं०-१९६५।

६४-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० राम कुमार वर्मा, राम नारायण लाल इलाहाबाद, १९५८।

६५-हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, डा० राज बली पाण्डेय, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, २०१४ वि० ।

६६-हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, डा० सरनाम सिंह,राम नारायण लाल, इलाहाबाद,१९५२।

६७-हिन्दी साहित्य कोश,डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० व्रजेश्वर वर्मा आदि, १,ज्ञान मंडल लिमिटेड,बनारस-२०१५ वि० ।

६८-हिन्दी छंद प्रकाश,रघुनंदन शास्त्री,एम०ए०, एम०ओ० एल०, राजपाल एण्ड संस,काश्मीरी गेट, दिल्ली- १९५२।

६९- हिन्दी साहित्य का आदि काल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना-३, १९५७।

७०- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, डा० रवीन्द्र भ्रमर, भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा दिल्ली, १९६५ ।

७१- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डा० नामवर सिंह, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५४ ।

७२- हिन्दी काव्य धारा, आचार्य राहुल सांकृत्यायन, इलाहाबाद, १९४५।

७३- हिन्दी साहित्य का अतीत, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, २०१५ वि०।

७४- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, विश्वम्भर नाथ, उपाध्याय, साहित्य रत्न भंडार, आगरा।

७५- हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई- १९५४।

७६- हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय- स्व० डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, पानदरीबा, चारबाग, लखनऊ।

७७- हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका, डा० शंभुनाथ सिंह, ... विद्यालय, वाराणसी- १९६६।

७८- हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास, डा० नरेश बाहरी, भारतीय प्रेस-प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५७।

७९- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा० गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन सेक्टर नं० १५-ए, चंडीगढ़- १९६५।

८०- हिन्दी साहित्य, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अतर चन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली,१९५२

८१- हिन्दी साहित्य, डा० श्याम सुंदर दास, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग,१९६६

८२- हिन्दी साहित्य की कहानी, डा० राम रतन भटनागर, डी०लिट, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड,प्रयाग, १९५६।

८३- हिन्दी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, डा० विद्यावती मालविका, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१, १९६१।

८४- हिन्दी का निर्गुण काव्य-धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० गोविंद त्रिगुणायत, साहित्य निकेत, कानपुर, १९६१।

८५- हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य, डा० प्रभाकर माचवे, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी,१, १९६२।

८६- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, विनयमोहन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,१९५७।

८७- हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य, प्रभाकर माचवे, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी-१,१९६२

८८- हिन्दू संस्कार, डा० राजबली पाण्डेय, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी-१,१९५७।

पंजाबी ग्रंथ :

१- ए डिक्शनरी आव दि लहन्दी एंड वैस्टर्न पंजाबी, मि० विल्सन, भाषा विभाग, पटियाला- १९६३।

२- ग्लासरी आफ मुल्तानी लैंग्वेज, प्रो० ओ'ब्रायन, भाषा विभाग, पटियाला। १९६३

३- गुरमति दर्शन, डा० शेर सिंह, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर-१९५२।

४- गुरमत मार्तंड (गुरमत निर्णय भंडार)- गुरु ग्रंथ कोश, ज्ञानी लाल सिंह संगरूर, जनक पुस्तक भंडार, संगरूर, १९४६।

५- गुरमति प्रभाकर, भाई कान्ह सिंह नाभा- गुरमति प्रेस अमृतसर- १९२२।

६- गुरमति सुधाकर, भाई कान्ह सिंह नाभा, गुरमति प्रेस, अमृतसर- १९२२।

७- गुरछन्द दिवाकर (३१६ पृष्ठ) भाई कान्ह सिंह नाभा-दरबार नाभा, प्रथम संस्करण, सुदर्शन प्रेस, माल बाजार, अमृतसर द्वारा मुद्रित।

८- गुरबाणी कोश, प्रो० प्यारा सिंह पदम, सिंह ब्रदर्ज, अमृतसर, १९६०।

९- गुरु नानक भाषा- डा० काला सिंह बेदी, पंजाबी बुक स्टोर- मेन बाजार, कालका जी, नयी दिल्ली।

१०- गुरबाणी व्याकरण, प्रो० साहब सिंह, २४- खालसा कालिज, अमृतसर-१९५३।

११- गुरु ग्रंथ सिद्धांत संग्रह- ज्ञानी लाल सिंह संगरूर- गुरमति प्रेस, अमृतसर- १९५३।

[illegible]- पंजाब का पौराणिक [illegible] (उत्तरार्ध) डा० [illegible] सिंह [illegible], न्यू बुक कं० जालंधर।

[illegible]- पंजाबी साहित्य शिरोमणी, प्रि० [illegible] सिंह [illegible], लाहौर बुक शाप, लुधियाना-१९[illegible]।

[illegible]- पंजाबी साहित दे [illegible], डा० [illegible] सिंह, [illegible] प्रकाशन, अमृतसर, १९[illegible]

[illegible]- पंजाबी दुनिया (गुरु अर्जुन विशेषांक) भाषा विभाग, पटियाला-जून,जुला० ,१९[illegible]।

[illegible]- पंजाबी दुनिया (गुरमति विशेषांक) भाषा विभाग, पटियाला, [illegible], १९[illegible]

[illegible]- पंजाबी दुनिया (जुलाई,१९६५) भाषा विभाग, पटियाला।

[illegible]- पंजाबी दुनिया (नवंबर,१९६५) पत्रिका अं०, भाषा विभाग, पटियाला।

[illegible]- पंजाबी काव्य दा विकास- प्रि० [illegible] [illegible], लाहौर बुक शाप, लुधियाना- १९[illegible]।

[illegible]- [illegible], प्रो० [illegible] सिंह, [illegible] कालिज, अमृतसर, [illegible] [illegible], [illegible] अमृतसर- १९[illegible]।

[illegible]- [illegible], गुरु गोबिन्द सिंह, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी [illegible]।
अगस्त-[illegible]

[illegible]- बीर सतोक, डा० [illegible] सिंह - लाहौर बुक शाप, लुधियाना- १९[illegible]।

[illegible]- [illegible] ([illegible] [illegible] दा [illegible] [illegible]) [illegible] सिंह [illegible], भाषा [illegible]- १९[illegible]०।

[illegible]- [illegible] नानक (पंजाबी दुनिया-पुस्तक [illegible]) भाषा विभाग, पटियाला, नं०२ वर्ष, १९५६।

[illegible]- [illegible] [illegible], शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी,१९[illegible]०।

[illegible]- ग्रंथावलि (पोथी-१), स्वर्णार्थ गुरुबाणी [illegible], [illegible], १९४४।

[illegible]- ग्रंथावलि (पोथी-२), स्वर्णार्थ गुरुबाणी [illegible], [illegible], १९४५।

[illegible]- ग्रंथावलि (पोथी-३), शिरोमणी गुरुद्वारा [illegible] अमृतसर, दिसंबर, १९[illegible]।

२९. ग्रंथावलि (पोथी-४), शिरोमणी गुरुद्वारा [illegible] अमृतसर, [illegible], १९[illegible]।

संपादक मं[illegible]- प्रि० [illegible] सिंह, प्रि० [illegible] [illegible] सिंह, प्रि० [illegible] सिंह, [illegible] [illegible] सिंह।

1. श्री गुरु ग्रंथ दर्पण, प्रो० साहिब सिंह (दस भागों में), राज पब्लिशर्ज़, जालंधर, पुनर्मुद्रण।

2. श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यक विशेषता, डा० गोपाल सिंह, [illegible] [illegible], दिल्ली १९।

3. श्री गुरु ग्रंथ साहिब दा साहित्यक इतिहास, डा० तारन सिंह, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक, अमृतसर, १९६३।

4. साहित्य इतिहास, भाग-१ (१४६९-१७०८ ई०) प्रो० करतार सिंह, न्यू बुक कंपनी, माई हीरा गेट, जालंधर, १९६६।

5. संख्या, गुरबख्श सिंह केसरी, पंजाबी साहित्य अकादमी, लुधियाना, [illegible], १९६८ संस्करण।

6. हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मंडल। भाषा विभाग, पटियाला, १९७३ (पंजाबी अनुवाद)

7. कथा सागर, ज्ञानी भक्त सिंह; भाई प्रताप सिंह प्रीतम सिंह, अमृतसर, १९४२.

श्री गुरु दर्पण, प्रो० जोगेन्द्र सिंह, पंजाबी प्रकाशन, देव नगर, नई दिल्ली -5, 1966.

ENGLISH BOOKS.

A critical survey of Indian Philosophy, by Dr. Chander Dhar Sharma, Benaras University, Rider and Co. London, 1960.

A critical study of Adi Granth, Dr. S.S.Kohli, Delhi-1961.

History of Indian Literature, Dr. M. Winternitz, University of Calcutta, 1927.

India (A survey of her literatures, Religions, Languages and ethics) by A.A. MacDonell, Moti Lal Benarasi Dass, Delhi.

Indian Philosophy, by Dr. Radha Krishanan.

Philosophy of Sikhism, by Dr. Sher Singh, M.A., Ph.D.

Studies in Epics and Puranas in India, Dr.A.D. Pulskar, Bhartya Vidya Bhawan, Chaupaty Bombay, 1955.

Shrimadbhagwat Gita, Swami Swroopanand, Chowkhamba Vidya Bhawan, Varanasi-1.

Sikhism, Karma and Transmigration, by S.Harnam Singh, M.A., LL.B., I.C.S., Jullundur-1955.

Fundamental Problems of Indian Philosophy, by C.KUNHAN RAJA.

Sikh Religion, by Macauliff, S.Chand and Co., 1962.

The Foundation of Hinduism, Dr. Jadu Nath Sinah, M.A. Ph.D., Sinha Publishing House, 59, [illegible] Calcutta [illegible]

13. The Gospel of the Guru Granth Sahib, by Duncan Greenlees.

14. The Adi Granth, by Dr. Trump.

15. The Quintessence of Sikhism, Gobind Singh, Shriomani Gurdwara Prabandak Committee, Amritsar, 1958.

16. Transformation of Sikhism, by Dr. Gokal Chand Narang, New Book Society of India, New Delhi-1950.

17. Vishnu Puran (English Translation) H.H. Wilson, John Murray Albemark street, London, 1840.

18. Universal Religion, Thakur Sambhu Nath Chakravarty, Translated from Bengali by Shri J. K. Mitra MA, & Shri P.S. Rajgopalan MA., published by Sri Sri Sambhu Nath Singh, 5/1 Dharamhatta 1st Lane, Calcutta-6.

Bhagti Granthas.

1. The Nard Bhagti Sutra, Gita Press Gorakhpur.

2. The Shandilleya Bhagti Sutra, Gita Press Gorakhpur.

3. The Bhagtirasamritsindhu by Roop Goswami, Gita Press Gorakhpur.

****

उर्दू- ग्रंथ

१. बाल-ए-जबरील, डॉ० मोहम्मद इकबाल, मश्वरा बुक डिपो, राम नगर, गांधी नगर, पोस्ट बक्स नं० 1639, दिल्ली।

२. जिगर की शायरी, अली सिकंदर जिगर मुरादाबादी, हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली।